आकर ग्रंथमाला--१५

सोमनाथ ग्रंथावली

(प्रथम खंड)

संपादक

[सुधाकर पांडेय]

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रथम संस्करण
संवत् २०२६
११०० प्रतियाँ

मूल्य इक्यावन रुपए

मुद्रक
शंभुनाथ वाजपेयी
नागरी मुद्रण, वाराणसी

आकर ग्रंथमाला का परिचय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी हीरक जयंती के अवसर पर जिन भिन्न भिन्न साहित्यिक अनुष्ठानो का श्रीगणेश करना निश्चित किया था, उनमें से एक कार्य हिंदी के आकर ग्रंथो के सुसपादित सस्करणो की पुस्तकमाला प्रकाशित करना था। जयतियो अथवा बड़े बड़े आयोजनों पर एकमात्र उत्सव आदि न कर स्थायी महत्व के ऐसे रचनात्मक कार्य करना सभा की परपरा रही है जिनसे भाषा और साहित्य की ठोस सेवा हो। इसी दृष्टि से सभा ने हीरक जयती के पूर्व एक योजना बनाकर विभिन्न राज्य सरकारो और केंद्रीय सरकार के पास भेजी थी। इस योजना मे सभा की वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियों को सपुष्ट करने के अतिरिक्त कतिपय नवीन कार्यो की रूपरेखा देकर आर्थिक संरक्षण के लिये सरकारो से आग्रह किया गया था। इनमे से केंद्रीय सरकार ने हिंदी शब्दसागर के सशोधन, परिवर्धन तथा आकर ग्रथो की एक माला के प्रकाशन मे विशेष रुचि दिखलाई और ५–३–५४ को सभा की हीरकजयती का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेंद्रप्रसाद ने घोषित किया—"मै आपके निश्चयो का, विशेषकर इन दो (शब्दसागरसशोधन तथा आकर ग्रंथमाला) का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया सस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पॉच वर्षो मे बीस बीस हजार करके दिए जायँगे, देने का निश्चय हुआ है। इसी तरह से मौलिक प्राचीन ग्रथो के प्रकाशन के लिये पचीस हजार रुपए की, पॉच पॉच हजार करके, सहायता दी जायगी। मै आशा करता हूँ कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप काम मे अग्रसर होगे।"

केंद्रीय शिक्षामत्रालय ने ११–५–५४ को एफ० ४–३–५२ एच ४ सख्यक एतत्सबंधी राजाज्ञा निकाली। राजाज्ञा की शर्तो के अनुसार इस माला के लिये सपादकमंडल का सघटन तथा इसमे प्रकाश्य एक सौ उत्तमोत्तम ग्रथो का निर्धारण कर लिया गया है। सपादकमडल तथा ग्रथसूची की सपुष्टि भी केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने कर दी है। ज्यो ज्यो ग्रंथ तैयार होते चलेगे, इस माला में प्रकाशित होते रहेगे। हिंदी के प्राचीन साहित्य को इस प्रकार उच्च स्तर के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओ तथा इतर अध्येताओ के लिये सुलभ करके केंद्रीय सरकार ने जो स्तुत्य कार्य किया है, उसके लिये वह धन्यवादार्ह है।

प्रकाशकीय

अपनी स्थापना के समय से नागरी लिपि एवं हिंदी साहित्य के उन्नयन एव विकास के विभिन्न विधायक सकल्पों के साथ ही नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी के युगनिर्माता मूर्धन्य साहित्यस्रष्टाओं की ग्रंथावलियों का प्रकाशन भी आरंभ किया। हिंदी के सुप्रसिद्ध गंभीर, शीर्षस्थ विद्वानो का सहयोग इस क्षेत्र में सभा को सतत मिलता रहा। फलत तुलसी-ग्रंथावली, सूरसागर (दो भाग), भूषण ग्रंथावली, भारतेंदु ग्रंथावली, रत्नाकर, (कवितावली), पृथ्वीराज रासो, बाँकीदास ग्रथावली, ब्रजनिधि ग्रंथावली और श्रीनिवास ग्रथावली आदि का प्रकाशन सभा ने किया।

अपनी हीरक जयती के अवसर पर सभा ने इस दिशा मे केंद्रीय सरकार की सहायता. से योजनाबद्ध रूप से नूतन प्रयत्न आकर ग्रंथमाला के रूप में आरभ किया। इस ग्रथमाला मे अब तक भिखारीदास ग्रथावली (दो भाग), मानराजविलास, गगकवित्त, पद्माकर ग्रथावली, मतिराम ग्रंथावली, मधुमालती-वार्ता, नागरीदास ग्रथावली (दो खंड), दादूदयाल ग्रंथावली, रसलीन ग्रथावली, कृपाराम ग्रथावली, काव्य प्रभाकर और जसवतसिंह ग्रंथावली का प्रकाशन सभा कर चुकी है। इधर धनाभाव के कारण यह कार्य कुछ शिथिल सा था, किंतु ग्रथमाला का कार्य चलता रहा। सोमनाथ ग्रथावली का दूसरा खंड यत्नस्थ है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

बोधा ग्रंथावली (स०–प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र) एवं ठाकुर ग्रंथावली (स०–श्री चद्रशेखर मिश्र) को शीघ्र ही प्रकाशित करने का हमारा सकल्प है। केंद्रीय सरकार के शिक्षा विभाग की आर्थिक सहायता से यह सकल्प मूर्त हो रहा है। इसके लिये सभा सरकार के प्रति कृतज्ञ है और हमें विश्वास है कि शीघ्र ही इस दिशा मे सभा का स्वप्न पूर्णत. साकार होगा।

इस ग्रंथमाला के पद्रहवे पुष्प के रूप मे 'सोमनाथ ग्रथावली' प्रथम खंड का प्रकाशन हो रहा है। सपादनकला के मार्मिक सुधी प० सुधाकर पाडेय ने अत्यत कार्यव्यस्त रहते हुए भी बड़ी निष्ठा, लगन, अध्यवसाय और मनोयोग के साथ इसका सपादन किया है। प्रस्तुत खड मे कविवर सोमनाथ (ससिनाथ) के 'रसपीयूषनिधि', 'रासपचाध्यायी', 'शृंगारविलास', 'माधवविनोद',

'महादेव जू को ब्याहुलो या ससिनाथविनोद', 'ध्रुवविनोद', 'सुजानविलास', 'दीर्घनगरवर्णन', 'नवाबोल्लास', 'संग्रामदर्पण' और 'प्रेमपचीसी' नाम के ११ छोटे बड़े ग्रंथ संकलित हैं। 'शृंगार विलास'—दो स्थानों पर इस ग्रंथावली में मुद्रित हुआ है। मुद्रण आरंभ के समय जितना अंश प्राप्त था—वह पृ० २६७ से ३१२ तक मुद्रित हुआ। शेष अंश जो बाद में प्राप्त हुआ वह पृ० ५६९ से ६२० तक मुद्रित है। इसका अंत देखने पर ऐसा लगता है कि ग्रंथ का कुछ अंश अब भी शेष है।

सोमनाथ का रसपीयूषनिधि निश्चय ही रीतिकालीन शास्त्रग्रंथों में महत्वपूर्ण कृति है। उस काल की साहित्यशास्त्रीय रचनाओं की विशुद्ध शृंगारी प्रवृत्ति से सर्वथा हटकर शास्त्रीय पद्धति से विषय विवेचन का इस ग्रंथ में आभास झलकता है। अपने विषय-विवेचन-क्रम एवं विषय-निरूपण-पद्धति से यह विस्तृत ग्रंथ सिद्ध करता है कि सोमनाथ में शास्त्रीय ज्ञान और प्रज्ञा की प्रौढ़ता थी। उनका विवेचन शास्त्रपक्ष के निरूपण का बहाना लेकर केवल शृंगारी उद्‌गार प्रकट करने और चित्रकाव्यपरक शब्दार्थालंकार-चमत्कृति प्रदर्शित करने का बहाना नहीं था। काव्यांगनिरूपण में भिखारीदास जी के समान उन्होंने शास्त्रीय पक्ष को ही विशिष्ट महत्व दिया है। विषय को स्पष्ट करने के लिये रसपीयूषनिधि में स्थान स्थान पर (प्रायः उदाहरणों के अनंतर) संक्षिप्त गद्यात्मक टिप्पणियाँ दी हैं। इस ग्रंथ में सर्वप्रथम आवश्यक एवं शास्त्रीय छंदशास्त्र का विवेचन करने के पश्चात् काव्यशास्त्रीय पक्षों के क्रम और निरूपण में भी आचार्यत्व दृष्टि की झलक मिलती है।

साथ ही सोमनाथ अच्छे कवि और काव्यकार भी थे। अपने भावसंदर्भ की स्पष्टता से भाव अभिव्यक्त करने और प्रसादगुणसंपन्नता के कारण बोधगम्य बनाने में रचनाकार को पूर्ण सफलता मिली है। कविताओं में ससिनाथ (सोमनाथ का पर्याय) उपनाम भी इन्होंने प्रयुक्त किया है। भाव की सहज माधुरी, भाषा का स्वच्छ प्रयोग और अभिव्यक्तिशैली की दक्षता के कारण निश्चय ही इनका अलग महत्व है।

इनके ग्रंथों में रीतिकालीन सभी प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। रासपचाध्यायी और महादेव जू को ब्याहुलो या शशिनाथविनोद का भी अपना स्थान है। इन सबमें ऐतिहासिक माधवविनोद का विशिष्ट महत्व है। यह

संस्कृत के मालतीमाधव नाटक का हिंदी रूपातर कहा गया है। इसे प्रेमकथा भी बताया गया है, जो अंको मे विभाजित है और जो पद्यात्मक प्रेमकथा-वर्णन है। इसके आरंभ मे पुरुप-स्त्री पात्रो की सूची भी है। परंतु इसकी शैली सवादात्मक न होकर वर्णनपरक है।

प्रकाशकीय मे मुझे यहाँ विशेष कुछ कहना नही है। कथ्य केवल यह है कि वर्ण्यविषय, वस्तुविस्तार, काव्य-रचना-शैली, आचार्यदृष्टि, कविप्रतिभा, भाषा-प्रयोग और अभिव्यक्तिशैली आदि नाना दृष्टियों से सोमनाथ का रीतिकालीन हिंदी साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। इस ग्रंथावली के यत्नस्थ द्वितीय खंड के प्रकाशित हो जाने पर सोमनाथ के कलाकारस्वरूप का समग्रता के साथ मूल्याकन किया जा सकेगा।

अत: इसके सपादक हमारे ही नही--हिंदी जगत् के भी इस महत्वपूर्ण ग्रंथावली का उत्तम सस्करण संपादित करने के कारण विशेप साधुवाद के पात्र है। हमे विश्वास है कि उनके सत्प्रयास से हिंदी के विद्वानो, शोधकर्ताओं और अनुशीलको को सर्वथा बहुत सी नवीन और प्रकाशित रूप मे अपूर्व सामग्री उपलब्ध हो रही है। आशा है कि विद्वज्जन इसका उचित आदर और पर्यालोचन करेंगे।

गुरुपूर्णिमा--
सवत् २०२६ वि०

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशनमंत्री
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

संपादकीय

रीतिकाल में यह परंपरा बन गई थी कि राजाश्रित कवि रीतिग्रंथ की रचना अवश्य करे। इसमें आश्रयदाता की प्रेरणा ही का मुख्य हाथ होता था। साधारण कवियो ने भले ही आचार्य कहलाने के मोह में पडकर रीतिग्रथ रचे हों, किंतु महान् सभी कवियों ने आश्रयदाता का आज्ञानुवर्ती होकर ही इस कार्य को शिरोधार्य किया। इनमे कुछ ने काव्यशास्त्र के अग विशेष को ही अपना कर छुट्टी पा ली किंतु सस्कृत साहित्य के अधीतविद्य हिंदी कवियों ने प्राय: साहित्यशास्त्र के सर्वांग का निरूपण किया और इसके अधिकारी वे थे भी। यह दूसरी बात है कि उनके अनुकरण पर बाद मे कतिपय सस्कृत से अनभिज्ञ कवि भी सर्वांगनिरूपक का बाना धारण करने का लोभ सवरण न कर सके। सर्वांगनिरूपक समर्थ आचार्यों में श्रीपति, कुलपति, सुखदेव, देव, सोमनाथ, भिखारीदास आदि आते है। सोमनाथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रसपीयूपनिधि मे पिंगल, शब्दशक्ति, रस, दोष, गुण, अलकार, नायिकाभेद आदि सब का बड़ी योग्यता से निरूपण किया है और अपेक्षाकृत गंभीर विषयों के सम्यक् निरूपण के लिये स्थान स्थान पर गद्य का भी भरपूर आश्रय ग्रहण किया है। सस्कृत के समर्थ आचार्य ममट का आभार भी इन्होने सदाशयता के साथ स्वीकार किया है। 'रसपीयूपनिधि' ग्रथ को लिखने के लिये इनके आश्रयदाता महाराजकुमार प्रतापसिह ने इन्हे प्रेरित किया, जिसे ये स्वीकार करते है—

"कही कुँवर परताप ने सभा मध्य सुख पाय।
सौमनाथ हमकौ सरस पोथी देहु बनाय।।"

इस रीतिग्रंथ के अतिरिक्त इन्होने 'शृगारविलास' नामक एक दूसरा रसनिरूपक ग्रथ भी रचा है। यह रसग्रथ आठ उल्लासो मे समाप्त हुआ है। लगता है कि इन्होने इसकी रचना अन्य पूर्ववर्ती कवि आचार्यों की देखा देखी लगे हाथों कर डाली है और इसमे 'रसपीयूपनिधि' का रसवाला बहुत सा

अंश ज्यो का त्यो रख लिया है। ये दो ग्रथ इनके प्रौढ आचार्यत्व के द्योतक है। रीतिकाल के अन्य आचार्यो की तरह ये निरे मुक्तककार ही नही थे, इन्होने अनेक प्रवध भी सफलतापूर्वक रचे है। 'महादेव जी को व्याहुलो या शशिनाथविनोद', 'ध्रुवविनोद', 'सुजान विलास' और 'माधवविनोद' इनके सुदर प्रवध काव्य है। इनमे 'माधवविनोद' 'मालती माधव' का और 'सुजान विलास' 'कथा सरित्सागर' के एक अश का छायानुवाद है, फिर भी ये इनके प्रवधपाटव के अच्छे नमूने है। इन्होने अनुवादकार्य भी प्रभूत मात्रा में किया है। 'वाल्मीकीय रामायण', 'अध्यात्म रामायण', 'श्रीमद्भागवत' का भी इन्होने सुदर अनुवाद किया ह। इस अनुवाद कार्य मे इनकी वृत्ति रमी है। इनके सपूर्ण कृतित्व के देखते हुए कहा जा सकता हे कि ऐसी दृष्टिविशालता सपूर्ण रीतिकाल मे किसी भी कवि मे नही मिलती। जहाँ रीतिकालीन आचार्य केवल शृगार रस की सीमा मे ही आवद्ध रह गए वहाँ इन्होने सभी रसो पर साधिकार श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की है। अव तक इनका वहुत सा कृतित्व अधकार मे ही विलीन रहा है, किंतु इस ग्रथावली के निर्माण मे सलग्न होने पर इनकी सपूर्ण रचना का आधे से अधिक भाग भरतपुर के राजपुस्तकालय से वाहर प्रकाश मे आया।

इस ग्रथावली के प्रस्तुत प्रथम खड में जो ग्रथ लिए गए है, इसकी भूमिका मे केवल उन्ही का परिचय मात्र दे दिया गया हे। इसमे सक्षेप मे जाटवश का प्रामाणिक इतिहास और कविवृत्त भी दे दिया गया है जिससे अव तक की वहुत सी भ्रातियो का निराकरण हो जायगा। दूसरे खड मे आनेवाले ग्रंथो का विवरणात्मक परिचय, कवि का समष्टि रूप मे साहित्यिक कृतित्व और उनके ऐतिहासिक महत्व की चर्चा दूसरे खड की भूमिका मे की जायगी।

श्री डा० विष्णुचद्र जी पाठक ने पाडुलिपि देकर ग्रथावली को पूर्णता प्रदान करने मे भारी योगदान किया है। श्री डा० गिरीशचद्र जी द्विवेदी ने अपना शोध प्रवध "The role of the jats in the history of Mughal empire" मुझे दे दिया था। मैने इनके शोध प्रवध को तैयार करने के लिये सोमनाथ ग्रथावली इन्हे दे दी थी, जिसका उपयोग इन्होने किया। इनका कार्य अच्छा रहा है। श्री डा० मोतीलाल जी गुप्त की पुस्तक "मत्स्य प्रदेश की हिदी साहित्य को देन" का भी थोड़ा वहुत उपयोग मैने किया है। इस ग्रथावली के प्रस्तुत करने मे सर्वश्री

डॉ० नागेंद्रनाथ उपाध्याय, लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' डॉ० रत्नाकर पाडेय, तथा मुद्रण व्यवस्था मे केशरीनारायण तिवारी आदि का भी समय समय पर सहयोग मिलता रहा है। एतदर्थ उपर्युक्त सभी सज्जनों के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

मुझे विश्वास है कि इस ग्रंथावली के प्रकाशन से हिंदी साहित्य का गौरववर्धन हुआ है। साथ ही मुझे आशा है, इसे पाकर विद्वानो, शोधको और शिशिक्षुजनो को परितोप होगा।

श्रावण, २०२६ वि०　　　　　　　　　　सुधाकर पाडेय

निवेदन

सोमनाथ ग्रथावली को पूर्णता प्रदान करने में कतिपय विद्वानों का विशेष योग विस्मृत नही किया जा सकता। हिंदी-साहित्य-समिति, भरतपुर के मंत्री श्री मोहनलाल जी 'मधुकर' ने रामचरित्र-रत्नाकर, राम कलाधर ग्रंथो के साथ महाराज सूरजमल का चित्र दिया था। भरतपुर के राजकीय जिला पुस्तकालयाध्यक्ष श्री मदनमोहन जी शर्मा ने पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रथो की प्रतिलिपि करने की पूरी सुविधा प्रदान की। साहित्यकुटीर, भरतपुर के श्री रावत चतुर्भुजदास जी चतुर्वेदी ने सग्रामदर्पण और शृगार विलास का उत्तरार्द्ध तथा पाँच चित्र देने की कृपा की। श्री विष्णुचद्र जी पाठक ने 'सोमनाथ का वीरकाव्य' नामक निबंध और शृंगारविलास के तेईस टकित पृष्ठ भेजने की सदाशयता प्रदर्शित की। इन सभी महानुभावो के प्रति मै अपना विनम्र आभार प्रकट करता हूँ और इनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

रसपीयूषनिधि के सपादन में आर्यभाषा पुस्तकालय की दो पांडुलिपियों से पाठ गृहीत हुए। इनमे से एक प्रति खडित है। जो प्रति पूर्ण है, उसका लिपिकाल सवत् १८९३ वि० है। इस ग्रंथ का रचनाकाल कविवर सोमनाथ ने सवत् १७९४ दिया है। उसके लगभग सौ वर्ष बाद की यह प्रतिलिपि है। यह बडे सुदर और सुपाठ्य अक्षरो में लिखी गई है। एक तीसरी प्राचीन मुद्रित प्रति भी पुस्तकालय से मिल गई थी। इन तीन प्रतियों के आधार पर इस ग्रथ का सपादन हुआ। अधिकांश पाठ सबमे प्राचीन हस्तलेखवाले ही मान्य एवं गृहीत हुए। पादटिप्पणियो मे दिए गए पाठांतरों में उनकी १,२,३ सख्या देकर तत्तद् प्रति के पाठों के निर्देश यथास्थान कर दिए गए है।

रास पंचाध्यायी की एक पांडुलिपि और दूसरी भारतवासी प्रेस, दारागंज, प्रयाग से प्रकाशित प्रति मिली। मुद्रित प्रति मे पं० ओंकारनाथ जी पांडेय की एक सुंदर भूमिका भी सलग्न है। इन दोनों मे पांडुलिपिवाला पाठ ही

विशेष समीचीन प्रतीत हुआ और वही गृहीत भी हुआ है। अन्य ग्रंथों की एक-ही-एक पाडुलिपि के आधार पर संपादन कार्य संपन्न करना पड़ा है। **प्रेम पचीसा** की एक खंडित पांडुलिपि सभा के पुस्तकालय में है, जिसमे कुल २१ ही छंद है। इसकी मुद्रित प्रति भरतपुर से मिली थी, जिसमें कुल २७ छंद है। उसी मुद्रित प्रति के आधार पर इसका संपादन हुआ है।

—संपादक

विषयानुक्रम

प्रस्तावना

—o—

देशकाल

हिंदी साहित्य के मध्यकाल का इतिहास इस देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियो का परिणाम है। साहित्य एकातिक कृति होते हुए भी, अपने देशकाल की चेतना के आलोक से जीवत एव प्रभावान सामाजिक रचना है। हिंदी साहित्य ही नही, विश्व का प्रत्येक जीवंत साहित्य इस तथ्य का साक्षी है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि हमारे साहित्य की अनन्य श्री सपदामय विभूतियो की कृतियाँ इसका प्रमाण है। भक्ति एव सत साहित्य की महान रचनाओ के उपरात मध्य काल के उत्तरार्ध में हिंदी साहित्य की धारा जिस रूप से प्रवहमान हुई आचार्य कविवर सोमनाथ उसके एक प्रभोज्वल नक्षत्र है। उनके देश काल और जीवन की मर्माति वाणी उनके साहित्य का अमृत है।

भारत मे मध्यकाल का प्रारभ देश मे मुस्लिम सत्ता, सभ्यता और संस्कृति के प्रवेश के साथ आरभ होता है। इस सभ्यता और सस्कृति का मूलाधार पश्चिमी मध्येशिया मे इस्लाम की छाया मे विकसित सस्कृति थी, जो वहाँ के शताब्दियो के आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक स्थिति के परिणामस्वरूप मूर्त्त हुई थी। उस समय भारत की सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति उससे सर्वथा भिन्न थी और प्रवर्द्धमान मुस्लिम सभ्यता की अपेक्षा उसकी जीवनीशक्ति क्षीण हो चली थी। इसलिये शासन के सामने एक विपम स्थिति थी। यद्यपि इतिहास मे एक से एक महान मुस्लिम योद्धा और प्रशासक हुए तो भी अकबर[1] के पूर्व तक एक भी ऐसा कुशाग्र राजनीतिज्ञ क्रानदर्शी मुस्लिम शासक न हुआ जो तात्कालिक सामाजिक स्थिति पर पूर्ण नियत्रण स्थापित कर पाता। यद्यपि अकवर द्वारा स्थापित व्यवस्था देश में सैकड़ो वर्षो तक चलती रही तो भी औरगजेव के समय तक उस व्यवस्था में

---

१. शासनकाल—सन् १५५६-१६०५ ई०।

नवोन्मेषशाली भावतत्व के अभाव के कारण घुन लग चुका था और औरंगजेब की मृत्यु के बाद का मुगलो का इतिहास पतन की कहानी का प्रतिपग बढता हुआ चरण है। नादिरशाह के हमले ने (सन् १७३८-३९ ई०) तो मुगल साम्राज्य की जड ही सर्वथा पोली कर दी। योरोपियनो का मन इस घटना से बढना आरभ हुआ और अततोगत्वा प्लासी[1] के मैदान मे मुगलो के भाग्य का निपटारा सदा के लिये हो गया। और उसके बाद कुछ ही वर्षो मे अग्रेजों की पूर्ण सत्ता इस देश मे स्थापित हो गई।

भारतीय मध्यकालीन समाज मे लोकजीवन पर राजा, राय और ठाकुर तथा जागीरदारो का प्रभुत्व था। राजा, राय, ठाकुर ही वशानुगत संपत्ति के स्वामी थे और इन्हे जमीदार के नाम से सबोधित किया जाता था। दूसरा वर्ग जागीरदार के रूप मे था। इन राजाओ (राय और ठाकुर) और जागीरदारो (इक्तिदार) का प्रभुत्व सामाजिक जीवन पर प्रभावशाली रूप से था। इनका जीवन किसानो के अतिरिक्त उत्पादन पर जीवित और प्रवर्द्धित था। इनमे जहाँ प्रथम की स्थिति वशानुगत थी, वहाँ दूसरे वर्ग की स्थिति सामयिक।[2] तुर्को के भारत प्रवेश पर भी तत्कालीन राजनितिक स्थिति के कारण उनकी स्थिति यथावत् बनी रही और वे जहाँ एक ओर राज्य को कर देते रहे, वही दूसरी ओर इन्हे स्थानीय प्रशासकीय कार्यकर्ताओ को प्रशासन में सहायता भी देनी पडती थी। इन्हे सैनिक तथा सामयिक सहायता भी शासन को करनी होती थी। ये जमीदार मूलत शोषण वृति के अवसरवादी शक्ति थे जो कठिनाइयो के समय शासको की सहायता करने के स्थान पर प्राय: उनके लिये समस्या बन जाते थे और यहाँ तक कि ऐसे समय ये दूसरो की भूमि और सपत्ति का अपहरण कर लेते और विपत्ति के समय अपने शासन को कर तक न देते थे। अपनी जमीदारी मे स्थित प्रजा के प्रति इनका आचार व्यवहार शोषक का था और नियत तथा वाछित करो के अतिरिक्त उनसे हारी बेगारी तो वे लेते ही थे उनकी सपत्ति और शील पर इच्छानुसार निरकुशता पूर्वक अधिकार तक जमा लेते थे, पर उनकी सुख सुविधा के लिये वे सामान्यत: कुछ भी न करते थे। इस प्रकार दिनोत्तर निर्धन होनेवाले किसान की भावना इनके कुकृत्य के कारण अतर से शासन के प्रति स्नेह और सहानुभूति की न रह

१ प्लासी का युद्ध—सन् १७५७ ई०।

२. पार्टीज एड पौलिटिक्स एट दी मुगल कोर्ट—डा० सतीश चद्र

पाती थी। ये जमीदार शासक के स्थायी प्रतिनिधि होते थे और इनके प्रति व्याप्त असतोष का प्रभाव शासन पर निरतर पड़ता था।

प्राय: सभी शासको की छाया मे ये अपने समयोपयोगी कार्यो द्वारा बने रहते थे। इनके द्वारा उत्पन्न कुपरिणामो की ओर मुगलो का ध्यान गया और अपनी सत्ता स्थायी करने के लिये उन्होने अनेक नव यत्न किए।

ये राजा या जमीदार केवल कोरे भूमिपति ही नही होते थे, ये अपनी जाति और क्षेत्र के अनेक अर्थो मे नेता भी थे। इसलिये सामान्यत: शासन इनके कार्यो में हस्तक्षेप करने मे हिचकता था कि कही ये कुसमय सत्ता के प्रति घात न कर बैठें। फिर भी मुगलों ने इनकी शक्ति को सीमित करने का यत्न किया। अवसरवादी तथा अविश्वस्त जमीदारो को उन्होने संपत्तिच्युत कर दिया। उनके स्थान पर नए जमीदार बसाए और बड़ी बड़ी जमीदारियो को उन्होने खंड खंड कर विकेंद्रित कर दिया। इसके साथ ही केवल वर्गविशेष के (राजपूत, जाट, गूजर, अफगान) लोगो को एक क्षेत्र में समूहगत या वर्गगत न रहने देकर उनके बीच बीच मे अन्य वर्गो के लोगो को भी जमीदार बनाया। इस प्रकार जातिगत एका की शक्ति मे उन्होने जहाँ एक ओर दरार पैदा की, वहीं अनेक प्रकार के आचार व्यवहार के लोगो मे एक साथ रहने की आदत भी उत्पन्न की। इसका परिणाम सास्कृतिक एका के रूप में प्रकट हुआ और षड्यन्त्रगत तत्वो का शनै. शनै: उन्मूलन आरभ हुआ। साथ ही केवल जमीदारों पर निर्भर न रहकर, प्रान्तो और परगनों के स्तर पर स्वतत्र निजी प्रशासनिक संगठन द्वारा जनता से सीधे सपर्क स्थापित करने का प्रयत्न अकबर ने सफलतापूर्वक आरभ किया। सरकारी नौकरी का द्वार सबके लिये खोल दिया गया और मनसबदारी प्रथा की स्थापना की गई। इससे जमीदार पूर्व की शक्तिशाली स्थिति मे न रह गए। तो भी मध्यभारत, राजपूताना, पहाडी और दक्षिणी क्षेत्रो मे इनकी अजेय स्थिति बनी रही, यद्यपि शक्तिशाली शासन होने के कारण सम्राट की केंद्रीय नीति का वे खुलकर विरोध नही कर पाते थे।

समय समय पर वे भूपति लोग धर्म और भाषा को भी अपने स्वार्थसाधन मे प्रयुक्त करने मे हिचकते न थे और इनके माध्यम से ये कभी कभी भयकर क्षेत्रीय भावना भी स्वार्थ के लिये पैदा कर दिया करते थे। यद्यपि भक्तो, सतो एवं सूफियो के आंदोलनों से इस दुर्भावना को क्षति पहुँची तो भी तज्जनित

वर्गो और संप्रदायो के माध्यम से हिंदू और मुसलमान दोनो से ये अपना स्वार्थसाधन करा ही लेते थे।

अकबर ने प्रशासनिक सुविधा के लिये भाषागत और परपरागत आधार पर नवीन प्रातो का गठन किया तथा स्थानीय लोगो को भी प्रशासन मे स्थान दिया। इनमे से अधिकाश की रुचि स्थानीय परपराओ और सस्कृति को विकसित करने की थी, जिसका भविष्य मे दुष्परिणाम यह हुआ कि अपनी परपरा को श्रेष्ठ और उच्च बनाने के लिये दूसरो की परपरा और सस्कृति पर ये घातप्रतिघात करने लगे। अकबर का यह मूल ध्येय कि इन सबके समिश्रण से एक सुसगठित समसामासिक नयी संस्कृति का निर्माण किया जाय, धीरे धीरे विलुप्त होने लगा। इस प्रकार जमीदारो ने जहाँ किसानो और श्रमिको का शोषण किया, व्यापार के समुचित सरक्षण तथा शातिमय प्रवर्धन मे वाधा डाल उसकी गति को कुठित किया, वही क्षेत्रीय, वर्गीय, संप्रदायगत भावनाओ को उभाडकर देश की सास्कृतिक और भौगोलिक एकता को क्षतविक्षत करने का भी दुष्कर्म किया। किसान और सामान्य व्यापारी के प्रति भी, जिनकी अतिरिक्त कमाई के शोषण पर उनकी विलासलीला चलती थी, उन्होने प्राय सोने के अडेवाली कहावत ही चरितार्थ की।

जागीरदार जमीदारो के वाद दूसरा वर्ग था जो सरकार के लिये कर उगाहने का कार्य करता था। उसे जागीर की आय से केद्रीय प्रशासन के लिये अपनी सेना तो रखनी ही पडती थी, नियत कर देने के वाद, उसे अपना खर्च भी उससे ही निकालना पडता था। जमीदार और इनमे अतर यह था कि पहले को जहाँ वशानुक्रम से सपत्ति का उत्तराधिकार मिल जाता था, वहाँ जागीरदार की नियुक्ति सम्राट् की स्वेच्छा पर होती थी और जागीरदार की सेवाएँ स्थानातरित भी की जा सकती थी। जागीरदार को भूमि के स्वामित्व पर किसी प्रकार का अधिकार न था। जागीरदार को किसानो से सीधे कर वसूलने का अधिकार मात्र प्राप्त था। केवल कृषि ही नही, सभी प्रकार के क्षेत्रीय करों के वे संग्रहाधिकारी होते थे। इस प्रकार मूलत इनकी गणना सम्राट्मुखापेक्षी सेवको मे की जानी चाहिए। मुगलो के समय मे इस नए शक्तिशाली वर्ग का उदय हुआ और प्रारभ मे इनकी सेवाओ के परिणामस्वरूप किसानो तथा व्यापारियो के हित मे सुधार भी हुए तथा शासन को लोकसपर्क का स्वतत्र, सगठित, दृढ आधार भी मिला। नई नई भूमि पर खेती भी आरभ हुई। आवश्यकतानुसार किसानो को तकावी भी मिलने लगी तथा दैवी आपदा के समय इन्हे राजकीय सहायता भी प्राप्त होने लगी। धीरे धीरे इस प्रथा मे भी

बुराई आरभ हुई और विलासिता ने कार्यदक्षता का, व्यक्तिगत रागविराग और सबध ने योग्यता का तथा प्रजाहित की मूल भावना ने व्यक्ति के तात्कालिक स्वार्थ का स्थान लिया। शासन के कोष से स्वय मालामाल होने का उपाय भी इनके द्वारा आरभ हुआ और बाद में प्रशासन मे वर्गवाद उत्पन्न होने पर अपने पक्ष को शक्तिशाली बनाने के लिये दलपतियो ने इनके दुष्कृत्यों को बढावा भी दिया। जमीदारो और शासन के बीच मे अन्य जो प्रशासनिक छोटे मोटे अधिकारी थे, वे भी इन्ही के रास्ते लगे। फलत प्रशासनिक एकता के स्थान पर सामाजिक तथा आर्थिक धरातल पर दो वर्गों की स्पष्ट अवतारणा हुई। उत्पादक तथा प्रशासक दो वर्गों मे समाज विभक्त हो गया। मूल शोषण किसानो और व्यापारियों का था। उनकी समस्त अतिरिक्त आय का उपयोग वे लोग करने लगे जो मूलत पुरुषार्थ और सेवा के स्थान पर विलासिता को जीवन का चरम साध्य मान बैठे थे। इसका दुष्परिणाम यह भी हुआ कि समाज मे उत्पादक पूँजी का भी निर्माण न हो पाता था। फलत शाहजहाँ के अतिम समय से ही शासन को अर्थसकट का अनुभव करना पड गया था। इसलिये इन नए वर्गों की स्थापना का अकबर का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो गया।

समाज के उच्चवर्ग मे अमीर, उमराव लोग थे। इनपर समाज के निर्माण का नैतिक भार था। अकबर ने दूरदर्शी विचारक की भाँति उन्हे सुसंगठित रूप देकर स्वकर्तव्य के प्रति जागरूक किया। मनसवदारी प्रथा की जिस वैज्ञानिक दृष्टि से उसने रचना की, वह अपने मे पूर्ण थी तथा उसके द्वारा सम्राट् ने समर्थ लोगो का एक सुसगठित समाज स्थापित किया। प्रारभ मे ये कुछ अर्थों मे स्वतत्र थे। किंतु धीरे धीरे ये प्रशासनिक कर्मचारी के रूप मे विकसित हुए। इनकी अपनी एक सहिता थी, जिसके माध्यम से इनका वेतन, अधिकार और पदोन्नति होती थी। धीरे धीरे वशपरपरा द्वारा मनसवदारी की उपलब्धि ने योग्यता का तिरस्कार आरभ किया। यद्यपि यह सगठन जाति, धर्म और संप्रदायनिरपेक्ष था तो भी शासन मे बाद मे चलकर वर्गविशेष की सत्ता की स्थापना के साथ, योग्यता का बिना ध्यान रखे ही, सत्ता से सबद्ध लोगो की उन्नति की जाने लगी। परिणाम यह हुआ कि अयोग्य लोग मनसवदार होने लगे और जितनी सेना उन्हे अपने पद के अनुरूप रखनी चाहिए, उतनी न रखकर भी, वे उच्चपद के अधिकारी हो जाते थे। ऐसे अयोग्य लोगो का वर्ग समय समय पर शासन मे सत्तारूढ हो जाता था, फलतः शासन की शक्ति क्षीण होने

लगी। इसलिये प्रारभ मे जहाँ राजपूत, बुदेले, जाट, पहाडी राजा, ईरानी, तुर्क, उजबेक, अफगान सभी क्षेत्रो के योग्य लोग मनसवदार थे, वही धीरे धीरे वर्गविशेष के अयोग्य लोगो की सख्या शासन मे वढने लगी और शासनचक्र मे व्यापक दृष्टि का स्थान सकुचित स्वार्थ ने ग्रहण कर भेदमूलक स्थिति उत्पन्न की तथा प्रतिस्पर्द्धापूर्वक जातीय गुणो के विकास की भावना को नष्टकर छलछद्म का प्रभुत्व स्थापित किया। जहाँ पहले देशी और विदेशी तथा कश्मीर से लेकर दक्षिण तक के लोग प्रेम और सद्भावपूर्वक रहते थे, जहाँ अवीसीनिया, तुर्की, मिस्र और अरव से लेकर ईरान और तूरान तक के लोग शासन को एक साथ दृढ बनाने का यत्न करते थे, और जहाँ हिंदू और मुसलमान विना भेदभाव के, अपने धर्म मे अडिग आस्था रखते हुए भी शासन की सत्ता को सर्वोच्च समझ उसके उन्नयन और विकास के लिये प्राणपण से सचेष्ट रहते थे वही इस स्थिति ने देशी और विदेशी की, एक जाति से दूसरे जाति की, एक संप्रदाय से दूसरे सप्रदाय की, यहाँ तक की शिया से सुन्नी तक की, परमविश्वासपात्र राजपूतो की मुगलो से और एक संप्रदाय से दूसरे सप्रदाय के बीच खाई बना दी, जो दिनोत्तर वढती ही गई। पौरुप से छलछद्म अधिक समर्थ सिद्ध हुआ और राजनीतिक दुश्चक्र ने नैतिकता को तिलाजलि दिला दी। फलत शासनतत्र, पड्यत्र और कुनवापरस्ती का आगार बन गया और सर्वत्र सिक्खो से लेकर मराठो तक, मुगलो से लेकर पठानो तक, बुदेलो, जाटो से लेकर राजपूतो तक, स्वार्थ ने ऐसा वीज बोया कि सारी प्रशासनिक दृढता, राष्ट्रीय एकता, सास्कृतिक सद्भाव देश से कपूर की बास की भाँति उड गया और अपने सकुचित क्षेत्र मे सर्वत्र सघर्प, अविश्वास, मिथ्या आचार व्यवहार ने अपना विघटनात्मक भयकर कुप्रभाव सारे समाज में फैलाया। ऐसी स्थिति मे धर्म भी इतने सवल न रह गए थे कि लोक और समाज की रक्षा कर सकते।

हिंदूधर्म और सस्कृति ने देश को अपने अजेय आत्मिक तत्वो से सूत्रवद्ध कर रखा है किंतु मध्यकाल मे उसका रूप भी ओजस्वी न रह गया था। राम और कृष्ण की अवतारणा से जहाँ समाज को त्राण मिला था, विपम तमपूर्ण स्थिति को चेतन दृष्टि मिली थी, वही उनका विमल रूप व्यक्तियो ने स्वार्थवश परम कुत्सित बना दिया था। शील, शक्ति, सौदर्य के आगार मर्यादापुरुषोत्तम राम रसिया बना दिए गए थे। परम सतीसाध्वी सीता विलासलीला रचाने

लगी थीं। योगीश्वर कृष्ण का वह रूप दृष्टि से ओझल हो गया था जिसके वल पर धरा को आसुरी वृत्तियों से मुक्त कराया गया था। वे अब राधा के छलिया प्रेमी के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। राधा के प्रति लोगो की रुचि शक्ति की अधिष्ठात्री के रूप में न रहकर रतिलीला की नायिका के प्रतीक के रूप मे हो गई।

समाज में नैतिक मूल्यों को स्थिर रखने तथा उनके माध्यम से लोगों को उत्प्रेरित कर सत् पथ की ओर अग्रसर करने का कार्य समाज में उन लोगो का होता है, जो स्व को स्वाहा कर, युग को प्रकाश प्रदान करते है। ये धर्म के मूल स्तभ जनसमाज को चेतना प्रदान करने के स्थान पर स्वय विलास के लीलाचक्र मे खो चुके थे। साधना एव तपस्या से इनका नाता रिश्ता नही रह गया था। विलासिता और भोग इनके जीवन का आराध्य हो गया था। धर्मप्राप्त जनता जो गरीबी और शोषण से त्रस्त थी, इनकी शरण मे भी आश्वस्त न हो सकी। पर उनकी विलासिता के समस्त आर्थिक साधनों का भार उनके ही ऊपर पडता था। इस प्रकार सम्प्रदायो, मठों, मंदिरों का सारा व्ययभार उठाकर भी जनता को वहाँ शाति नही मिल पाती थी और न किसी प्रकार का पथप्रदर्शन ही उसे वहाँ से प्राप्त था। इस प्रकार राजा से लेकर युग के धर्म के ठीकेदार तक विलासिता के रंग में रजित हो चुके थे और उन्हे अपने समाज, दीन, धर्म, ईमान किसी की चिन्ता नही थी।

ऐसी स्थिति मे मानस के संस्कारकर्ता साहित्यकार का उत्तरदायित्व परम गहन हो जाता है। साहित्यकार ही क्यो, सगीत एवं कला के उन्नायकों का भी कृतित्व ऐसी परिस्थिति मे समाज को उत्प्रेरित कर सकता है। कला और संगीत सभी युगो मे सामान्य जन सुलभ नही रहा है। सगीत एक सीमा तक तो प्रत्येक युग में व्यापक रहा है, किंतु कला धनाकांक्षिणी है और धन पर आधृत तत्व, धनिकों की विभूतिप्रदर्शन की कामना के कारण, उनकी आकाक्षा के गुलाम रहते है।

देश मे उस युग की कला का रूप स्थापत्य एवं चित्रकला में सरक्षित है और तत्कालीन सगीत के विकास का इतिहास उसकी वस्तुस्थिति का आज भी उद्घाटन करता है।

उस युग की इन सभी कलाओं का विकास राजाओ, सामतो एवं जागीरदारो के संरक्षण मे हुआ जो इनकी विलासितापूर्ण अलकारी वृत्ति की उद्घोषणा करते है। तीनों राजस्थानी, पहाड़ी तथा मुगल चित्रशैलियाँ

यत्किंचित अंतर के साथ उन्ही मूल वृत्तियो का पोषण और संरक्षण करती मिलती है जो उस युग के विलास वैभवपूर्ण समाज मे परिव्याप्त थी। हाँ कही कही स्थानीय वातावरण के चित्रण के दर्शन अवश्य मिल जायेंगे किंतु ये प्राचलिक प्रतिवाद भी स्वल्प ही है। इन चित्रो मे पौराणिक उपाख्यानो से सबद्ध चित्र, नायक नायिका भेद के चित्र, रागरागिनियो के चित्र तथा व्यक्तियो के चित्र बहुत बडी सख्या मे मिलेगे। पौराणिक उपाख्यानो मे चित्रकारो का केंद्रबिंदु वे ही उपाख्यान बने जो अलकार से बोझिल तथा दैहिक आकर्षण से उद्दीप्त है। अन्य चित्रो मे भी अलकरण का बोझ जहाँ सहज सौंदर्य को ढकता हुआ मिलेगा, वही चित्रो की भावभगिमा उद्दाम मादकता से पूर्ण मिलेगी। रागरागिनियो के चित्र भी इन्ही तत्वो से मडित मिलेगे। ऋतुचित्रण के चित्र भी इन्ही भावनाओ से पकिल है। उनमे आकर्षण है, पर सहजता नही। उनमे काम की आग है, किंतु कला की ओजस्विता नही। उनमें प्रदर्शन का आकर्षण है, किंतु अतर के आरक्षण की सात्विकता नही। उनमे काम का मद और रूपवकिमता की माधुरी है, पर सतीत्व की शीतल काति नही। उनसे विलास की उद्दाम कामना है किंतु आनद का प्रवाह नही। उनमे भोग का भस्मासुर है पर शक्ति का शील नही।

इससे अधिक की आशा भी उस युग मे उनसे नही की जा सकती थी क्योकि जिनके सरक्षण मे ये कलावत जीवन पाते थे, उन सबकी दृष्टि दिल्लीश्वर को अपना आराध्य मानती थी। उनकी अनुकृति ही उनके जीवन का चरम साध्य थी। जिस भाँति के रहन सहन, आचार विचार और कला-सरक्षण तथा निर्माण के वे पोषक थे उसी रुचि को विधायक मानकर उन्ही की अनुकृति पर दिल्ली दरबार से सबद्ध अमीर और मनसबदार कला का स्वरूप अपने यहाँ सामान्यतः गठित करते थे। मुगलदरबार इन सबकी प्रेरणा का केंद्र था। छोटे छोटे सामत बडे सामतो की अनुकृति करते थे अर्थात् सर्वत्र कला के क्षेत्र मे चमत्कारपूर्ण आलकारिक, परपरागत, प्रदर्शनपूर्ण तथा कामैषणामय चित्रो का निर्माण होता था। यह क्रम हस्तलेखो और पाडुलिपियो के निर्माण मे भी दृष्टिगोचर होता है। धार्मिक चित्रो और भित्ति चित्रो मे भी इन्ही तत्वो का उभार मिलता है और तबतक यह क्रम चलता रहा, जबतक कि उन अमीर उमरावो का, मुगल साम्राज्य का आर्थिक और प्रशासनिक पतन नही हो गया।

संगीत के क्षेत्र में मुगलों के आगमन के पूर्व भारतीय संगीत चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। ध्रुपद जैसे गभीर और विशद शैली का प्रचलन ग्वालियर-नरेश मानसिह के सरक्षण मे हो चुका था। उसका शास्त्रीय पक्ष और कलापक्ष दोनो ही अपनी गरिमा के शीर्ष पर थे। अकबर के दरबार तक सगीत का मान नही गिरने पाया किंतु उसके बाद मुसलमानो का भी सगीत के क्षेत्र में व्यापक पैमाने पर प्रवेश आरभ हुआ। सगीतशास्त्र के क्षेत्रमें पुंडरीक विट्ठल और गायन के क्षेत्र मे तानसेन अकबर के दरबार के दो शृग थे। जहाँगीर[1] के समय तक सगीत की स्थिति यथोचित रूप से जीवत थी और दामोदर पंडित-कृत सगीतदर्पण जैसे गौरवशाली ग्रथ की रचना इस क्षेत्र में मुगल दरबार का एक महत्वपूर्ण योग है। दिनोत्तर सगीत मे अलकरण और मिश्रण की वृत्ति बढती गई तथा कोमल राग-रागिनियो को विशेष प्रश्रय प्रात होता गया। सगीत के माधुर्य का उपयोग और प्रयोग बढता गया। सामतो के संरक्षण मे रहनेवाले कलाकारों का जोर इतना बढा कि आर्थिक सकट मुगल साम्राज्य के समुख उपस्थित होने पर औरगजेब[2] ने सगीत के राजकीय व्यय मे कटौती की, यहाँ तक कि एक प्रकार का प्रतिवध ही सगीत पर लग गया था।[3] नवाबो, अमीर, उमरावो के सरक्षण मे सगीत कला को प्रश्रय मिला और वहाँ उनकी सीमित रुचि के अनुसार ही उनके यहाँ उसका पल्लवन हुआ। यद्यपि राजाओं के भी प्रश्रय मे भावभट्ट जैसे उत्कृष्ट सगीतशास्त्रज्ञ तथा रचनाकार इस युग में हुए तो भी सगीत में मौलिक उद्भावनाओ का क्रम समाप्त सा हो गया। सगीत में भी अलंकार युक्त चमत्कारिक प्रयोग और कामोद्दीपक अनुरजन की छिछली वृत्ति ने मूल स्थान प्राप्त किया और दिनोत्तर मुगल साम्राज्य के पतन तक यह वृत्ति बराबर कामुकता से सलिप्त हो जीवित रही तथा सगीत भी विलासिता का एक साधन मात्र था। इस प्रकार सगीत आत्मा की चेतना को आनदविलसित करने का माध्यम न रहकर व्यक्तिरजक कामुक भावभगिमा से दिनोत्तर पकिल होता गया।

स्थापत्यकला के क्षेत्र मे मुगलो की देन परम गौरवशालिनी है। उपयो-

---

१. शासनकाल——सन् १६०५–१६२७ ई०।

२. शासनकाल——सन् १६५८–१७०७ ई०।

३ औरगजेब——यदुनाथ सरकार।

गिता, गभीरता, विशदता और व्यापकता आदि मुगल स्थापत्यकला के मूलाधार थे। गरिमा के साथ सहज सतुलित गभीर प्रभाव तत्कालीन स्थापत्यकला की चेतना के प्राण थे। किंतु अकबर के शासन के सुदृढ होते ही अलकरण और पच्चीकारी ने इस क्षेत्र में अपना स्थान ग्रहण किया और दिनोत्तर इनका प्रभाव बढता गया। इसका सर्वोत्तम दृष्टात ताजमहल है। शाहजहाँ तक स्थापत्यकला मे मौलिकता थी किंतु प्रभावाकर्षण और अलकरण की प्रवृत्ति जहाँगीर के समय से ही उपयोगिता, गभीरता और सहज भव्यता की अपेक्षा प्रदर्शन, कोमलता और लालित्य की ओर बढती गई। तत्कालीन भवनो मे पच्चीकारी तथा विलासपूर्ण भित्तिचित्रो, यहाँ तक कि रत्नालंकरण की वृत्ति का भी दर्शन होता है। साथ ही इसके विकास के लिये अतुल सांपत्तिक साधन की भी अपेक्षा होती है। ताजमहल के निर्माण तक इस साधन का प्रयोग हुआ किंतु शाहजहाँ के ही जीवन के अतिम दिनो मे ही मुगल साम्राज्य की आर्थिक स्थिति ऐसे निर्माणो के लिये सक्षम न रह गई थी। मुगलो की देखादेखी अन्यत्र भी भव्य प्रासादो का निर्माण हुआ किंतु औरगजेब के बाद इस क्षेत्र में कोई विशेष उल्लेखनीय कृति मुगलो सी समुख नही आई। पर अन्य उसका अनुकरण अपनी शक्ति और सीमा भर करते रहे।

इस प्रकार स्थापत्यकला मे भी अनुकरण, कोमलता, विलासिता, आलंकारिता तथा प्रदर्शन का आधिक्य इतना हुआ कि उसे उदात्त नही माना जा सकता तथा ये निर्माण लोकपरक न होकर व्यक्तिपरक हो उठे; भले ही कुछ मदिर और मस्जिद इसके अपवाद माने जायँ।

साहित्य का क्षेत्र भी इसी भाँति का ही रहा। हिंदी साहित्य का निर्माण अवधी और व्रज मे मुगल शासन की स्थापना के तत्काल उपरात हो रहा था और दिनोत्तर उसमे भी उन्ही प्रवृत्तियो का उन्नयन, पल्लवन और विकास हुआ जो कला के अन्य क्षेत्रो मे भी परिव्याप्त थी।

श्रेष्ठ साहित्यनिर्माण के लिये उन्मुक्त वातावरण साहित्यकार की आधारभूत आवश्यकता है। आश्रय का सकोच इस निर्माणप्रक्रिया मे मौलिक रचना के लिये सीमा का अवरोध उत्पन्न करता है। उस युग मे साहित्यकार के लिये उपलब्ध साधन नाना प्रकार के थे। मुगलो की सत्ता की स्थापना के आदिकाल मे स्रष्टा सामान्यत उन्मुक्त था और उसका आश्रयदाता भी उदारमना शासक था या वह लोकाश्रित था। लोकाश्रय के अतिरिक्त सप्रदाय का आश्रय भी सुलभ था।

१ शासनकाल सन् १६२७—१६५८ ई०।

लोकाश्रय मे रचित साहित्य सदा से उत्कृष्ट होता चला आया है और मुगलकाल के ही तुलसीदास का 'रामचरित मानस' उसका सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। आश्रय की विशिष्टता का प्रभाव रचनाकार की जीवनीशक्ति का निर्माता होता है। इस तथ्य का सारा प्रमाण मध्यकाल का हिंदी साहित्य है।

जिस समय मुगलों की सत्ता स्थापित हुई, उस समय फारसी, तुर्की और अरबी का उनके व्यक्तिगत आचार व्यवहार में जोर था। किंतु बाबर के विजयोत्सव मे इब्राहीम लोदी की हार पर किसी हिंदी कवि का यह स्वर गूँज ही उठा--

'नौ सौ ऊपर था बत्तीसा, पानीपत में भारत दीसा।
अठई रज्जब सुक्करबारा, बाबर जीता बराहीम हारा॥'[१]

और इस महान् तुर्क को 'पानी व रोटी' का बोध यहाँ हुआ। मुगलो को यह जानते देर न लगी कि यदि इस मुल्क मे अपने शासन को स्थायी करना है तो इस देश की भाषा को जानना, सुनना और समझना होगा। इसलिये हुमायूँ[२] के दरबार मे हिंदी कवियो का समान आरभ हुआ। शेख अब्दुल वाहिद बिलग्रामी और गदाई देहलवी जैसे फारसी के कवि हिंदी मे भी रचनाएँ करते थे और छेम जैसे हिंदू कवि भी उसके दरबार मे थे।[३] हुमायूँ के उपरात शेरशाह शासक हुआ। वह स्वत. हिंदी का कवि था[४] तथा उसकी मुद्राओ और फरमानो पर नागरी अक्षरो का प्रयोग होता था। शेरशाह के समय में ही जायसी जैसा अवधी का परम श्रेष्ठ कवि हुआ। वह भले ही सम्राट् का आश्रित नही था, तो भी उसने जी खोलकर सम्राट् के गुणो की प्रशंसा की है[६] और सम्राट् के औरस असलेमशाह[७] स्वयं व्रजभाषा के कवि थे। शेरशाह सूरी की ही भाँति अकबर भी भारतभूमि की संतान था। हिंदी

१. मुगलकालीन भारत (बाबर)--सय्यद अतहर अब्बास रिजवी।
२. शासनकाल--सन् १५३०-१५४० तथा १५५६ ई०।
३. शिवसिह सरोज--नवलकिशोर प्रेस, सप्तम सस्करण, पृ० १०२।
४. शासनकाल--सन् १५४०-१५५५ ई०।
५ उपमान--'फरीद'।
६. जायसी ग्रथावली, (अखरावट)--रामचद्र शुक्ल, पृ० ३८६।
७. सगीत राग कल्पद्रुम, खड १।

कवियो को उसने जो समान और आश्रय दिया वह किसी भी उसके पूर्ववर्ती मुगल सम्राट् के समय सभव न हो सका और यहाँ तक कि रीझकर नरहरि वदीजन जैसे कवि की पालकी ही उठा बैठा ।[१] अकवर परम निष्णात दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था । वह जानता था कि कवि और भाषा का किसी राज्य और प्रशासन मे क्या महत्व है । भले ही उसने फारसी को शासन की भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया तो भी उसके नवरत्नो मे टोडर, बीरवल, तानसेन, रहीम, सनोम, अबुलफजल सभी हिंदी मे भी कविता करते थे[२] और 'नरहरि' वदीजन के काव्यानुरोध पर उसके द्वारा गौहत्या तक वद कर देने की बात इतिहास-विदित है ।[३] अकवर के दरबार मे अधिकाश प्रशासक हिंदी के कवि तो थे ही, वे हिंदी कवियो के उन्मुक्त आश्रयदाता भी थे । उनके हृदय मे गगा, यमुना और कृष्ण के प्रति भी प्रेम और स्नेह की बात थी । इन्होने छदो मे विशिष्ट सफल प्रयोग भी किया । इनकी देखा देखी हिंदी काव्य को अमीरो और उमरावो सबके यहाँ समान मिला और हिंदी कवियो को समानजनक आश्रय भी ।

जहाँगीर की जननी और जन्मभूमि दोनो हिंदी थी । वह हिंदी का रचनाकार[४] तो था ही हिंदी को उसने प्रोत्साहन और प्रश्रय भी दिया । वह हिंदी कवियो को दान और मान दोनो देता था ।[५] उसका भ्राता दानियाल भी अहले हिंदी 'ब्रजभाषा' का कवि था । जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ को इस क्षेत्र मे हम और आगे पाते है । वह हिंदी का दक्ष कवि था और जन्मजात 'हिंदवी' था । यहाँ तक कि वह तुर्की जानता तक न था ।[६] हिंदी के भाडार को वह सपन्न करना चाहता था । उसके समय मे सारे मुगल साम्राज्य की लोक एव सपर्क भाषा ब्रज थी । वह हिंदी के साहित्यकारो का कद्रदाँ भी था । पडितराज जैसी उपाधियो से वह अपने विद्वानो, सगीतज्ञो और कवियो का समान करता था । वह हिंदी मे पत्राचार भी करता था । आलमगीर औरगजेब

---

१ असनी के हिंदी कवि ।

२ वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तानी—ग्रियर्सन ।

३ मिश्रबधु विनोद ।

४ सगीत रागकल्पद्रुम, १ । (वगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता)

५ जहाँगीरनामा—ना० प्र० सभा ।

६ शाहजहाँनामा ।

के लिये भी हिंदी हराम न थी अपितु उसकी उपयोगिता के कारण वह उसके उपयोग और प्रयोग का हामी था। यह उपयोगिता लोकमंगल तथा शासन की सुविधा के कारण थी। इसलिये उसके दरबार के फारसीदाँ लोग भी हिंदी और उसकी कविता के प्रति आदर भाव रखते थे।

यद्यपि औरंजेब का समान अत्यंत आलंकारिक वासना दीप्त करनेवाली रचनाओ को प्राप्त न था, तो भी नीतिविषयक हिंदी कविता के प्रति उसमे समादर भाव था। इसीलिये 'वृंद' जैसे नीतिवान कवि का वह स्वागत और सत्कार करता था। भूषण के बड़े भाई चिंतामणि यदि शाहजहाँ के दरबार की शोभा थे तो भूषण से कभी आलमगीर का भी संबध था। कालिदास, कृष्ण और सामत जैसे कवि उसके प्रशंसक थे।[२] औरंजेब हिंदी का कवि था।[३] हिंदी के सुरुचिपूर्ण विद्वानो के प्रति उसे मोह था। उसके अग्रज दाराशिकोह का सस्कृत और हिंदीप्रेम इतिहास की चर्चा का विषय है। उसका पुत्र आजमशाह हिंदी के कवियो का परम भक्त था। आलमगीर के कारण इसके लिये व्रजभाषा व्याकरण तोहफतुल्फहिंद की रचना हुई। इससे स्पष्ट है कि औरंगजेब भी व्रजभाषा को उस समय की लोकशिष्ट और काव्य की भाषा मानता था। आजमशाह स्वय हिंदी का कवि था। शाहआलम, बहादुरशाह भी हिंदी के अच्छे कवि थे। व्रजभाषा या हिंदी से उनका प्रेम था। इनकी भी मातृभाषा हिंदी ही थी। लालकुँवर का चहेता जहाँदारशाह 'मौज' नाम से रचना करता था। सैयद बंधुओ के समय मे भी हिंदी कवियो को पर्याप्त राज्याश्रय मिला।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिंदी या व्रजभाषा के काव्य को मुगलो का आश्रय प्राप्त था और वे उसे लोकभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित तो मानते ही थे, हिंदी के कवियो को व्यापक समान भी देते थे। इनकी देखादेखी उनके सामंत और आश्रित राजा भी यही करते थे। इन कवियो के लिये उस युग में इस आश्रय के अतिरिक्त जीविका का अन्य कोई साधन न था। यद्यपि इनमे

---

१. संगीत रागकल्पद्रुम।
२ शिवसिंह सरोज।
३. मुलाकाते शिबली।

से अधिकतर गुणग्राहक थे तो भी आश्रय आश्रयदाता को रुचि के कार्य के लिये आश्रित को स्वत वाध्य कर देता है। मुगल पुरुषार्थी योद्धा थे, साथ ही साथ कला और निर्माण मे नव रुचि रखनेवाले मनस्वी और ओजस्वी शासक भी। युद्ध और सघर्ष का जीवन मनोरजन, सुख, सुविधा और विलास से युद्ध की कटुता मिटाना चाहता है। ऐसी स्थितियो मे कवि उन आश्रय-दाताओ का ध्यान रखता था और ललित एव कलात्मक रचनाओ द्वारा उनका मनोरजन भी करता था। औरतो के प्रति मुगलो मे समान की भावना बड़ी व्यापक थी, इसलिये उनके हरम का विस्तार भी कम व्यापक नही था। इसीलिये काम की ओर भी उनकी विशेष रुचि थी। उनके दरबार मे गाए जानेवाले सगीत तथा उनकी स्वय की रचनाओ से यह स्पष्ट झलकता है कि वासना के प्रति उनमे मोह था। उनमे ही नही बल्कि प्रत्येक लडने-भिडनेवाले सैनिक मे यह व्यामोह पाया जाता है। इसलिये कामवासनामयी उद्दाम रचनाएँ उन्हे रुचती थी और कवि, संगीतज्ञ और चित्रकार भी उनकी रुचि का आदर करता था। ऐसी स्थिति मे यह मानने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही होनी चाहिए कि राज्य और अमीरो के आश्रित कवि स्रष्टा न रहकर कलावत की कोटि के हो गए थे, जो अलकरण द्वारा चित्ताकर्षण के लिये वारीक कारीगरी करने मे रियाज करते थे। जीवन की सहज सरल अभिव्यक्ति के प्रति वे प्राय. उदासीन मिलते है।

इन अमीर उमरावो के अतिरिक्त ब्रजभाषा के कवियो के आश्रयदाता विभिन्न सप्रदायो के मदिर और मठ आदि थे। वैष्णव माधुर्य भावना में शील, शक्ति और सौदर्य मे आस्था रखनेवाली रामभक्ति भी सरावोर हो चुकी थी। मदिरो के महथ और पुजारी कनक और कामिनी की उपासना से छलिया कृष्ण और रसिक राम को रिझाने का यत्न इसलिये भी कर रहे थे कि इसमे उनका दैहिक तथा भौतिक कल्याण था। मंदिरो और मस्जिदो पर चढी श्रद्धाविलसित सपत्ति का उपभोग और उपयोग वे सामतो की ही भाँति कर रहे थे, भले ही उनका वानक उनसे कुछ विलग था। सर्वत्र से निराश जनता भगवान् को एकमात्र शरणस्थली और इन मदिरो तथा मठो को त्राणगृह तथा इनके महथो को भाग्यविधाता मान उनके चरणो पर अपना पेट काट करके भी रागभोग, पूजा के लिये साधन प्रस्तुत करती थी। पर वहाँ माधुर्य रस भोग की दैहिक धारा मे रासलीला के

बहाने रतिरास होता था। ऐसी स्थिति में इनके आश्रय मे पलनेवाले कवियों को भक्ति की रागिनी मे काम की बाँसुरी बजानी पड़ती थी। ब्रजभाषा की मधुरिमा तथा उसकी गीतिपरकता के कारण काम का स्वर उसमे खूब फबता था। प्रबंध की क्षमता का प्रदर्शन ब्रजभाषा मे नही के बराबर मिलता है। यदि कोई प्रबध काव्य लिखा गया तो उसकी भाषा मे निश्चय ही अन्य भाषाओं का संमिश्रण मिलेगा। भाषा के इस कोमल माधुर्य ने भी कवियो को इधर इस भाव भगिमा की ओर मोडा।

जहाँ भी जीवन की पूर्णता नही होती वहाँ चमत्कार द्वारा आकर्षण उत्पन्न करने का यह यत्न किया जाता है। चकाचौंध भले ही अन्यत्र से ध्यान भंग कर अपनी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट कर ले, किंतु उसमे ध्यानमग्न करने की क्षमता नही; वह शक्ति तो जीवन के सहज कार्य व्यापार मे ही दीख पड़ती है। साहित्य इसका अपवाद नही। जिस साहित्य मे जीवन की सहज अभिव्यक्ति होगी, उसमे अलंकार भाव के प्रभाववर्द्धन करने के लिये स्वतः प्रकट हो चमत्कार उत्पन्न करेंगे और कचन तथा काया दोनो की मौलिक सत्ता संस्थित रखते हुए भी वहाँ अलकार शरीर को ढक न पाएगा, क्योंकि देही का देह के प्रति आकर्षण हो सकता है, जड़ता के प्रति नही, यदि जड़ता देह की दीप्ति को निखार दे सकती है तो मानव प्रकृति उसके सहज आलिंगन की अभिलाषुक होगी। इसलिये सहजता के अभाव मे चमत्कारिक अलकरण की ओर उस युग का कवि और साहित्यकार, चित्रकार तथा सगीतकार की भाँति मुडा ही नही, उसमें वह डूब भी गया।

शांति और सुव्यवस्था जहाँ समाज के विकास और सुखमंगल का द्वार खोलती है वहीं वह व्यक्ति को पुरुषार्थ और सघर्ष से विरत कर विलासिता की ओर भी उन्मुख करती है। मुगलकालीन समाज मे दो वर्ग स्पष्ट थे सुख-साधन-संपन्न विलासोन्मुख वर्ग और जीवन के अस्तित्व की रक्षा कर अपना अस्तित्व किसी प्रकार बनाए रखनेवाला निर्धन वर्ग। दूसरे के लिये अन्न ही ब्रह्म था, अन्य किसी बात की चिंता के लिये उसके यहाँ स्थान ही न था। पर इन्ही के पुरुषार्थ पर जीवित था पहला वर्ग जिसके लिये उस युग मे उपलब्ध समग्र विलासप्रसाधन सुलभ थे। कविता, चित्रकला, स्थापत्य और सगीत सब इसी वर्ग के लिये थे। विलासिता काम की भूखी होती है। काम यौवन से जीवन पाता है। वह देही का धर्म है। उसके धारण और प्रवर्धन के लिये उसकी

अनिवार्यता सृष्टि का अनादि सत्य है जब काम शरीर पर इस सीमा तक अधिकार कर लेता है कि व्यक्ति कामकीट हो जाता है तब उसका सबध जीवन के अन्य तत्वो से भग हो जाता है। इसका आधिक्य व्यक्ति के पुरुपार्थ को अनर्थकर भी कर देता है और उसे वासनाविजडित बना एकात निकम्मा कर डालता है। इस कामुकता की अंतिम सीमा हविस मात्र रह जाती है। इसलिये सभ्य समाज मे काम का नही, कामुकतापूर्ण अध वासना का प्रवेश वर्जित माना गया है, पर उत्तरमध्य युग मे धीरे धीरे इसका साम्राज्य ऐसा छाया कि शताब्दियो के उपरात ही उसके धुध से देश मुक्त हो सका। और तो और तत्कालीन काव्य के मानस का भी वह हृदयहार बन बैठा।

युग का साहित्य और उसकी परंपरा

ब्रजभापा की उत्पत्ति भले ही सहस्र शताब्दियो पूर्व की न हो, तथापि जिस प्रदेश की वह एक समय एकच्छत्र जनभापा थी, उसका पूर्ववर्ती साहित्य ससार के प्राचीनतम साहित्यो मे से अन्यतम है। उसके साहित्य की गरिमा विश्व के साहित्य मे आज भी अक्षुण्ण है, उसकी प्राचीनता के कारण नही, उसके युग धर्म के कारण। उसके मूल मे अर्थ, धर्म एव काम की त्रिवेणी है। यह परपरा देश के साहित्य को प्रत्येक युग मे प्राप्त रही है। यह स्वय में इतनी विशद है कि सभी इससे अपने अनुकूल तत्व ग्रहण कर लेते हैं। मध्यकाल के साहित्य ने भी इससे एक पक्ष का उपयोग और प्रयोग किया, क्योकि उसकी परपरा भी कम प्राचीन नही। इसलिये देश की उस साहित्यिक परपरा का जो इस युग का मूलाधार है, दर्शन करना अप्रासागिक न होगा। किंतु इसे देखने के पूर्व यह देख लेना आवश्यक होगा कि इस युग मे काव्य के विपय क्या थे? यदि उत्तर मध्यकालीन हिंदी साहित्य पर दृष्टिनिक्षेप किया जाय तो पिगल, अलकार, शृगार, नीति, सत, भक्ति और सप्रदाय, चरित, कथा एव प्रशस्ति काव्य के दर्शन होगे। राग रागिनी, नाटक, कोशग्रथ, अनुवाद, कामशास्त्र, इतिहास ज्योतिप, सामुद्रिक, गणित, वैद्यक, शालिहोत्र आदि अन्य विविध विपयो के वाङ्मय का भी दर्शन होगा। शुद्ध साहित्य का जहाँ तक प्रश्न है उसमे काव्य, कथा, कहानी को स्थान दिया जा सकता है जो गद्य, पद्य और चपू तीनो रूपो मे उपलब्ध है किंतु काम, सगीत, नीति आदि का उपयोग भी बराबर साहित्य के लिये किया गया है। यदि काव्य को लिया जाय तो काम,

प्रेम और शृंगार की रचनाएँ ही सर्वाधिक व्यापक पैमाने पर उत्तरमध्य काल मे दीख पड़ेंगी। भक्ति और शृंगार का साहित्य भी प्राय: उनसे मुक्त न दिखेगा। यहाँ शृंगार भी मुख्यतया दरबारी वैभवरजित विनोद विलसित तो मिलेगा ही, उसमे नखशिख, नायिकाभेद, ऋतुवर्णन, अष्टयाम आदि विषय व्यापक परिधि मे राधा कृष्ण के माध्यम से उपस्थित मिलेंगे। ये रचनाएँ अधिकांश मे रस तथा अलकार सिद्धांताधृत दोहा, कवित्त और सवैया छंद मे वद्ध मुक्तक शैली की है। अलंकारो मे श्लेष, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि का वाहुल्य मिलेगा। इन कविताओ में विलास की मादकता अतिरंजित रूप मे उपस्थित मिलेगी और दरबारी चाटुकारिता (प्रशस्ति) और उक्ति वैचित्र्य का भी अभाव न मिलेगा। इसका आशय यह न माना जाय कि इस युग का सारा काव्य इसी ढाँचे मे ढला है। अनेक कवियो की सहज प्रेम की उन्मुक्त कविताएँ भी इस युग मे मिलेगी। किंतु वे भी भाषा एव शैली आदि की दृष्टि से युग के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं मानी जा सकती। इनमें से कुछ ने युगप्रचलित पद्धति पर भी प्रयोग किया है।

यद्यपि ऐसी रचनाएँ सवत् १५९८ से ही लिखी जा रही थीं[1] तो भी संवत् १७०० से सवत् १९०० वि० तक ऐसी रचनाओ का प्रधान्य रहा है। इस युग की अधिकाश रचनाओ मे पाडित्य प्रदर्शन की रुचि दीखेगी। उनमे से कुछ कवि तो स्पष्टत. काव्यशास्त्र के लक्षरण उपस्थित कर उदाहरण के रूप मे रचनाएँ प्रस्तुत करते हुए मिलेंगे और कुछ केवल काव्यशास्त्र के लक्षणो को आधार वनाकर काव्य प्रस्तुत करते हुए।

कुछ कवि अपने विलग विलग ग्रथो मे इन सभी रूपो मे उपस्थित है। दरबारी सस्कृति तथा जीवन पद्धति मे व्यक्ति के स्वत: गरिमास्थापना में शास्त्रज्ञता सहायक सिद्ध हुई है। और इसलिये दरबारों मे पडितो का महत्व चारणो से सदा अधिक रहा है। इसलिये इस गुरुता का लाभ उठाने के लिये भी पाडित्य प्रदर्शन की आवश्यकता तत्कालीन साहित्य एवं कला में रही है और आज के युग मे भी तो अधिकाश लोग अपनी रचनाओं की पाडित्यपूर्ण व्याख्याओ का व्यामोह सवरण नही कर पा रहे है। यह वृत्ति भी तत्कालीन कवि के साथ ही नही, सगीतज्ञ और चित्रकार के साथ भी जुडी हुई दीखती है।

---

१. कृपाराम—हिततरगिनी।

इसलिये जो कवि शास्त्रज्ञान के प्रदर्शन से विरत रहे हैं, वे भी रचना करते समय शास्त्रज्ञान के प्रति अज्ञता का सकेत नही देना चाहते थे। शास्त्र की कुछ मान्यताओ के उल्लेखमात्र से कभी कभी तो इन मुक्तको की साकेतिक एव प्रतीकात्मक भूमिका भी प्रच्छन्न रूप मे प्रस्तुत हो जाती थी। यह व्यामोह भी किसी रचनाकार के लिये कम आकर्षण की बात नही है। इसीलिये सहज प्रेम मे डूबे हुए कवियो की उन्मुक्त अनुभूतियो को भी लोगो ने और कभी कभी उन्होने स्वय भी उसी रंग और ढाँचे मे वर्गीकृत करके ही छोड़ा है।

इस युग के ऐसे साहित्य के सबध मे नामकरण को लेकर विद्वानो मे काफी मतभेद रहा है। कोई इसे अलकृत काल[1] कुछ लोग शृंगार काल[2] और कुछ लोग इसे रीति शृगार[3] युग के नाम से सबोधित करते है। ये सभी जानेमाने विद्वान् और पडित हैं तथा अपने पक्ष मे प्रबल तर्क भी देते है। हिंदी आलोचना के क्षेत्र मे शुक्लजी का मानदड इतिहास के क्षेत्र मे मेरुदड की भाँति प्रतिष्ठित है। उन्होने इसे रीतिकाल[4] की सज्ञा दी है। अलकारकाल नाम रखने का आग्रह अब मृतप्राय है। शृंगार के आग्रही पडित विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र के ये तर्क इस प्रसग मे विचारणीय हैं "रीतिकाल" नाम ग्रहण करने का दुष्परिणाम यह हुआ है कि उस काल के अच्छे अच्छे शृगारी कवियों को छाँट कर पृथक् करना पडा। आलम, ठाकुर, घनानद, बोधा, द्विजदेव ऐसे प्रेम के उमगभरे कवि किसी रीतिग्रथकार से काव्योत्कर्ष मे कम नही; पर 'रीति' की सीमा मे ये न समा सके। रीतिकाल की शृ गारगत व्यापक प्रवृत्ति 'रीतिकाल' नाम देनेवालो ने भी लक्षित की है, और अलकृत काल नाम रखनेवालो ने भी। पर रीति या अलकारशास्त्र की ग्रथराशि ने एकत्र होकर इन्ही नामो की ओर उन्हे आकृष्ट किया। फलत शृ गार की सर्वनिष्ठ प्रवृत्ति नामकरण के सबध मे पीछे छूट गई। बात यही तक होती तो भी कोई बात थी। सबसे बडी कठिनाई काल के विभाजन की

---

१ मिश्रबधु विनोद।

२ हिंदी साहित्य का अतीत (भाग २)--विश्वनाथप्रसाद मिश्र।

३ हिंदी का रीति साहित्य।

४. हिंदी साहित्य का इतिहास।

आ गई, पर गृहीत नामो ने यह मार्ग छेक रखा। 'अलकृत' नाम देकर उसके पूर्व और उत्तर नाम दिए गए, पर उनमे भेद का स्पष्ट सकेत कोई नही। केवल वर्णन का विस्तार कम हो गया है। 'रीतिकाल' नाम देकर स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा कि इसका विभाजन करने का कोई मार्ग अभी नही मिल रहा है। कुछ लोगो ने समस्त काव्यागो का वर्णन करनेवाले और किसी एक अग का वर्णन करनेवालो को पृथक् किया है। पर सभी काव्यागो के विवेचको ने भी एक एक काव्यांग का पृथक् वर्णन किया है, जैसे चिंतामणि, दास आदि ने। अत रीति मे उपविभाग का मार्ग सकीर्ण ही है। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखे, अलंकृतकाल और रीतिकाल नाम व्यक्ति के बोधक नही प्रतीत होते। उन्हे हटाने की आवश्यकता है और उनके स्थान पर 'शृंगारकाल' की स्पष्ट अपेक्षा जान पडती है।'[१]

आचार्य शुक्ल को रीतिकाल के स्पष्ट विभाजन का मार्ग नही मिला[२] जिसे पं० विश्वनाथजी मिश्र ने उद्घाटित करने के लिये शृंगारकाल की स्पष्ट अपेक्षा का अनुभव किया पर रीतिकाल से सामान्य परिचय के प्रसंग में शुक्लजी स्वयं स्पष्ट कर चुके है कि 'इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है।'[३] रीतिबद्ध रचना के उपविभाग का संगत आधार उन्हें अवश्य नही मिला, पर जो ऐसा फर्माते है कि उन्होने इसका मार्ग प्रशस्त कर दिया है, संभवतः अपना मन वहलाने के लिये उनका यह खयाल मात्र है। किसी विवाद मे न पड़कर भी यहाँ स्थिति स्पष्ट कर देनी आवश्यक है।

शृंगार की रचनाएँ हर युग में हुई है। उस रस के श्रेष्ठ कवि, ऐसे श्रेष्ठ कवि जिनकी तुलना मे इस काल का शृंगारपरक काव्य तुलता नही जैसे विद्यापति, सूर आदि और भारतेंदु तथा प्रसाद आदि, इस युग की देन नहीं है और सारे हिंदी साहित्य को ही आधार वना लिया जाय तो शृंगार का साहित्य सवसे अधिक मिलेगा और प्रत्येक युग मे मिलेगा। ऐसी स्थिति में किसी युगविशेष मे इसे सीमित करना रसराज का समुचित समान नही होगा।

---

१. हिंदी साहित्य का अतीत (भा० २)।
२. हिंदी साहित्य का इतिहास।
३. हिंदी साहित्य का इतिहास।

फिर उपवर्गो की समस्या खड़ी होती है। शुक्लजी ने केवल दो उपवर्ग किए है—रीति ग्रथकार कवि एवं अन्य। प्रथम मे उन्होने दो वर्ग किए है। एक वे जिन्होने लक्षण और उदाहरण दोनो प्रस्तुत किए है, और दूसरे वे जिन्होने काव्य के लक्षणो को ध्यान मे रखते हुए रचनाएँ की है। पर उपवर्गो के विभाजन की मिश्र जी की प्रक्रिया निम्नाकित है—
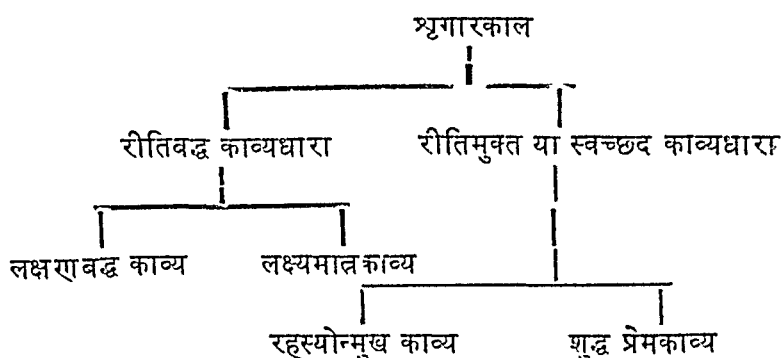
एक उपवर्ग की चर्चा मिश्रजी ने और की है जो ऊपर के वर्गीकरण में ही समाहित हो जाएगा। वह उपवर्ग रीतिसिद्ध कवि का है। रीति से सहारा लेकर अपनी स्वतत्र सत्ता चाहनेवाले अर्थात् ऐसे मध्यमार्गी जिन्होने रीति की सारी परपरा सिद्ध कर ली हो पर लक्षण ग्रथ प्रस्तुत न करके स्वतत्र रीति से वँधी परिपाटी के अनुकूल रचनाएँ की हो। व्यक्तिगत विशेषताओ के स्फुरण के कारण इनकी विशेषताएँ स्पष्ट है।[1] मिश्रजी का यह उपवर्ग लक्ष्यमात्र काव्य मे ही समाहित कर लिया जाना चाहिए, या उसका भी वर्गीकरण कर उसे व्यापक बना लेना चाहिए। यदि उनके द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को देखा जाय तो शृगारकाल के प्रत्येक मुख्य वर्गीकरण के साथ रीति शब्द सबद्ध मिलेगा। इसलिये रीति शब्द की व्यापकता यहाँ भी अपना प्रभाव असामान्य रूप मे प्रकट करती है। नीति, भक्ति, कथात्मक प्रबध, फुटकर पद्यलेखन, ज्ञानोपदेश, प्रशस्ति तथा गद्य का आख्यान इस वर्गीकरण मे समाहित न होगे। यद्यपि शृंगार शब्द का प्रयोग मिश्रजी ने काव्यशास्त्रीय और व्यावहारिक दोनों अर्थो मे ग्रहण कर उसे व्यापकता प्रदान की है तो भी उनका यह वर्गीकरण कोई ऐसा द्वार नही खोलता जिससे शुक्लजी द्वारा अनुभूत समस्या का समाधान प्रस्तुत

1. हिंदी साहित्य का अतीत।

हो जाय और इस दिशा में राजमार्ग का निर्माण हो। ऐसी स्थिति में आवश्यक यह होगा कि यह स्वयं देख लिया जाय कि उस युग में स्वयं रचनाकारों ने अपने काव्य के लिये कौन सी संज्ञा का प्रयोग किया है।

सामान्यत: जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो संस्कृत साहित्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। रीति को काव्य की आत्मा घोषित करनेवाले वामन 'विशिष्ट पद रचना'[१] के रूप में उपस्थित करते है और हिंदी शब्दसागर भी इसी व्याख्या को स्वीकार करता है।[२] इस काव्यांग के वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली त्रिवर्ग है। जिस अर्थ मे वामन ने इसका प्रयोग किया है, उसी अर्थ में हिंदी मे इसका प्रयोग मध्यकाल मे कवियो ने नही किया है। 'कवित विवेक' की बात तो तुलसीदास भी कर गए है[3], किंतु चिंतामणि[४], केशव[५], भूषण[६], मतिराम[७], देव[८], सोमनाथ[९], सूरति[१०], दास[११], बेनी[१२], पद्माकर[१३],

---

१. 'विशिष्टा पदरचना रीतिः।'—काव्यालंकार सूत्रवृत्ति।

२. 'साहित्य मे किसी विषय का वर्णन करने मे वर्णों की वह योजना जिससे ओज, प्रसाद, माधुर्य आता है।'—पृ० २९५२।

३. रामचरित मानस।

४. 'रीति सुभाषा कवित की बरनत बुध अनुसार।'

५. 'समुझै बाला बालकन हूँ वर्णन पथ अगाध।'

६. 'सुकबिन हूँ की कछु कृपा, समुझि कबिन को पंथ।'

७. 'सो विश्रब्ध नवोढ यो बरनत कवि रसरीति।'

८. 'अपनी अपनी रीति के काव्य और कविरीति।'

९. 'छंद रीति समुझै नही बिन पिंगल के ज्ञान।'

१०. 'बरनन मनरंजन जहाँ रीति अलौकिक होइ।
निपुन कर्म कवि कौ जु तिहि काव्य कहत सब कोइ'।

११. वंदौं सुकविन के चरन अरु सुकविन के ग्रंथ।
जाते कछु हौं हूँ लह्यौ, कविताई कौ पथ।'
'काव्य की रीति सिखी सुकवीन्ह सो।'
'अरु कछु मुक्तक रीति लखि, कहत एक उल्लास।'

१२. 'या रस अरु नव तरंग मे, नवरस रीतिहि देखि।'

१३. 'ताही को रति कहत है रस ग्रंथन की रीति।'

प्रतापसाहि[1], दूलह[2] आदि सभी ने कवित्तरीति, काव्यरीति, कविरीति, कवितरीति, छदरीति, मुक्तकरीति, कवितापंथ, वर्णनपथ, कविपंथ आदि का प्रयोग अपने साहित्य मे किया है। इस प्रकार 'रीति' शब्द का उपयोग और प्रयोग साहित्य की रचना विधा के लिये किया गया है। वह पथ के पर्यायी रूप मे भी व्यवहृत हुआ है। पथ और रीति को शुक्लजी ने परिपाटी या ढंग के रूप मे अगीकार किया है।[3] यह भी रीति या पथ का पर्याय ही है। ऐसी स्थिति मे जो लोग रचना विधा के आधार पर नाम रखने के पक्षपाती है उनको उस युग के काव्य से भी उसका समर्थन प्राप्त हो जाता है। इसलिये इस शब्द को ऐतिहासिक समर्थन भी प्राप्त है। सस्कृत मे 'रीति' पंथ के पर्याय के रूप मे प्रयुक्त हो चुका है। इसलिये रीति शब्द का प्रयोग जिस व्यापक पैमाने पर उस काल की सज्ञा के लिये हुआ है उसे देखते हुए यह शब्द हिंदी जगत् मे एक विशेष अर्थ के लिये रूढ हो गया है। उसका नया नामकरण वह अर्थगरिमा प्रतिष्ठित नही कर सकता क्योकि चलन मे आने के उपरात जब किसी शब्द का प्रतिमानीकरण हो जाता है तब उससे अभिव्यक्त भाव को दूसरे नए शब्दो मे व्यक्त करनेवाला उसके अर्थ ससार की सीमा का सकोच कर देता है।

इसलिये काव्य-रचना-पद्धति के अर्थ मे व्यवहृत रीति शब्द के आधार पर इस युग का नामकरण अप्रासगिक और अनुपयुक्त न होगा अपितु सर्वथा उपयुक्त ही है। इससे वर्गीकरण मे भी सरलता होगी और युग के काव्य की सभी पद्धतियो का वर्गीकरण भी अपेक्षाकृत अधिक सहजता से उपस्थित किया जा सकेगा।

प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के वर्गीकरण मे आचार्य शुक्ल के 'अन्य' के स्थान पर रीति-मुक्त या स्वच्छद काव्यधारा की स्थापना की गई है। रीति से मुक्त काव्य की कल्पना आज के युग मे भी कोई सिद्ध विद्वान् करने के लिये तैयार नही है। ऐसी स्थिति मे सुजान पडित मिश्रजी की स्थापना विशेष महत्व की नही है। जिस युग के वर्गीकरण की बात है उस युग मे

---

१ 'कवित' रीति कछु कहत हौ व्यंग अर्थ चितलाय।'

२. 'थोरे क्रम क्रम ते कहत अलंकार कही रीति।'

३. 'हिंदी साहित्य का इतिहास।'

ब्रजभाषा प्रवीन, सुंदरता के भेद को जाननेवाले, रीति के पंथ में कोविद कवियों को इस वर्ग में ला वैठाना रीतिमुक्तता की संज्ञा को स्वयं निस्सार कर देता है। रही स्वच्छद संज्ञा की बात। काव्य के अंतरंग पक्ष अनुभूति पर विशेष ध्यान देनेवालों को स्वच्छंदता की संज्ञा मिश्रजी ने प्रदान की है। अनुभूति के विना पदरचना भले ही की जा सकती हो पर काव्यरचना नही। यदि यह बात सही है तो जिन रीतिवद्ध कवियो के काव्य को मिश्रजी कविता मानते है, उनमें अनुभूति अपनी उनकी अवश्य ही होगी, भले ही उसका तेज उतना प्रभावान् न हो जितना इनका हो सकता है। यह भी आवश्यक नही है कि इस वर्गीकरण के स्वच्छद लोगो ने साधन पथ पर ध्यान ही न दिया हो। केवल अनुभूति की अभिव्यक्ति ही कविता नही है अपितु साधन (वहिरंग) के सयोग से उसकी सृष्टि होती है। ऐसे कवियो ने भी साधन का अच्छी तरह उपयोग और प्रयोग किया है चाहे वह रसखानि हो या घनानद हो। इसलिये अन्य मे किया गया वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है। रीतिवद्ध छाप का एक कवि कही सर्वांगनिरूपक, कही एकागनिरूपक है उसी प्रकार अन्य वर्ग का भी कही रीतिवद्ध भी है। इसलिये कवि नहीं काव्य का वर्गीकरण होना चाहिए। एक ही कवि कही रीतिवद्ध और कही 'अन्य' रूप मे भी मिलेगा। इस दृष्टि से इस युग के काव्य का वर्गीकरण निम्नाकित रूप से करना अनुचित न होगा।
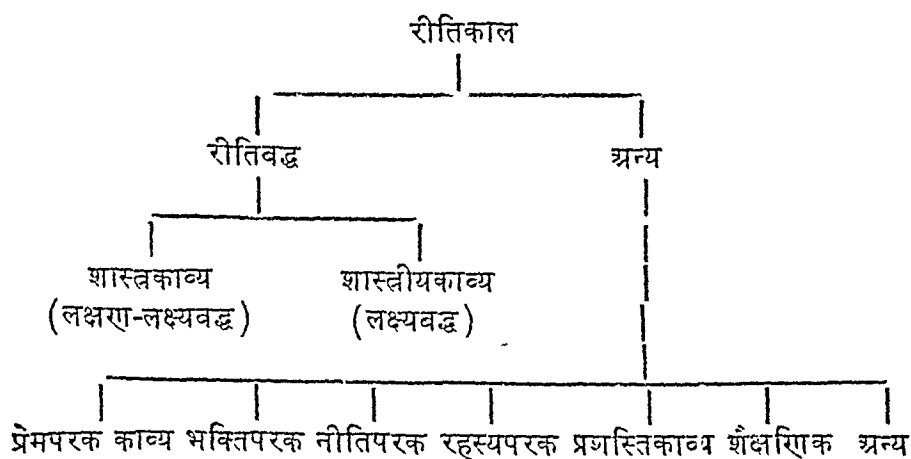
रीतिवद्ध हो या रीतिमुक्त, उस युग के सभी कवियो ने पदसघटना या पदरचना मे विशेष सावधानी वरतने तथा क्षेत्र विशेष मे विशेष रीति के संयोजन का यत्न किया है। किसी की दृष्टि काव्यांग के अलकार पर, किसी

की छंद पर, किसी की भाषायोजना पर, किसी की उक्तिवैचित्र्य पर, किसी की रसराज शृंगार के आलंबन नायक नायिका की रचना पर रही है। प्रेम के उन्मुक्त गायक कवि घनानंद, आलम, बोधा और ठाकुर भी इस प्रभाव से अपने को सर्वथा मुक्त घोषित कर सकने की स्थिति में नही है।[1] इसलिये उस युग की व्यापकतर रचनायोजना इस सज्ञा मे समाविष्ट हो जाती है। इसलिये इस युग को रीतिकाल के रूप मे ही स्वीकार करना चाहिए।

रीतियुगीन काव्य मे शृगारपरक काव्य की प्रधानता है। रीतिकाव्य का कवि कामशास्त्र के प्रति भी आकृष्ट है। क्योकि शृगार के आलवन नायक और नायिका के सयोजक रति का वह विज्ञान है। काम की मर्यादित उपासना मनुष्य का अनादि धर्म और उसकी सभ्यता का एक आवश्यक अग है। मनुष्य मे उसकी स्वत. उत्पत्ति होती है और वह स्वय भी रतिक्रिया के सुफल का परिणाम है। कामशास्त्र मे नरनारी के रतितत्वो एव सबंधो का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है। नरनारी का रतिसबध ही मनुजसृष्टि का प्रवर्तक और उसकी सभ्यता के विकास का परिचायक है। मानवसृष्टि के प्रत्येक क्षेत्र मे इसके सबध मे विवेचन किया गया है और ज्ञान तथा विवेकपूर्वक देश काल के अनुसार इसके सबध मे अपनी मान्यताएँ स्थापित की गई है। साहित्य मे इसकी अपनी मान्यता एव गरिमा है। साहित्य को इसकी दृष्टि से देखनेवालो की दृष्टि मे इसका अक्षुण्ण और अनादि महत्व है। रसराज शृगार के स्थायीभाव के रूप मे रति प्रतिष्ठित है। इसलिये साहित्यशास्त्र के आदि ग्रथ नाट्यशास्त्र से लेकर आज तक के साहित्यशास्त्र के ग्रथो पर

---

१ ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभा मे बड्प्पन पावै।
पडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त बनावै ॥
—ठाकुर

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौ जानै।
जोग वियोग की रीति मे कोविद भावना भेद स्वरूप को ठानै।
चाह के रङ्ग मै भीज्यौ हियो बिछुरे मिले प्रीतम शाति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछद सदा रहे सो घन जी के कवित्त बखानै ॥
(घनआनद के सबध मे)—ब्रजनिधि

कामशास्त्र का प्रभाव सीधे या परोक्ष रूप से पड़ा है। यह साहित्य के अध्ययन, मनन और विश्लेषण मे अपना प्रभुत्व रखता है। इसलिये कामशास्त्र के अध्ययन के लिये सभ्य समाज मे वय की सीमा का निर्धारण कर दिया गया है क्योकि इसका बोध यौवन के साथ होता है। इसलिये रति को रहस्यमय भी रखा गया है और सभ्य समाज मे इसे गोपनीयता का अधिकारी माना गया है। काम और रति सार्वकालिक नही, क्योकि काम की शक्ति रति बालधर्म की शक्ति के विकास में बाधक है। इसलिये प्रौढो की ज्ञान सपदा का यह गुह्य अश रहा है ताकि बालको पर या समाज के ऐसे वर्गो पर इसका असमय प्रभाव न पड़े जो इससे नातारिग्ता रखने के अधिकारी नही है। सभ्य समाज मे रक्तवर्ण की मर्यादा सुरक्षित रखने तथा रूपमाया से मुक्ति के लिये भी इसका ज्ञान इस देश में आवश्यक माना गया है। मनीषियों ने कामशास्त्र के व्यापक वाङ्मय का प्रणयन इस देश मे किया जिसकी मर्यादा में एततसबंधी विश्व का साहित्य अतुलनीय है। कामशास्त्र मे रतिरहस्य या रतिशास्त्र का मूलत: अध्ययन किया जाता है। साहित्य मे शृगार का स्थायी भाव भी रति ही है अतएव सहज ही दोनो का भावयोग इस क्षेत्र मे हो उठता है। इसलिये कामशास्त्र से साहित्यशास्त्र तत्व ग्रहण करता है। वात्स्यायन का कामसूत्र रतिशास्त्र का एक महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रथ है जिसकी इस देश मे अपने क्षेत्र मे अनन्य गरिमा है। कामसूत्र में चार प्रकार की—कन्या, भार्या, परदारा और वेश्या—स्त्रियो का वर्णन है[1]। इसी के अतर्गत पूर्वाचार्यो द्वारा नारी का किया गया वर्गीकरण भी—परपतिगृहीता (परकीया), तृतीया प्रकृति (क्लीबा), विधवा, प्रव्रजिता, गणिकापुत्री, परिचारिका तथा कुलयुवती—अतर्भुक्त कर लिया गया है। केवल कामशास्त्र में ही नही शृंगाररस के आलबन विभाव नायिकाभेद के अतर्गत भी स्त्रियो का वर्गीकरण किया गया है जो कामशास्त्र से प्रभावित है। कामसूत्र के 'कन्याविश्रम्भणम्' नामक अध्याय[2] में नवोढा को विश्रब्ध करने के साधन भी वर्णित है जिनसे प्रकट होता है कि समय का साधन पाकर नवोढा विश्रब्ध नवोढ़ा हो जाती है। साहित्य मे प्रयुक्त कामशास्त्र से प्रगृहीत नायिकाभेद संबधी इस प्रकार के अनेक दृष्टात उपस्थित किए जा सकते है। 'अग्निपुराण' मे व्यास,

१. कामसूत्र १। ५। ४, ५, २७, २२, २३, २४, २४, २६।

२ कामसूत्र ३। २।

'शृगार तिलक' मे भोजराज और 'रसतरगिणी' मे भानुमिश्र, जो नायिकाभेद के विशिष्ट संस्कृत आचार्य है वात्स्यायन के कामसूत्र से स्पष्ट प्रभावित है। वात्स्यायन का कामसूत्र नायिकाभेद के प्रसग मे दूती प्रकरण के लिये काव्यशास्त्र के आचार्यो का पथप्रदर्शक रहा है। वात्स्यायन के कामशास्त्र के अतिरिक्त कक्कोक विरचित रतिरहस्य, रसिककृत अनगरग, पचशायक तथा हरिहर की शृगारदीपिका ने काव्यशास्त्र पर अपनी छाप लगाई है। इन ग्रंथो मे 'रतिरहस्य' का प्रभव कामसूत के उपरात सर्वाधिक प्रगाढ़ रहा है। इस ग्रंथ मे पूर्ववर्ती आचार्य नदिकेश्वर द्वारा रूप, प्रकृति एव वासना के आधार पर वर्गीकृत पद्मिनी, चित्रणी, शखिनी और हस्तिनी, चार प्रकार की नायिकाओ का वर्गीकरण उपस्थित किया गया है।[१] कामशास्त्र के इस वर्गीकरण को काव्यशास्त्र मे आदरपूर्वक ग्रहण किया गया। हिंदी और सस्कृत दोनो के साहित्यशास्त्रो मे यह वर्गीकरण है, भले ही व्यापक रूप से इसने स्थान न बनाया हो।

साहित्य एव कामशास्त्र में सुरक्षित तथा लोकजीवन मे प्रतिष्ठित शृगार के स्थायी भाव रति के रहस्य की यह परंपरा समय समय पर साहित्य मे फूली फली और श्रीमय हुई तथा भावी साहित्य के लिये स्रोत के रूप मे योगदान दिया। साहित्य मे शृगार रसराज के रूप मे प्रतिष्ठित है। काम और रसराज का यह सनातन सबध प्रत्येक युग के साहित्य मे काल और देश की सीमा लाँघकर सुरक्षित है। इसलिये परपरा से शृगार की गरिमा का परिज्ञान, जो रीतिकालीन हिंदी साहित्य का मूलाधार था, यही कर लेना आवश्यक है।

भारतीय साहित्य मे रस की महत्ता आदिकाल से चली आ रही है। यह भरत के नाट्यशास्त्र से भी अधिक प्राचीन है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र मे 'द्रुहिण' को[२] इसका आविष्कारक माना है। हिंदी शब्दसागर मे रस की व्याख्या इस प्रकार की गई है--

"रसनेंद्रिय का सवेदन या ज्ञान‥साहित्य मे वह आनदात्मक चित्तवृत्ति या अनुभव जो विभाव, अनुभाव और सचारी से युक्त किसी स्थायी भाव के व्यजित होने से उत्पन्न होता है।

---

१ रसमजरी, पृष्ठ ९।

२. 'एते ह्यष्टौ रसा. प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।'--नाट्यशास्त्र।

विशेष—हमारे यहाँ के आचार्यो मे इस विषय मे बहुत मतभेद है कि रस किसमे और कैसे अभिव्यक्त होता है। कुछ लोगो का मत है कि स्थायी भावो की वास्तविक अभिव्यक्ति मुख्य रूप से उन लोगो मे होती है, जिनके कार्यो का अभिनय किया जाता है (जैसे—राम, कृष्ण, हरिश्चद्र आदि) और गौण रूप से अभिनय करनेवाले नटो मे होती है। अत इन्ही मे ये लोग रस की स्थिति मानते है। ऐसे आचार्यो का मत है कि अभिनय देखनेवालो या काव्य पढ़नेवालो के साथ रस का कोई सबध नही है। इसके विपरीत अधिक लोगो का यह मत है कि अभिनय देखनेवालो तथा काव्य पढनेवालो मे ही रस की अभिव्यक्ति होती है।

ऐसे लोगो का कथन है कि मनुष्य के अंत करण मे भाव पहले से ही विद्यमान रहते है, और काव्य पढने अथवा नाटक देखने के समय वही भाव उद्दीप्त होकर रस का रूप धारण कर लेते है। यही मत ठीक माना जाता है, तात्पर्य यह है कि पाठको या दर्शको अथवा अभिनयो से जो अनिर्वचनीय और लोकोत्तर आनद प्राप्त होता है, साहित्यशास्त्र के अनुसार वही रस कहलाता है।

हमारे यहाँ रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद इन नौ स्थायी भावो के अनुसार नौ रस माने गए है, जिनके नाम इस प्रकार है,—शृगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शात। दृश्यकाव्य के आचार्य शात को रस नही मानते, वे कहते है कि यह तो मन की स्वाभाविक भावशून्य अवस्था है। निर्वेद का कोई स्वतत्र विकार नही है। अत वे रसो की सख्या आठ ही मानते है। और कुछ लोग इन नौ रसो के सिवा एक और दसवाँ रस 'वात्सल्य' भी मानते है।"[1]

संस्कृत साहित्य मे रससिद्धात का विवेचन और विस्तार अत्यत व्यापक है और रस को काव्य की आत्मा माननेवालो की कमी भी भारतीय साहित्य मे नही रही है। हिदी हो या सस्कृत या अन्य कोई भारतीय भाषा, सर्वत्र साहित्य के सनातन मानदंड के रूप मे कम प्रतिष्ठित मिलेगा। साहित्य मे रसो की सख्या नौ मानी गई है यद्यपि उसे यथावश्यकता बढाने का क्रम

---

१. हिदी शब्दसागर, पृ० २६०७, २६०८।

कुठित नही हुआ है। किंतु इन नव रसो के भीतर ही रीतिसाहित्य रचना की समस्त लीला क्रीडा करती है।

रीतिकाल का व्यापक साहित्य शृगार मे अतर्भुक्त है। जहाँ आचार्य भरत ने इसे 'यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वल दर्शनीय वा तच्छृङगारणोपमीयते' माना है वही पद्माकर का कथन है कि 'नवरस मे शृगार रस सिरे कहत सब कोइ।"[1] अग्निपुराण मे इसकी उत्पत्ति परब्रह्मजन्य अहकार से उद्भूत ममता के रूपातर मे बताई गई है और इसे आदि रस भी घोपित किया गया है। सस्कृत साहित्य मे शृगार के भीतर ही नवो रसो की स्थिति मानी गई है।[2]

शृगार शब्द शृग तथा आर दो शब्दो के योग से बना है, जिसका अर्थ कामवृद्धि की उपलब्धि है। काम की प्राप्ति जीवन के चेतनपर्व यौवन का मूल धर्म है। शृगार इसे धारण करता है। इस शृगार का स्थायी भाव रति है, जो सृष्टि के प्रवर्धन का मूल आधार भी है। नरनारी सृष्टि की विधायिका रति अनग की वामा है। सृष्टिवृद्धि का यह आदि, सनातन और एकमात्र मूल कारण है। ऐसी महिमामयी को भारतीय लोकजीवन मे देवी के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है और गृहस्थ के परमधर्म कुलवृद्धि के अधिष्ठाता देव के रूप मे काम भी वदनीय और पूज्य है। काम का सबध जीवन के उस प्रदेश से है जहाँ से मानव का यौवन से सस्पर्श होता है। यह वृत्ति सभी देश और काल मे मनुष्य की सगिनी रही है और प्रत्येक देश के साहित्य में किसी न किसी रूप मे विद्यमान रह अपनी सार्वभौम सत्ता का सकेत देती चलती है। जीवन मानस की भूमि पर सवलित साहित्य की मूल चेतना की अनुभूति मे भी इस सत्ता की सस्थिति उसकी सनातन शक्ति के रूप में अपनी ओजस्विता के साथ प्रतिष्ठित है——सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के साहित्य मे शृगार रस विलसित मुक्तक अक्षुण्ण एव अप्रतिस्पर्धी गौरव के साथ सस्थित हे।

---

१ पद्माकर ग्रंथावली।

२ शृगार वीर करुणाद्भुत हास्य रौद्,
वीभत्स वात्सल भयानक शात नाम्नः।
आम्नासिपुर्दश रसान् सुधियो वयतु,
शृगारमेव रसनाद्रसमामनाम ।।——भोजराज (शृगार प्रकाश)

रीतिकाल का साहित्य जहाँ रसविश्लेषण की ओर उन्मुख होता है वहाँ वह गंभीरता के अंतस्तल को स्पर्श मात्र करता है। मीमांसा की दृष्टि से इस युग के काव्यशास्त्र का विवेचन यथातथ्यवादी है तथा प्रायः किसी गभीर, मौलिक और नवीन प्रभोज्वल उद्भावना का सामान्यतः दर्शन नही होता। इस युग का रसविवेचन रससवधी पूर्व साहित्यशास्त्र की छाया मात्र है। जहाँ भी रीतिकाल में रस चर्चा हुई है, वहाँ मूलतः शृगार रस का विस्तार मात्र दीखेगा। अन्य रसो के लक्षण, उदाहरण और उसके स्थायी भावो की चर्चा मात्र है, प्राधान्य सर्वत्र शृगार का ही मिलेगा। उसके आलवन विभाव, नायिका और नायक के भेद तथा तत्सवधी अन्य प्रकरणो का व्यापक विस्तार वहाँ अवश्य मिलेगा। इसलिये रीति साहित्य के रसविवेचन—प्रसग की सारी गरिमा शृगार की महिमा मे सिमटी है। रसराज शृगार के सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश के मुक्तकों का प्रभाव, भाव एव रचनाविधा के सवंध मे, रीतिकाल के साहित्य मे उपस्थित उदाहरणो मे या शास्त्रीय काव्य मे भी बराबर स्पष्ट दीखेगा। इसलिये उसका संक्षिप्त दर्शन यहाँ आवश्यक है।

हिंदी मे शृंगारिक रीतिकालीन रचनाओ के पूर्व सस्कृत मे नीतिपरक, स्तोत्र तथा शृगार तीनों प्रकार के मुक्तको की रचना बड़े व्यापक पैमाने पर हो चुकी थी। संस्कृत मे पतजलि से बहुत पहले से ही ऐसे मुक्तको का स्रोत आरभ होता है, 'शृगार तिलक' इस परपरा का प्रथम उपलब्ध ग्रथ है। घटकर्पर द्वारा इसी नाम से रचित एक अन्य मुक्तक भी अति प्रसिद्ध है। 'शृगार शतक' भी इस क्षेत्र की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमे शृगार का सहज निरूपण हुआ है। वात्स्यायन के कामसूत्र से प्रभावित 'अमरुक शतक' है। शृगारी मुक्तको की परपरा की रचनाओ मे रस का रत्नाकर काम के प्रगल्भ भावतरगो के माध्यम से छलकता है। अमरुक ने सस्कृत के शृ गारी मुक्तको को नई भंगिमा और ऐसी दिशा दी जिससे भारत का मुक्तक-शृगार-साहित्य निरतर चेतना ग्रहण करता रहा है। कवियो की तो बात ही क्या विकटनितवा विज्जका, शीलाभट्टारिका जैसी कवयित्रियाँ भी इस रचना से प्रभावित हुई। 'अमरुक शतक' के बाद 'चौरपचाशिका' की रचनाओ ने भारतीय शृगार के मुक्तक साहित्य को प्रभावित किया है। इस परपरा का चरम उत्कर्ष १२ वीं शताब्दी मे जयदेव के 'गीतगोविद' में मिलता है। इस क्रातदर्शी रसविलसित रचना को, मुक्तक होते हुए भी इसकी महिमा के कारण, महाकाव्य का

ममान विद्वानो ने दिया है। कृष्ण और राधा के माध्यम से शृगाररजित भावो की मौलिक तथा कल्पनाप्रवण, सरस परपरागत उद्भावना जयदेव के साहित्य की भारत को देन है। गोवर्धनकृत 'आर्या सप्तशती' की रचना भी लगभग गीतगोविद की ही समसामयिक है। हिदी का मुक्तक तथा रीतिकालीन शृगारिक साहित्य इन रचनाओ से प्रभावित है तथा उसकी प्रेरणा से प्रफुल्ल एक महत्वपूर्ण काव्य स्तवक है।

यह तो सस्कृत साहित्य की बात हुई। प्राकृत और अपभ्रश के साहित्यिक मुक्तको ने भी शृगारिक मुक्तको को तथा रीतिकालीन मुक्तको को प्रभावित किया है। प्राकृत मे नीति और शृगार के मुक्तको का बाहुल्य है, जिनमे शृगारिक मुक्तक अपनी रसात्मकता के कारण विशेष विख्यात है। प्राकृत के मुक्तको में 'गाथा सप्तशती' तथा 'वज्जालग्ग' अपने भावप्रवण साहित्यिक गुणधर्म के कारण परम गौरवशाली है। 'गाथा' सप्तशती' के मुक्तको की शृगार भावना सहृदयो का सदा से कठहार रही है। 'गाथा सप्तशती' शृगारी मुक्तको का एक श्रेष्ठ रससौरभपूर्ण स्तवक है। इसने तत्कालीन लोकसाहित्य मे लोकजीवन से व्याप्त, विलसित, मादक चित्रखडो का सग्रह कर साहित्यिक धरातल पर लोक-शृगार को अभिव्यक्कि दी है। इसलिये यह लोक और नागर दोनो साहित्य का सगम है। इस रचना की श्रेष्ठता का आख्यान केवल इस तथ्य से हो जाता है कि सस्कृत की 'आर्या सप्तशती' ने भी हाल की इस 'गाथा सप्तशती' से प्रेरणा ग्रहण की और सस्कृत साहित्यशास्त्र के श्रेष्ठ ग्रथो मे शृगार रस के उदाहरण के रूप मे हाल की 'सप्तशती' के मुक्तक शृगार के दृष्टात बने। सस्कृत साहित्य के शृगारी मुक्तको की परपरा को इसने प्रभावित तो किया ही, हिंदी साहित्य की इस धारा पर इसका सीधे या सस्कृत के माध्यम से स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अपभ्रश साहित्य मे भी प्रणय और शौर्य के मुक्तक पर्याप्त सख्या में उपलब्ध है। अपनी नूतन और जीवत अभिव्यजना के कारण इनमे अपूर्व सजीवता है। कालिदास के समय से ही ये प्रणय मुक्तक मिलने लगते है। इनमे विप्रलभ शृगार का मार्मिक और जीवत चित्रखड है। हेमचद्र के व्याकरण मे दृष्टात के रूप अपभ्रश के दोहे उद्धृत है जो शृगार रस के अत्यत श्रेष्ठ रत्न है। इन दोहो मे लोकजीवन मे व्याप्त सहज प्रणय की ललित झाँकी है। लोकगीतो की परंपरा मे रचित इन रचनाओ मे गुजरात और राजस्थान के

ओजस्वी, मादक सौदर्य के सहज चित्ताकर्षक रूप की जीवत अवतारणा है जो जनजीवन की होते हुए काव्यशास्त्र की दृष्टि से भी अनुपम है। प्रबध चिंतामणि' मे 'मुज' के शृगारी दोहे भी अत्यत भावप्रवण और मदरजित है। संस्कृत एव प्राकृत की काव्यविधाओ मे निष्णात अद्दहमान (अब्दुर्रहमान) का सदेशरासक भी शृगार गीतिकाव्य की परपरा मे एक नया चरण है। 'मेघदूत' की भाँति के इस गीतिकाव्य मे शृगार अनुपम ढग से उपस्थित है। यह अपभ्रश की अपने क्षेत्र की एक महिमामयी रचना है। इसने भी हिंदी के रीति साहित्य को प्रभावित किया है।

१५ वी शताब्दी के शिवभक्त विद्यापति की अनुपम मागधी पदावलियो मे राधाकृष्ण की प्रेमलीला के मधुर, मार्मिक और शृगारी पक्ष की सूक्ष्म व्यजना हुई है। यद्यपि इन शृगारपरक पदो पर जयदेव का स्पष्ट प्रभाव है तो भी शृगार के आलबन एव उद्दीपन विभाव का जैसा विस्तृत, धार्मिक, जीवत एव सूक्ष्म तथा सजीव वर्णन विद्यापति ने किया है वह अवतक अपनी रसप्रवणता, ध्वन्यात्मकता, आलकारिकता एव सूक्ष्म निरीक्षण की ओजस्विता से उद्दीप्त होने के कारण साहित्य एव लोकजीवन दोनों मे अनन्य भावसपदा के रूप मे सर्वदा से प्रतिष्ठित रहता चला आ रहा है। विद्यापति के पूर्व ही १४ वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे खुसरो ने बोलचाल की भाषा मे अत्यत भावात्मक शृंगाररजित मुक्तक प्रस्तुत किए जो सहृदयो के आकर्षण के केंद्र है।

केवल मुक्तको मे ही शृगार की रागिनी का स्वर रजित नही हुआ अपितु हिंदी के वीरगाथा काव्य मे भी इसका दर्शन हुआ। भले ही इन रचनाओ मे वीर रस की प्रधानता हो किंतु इनमे शृगार का भी अपना स्पष्ट रंग है। कीर्तिलता, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, जयचद प्रकाश, पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, विजयपाल रासो इन सबमे इस तत्व का दर्शन होता है। वीर काव्य मे अवस्थित शृगार के इस पक्ष ने भी रीतिकाल के साहित्य को प्रभावित किया है।

इससे यह स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती रचनाओ की शृंगारिक परपरा रीतियुगीन साहित्य को अजस्र एव अनन्य निधि के रूप में प्राप्त थी। उस युग के लोक जीवन की भी अपनी कुछ विशेषताएँ और सीमाएँ थी। उस युग मे राजसत्ता के संबध मे चर्चा भी प्राणघाती सकट की सूत्रधारिणी बन जाया करती थी। इसलिये उससे प्राय. वे सभी लोग सन्यास ले बैठते थे जो केवल साहस

मात्र को ही जीवन का नियामक नही मानते थे। ऐसे राजसत्ता से विरक्त लोगों मे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व के गुरुगहन कर्तव्य के प्रति जागरूक एव सक्रिय रहनेवाले लोग भी अनेक थे। ऐसे समाजसेवियो का आधार धर्म वना। हिंदू मुसलमान दोनो वर्गों मे ऐसे लोग हुए है जिन्होने लोक को राज-सत्ता निरपेक्ष कल्याणमयी धर्मसत्ता का वोध कराया जो नवीन तो थी ही, युग की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता से भी संवलित थी। यद्यपि धर्म की इस नई स्वच्छद सत्ता का वोध करानेवाले कट्टर रूढिग्रस्त धर्मावना के विरोधी थे, तो भी धर्म के सहज प्राण तत्व से ये अवगत थे। युग की आवश्यकता का ध्यान रख तत्कालीन समाज की स्थिति और परिस्थिति के अनुसार इन्होने जीवन की प्यासी धरती पर अनुराग की भावसरिता वहाने का यत्न किया। मुसलमानो मे प्रेमविह्वल सूफी सत और हिंदुओ मे प्रेम-माधुर्य मे पगे वैष्णव भक्तो ने राजत्रस्त युगजीवन को सहज मनुष्यता का पाठ पढाया। प्रेमसत्ता की तुलना मे राजसत्ता की लघुता का वोध लोक को इन्होने कराया और युग मानस को तृप्तिपूर्ण मधुर सरसता का अजन्म सहज जीवनदान नीरसता के मरु मे किया। सहज तथा त्रासमुक्त होते हुए भी उनकी यह देन अमित आनद की निर्झरिणी थी। इसलिये समाज का चेतन वर्ग उनका उपकृत हो अनुगामी वना। सत्ता के लिये वीभत्स एव कोलाहलमय भयकर होड के मध्य शाति का यह सहज निर्भय पथ आनद का प्रदाता था। इसलिये इनके माध्यम से जीवन को नया आकर्पण मिला और दृप्टि को नूतन ज्योति। इन प्रेमपथो की आलोकमयी छाया मे साहित्यकार ने अपनी सृप्टिरचना आरभ की। प्रेम सवका मूल मत्र वना। जिन सूफी मुस्लिम कवियो ने इस मर्म की अभिव्यक्ति को अपना धर्म समझा उनमें हिंदी की लोकभापा अवधी को माध्यम वनानेवाले कुतुवन, मझन और जायसी विशेप रूप से हिंदी प्रदेश या मध्य देश के आदर के पात्र है। इनके साहित्य के प्रेमतरु के तले भावी पीढी के रचनाओ ने भी शीतल छाया का वोध किया और प्रेरणा ग्रहण की।

मध्य देश ही क्या उस समय तो सारे देश मे ही प्रेम की लहर अछूत जीवन को रसप्लावित करने लगी थी। तमिल मे आलवार भक्त, वगाल मे सहजिया और वाउल वैप्णव, गुजरात मे नरसी भगत, राजस्थान मे मीरा और मध्य देश मे मथुरा, वृदावन को राधाकृप्ण की लीला की केंद्रभूमि

बना उसके प्रवर्द्धन के लिये नाना वैष्णव संप्रदाय देश में मधुरिम प्रेम का प्रसार करने लगे। इन सबसे सभी प्रभावित हुए। क्योंकि इनके सकल्प मे युग की आकाक्षापूर्ति का निर्भय, सहज तत्व था जो तत्कालीन मनुष्य की ग्राहिता एवं वोधमयता के धरातल पर तो था ही, पहले से व्याप्त घोर वाह्याडंवर से भी मुक्त था। इसलिये प्रेम की सहजता ने सबको अपना आलंवन वना लिया था। अतएव सप्रदाय में दीक्षित और सप्रदायमुक्त दोनो वर्ग प्रेमप्लावित हो उसके उपासक वने। इस प्रेमभाव के प्रतीक राधा कृष्ण थे। मध्ययुगीन कला एव सस्कृति का प्रत्येक क्षेत्र—स्थापत्य, चित्र, सगीत एव काव्य—की चेतना के य प्राण है। इन सबके भी आराध्य एव भावाभिव्यक्ति के आलवन रसरजित परम प्रेमी राधाकृष्ण थे। कवि ने उनके सुदर, मधुर, शृंगारविलसित प्रेमस्वरूप को ग्रहण किया जो कालोत्तर विकसित होता हुआ प्रणयलीला की मधुचर्या तक पहुँच गया। रीतिकाल के प्राय. अधिकांश साहित्य मे यह प्रणयलीला है।

इस प्रणयलीला के आराध्य राधा और कृष्ण अपने प्रणयी रूप में सर्वप्रथम हाल की 'गाथासप्तशती' मे प्रकट होते है। प्रथम से छठी शताब्दी के वीच की इस रचना मे व्याप्त उनकी प्रणयलील के अतिरिक्त पहाड़पुर के मदिर में खुदी राधाकृष्ण की मूर्तियाँ, ८ वी शताब्दी के 'वेणीसहार' नाटक के नादी मे केलिकुपिता राधा की उपस्थिति, १० वी शती में मुंज के ताम्रपत्र में अकित लेख में राधा का प्रालेख तथा उसी समय की रचना 'ध्वन्यालोक' मे दृष्टांतस्वरूप प्रस्तुत राधा सबधी पद, १२ वी शती के हेमचंद्र के व्याकरण मे दृष्टात के लिये सकलित दोहो मे उनकी प्रणयलीला का आख्यान और उसी समय की रचना जयदेव के गीतगोविंद मे राधाकृष्ण की केलिकलामय रूपपरक उपस्थापना मिलती है। इस प्रकार १२ वी शताब्दी के पूर्व ही जहाँ प्रेमरूपा भक्ति के आलबन भगवान् श्रीकृष्ण एवं राधा उनकी शक्ति के रूप मे उपस्थित मिलेगी वही दूसरी ओर उनका शृंगार के आलवन विभाव सामान्य नायक और नायिक का भी स्वरूप उपस्थित मिलेगा। यह दूसरा रूप ही रीति साहित्य की मूल चेतना का उत्स है। इस रूप का क्रम-विकास देखना अप्रासगिक न होगा।

साहित्य मे प्रगृहीत राधाकृष्ण का रूप प्रकृतिप्रेमी आभीर सभ्यता का देश को जीवत उपहार है। ऊँच नीच, जाति पाँत और सप्रदाय से मुक्त

मानस से उच्छ्वसित उन्मुक्त प्रेम इस जाति की मूल विशेषता थी । उन्मुक्त नृत्य और सगीत इनकी विशेषता थी और नृत्य के समय गाए जानेवाले रारा राधा-कृष्ण की प्रणयलीला से सराबोर शृगार गीत है । भारत की मूल प्रचीन जाति मे आभीरों के मेल से इनकी सस्कृति के इस रसात्मक जीवत पक्ष से भारतीय जीवन का भावात्मक योग हुआ । इनके शृंगाररजित लोकगीतो ने अपनी जीवनी शक्ति के कारण भारतीय साहित्य के मर्म को प्रभावित किया । धर्म ने भी इसे अगीकार कर लिया और राधाकृष्ण की प्रणयलीला को आध्यात्मिक अर्थगरिमा से मडित कर दिया गया । परपरा और परिस्थिति ने भी साथ दिया । इसलिये राधा एव कृष्ण के इस रूप को आध्यात्मिक बानक मे सजाने मे साहित्यकार को अवरोध का सामना न करना पड़ा । यद्यपि कृष्ण नाम से देश का परिचय महाभारत के समय से ही था तो भी उनके इस नए रूप रग, साज-सज्जा का बोध उस युग को अत्यत मधुर लगा ।

महाभारत मे वासुदेव कृष्ण है, तैत्तिरीयारण्यक मे वे विष्णु के पर्याय मात्र । सात्वत सप्रदाय के वासुदेव आराध्य थे । बालगगाधर तिलक की मान्यता के अनुसार वैष्णव धर्म यदुकुल मे प्रचलित होकर सात्वत मत के नाम से प्रचलित हुआ । कीथ की इस मान्यता का कि वासुदेव एव कृष्ण के अलग अलग व्यक्तित्व का विभेद प्रमाणित करना असभव है, समर्थन श्रीहेमचद्र राय चौधरी भी करते है पर मैक्समूलर, मैकडोनल, हापकिंस, भडारकर आदि विद्वान् विष्णु और कृष्ण की अलग अलग सत्ता के समर्थक है । जो भी हो 'मेघदूत' मे गोपवेषधारी विष्णु की उपस्थिति इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि आभीरो के रसराज कृष्ण एव वासुदेव धर्म के उपदेष्टा कृष्ण छठी शताब्दी के पूर्व ही शृगार एव भक्ति दोनो क्षेत्रो मे अपनी सयुक्त सत्ता स्थापित कर चुके थे । भागवत तथा उसके परवर्ती पुराणो मे कृष्ण की गोपलीला का वर्णन है । इसे भी इस तथ्य के प्रमाण के रूप मे उपस्थित किया जा सकता है । वासुदेव के इस रूप मे आभीरों के कृष्ण के रूप की सहज समन्विति है ।

साहित्य मे राधा का जो रूप ग्रहण किया गया वह कृष्ण की अपेक्षा अल्प वय का है । राधा को विशाखा नक्षत्र के पर्यायी होने के कारण कुछ विद्वान् इन्हे वेद मे भी उपस्थित पाते है क्योकि ज्योतिर्विद् गर्ग ने सूर्य के स्थानीय प्रतिनिधि के रूप मे, सर्वप्रथम कृष्ण का उल्लेख किया है और तारिकाओ के रूप मे गोपियो का । वेद मे राधा विशाखा की पर्यायी है और

कार्तिक पूर्णिमा को सूर्य और विशाखा का अदृश्य मिलन संयोग होता है तथा उस दिन तारिकाएँ सूर्य के चारो ओर मंडलाकार अवस्थित रहती है। इसलिये सूर्य के प्रतिनिधि कृष्ण और विशाखा की पर्यायो राधा का संयोग कार्तिक पूर्णिमा को होता है। यह ज्यौतिष तत्व कविकल्पना का सहारा पा रूपक का रूप ग्रहणकर लोक मे विकसित अन्य कविकल्पनाओ की भाँति जीवन में सहज सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गया और कालांतर मे धर्मतत्व के रूप मे भी ग्राह्य हो गया। इसलिये इसकी प्रतिष्ठा और बढ़ी तथा राधाकृष्ण की लीला जीवन मे सहज सत्य के रूप मे लोक मे प्रतिष्ठा की अधिकारिणी हुई। यह रूपकत्व हो या जो कुछ भी हो, 'भागवत' मे 'राधा' नही है। उसके दशम स्कंध मे कृष्ण की एक विशेष कृपापात्र गोपी का उल्लेख मात्र है। 'पद्मपुराण' तथा जिन अन्य पुराणो मे राधा की चर्चा है, उनकी प्रामाणिकता सर्वथा सदिग्ध है। जो राधा को सांख्य की प्रकृति मानते है, उन विचारकों की मान्यता भी एकागी है। इसलिये यह मानना हो अधिक उचित है कि अनेक तत्वों के योग से राधा के इस रूप का सयोग कृष्ण से हुआ है। इस सबध में डा० शशिभूषण दासगुप्त का यह मत है कि— 'इतिहास की दृष्टि से राधा का संबध आभीर जाति से है। धर्ममत मे उनका ग्रहण साहित्य से हुआ है। धर्ममत मे गृहीत हो जाने पर ही राधा का तत्व रूप धीरे धीरे विकास पाता गया।...१२ वी शताब्दी के विष्णुशक्ति के बारे में जो कुछ भी पूर्व विश्वास, चिंतन और मत है, उस उर्वर भूमि पर मानो उस अत्यत विचित्र मधुर राधा का वीज रोपा गया था। उस वीज ने पुरानी भूमि से भोजन सग्रह करके अपने को नए धर्म, नित्य सौदर्य और माधुर्य मे अभिव्यक्त कर गौड़ीय वैष्णवो मे पूर्ण विकास लाभ किया[१]।'

धर्म का आश्रय पा विद्यापति के पश्चात् राधाकृष्ण का तत्व साहित्य मे नए आर्जव का अधिकारी बना। साहित्य और वैष्णव सप्रदायो मे राधाकृष्ण इतने घुलमिल गए और एक दूसरे के रग से इतने रग गए कि उनके साप्रदायिक और साहित्यिक रूप मे विभाजन की सीधी रेखा खीचना असभव है। इस संयोग का कारण यह भी है कि अपने मत के प्रसार के अभिलाषी सप्रदायो के पास उस युग मे प्रचार के लिये सगीततत्वपूरित पदो के द्वारा मतप्रसार के साधन के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभावशाली

---

१. श्रीराधा का क्रम विकास पृ०, १०० ।

साधन भी न था। इसलिये संप्रदाय के उपदेष्टओ और प्रवर्तको के लिये भी उस युग मे काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक था। अतएव इस युग मे काव्य एव धर्म का योग हुआ तथा प्रबुद्ध लोगो द्वारा काव्य को परम प्रतिष्ठित पद दिया गया। अन्य कलाएँ काव्य के पूरक मे स्वीकार की गईं। इसलिये सगीत और काव्य दोनो ने राधाकृष्ण के इस रूप का विस्तार और प्रसार किया। इस प्रकार साहित्य और धर्म दोनो की परपरा से रीतिकालीन साहित्य लाभान्वित हुआ।

रीतिकालीन काव्य मे रस के प्रसग मे नायक-नायिका-भेद का व्यापक विस्तार है। यह विस्तार रसराज शृगार के आलबन विभाव के रूप मे राधा-कृष्ण के माध्यम से फूला, फला और पल्लवित हुआ। रीतिकाल के साहित्य मे मौलिक चितन का अभाव है, किंतु उसके मूल तत्वो का उत्स सस्कृत साहित्य के शास्त्रग्रथो मे है। इसलिये नायिकाभेद की परपरा का ज्ञान भी प्राप्त कर लेना अप्रासगिक न होगा। सस्कृत साहित्य के शास्त्र ग्रंथो मे आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के २४, २५ और ३४ वे अध्याय मे नायक-नायिका-भेद से सबद्ध सामग्री है।

यद्यपि दृश्यकाव्य के समग्र पक्षो पर विस्तार से प्रकाश डालनेवाले इस ग्रंथ मे अभिनेयता के परिनिवेश मे नायक नायिका के विषय मे सक्षिप्त वर्णन एव विवेचन है, तो भी कामशास्त्र की दृष्टि से इस विषय की चर्चा का सर्वथा अभाव उसमे नही है। अभिनय की दृष्टि से काम के औचित्य की मर्यादा का सयोजन भी उसमे किया गया है। इस ग्र थ मे भरतमुनि ने---जातीय शील, सामाजिक आचार व्यवहार, नायक के साथ नायिका के सयोग एवं वियोग की अवस्था, नायक के प्रति अनुराग के अनुसार नायिका के गुण, नायिका की प्रकृति, वयक्रम से विकासशील कामलीला एव अत पुर मे रहनेवाली नारियो के आधार पर---कुल आठ प्रकार से नायिका का भेद किया है। इन्हे यहाँ देखना अप्रासंगिक न होगा।

[क] जातिगत शील के अनुसार---देवताशीला, असुरशीला, गधर्वशीला, नागशीला, पत्नीशीला, पिशाचशीला, यक्षशीला, व्यालशीला, नरशीला, वानरशीला, हस्तिशीला, मृगशीला, मीनशीला, उष्ट्रशीला, मकरशीला,

वनशोना, सूकरशोला, वाजोशोला, महिषाशोला, अजाशोला एव गोशोला, ये २१ भेद लौकिक एव अलौकिक जातियो के शील के अधार पर है[१]।

(ख) सामाजिक आचार व्यवहार के अनुसार--वाह्या (कुलोना), आभ्यंतरा (सामान्या या वेश्या), वाह्याभ्यंतरा (कृतशौचा--वृत्ति छोड़कर पवित्रतापूर्वक अपने नायक के साथ रहनेवाली वेश्या), जिसके कुलजा और कन्यका दो और प्रभेद है। इस प्रकार इसके तीन भेद हुए और दो प्रभेद। कुल पाँच प्रकार की नायिकाएँ सामाजिक आचार व्यवहार के आधार पर इस वर्ग मे बताई गई है[२]।

(ग) प्रेम की अवस्था (सयोग एवं वियोग) के अनुसार--वासकसज्जा, विरहोत्कठिता, स्वाधीनपतिका, कलहातरिता, खडिता, विप्रलब्धिका, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका, ये आठ भेद सयोग और वियोग के आधार पर नायिका की अवस्था के अनुसार किए गए है[३]।

(घ) नायक के प्रति अनुराग के अनुसार--मदनातुरा, अनुरक्ता तथा विरक्ता, ये तीन भेद नायिका मे नायक के प्रति उत्पन्न कामानुराग के आधार पर किए गए है[४]।

(ङ) प्रकृति के अनुसार--उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा--ये नारी के तीन भेद उसकी प्रकृति के अनुसार किए गए है[५]।

(च) गुण के अनुसार--दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री और गणिका, ये चार भेद नायिका के गुण धर्म के अनुसार किए गए है[६]।

(छ) यौवन वय-विकास-क्रम के अनुसार--प्रथम यौवना, द्वितीय यौवना, तृतीय यौवना, चतुर्थ यौवना--ये चार भेद यौवन के वय-विकास-क्रम के अनुसार किए गए है[७]।

---

१. नाटचशास्त्र--२४।२९२, २९३, २९४, २९५।

२. नाटचशास्त्र--२४।१४२, १४३, १४४, १४५।

३. नाटचशास्त्र--२४।२०३, २०४।

४. नाटचशास्त्र--२५।१९, २०, २१, २२।

५ नाटचशास्त्र--२५।२३, २४, २५।

६ नाटयशास्त्र--२४।७।

७ नाटचशास्त्र--२५।२६, २७।

(ज) अत.पुर की रमणियो के अनुसार महादेवी, देवी,स्वामिनी, स्थापिता, भोगिनी, शिल्पकारिणी, नाटकीया, नर्तिका, अनुचारिका, सचारिका, परिचारिका, प्रेषणचारिका, महत्तरी, प्रतिहारी, कुमारी, स्थविरा तथा आयुक्तिका, ये १७ भेद उन रमणियो के है जो राजप्रासाद मे रहती थी[१]।

विविध आधारो पर किए गए ये भेद इस तथ्य के प्रतीक है कि नाटक मे साहित्यिक रसवत्ता एव अभिनय की रसात्मक दृश्यवत्ता की दृष्टि से साहित्य मे प्रयुक्त सभी प्रकार की नायिकाओ का बाह्य तथा आभ्यतर दोनों रूपो से नाट्यशास्त्र मे वर्णन किया गया है।

आचार्य भरत के बाद आचार्य रुद्रभट्ट ने (नवी शती) नायिकाभेद, 'शृगारतिलक' मे निम्नलिखित रूप मे उपस्थित किया है:—

नायिकाभेद—स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया के प्रभेद—मुग्धा मध्या तथा प्रगल्भा। मुग्धा के प्रभेद—नवयौवना, नव अनंगरहस्या तथा लज्जाप्रायरति। मध्या के प्रभेद—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। प्रगल्भा के प्रभेद—धीरा, अधीरा, धीराधीरा।

अवस्था के अनुसार नायिकाएँ—स्वाधीनपतिका, उत्का, वासकसज्जा, अभिसधिता, विप्रलब्धा, खडिता, अभिसारिका एवं प्रोपितपतिका। इन्होने इन सबके तीन तीन प्रभेद—उत्तमा, मध्यमा और अधमा के नाम से किए[२] है।

इसी शताब्दी मे रुद्रट[३] ने 'काव्यालकार' मे भी लगभग उपरोक्त प्रकार से ही नायिकाभेद का निरूपण किया है।

नायिका के तीन भेद—आत्मीया, प[illegible]ा, वेश्या।

---

१ नाटचशास्त्र—३४।२६, ३०, ३१।

२. रसमजरी, पृ० ३।

३ सस्कृत साहित्य का इतिहास, पोद्दार, पृष्ठ ११५।
अनेक विद्वान यह भी मानते है कि रुद्रट रुद्रभट्ट के पूर्ववर्ती है और उनसे रुद्रभट्ट प्रभावित भी है। कुछ यह भी मानते है कि दोनो एक ही है।
(दे०, सस्कृत आलोचना का इतिहास और काव्यप्रकाश (ज्ञानमडल) की भूमिका।)

आत्मीया के प्रभेद—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। मध्या एवं प्रगल्भा के प्रभेद:—ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा। ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा का मानानुसार प्रभेद—धीरा, अधीरा और मध्या। आत्मीया के अन्य प्रभेद—स्वाधीनपतिका, प्रोपितपतिका।

परकीया के प्रभेद—कन्या तथा अन्योढ़ा।

आत्मीया, परकीया और वेश्या के दो दूसरे भेदों—अभिसारिका एवं खंडिता का भी इन्होंने वर्णन किया है।

अवस्थानुसार अष्ट नायिकाएँ, स्वाधीनपतिका आदि का भी इन्होने वर्णन किया है[1]।

दशरूपककार धनजय ने [१० वीं शताब्दी] नायिका का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया है—

नायिका के भेद—१. स्वकीया-मुग्धा (४ प्रकार), मध्या, प्रगल्भा। मुग्धा के प्रभेद—वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतिवामा, मृदुकोपा। मध्या तथा प्रगल्भा—ज्येष्ठा, कनिष्ठा।

२—परकीया पहले के भेदों के अनुसार है।

२—सामान्या—पूर्ववर्णित भेदो के अनुसार।[2]

भोजराज (११ वी शती) ने 'सरस्वती कठाभरण' एव 'शृंगारप्रकाश' मे अपने समय किए गए नायक-नायिका-भेदो का अत्यत विस्तृत सपादन एव सकलन किया है।

उनके अनुसार नायिका के चार भेद—स्वकीया, परकीया, पुनर्भू और सामान्या। पुनर्भू वात्स्यायन के कामसूत्र से ग्रहण की गई है।

स्वकीया एवं परकीया के प्रभेद —उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा, ऊढा, अनूढा, धीरा, अधीरा, मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा।

पुनर्भू के प्रभेद—अक्षता, क्षता, यातायाता, यायावरा। सामान्या के प्रभेद—ऊढा, अनूढा, स्वयवरा, स्वैरिणी एव वेश्या। वेश्या के भेद—गणिका,

---

१. काव्यालंकार—१।२।५, १७, १८, २१, २३, २६, २७, २८, २६, ३०, ४१।

२. रसमजरी, पृष्ठ ३।

विलासिनी तथा रूपाजीवा। नायिका के अन्य भेद——उदता, उदात्ता, शांता और ललिता।[१]

शारदातनय (१२ वी शती) ने भी भरत से भोजराज तक की सामग्री का उपयोग 'भावप्रकाश' मे किया है।

विश्वनाथ ने (१४ वी शती) नायिकाभेद का आनुषगिक रूप मे स्पष्ट वर्णन किया है। इन्होने स्वकीया मुग्धा के पाँच (प्रथमावतीर्ण यौवना, प्रथमावतीर्ण मदनविकारा, रति मे वामा, मान मे मृदु, समधिक लज्जावती), स्वकीया मध्या के चार (विचित्रसुरता प्ररुढस्मरयौवना, ईपत्प्रगल्भवचना तथा मध्यमव्रीडिता) एव प्रगल्भा स्वकीया के छह (स्मरांधा, गाढतारुण्या, समस्तरतिकोविदा, भावोन्नता, स्वल्पव्रीडा तथा आक्राता) नए भेद किए है।[२]

हिंदी के रीतिकाव्य के नायक-नायिका-भेद को सर्वाधिक प्रभावित करने-वाला भानुमिश्र (१४ वी शताब्दी) का ग्रथ 'रसमंजरी' है, जिसमे स्वतंत्र रूप से नायक-नायिका-भेद को एक ग्रथ का विषय बनाया गया है। वह नायिका का निम्नलिखित भेद प्रस्तुत करता है :——

नायिका के भेद——स्वीया, परकीया और सामान्या।

१. स्वीया——मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा——अज्ञातयौवना, ज्ञात-यौवना। मुग्धा क्रमश· विश्रब्धता के अनुसार नवोढा एव विश्रब्धनवोढा बन जाती है। मध्या——नवोढा होते हुए भी अतिप्रश्रय से वही अतिविश्रब्धनवोढा भी हो सकती है। प्रगल्भा——रतिप्रीतिकती, आनदसमोहवती। मान के अनुसार मध्या और प्रगल्भा के भेद——धीरा, अधीरा एव धीराधीरा। मध्या प्रगल्भा के धीरादिक छह भेद। ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेद पतिस्नेह के आधार पर होते है।

२. परकीया——परोढा, कन्यका, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना एव मुदिता आदि नायिकाएँ परकीया मे अतभु क्त होती है।

३ सामान्या——इनका भेदोपभेद रसमजरी मे नही है इसलिये इसमे वह एक प्रकार की ही मानी गई है।

---

१ दे० रसमजरी, भूमिका भाग, शृंगारप्रकाश, डा० राघवन् (१९६३) सस्कृत साहित्य का इतिहास तथा हिंदी रीतिपरपरा के प्रमुख आचार्य——डा० सत्यदेव चौधरी।

२. दे० साहित्यदर्पण——३। २९-८७।

ये सभी नायिकाएँ मुग्धा को छोडकर तीन प्रकार की होती हैं। ये अन्यसभोगदुखिता, वक्रोक्तिगर्विता और मानवती में वर्गीकृत की जाती है। गर्विता, प्रेमगर्विता और सौदर्यगर्विता। मानवती--लघुमानवती, मध्यमानवती और गुरुमानवती होती है।

इस प्रकार स्वीया १३, परकीया २, सामान्या १, तीनो मिलकर १६ प्रकार की नायिकाएँ भानुदत्त ने रची। अवस्थाभेद के कारण प्रत्येक के आठ प्रकार होते हैं--प्रोषितपतिका, खडिता, कलहातरिता, विप्रलब्धा, उत्का, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, तथा अभिसारिका। इस प्रकार ये सब (१६ × ८) १२८ प्रकार की हुई। ये उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा भेद के अनुसार (१२८ × ३) = ३८४ प्रकार की हुई। दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या भेदो के अनुसार ये (३८४ × ३) = ११५२ भेदो मे विभाजित होती है। प्रवत्स्यत्पतिका की चर्चा भी इन्होने की है[१]।

रूप गोस्वामी ने अपने ग्रथ 'उज्ज्वल नीलमणि' मे स्वकीया की अपेक्षा परकीया को अधिक महत्व दिया है। चैतन्य द्वारा प्रवर्धित गौडीय वैष्णवों में गोपियो की कृष्ण के प्रति की गई अटूट श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक रतिभाव की उपासना नैसर्गिक और आदर्श मानी गई। इसलिये मधुर रस की सृष्टि उन्होने की और श्रीकृष्णविषयक रति को उन्होंने मधुर रस का स्थायी भाव माना तथा परकीया को स्वकीया से श्रेष्ठ ठहराया[२]।

इस प्रकार रीतिकालीन नायिकाभेद के साहित्य को परपरा का सवल आधार प्राप्त था। इस रीतिकाल के ऐसे कवियो को जिन्होने रसचर्चा के प्रसग मे विस्तारपूर्वक नायिकाभेद का लक्षण एव उदाहरण प्रस्तुत किया है, उन्हे शास्त्र कवियो के रसनिरूपक परंपरा के उपभेद के अतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। रस के विशद एवं गंभीर विवेचक की दृष्टि से इनका महत्व नही किंतु रस के एक उपाग को प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनका महत्व है। रस के सभी अगो तथा साहित्यशास्त्र के अन्य तत्वों एवं सिद्धातो के गुण धर्म का

---

१. रसमजरी, पृष्ठ, ५-८। नागरीप्रचारिणी सभा पत्रिका, अक, २, ३, ४, वर्ष ६४, सस्कृत मे नायिकाभेद तथा रसिकजीवनम्---प० करुणापति त्रिपाठी।

२. दि पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट आव बंगाल--डा० मनीद्रमोहन बोस, सन् १९३०, पृ० १९-९७।

विवेचन कर रस की गरिमा की स्थापना करना इनका ध्येय नही था। काव्य के माध्यम से कलावत की भाँति सहृदय की रंजना करना मात्र इनका मूल ध्येय था। इसके साथ ही इनका ध्येय काव्य द्वारा अपने गुरुत्व की स्थापना और पाडित्य प्रदर्शन द्वारा अपनी ज्ञानगरिमा का बोध सहृदय को करा कर अपनी शिक्षा और महिमा का आतक जमाना भी था। विश्वनाथ की भाँति की गंभीरता का तो प्रश्न ही नही उठता, भानुमिश्र और अकबरशाह को आधार मानकर शास्त्रकवियों ने ग्रथनिर्माण किए। इनमे भी तीन प्रकार के कवि हुए। एक तो वे जिन्होने सभी रसो का निरूपण किया, जैसे—बलभद्र, केशव, तोप, शुकदेव, देव, श्रीपति, भिखारी, रसलीन, रघुनाथ, उदयनाथ, पद्माकर, बेनी, करन और ग्वाल। दूसरे ऐसे रसनिरूपक शास्त्रकवि हुए जिन्होने केवल शृगार तक ही अपनी गतिविधि सीमित रखी। इनमें मोहन, सुदर, मतिराम, मजन, शुकदेव, देव, आजम, सोमनाथ, उदयनाथ, भिखारीदास, देवकीनदन, लालकवि, यशवतसिह आदि है। तीसरे वर्ग मे ऐसे कवि आते है जिन्होने केवल नायिकाभेद के ही ग्रथ लिखे। इनमे कृपाराम, सूरदास, रहीम, नददास, चितामणि, देव, यशोदानदन आदि प्रमुख है। इन शास्त्रकवियो को रसपरपरा के उपभेद के भीतर अतर्निहित करना चाहिए।

एक वर्ग इन शास्त्रकवियो मे ऐसे कवियो का है जो अप्पय दीक्षित और जयदेव को आधार मानकर अलकार का निरूपण करता है। यद्यपि, भामह, दडी एव उद्भट जैसी व्यापकता इनमे नही है और न यह क्षमता ही है कि वे अलकार के अतर्गत अन्य काव्यागो को अतर्भुक्त कर सके तो भी ऐसे अलकारनिरूपक शास्त्रकवियो के उपभेद मे इन्हे रखा जा सकता है। ऐसे कवियों मे केशवदास, जसवत सिंह, मतिराम, भूषण, सूरति मिश्र, श्रीपति, याकूब, भूपति, रघुनाथ, दूलह, रतन, बेनी, मान, पद्माकर, ग्वाल आदि की गणना की जा सकती है।

तीसरे उपवर्ग के अंतर्गत ऐसे विविधाग निरूपण करनेवाले शास्त्रकवि आते है जिन्होने रस के विविध अगो का लक्षण और परिचय प्रस्तुत किया है। वे साहित्य के ध्वनि, अलकार, वक्रोक्ति, रस और रीति इन पाँचो वादो से न तो गभीरतापूर्वक परिचित थे, न जिन्होने मम्मट और विश्वनाथ के साहित्य का अत्यत सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन ही किया था। इनपर मूलत. मम्मट और विश्वनाथ का ऋण तो है, पर इनकी ज्ञानसीमा अत्यत सकुचित है।

सर्वांगनिरूपक शास्त्रकवियो मे केशव, चितामणि, कुलपति, देव, सूरति मिश्र, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारी दास, जगतसिंह, प्रतापसाहि और ग्वाल आदि की गणना की जा सकती है

पिगल ग्रथो की भी रचना केशव, चितामणि, मतिराम, देव, भुजग, सोमनाथ, रामसहाय दास, अयोध्याप्रसाद वाजपेयी आदि ने की।

इस युग के शास्त्रकवि के अतिरिक्त रीति को आधार बनाकर काव्य करने वाले कवियो की एक श्रेणी और है, जिन्हे काव्यकवि माना जाय, लक्ष -कवि माना जाय या शास्त्रकवि माना जाय पर इनका भी ज्ञान अपनी रचना के लिए नायिकाभेद, अलकार, रस, रीति और ध्वनि का था। रीति से इतर या मुक्त कहे जानेवाले घनानद, आलम, ठाकुर और बोधा भी इन सस्कृत साहित्य के आचार्यो के ग्रथो के परिचय से सर्वथा मुक्त नही। यद्यपि भावपरकता की दृष्टि से इनकी विलग महत्ता है।

जीवन मे सदाचारमात्र की प्रतिष्ठा के पक्षपाती, नैतिकतामात्र के दर्शन के अभ्यासी संत दृष्टिवालो को रीतियुग'का काव्य अत्यत हीन एव मानवीय अधोगति का आगार लगता है और असास्कृतिक तथा अश्लील भी। सतत्व एव नैतिकता की प्रतिष्ठामात्र ही जीवन नही है और न साहित्य केवल नीति एव दर्शन का वाङमय। यह अनुभूति की रसात्मक अभिव्यक्ति है जिसका अपना दर्शन है और जिसकी अपनी नैतिकना है। यह नैतिकता और दर्शन व्यक्ति और कालपरक है। साहित्यकार का दर्शन उसके अनुभव के परीक्षण के आधार पर अनुभूति की अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रस्फुटित होता है और उसकी नैतिकता का आधार भी यही से जीवत है। साहित्यकार का दर्शन दर्शनशास्त्र नही और न उसकी नैतिकता आचार सहिता है। उसकी निजी नैतिकता एवं उसका दर्शन लोक मे साहित्यकार द्वारा नाना प्रकार के भोगो के अनुभव का परिणाम होता है। उस युग का दर्शन पहले किया जा चुका है। श्रेष्ठ नैतिक मूल्यो के लिये उस समाज मे स्थान का सकोच था। युगजीवन की मूलचेतना भौतिक सुखभोग की थी। उसी के लिये सभी यत्नशील थे। यहाँ तक कि अर्द्धनग्न तथा अर्द्धक्षुधित समुदाय का भी आदर्श उसी सुखवैभव का भोग था, जिसे राजा और सामत तथा समाज मे उच्च समझा जानेवाला वर्ग अगीकार किए हुए था। सामती नागर वातावरण मे उद्भूत और प्रणीत उस युग का रीति-साहित्य केवल दरबार की शोभा बनकर नही रह

गया, वह जनता तक पहुँचा और उसे दरवारी जीवन मे जो स्नेह प्राप्त हुआ उससे कम लोकजीवन मे न मिला। अनेक कवियो की रचनाएँ तो इतनी लोकप्रिय हुई जितनी लोकप्रियता वाद की श्रेष्ठ कही जानेवाली रचनाओ को भी न मिली। इसके मूल कारण पर गभीरतापूर्वक विचार करने पर सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उस युग का कवि जन सामान्य से दूर रहकर भी उसके मानस से दूर न था। यद्यपि राजप्रासादो की प्राचीरो के घेरे मे कवि की वाणी मुखरित होती थी तो भी जनता की आकाक्षा और स्वप्न का स्वर उसमे होने के कारण वह उसे प्रिय लगती थी। इसलिये भावों का सामाजीकरण करने मे उस युग के कवि की रचनाएँ समर्थ सिद्ध हुई। इतना ही नही, सामती वैभव के आस्वाद से प्रस्फुटित उसकी अभिव्यक्ति का स्वर भौतिक धरातल पर न सही, मानसिक स्तर पर जनसामान्य को उस वैभव का आस्वाद कराने मे समर्थ सिद्ध हुआ। उस युग के काव्य की यह गुणगरिमा लोक के स्नेह का आधार बनी। श्लीलता और अश्लीलता का मानदड व्यक्ति, समाज एव कालसापेक्ष है। सिद्धात मे वेष्ठित कर सेक्स का जितना असामाजिक नग्न प्रदर्शन उच्चसाहित्य के स्रष्टा बननेवाले अनेक जन आज कर रहे है उतनी वीभत्सता रीतिकाव्य की कामलीला मे नही है। ऐसी स्थिति मे रीतिकाल के साहित्य को सर्वथा अवाछित मानने का आग्रह केवल दुराग्रह या भावावेश मात्र है।

रीतियुग की भाषा शुद्ध टकसाली व्रजभाषा नही है और इस भाषा का भक्तिकाल मे जैसा विकास हो रहा था उसे देखते हुए रीति साहित्य की भाषा अधिक प्रवुद्ध भी नही है। व्रजभाषा पर केवल देशी भाषाओ का ही प्रभाव नही राजभाषाओ और सवल देशी रजवाडो की वोलियो का भी प्रभाव पडा। इस प्रकार रीतियुग की व्रजभाषा मे जहाँ सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश से शब्द गृहीत हुए, वही मुगलो की राजभाषा फारसी और धर्मभाषा अरवी के शब्द भी इसमे मिले और वुदेलखडी, अवधी और पूरवी वोलियो के शब्द भी धडल्ले से प्रगृहीत हुए। इस प्रकार जहाँ व्रजभाषा को व्यापक शब्दभडार इस भाषा के व्यापक प्रसार के कारण प्राप्त हुआ, वही भाषा के प्रतिमानीकरण की ओर लोगो का ध्यान नही गया। इस युग के कवियो ने अनुप्रास, चमत्कार और ध्वनि प्रदर्शन के लिये शब्दो को तोडने मरोडने मे भी हिचकिचाहट नही दिखाई इसलिये भी भाषा का प्रतिमानीकरण न हो सका।

क्षत्रपति शिवाजी और औरगजेब, अपने समय की दो महान् शक्तियाँ थी, जिनपर सारे समाज का ध्यान था और उनके कृतित्वपर लोगो की आशा थी। इनका तिरोधान क्रमशः सन् १७६० ई० और सन् १६८० ई० मे हुआ। औरगजेब की मृत्यु के बाद मराठो का उत्कर्ष हुआ, किंतु सही अर्थो मे वे आलोकविंदु न बन सके। यद्यपि कविवर सोमनाथ औरगजेब के समय मे उत्पन्न हो गए थे तथापि उनके कविताकाल मे अनेक मुगल सम्राटो ने शासन किया। बहादुर शाह (सन् १७०७–१७१२ ई०), जहाँगीरशाह (१७१२–१७१३ ई०), फर्रुखसियर (१७१३–१७१९ ई०) मुहम्मदशाह (सन् १७१९–१७४८), और अहमदशाह (१७४८–१७५०) ने अपनी शक्ति के बल पर शासन किया।

शाहजहाँ के समय ही आर्थिक दृष्टि से मुगल साम्राज्य सत्वहीन होने लगा था और औरगजेब के बाद तो वह तत्वहीन भी हो गया था। ऐसी स्थिति मे सूबेदार स्वतंत्र हो अपनी राज्यसत्ता की स्वतंत्र स्थापना करने लगे थे और सर्वत्र व्याप्त अविश्वास के वातावरण मे सम्राट् निम्न कोटि की विलासिता और भोग मे आत्मसंमान को आहुति दे प्रतारणा सहकर भी अपना जीवन काट देना चाहते थे।

जब विपत्ति आती है तो आपदा का तूफान चतुर्दिक रहता है। इस काल मे जहाँ अतर्विद्रोह सत्ता और सपत्ति के लिये नित्य की साधारण घटना हो गई थी वही शक्ति एवं सत्वहीनता के कारण विदेशियों के लिये आक्रमण और लूट का द्वार भी खुल गया था। नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के क्रमशः सन् १७३७ ई० एवं १७४८ ई० के हमलों, कत्लेआमो तथा लूट ने मुगल साम्राज्य को पगु बना दिया और देश तबाह हो गया। मुहम्मदशाह के नाम से २८ सितंबर मन् १७१९ ई० को एक अनुभवहीन राजकुमार रौशन अख्तर दिल्ली के तख्त पर बैठा और २६ अप्रैल १७४८ ई० को वह गत हुआ। सैयद बधुओं की कृपा से उसे यह पद प्राप्त हुआ इसलिये वह उनकी कठपुतली था।

रीतिकालीन साहित्य का यह सामान्य परिचय इस बात का साक्षी है कि रीतिकाल मे जहाँ एकरसता तथा भावव्यजना की एक प्रकार की विधागत उदासी है, वही शृगार और ऐसा शृगार भी है जो बिना किसी हिचकिचाहट

के सहज मानवीय महत्व का परिचायक है। रहस्यानद या ब्रह्मानद से रसानद की ओर उन्मुख होना कम महत्व की बात इस दृष्टि से नही है कि हिंदी साहित्य मे बाद मे जो मानवीय स्वर लोकजीवन मे व्याप्त हो जीवन के समस्त राग विरागो को लेकर साहित्य मे मुखरित हुआ उसका कामात्मक उत्स यहाँ आरभ होता है। भले ही जीवन के तथा प्रवृत्ति के विविध रूपो एवं अगो की विविधता इस युग के साहित्य मे न मिले तो भी जिस एक अग विशेप के विपय मे इस युग मे सृष्टि की गई है, उसमे एक श्रेष्ठ शिखर तक उस युग के कवि पहुँचे हैं। इसमे सदेह के लिये स्थान भी नही है। बारीक कारीगरी के इस युग मे काव्य मे भी वही सामंती वृत्ति-प्रवृत्ति और बारीकी है जो तत्कालीन युग का प्रतीक है।

इसी बीच मुगल साम्राज्य के समय ही जाटो का उदय हुआ। जाटों ने सिनसिनी, भरतपुर, मुरसान, हाथरस, बमरोली, धौलपुर आदि स्थानो में अपने राज्य स्थापित किए। भरतपुर के जाट राजे सिनसिनीवार कहे जाते है। मुगलकाल मे सर्व प्रथम विद्रोह नदराम जाट ने किया था, जो सन् १६६९ मे दबा दिया गया। फिर गोखला जाट ने विद्रोह किया, उसका भी वध कर दिया गया। राजाराम जाट ने गोखला के बाद सन् १६८५ ई० मे विद्रोह किया था, जब कि औरगजेब दक्षिण मे था। कूड और सिनसिनी में उसने किले बनाए। इसने अपना राज्य धौलपुर, मथुरा और आमेर तक बढाया। इसने अकबर के मकबरे को लूटा और कहा जाता है कि यह अकबर की हड्डियाँ भी खोदकर ले आया। औरगजेब के पौत्र बेदार बख्त ने उसके विरुद्ध कठोर कदम उठाया। उसकी मृत्यु सन् १६८८ ई० मे हुई। उसके बाद राजाराम के पिता भज्जासिह ने जाटो का नेतृत्व किया। सन् १६९० ई० मे औरगजेब के आदेश पर जयपुरनरेश राजा विशनसिह और बेदारबख्त ने सिनसिनी पर आक्रमण किया, जिसमे राजाराम का पुत्र जोरावर मारा गया। तदनंतर राजाराम का भतीजा चूड़ामन इनका सरदार बना। औरगजेब की मृत्यु के बाद इसका प्रभाव बढा और औरगजेब के पुत्रो के उत्तराधिकार के युद्ध मे इसने मुगलसम्राट् के दोनो पुत्रो—मुअज्जम और दारा के दलों को लूटा! जब मुअज्जम सम्राट् हुआ तब उसने चूडामन से सुलह की और उसे दरबार का सरदार बनाया और चूडामन सचमुच राजा बन बैठा। फर्रुखसियर के समय वह दिल्ली से धौलपुर तक का सूबेदार बना दिया गया।

जाट साम्राज्य का सही सस्थापक चूड़ामन का सन् १७२१ मे देहात हो गया। उसका भतीजा वदनसिह सन् १७२१ मे गद्दी पर वैठा। उसने ३४ वर्ष तक शासन किया। उसने डीघ मे दुर्ग वनवाया और जाट राज्य की स्थापना की। यह कुशल राजनीतिज्ञ और साहित्यप्रेमी भी था। यह वदन और वदनेश नामसे रचना करता था। यह कलाकारों और साहित्यकारो का सरक्षक था। कविवर सोमनाथ इसी के समय मे जाटो के दानाध्यक्ष हुए। इसके वाद वदनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल सन् १७५५ ई० मे गद्दी पर बैठे और उन्होने सन् १७६३ ई० तक राज्य किया। सूदन ने सुजान चरित्र मे इनके सात युद्धो का वीरतापूर्ण वर्णन किया है। इन्होने सन् १७५३ ई० मे दिल्ली लूटी। सन् १७५७ ई० में अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ, पर यह दीघ के अपने किले में वैठा रहा। इसने सन् १७६१ के पानीपत के युद्ध मे भी मुगलो का साथ नही दिया और युद्ध के बाद उसी वर्ष आगरे को लूटा और उसे अपने राज्य मे मिला लिया। इसने हरियाने को लूटकर अपने पुत्र जवाहर सिह को वहाँ का सूवेदार बना दिया। यमुना से चंवल तक इसका राज्य विस्तृत हो गया। दिल्ली को अपने राज्य मे मिलाने के लिये इसने उस पर भी चढ़ाई की। इसका ध्येय दिल्ली पर अधिकार करना था, किंतु इतने में गोला लगने से इसकी मृत्यु हो गई। यह भी कलाप्रेमी, साहित्यसरक्षक था। स्थापत्य कला की दृष्टि से इसने दीघ मे भवनो का निर्माण कराया। इसकी अनेक रानियाँ थी, जिन्होने गोवर्धन, मथुरा और वृंदावन मे घाट, मदिर और वाग वनवाए। जवाहर सिह सन् १७६३ से १७७८ ई० तक शासक रहा। यह भी वीर था। इसने सन् १७६४ ई० मे दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और शाहदरा को लूटा। दिल्ली को लूट मे चित्तौड़ के ऐतिहासिक हार को साथ ले यह वापस लौट आया, क्योकि जाट सरदार युद्ध के लिये तैयार नही थे। सन् १७६८ मे इसका वध हो गया। इन तीनो राजाओ के दरवार मे सोमनाथ थे, किंतु मूलत उनका सबध प्रतापसिह से था। उन्होने तीनो के लिये साहित्य रचना की थी। प्रोफेसर कानूनगो की मान्यता है कि प्रताप-सिह वहादुरसिंह के कनिष्ठ पुत्र थे, जिन्हे वैर का किला मिला था। फ्रैसू यह मानता है कि यह मध्यवर्ती पुत्र थे और इनका स्थान दूसरा था। इमा-दुस्सादत मानता है कि वदनसिह का वडा पुत्र सूरजसिह मालिक वना जो अपने भाई प्रतापसिह से वड़ी दोस्ती रखता था····· वह (प्रतापसिंह) अपने वड़े भाई का वड़ा आज्ञाकारी था और उसे वाप की

जगह मानता था। वह वहुत काविल, इन्सान पहचाननेवाला और मुसलमानों से दोस्ती रखनेवाला था। उसका लिवास देहली के बडे वड़े अमीरो की तरह था। उसका लडका वहादुरसिह अपने पिता से भी एक पग आगे निकल गया। उसने कुरान का भी अध्ययन किया। 'सुलाजमी' तक उसने कुरान पढा। फ़ैमू ने तवारीखेहिंद मे लिखा कि प्रतापसिंह ने भरतपुर की सेना का नेतृत्व किया और मुगलों की ओर से दिसवर सन् १७३७ ई० मे भोपाल के युद्ध मे वाजीराव पेशवा से लडा। यद्यपि सूदन ने यह माना है कि निजाम और प्रताप दोनो की यह विजय थी। इसके वाद प्रतापसिंह की चर्चा नही मिलती।

फ्रेंच मैनुस्क्रिप्ट

Mewoııs de L' oigıne accoıssτment et etat present de puissance des jats daus L. Indostan ii de partie, suıte des memoırs des patans.

फ़ैमू ने अपने फ्रेंच मैनुस्क्रिप्ट मे लिखा है कि प्रताप का लडका वहादुर-सिह वहुत उदार था और अपने अन्य जातीय लोगो से वह अधिक उदार था भो। इसी फ्रेंच हस्तलेख मे लिखा है कि सूरजमल के साथ ही प्रताप को हिस्सा दिया गया था और सूरजमल सन् १७५६ ई० के वाद इसे जहर पिला-कर इससे मुक्त हुआ। यह भी कहा जाता है कि प्रताप को इसने कैद भी कर लिया था। वहादुर सिंह ने भी सूरजमल का साथ दिया और आस्था-पूर्वक उसकी सेवा की। सन् १७५४ से मराठो के खिलाफ उसने आक्रमण भी किया और उसका पदवर्धन भी किया गया। वह धनी और शक्तिशाली था। उसके पास अच्छी सेना थी। वह सूरजमल के वाद वैर का राजा होना चाहता था। उक्त मान्यता बहादुर सिह के सवध मे कानूनगो की है। इसके आगे फ्रेंच मैनुस्क्रिप्ट मे वहादुर सिंह का इतिहास इस प्रकार लिखा है कि जवाहर सिह को यह पसद नही था इसीलिये उसने उसके खिलाफ सन् १७६५ ई० मे वैर पर चढाई की और वहादुरसिह को वदी वना लिया। जवाहर सिंह के भाई रतन सिंह के पुत्र उत्पन्न होने पर अप्रैल सन् १७६६ मे वह मुक्त किया गया।

गगा सिह ने सेटिलमेट रिपोर्ट मे लिखा है कि मुक्ति के वाद वहादुर सिंह को वारह गॉव गुजारे के लिये दिए गए, शेष जव्त कर लिए गए।

यह उन शासको की बात हुई जिनके दरबार मे कविवर सोमनाथ रहे। मध्यकाल के यशस्वी शास्त्र कवि आचार्य सोमनाथ जाट नरेशो की काव्यप्रेम की परपरा के प्रतीक है और इनका साहित्य हिंदी की महत्वपूर्ण निधि है।

कविवर सोमनाथ भरतपुर के वैर के शासक श्री प्रताप सिह के आश्रित परम पडित कवि थे। जाटराज परिवार मे सर्वत्र इनका आदर और समान था। इन्होने स्वय अपना परिचय अपने ग्रथो मे दिया है।[१] श्री छिरौरा (मथुरा के निकट एक गाँव) वंश के माथुर चौबे थे। इनके कुल मे पठन पाठन और विद्याभ्यास की परंपरा बड़ी पुरानी थी। इनके पूर्वज नरोत्तम मिश्र जयपुर के राम सिह के मंत्री गुरु थे। उनके पुत्र थे :

१. देवकीनदन मिश्र २. श्रीकात मिश्र

देवकीनदन भी अपने समय के विख्यात कवि तथा विद्वान थे। श्रीकात मिश्र भी कवि और लोकसिद्ध पडित थे। देवकीनदन मिश्र के चार पुत्र थे, नीलकठ, मोहन, महामणी और राजाराम। सब के सब योग्य पंडित और रसिक कवि थे। नीलकठ मिश्र कवि सोमनाथ के पिता तो हिंदी के प्रसिद्ध कवि थे ही साथ मे सुप्रसिद्ध और अति प्रतिष्ठित ज्योतिषी भी थे। नीलकंठ के लड़के आनद-निधि, गगाधर और सोमनाथ थे। आनदनिधि और गंगाधर भी प्रसिद्ध पडित और कवि थे तथा सोमनाथ अपने समय के सर्वांग कवि, पडित और आचार्य थे। परिवार और परपरा से संपुष्ट एव सराधत विद्वत्ता की परपरा सोमनाथ के भीतर काव्य और पाडित्य का बहुत प्रभाशाली सस्कार भर गया। उसके साथ ही जिस राजदरबार मे कवि थे वह गुणो का, विद्वानो का और कलाविदों का स्वागत करनेवाला तथा तेजस्वी कलाग्राही परिवार रहा है। वास्तव में जिस क्षेत्र मे सोमनाथ थे वह वर्तमान राजस्थान का अग है तो भी उसकी सारी सस्कृति और साहित्य ब्रज सस्कृति और साहित्य से प्रभावित रहा है और कलानिधि जैसा विख्यात कवि और साहित्यकार अन्यान्य विश्रुत कवि कलाकारो के साथ उनका सहकर्मी वहाँ था।

जिस क्षेत्र मे सोमनाथ की कर्मभूमि थी वह ब्रज का प्रभावक्षेत्र रहा है और सर्वदेव उपासना की परपरा वहाँ पर चलती रही है। जिस राज-

---

१ रसपीयूषनिधि, सुजान विलास, माधव विनोद, ध्रुवविनोद, शशिनाथ विनोद, ब्रजेंद्र विनोद, रामकलाधर, रामचरित्र रत्नाकर आदि।

दरबार मे सोमनाथ जी थे उस भरतपुर का इतिहास बहुत प्राचीन न होते हुए भी अत्यत महत्वपूर्ण रहा है। यहाँ के लोग दृढनिश्चयी, वीर और साहसी होते है। वर्तमान भरतपुर राज्य की स्थापना बदन सिह द्वारा सन् १७१८ मे हुई और डीघ नामक स्थान पर इसकी राजधानी बनाई गई। इनके दो लडके थे, सूरजमल जाट और दूसरा प्रताप सिह। सूरजमल जाट को डीघ का शासन और प्रताप सिह को वैर का शासन बदन सिह जी ने सौपा था। बदन सिह की मृत्यु के बाद सुजान सिंह गद्दी पर वैठे जिन्हे सूरजमल के नाम से भी लोग जानते है। इन्ही सूरजमल ने १७३२ ई० मे भरतपुर पर अपना आधिपत्य कायम किया। प्रताप सिह सूरजमल के छोटे भाई थे। वे साहित्यकारो, विद्वानों, कलाकारो आदि को आश्रय देनेवाले उदारमना राजा थे और उन्होने सोमनाथ जी को अपने राजदरबार का प्रमुख कवि बनाया। बदन सिंह, सूरजमल का भी विश्वास, स्नेह, आश्रय सोमनाथजी को प्राप्त था। वास्तव मे बदन सिह के समय से ही इस परिवार के यह आश्रित कवि थे। बदन सिह के समय से ही वे इस राज्य के दानाध्यक्ष थे। प्रताप सिंह के पुत्र बहादुर सिंह का आश्रय भी कवि को प्राप्त हुआ था। तीन तीन पीढी का विश्वास, स्नेह और समान की प्राप्ति सोमनाथ के लोकप्रिय, दृढ और तेजस्वी व्यक्तित्व की परिचायिका है।

उनके मकान का चित्र अत्यत खोजबीन के उपरात उपलब्ध हुआ है। महाराजकुमार प्रताप सिंह के परिवार के लोग अब भी वैर में है और सोमनाथ के परिवार के लोग भी वहाँ है। सोमनाथ जी ने काव्य मे अपने को शशिनाथ, सोमेश्वरनाथ भी लिखा है। कुछ प्राचीन विद्वान सामग्री के अभाव मे भ्रमवश इनको विलग विलग कवि मानते रहे है।

सोमनाथ की कविता का काल सवत् १७५६ से १८१७ तक माना जा सकता है क्योकि स्वय उन्होने अपने ग्रथो की पुष्पिका मे अपनी रचनाओ का काल दिया है जिससे उनका काव्यकाल उक्त समय ठहरता है।

सोमनाथ जी हिंदी के जाने माने मध्यकाल के श्रेष्ठ कवि थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल उन्हे काव्याग निरूपक श्रीपत और भिखारीदास की कोटि का मानते है। इन्हे कविकर्म मे शुक्ल जी ने सफल माना है। इसके पहले के ग्रथो मे भी सोमनाथ जी की पर्याप्त चर्चा है और वह चर्चा उनके गुणधर्म के कारण है।

इनके ग्रंथो को देखने से यह भी पता चलता है कि ये नवाब आजम खाँ (शाह आजम) के दरबार मे भी कुछ दिन रहे और वहाँ पर नवाबोल्लास नामक ग्रंथ की इन्होने रचना की।

सभा की खोज रिपोर्टो मे उनके निम्नांकित ग्रथ उपलब्ध होते है।

(१) कृष्ण लीला पचाध्यायी
(२) ध्रुव चरित्र
(३) प्रेम पच्चीसी
(४) ब्रजेंद्र विनोद (भागवत) दशम स्कंध।
(५) माधव विनोद (नाटक)
(६) रसपीयूषनिधि
(७) राम कलाधर
(८) रामचरित्र रत्नाकर
(९) शृंगार विलास
(१०) सुजान विलास

मत्स्य प्रदेश की हिंदी साहित्य को देन सबंधी शोध प्रबन्ध में डा० मोतीलाल गुप्त ने इनके दस ग्रन्थो की चर्चा की है :

(१) ध्रुव विनोद
(२) महादेव को ब्यालो
(३) सुजान विलास
(४) रसपीयूष निधि
(५) प्रेम पच्चीसी
(६) सग्राम दर्पण
(७) ब्रजेंद्र विनोद
(८) रास पचाध्यायी
(९) शशिनाथ विनोद
(१०) रामायण का अनुवाद

हमे जो ग्रंथ प्राप्त हुए है और जो हमने इस ग्रंथावली में दिये है वे है :

(१) रसपीयूषनिधि
(२) शृंगार विलास

(३) माधव विनोद
(४) महादेव को व्यालो या शशिनाथ विनोद
(५) ध्रुव विनोद
(६) सुजान विलास
(७) प्रेम पच्चीसी
(८) सग्राम दर्पण
(९) व्रजेद्र विनोद
(१०) रास पचाध्यायी और
(११) राम-चरित्र-रत्नाकर

इससे लगता है कि इनके सभी ग्रथ उपलब्ध हो गए है और हो सकता है कि कुछ छोटे मोटे ग्रथ या कुछ पद्य इधर उधर बिखरे पड़े हो जिनको इसमें संगृहीत न किया गया हो।

कवि सोमनाथ के ग्रथो का अध्ययन किया जाए, इसके पूर्व उस देश काल का सक्षिप्त ज्ञान आवश्यक होगा जिसके बीच सोमनाथ जी रहे। श्री सोमनाथ का कार्यक्षेत्र वह प्रदेश रहा है, जहा वैष्णव सस्कृति के मध्यकालीन काव्य की अजस्र धारा बहती रही। वैर क्षेत्र सहज ही गोवर्धन से मिला रहने के कारण और मथुरा तथा आगरा के पास का नगर होने के कारण एक और जहाँ मध्यकालीन धार्मिक वैष्णवी सस्कृति का केद्र रहा है, वही मुगल सभ्यता और सस्कृति की छाया भी उसपर पडती रही है और मुगल वैभव से उनकी प्रतिस्पर्धा भी थी। मुगलो के कमजोर होने पर जाट प्रभुत्व मे आए और इन्होने भरतपुर के इतिहास मे अपना गौरवशाली स्थान बना लिया। यद्यपि भरतपुर राजस्थान का अग रहा है तो भी वह सदा से आगरा और मथुरा के निकट तथा उसके प्रभाव के कारण इसको व्रज प्रदेश का सहज अग माना जाना अधिक उचित होगा।

इन तथ्यो की दृष्टि से जब हम उसके सास्कृतिक पक्ष की ओर जाते है तो एक मध्यकालीन उस सस्कृति के दर्शन होते है जो मुगलो के दरबार मे जन्मी, पनपी और बढी। सामान्य जीवन यहाँ के राजाओ का, राजघरानो का, कवियो और पडितो का वही था जो मुगल दरबार मे था। जहाँ तक भाषा का सबध है, व्रजभाषा इस क्षेत्र मे सर्वत्र काव्य की तथा साहित्य की भाषा रही है। हम लोग यह मान बैठे है कि मध्यकाल मे केवल शृगारिक

काव्य और भक्ति संबधी साहित्य को ही प्रश्रय प्राप्त होता था किंतु वस्तु-स्थिति यह है कि समाज मे जितने विषय अगीकृत थे, सभी के ऊपर साहित्य की रचना होती थी और स्वतंत्र अनुवाद का काम भी होता था। भरतपुर के कवियो ने अनेक क्षेत्रो यथा ज्योतिप, समर, वास्तुकला, चिकित्सा विज्ञान आदि पर भी रचनाएँ की। राजा के मत का प्रभाव जनता पर पड़ता था और कवि भी उससे असतृप्त नही रहता था। यद्यपि डीघ और वैर वैष्णव और व्रज प्रभाव क्षेत्र मे था तो भी यहाँ समस्त हिंदू देवी देवता समान रूप से पूजित और प्रतिष्ठित होते थे और उन पौराणिक कथाओं की चर्चा भी होती थी जिन कथाओ का हिंदू धर्म मे विशेष महत्व है। इसलिये राम, कृष्ण, शिव, हनुमान, गणेश, यमुना, गगा, दुर्गा सब की समान रूप से पूजा होती थी। यद्यपि भरतपुर के लोग हनुमान को अपना इष्ट मानते है, इसलिये राम उनके आराध्य रहे है और लक्ष्मण उपास्य तो भी गोवर्धन, मथुरा आदि पवित्र स्थानो तथा कृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण निश्चित रूप से कृष्ण की भी पूजा और आराधना इस राजपरिवार द्वारा होती चली आई है।

इस प्रदेश की एक विशाल साहित्यिक परंपरा भी रही है जिसका श्री गणेश हिंदी-काव्य-जगत मे अष्टछाप के कवियो के रूप मे सदा से लोक-प्रतिष्ठित है। सूरदास और नंददास की काव्यभूमि तो यह क्षेत्र है ही केशव के पूर्वज भी इस क्षेत्र से सबधित रहे है। उस समय काव्यरचना और कवि शिक्षा का काम प्राय ब्राह्मण ही करते थे, इसलिये मथुरा के चौबे उन सभी स्थानों पर गए जहाँ कवि, काव्य और पांडित्य का सत्कार होता था। भरतपुर इसका अपवाद नही। उस समय देश मे जो साहित्यिक प्रवृत्तियाँ चल रही थीं, वे थी--रीति, भक्ति, नैतिक और वीर काव्य की। मूल धारा रीति साहित्य की थी और उसमें भी आचार्य और कवि की। इसलिये उस युग के अधिकाश कवि इन्ही दो तत्वो की ओर ध्यान देते थे और अपने आश्रयदाता की रुचि के अनुसार दूसरी प्रकार के काव्य की भी रचना वे कर लिया करते थे।

कवि सोमनाथ ऐसी ही परंपरा के रसमय शास्त्र कवि थे। पहले उनके साहित्य का सामान्य परिचय हम प्राप्त करेगे और फिर युग और लोक को उनकी साहित्यिक देन का अध्ययन करेगे।

रसपीयूषनिधि

कविवर सोमनाथ की ख्याति हिंदी साहित्य में रस पीयूपनिधि की

रचना के कारण है। इस ग्रथ की रचना संवत् १७९४ के ज्येष्ठ मास की कृष्णपक्ष की दशमी को हुई। यह विस्तृत ग्रथ महाराजकुमार प्रताप सिह के लिये कविवर सोमनाथ ने २२ तरगो मे रचा है।

ग्रथ के प्रारभ मे गणेश, रघुनायक, हनुमान, बटुकनाथ, पार्वती और कृष्ण की वदना की गई है। साथ ही उस राजपरिवार का वर्णन किया गया है जिसमे प्रताप सिह हुए और जिस राजपरिवार मे कविवर सोमनाथ वदन सिंह जी के समय से दानाध्यक्ष थे। यदुवशी राजा नद के वेटे गोकुलचद्र (भगवान कृष्ण) और उसी वश मे भाव, सिंह और तेगवहादुर सिंह पैदा हुए। तेगवहादुर सिह के पुत्र वदन सिह जी थे जिनका व्रज प्रदेश पर राज्य था और दीघ मे उनकी राजधानी थी। इसके वाद रसपीयूषनिधि मे वदन सिंह की प्रशस्ति है और उनके बड़े लड़के सूरजमल की वीरता शौर्य की प्रशसा की गई है। सूरजमल के छोटे भाई प्रताप सिंह को वैर का किला पिता वदन सिंह से मिला और वे वही रहते भी थे। फिर बदन सिंह की गुणग्राहकता की, उनके ऐश्वर्य, शौर्य और दयालुता की प्रशसा कवि ने की है। तदनतर ब्रज का वर्णन एक छद मे किया गया है और कवि ने यह लिखा है कि वैरगढ जहाँ कुँवर प्रताप सिंह रहते है, वह इतना सुदर नगर है तथा इतना वहाँ आनद है कि धनेश के करोड़ो शहर भी उसके ऊपर न्यौछावर किए जा सकते है। उसके वाद प्रताप सिंह के दरबार की चर्चा की गई है और यह बताया गया हैं कि इस दरवार मे ऐसे ऐसे गुणी पडित और नीतिज्ञ बिराजते हैं जो सदा वेद की वाणी को प्रकाशित करते रहते है। वही पर कवि सोमनाथ भी रहते है। और ऐसी ही पडित कलाकार मडित सभा मे कुँवर प्रताप सिह ने दरवार मे सोमनाथ जी से आग्रह किया कि वे रस के ऊपर एक ग्रथ की रचना कर दे। इस प्रकार पहला तरग, जिसका कवि ने नाम 'राजकुल वर्णन' रहा है, २५ छदो मे समाप्त होता है।

रसपीयूपनिधि का निम्नाकित २२ तरगो मे कवि ने वर्गीकरण किया है—प्रथम तरग मे है—(१) राजकुल वर्णन, (२) कविकुल वर्णन, (३) गुरु लघु, गणागण, मात्रा वर्णन, प्रस्तार, नष्ट, उदयमेरु, मरकटी पताका वर्णन, (४) मात्रावली वर्णन, (५) वर्णवृत्त, (६) शब्दार्थ, (७) ध्वनिभेद, रसलक्षण, रसस्वामी, (८) स्वकीया भेद (९) परकीया सामान्या, (१०) मानमोचन वर्णन, (११) कृष्णाभिसारिका, (१२) उत्तमादिनायिका, (१३)

नायिका दर्शन, दृष्टानुराग और चेष्टा वर्णन, (१४) हाव वर्णन, (१५) दशा वर्णन, (१६) रसध्वनि वर्णन, (१७) असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि, (१८) ध्वनि वर्णन, (१९) मध्यम काव्य गुणीभूत व्यंग्य वर्णन, (२०) काव्य दोष वर्णन, (२१) काव्यगुण अलकार वर्णन और (२२) अर्थालकार, सशिष्ट सकर अलकार वर्णन।

दूसरे तरग मे कवि सोमनाथ कवि की प्रशंसा करते है और राजवश कवि मानसरोवर मे राजहस के रूप मे अपनी वाणी को वताते है। पश्चात अपने कुल का वर्णन करते है जिसकी चर्चा उनके जीवन वृत्त के सवध में की जा चुकी है। इस दूसरे तरग मे दस छद है।

तीसरे तरग मे कवि का यह कथन है कि पिंगल की रीति समझने के लिये छद ज्ञान आवश्यक है इसलिये सर्वप्रथम पिगल के सवध मे ज्ञानपूर्वक कवि ने लिखा है। उन्होने पिगल को फणीद्र माना है और उसका जयगान भी किया है क्योकि सारे ससार को वह सुख आनद देनेवाला है। उन्होने यह भी कहा है कि पिगल अत्यत विचित्र है, क्योकि उसके विना छद भग हो जाता है। फिर गुरु और लघु पर विचार, उसका उदाहरण देकर किया गया है। कवि ने मात्रा प्रस्तार भी समझाया है। इन्होने सप्तमात्रा प्रस्ताव का स्वरूप और वर्ण प्रस्तार छदो मे तो समझाया ही है और उसके सवध मे आलेखन क्रम तथा पंचवर्ण प्रस्तार का स्वरूप भी प्रस्तुत किया है। फिर गणागण विचार, मित्र, दास, उदाह, शत्रु, सज्ञा भी समझाई है। फिर दिग् मात्रा उद्दिष्ट अक लेखन, वर्ण उद्दिष्ट अक लेखन (पाँच प्रकार से) उसका उदाहरण और गद्य मे टीका दी है। मात्रा मेरु विचार, प्रथम दो समकोठे पर विचार, चार मात्रा, पाँच मात्रा, एक, दो, तीन, चार और पाँच मात्राओ के प्रस्तार का उदाहरण तथा एकादश मात्रा के मेरु स्वरूप का वर्णन किया है। इस प्रकार वर्ण मेरु पर उन्होने विस्तार से अपना विचार प्रकट किया है। इसके उपरात इसी तरग मे मात्रा पताका पर उन्होने विचार व्यक्त किया है, उसका उदाहरण दिया है, उसका स्वरूप चित्रित किया है और उस पर विचार भी प्रकट किया है। इस प्रकार वर्ण पताका के चार वर्ण के स्वरूपो का वर्णन उन्होने किया है। इसके उपरात उन्होने मात्रा मरकटी पर विचार प्रकट किया है। उसका स्वरूप कथन वर्ण मरकटी विचार, पचवर्ण मरकटी स्वरूप और छद विचार भी उन्होने किया है। इस प्रकार गुरु लघु गणागण

का विचार उन्होने कुल ७६ छदो मे किया है। यही पर तीसरा तरग समाप्त होता है।

चौथे तरग मे छद पर विचार किया गया है। उनका लक्षरण, उदाहरण और भेद बताया गया है। लक्षरण प्राय. दोहो मे है और उदाहरण उसी छद मे है जिस छद का उदाहरण दिया गया है। सर्वप्रथम दोहे मे २३ भेद बताए गए है और अक्षर भेद से भी उसकी टीका प्रस्तुत की गई है और यह बताया गया है कि किस दोहे मे कितने गुरु और लघु आदि है। दोहे के बाद अन्य छदो का वर्णन विस्तार से नही है। जो छद लिए गए है और जिनके उदाहरण दिए गए है वे निम्नाकित है : दोहा, पद्धरि, पावकुलक, अरिल्ल, रोला, सोरठा, मोहनी, गधान, गाहा (गाहा छद के २६ भेद भी बताए गए है) और इसका नामभेद भी समझाया गया है। फिर हरिगीतिका, चौपाई, लीलावती, कुडलिया, छप्पय (७१ भेद) फिर, झूलना छद, उद्धत, त्रिभगी, दुमिला छंद का लक्षरण और उदाहरण दिया गया है और इस प्रकार ५६ छदो मे मात्रावृत्त वर्णन नामक चौथा तरग समाप्त होता है।

पॉचवॉ तरग वर्णवृत्त वर्णन का है जिसमे प्रिया छद, तिलकाछद, करहेची, प्रमानिका, सयुक्ता दोधक छद, भुजगी, बसतलतिका, धर्मनाराच, मदाक्राता, हरचरी, धवल, गीतिका, मदिरा सुदरी, सुदरी, चकोर और मत्तगयद, किरित और दुमिला छद, महाभुजग प्रयात, घनाक्षरी, रूपघनाक्षरी तथा दंडक छद का वर्णन दोहो मे और समझाने के लिये उन्ही छदो मे उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कुल ४६ छदो मे वर्णवृत्त वर्णन नामक पाचवॉ तरग समाप्त होता है।

इसके पश्चात् छठे तरग मे काव्य का लक्षरण, प्रयोजन, काव्य के भेद वर्णित किए गए है। काव्य का लक्षरण सोमनाथ जी ने दिया है—"पिंगल मतानुसार निर्दोष सगुरण पदार्थ वाला शुद्ध कवित्त जो भूषरणयुक्त हो वह कविता है।" काव्य का प्रयोजन इन्होने कीर्ति, धन, विनोद, मगलसृष्टि और सद्उपदेश को बताया है। काव्य का कारण बताते हुए उन्होने यह माना है कि काव्य श्रवरण द्वारा अभ्यास के बल पर कविता होती है तो ऐसी कविता शिक्षा से होती है और गुरुदेव की कृपा से बिना सुने या बिना अभ्यास के भी कविता की जा सकती है। इन्होने काव्य की शरीर सामग्री का कथन इस प्रकार किया है कि काव्य का प्राण व्यग्य है और उसके सारे अग शब्द अर्थमय है। दोष

और गुण उसके अलकार और दूषण है। इन्होने काव्य का भेद तीन प्रकार से किया है, उत्तम, मध्यम और अधम। जहाँ काव्य में सरस व्यग्य हो उसे यह उत्तम मानते है। शब्द अर्थ और व्यग्य जहाँ पर समान रूप से हो वह मध्यम काव्य है और अधम काव्य वह है जिसमें शब्द अर्थ की सरलता तो हो लेकिन व्यग्य न हो। इस प्रकार यह व्यग्य प्रधान सरस काव्य को ही सर्वोत्तम काव्य मानते है।

सप्तम तरग ध्वनि वेग, रस लक्षण एव रस स्वामी से सबधित है। इस तरग मे ध्वनि वर्णन, ध्वनि लक्षण, ध्वनि वेग, सक्रमित वाच्य ध्वनि, अत्यत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि के उदाहरणो का वर्णन है। फिर उस का मूल इन्होने भाव बताया है और उसके लक्षण इस प्रकार दिए हैं। रस का मूल भाव है चित्त वृत्ति। वृत्ति या भाव इसका रूप है। रस अनुकूल विकार होता है अर्थात चित्त वृत्ति का विकार ही भाव है। कुछ कारणो से जब चित्त और से और हो जाता है तो उस कारण को विकार कहते है। इस प्रकार हृदय में भाव भी दो प्रकार से आते है, अतर और शारीरिक। इस प्रकार विभाव, अनुभाव, शारीरिक है और भाव अस्थायी है। फिर भाव, विभाव (आलबन और उद्दीपन) अनुभाव, अष्ट सात्विक विभाव, सचारी भाव, नाम कथन। इनके लक्षण, अस्थायी भाव वर्णन यथा इतिहास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, विस्मय, निर्वेग। इनके लक्षण कवि ने दिए है। इसके बाद इन्होने उसके लक्षण भरत के मत के अनुसार दिए है। फिर अभिनव गुप्त पदाचर्या द्वारा प्रस्तुत रस के लक्षण तथा नौ रसों के नाम कवि ने दिए है। इसके बाद नौ रसो का रग कथन और नौ रसो के स्वामियों का वर्णन इन्होने किया है। इन्हे नौ रसो का नायक बताया है। यही पर सातवॉ तरग ५६ छदों मे समाप्त होता है।

आठवें अध्याय में शृगार रस का वर्णन किया है और उसके दो प्रकार, सयोग और वियोग बताए गए है। उनके लक्षण भी बताए है। गद्य की टीका मे आलबन और उद्दीपन विभाव को समझाया गया है। उसके दृष्टात भी दिए हैं। नायिका लक्षण और उनके चतुर्विध भेद, पद्मिनी, चित्रिणी, सखिनी और हस्तिनी, इनके लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए है। इसके पश्चात् नायिका भेद का कथन स्वकीया और परकीया और वर वधु के भेद के साथ स्वकीया लक्षण उदाहरण तथा कुल वधु, नेत्र वर्णन किया है। स्वकीया

के तीन भेद, मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा किया है। फिर वय सधि का लक्षण इस भाँति समझाया है। लडकाई (लडकपन) और तारुण्य की सधि जहाँ होती है उसे वय सधि कहते है। उसके उदाहरण भी दिए है। इसके बाद मुग्धा के लक्षण और उसके भेद उदाहरण सहित बताए है। मुग्धा दो प्रकार की होती है। अज्ञात यौबना और ज्ञात यौबना। फिर उसके बाद नवोढा का लक्षण वर्णित है। बालपने मे ब्याही हुई जो रति करने में लज्जा और भय का अनुभव करती है, ऐसी नायिका नवोढा है। फिर नवोढा सुरतात, विश्रब्ध नवोढा के लक्षण, उसके सुरतात का कवि ने वर्णन किया है। मध्या का लक्षण कवि ने इस प्रकार दिया है। लाज और काम दोनो जब समान होते है तो ऐसी नायिका मध्या होती है, उसके उदाहरण देते हुए प्रौढा के लक्षण और उदाहरण दिए है। उसके विपरीत सुरत और सुरतात के उदाहरण दिए है। फिर मध्या प्रौढा नायिकाओ का तीन प्रकार का भेद कथन किया है, धीरा, अधीरा और धीराधीरा। धीरा रोष व्यग्य से रति प्रकट करती है। अधीरा उसे सीधे प्रकट करती है और धीराधीरा कुछ गुप्त और कुछ प्रकट रूप से प्रकट करती है। नायक का अपराध देख कर हृदय मे रोप स्वत. समुच्छित होता है। मध्या धीरा वक्रोक्ति के द्वारा, व्यग्यपूर्वक, कठोर वाणी के द्वारा, मध्या अधीरा अग-प्रदर्शन के द्वारा धीराधीरा अपनी बात कहती है। इनके भेद इस प्रकार किए गए—१ मध्या हैधीरा, वक्रोक्ति प्रधान; २ मध्या अधीरा, कठोर वचन प्रधान, ३ मध्या धीरा धीरा, सरसजल—नेत्र प्रधान। प्रौढा मे भी धीरा, अधीरा और धीरा धीरा भेद होते है। इनके लक्षण भी कवि ने दिए है। इसकेअतिरिक्त कवि ने स्वकीया नारी का विभेद ज्येष्ठा और कनिष्ठा रूप मे भी विवाह के आधार पर किया है। इस प्रकार ६७ छदो में तथा कुछ गद्य मे स्वकीया भेद वर्णन नाम का आठवॉ तरग समाप्त होता है।

नौवॉ तरग परकीया वर्णन से सबधित है और सामान्या को भी उसी के भीतर सक्षेप मे समाहित कर लिया गया है। परकीया लक्षण देने के उपरात और परकीया के दो भेद प्रौढा और अनूढा रूप मे किए गए है। प्रौढा पर पुरुप से प्रेम करती है और विवाहिता नारी होती है और अनूढा अविवाहिता होती है। प्रौढा कभी कभी अपनी सखियो से रति की बात करती है किंतु अनूढा रति की बातो को सभी प्रकार से छिपाए रखती है। प्रौढा के छह भेद, गुप्ता, मुदिता, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना और विदग्धा

हैं। अनुशयना के तीन भेद सकेत के आधार पर किए है। १. सकेत स्थल विलास, २. सकेत के होनहार होने के आधार पर और ३. सकेत स्थल पर अनुपस्थिति के आधार पर। इसको प्रथम, द्वितीय और तृतीय भेद की सज्ञा कवि ने दी है। विदग्धा दो प्रकार की है, मूक विदग्धा और वाग कार्य विदग्धा। इन सव के लक्षरण और उदाहरण कवि ने मर्मज्ञतापूर्वक दिए है लेकिन अनूढा के संवध मे केवल उसने एक उदाहरण सवैया दड मे प्रस्तुत किया है और सामान्या के संवध मे लक्षरण और उदाहरण दे कर कुल ३९ छदो मे नवे तरग की समाप्ति कवि ने की है। इससे लगता है कि कवि अमर्यादित शृगार को विशेष महत्व देने का पक्षधर नही है और यह इस वात का भी संकेत देता है कि कवि और वैर के राज-दरवार की ऊँचाई क्या थी।

रसपीयूषनिधि की दसवी तरग मानमोचन वर्णन सज्ञक तरग है जिसमे १४ छद है। इसमे मानवती और गर्विता दो प्रकार की नारी अन्यसभोगदुखिता के रूप मे वताई गई है, उनका लक्षण वताकर उदाहरण दिया है। गर्विता नारी दो प्रकार की होती है। प्रेमगर्विता और रूप-गर्विता और इनके उदाहरण भी दिए है। अन्य सभोगदुखिता नारी का केवल लक्षण मात्र दिया है, उदाहरण नही दिया गया है। इसके पश्चात् मानवती नारी का वर्णन करते हुए मान वर्णन किया गया है। कवि का कहना है कि अपने प्रिय का अपराध देखकर जो अनख नारी के मन मे पैदा होता है वही मान है। मान तीन प्रकार का होता है : लघु, मध्यम और गुरु। जव अपने प्रिय को दूसरी स्त्री की ओर देखते हुए नायिका देखती है तो उससे उत्पन्न मान लघु मान और जब प्रिय दूसरी नारी का नामोच्चार करता है तो मध्यम मान और जव अन्य नारी से प्रियतम पर प्रणय का चिह्न प्रकट होता है तो गुरु मान कहते है। लघुमान सामान्य खेल विलास मे, मध्यम मान झूठी सच्ची कसमे खाने और गुरु मान प्रणत होकर क्षमा माँगने पर छूटता है।

रसपीयूपनिधि की ११ वी तरग मे जिसे सोमनाथ मुग्धादि स्वाधीन पतिकादि नायिका वर्णन तरग की सज्ञा देते है, ७५ छद है। स्वाधीनपतिकादि नायिका के अतर्गत उन्होने स्वाधीनपतिका, खडिता, कलहतरिता, विप्रलव्धा, उत्कठिता (उत्का), वासकसज्जा, अभिसारिका, प्रोपितपतिका, प्रवत्स्यत्पतिका, आगमिष्यत्पतिका नायिकाभेद वताए है। स्वाधीनपतिका वह है जिसके अधीन

उसका प्रियतम हो। स्वाधीनपतिका मुग्धा, मध्या और प्रौढा तीन प्रकार की है। परकीया मे भी स्वाधीनपतिका होती है और सामान्या मे भी। स्वाधीनपतिका के बाद खडिता नायिका होती है। खडिता नायिका वह है जिसका प्रियतम रात मे अन्यत्र से रति करके घर आता है। यह भी तीन प्रकार की होती है। मुग्धा, मध्या, प्रौढा। परकीया और सामान्या मे भी खडिता होती है। कलहतरिता वह नारी होती है जो अपने प्रियतम का अत्यत अपमान करती है और फिर पीछे पछताती है तथा अपने इस कर्तृत्व के लिये तन मन से दुखी होती है। इसमे भी मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेद है। परकीया और सामान्या मे भी ये भेद होते है।

विप्रलब्धा वह नायिका है जो हर्षपूर्वक सकेत स्थल पर जाती है, पर वहाँ प्रिय को न पाकर दुखी होती है। यह परकीया और सामान्या में भी होती है और इसके भी मुग्धा, मध्या और प्रौढा भेद है। उत्का नायिका वह है जो इस बात के लिये चिता करती है कि प्रियतम आए नही, कहाँ रह गए। इसको उत्कठिता भी कहते है। मुग्धा, मध्या और प्रौढा इसके भी तीन रूप है। परकीया और सामान्या मे भी उत्का होती है। वासकसज्जा वह नायिका है जो हृदय से प्रिय का आगमन जानकर शृगार करती है और उसकी प्रतीक्षा मे घर वाहर देखती है। वासकसज्जा मुग्धा, मध्या और प्रौढा होती है। परकीया और सामान्या मे भी वासकसज्जा होती है। अभिसारिका वह नायिका है जो या तो स्वय प्रियतम के पास चली जाती है या उसे वुलाती है। इसके भी तीन प्रकार है. मुग्धा, मध्या और प्रौढा। परकीया मे भी अभिसारिका होती है। अभिसारिका के कई प्रकार है: शुक्ला अभिारिका वह है जो कृष्ण शरीर का शृगार करके श्वेत परिधान मे अपने प्रियतम के पास जाती है। काम से भरी हुई भूषण वसन से सजी हुई जो स्त्री प्रियतम के पास जाती है उसे कृष्णा अभिसारिका कहते है। दिवा अभि-सारिका सामान्या अभिसारिका पुरुपाभिसार की चर्चा के वाद प्रोपितपतिका का लक्षण इस रूप मे दिया है कि जिसके प्रियतम परदेस मे हो वह प्रोपितपतिका है। प्रोपितपतिका मुग्धा, मध्या तथा प्रौढा तीन रूप मे होती है। परकीया और सामान्या मे भी प्रोपितपतिका होती है। प्रवत्यस्यत्पतिका वह नायिका है जिसका पति परदेस जाने की वात कहता है। वह मुग्धा, मध्या और प्रौढा तीन रूप मे होती है। परकीया और सामान्या मे भी यह उपभेद

होता है। प्रिय परदेस से आ रहा है जो नायिका यह जानकर प्रसन्न होती है वह आगमिष्यत्पतिका मानी जाती है। मुग्धा, मध्या और प्रौढा यह तीन प्रकार की होती है। परकीया और सामान्या मे भी आगमिष्यत्पतिका होती है। इस अध्याय मे स्वकीया के ऊपर जितना जोर कवि ने दिया है उतना परकीया और सामान्या के सबध मे नही। उनके लक्षण भी उसने नही दिए है। इससे यह प्रकट होता है कि यह कवि अत्यंत मर्यादित कवि रहा है।

बारहवी तरग का नाम है. उत्तमादिनायिका सखीकर्म दूतीकर्म वर्णन नामक तरग। इसमे उत्तमा, मध्यमा और अधमा तीन प्रकार की नायिकाएँ बताई गई है। पति के अनहित करने पर भी जो नायिका उसका भरपूर हित करती है वह उत्तमा, जो पति की रीति के समान हित और अनहित करती है वह मध्यमा और प्रिय के प्रीति करने पर भी जो प्रिय का रंच भी हित नही करती है वह अधमा नायिका है। उत्तमा, मध्यमा और अधमा के भेद सभी नायिकाओ मे होते है और उसके अतिरिक्त दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य भेद होते है। देवताओ की प्रकृति दिव्य, विषयप्रधान मानवी प्रकृति अदिव्य और सुर-नर-समन्वित प्रकृति दिव्यादिव्य मानी जाती है। सखी के काम चार बताए गए है: शृगार करना, शिक्षा देना, उपालभ या उलाहना देना एवं परिहास करना। गद्य का भी प्रयोग इस अध्याय मे कवि ने किया है। परिहास के अंतर्गत नायक का परिहास नायिका से और नायिका का परिहास नायक से होता है। इसके बाद दूतीकर्म का वर्णन किया गया है और दूती के दो कर्म बताए गए है। दोनो को मिलाना और विरह निवेदन करना। विरह निवेदन मे नायक और नायिका दोनो का उदाहरण दिया गया है। इस अध्याय मे कुल २५ छद है।

तेरहवी तरग में नायिका, सखा, दर्शन, दृष्टानुराग और चेष्टा वर्णन ५१ छंदो मे किया गया है। नायक वह है जो पवित्र हो, अपार धनवान हो, अभिमानी हो, उदारमना हो, क्षमाशील हो, गुणी हो, चतुर हो। ऐसा नायक ललित नायक होता है। इसके बाद पति का लक्षण, अनुकूल नायक का लक्षण दिया गया है। अनुकूल नायक वह है जो तन-मन-वचन से अपनी पत्नी से प्रेम करता है और परस्त्री की ओर देखता भी नही। दक्षिण नायक वह है जो बहुत सी औरतो से समान प्रेम करता है। शठ नायक वह है जो बडी मधुर बातें करता है किंतु हृदय मे कपट बटोरे रहता है। धृष्ट नायक

वह है जो रोकने पर भी ढिठाई करता है। वह उपपति है जो परस्त्री के घर मे ही दिन रात पडा रहता है। वैसिक नायक वह है जो गणिका के वश मे रहता है। उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के नायक भी होते हैं। नायक रूपमानी भी होता है और प्रोषित भी। प्रोषित नायक वह होता है जो अपनी स्त्री से बिछुडकर परदेश जाता है। नायक अनभिज्ञ भी होता हैं। अनभिज्ञ नायक वह है जो मूर्ख होता है। नायक के सखा कई प्रकार के होते है—पीठमर्द, विट, चेटक, तथा विदूषक। पीठमर्द वह हैं जो झूठी बाते करता है तथा नायक नायिका के बीच रस और प्रेम की उत्पत्ति करता है। विट वह होता है जो दौत्यकर्म मे तथा कामकेलि की बात मे निपुण होता है। वह सखा चेटक कहा जाता है जो दपति के मन की बात जान लेता है। विदूषक केवल हँसी की बात करता है। इसके बाद दर्शन का वर्णन है। यह चार प्रकार का होता है। श्रवण, चित्र, स्वप्न और साक्षात्। इसके बाद अनुराग का वर्णन किया गया है। सुनकर और दर्शन करने से जो लगन बढ़ती है उसे अनुराग कहते है। अनुराग दो प्रकार का होता है · श्रवणानुराग और दर्शनानुराग। इसके बाद चेष्टा का लक्षण बताया गया है।

सयोग शृगार की चेष्टा को हाव कहते है। चतुर्दश तरग मे उसका वर्णन और प्रकार, दशावर्णन नामक तरग शीर्षक से ३५ छदो मे किया गया है। हाव, हेला, लीला, विहित, विभ्रम, ललित, विलास, मद, मोट्टाइत, कुट्टमित, विब्बाक, बोधक, विक्षिप्ति, किलकिंचित्, मुग्धहाव, तपनहाव का लक्षण और उदाहरण कवि ने दिया है।

पद्रहवाँ अध्याय २९ छंदो मे है और इसमे विप्रलंभ शृगार का लक्षण और उसकी दस दशा का कथन किया गया है। प्रिय के बिछुडने से जो रस उत्पन्न होता है वह विप्रलभ शृगार माना जाता है। विप्रलभ का आधार पूर्वानुराग होता है और उसका लक्षण है कि प्रिय के देखने से सुख बढता है और न देखने से दुख होता है तथा ऐसे अनुराग को पूर्वानुराग कहते है। पूर्वानुराग की दस दशाएँ है। उनका नाम है : अभिलापा, चिता, गुनकथन, उद्वेग, स्मृति, व्याधि, प्रलाप, उन्माद, जडता, और मरण। इसके लक्षण और उदाहरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किए गए है।

सोलहवी तरग मे रसध्वनि वर्णन है, जो २१ छदो मे है। सर्वप्रथम हास्य रस का लक्षण और उनका उदाहरण दिया गया है। हास्य के साथ साथ करुण'

रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शात रस के भी उदाहरण दिए गए है। उनकी टीका भी व्रजभाषा के गद्य मे दी गई है। वीर चार प्रकार के बताए गए है : युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, धर्मवीर। रौद्र रस और वीर रस का भेद भी समझाया गया है। रौद्र रस मे क्रोध की प्रधानता रहती है और झूठ सत्य वचन वोलने का ज्ञान नही रहता। जबकि वीर रस मे समर्थता का वचन मूल रूप से रहता है। यह भेद व्रजभाषा के गद्य मे दिया गया है।

सत्रहवी तरग मे भाव ध्वनि का लक्षण दिया गया है। उसके लक्षण देते हुए यह बताया गया है कि जब कविता मे सचारी भाव व्यग्य हो जाता है तो उसे भाव ध्वनि कहते है। यह दो प्रकार की होती है : सचारी भाव ध्वनि और देवरति भाव ध्वनि। रस ध्वनि और भाव ध्वनि का अतर समझाते हुए सोमनाथ ने बताया है कि जहाॅ सचारी विभावादि से पुष्ट हो तहाॅ रस ध्वनि होती है और जहाॅ सचारी साधारण होता है वहाॅ भाव ध्वनि होती है। सचारी भाव ध्वनि और देवरति भाव ध्वनि का अतर भी कवि ने समझाया है और देवरति भावध्वनि के कई अच्छे उदाहरण भी उन्होने दिए है। देवरति भाव ध्वनि के अतिरिक्त राजरति भाव ध्वनि भी उन्होने दी है जिसमें उदाहरणस्वरूप प्रताप सिह के गौरव की गाथा उन्होने अनेक छदो मे गाई है। इसमे उनके तुरंग का भी वर्णन है और सिंधु का कवित्त भी है, अर्थात् यदि साधारण भाव से राजा मे प्रीति है तो राजरति भावध्वनि होती है। इस प्रकार भाव ध्वनियो का और भी विस्तार किया जा सकता है। किंतु यही तक सोमनाथ ने अपने को सीमित कर लिया है।

इसके बाद अट्ठारहवी तरग मे रसाभास सोमनाथ जी ने उसे माना है जहाॅ कवित्त मे अनुपयुक्त रस का वर्णन होता है। भावाभास की उन्होने चर्चा की है। भाव उदयादि कथन, भाव शाति, भावसधि और भाव सवलता का भी वर्णन कवि ने किया है। इस अध्याय का नाम असलक्ष्यक्रम व्यंगध्वनि कवि ने रखा है और इसमे कुल २४ छद है। अष्टादश तरग मे सलक्ष्यक्रम का वर्णन है। सलक्ष्यक्रम ध्वनि तीन प्रकार की होती है : शब्दमूलध्वनि, शब्द से अलकार ध्वनि और शब्द से वस्तुव्यग्यध्वनि। जहाॅ शब्द से व्यग्य होता है वहाँ शब्द व्यगध्वनि और अलकार से व्यग होता है वहाॅ अलकारव्यग ध्वनि और जहाॅ शब्द से वस्तु व्यग होता है वहाॅ वस्तुव्यंगध्वनि वे मानते है। शब्द से दो प्रकार से मूलव्यग्य ध्वनि होती है। अर्थ की दृष्टि से व्यग्यध्वनि

तीन प्रकार की होती है। जहाँ अर्थस्वरूप ध्वनि प्रकट हो वहाँ अर्थरूपध्वनि है, जहाँ कविउक्ति है वहाँ कविप्रौढोक्ति ध्वनि या कवि प्रौढोक्ति व्यंग्यध्वनि और जहाँ कवि उक्ति है वहाँ उक्ति ध्वनि है। उनके वारह भेद है: वस्तु से वस्तुव्यग, वस्तु से अलकारव्यग, अलकारव्यग से वस्तुव्यग और अलकार से अलकारव्यग। इसी प्रकार से चार चार भेद कवि प्रौढोक्ति और कविनिवद्ध-वक्ता की उक्ति ध्वनि से भी होते है। इस प्रकार यह वारह भेद हुए। शब्दार्थ मे भी इसी भाँति व्यग्य ध्वनि होती है। इनके दो भेद होते है। अविवक्षित वाच्य ध्वनि के अर्थातरसक्रमित और अत्यत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि तथा दूसरा भेद असलक्ष्यक्रम व्यगध्वनि। सलक्ष्यक्रम व्यगध्वनि मे शब्दमूलव्यग ध्वनि और द्वादशभेद अर्थरूपव्यंग्य ध्वनि और शब्दार्थ-मूलव्यग्य ध्वनि। इस प्रकार सब १८ भेद ध्वनि के होते है।

उन्नीसवी तरग मे मध्यम काव्य गुणीभूत व्यग का वर्णन किया गया है। मध्यमकाव्य का गुणीभूत व्यग आठ प्रकार का होता है। अगूढ वाक्य, अपराग व्यग, वाच्यसिद्धव्यग, अस्फुट व्यग, सदेहप्रवीन व्यग, तुल्यप्रधान व्यग, काकु व्यग और असुदर व्यग। इनके अतिरिक्त इनका लक्षण दिया गया है और उसको गद्य मे भी समझाने का यत्न किया गया है।

वीसवी तरंग मे काव्यदोप का वर्णन किया गया है। इसमे ५४ छद है। दोप का लक्षण दिया गया है और वताया गया है कि पददोप, वाक्यदोप, अर्थदोप तथा रसदोप चार प्रकार के दोप होते है। पद मे असमर्थता, कर्णकटुता, अप्रयोग दोप होता है। शील सवधी लज्जा, अमगल, ग्लानि दोप भी होता है। सदिग्ध लक्षण मे सदिग्धता का दोप कवि ने वर्णित किया है। ये सारे दोप पद के अतर्गत है। वाक्यदोप के अतर्गत क्रमहीनता या क्रमभग, न्यूनपद, वृत्तहत, मात्रावृत्तहत, वर्णवृत्तहत दोप वताए गए है। अर्थदोप के अतर्गत सहचरभिन्न, चाहयुत, व्याहत, निरहेतु, दुष्क्रम, पुनरुक्त, अनीकृत, सामान्य विशेप, कविसप्रदायविरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध, देशविरुद्ध, समयविरुद्ध दोप वताए गए है और रसदोप के अतर्गत प्रकृति विपर्यय दोप, दिव्य प्रकृति गुण कथन, अदिव्य प्रकृति गुण कथन, दिव्यादिव्य प्रकृति गुण कथन, प्रकृति विपर्यय गुण लक्षण। हास्य, करुण और वीभत्स रस मे लज्जा, अमंगल, ग्लानि अश्लील नही मानी जाती।

इक्कीसवी तरग मे कविता का गुण वर्णित है और शब्दालकार तथा

चित्रालकार का भी वर्णन किया गया है। केवल दोषविहीन होने से कविता अच्छी नही होती, उसमे गुण भी होना चाहिए। जिसके कारण काव्य मे रस सरसता है उसको गुण कहते है। गुण तीन प्रकार के है : माधुर्य, ओज और प्रसाद। माधुर्य गुण का लक्षण माधुर्यगुण सामग्रीकथन, ओजगुण लक्षण, ओजगुण सामग्रीकथन, प्रसादगुण लक्षण तेरह छदो मे किया गया है। जब काव्य सुनते ही अग-अंग से हृदय मे सुख चूता है तो माधुर्यगुण, जब चित्त में काव्य के श्रवण से तेज बढता है और वह महाउद्धत हो जाता है तो ओज, जहाँ नौरस मे गगा के पानी के समान प्रसाद मिलता है तो उसे प्रसादगुण कहते है। इसके वाद अलकार और गुण का भेद बताया गया है। गुण एकरस रहता है और अलकार कही रस को लिए है, और कही रस से उदास हो जाता है, कही वह रस के लिये दूषक हो जाता है तो अलकार और गुण मे यही भेद है। इसके उपरान अलंकार के इन गुणों का उदाहरण भी दिया गया है। गुणानिरूपण के बाद बताया गया है कि अलंकार उक्तिभेद के कारण होता है इसलिये वक्रोक्ति का वर्णन कवि ने पहले किया है और शब्दचित्र के विस्तार का वर्णन भी यही से आरंभ होता है। वक्रोक्ति अनुप्रास - लाटानुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्तानुप्रास, वृत्यनुप्रास मे माधुर्य और ओज, यमक लक्षण, श्लेष लक्षण और उदाहरण कवि ने दिए है। श्लेष में फूलबद भी है। उसके बाद चित्रकाव्य लक्षण और चित्रकवित्त का उदाहरण उन्होने दिया है। सातोपन का वर्णन भी किया है : वाल, कुमार, पौगड, किशोर, जुवा, मध्य, वृद्ध और मत्री गति, अश्व गति, कपाटवद: हारवद त्रिपदी मे चित्र भी प्रस्तुत किए है। उसके बाद चक्रबद, धनुर्बंद, गतागति, चरणगुप्त, चित्रकाव्य के लक्षण और उदाहरण दिए है।

अतिम तरग ३३८ छदो की है जिसमे अर्थालकार, ससृष्टि और शब्दा लंकार का वर्णन किया गया है। अर्थालकार का पहले निरूपण किया गया है और उसका मूल उपमेय और उपमान को बताया गया है। उसके बाद पूर्णोपमा, साधारण धर्मलुप्ता, वाचकलुप्ता, उपमानलुप्ता, उपमेयलुप्ता, वाचक धर्मलुप्ता, धर्मउपमान लुप्ता, धर्मउपमेयलुप्ता, धर्मवाचक उपमानलुप्ता का उदाहरण दिया गया है। फिर उसके व ाद, अनन्वयालकार, उपमान उपमेय अलकार, प्रतीप अलकार प्रथम, द्वितीय तृतीय, चतुर्थ और पचम का भेद और

लक्षण तथा उदाहरण दिया गया है, फिर रूपक भेद बताया गया है। इसके दो भेद बताए गए है : तद्रूप और अभेद रूपक। इन दोनो के भी अधिकन्यून और सम तीन भेद बताए गए है। फिर परिणामालंकार, उल्लेखालकार और उसके भेद प्रथम द्वितीय भी समझाए गए है। स्मृति, भ्राति, सदेह, अपन्हुति, उसके भेद हेतु अपन्हुति, पर्यस्तापन्हुति, भ्रांतिअपन्हुति, छेकापन्हुति, कैतवापन्हुति उसके बाद उत्प्रेक्षा, उसके भेद, वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा का लक्षण और उदाहरण दिया गया है। अतिशयोक्ति के विभिन्न भेद और उनका लक्षण दिया गया है। अतिशयोक्ति मे रूपक, अनन्वय, सापन्ह्व, भेदक, सबध, असंबध, अक्रमाति, चपलाति, अत्यतातिशयोक्ति को लिया गया है। तुल्योगिता तीन प्रकार की बताई गई है। इसके बाद दीपक अलकार और उसके तीनो भेद समझाए गए है और उसके लक्षण सोदाहरण दिए गए है। उसके बाद प्रतिवस्तु, उपमा' दृष्टात, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, समासोक्ति, परिकर, परिकरांकुर, प्रस्तुतालंकार, अप्रस्तुतालंकार, व्याजस्तुति अलकार, पर्यायोक्ति, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, विषम, विचित्र, अल्पालकार, अन्योन्यालकार, व्याघात, गुफा अलकार, एकावली, माला-दीपक, सार, सख्या, पर्याय, परिवृत्ति, समाधि, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, प्रौढोक्ति, सभावना, मिथ्याध्यवसित, ललित, प्रहसन, विषाद, उल्लास, अवज्ञा, लेश, मुद्रालकार, रत्नावलि, तद्गुण, पूर्वरूप, अतद्गुण, अनगुण मीलित, उन्मीलित गूढ़ोत्तर, चित्र, सूक्ष्म, विहित, व्याजोक्ति, गूढोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध, विधि आदि अलकारो, उनके भेदो, उपभेदो का लक्षण, टीका और टिप्पणी की गई है। काव्यप्रकाश के मत का भी काव्यलिंग अलकार के प्रसग मे मत दिया गया है।

ग्रथ के अत मे ग्रथ की रचना का समय दिया गया है और एक सवैया मे नद की गाय चरानेवाले मोहन से प्रार्थना की गई है कि हमारी लज्जा तुम्हारे हाथ मे है। अत मे रघुनद आनंदकद को हृदय मे कवि ने ध्याया है क्योकि ये सुख के सरसानेवाले है।

इस प्रकार बाईस तरगो मे सोमनाथ का यह महत्वपूर्ण ग्रथ समाप्त होता है।

शृंगार विलास

रीति काव्य की एक परिपाटी रही है कि रसराज शृंगार के विषय मे प्राय प्रत्येक कवि ने शास्त्रकाव्य की रचना की है। सोमनाथजी ने शृंगार-

विलास नाम का ग्रंथ प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह आधा भरतपुर और आधा नागरीप्रचारिणी सभा से मायाशंकर याज्ञिक संग्रह मे मिला, तो भी यह ग्रंथ मौलिक न होकर रसपीयूपनिधि से संकलित ग्रथ है। प्रथम उल्लास मे यह ग्रंथ माँ पार्वती की वंदना से आरंभ होता है और गणेश की वंदना भी की गई है। ग्रथ का कारण कवि ने यह बताया है कि कवियो ने उल्लासपूर्वक रस के बहुत से ग्रथ वनाए हैं उनकी छाया बाँधकर मै इस शृगार विलास ग्रंथ की रचना कर रहा हूँ। प्रथम उल्लास मे कवि की मौलिकता इतनी ही मात्र है। बाकी रसपीयूषनिधि के सप्तम तरंग से उसने भाव ग्रहण किए है। कही कही छंद भी ज्यो के त्यो ले लिए है। कही-कहीं नए छंद भी रचे है। कही-कही कुछ नया भी दिया है। इस प्रकार इस ग्रथ का निर्माण हुआ है। यहाँ यह देख लेना चाहिए कि क्या रसपीयूषनिधि में है और क्या शृंगार-विलास में है।

रसपीयूषनिधि	शृंगार विलास
सप्तम तरंग प्रथम उल्लास	प्रथम उल्लास
प ५ से ७	४, ५
प ११	६
१२	७
—	न ८
१४	९
प १९	१०
—	११, १२, १३ न
प १८	१४
—	१५ से १८, न
२१ से ३९ प	२० से ३३
३१	३४
—	३५, ३६ न

यहाँ शृगार विलास का प्रथम उल्लास समाप्त होकर द्वितीय उल्लास आरभ होता है।

४६	३७
४७ प	३८

४८	३६
४६, ५० प	४०, ४१
—	४२ न
५१ से ५४ प	४३ से ४६ प
५५	४७
५६ प	४८

यहां शृंगार विलास का दूसरा उल्लास समाप्त होता है और रसपीयूष-निधि की आठवी तरग शुरू होती है। तृतीय उल्लास मे परिवर्तन इस प्रकार है :

१	१
प २, ३	२, ३
—	टि अ
—	४ अ
प १०	५
११ से १३	६ से ८
प १४	६
१५ से २०	१० से १५
प २१	१६
२२	१७
प २३	१८
अ २३	१६
२७, २८	२०, २१
२४	२२
२६	२३
अ २८	२४
प २६	२५
प ३०	२६
प ३१	२७
३२, ३३	२८, २६
प ३४	३०

प ३६	३१
—	३२
३०	३३
—	३४ न
४०	३५
प ४१	३६
प ४२	३७
प ४३ से प ४९	३९ से ४३
५०	४४
—	अ टि
५१, ५२	४५, ४६
प ५३, ५४	४७, ४८
५५	४९
प ५६, ५७	५०, ५१
—	अ टि
५८	५२
५९, ६०	५३, ५४
६२	५५
प ६१	५६
प ६३, ६४	५७, ५८
६५	५९
—	अ टि
प ६६	६०
६७	६१

यही शृंगार विलास का तृतीय उल्लास समाप्त होकर चतुर्थ उल्लास प्रारंभ होता है जिसमें प्रारंभ में परकीया लक्षण दिया है और रसपीयूष निधि की अष्टम तरंग समाप्त होकर नवम तरंग शुरू होती है :

प १, २	१, २
—	३ न
प ४	४

—	५ न
७, ८	६, ७
९	८
१० प	९
प १२ से १४	१० से १२
—	न १३
१७	१४
प १८ से २०	१५ से १७
२१	१८
प २२	१९
२३	२०
—	२१ न
२५	२२
प २६ से ३०	२३ से २७

यही पर शृंगार विलास चतुर्थ उल्लास समाप्त होकर पंचम उल्लास और रसपीयूष निधि की नवीं तरंग समाप्त होकर दसवीं तरंग शुरू होती है :

—	टि न १, २
प ४, ५	३, ४
६	५
प ७	६
८	७
प ९	८, ९
प १० से १४	१० से १६

यहां पर शृंगार विलास का पांचवां उल्लास समाप्त होकर छठा आरंभ होता है और रसपीयूष निधि की दसवीं तरंग समाप्त होकर ग्यारहवीं शुरू होती है :

१, २	
—	
प ४, ५, ६, ८, ९	४, ५, ६, ७ ८
—	न टि

१०	६
प ११, प १२	१०, ११
१३	१२
प १८, १६	१३, १४
२०	१५
प २१ से ३४	१६ से २६
—	न ३०
प ३६ से ४६	३१ स ४१
४७	४२
प ४८	४३
प ५४	४४
४६	४५
प ५०	४६
५१	४७
प ५२ से ५४	४८ से ५०
—	न ५१
५७	५२
प ५७	५३
प ५६	५४
प ६०	५५
प ६२ से ६६	५६ से ६०
—	न ६१
६८ से ७२	६२ से ६६
—	न ६७
प ७४, ७५	६८, ६६

यही पर शृगारविलास का छठा उल्लास समाप्त होकर सातवाँ प्रारभ होता है और रसपीयूपनिधि की १२वी तरग शुरू होती है :

प १ से ७	१ से ७
—	न टि
८ से १०	८ से १०
११ सवैया	११ कवित्त

—	१२ न
१७	१३
—	१४ न
१५	१५
१८ से २२	१६ से २०
—	न २१

यहाँ पर शृंगार विलास का सातवाँ समाप्त होकर आठवाँ उल्लास और रसपीयूषनिधि की १२वीं समाप्त होकर १३वीं तरंग शुरू होती है :

—	२२ न
४	२३
प ५	२४
—	न २५
७	२६
८, ६	२७, २८
प १० से १५	२६ से ३४
१६ से १८	३५ से ३८
प २० से २४	३६ से ४३
२५	४४
२८	४५
२६	४६
—	न ४७ से ५०
प ३३	५१
—	न ५२
प ३५	५३
—	न ५४
प ४०, से ४१	५५,५६
—	न ५७ से ६१

यहाँ पर शृंगारविलास का आठवाँ उल्लास समाप्त होता है और नौवाँ शुरू और रसपीयूषनिधि का १३वा अध्याय समाप्त होता है और १४वाँ शुरू होता है :

—	न टि ६२
२ से ४	६३, ६४, ६५
—	न ६६ से ६९
—	न रसिकप्रिया का मत
९, १०	७०, ७१
—	न ७२
प ११	७३
—	न ७४
प १३, १४	७५, ७६
—	न ७७
१५	७८
प १६	७९
—	न ८०
१७ से १९	८१ से ८३
—	न ८४
२१	८५
प २२, २३	८६, ८७
—	न ८८
प २६, २७	८९, ९०
—	न टि
—	न ९१
२९ से ३१	९२ से ९४
—	न ९५ से ९८

यहां पर शृंगारविलास का नौवां उल्लास समाप्त होकर दसवां शुरू होता है और रसपीयूषनिधि की १४वीं तरंग समाप्त होकर १५वीं शुरू होती है :

१ से ५	९९ से १०३
—	न १०४
७	१०५
प ८	१०६

—	न १०७, १०८
११, १२	१०९, ११०
—	न १११ से ११३
१५ से १७	११४ से ११६
—	न ११७
प २० से २१	११८,११९ का लक्षण
२२, २३	११९, १२०
प २४	१२१
२५	१२२
प २६	१२३
२८	१२४
प २९	१२५

यही पर रसपीयूषनिधि का पचदश अध्याय समाप्त होकर षोडश आरंभ होता है :

—	न १२६
प १, २	१२७, १२८
प टि	—
—	न १२९
प ३, ४ टि	१३०, १३१
—	न १३२
प ६, ७	१३३, १३४
—	न १३५, १३७
प ९	१३८
—	न १३९ से १४४ टि
१३	१४५
—	न १४६, १४७
प १४	१४८
१५	१४९
—	न टि १५० से १५२
१७	१५३

—	न १५४, १५५
प १८	१५६
१९	१५७
—	न १५८, १५९
२०	१६०
—	न १६१ तथा टि
—	न १६२

यही पर श्रृंगारविलास समाप्त होता है और रसपीयूष निधि षोडश तरग समाप्त होती है।

जो सकेत दिए गए है वे इस प्रकार हैं :

प : परिवर्तित रूप

न . नया छंद

टि : टिप्पणी

म :

इस प्रकार श्रृगारविलास केवल रसपीयूषनिधि का श्रृंगार रस से वसद्ध सक्षिप्त परिवर्तित, सपादित रूप मात्र है। इसका अलग मूल व्यक्तित्व नही है। संभव है कि किसी के लिए लिखा गया हो या परपरा के निर्वाह के लिए मूल ग्रथ से इस ग्रंथ को अलग निकाल दिया गया हो।

नवाबोल्लास

नवाब गाजीउद्दीन इमादुल मुल्क जो जाट दरवार मे शरणार्थी था या समय-समय पर दरवार के उत्सवो मे समिलित होता रहा है उससे सवद्ध है। इसलिए चार उत्सवो का वर्णन मात्र कवि ने किया है : ईद, बकरईद, दशहरा और दीवाली।

आज के युग मे जब प्राय. लोग यह मान वैठे है और गलत मान वैठते है कि हिंदी काव्य मे केवल हिंदू सस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है, उनके लिए ऐसे कवियो की रचनाए एक चुनौती है। वास्तव मे हिंदू-मुस्लिम दोनो की भाषा हिंदी रही है और मुगल दरवार से लेकर जनसामान्य तक हिंदी भले राजभाषा न रही हो, लोकभाषा रही है। ईद, वकरईद के साथ दशहरा और दीवाली का वर्णन इसका उदाहरण है।

—	न १०७, १०८
११, १२	१०६, ११०
—	न १११ से ११३
१५ से १७	११४ से ११६
—	न ११७
प २० से २१	११८,११६ का लक्षण
२२, २३	११६, १२०
प २४	१२१
२५	१२२
प २६	१२३
२८	१२४
प २६	१२५

यही पर रसपीयूषनिधि का पंचदश अध्याय समाप्त होकर षोडश आरंभ होता है :

—	न १२६
प १, २	१२७, १२८
प टि	—
—	न १२६
प ३, ४ टि	१३०, १३१
—	न १३२
प ६, ७	१३३, १३४
—	न १३५, १३७
प ६	१३८
—	न १३६ से १४४ टि
१३	१४५
—	न १४६, १४७
प १४	१४८
१५	१४६
—	न टि १५० से १५२
१७	१५३

—	न १५४, १५५
प १८	१५६
१९	१५७
—	न १५८, १५९
२०	१६०
—	न १६१ तथा टि
—	न १६२

यही पर शृंगारविलास समाप्त होता है और रसपीयूष निधि षोडश तरंग समाप्त होती है।

जो सकेत दिए गए है वे इस प्रकार हैं :

प : परिवर्तित रूप

न : नया छद

टि : टिप्पणी

अ :

इस प्रकार शृगारविलास केवल रसपीयूषनिधि का शृगार रस से वसद्ध सक्षिप्त परिवर्तित, सपादित रूप मात्र है। इसका अलग मूल व्यक्तित्व नही है। सभव है कि किसी के लिए लिखा गया हो या परंपरा के निर्वाह के लिए मूल ग्रथ से इस ग्रथ को अलग निकाल दिया गया हो।

नवाबोल्लास

नवाब गाजीउद्दीन इमादुल मुल्क जो जाट दरवार मे शरणार्थी था या समय-समय पर दरवार के उत्सवों मे समिलित होता रहा है उससे सबद्ध है। इसलिए चार उत्सवो का वर्णन मात्र कवि ने किया है· ईद, वकरईद, दशहरा और दीवाली।

आज के युग मे जव प्राय लोग यह मान वैठे है और गलत मान वैठते है कि हिंदी काव्य मे केवल हिंदू सस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है, उनके लिए ऐसे कवियो की रचनाए एक चुनौती है। वास्तव में हिंदू-मुस्लिम दोनो की भाषा हिंदी रही है और मुगल दरवार से लेकर जनसामान्य तक हिंदी भले राजभाषा न रही हो, लोकभाषा रही है। ईद, वकरईद के साथ दशहरा और दीवाली का वर्णन इसका उदाहरण है।

नवाब जैसे लोग केवल ईद और बकरईद के उत्सव में ही उपस्थित नहीं होते थे, अपितु दशहरा और दीवाली मे भी संमिलित होते थे और उनके दरबार के लोग भी उसमे योगदान देते थे। यह वर्णन अपने मे बहुत महत्व-पूर्ण न होते हुए और परपरागत होते हुए भी अपनी महिमा इसलिए स्थापित करता है कि मुसलमानो के दरबार मे भी हिंदू कवि रहते थे और मुसलमान बादशाह भी उसी प्रकार दीवाली और दशहरा मनाते थे जैसे बकरईद और ईद और हिंदू राजा भी ईद और बकरईद मनाते थे, क्योकि किसी के भी राज्य मे प्रजा केवल हिदू या मुसलमान नही थी। राजा सब का ध्यान रखता था।

दीघ नगर वर्णन

दीघ नगर बरकपुर से बाइस मील की दूरी पर है। यद्यपि सोमनाथ बैर मे रहते थे फिर भी जाट राजाओ की राजधानी दीघ थी जहाँ पर अत्यत उदात्त एव भव्य प्रासादो का निर्माण उन्होने कराया था। सुजान विलास के अत मे उपसहार के उपरात यह अश मिला है। लगता है कवि की यह मुक्त-रचना है क्योकि इसमे मगलाचरण से लेकर दीघ नगर से सबधित सभी बाते है।

ग्रथ का आरभ बाणी की वंदना से हुआ है। इसमे उसे त्रिभुवन की रानी बताया गया है और उससे मधुर बाणी के दान की कामना की गई है। फिर ब्रज भूमि की वन्दना की गई है और इस वदना मे यह बताया गया है कि चारो पदार्थ की दात्री और दु.ख को हरण करने वाली ब्रज की भूमि जिसकी धूलि पापो का दलन करने वाली है तथा इमके गाँव, पेड़ पुष्पो से लदे हुए सौरभ वाले है। उसी ब्रज मडल के बीच मे दीरघ (दीघ) नगर है जिसका उल्लासपूर्वक वर्णन कवि ने किया है। दीघनगर का वर्णन करते हुए कवि ने मधुभार छद का प्रयोग किया है, और उसके प्रारंभ की अर्द्धाली मे दीर्घ का वर्णन है और दूसरी अर्द्धाली मे उसका विशेषण वर्णित है। यह सुदर ग्राम अत्यत ही ललाम है. जहाँ सुदर गढ है और जिसकी बुर्जे उसी प्रकार शोभायमान है जैसे विवेक। उन बुर्जियो पर सहस्रो पताकाएँ कलधौत रग की विराज रही है, जो युद्ध के जीतने का प्रतीक है। गढ में पूर्ण प्रकाश है और उसके राजा का निवास है। उसमे उत्तुंग बगले और

उनपर सुंदर कलश विराजते है और वहाँ पर स्वर्णजटित राजसिंहासन है। और प्रत्येक द्वार पर तोरण और वितान बना हुआ है। ऐसी सुंदर सुंदर झालरें लगी है उस पर जैसे सूर्य की किरणो की आभा झलकती है। लगता है यह ब्रजराज का निवासस्थान है। लोहे से युक्त बड़े बड़े दरवाजे शत्रु के लिये काल के समान है क्योंकि कीलयुक्त है। गढ़ के चारो तरफ़ सरिता के समान गढ है, उसके आगे ढार है, और फिर चौमुहानी, फिर बाजार है। अच्छी अच्छी अनगिनत दुकाने हैं और लोगो के गृह दरवाजे पर श्रीयुत समाज जुटता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वणिक, कायस्थ सभी जाति के लोग अपने अपने गुण और धर्म के अनुसार वहाँ रहते है। वहाँ पर चार आश्रमो की व्यवस्था है। अपना धर्म धारण करके बिना भय के विनय सपन्न लोग विचरते रहते है। यह सब कार्य बीस छदो मे कवि ने किया है।

इसके पश्चात् दस तोमर छदो मे बाग वर्णन किया गया है। यह बाग वर्णन बिल्कुल परंपरा के भिन्न ढग का है। इसमे सभी फूलो का, फलो का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि इनके चारो तरफ ऊँची चहार दीवारी तथा मध्य मे सुंदर भवन होता था।

ताल का वर्णन दो बड़ी चौपाइयो मे किया गया है और यह बताया गया है कि बाग के निकट पक्का सरोवर, उसमे निर्मल जल है और उसकी तरल तरंगे देखने मे बड़ी सुखद है। तालो मे अरविंद और इदीवर है। पानी मे मछलियाँ भी कलोल करती है। जल कुक्कुट और चकवाक वहाँ निवास करते है और हंस का भी वहाँ निवासस्थान है।

इसके बाद राजकुल का वर्णन है। त्रिभुवन कांत निरंजन जो विकट क्लेशो के गजन तथा सहज संत मनरंजन है और तैतीस कोटि देवता और सारे वेद मिलकर भी जिसका पार नही पाते वही यदुवश–कुलभूषण, व्रजभूमि के मध्य मे वसुदेव के घर उत्पन्न हुए। इसी वश से जाट नरेश अपने को मानते है। सिसिनवार जाट नरेश भावसिंह इसी वश मे पैदा हुए, जिनके विक्रम के समुख अनगिनत राजा सिर झुकाते रहे। कवि ने भावसिंह के विक्रम का वर्णन एव छप्पय छद मे किया है। उनके लडके बदनसिंह हुए जिन्होने व्रज-मंडल पर राज्य किया। उनका राज्य उसी प्रकार था जैसे अमरपुरी मे इद्र का, ऐसा कवि ने माना है। दो कवित्तो मे बदनसिंह की प्रशंसा की गई है और उसके बाद कवि ने बताया है कि बदन सिंह के अनेक पुत्र हुए जिनमे जेष्ठ

और विवेकवान सूरजमल थे। सूरजमल के सहोदर प्रताप सिंह हुए और इसके आश्रय मे ही कवि था। बुद्धि के आठो अग और राजा के चौदहो गुण सुंदर ढग से सूरजमल युवराज मे थे। बुद्धि के आठों भागो के नाम सुपुरखा, श्रवण, ग्रहण, धारण, तर्क, अर्थ, ज्ञान और तत्व विज्ञान। सुपुरखा–बडो की सेवा, श्रवण–ध्यान से सुनना, तीन प्रकार से समझने को ग्रहण, मन की शुद्धता धारण, अर्थ बोध, अर्थ का ज्ञान और सार का पहिचानना तत्व विज्ञान है। राजा के १४ गुणो मे, देशकाल का ज्ञान, दृढ़ता, सभी प्रकार का कष्टसहन और ज्ञान, चातुर्य तथा तेज, मंत्र तत्व का ज्ञान, उचित वचन, विक्रम प्रकाश, अपने सामर्थ्य का ज्ञान और दूसरे की कृति को न विसारना, शरणागत की रक्षा और शत्रु का तेज दलन ये राजाओ के चौदह गुण हैं। ये सभी सूरजमल मे थे।

उसके बाद सूरजमल की प्रशस्ति बड़े ही ललित और ओजस्वी ढंग से कवि ने की है। उनकी प्रशसा मे यह कहा गया है कि मरहठा और तुर्क दोनो को सूरज कुँवर ने युद्ध मे बड़ी बुरी मात दी और यहाँ तक उन्हें कहा है कि लगता है कि वे ब्रज मे कन्हैया के अवतार है। यह भी बताया गया है कि दान मे वह कल्पवृक्ष है जो शत्रुओ के देश को जीतते है और वित्त अर्जित करके बाँटते फिरते है।

इसके बाद उनकी सभा का वर्णन कवि करता है। सभा वर्णन के प्रसंग मे नर, नृतक, प्रवीन, सभाचतुर लोग उनके यहाँ थे और जहाँ सूरजमल ऐसे लगते थे जिसे देखकर इंद्र की सपदा और वैभव को तजा जा सकता है।

इसके बाद तीन छंदो मे घोडे, हाथी का वर्णन किया गया है जो बहुत ही सुंदर है। इस ग्रथ मे लगता ऐसा है कि उस समय का ही वर्णन है कि जब सूरजसिंह कुमार थे महाराजा नही हुए थे। यद्यपि सोमनाथ जी की प्राय यह स्थिति रही है कि वे बराबर छंदो मे थोडा बहुत परिवर्तन करते रहे है किंतु इसमे केवल एक छंद ही रस पीयूषनिधि से लिया गया है अन्यथा अन्य छद नए है और वह छद है पृ० ८२५ का बारहवाँ छद जो पृ० ४ का चौदहवाँ छद है।

इसमे जो कुछ भी दिया गया है यद्यपि रीतिकालीन परपरा के अनुसार अतिशयोक्ति है किंतु कोरी कल्पना नही है। जहाँ राजा के गुण और वैभव की बात है वहाँ निश्चय ही अत्यधिक परपराशील कोरी कल्पना

का उपयोग कवि ने किया है। अन्यत्र वह सहज उदार है और वर्णन वास्तविक है।

यद्यपि यह रचना बहुत विस्तृत नही है किंतु जिसके आश्रय मे कवि था केवल उसका ही नही वरन् उसके स्थान का भी वर्णन प्रस्तुत करता है। इसका अभिप्राय है कि कवि को उस स्थान से भी स्वाभाविक प्रेम है बनावटी नही। धरतीमाता के प्रति प्रेम इस देश की परंपरा का धर्म रहा है और वही आज के युग में राष्ट्रप्रेम के रूप में परिवर्तित और अभिवृद्ध हुआ है। इसलिये इस वर्णन का महत्व अपने इस गुण के कारण है, इसमे अपनी धरती के प्रति प्रेम का सहज भाव है।

संग्रामदर्पण

सोमनाथ केवल आचार्य कवि ही नहीं थे, सस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् ही नही थे अपितु ज्योतिष विद्या के भी विद्वान् थे। उन्होने सग्राम-दर्पण नामक ग्रथ की रचना की। यद्यपि यह ग्रंथ किसी सस्कृत ग्रथ का अनुवाद मालूम होता है तो भी इस क्रम के लिये भाषा मे रची गई ज्योतिषशास्त्र की यह अन्यतम रचना है। यद्यपि साहित्य के क्षेत्र में इस रचना का महत्व नही है किंतु वाङमय के क्षेत्र में सोमनाथ का एक महनीय योगदान है जो उनकी योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक मे ज्योतिषशास्त्र का सहज ढंग से ज्ञान दिया गया है विशेषकर युद्धशास्त्र का। इस ग्रथ की रचना भी योधा सुजान सिह के लिये की गई है।

इसमे निम्नलिखित विषयो का वर्णन है। मंगलाचरण के उपरात जो एक दोहे मात्र मे है सीधे कवि विषय पर आ गया है और वे विषय निम्नाकित है—संवत् और उनकी संज्ञा जो साठ है। इन सवत्सरो के बाद गोल, अयन, ऋतु, नदाधिक तिथि, वार तिथिवार से तिथियोग, तिथिवार से मितियोग, नक्षत्रकथन (२८ नक्षत्रो का नाम, अश्विनी से रेवती तक छद तथा सस्कृत मे दिया गया है), नक्षत्र वार से शुभयोग, नक्षत्र और वार से अयोग तथा विष्कुभादि योग (ये योग २६ है और उनकी सज्ञा भी दी गई है जो गद्य में है) कर्मविचार, मेषादि राशि के स्वामी, चद्रवास कथन, घातचंद्र कथन, जयपराजय ज्ञान चक्र, चिखनक्रम विचार, जयपराजय ज्ञान चक्र, घातचद्र चक्र, (तीन प्रकार से चार्ट सहित), युद्ध यात्रा

मुहुर्त, स्वर चक्र, कुलाकुल अकुल विचार तथा गणचक्र अकुल गण चक्र (गद्य मे) वर्णस्वर विचार, गुरु स्वर और ग्रह स्वर चक्र, नक्षत्र (गद्य मे भी व्याख्या), बारह वार्षिक स्वरकथन तथा अतर्भुक्ति कथन, रितु स्वर और अतर्भाग कथन, ऐन स्वर विचार तथा अतर्भोग कथन (इनका उदाहरण गद्य मे दिया है, आयोजन कथन, जीव तथा पिंडस्वर कथन, योगेश्वर कथन, अयन मास तथा माला स्वर कथन, जीवस्वर प्रकार प्रयोजन, योगेश्वर जय पराजय चक्र, चक्रविचार, जीवेश्वर चक्र (गद्य मे व्याख्या), स्वर भुवन कथन और उसका उदाहरण, दिगत्वार्थ राशिचक्र कथन (चार्ट और गद्य तथा पद्य मे व्याख्या) चद्रहथ दिशा चक्र, प्रहार निवारणार्थ गृहयोग कथन और उसका उदाहरण, सूर्य, दक्षिण, वाम फल कथन, वाम दक्षिण फल कथन, वायु बल साधन, राहुचक्र कथन, तिथि योगिनी चक्र कथन (चार्ट सहित), योगनियो के नाम, योगनी दल चक्र तथा उसके उदाहरण (चार्टसहित), प्रहार निवारणार्थ, सूर्यादिकवार निषेध, अर्द्धजाम कथन (चार्ट सहित), सूर्यादिवार मे निषिद्ध दोनो अर्द्धजाम चक्र उनके उदाहरण, काल भैरव कथन और उदाहरण तथा प्रयोजन, प्रहार स्थान कथन, प्रहार स्थल विशेष कथन, घर के बनाने और उसमे प्रवेश का लग्न, नाड़ी चक्र विचार, वर्जित नक्षत्र कथन, दिक्शूल कथन, काल विचार, फाँसी विचार और उदाहरण, राहुकालानल चक्र विचार, अवकहड चक्र विचार, हृदय कमल चक्र विचार, कमल चक्र मे पचवृंद चहलफल तथा उसका स्वरूप कथन, घडी प्रमाण कथन अग्नितल फल कथन जयपराजय जानने के लिए स्वर प्रश्न कथन, सूक्ष्म स्वर प्रश्न, स्वर बल, स्वर वशीकरण, मदन युद्ध विचार कथन, जूआ जीतने का विचार, क्षतिनिवारणार्थ जय औषधियो का कथन, वाद्ययार्थ औषधिकथन, कोटिचक्र विचार, कोटि चक्र स्वरूप, दुर्गभग विचार कथन, सर्वतोभद्र चक्र कथन, वेध विचार, शुभग्रह पापग्रह का भेद फल, भेद दृष्टि भेद एव उदाहरण, सूर्य कालानल चक्र का लेखन क्रम, वक्र कुटिल, सम और मनदेवराहो का सूर्य कथन, अक्षर, नक्षत्र, स्वर, तिथि, राशिफल वेदफल कथन।

युद्ध के बारे मे ही यह ग्रथ नही है इसमे काम और जुआ इन सबको भी समेट लिया गया। साथ ही ज्योतिष की बहुत बाते प्रामाणिक ढंग से बताई गई है। केवल ज्योतिष तक ही ग्रन्थ सीमिति नही है अपितु सग्राम मे चोट लगने पर दवा भी इसमे बताई गई है। इस प्रकार वैद्यक का भी एक

ग्रथ है। निश्चय ही उस समय युद्ध मे घायल होने पर जो सहज वैद्यक विधि से योद्धाग्रो कि चिकित्सा की जाती थी इसमे उस युग का इतिहास भी है। यह ग्राज के युग में कहाँ तक उपयोगी है, डाक्टर जाने, पर यह निश्चित है कि हमारे देश के प्राचीन चिकित्साविज्ञान के इतिहास के लिए इसमे सामग्री है। यह ग्रथ उन लोगों के प्रश्न पर भी चुनौती है जिनका कहना है कि मध्य काल मे केवल, शृंगार, रीति ग्रौर भक्ति का ही विकास हुग्रा है। उस काल मे वागमय एव साहित्य का पल्लवन ग्रौर पुष्पन नही हुग्रा।

सुजान विलास

सुजान विलास की रचना कविवर सोमनाथ ने ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया रवि-वार संवत् १८०७ वि० मे की। सिंहासन वत्तीसी की यह कथा मध्यकाल मे ग्रत्यत प्रचलित थी ग्रौर राजकुमारो के लिये विविध कवियो ने इसकी रचना ग्रपनी भाषा मे की है।

इंद्र का सुख वढाने वाली ये वत्तीसो सुरनारियाँ थी ग्रौर शाप के कारण महाराज विक्रम के सिंहासन की पुतलियाँ वन गई। उनके नाम इस प्रकार है---१–जया २–विजया ३–जयती ४–ग्रपराजिता ५–जयघोषा ६–पुंजघोपा ७–ग्रनुरोपा ८–मंजुघोपा ९–लीलावती १०–कलावती ११–जय सेना १२–मदनसेना १३–मदनमंजरी, १४–रतिप्रिया, १५–नरमोहिनी १६–प्रभावती १७–चंद्रमुखी १८–ग्रनगध्वजा १९–कुरग नयना २०–लावण्यवती २१–मजरी २२–हंसगमना २३–विज्जुप्रभा २४–ग्रानदप्रभा २५–सुरप्रिया २६–देवनंदा २७–पद्मावती २८–वरनयना २९–शृंगारप्रिया ३०–भोग निधि ३१–चंद्रकांता ३२–चद्रिका।

ये सभी की सभी सुदरी कुदन वदनी, मोहिनी, संगीत नृत्य निष्णाता ग्रप्सराएँ थी। नदनवन के वीच एक दिन इद्र इनका नृत्य देख रहा था। एक महर्षि जिनका ग्रत्यत मलिन ग्रंग था वहाँ उपस्थित थे। उनको देखकर इन ग्रज्ञानी पुतलियो ने हँस दिया। इसे देखकर इंद्र ने तत्काल इनको शाप दिया कि तुम सव पाषाण हो जाग्रो ग्रौर ग्रपने दोप को भोगो ग्रौर जव ये पुतलियाँ पत्थर की हो गई तो ग्रपने सिहासन मे इद्र के उन्हे जड़ लिया ग्रौर जव विक्रम महाराज को इंद्र ने वह सिहासन दिया तव उनके हृदय में दया

उत्पन्न हुई और उन्होने कहा जब नर्क लोक के मध्य सारा विषाद भूलकर भोज सभा के मध्य मे श्री विक्रम के सत्यगुण कहोगी तव तुम सब दिव्य तन प्राप्त करके फिर स्वर्ग आओगी।

मालवदेश की धारानगरी मे भोज नामक नरेश का राज्य था। उस नगरी मे धर्म, अर्थ, काम सभी मिलता था, अनीति नही थी। सर्वत्र आनद था। नर नारी प्रभुचरित्र का गान करते थे। भोजराज सु दर ढंगसे राजकार्य करते थे। वे रवि के समान तेजस्वी मनोज के समान सु दर थे। उनके राज्य मे रचक कपट नही था और न कही किसी बात का प्रपच था। उज्जैन नगर से थोडी दूर पर एक ब्राह्मण रहता था जो धन एकत्र करने मे चतुर था और महा कृपण था। एक समय उसने खेती करके वहुत अन्न पैदा किया। उस खेत के बीच मे एक टीला था जब उसपर यह ब्राह्मण चढता था तो उदार और उतरने पर फिर कृपण हो जाता था। एक दिन वह महाराजा भोजदेव का दर्शन करने आया तो महाराज से उसने यह आश्चर्य भरी वात कही। उस स्थान पर राजा भी आए और विप्र की बात उन्हे सत्य लगी। फिर राजा ने वहुत अधिक धन देकर वह खेत ले लिया। और जब उसे खोदा गया तो यह सिंहासन उसमे से निकला। उस बत्तीस हाथ के सिंहासन से जो आठ हाथ ऊँचा था बत्तीस पुतलियाँ जड़ी हुई थी। सब लोग उसे खीचने लगे अपनी सारी ताकत लगा कर तब भी वह सिंहासन अपने स्थान से नही हटा। तब मत्री ने कहा---राजन, लगता है यह सिंहासन सिंधु का जहाज है। महाराज पहले यहाँ कुछ दान कीजिए और बलि चढाइए तब कही जाकर यह स्थान तजेगा और ऐसा किया गया। तद् उपरात राज्यसभा के मध्य मे वह सिहासन स्वत आकर विराज गया। उसके बाद सिहासन की विधिवत् पूजा की गई और मुहूर्त साधकर जब भोजराज उसपर चढ़ने का प्रयत्न करते थे तो एक पुतली उनके सामने आ जाती थी और वह कहती थी इसपर वही चढ सकता है जो विक्रम की तरह उदार, तेजस्वी और ओजस्वी हो। एक पुतली की कथा खतम होने होते मुहूर्त समाप्त हो जाता था। भोजराज सिहासन पर चढने से वचित रह जाते थे। फिर मुहूर्त आने पर यही क्रम चलता था।

कथा कहने के उपरात ३२ पुतलियों का शाप मुक्त हो गया। और जब पुतलियाँ शाप मुक्त हुईं तो राजा भोज से कहा कि हम सब वहुत प्रसन्न है

बर माँगिए। राजा भोज ने कहा मुझे कुछ चाह नही कृपा चाहिए। इन पुतलियों ने राजा भोज को हित की बात बताई जिसमें इन कथाओ की महत्ता का आख्यान है। इन कथाओं को जो विचित्र है, जो ध्यान पूर्वक पढ़ेगा, सुनेगा और उसे सत्य मानकर चिंतन करेगा उसे हिमालय जैसी कीर्ति मिलेगी और सारे सुखो को वह भोगेगा। यह कहकर पुतलियाँ स्वर्ग चली गई और बहुत वर्षो तक राजा भोज राज्य करते रहे।

इस ग्रंथ मे कविवंश का वर्णन भी कवि ने किया है और वह वही है जो रसपीयूष में लिखे दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवे छद मे है एव दूसरे से आठवे छद तक है। इस ग्रंथ की रचना सूरजमल की आज्ञा से हुई है और कवि ने निवेदन किया है कि गुणी लोग ससिनाथ की विनती को हृदय मे स्थान दे और ग्र थ की गलती को सुधार ले।

ग्रंथ के अंत मे सूरजमल युवराज का प्रशस्तिगान किया गया है और प्रत्येक अध्याय के अत मे निम्नाकित एक छद केवल अध्याय के नामकरण के अतिरिक्त करीब करीव एक ही दिया गया है जो निम्नलिखित है:

श्री वदन सिह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि विसाल है।
तिहि कुँवर स्यंद्य सुजान सु दर हिद भाल दयाल है।
तिहि हित्त कवि ससिनाथ नै रच्चिय सुजान विलास है।
तीस पुत्तलि कथा पूरन भयो ग्र थ प्रकास है॥

इसमे सब ३३ अध्याय है। पहले अध्याय में एक विचित्रता है कि मगलाचरण बाद मे है। सुजानविलास या बत्तीस प्रकाश की कथा भापा मे बनाने की सूरजमल की प्रार्थना प्रारभ मे है। प्रारभ के ३२ अध्याय कथाओ के है और पहले अध्याय के वाद प्राय. सभी अध्याय इस बात से प्रारभ होते है कि मुहूरत साधकर भोजराज जब हिसासन पर चढ़ना चाहते है तो पुतली बोल उठती है तथा एक कथा प्रारभ हो जाती है और कथा समाप्त होते होते मुहूरत समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार बत्तीस अध्याय तक क्रम से जारी रहता है।

तैतीसवाँ अध्याय उपसहार का है। यह अध्याय ग्र थ रचना के कारण, प्रकार और उसके महात्म से संबद्ध है। इन तैतीस अध्यायो मे कवि ने जीवन में आनेवाली सभी भौतिक और आदिभौतिक तत्व का वर्णन उत्सर्गमय

कहानी के मध्य किया है। कला, ज्ञान, विज्ञान, संस्कार, धर्म, युद्ध शांति, उत्सर्ग, नगर, नदी, ग्राम, पहाड़, ऋतु, फल, अस्त्र शस्त्र, पुण्य पातक सभी का वर्णन स्थान स्थान पर विस्तार के साथ किया गया है। काव्य की दृष्टि से अनेक स्थान उच्चकोटि के है। वंदना और प्रार्थना मे महादेव व्याहुलो से भी छंद लिए गए है। इस ग्रंथ का साहित्यिक मूल्यांकन यथास्थान किया जायगा। इसकी कथाओ का एक उदाहरण यहां देना अप्रासंगिक न होगा। यह दूसरी कथा है।

मुहूर्त साधकर सिंहासन पर जब राजा भोजराज चढ़ने लगे कि हे नृपराज, यदि तुम विक्रमादित्य के समान उदार हो तो ऊपर चढ़ो। उन विक्रम की उदारता का वर्णन भोज की जिज्ञासा पर जिसका नाम की पुतली करने लगी–

एक दिन महाराज विक्रम ने चारो तरफ पृथ्वी पर दूत भेजे कि संसार जो आश्चर्य दिखाई पड़े उसे देखकर आकर बताओ। एक दूत ने आकर कहा कि चित्रकूट नाम का एक उत्तुंग पहाड़ है जहाँ एक अनुपम देवालय है। इस तपोवन के आगे एक नदी है जिसका जल क्षीर के समान है। लेकिन पुरुष जो उसमे नहाता है तो उस पानी मे वह काजल के समान हो जाता है। वहाँ पर एक सिंह विद्या की साधना करता है और उसने जप होम आदि किए किंतु उसे सिद्धि प्राप्त न हुई। यह सुनकर राजा विक्रम बहुत ही विक्षुब्ध हुए। यह दृश्य देखने के लिये राजा अनेक वीरो के साथ वहाँ चले। राजा की सेना का वर्णन, रास्ते मे पड़नेवाले प्राकृतिक दृश्य, झरना, पहाड़, वृक्षों आदि का वर्णन, पशुओ का सबका वर्णन बड़े ओजस्वी ढंग से है। नदी के निकट पहुँच कर विक्रम बहुत प्रसन्न हुए और यहाँ मंदाकिनी नदी का बड़ा ही ललित और ओजस्वी वर्णन कवि ने किया है। उसके बाद मंदाकिनी स्नान कर और भेट चढाकर राजा आए और उन्होंने अपने शरीर को देखा जिसपर जल दूध के समान था अत. वे अलंकृत हुए। फिर देवताओं को प्रणाम कर सात वर्ष से तप करते हुए साधक के पास गए। तपस्वी की साधना के रूप का वर्णन कवि ने किया है। उसके बाद तपस्वी की कथा पूछकर देवी के मंदिर के निकट जाकर दूसरे का दुख दूर करने के लिये देवी की वंदना करने लगे। यह वंदना भी महादेव के व्याहुलो का ही अंश है। और संभवतः मध्यकाल मे लिखी गई शक्ति की वंदनाओ के अत्यंत उत्तम वंदना है। जिसकी यथास्थान चर्चा होगी और जो महादेव के व्याहुलो मे भी है। फिर

भी भवानी प्रसन्न नही हुई इसलिये अपने गले पर प्रेम और धर्म से पूरि होकर विक्रम ने खड्ग रखा और अपना शीश देवी को चढाना चाहा त्योही देवी ने प्रसन्न होकर राजा के हाथ को पकड़ लिया और वर माँगने को कहा। राजा ने कहा कि देवी यह बताओ कि साधक से तुम क्यो प्रसन्न नही हुई, जब कि यह सात वर्षो से साधना कर रहा है मुझपर तत्काल प्रसन्न होने में क्या रहस्य है। तो भवानी ने कहा कि तुम्हारे हृदय में अकलकित दृढ प्रेम है और इसके हृदय में भाव नही है केवल योग के बल से यह वरदान का अभिलाषी है। मंत्र, गुरु, स्वप्न और तीर्थ जिसमें जिसका भाव होता है उसको वैसी ही सिद्धि मिलती है। राजा की समझ मे यह बात आई कि न तो काठ मे न तो पत्थर मे, न नदी में, और न तो धातु मे तथा धातुपूजन मे देवता का निवास है अपितु सिद्धि भाव के अनुसार ही मिलती है। इसके बाद विक्रम ने देवी से यह माँगा कि इस तपस्वी को वर दो ताकि इसकी साधना पूरी हो और भवानी ने वैसा ही किया। इस प्रकार वरदान स्वय माँगकर उसका दान तपसी को उन्होने कर दिया। तपसी बहुत प्रसन्न हुआ और विक्रम का यश सारे संसार मे फैल गया। इसी प्रकार की कथाएँ जो तत्कालीन युग के अनुरूप तत्व से भरी पड़ी है सुजान विलास मे है। कथा पुरानी है किंतु उसे परिधान और सुंदर अलंकार सोमनाथ ने पहनाया है।

माधव विनोद

'माधव विनोद' नाटक संस्कृत के प्रख्यात नाटककार भवभूति के प्रसिद्ध नाटक 'मालती माधव' का पद्यवद्ध अनुवाद है। इसमें कुल दस अंक है। इसके अंत मे कवि-कुल-वर्णन भी दिया गया है। इसमें माधव नायक और मालती नायिका है। पात्र परिचय इस प्रकार है :

पुरुष पात्र

देवरात	विदर्भनरेश के मन्त्री
माधव	देवरात का पुत्र
मकरद	माधव का मित्र
कलहस	माधव का सेवक
भूरिवसु	पद्मावतीनरेश के मंत्री
नदन	भूरिवसु के नर्म सचिव

अघोरघंट	एक कामाचारी कापालिक

स्त्री पात्र

मालती	भूरिवसु की पुत्री
लवंगिका	मालती की सखी
मदयतिका	नंदन की वहिन
कामंदकी	बौद्ध संन्यासिनी
सौदामिनी	कामदकी की शिष्या
अवलोकिता	कामंदकी कीदासी
वुद्धिरक्षिता	कामंदकी की सखी
मदारिका	कलहस की प्रेमिका
कपालकुडला	अघोरघंट की शिष्या

यह नाटक एक काल्पनिक आख्यान को लेकर चलता है। अतः प्रकरण है। प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार यह सुखात प्रकरण है। अनुवाद पद्यात्मक होने के कारण पाठ्य ही है, अभिनेय नही। कवि ने अनुवाद मे स्वच्छदता वरती है। इसलिये पाठको को आदि से अत तक यह रमाए रहता है। रीतिकाल मे एक नाटक हिंदी को देकर सोमनाथ ने एक नया काम किया है, भले ही यह अनुवाद है। पद्यानुवाद की विशेपता यह है कि अनुवादक छदों को वरावर वदलता चलता है, जिससे पाठक की चित्तवृत्ति रमी रहती है, उसका जी ऊवता नही। अनुवाद विशुद्ध व्रजभापा मे हुआ है।

इसके प्रथमाक मे मगलाचरण का छद मूल नाटक के मगलाचरण का अनुवाद नही है, यंह सोमनाथ की मौलिक रचना है। गणेशवंदना के वाद आश्रयदाता के पूर्वपुरुप भगवान् कृप्ण की वदना दो छदो—एक कवित्त और एक दोहा—मे है। फिर भाव सिंह का यशगान दो छदो मे, उनके पुत्र महाराज वदन सिंह की प्रशंसा चार छदो मे, उनके ज्येप्ठ पुत्र सूरजमल्ल की प्रशसा दो छदो मे, दो ही कवित्तो मे प्रताप सिह की प्रशसा, उनके पुत्र वहादुर सिंह का यशोगान चार छदो मे किया है। इन्ही वहादुर सिंह के कहने से कविवर सोमनाथ ने यह अनुवाद प्रस्तुत किया है। वे कहते है :

> कही वहादुर सिंह ने एक दिना सुख पाइ।
> सोमनाथ या ग्रथ की भापा देहु वनाइ ॥

माधव श्री मालती के प्रेम कथा कौ ख्याल।
बरनतु सो ससिनाथ कवि हुकुम पाय कै हाल ।।

इस ग्रंथ को पढने और समझने का अधिकारी कौन है, इसका भी निर्देश कवि ने इस प्रकार कर दिया है :

माधव दिनोद या ग्रथ नाम।
सुनि रीझै जाको वुद्धि धाम।
नर प्रेमी बिनु समझै न याहि।
हौ कहतु सत्य उर मै उछाहि।।

इस प्रकार हम देखते है कि इस अनुवाद की प्रस्तावना का विषय मूल नाटक से सर्वथा स्वतत्र है और इसमे आश्रयदाता की वशावली पूरी की पूरी उतार दी गई हैं।

जब रीतिकालीन अन्य आचार्य केवल नायिकभेद के लक्षणग्रथ ही प्रस्तुत करने में लगे थे तब सोमनाथ साहित्य के अन्य कक्षों के द्वार खोलने में लगे रहे, इससे इनकी स्वच्छदताप्रिय कविमनोवृत्ति का पता चलता है। इसी कारण वस्तु के अनुकूल ही इनकी भाषा भी रग वदलती चलती है। मूल ग्रंथ का अनुवाद प्रस्तुत करते हुए भी गणेशवदना के वाद कवि कृष्ण की मूर्ति का भव्य चित्र उपस्थित करने से अपने को रोक नही पाया है और एक ललित छप्पय मे उनकी ध्यानमूर्ति अवतरित कर दी है।

जिस प्रकार सस्कृत कवि भवभूति के सकेत पर गीर्वाणवाणी वाग्देवी का नर्तन होता था उसी प्रकार सोमनाथ के आदेशानुसार व्रजभाषा भावभूमि के अनुकूल ही नृत्यरता दिखाई पड़ती है। मालती और माधव का नखशिख वर्णन बहुत कुछ रीतिपरपरामुक्त होने पर भी अपना स्वतंत्र आकर्षण रखता है। यह अश मूल से सर्वथा स्वतत्र है। नाटक के प्रथम अक का मन्मथोद्यान वर्णन भी अनुवादक कवि की मौलिक रचना है। यद्यपि यह वर्णन की रीतिपरिवेश से पृथक् अस्तित्व रखनेवाला स्वच्छंद प्रकृतिवर्णन नही है तथापि कवि की स्वच्छद प्रकृति का परिचायक तो है ही। इसी प्रकार नाटक के बीच बीच में नवीनता लाने के खयाल से कवि ने अनुवाद के परे अपना स्वतत्र परिचय बराबर दिया है।

महादेव जी को व्याहुलौ

इस प्रबध काव्य मे भगवती उमा और देवाधिदेव महादेवजी के विवाह का रोचक वर्णन है। यह विशुद्ध भक्तिकाव्य है। बीच बीच मे जगदंबिका और महेश्वर का लोकपालक और लोक रजक रूप भी बडी सहृदयता के साथ उतारा गया है। विवाह मे वैदिक विधियो के साथ लौकिक कृत्यो का भी मनोरंजक और लोकग्राही चित्रण हुआ है। विवाह के समय भोजन के जितने व्यजनो का वर्णन सोमनाथ ने किया है, हिंदी मे दो एक गिने चुने ही कवियो ने किया है। देखिए वानगी के तौर पर–

बनी असरफी से खड़ी वरफी अरु पेड़ा।
मोदक मगद मूलक और मट्ठै पहँ सेरा॥
फेनी गूँझा गजक भुरभुरे सेव सुहारे।
जोर जलेवी पुज कद सो पगे छुहारे॥

यह प्रबध पाँच उल्लासो मे पूर्ण हुआ है। अत मे गणेश और स्वामि-कार्तिकेय के जन्म का आख्यान भी आ गया है।

प्रेम पच्चीसी

यह एक प्रकार का स्वच्छद प्रेमकाव्य है। इसमे कुल सत्ताइस छंद हैं। आरभ मे एक दोहे मे प्रेमदेव नदलाल की वंदना है और अत के दोहे मे फल-श्रुति के साथ साथ रचना का निमित्त भी वता दिया गया है। कवि कहता है—

पच्चीसा यह प्रेम को सुनि सुख होवै मित्त।
सोमनाथ कवि ने रच्यौ नदकिसोर निमित्त॥

इन दो दोहो को अलग कर देने पर पचीस छव ही शेप रहते है, अत. इसका नाम पच्चीसी या पच्चासा अन्वर्थ ही है। प्रत्येक छद की अतिम पक्ति यह है—

'सोमनाथ नेही सैं कैसा दिल अदर विच परदा है।'

यह लघुकाय काव्य फारसी प्रेमकाव्य की शैली पर रचित है, जिसमे नायक वरावर नायिका के रकीव की ओर आकर्षित होने की शिकायत करता रहता है—

"औरौ सैं वतरादा हसि हसि जो चाहै तु वकसदा है।"

यों कवि प्रेमी का सारा उपालंभ भगवान् कृष्ण से ही है। अतः यह रचना कृष्णकाव्य के अतर्गत आती है। आगे चलकर इसी पंथ पर घनानद भी चले है और उनका प्रेमपीर से भरा काव्य अधिकतर उपालंभात्मक ही है। यहाँ कवि कहता है--

रंच रहम करि कान्ह गुमानी क्यौ पहिलै अपनाया हौ।
अब क्या करूँ कहूँ मै किस्सै खूबी लखि ललचाया हौ।।

इस काव्य की भाषा सरल पजाबी भाषा है और इसपर भी सोमनाथ का अच्छा अधिकार प्रकट होता है।

इस प्रकार हम देखते है कि सोमनाथ ने सारी काव्यविधाओ को साधिकार अपनाया और सफलता के साथ उन्हे निभाया भी है। ऐसी चतुर्मुखी दृष्टि और नवोन्मेषिनी प्रतिभा के धनी रीतिकार आचार्य कवियो मे शायद ही कोई मिले।

रास पंचाध्यायी

(रासपंचाध्यायी का परिचय छूट गया था, यहाँ दिया गया है।)

रास पंचाध्यायी श्रीमद्भागवत का एक उज्ज्वल और उदात्त अंश है। श्रीकृष्णलीलाओं में इसका श्रेष्ठ स्थान है। इसीलिये व्रजभूमि में निवास करनेवाले अनेक भक्त कवियों ने तथा अनेक अन्य कवियों ने भी इस आख्यान को आधार बनाकर 'रासपंचाध्यायी' नामक काव्यों की रचना की है। सर्व-प्रथम अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि नंददास ने रास पंचाध्यायी की रचना की, जो रोला छंद मे निबद्ध है। रासपंचाध्यायी के दूसरे रचयिता कृष्ण भक्त हरिराम व्यास हैं, जिनका रचनाकाल सं० १६२० के आसपास पड़ता है। कहते हैं कि कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना ने भी इस नाम का एक काव्य लिखा था, पर वह अब तक देखने में नही आया। विक्रम की उन्नीसवी शती के अंत मे नवलसिंह कायस्थ ने इस नाम से एक ग्रंथ की रचना की, जो अबतक अप्रकाशित है। कविवर सोमनाथ ने, जो आजीवन भरतपुर राज्य मे रहे, सं० १८०० में इस काव्य की रचना की। काव्य के अंत में इन्होंने इसका रचनाकाल भी दे दिया है—

सवत ठारह सै बरस, उत्तम अगहन मास।
सुक्ल द्वितीया बुद्ध दिन, भयौ ग्रंथ परगास॥

इन्होंने अपनी गृहीत परिष्कृत शैली के अनुसार इस काव्य की रचना भी विविध छंदों मे की है। आख्यानात्मक काव्य न होने के कारण छंदों के वैविध्य से इसका चारुत्व विशेष बढ़ गया है। छंदों मे रोला, कवित्त, सवैया, पादाकुलक, छप्पय, तोमर, बड़ी चौपाई, पद्धरी, त्रिभंगी, मुक्तादाम, दोहा, सोरठा आदि का सुंदर चयन हुआ है। इस काव्य द्वारा कवि ने कृष्ण के परब्रह्मत्व का निरूपण किया है। इन्होंने अंत में कहा है—

गोपिन के तन माहि, औ गोपिन के पतिन मे।
निज प्रभाउ कौ साहि, व्यापि रह्यौ मनि सून जिमि॥
लीला जैमिय बिहि, प्रगट जगत मे स्याम घन।
ताही विधि परसिद्ध, गाय तरे भवसिंधु को॥

रासमंडल में संमिलित गोपिकाओ ने भी श्रीकृष्ण को परब्रह्म के अवताररूप मे ही अपनाया है, साधारण मानव रूप में नही। वे कहती हैं--

तुम केवल नाहि गोपिकानदन मोहनलाल पियारे।
हौ साखी रूप सकल जीवन के अंतरंग उजियारे।
करत प्रनाम अमर किनर हूँ तुमको, नर पुनि को है।
अघकंद-निकदन जाहर जग में, तुम एकै सरसो है॥

इस प्रकार इस लघुकाय काव्य मे सोमनाथ ने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति का ही निवेदन किया है। इस काव्य को कवि का शुद्ध अंत.करण उद्भूत काव्य ही समझना चाहिए, क्योकि अन्य काव्यकृतियो या अनूदित कृतियो की भाँति किसी राजा या राजकुमार के कहने से इसकी रचना नही की गई है, अन्यथा अन्य काव्यों की भाँति कवि आरभ या अंत में उत्प्रेरक आश्रयदाता का उल्लेख अवश्य करता, किंतु इसमें कही भी वैसा उल्लेख नही है।

यह सोमनाथकृत 'सग्रामदर्पण' की पांडुलिपि का एक पृष्ठ है।

श्री गणेशायनमः

अथ रसपीयूपनिधि सोमनाथकविकृत लिख्यते

छप्पै

सिंधुर वदन अमंद चंद सिंदूर भाल धर !!
एकदंत दुतिवंत बुद्धिनिधि अष्ट सिद्धि वर ॥
मदजल स्रवत कपोल गुंजरत चंचरीक गन ॥
चंचल श्रवन अनूप थोंदि थरकत मोहति मन ॥
सुर नर मुनि वरनत जोरि कर गुन अनंत इमि ध्याय चित ॥
ससिनाथनंद आनंदकर जय जय श्री गननाथ नित ॥१॥

कवित्त

अमल अनंत नव नीरद वरनवंत
प्रगटे अवनि पै अनादि निरधारे हौ।
असुर बिदारे दुख पुंज निरवारे कोटि
सकल सुधारे काज गूढ़ गुन भारे हौ।
जहाँ जिहि ध्याये तुम तही ठहराये आइ
रूप उजियारे सोमनाथ उर धारे हौ।
जै श्री रघुनायक हौ चार्‍यो फलदायक
दुलारे दसरथ के हमारे प्रानप्यारे हौ ॥२॥
कंचन के रंग अंग आनन अरुन राजै,
उद्धत फदैया नीर सागर दुरंत के।
श्री कौ महामंगल संदेसौ पहुँचैया और
लंक विनसैया औ रिझैया सव संत के।
सोमनाथ वरनै समीर के सपूत साँचे
सेवक समीपी रघुवर वलवंत के।

कंत अवनी के ह्वै अनंत सुख पावैं गुन
गावैं नर असे जो हठीले हनुमंत के ॥३॥
स्यामल सुगध सिर कुंचित लटूरी लसैं
भूषन भुवगम रिझैया मद पानी के।
वालक बहिक्रम विलंद गुन सोमनाथ
रिद्धि सिद्धि मदिर सुछद बरवानी के।
हियें परताप के विराजौ श्री बटुकनाथ
सकटहरन तिहुँ लोक रजधानी के।
दायक[1] अनंद, सब लायक, अमद दुति,
वंदन बलित भाल, नदन भवानी के ॥४॥

छप्पै

उदय दिवाकर रग अग आभा बर धारनि।
त्रिनयनि चंद्र लिलार ईस अरधंग विहारनि।
सिहवाहनी सिद्धि चारि भुज आयुध मडिनि।
जोगिनि[2] मडल संग चंड दानवदल खंडिनि॥
बहु बुद्धि वृद्धि बरदायिनी मोहन सुर नर मुनि मननि।
हूजै सहाय[3] ससिनाथ कौं जय श्री सिंधुरमुख जननि ॥५॥

दोहा

सकल सिद्धिधर बुद्धि वर गुनमंदिर सुभदाय[4]।
सौमनाथ कौं होहु अब सिंधुरबदन सहाय[5] ॥६॥

कवित्त

आदि बसुदेव देवकी के चित चाहे करि
नंद जू कौं मंदिर बिलासनि सौं भर्यौ है।
असुर अनेरे घने घेरिके निबेरे अरु[6]
विधि पुरहूत कौ गुमान गढ दर्यौ है।

---

१. दाइक [१]। २ जुगानि [१]। ३. सहाइ [१]।
४. ४. सुभदाह [ ] ५ सहाइ [१]। ६ और [१]।

महाराज बदनसिंह

सौंमनाथ ग्वाल बाल गोकुल बचाइवै[1] कौं
फूल तूल पव्वय समूल कर धर्‍यौ है।
मुरली वजैया ब्रज मोद वरसैया आइ
रैया त्रिभुवन कौ कन्हैया अवतर्‍यौ है ॥७॥

अथ राजकुल बर्न्नं

दोहा

सकल जगत शुभ करन कौं हरन अखिल[2] दुख दंद।
जदुबंशी नृपनंद के प्रगटे गोकुलचंद ॥८॥
भाव सिंघ भूपति भए तिहिं कान्हर के वंस।
तेग बहादुर जगत मैं जदुकुल के अवतंस ॥९॥
तिन के भयौ प्रसिद्ध[3] अति बदन सिंघ सौ लाल।
दियौ राज ब्रज कौ हरषि जिन कै श्री नंदलाल ॥१०॥
अमर नगर सम दीघ मै लसत पुरंदर रूप।
वखत विलंद अनंदनिधि बदन महीप अनूप ॥११॥

कवित्त

आठौं जाम हियें नीति रीति सौं प्रतीति जा के
चरचा न रंचक अनीति के विधान की।
पारावार सील कौ उदारकवि सौंमनाथ
दुहूँ कर सीख्यौ विधि पारथ के वान की।
सिंघ वली वदन महीप जौ सिकार चलै
संकै लंकवारे मुनि गरज निसान की।
तेग मतवारे दिगदंती रखवारे वीर
जाकी आन मानन प्रमानै[4] किरवान की ॥१२॥

---

१. बचायवे [२, ३]। २. सकल [२]।
३. प्रसिद्धि [१, ३]। ४. प्रमान [१]।

दोहा

वखतवली है तनय सब तिनकै प्रगट अपार ।
राज काज करता वड़े सूरज मल्ल उदार ॥१३॥

कवित्त

प्रवल प्रताप दावानल सो विराजै जोर,
अरिनि के पारै रौरि धमकि निसाने की ।
ठट्ट मरहट्टा के निघट्टि डारे वाननि सौं
पेसकस लेता है प्रचंड तिलगाने की ।
सौंमनाथ कहै सिंघ सूरजकुमार[1] जाकौ
क्रोध त्रिपुरारि को सो लाज वर वाने की ।
चढ़ि कैं तुरग जग रग करि सैलनि सौं
तोरि डारी तीखी तरवारि तुरकाने की ॥१४॥

दोहा

वाहुवली तिन के अनुज श्री परताप सुजान ।
धरम धुरंधर जगत मै मौज भोज परमान ॥१५॥
समझि कुँवर परताप को निपुन राज के काज ।
दियौ वैरि गढ़ हरषि कै वदन सिंघ महाराज ॥१६॥

कवित्त

सुविधि समथ्थ[2] रच्यौ विधि नै प्रताप सिंघ[3]
जा के आगै रती सौ सुरूप रतिपती कौ ।
सौंमनाथ सील जस मंदिर विलंद अति
मूल रघुनद की भगति रसवती कौ ।
वान करि पारथ, करन किरवान करि,
दान करि लीनौ जीति कतु दमयंती कौ ।
वाग गुन गती कौ, सुदाग रिपु रती कौ है
भाग छत्रपती कौ, सुहाग वसुमती कौ ॥१७॥

---

१. सूरज कुँवर [१]। २. समरथ[१]; समर्थ [३]।
३. प्रताप स्यिंघ [१]।

उद्धत प्रताप मारतंड सौं प्रचड तपै
अरिनि के उर लागे पावक झकोर लौं।
सौमनाथ कहै जग दारिद विदारि डारचौ
दान की सकति नित वित्त[1] की करौरि लौं।
सिंघ बली वदन महीप के प्रताप सिंघ
तेरे भुजदंड जोर पत्थ भुज जोर लौं।
वरनी कविनि दुखहरनी अनंत इमि
करनी तिहारी धरनी के ओर छोर लौं ॥१८॥

युद्ध कमनेती[2] सौं धनंजय पछेत्यौ जिहि
उद्धत गँभीर तामें सागर विसारियें।
तेज करि भानु के प्रमान कहि[3] सौंमनाथ
दान सनमान के अनूठे निरधारियें।
बली परताप सिंघ हिम्मति उदार जापै
दया रघुबीर की अपार उर धारियें।
विक्रम निवारिये, न करन विचारियै जू
देवतरु टारियै घनेरे इंद्र वारियै ॥१९॥

सुंदर अनंत गुनवंत सीलवंत और
जाहर दिगंत कंत कित्ति रवनी के हौ।
बाँके भौंह तानै आन मानत अमानैं
मरदाने परताप सिंघ एँड़ अवनी के हौ।
आस करि आवें जे वे[4] इच्छा फल पावै कवि
सौंमनाथ सागर गँभीरता के नीके हौ।
गंजन अनी के मनरंजन गुनी के
दुखभंजन दुनी के हौ जु इंद्र अवनी के हौ ॥२०॥

---

१. व्रत [१]। २ कमनेत [१]।
३. करि [१]। ४. सो वे [१]।

शंकर के अंग सी है गंग की तरंग सी

बिरचि के बिहंगम सी चंद ते उदार सी।

शारदा पवित्र सी अनत मित्र मित्र सी

सुरेस आतपत्र सी नछत्र की कतार सी।

बाहुबली बखत बिलंद परताप सिघ

कित्ति तुव राजै इमि थिरा के सिंगार सी।

रूपे के पहार सी, अमद छीर धार सी,

पियूप पारावार सी, सतोगुन के सार सी ॥२१॥

अथ व्रज बर्ननं

योजन इकीस के प्रमान व्रज मडल मै

छहू रितु महके सुगध मकरंद की।

नर पसु पच्छी सिद्ध रूप कहि सौमनाथ

सबके हिये मै सदा उमग अनंद की।

परम प्रकास बेदव्यास औ विरंचि हू नै

बरनी कछुक रीति समता बिलंद की।

तूल सुरपुर के कबूल अनुकूल है स-

मूल तरु बृंदन में कला नदनंद की ॥२२॥

अथ नगर बर्ननं

कवित्त

सुदर सफल चहूँ ओर दरसत बाग

अरबिद मडित सरोवर हमेस के।

वसै चारचो बरन ज़ितैया जंग जालिम औ

राचे प्रेम रग साँचे बचन सुवेस के।

जगमगै गढ महा महल बिलद तहाँ

राजै श्री प्रताप मानौ उदय दिनेस के।

आठ हू पहर जहाँ मोद नित नेरे होत

बैरि पर वारौ कोरि सहर धनेस के ॥२३॥

अथ सभा बर्नंनं

कबित्त

सिद्ध मसनंद पै बिराजै परताप सिंघ
भूषन मयूषन ह्वै झलकै हुलास है।
पाछें चौंर वारे आछे अवरनिवारे
आगे सोहतु सुगंधि लीनै सुंदर खवास है।
चहूँ ओर सरसे नरेस कवि सौंमनाथ
हिये मै सुहृद सुख दैबे कौ तलास है।
आस पास मंडित अखंड नीतिवारे जहाँ
पंडित प्रकास बेद वानी को ।वलास है ॥२४॥

दोहा

कही कुवर परताप नै सभा मध्य सुख पाय।
सौंमनाथ हम कौं सरस पोथी देहु[1] बनाय ॥२५॥

इति श्री मन्महाराजकुमार श्रीपरताप सिंघहेत कवि सौंमनाथ विरचिते
रस पीयूप निधौ राजकुल वर्णनं नाम प्रथमरतरंगः ॥१॥

अथ कवि प्रसंसा

कबित्त

बचन महूख ऊख परम पियूख हू तैं
बोलत मधुर हो के नेम ही के बस के।
आदर अनंत मुक्तावलि[2] के चाह वारे
जिनकौ न ओछे काज हेरिबे के चसके।
नीर छीर न्यारे दरसावन समत्थ सदा
सौंमनाथ कहै कहूँ काहू के न कस के।
मानसरवर राजबंस कवि राजहंस
है जस इलाज औ समाज मजिलस[3] के ॥१॥

---

१. देव [१]; देउ [२]।
२. मुकतावल [१]। ३. मजलस [१]।

दोहा

मिश्र नरोत्तम नरोत्तम भये छिरौरा वंस।
रामसिघ के मंत्रगुरु माथुर कुल अवतंस ॥२॥

छंद

तिन के पुत्र प्रसिद्ध देवकीनंदन भाए।
बिद्या बुद्धि समुद्र जगत उत्तम जस लाए ॥
तिनके अनुज अनूप एक श्रीकंठ सुहाए।
ताके जागे भाग जिननि वे दरसन पाए ॥३॥

दोहा

उपजे नंदन मिश्र कै चारि पुत्र सुखदानि।
नीलकंठ मोहन बहुरि मिश्र महामनि जानि ॥४॥
चौथे राजा राम पुनि निज मन मै पहिचानि।
सवै भाँति लायक सवै निपट रसिक उर आनि ॥५॥

कबित्त

काम अवतार से अनूप अति रूप करि
सील करि सुंदर सरस सुधाधर से।
कबिता मै व्यास के प्रमान कवि सौमनाथ
जुद्ध रीति जानिवें कौं पारथ से दरसे।
बुद्धि करि सिंधुरबदन के समान अरु
उद्धत उदारता मै भूमि सुरतर से।
सिद्धता मै बिमल बसिष्ट मुनिवर से औ
जोतिस मै नीलकंठ मिश्र दिनकर से ॥६॥

दोहा

तिन के पुत्र अनंद निधि बड़े उजागर जानि।
जिनकौं सुजस दिगंत लौं महा उजागर मानि ॥७॥
गंगाधर तिन के अनुज गंगाधर परवान।
सौमनाथ तिन कौं अनुज सब ते निपट अजान ॥८॥

सु यह कुवर परताप कौ हुकम पाय सविलास ।
रस पियूष निधि ग्रंथ कौं बरनतु सहित हुलास ॥ ९ ॥
सज्जन दुरजन कौं सदा सहस गुनी परनाम ।
दया कीजियौ दीन लखि, सौंमनाथ कौं नाम ॥१०॥

इति श्री सन्महाराजकुमार श्री परताप सिंघ हेत कवि सौंमनाथ विरचितं रसपियूषनिधौ कवि कुल बर्ननं नाम द्वितीयस्तरंगः ॥२॥

दोहा

छंद रीति समझैं नही विनु पिंगल के ज्ञान ।
पिंगल मत तातें प्रथम रचियतु सहित[1] सयान ॥१॥
जय फनिंद पिंगल सदा सब जग कौ सुखदाय ।
देव बुद्धि ससिनाथ कौ उर मैं हित सरसाय ॥२॥

अथ गुरु लघु बिचार

जो संजोगी तें प्रथम, दीह, बिंदु जुत होइ ।
सो गुरु, बंक दुमत्त है जानहु पंडित लोइ ॥३॥
चरन अंत गुरु जानिये, कबहुक लघु कौ मित्र ।
छंद भंग भय ते कह्यौ पिंगल परम विचित्र ॥४॥
और सबै लघु सुद्ध छबि कला एक उर आनि ।
गुरुहू कौं लघु करि पढ़ै लघु ही निहचै मानि ॥५॥
संजोगी को आदि कौं कबहुक लघु ही जानि ।
पिंगल को मतु निरखि कै नाथ कहै यहि बानि ॥६॥

उदाहरण यथा

सजि कै सित भूषन बसन दंपति सहित[2] सनेह ।
सरद जुन्हैया मै हरषि बरसावत रस मेह ॥७॥

---

१. सहत [१. २] । २. सहत [१] ।

अथ मात्रा प्रस्तार कर्तव्यता

प्रथमहि गुरु तर लघु सजै, आगे रूप समान।
गुरु लघु दीजै सेस जो रहै कला गुनवान ॥८॥
करत करत प्रस्तार जब सब लघु अंत लसाय।
तितनै जानौ भेद ये कहे फनिद बनाइ ॥९॥

अथ सप्तमात्रा प्रस्तार स्वरूप कथनं

अथ वरण प्रस्तार कर्तव्यता

प्रथमहि गुरु तर लघु लिखै[1] आगे वरन सुरूप।
जो अवशेष सु गुरु लिखै यह प्रस्तार अनूप ॥१०॥
ल कहै लघु उर आनि ; ग कहे गुरु पहिचानि।
नृप नायक अभिराम। जगन कहावत नाम ॥११॥
कहत तीन गुरु सौं मगन, नगन तीन लघु जानि।
आदि गुरू सो भगन है। आदि लघु य पहिचानि ॥१२॥
मध्य गुरू सो जगन कहि रगन मध्य लघु होय।
अंत गुरू सगनहि कहौ, तगन अंत लघु होय ॥१३॥

अथ गण देवता फलम्

भूमि देवता मगन कौं, श्री केशव सुप देइ।
नाग देवता नगन कौ, दीह दुक्ख हरि लेइ ॥१४॥
देव भगन कौ चंद है, जस कौ करै प्रकास।
नीरनाथ गुरु यगन कौ देइ बुद्धि सविलास ॥१५॥
जानि दिवाकर जगन कौं, रोगहि देइ बढ़ाइ।
अगिनि रगन कौं देवता, सौ अतिही दुखदाइ ॥१६॥
पवन देवता सगन कौ, महा भ्रमन कौ देइ।
व्योम तगन कौ देवता, सब धन कौ हरि लेइ ॥१७॥

---

१. सजै [२]।

SSSSS	१
ISSSS	२
SISSS	३
IISSS	४
SSISS	५
ISISS	६
SIISS	७
IIISS	८
SSSIS	९
ISSIS	१०
SISIS	११
IISIS	१२
SSIIS	१३
ISIIS	१४
SIIIS	१५
SSSSI	१६
ISSSI	१७
IS SSI	१८
IISSI	१९
SSISI	२०
IS SI	२१
SIISI	२२
IIISI	२३
SSSII	२४
ISSII	२५
SISII	२६
IISII	२७
SSIII	२८
ISIII	२९
ISIII	३०
SIII I	३१
I III I	३२

←अथ पंचवर्ण प्रस्तार स्वरूप ॥

सप्त मात्र आलेखन क्रम→

॥१॥२॥३॥५॥८॥१३॥ ॥२१॥

ISSS	१
SISS	२
IIISS	३
SS S	४
IIS S	५
ISIIS	६
SII S	७
II IIS	८
SSSI	९
IISSI	१०
IS SI	११
SIISI	१२
IIIISI	१३
ISSII	१४
SISII	१५
IIISII	१६
SSIII	१७
IISII I	१८
ISI III	१९
SIIII I	२०
II II III	२१

अथ गनागन विचार मित्र-दास-उदासी-शत्रु-संज्ञा-कथनम्

मगन नगन को मित्र गुनि, भगन यगन जुग दास ।
जगन तगन सु उदास हैं, रगन सगन रात्रु प्रकास ॥१८॥

अथ द्विगन विचार कथनम्

कहुँ कवित्त को आदि में अगन परै जो प्राय ।
तहाँ विचारौ द्वुगन को समझि सर्व कविराय ॥१९॥
मित्र मित्र तें सिद्धि, जय मित्र दास तें जानि ।
मित्र उदास सँजोग तें, नहि श्री सौं पहिचानि ॥२०॥
मित्र सत्रु तें पीर अति, दास मित्र तें सिद्धि ।
भृत्य भृत्य संजोग तें, होत नास की वृद्धि ॥२१॥
सेवक और उदास तें हानि होति निरधारि ।
सेवक वैरी जोग तें हारि प्रगट उर धारि ॥२२॥
उदासीन अरु मित्र है साधारण फल मानि ।
उदासीन अरु दास तें होइ विपति ठहरानि ॥२३॥
द्वै उदास ते विफल गुनि द्वै रिपु तें सु विरोध ।
सत्रु मित्र तें सुन्न फल, जानि जु हिय[1] मैं बोध ॥२४॥
अस्वनाश रिपु दास तें, रिपु उदास तें हानि ।
द्वै अरि प्रभु को छय करें यह कवहू न वपानि ॥२५॥

अथ मात्रा उदिष्ट विचार

आदि एक दूजो वहुरि द्वै द्वै वहुरयो जोरि ।
मात्रानि पर[2] अंक यौं आगे रच्यो वटोरि ॥२६॥
गुरु सिर पर सजि तरु लिपौ, ऊरध अध पुनि राखि ।
लघु पै ऊरध ही लिखौ अपने उर अभिलाखि[3] ॥२७॥
अंत्य अंक मधि लोपियै गुरु कै सिर के अंक ।
है अवसेप जु अंक सो भनि उद्दिष्ट निसंक ॥२८॥

---

१. हिय [१]। २. पै [१]। ३. अविलाखि [१].

अथ मात्रा उद्दिष्ट अंक लिषनं

अथ मात्रा नष्टकथनं

१ २ ५ १३ ३४

। ऽ ऽ ऽ ऽ

३ । ८ । २१ । ५५

करौं लघु कला नष्ट मह, अंक सजौ तिहि रीति ।
कह्यौ अंक अवसेष मै वरजित करि तजि भीति ॥२९॥
ता मधि घटै जु अंक पुनि तिहिं निचान की रेख ।
पर रेखा ले रचौ[1] गुरु यों ही और बिसेख ॥३०॥

अथ वर्ण उद्दिष्ट कथनं

रचि दूनें क्रम अंक पुनि, लघु अंकनि इक जोरि ।
प्रगटै बर्न उदिष्ट तब कही सुबुद्धि वटोरि ॥३१॥
लिषो बरन उदिष्ट मै, ऊरध ही सब अंक ।
एक अंक अधिकी तवै, सब बिधि मिलै निसंक ॥३२॥

॥ अथ वर्णोद्दिष्टि अंक लिषन रीति पंचवर्ण ॥

अथ बर्ननेष्ट विचार

नष्ट अंक सुबिभाग करि सब विभाग लघु जानि ।
विषम अंक मै एक युत बाँटौ तिहि गुरु ठानि ॥३३॥

---

१. रच्यौ [१] ।

अथ उदाहरण टीका

जैसें दसम भेद वर्ण पांच कौं पूछ्यौ तौ प्रथम एक लघु लिखे।
पुनि ताके आधे राखै तौ पाँच रहैं यह विषम है।
या में एक और जोरै तौ छह होइ ताको गुरु लिखै।
फेरि ताके आगे करि कै एक और जोरै ताकौ गुरु लिखै।
फेरि चारि कै आधे द्वै यह सम है याको लघु लिखै।
फेरि द्वै कै आधे एक यहू विषम है।
एक जोरि कै गुरु लिखै तौ पंच वर्न कौ दसम भेद होय।

।ऽऽ ।ऽ १० = भेद

अथ मात्रा मेरु विचार

कै कै गुरु कै रूप है, कै कै सब लघु भेद।
प्रश्न सवै रचि मेरु कौं, उत्तर प्रगटति वेद ॥३४॥
सब कोठे द्वै द्वै लिखौ, एक एक अंक सुअत।
आदि एक द्वै एक त्रय, यौं रचिये सु अनत ॥३५॥
सीस अक तिहि सीस कै, दूजै अकहि जोरि।
मत्त मेरु को यौं लिखौ, औरौं अक वटोरि ॥३६॥
प्रथम जु द्वै सब कोठ सौं, एक गुरुस्थल जानि।
तातैं पुनि द्वै कोठ सम, ते द्वै गुरु थल मानि ॥३७॥
पुनि तातैं जो कोठ द्वै तिनि सु गुरु कौ धाम।
तातैं आगै चारि कौं इमि आगै अभिराम ॥३८॥

अथ याकौ प्रगट विचार

एक भेद इक कला कौ, ताकौ कहा विचार।
द्वै रु तीनि वहु कलनि कौ, सुनि विचार रिझवार ॥३९॥

प्रथम द्वै सम कोठे कौ विचार

एक रूप एक गुरु कौ, दूजो द्वै लघु मानि।
यह विचार द्वै कला कौ, सुकविनि कौं सुखदानि ॥४०॥

तीनि कला मैं भेद द्वै, इक इक गुरु कै होत।
एक रूप है सर्ब लघु, समझत है कवि गोत ॥४१॥

अथ चारि मात्रा कौ

द्वै गुरु को इक रूप पुनि, इक इक गुरु कै तीन।
एक चारि लघु जानि यह, चारि कला कौ कीन ॥४२॥

अथ पंच मात्रा कौ

तीनि रूप द्वै द्वै सुगुरु, चारि एक गुरु जानि।
एक रूप है सर्व लघु, यह पाँचनि पहिचानि ॥४३॥
यौं ही ग्रोरौ समझिये, बुधि बल के अनुसार।
मेरू मात्रा को कह्यौ, यह पिगल कौ सार ॥४४॥

अथ एक द्वै तीनि चारि पाँच मात्रानि कौ प्रस्तार उदाहरण

अर्थ एक मात्रा कौ।	द्वै मात्रा कौ।	तीनि मात्रा कौ।	चारि मात्रा कौ।
।	S	SI	SS
	II	SI	IIS
		III	ISI
			SII
			IIII

पंच मात्रा कौ
ISS
S S
IIIS
SSI
IISI
ISII
SIII
IIIII

प्रस्तार अथ वर्णमेरुकथनं।

अच्छर सम सजि कोठ रचि अक आदि इक अंत।
सीस अंक जुग जोरि भरि वरन सुमेरु अनंत ॥४५॥

मात्रा मेरु स्वरूप एकादश मात्रा ॥११॥

अथ उदाहरण

दोहा

एक बर्न के रूप द्वै द्वै अच्छर के चारि।
तीन वर्न के आठ है यह उर मैं निरधारि ॥४६॥
एक बर्न जौ एक गुरु, इक लघु ए द्वै भेद।

अथ द्वै बर्न कौ

एक रूप द्वै गुरु समझि, इक इक गुरु द्वै जानि।
एक रूप द्वै लघु सु यह, द्वै अक्षर कौं मानि ॥४७॥

			१			
		१	१	१		
		२		२		
२		१	३		१	
		३	४		१	
	१	६	५		१	
३						
	१	१०	१५	७	१	
४	५	२०	२१	८	१०	
	१	१५	३५	२८	९	१
५	६	३५	५६	३६	१०	१

अथ त्रिबर्न कौ विचार

एक रूप है तीनि गुरु, द्वै द्वै गुर के तीनि।
इक इक गुरु के तीनि गुनि, इक सब लघु परबीन ॥४८॥

अथ चारि बर्न

प्रथम रूप है चारि गुरु, तीनि तीनि गुरु चारि।
द्वै द्वै गुरु के रूप षट्, इक इक गुरु पुनि चारि ॥४९॥

अंत सर्व लघु रूप इक[1], पंचादिक यौं जानि ॥

षटबर्न सर्व गुरु ॥

मेरु स्वरूप सर्व लघु ॥

॥ इति बर्न मेरु बिचार ॥

अथ मात्रा पताका विचार

प्रथम पताका रूप लिखि, सुमात्रानि परवान ॥
पीछें रीति उदिष्ट की, अंकनि रचौ[2] सुजान ॥५०॥

---

१. यक [१]। २. रच्यौ [१]।

अंत्य अंक मैं एक ही एकै अंक घटाउ ॥
शेष अंक पूरब तौं उबरे अंक बनाउ ॥५१॥

द्वै द्वै फेरि मिलाय करि, अंकन देउ घटाय ॥
पुनि वाके पूरब तरै सजियै अंक सुभाय ॥५२॥

या ही बिधि सौं तीनि पुनि चारि पाँच करि जोग ॥
अंत्य अंक मै हीन करि, क्रम सौं अंक प्रयोग ॥५३॥

एक घटाएँ अक तें, होत एक गुरु ज्ञान ॥
द्वै जु घटावै जोगु करि, तौ द्वै गुरु थल जान ॥५४॥

या बिधि तीनि रु चारि कौ क्रम तें गुरु थल जानि ॥
मत्त पताका रीति यह समझै ते सुखदानि ॥५५॥

अथ उदाहरन

पंच मात्रा के प्रगट आठ भेद निरधार ॥
ता मधि लोपै अंक ए, एकादिक सबिचार ॥५६॥

एक घटाएँ आठ मैं, बचै अंक तह सात ॥
द्वै पुनि देउ घटाय तह[1], छह साजौ अवदात ॥५७॥

गुन विहीन करि आठ मैं फेरि लिखौ तह पाँच ॥
पाँच घटाएँ आठ मै, बचे सुगुन[2] यह साँच ॥५८॥

और बिचार कहत हौं याकौ ॥
सौ अब समझि मूल कबिता कौ ॥५९॥

तीजौ पंच रु अष्टमौं अरु सप्तम औ रूप ॥
एक एक गुरु कौ प्रकट समझौ सुकबि अनूप ॥६०॥

पहिलौ दूजौ चतुरथौ, द्वै द्वै गुरु के जानि ॥
रूप आठ अरु पंच[3] लघु पिंगल के मत मानि ॥६१॥

---

१. तब [१]। २. सद्गुन [१]। ३. पाँच [१]।

॥ अथ पंच पताका स्वरूप लिखन ॥

सप्त कला पताका रूप

१	२	३	५	८		१	२	३	५	८	१३	१२
२ ४ द्वै गुरु	७ ६ ५ एक गुरु					२ ४ ६ तीनि गुरु थल		८ ६ ७ १० ११ १२ १४ १५ १७ द्वै गुरु		१३ १६ १८ १६ २० एक गुरु थल		

दोहा—पंच वर्ण की पताका, या क्रम सौं रचि मित्त ॥
यौं ही औरौ समुझियौ, लखत बढ़े सुख चित ॥६२॥

अथ बर्न पताका बिचार

रूप पताका शुभ लिषौ त्यों ही परम उदार ॥
रचौ अंक उद्दिष्ट क्रम, पुनि उहि ब्रिधि निरधार ॥६३॥

कला पताका रीति सौं, बर्न पताका लेखि ॥
॥ इति बर्न पताका चारि बर्न पताका स्वरूप ॥

अथ मात्रा मर्कटी बिचार

षट कोठे तिरछे लिखौ कलानि के परवान ॥
एक दोय यौं आदि ही, रचियै अंक सुजान ॥६४॥

१	२	४	८		१८
चारि	३	६	१२		
गुरु	५	७	१४		
००	९	१०	१५		
००	तीनि	११	एक		चा
	गुरु	१३	गुरु		रि
	थल	द्वैगुरु	थल		लघु
		थल			

दूजी पंगति अंक उदिष्ट दोऊ गुनि तीजि रचि इष्ट ॥
अवलि चतुर्थी प्रथमहि बिंदु, पँचई छठई में रचि इंदु ॥६५॥

चौथो कोठे विंदु तरु, एक अंक पुनि सिद्धि ॥
द्वै घटाय पुनि द्विगुन करि, पाँति तीसरी नद्धि ॥६६॥

क्रम सौं यौं सोधत चलै, उबरै जो जो अंक ॥
तासौं चौथी पाति कौं, पूरौ सुकवि निसंक ॥६७॥

चौथे कोठे एक तैं, आगै अंक जु होय ॥
पूरौ पंचम पाँति कौं वाही क्रम सौं टोइ ॥६८॥

करि कैं चौथी पंचई जोग। छठई रचौ पाँति कवि लोग ।
प्रथम अवलि तें कला बखानि । दूजी मैं प्रस्तारहि जानि ॥
कला सकल पुनि तीजी पाँति । समुझि चतुर्थी मै गुरु भाँति ॥७०॥
पंचम पंगति ते लघु लहौ । उस मैं अति आनदै गहौ ॥७१॥
वर्ण सबै छठई तै जानौं । मत्त मर्कटी यौं पहिचानौं ॥७२॥

॥ इति मात्रा मर्कटी ॥

अथ मात्रा मर्कटी स्वरूप । अथ वर्ण मर्कटी विचार ॥

१	१	१	०	१	१
२	२	४	१	२	३
३	३	६	२	५	७
४	५	२०	५	१०	१५
५	८	४०	१०	२०	३०
६	१३	७८	२०	३८	५८
७	२१	१४७	३८	७१	१०६
८	३४	२७२	७१	१३०	२०१

बर्न बराबरि कोठे रचौ । षट तिरछी अवली पुनि सचौ ।
इक द्वै तीनि चारि बहु अंक । प्रथम पांति मैं सजौ निसंक ॥७३॥
द्वै रचि दूति पाँति बनाउ । पुनि दूने क्रम अंक लिखाउ ॥७४॥

तीजी मै द्वै लिखि प्रथम गुनि दोऊ सुविशेष ॥
होय गने तें अंक सो, तीजी रचो असेष ॥७५॥

तीजी पंगति कौं बहुरि अधर अंक सब लेउ ॥
अवलि चतुर्थी पाँचई पंगति कौं भरि देउ ॥७६॥

त्रिगुनित करि पंचम पँगति छठई भरियै फेरि ॥
वरन मर्कटी की क्रिया पिंगल मत यौं हेरि ॥७७॥

वरन जानिबौर पहिली पाँति ॥
दूजी मै प्रस्तार बिसाँति ॥
सकल वर्न तीजी मैं जानि ॥
चौथी मै गुरु ग्यान बसानि ॥७८॥
लघु विचार पंचई में जानौं ॥
कला सकल छठई उर आनौं ॥७९॥

इति बर्न मर्कटी

अथ पंच वर्न मर्कटी स्वरूप

अथ छंद विचार

१	२	२	१	१	३
२	४	८	४	४	१०२
३	८	२४	१२	१२	३६
४	१६	६४	३२	३२	९६
५	३२	१६०	८०	८०	२४

इति श्री मन्महाराज कुवार श्री परताप सिंयघ हेतवे कवि सौंमनाथ विरचिते रस पियूष निधौ गुरु लघु गणागण विचार ॥१॥

माात्रा वर्न उद्दिष्ट नष्ट मेरु पताका मर्कटी वर्णनं

नाम तृतीयस्तरंगः ॥३॥

अथ छंद विचार

दोहा लच्छनं--प्रथम चरण तेरह कला दूजौ गारह राखि ॥
उत्तर अरधहु इही क्रम कहि दोहा अभिलाखि ॥१॥

जथा—सुंदर नव नीरव बरन हरन बिकट दुख दंद ॥
दिनकर-कुल-अवतंस-प्रभु जय जय श्री रघुनंद ॥२॥

अथ दोहा नाम भेद

भ्रमर (१) और भ्रामर (२) सरभ (३) सेनक[1] (४) मंडुक (५) नाम ॥
मरकट(६) करभ (७) सनरु समझि[2] पुनि मराल(८) सुखधाम(९) ॥३॥

मदकल(१०) और पयोधरौ(११) बल[3](१२) बारन[4](१३) पहिचानि॥
अकल(१४) और कच्छहि(१५) बरनि पुनि मच्छहि(१६) चित जानि ॥४॥

सारदूल(१७) अहिवर(१८) बहुरि बाघ(१९) बिडालहि(२०) पेखि।
सुनक (२१) उंदरौं (२२) सर्प (२३) पुनि तेइस नाम सुलेखि ॥५॥

अक्षर छब्बिस (२५) भ्रमर सो बाइस गुरु लघु बेद।
इक गुरु घटि द्वै लघु बढ़ैं सौ सौ नाम निबेद ॥६॥

टि०–भ्रामर अक्षर २७ गुरु २१[5] लघु ६ सरभ

अक्षर २८ गुरु २० लघु ८ सैनक अक्षर २९। गुरु १९। लघु १०।
मंडूक अक्षर ३० गुरु १८। लघु १२। मर्कट अच्छर ३१। गुरु १७।
लघु १४। करभ अच्छर ३२ ।गुरु १६। लघु १६।

नर अच्छर ३३। गुरु १५ लघु १८।

मराल अक्षर ३४। गुरु १४। लघु २०।

मदकल अक्षर ३५। गुरु १३ लघु २०[6]।

मदकल अक्षर ३४ गुरु १३ लघु २२।

---

१. सैभक [१]। २. मरकट ६ करभ प्रउन रु समभि [१]।
३. चल [१]। ४. वानर [१]।
५. गुरु २६ [१]। ६. लघु।

पयोधर अक्षर ३६ । गुरु १२ । लघु २४ ।
चल अक्षर ३७ । गुरु ११ । लघु २६ ।
वानर अक्षर ३८ । गुरु १० । लघु २८ ।
त्रकल अक्षर ३९ । गुरु ९ । लघु ३० ।
कच्छ अक्षर ४० । गुरु ८ , लघु १२ ।
मच्छ अक्षर ४१ । गुरु ७ । लघु ३४ ।
सार्दूल अक्षर ४२ । गुरु ६ । लघु ३६ ।
अहिवर अक्षर ४३ । गुरु ५ । लघु ३८ ।
बाघ अक्षर ४४ । गुरु ४ । लघु ४० ।
विडाल अक्षर ४५ । गुरु ३ । लघु ४२ ।
सनक अक्षर ४६ । गुरु २ । लघु ४४ ।
ऊंदर अक्षर ४७ । गुरु १ । लघु ४६ । सर्प अक्षर ४८ । लघु ॥

॥ इति ॥

अथ पद्धरी छंद लच्छनं

चौकल चारि सुचरन मै जगन अंत ठहराय[1] ॥
षोडस कल पग पग बिषैं यौं पद्धरी बनाय[2] ॥७॥

यथा-गांढे बिलंद कद जलद रूप । गुंजरत स्रवत मद अति अनूप ॥
परताप कुवर उद्धत उदार। इमि सिंधुर बकसत बार बार ॥८॥

अथ पाव कुलक लक्षणं

चरन मांझ सोरह कला एक अंत गुरु जानि ।
पाव कुलकु सो छंद है सुकबिनि कौ सुखदानि ॥९॥

यथा-कहा रही हठि[3] भरि[4] अरबोली। लखति न यह बसंत गरबीली ।
रिस बतियाँ अब सबै भुलावो। चलि सुजान पिय कंठ लगावो।१०।

अथ अरिल्ल छंद लच्छनं

चरन माझ सोरह कला, द्वै लघु अंत अनूप ।
जमक सहित यह जानियैं, छंद अरिल्ला रूप ॥११॥

यथा-श्री प्रताप सुनि नव रस नायक[1] । तव गुन किमि वरनैं रसना यक[2] ।
सज्जन कमलनि कौं सुप्रभाकर[3] । सहज दान जाकौ सुप्रभाकर ।१२।

अथ रोला लच्छनं

चौबिस कला सुमंत गुरु चरन चरन मधि होइ ।
ता सौं रोला छंद कहि, वरनत हैं सब कोइ ॥१३॥

यथा-राजतु करि दीवान आज, परताप पियारे ,
दुहूँ ओर तें चौंर ढ़रत अति ही छविवारे ।
जाकी सोभा हेरि हिये सुरपति हू लाजै ।
ताकी[4] समकौं कहौं कौंन विधि छितके राजै[5] ॥१४।

अथ सोरठा लच्छनं

आदि कला ग्यारह वहुरि तेरह कला बनाइ ॥
दुतिय चरन या बिधि रचौ तव सोरठा सहाइ ॥१५॥
यथा—जय जय श्री रघुवीर तुम पर तन मन वारियै ॥
करियै दया गँभीर मेरे हियें विहारियै ॥१६॥

अथ मोहनी छंद लच्छनं

बारह अरु कल सात पर जहाँ होइ बिसराम ॥
एसैंई दूजो चरन छंद मोहनी[6] नाम ॥१७॥
यथा—ढिग आयो सखि सावन वलम विदेस ॥
गरजति लरजति छतिया भयेउ अँदेस[7] ॥१८॥

---

१. नाइक [२] । २. इक [२] । ३ प्रभु भाकर [१, ३] ।
४. ताके [१] । ५. छति को छाजै [३] । ६. मोहिनी [३] ।
७. भये अँदेस [३]; भय अदेस [१] ।

अथ गंधान छंद लच्छनं

सत्रह अक्षर प्रथम पग दुजे अठारह[1] लेखि ॥
तीजे सत्रह चतुर्थेउ ठारह[2] पुनि अवरेखि ॥१९॥
एक एक गुरु अंत में चहु चरननि मैं आनि ॥
लच्छन यह गंधानि कौ, पिंगल के मत जानि ॥२०॥

यथा - परताप कुवर उदार नव रस खानि है ॥
सहस मदन ते सरसति छबि सुखदानि है ॥
दुर्जन दल बल दलन पारथ वीर सौ ॥
सब जग सुजस जाकहु लसतु सित छीर सौ ॥२१॥

अथ गाहा छंद लच्छनं

प्रथम चरन बारह कला, दूजै ठारह राखि ॥
तीजै पुनि बारह समझि, चौथे पंद्रह भाखि । २२ ।
चौकल सात सु अंत गुरु, प्रथम अरथ मै जानि ॥
छठवै चौकल जगन रचि, कै चौ लघु ही ठानि ॥
अंत्य अरध मै छठै लघु यौं गाहा पहिचानि ॥

यथा — जय जय सुजस उजागर सुंदर शशिधर त्रिनैन सुखदाई ॥
करहु कृपा गुन मंदिर त्रिभुवन तुव एक ठकुराई ॥२४॥

अथ गाहा नाम छद भेद

कमला १ अरु लीला २ ललित ३ जोन्ह ४ सुरंभा ५ जानि ॥
मगही ६ अरु लक्ष्मी ७ बहुरि बिज्जु ८ सुमाला ९ मानि ॥२५॥
हंसी १० ससिलेखा ११ समुझि जान्हवी उर आनि ॥
मुग्धा १३ अरु काली १४ बहुरि कुमारिका[3] पहिचानि ॥२६॥
मही १६ जानि अरु सिद्धि १७ पुनि रिद्धि १८ कुसुमिनी लेखि ॥
घरनि ३० जक्षिनी २१ समुझि करि पुनि बीना २२ अवरेखि ॥

---

१. दूजे ठारह [३] । २ चतुर्थे ठारह] ३] । ३. कुवारिका [१] ।

ब्रह्मी २३ अरु गंधर्बिनी २४ मंजरि २५ गौरी २६ और ॥
गाथा नाम छबीस ए पिंगल मत सिरमौर ॥

इति गाथा नाम भेद

गुरु सत्ताइस जा विषैं कमला सो पहिचानि ॥
एक एक गुरु के घटैं, न्यारे नाम बखानि ॥२९॥
लीला २६ गुरु। रंभा २३ गुरु। ललित २५ गुरु। जौन्ह गुरु २४।
रंभा २३ गुरु। मगही २२ गुरु। लक्ष्मी २१ गुरु। बिज्जु २० गुरु।
माला १९ गुरु। हंसी १८ गुरु। शशिलेखा १७ गुरु।
जान्हवी १६ गुरु। मुग्धा १५ गुरु। काली १४ गुरु।
कुमारी १३ गुरु। मही १२ गुरु। सिद्धि ११ गुरु।
रिद्धि १० गुरु। कुसुमिनी ९ गुरु। गंधर्विनी ४ गुरु।
मंजरी ३ गुरु। गौरी २ गुरु ॥

इति गाथा नाम भेद ॥

अथ हरिगीत लच्छनं

प्रथम राखिए पंच कल पुनि षट कल सुनि मित्र ॥
तीनि पंच कल अंत गुरु, सौ हरिगीत पवित्र ॥३०॥

यथा—

सगबगी[1] सोहति पीक लीक कपोल जुगल निभावती।
मरगजे अंबर सोम आनन और लसति सुहावती॥
अब कहौ क्यौं न सनेह सों तुम रीति बिजय अनंग की।
जगमगे जाहर अंग अंग तरग सब रति रंग की ॥३१॥

अथ चौपइया छंद लच्छनं

तीस कला जुग अंत गुरु चरन[2] चरन में होइ।
पिंगल के मत सौं सुनौ चौपाइया है सोइ ॥३२॥

---

१. सजबगी [१]। २. चहू [१]।

यथा—

पिय लखहु सघन घन दिशि विदिशनि ते किहि बिधि सौं मढि आए ॥
अति चमकि चमकि चपला चित चोरति चातक वचन सुनाए ॥
नव लहकि लहकि लपटी द्रुम वेली बन उपवन छवि छाए ॥
निज घर घर प्रति दपति रस बरसत परसि बिनोद सुहाए ॥३३॥

अथ लीलावती छंद लच्छनं

चरन कला बत्तीस (३२) अरु गुरु लघु को नहि नेम ।
लीलावति सो छद है कवि समझौ करि प्रेम ।।३४॥

यथा —

खेलन सिकार जब अति उदार दशरथ कुँवार सिरदार चलै ।
तब कोल गुज तजि होतु लुंज तन सेस मु ज फन पु ज दलैं ॥
कबि सौमनाथ बरनै सुगाथ अरि उग्र साथ मिलि हाथ मलै ॥
कीजत सटोक सुर असुर ओक ह्वै भूमि झोक सब लोक हलै ।३५।

अथ कुंडलिया छंद लच्छनं

प्रथम दोहरा चारि पुनि छप्पै चरन अनूप ।
चरन जमक अनुप्रास वहु यह कु डलिका रूप ॥३६॥

यथा —

चंदन अँखियन को रुचे विनु नंदनदन कत ।
सरसत सूल समूल ए वैरी सुमन वसत ॥
वैरी सुमन बसंत सदा उत ही अयान भरि ।
वस करि लीने प्रान मदन विप वान सान धरि ।
सान धरिय रहि गई कछू वनि आवत छद न[1] ।
छियत वढे तनु ताप सखी चद्रक अरु चदन ॥३७॥

अथ अमृतध्वनि छंद लच्छनं

छप्पय वारे चारि पग अनुप्रास के सग ।
आठ आठ कलि[2] परि विरति अमृतध्वनि कौ अग ॥३८॥

---

१. कछु न बनि आवत छंदन [३]। २. कल [१]।

यथा—अरि गन के गढ गढ़न कौं सहित चूम चतुरंग।
श्री परताप महावली जब्बय[1] चढै तुरंग।
रग द्रग वर जंगत्तमकत, अग द्रढपन।
जग्गथ्थहरइ गग्गग्गज्जत गज्जद्रुति घन।
रढ्ठे हर जस मढ्ढे रज वढ़ि अग्गग्गगन।
तज्जै खग्गनि सज्जै पग्गनि भज्जै अरिगन ॥३९॥

अथ छप्पय छंद लच्छनं

ग्यारह तेरह कल प्रथम चारि चरन रचि संत।
पंद्रह तेरह चरन द्वै छप्पय कहि गुनवंत ॥४०॥

यथा—संकत उद्धत असुर तजत खग्गहि गव्बर अरि।
कुक्कत दिग्गज दिग्ध हहरि सुडनि कुंडल करि ॥
धूरि धुंधरत लोक होत थल जल जल थल थल।
थर थर थरकति धरनि कोल कहलै न चलै बल ॥
चपि चटकति कच्छप पीठि दृढ़ गरलउ गिल्लय[2] धरनिधर।
जव चलत सैन आनंद-निधि अवनिइंद्र रघुनंदवर। ४१॥

अथ छप्पय नाम

अजय १ विजय २ वलवतहि ३ जानि।
और वीर ४ वेताल ५ वषानि।
वहुरि विहंकर ६ मरकट ७ और।
हरिहर ८ व्रह्म ९ इदु १० सिरमौर।
चंदन ११ रस १२ शंकर १३ उर आनो।
स्वान १४ सिघ १५ सार्दूल १६ वखानो ॥४२॥
कूरम १७ कोकिल १८ अरु खर १९ कुंजर २०।
मदन २१ मत्स्य २२ नारंग[3] २३ सेष २४ वर ॥४३॥

---

१. जब्बइ [१]। २ गरलहि उगिलय [१]। ३. सारंग [१]।

सारंग २५ और मनोहर २६ कहो।
निवल २७ कमल[1] २८ पुनि कंद २९ सु लहो ॥
वानर ३० विस ३१ लव ३२ बसह ३३ अनूप।
और अजंगम ३४ करम ३५ स्वरूप ॥४४॥
सर ३६ वरु सरस[2] ३७ समर ३८ पुनि सारस ३९।
सरह ४० मेरु ४१ कहि मरुत ४२ अनालस ॥
यम ४३ अरु सिद्धि ४४ बुद्धि ४५ अलि ४५ अलकहि ४६ ॥
धवला ४७ मलय ४९ ध्वजा ५० कनक ५१ लहि ॥४५॥
कृष्न ५२ औरु रजनी ५३ उर में गनि।
मेघागम ५४ गंभीर ५५ गरुड ५६ भनि ॥
ससि ५७ सूरज ५८ मल्लक ५९ पहिचानि ॥
नवरंग ६० और मनोरथ ६१ मानि ॥४६॥
गगन ६२ रतन ६३ निर्झर ६४ नीहार ६५।
भरत ६६ तपन ६७ अरु कुसुम ६८ उदार ॥
दीप ६९ सक ७० स्वच्छ ७१ अनूप ॥
ए इकहत्तरि छप्पय रूप ॥४७॥
सतरि युरु बारह लघु जा में ॥ अच्छर होयँ बयासी ता मैं ॥
अजय नाम छप्पय सौ जानौ। गुरु टूटे द्वै लघु वढ़ि मानौ ॥४८॥
तवही न्यारौ नाउ बतावौ ॥
सुकबि समझि हिय में सुख पावौ ॥४९॥
गुरु उनहत्तरि ६९ जा विषै, अरु चौदह लघु ठानि ॥
वरन तिरासी विजय सो, छप्पय उर मैं आनि ॥५०॥
ऐसैंई औरौं जानियौ ॥

अथ झूलना छंद लच्छनं

दस १० दस १० सत्रह १७ कलिन पर बिरति होय पग चारि ॥
ताहि झूलना छंद कहि, मन मैं लेहु विचारि ॥५१॥

---

1. कवल [१]। 2 सरभ [२]।

अथा | आजु दिन रैंनि १० हू तिष्य तुव तेज १० तें।
असुर को बृंद तजि छंद छीजै ॥
नाम अभिराम सुनि १० स्रवन मैं नैंम १० सो
प्रेम सौं सुहृद कौ हियौ १० भीजै।
करनि आनंद निति १० शिवे कंचन वरन
१० मानि यह विनय जस पुंज लीजै ॥
कोरि दुख तोरि अरु १० हेरि द्रग कोर १० सों
दीन ससिनाथ पै दया कीजै ॥५२॥

उद्धत लच्छनं

होइ चारि हू चरन मै दस दस कल विश्राम ॥
सब चालीस कला चरन सो उद्धत कहि नाम ॥५३॥

यथा—

गिन्यौ तृन तूल १० जिहि राज सब अवनिकौ १०,
जग्यौ आतंक बर १० लंकपति धरनि पै ॥२०॥
परसि जिहि डीठि १० के अवधि सुरपुर १० वसी
बेलि कीरति बढी १० अमर तरुवरन पै ॥
कहै ससिनाथ १० यौं समझि सुख पाय १० कैं
प्रेम रस अमृत १० सौं हृदय कौं भरन दै ॥
दरन भय भीर नित १० नवल नीरद बरन १०
तिही रघुबीर कै १० चरन को सरन लै १० ॥५४॥

अथ त्रिभंगी छंद लच्छनं

दस १० आठ ८ आठ ८ षट कल विश्राम ॥
बिना जगन चौकल अभिराम।
बत्तिस कला चरन ठहराइ ॥
ताहि त्रिभंगी नाम बताइ ॥५५॥

यथा—सुंदर दुतिवारे जग जि ८ ताऐं रवि रथ वारे ८ मंद करे।
जे डील उ १० तंगे बाहु रँग रंगे गति विधि चंगे छद करे॥
ससिनाथ बखानैं १० सब जग जानैं हिन उर आनें ज्ञान ८ टरे॥
परतापा गा १० जी कवि करि राजी ८ नित इमि वाजी दान करै॥५६॥

अन्यच्च—सुर हय कौं निदै भालनि विदै भरत गिंजदै ओज भरे॥
सुभ साजनि सा १० जै द्वार विराजैं ८ लखि दुख भाजैं मौज भरे॥
बड्डे तन कच्छी गति अति अच्छी जिते पच्छी आन टरें॥
परतापा गाजो कवि करि राजी निति इमि वाजी दान ६ करे॥५७॥

अथ दुमिला छंद लच्छनं मात्रा ॥२२॥

चरन चरन इमि चौकल आनि।
दस १० अरु आठ ८ कला पुनि ठानि।
तातैं चोदह कला अनूप।
बिरत[1] राखि इमि दुमिला रूप।५८॥

यथा—सुंदर सुजान अति १० गिरधर लौं नित ८ दिल मह मौजड लाज धरी १४॥
उद्धत निसंक १० ह्वै खग्ग दंरे ८ रनि अरि के वृंद दराज दरी १४।
कवि सौंमनाथ १० कहि जस के सगहि ८ अगनि मैं सुख साज भरौ।
जबलौं रतनाकर १० अमर प्रभाकर ८ तुम तब लौं ब्रज राज करौ। १४॥५९॥

इति श्री मन्हाराज कुंवार श्री प्रताप सिंघहत कवि सौंमनाथ विरचिते रस पियूप निधौ मात्रा वृत्त वर्ननं नाम चतुर्थस्तरंगः॥४॥

---

1. विरति [१]।

अथ वर्णवृत्तवर्णनंनाम

दोहा—एकै गुरु श्री छंद है ।
द्वि गुरु कामपद होइ ॥

श्री ॥ यथा—को । हौ । सो । हौ ॥१॥

कामपद ॥ यथा—हौंनी । लौनी । आखैं । भाखैं ॥२॥

॥ अथ त्रिबर्न प्रिया छंद लच्छनं ॥

प्रिया छंद है रगन पुनि कहत रसिक[1] सब कोइ ॥३॥

प्रिया छंद

यथा—आवरे । साँवरे । तैं भली । मै छली ॥४॥

धारी छंद संमोहा छंद लच्छनं

गुरु लघु क्रम अच्छर जहाँ चारि सु धारी जानि ।
है गुरु अच्छर पंच सो संमोहा उर आनि ॥

यथा—नंदलाल । हेरि हाल । नेक इत्त । प्रेम हित्त ॥६॥

संमोहा यथा—देखे श्री फूले । काहे को भूले ।
छोड़ौ जंजालै । गावौ गोपालै ॥७॥

तिलका छंद, करहंची छंद लच्छनं

होय चरन मैं सगन जुग तिलका ताहि बखानि ॥
आदि चारि लघु जगन पुनि करहंची पहिचानि ॥८॥

तिलका छंद यथा—

हरि सौं उरझी । न अजौं सुरझी ।
रस की रखियाँ । सु कहै अँखियाँ ॥९॥

करहंची छंद यथा—

गुन सकुच तोरि । हिय हित वटोरि ।
पिय बदन ओर । द्रग ह्वै चकोर ॥१०॥

---

१. रसक [१] ।

अथ प्रमानिका छंद लच्छनं

लघु गुरु अच्छर आठ जह, है प्रमानिका सोइ ।
आदि सगन द्वै जगन पुनि तोमर छंद सु होइ ॥११॥

प्रमानिका छंद यथा—सुजान पीय आइयै । हियौ हियैं लगाइयै ।
मनोज कौ नवाइयै । बिनोद कौ वढ़ाइयै ॥

तोमर छंद यथा—निसि द्यौस नेह वढ़ाइ । रघुवीर के गुन गाइ ॥
दुख पुंज दूरि बिलाइ । सरसै सबै सुख पाइ ।१३।

अथ संजुतका दोधक छंद लच्छनं

सगन जगन द्वै अत गुरु संजुतका सु अनूप ।
भगन तीन द्वै अत गुरु, यह दोधक को रूप ॥१५॥

संजुतका यथा—सरसैं सुरंग सुहावने । अरबिंद बृंद लजावने ॥
तुव नैन बाल अनिंद है । रिझये सुजान गुविंद हैं ॥१५॥

दोधक छंद यथा—सीख दई तुमकौं यह कौनें ।
भौंह चढाइ रही गहि मौनें ॥
मान मरोर सवै विसरावौ ।
प्रीतम कौं हँसि पान खवावौ ॥१६॥

अथ भुजंगी पंकावलि छंद लच्छनं

चारि यगन—चारि यगन जह चरन मैं छद भुजंगी जानि ।
इक गुरु पट लघु भगन जुग पंकावलि पहिचानि ॥१७॥

भुजंगी छंद, यथा—तुही जोग माया जटा जूट रानी ।
जुही जोर ज्वालामुखी वाक बानी ॥
तुही शुद्ध मदाकिनी दिव्य ग्यानी ।
तुही सु ख संपत्ति दानी भवानी ॥१८॥

पंकावलि, यथा—चंपक सुबरन रंग दियौ बिधि ।
सुंदर मृदु मकरंदहु की निधि ॥
जानत जगत तुम्है सब लाइक ।
क्यों न मधुप मन कौ सुखदाइक ॥१९॥

अथ वसंततिलका छंद लच्छनं

तगन भगन अरु जगन जुग पुनि अंतहु गुरु दोइ ।
सो वसंततिलका चरन चौदह[1] चौदह होइ ॥२०॥

यथा—ऐसौ चरित्र कहि मित्र जु नित्त भावै ।
काहे कठोर उपहास वृथा बढावै ॥
क्यौं तें मृगेंद्र वन जंबुक हेरि हारै ।
जे पुंज गुंजत बितुंडनि कौं बिदारैं ॥२१॥

॥ अथ चामर नाराच छंद लच्छनं ॥

गुरु लघु पंद्रह बरन पद चामर छंद बखानि ।
लघु गुरु षोडस बरन जह नाराचहि[2] उर आनि ॥२२॥

चामर छंद, यथा—जै दिनेस ईस रूप तेज के निधान हौ ।
दिव्य दीनबंधु वेद पंथ के बिधान हौ ॥
सौमनाथ नेह सौं दया अपार कीजियै ।
सिंघ श्री प्रताप कौं अनंत सुख्ख दीजियै ॥२३॥

नाराच छंद, यथा—सुरेश के प्रमान[3] साहिबीनि कौ निवास है ।
सुनीति के निवाह तें महा हियैं हुलास है ॥
दिनेस ज्यों प्रताप कौ प्रताप सौं प्रकास है ।
सदा बिचित्र राम के चरित्र सौं बिलास है ॥२४॥

अथ मंदाक्रांता छंद लच्छनं

आदि मगन पुनि भगन अरु, नगन तगन फिरि दोइ ।
बहुरि राखिए जुगल गुरु मंदाक्रांता होइ ॥२५॥

यथा—हेरैं फूले द्रुमनि सजनी सूल सैं हौन लागे ।
टेरैं पापी निठुर पिक ए वेरिकै वैर पागे ॥
सीरी सीरी पवन परसें ज्वाल जागी अनंतै ।
कैसें जीवें बिछुरि पिय सौं वाम आए बसंतै ॥२६॥

---

१. पंद्रह [१, २]। २ नाराच सु [१]। ३. प्रवान [१]।

अथ चर्चरी छंद लच्छनं

रगन सगन अरु जुग जगन मगन रगन पुनि धारि ।
बरन अठारह चर्चरी छंद हियें निरधारि ॥२७॥

यथा—ठौर ठौरनि जोर सौं चहु ओर कौंधति दामिनी ।
साँझ तें अलि भोर लौं जुग सी वितीतति जामिनि ॥
या समै अब कान्ह सौं गति को कहै बनितानि की ।
पीर वाढति अंग अंग उमंग हेरि लतानि की ॥२८॥

अथ धवल छंद लच्छनं

नगन आदि छै, एक गुरु, चरन अंत पर आनि ।
धवल छंद पिगल मतै उनइस अच्छर जानि ॥

यथा—सब हिलि मिलि सुख वढत कढत न भवन तें ।
गरम रुचित[1] चित अधिक सु चपत पवन तें ॥
तिहि हिम समय कहत पिय बिछुरन वतियाँ ।
बिषम बिषमसर डर भरि लरजति छतियाँ ॥३०॥

अथ गीतिका छंद लच्छनं

सगन जगन जुग भगन पुनि रसगन लघु गुरु होइ ॥
बीस वरन यौं गीतिका वरनै कवि सब कोइ ॥३१॥

यथा—परसे सुहात न फूल चंदन अंग अग अचैन है ॥
दिन रैनि एक सुभाइ सौं नित पंथ हेरत नैन है ॥
ससिनाथ प्रीतम साँवरे कब आइ मोद बढ़ाइहै ॥
बरसाइ मेह सनेह की मुसिक्याइ कंठ लगाइहैं ॥३२॥

अथ मदिरा सुंदरी छंद लच्छनं

सात भगन जँह चरन मैं मदिरा छंद सुजानि ॥
सात भगन गुरु अंत इक सो सुंदरी बखानि ॥३३॥

---

१. रुचति [१] ।

मदिरा, यथा—

ग्वालनि संग अनंग[1] छकै नितही इहि खौरि बिहारत ॥
औरनि कौं मिसु कै ससिनाथ अचानक मोंहि पुकारत ॥
सीस किरीट छियैं कबहूं कर पीत[2] दुकूलहि वारत ॥
लोचन ताप निवारत लाल हरैं मुसिक्याय निहारत ॥३४॥

अथ सुंदरी छंद

यथा—ओठनि अंजन रेख रची झुकि पेच कपोलन कौं परसैं ॥
रूप पियूष पियौ रुचि सौं अरसैं अँग आनँद के[3] सरसैं ॥
नाथ सुनान सुनौ अब ए मग में डग सुंदरता बरसैं ॥
बैननि ह्वै न कछू कहियै[4] गुन तौ सब नैननि में दरसैं ॥३५॥

अथ चकोर और मत्तगयंद छंद के लच्छनं

सात भगन गुरु लघु सहित छंद चकोर बखानि ॥
सात भगन गुरु अंत जुग, मत्तगयंद सुजानि ॥३६॥

चकोर छंद, यथा

काजु कहा अब कान्ह कुँवार दियौ तुम कौ हसि गोरस दान ॥
नाथ अबेर भई अति ही मग रोकि रहे लखि कौंन सयान ॥
आँचर ऐंचि तकौ तिरछै सु इतौ दुख देत रतीकु दया न ॥
जानि परी पहिचानि हमें बन जानि कछू जु लगै ललचान ॥३७॥

मत्तगयंद, यथा

दामिनि द्यौस महैं[5] दसहू दिसि दादुर दुंद[6] मचावन लागे ॥
घोर घने गरजैं घन ए ससिनाथ हियौ[7] विरचावन लागे ॥
सीत समीर सुगंध चढै धुरवा अति आँच तचावन लागे ॥
सावन मै बिन भावन री मुरवा अब नाच नचावन लागे ॥३८॥

---

१ अमंग [१]। २ प्रीति [२, ३]।
३. की [१]। ४. कछूक [१]।
५. हमैं [१]। ६. दूँद [१]। ७. ससिनाथ हिये [२, ३]।

अथ किरीट और दुमिला छंद लच्छनं

आठ भगन जहँ चरन मैं सो किरीट उर आनि ॥
सगन आठ जहँ[1] चरन मैं दुमिला ताहि बखानि ॥३९॥

किरीट यथा—

ा दिन जो बतराति हुती इतरानि समेति सु आजु अरौ किनि ॥
मोहि नही पहिचानति हौ तुम नेंक यहू सु अयान हरौ किनि ॥
है मन मै सु करौ सुनि, यै वन कुंज अनेक निहारि डरौ किनि ॥
गोरस देहु 'उहूँ' तजि कै फिरि नेह वढ़ाइ कहूँ बिहरौ किनि॥४०॥

दुमिला छंद, यथा

निरखै बन बागनि डोठि असै दुख मूल दुकूलनि के घिरनैं ॥
न सुहाय सरीरहि सीत समीर उसीर सुनीर हु के झिरनैं ॥
ससिनाथ कहा कहियै अब तौ नित कौ उर अंतर के निरनैं ॥
परसै बिरही मन चूर करै अति क्रूर निसाकर की किरनैं ॥४१॥

अथ महाभुजंगप्रयात छंद लच्छनं

चरन चरन मै होत जहँ आठ यगन सुनि मित्र ॥
महाभुजप्रयात सौ समझौ सकल विचित्र ॥४२॥

यथा—बली दिग्ग दंती डिगै डील कारे ॥
धुकै पुंज पब्बै वजै सिंधु बेलै ॥
छिपै छार सौं चारु आकासचारी नही मेदनी फौज कौ भार झेलै ॥
गहै ओट संघट्ट कोटे सभारे नगारे बजै कोप ताका पछेलै ॥
जटे लोह सौं संग लै बीर बाँके प्रतापाज वै जोर आखेट खेलै ॥४३॥

अथ घनाक्षरी छंद लच्छनं

सोरह पंद्रह बरन पर बिरति चरन मधि होइ ॥
छंद घनाक्षर अंति गुरु कहत सबै कबि लोइ[2] ॥

---

१. जिहि [३]।
२. सबै ओइ [१]।

यथा—कुंकुम के रंग रँगमगी राजै चंचला सी,
उमगैं तरंगैं अंग सौरभ के बृंद की ॥
मृगमद बिंदु भाल बिलसै अनिद,
उर माल अरबिंदन की मिली मकरंद की ॥
सौंमनाथ हो हो हरि होरी करि दौरी गोरी,
नैनन में नीकै गति लीनैं छर छंद की ॥
बरसै गुलाल मोद परसै मुकुंद पर,
दरसैं त्यौं सुदर मबूखैं मुख चंद की ॥४५॥

अथ रूप घनाक्षरी छंद लक्षण

सोरह सोरह बरन पर बिरति अंत लघु आनि ॥
सो रूपक घन अच्छरी सुकविन कौं सुखदानि ॥४६॥

यथा—चंचलाई चपि मंदताई छुई पाइनि मैं,
मधुराई बैननि सुधा सम रसीकरन ॥
कढ़ी कुच कोर, कटि छटनि लगी सी खेल
खेलति लरिकई कै लगी आरसी करन ॥
सौंमनाथ जोबन झलक झलकति नैकु,
द्योसक ते लग्यौ मुख ससि की हसी करन ॥
खंजन से रंचक नचन लागे नैंन लाल,
आनि बस्यौ बाल बिहसनि मैं बसीकरन ॥४७॥

अथ दंडक छंद लच्छनं

लघु गुरु अच्छर चरन मै जहाँ होइ बत्तीस ॥
सो दंडक पहिचानियै बरनत है कबि ईस ॥४८॥

यथा—गई अजान कुंज मै सुने अलिंद गुंज मैं,
लियें प्रसून पुंज मै कि सीस कौं सिँगारियै ॥
तहाँ सखानि संग मै सुरंग बास अंग मैं,
गुमान की तरंग मै लख्यौ सु कान्ह ग्वारियै ॥

हियौ रह्यौ लुभाइ कैं सुनौं समीप आइकै,
सखी कह्यौ बनाइकै उपाइ सो विचारियै ॥
जु फेरिहू निहारियै करोरि काम वारियै,
बियोग पीर टारियै बिनोद सौं विहारियै ॥४९॥

इति श्री मन्महाराजकुवार प्रताप सिंह हेत कवि सोमनाथ विरचिते
रसपियूपनिधौ बर्न वृत्त बर्ननं नाम पंचमस्तरंगः ॥५॥

लच्छन और प्रयोजन मित्र,
हेतु काव्य के भेद पवित्र।
अव तिन कौं वरनौं समझाइ,
सुनि सुख पावैं सब कविराइ ॥१॥

अथ काव्य लच्छनं

सगुन पदारथ[1] दोष बिनु पिंगल मत अविरुद्ध।
भूषन जुत कबि कर्म जो सो कवित्त कहि सुद्ध ॥२॥

अथ काव्यप्रयोजन

कोरति वित्त विनोद अरु अति मंगल कौ देति ॥
करै भलौ उपदेस नित यह कबिता चित चेति[2] ॥३॥

अथ कारन—कवि सौं सुनिवौ बहुत पुनि करिबौ अति अभ्यास।
तासौं कबिता होति है बाढतु हियैं हुलास ॥४॥
बिना सुने अभ्यास बिनु कबिता होति अनंत ॥
सो प्रसाद गुरुदेव कौ बरनत सव गुनवंत ॥५॥

अथ काव्य की सरीर सामिग्री कथनं

व्यगि प्रान अरु अंग सब सब्द अरथ पहिचानि ॥
दोष और गुन अलंकृत दूषनादि उर आनि ॥६॥

---

१. पद अरथ [१]।
२. हेत [१]।

काव्य के भेद

उत्तम मधम अधम अरु त्रिविधि कवित्त सुमाँनि ।
व्यंगि सरस जहँ[1] कबित मै सो उत्तम उर आँनि ।।७।।

यथा—साँझ ही तें नेंम करि नवल दुकूल सजें,
लहलहे फूलनि की पाँखुरी हरति है ।
सौमनाथ प्रीतम सुजान के बचन पर,
अति ही प्रतीति यातें नेकु न डरति है ।।
बीरी बनवाइ कैं रचाइ अधरनि,
आछे अतर मगाइ ए उपाइनि करति[2] है ।।
पौरि तन उर मै अनंद भरि इंदुमुखी
घूघट उघारि दृग चंचल करति है ।।८।।

टीका—यहाँ बासकसज्जा नाइका व्यंगि है और घूँघट उघारिबे तें प्रकास व्यंगि और दृग चंचल करिबे तैं बेर बेर पौरि तन देखिबौ व्यंगि औरहू बहुत बिंग हैं या कबित्त मैं ।।

दोहा—फूले निरखि रसाल बन दीनौं बिरह बहाइ ।
पियरानें तिय बदन पर लसी अरुनई आइ ।।९।।

इहाँ फूले रसाल करि के बसंत की अवधि व्यंगि है ताके आगम तें उत्साह व्यंगि है ।।[3]

अथ मध्यम काव्य लच्छनं

सब्द अरथ सम व्यंगि जहँ सौ[4] मध्यम ठहराइ ।
यथा—हम जानी यह[5] रावरी [6]प्रीति रीति अभिराम ।।
मन परचै बिहरौ तहीं निसि बासर घनस्याम ।।९।।

यहाँ हम जानी यातैं यह व्यंगि कि औरनि सौं हित हम सौं नाहीं और वाच्यार्थ ही ।।

---

१. जिहिं [१] ।
२ उपाइ बितरति है [१] ।
[टि०] इहाँ वसंत रित की अवधि नायका ने बदी सो ताके आगम को उत्साह व्यंगि [१] ।
३. तहाँ [१] । ४. सब [१] । ५. राउरी [१] । ६. परचौ [१] ।

अन्यच्च कबित्त

सुंदर दिसनि विदिसनि हू के अंत लहु,
महकैं सुगंध मति मोहति सुरीन की ॥
पान करि करि कैं अनिद मकरद वुंद,
गु जरति आवलि अनूपम अलीन की ॥
त्रिविधि वयारि फरहरति सुठार प्यारे,
चरचा करत को बिदेस सुखहीन की ॥
इही रितुराज में सुजान गुनवान सुनौ,
पचवान खेलत सिकार विरहीन की ॥१०॥

टीका--इहाँ यह व्यंगि है कि विरही मति होइ यह बात उपदेस और अनुप्रास हू व्यंगि समान है और बहुत व्यंगि नाहीं यातें मध्यम काव्य है।

अथ अधम काव्य लच्छनं

सव्द अरथ की सरसई व्यंगि न अधम बताउ ॥१०॥

शब्दचित्र यथा—खेलन चलत सिकार जव श्री परताप प्रचंड ॥
भज्जत अरि तज्जत भवन रौरि परत नव खंड ॥११॥

यहाँ राजरति भावध्वनि व्यंगि काव्य के प्रान के निमित्त शब्द वली है यातें अधम काव्य ॥

अथ अर्थचित्र यथा। कबित्त

अरबिंद नंद के सहायक विलद बुद्धि,
शुद्ध अंग आगैं दुति हीरनि की लाजैगी ॥
मुक्ता अहारी मानसर के विहारी,
सीस अवतंस धारी ऐसी तुमको न छाजैगी ॥
सौमनाथ कहे नेंकु मन मै बिचारि देखौ,
गुन के प्रकासें सोभा साहिवी कौं साजैगी ॥
सुनौं राजहंस वह वोलनि चलनि भूलें,
धरनी पै औरै कछू करनी विराजैगी ॥१२॥

यहाँ अनोक्ति व्यंगि अर्थ की सरसाई तें अधम काव्य।

अथ शब्दार्थ निर्णय

जीव ग्यान फिरि होतु हैं प्रथम निरखि यहि देह ।
दोष और गुन अलंकृत लखियति बहुरि सनेह ॥१३॥

छंद

सुनिए श्रवननि शब्द सुग्रानौं,
समझै चित अर्थ वह जानौं ।
ध्वनि अरु बरन सब्द उर आनौं ॥
द्वै विधि कवि बरनत सजि बानौं ॥१४॥

ध्वनिमय ताल मृदंग डफ ढोलक तंत्री जानि ॥
अक्षरमय ग्रंथनि सकल वरनत कवि हित ठानि ॥
वरन सब्द है तीनि विधि बाचक प्रथम अनूप ॥
लच्छक अरु व्यंजक बहुरि त्रिबिधि अर्थ को रूप ॥१६॥
वाच्य अर्थ लक्ष्यार्थ पुनि व्यंगारथ अभिराम ।
बिना शब्द कौ अर्थ सो तात्पर्य सुखधाम ॥१७॥

वाचक शब्द

बिनु सहाय अर्थहि कहै सो बाचक सुखकद ।
चंद शब्द यो सुनत ही परखि लीजिए चंद ॥१८॥
चित्त बाच्य अर्थहि लहै जातें अभिधा सोइ ॥
मुख्य अर्थ सक्यार्थ पुनि याहि कहत सब कोइ ॥१९॥

अभिधा कौ लच्छनं

या अक्षर को यह अरथ ठीक हियें ठहराइ ।
जानि परै जातै सु वह अभिधा बृत्ति कहाइ[1] ॥२०॥
यही रीति सामर्थि अरु यही सक्ति व्यापार ।
याही कौं ब्यौहार कहि बरनत बुद्धि उदार ॥२१॥

---

१. गनाइ [१, २] ।

अथ लच्छक सब्द लच्छनं

मुख्य अरथ नहि बनि सकै तव समीप तें लेतु ।।
लच्छक सब्द सु जानिएँ पढत महासुख हेतु ।।२२।।

अथ लक्ष्यार्थ लच्छनं

मुख्यारथ परिहरि लख्यौ और जु अर्थ अनूप ।।
निपट हरपि परगट कियौ यह लक्ष्यारथ रूप ।।२३।।

अथ लच्छना लच्छनं

मुख्यारथ कौं छोड़ि कै पुनि तिहि कें ढिग और ।।
कहै जु अर्थ सुलच्छना वृत्ति कहत कविमौर ।२४।।
कविनि द्विविधि यह लीनी मांनि ।।
रूढि प्रयोजनवती वखानि ।।

अथ रूढ़ि लच्छना यथा

लाए निरगुन जोग तुम ऊधौ अति चित चेति ।।
करी वही छतियाँ इहाँ हम हरि गुन लिखि लेति ।।२५।।
करी[1] और वही ए रूढ़ि हैं।

अथ प्रयोजनवती लच्छना यथा

तलफतु विंदावन[2] सकल दरस रावरे काज ।।
सुधि करि कहियौ मधुप तुम फिर आओ[3] व्रजराज ।।२६।।
यहाँ 'बन' शब्द जड है तातें बिंदाबनवासी समझियै ।।

भेद प्रयोजनवती के और जानि षट चित्त ।।
प्रथम सुद्ध द्वै भेद सो वरनतु समझ निमित्त ।।२७।।
इक उपादान सुलक्षना दूजी सु लक्षित लक्षना ।

---

१. करी [१, ३] । २. वृंदावन [२, ३] । ३. आवो [२, ३] ।

अथ उपादान लच्छनं

सब्द निज अर्थ बनावन काज।
लेइ गहि अवर अर्थ सुभ साज ॥
उपादाना सुलच्छना ठीक।
कहें कबिदगन समझि नीक ॥
आधार रु आधेय कौं जहाँ जानिएँ भाउ।
तहाँ उपादाना कहौ रसिक सुबुद्धि सुभाउ ॥२९॥

यथा--जग सुमेरपति को जपै, बरनै सिवहि सुमेर।
दुवौ लहै अभिलाष फल पलकौ लगै न बेर ॥३०॥

यहाँ 'सुमेर' सब्द करि सुमेरबासी जानिए।
सुमेर आधार है और बसनवारे आधेय है। यह उपादाना लच्छना भई ॥

अथ लच्छितलच्छना लच्छनं

सब्द बरजि निज अर्थ बनावै और अर्थ कौं।
सो वह लक्षित भाषि लच्छना बुधि समर्थ कौं ॥३१॥

यथा--साँची बरनत बात यह समझि न झूँठी जुक्ति।
हम गंगावासी सदाँ चेरी[1] सी है मुक्ति ॥३२॥

यहाँ गंगा मे बसिबौ यह अर्थ छोडि कें निकट अर्थ प्रकास्यौ यातें लच्छित लच्छना भई।

संस्कृत में उपादान सौं अजहत् स्वार्था कहत है
और लच्छित लच्छना सौं जहत् स्वार्था कहत हैं।

अन्यच्च--सुनि सजनी दिन रैंनि हूँ एकौ छिनु बिछुरैं न ॥
तन मन में बिहरत रहैं पिय सुजान के नैंन ॥३३॥

टीका--इहाँ तन मन में बिहरिबौ नेत्रनि कौं कैसे संभवै तब या सब्द के अर्थ को तजि के आसक्ति अति जानी यातें लच्छित लच्छना याहू ठौर है ॥३३॥

अथ और द्वै भेद लच्छना के होत हैं।

एक सारोपा लच्छना दूसरी साध्यवसाना लच्छना जहाँ आरोप्य अरु आरोपक दोऊ पद होइ सो सारोपा कहिए और जहाँ आरोप्य ही होइ सो साध्यवसाना कहिऐं।

---

१. चीरी [१]।

जाको आरोप कीजै सो आरोप्य और जा मधि आरोप कीजै सो आरोपक।
आरोप्य उपमान आरोपक उपमेय।
इनहूँ के द्वै द्वै भेद हैं।
एक गौनी सारोपा दूसरी सुद्धा सारोपा;
और एक गौनी साध्यवसाना दूजी सुद्धा साध्यवसाना॥
जहाँ प्रथम आरोपक को नाम आवै सो गौनी सारोपा।
और प्रथम आरोप्य को नाम आवै सो सुद्धा सारोपा।
और जहाँ आरोप्य ही को नाम आवै सो गौनी साध्यवसाना।
और जहाँ वाचक सब्द सहित अमारोप्य को नाम आवै सो सुद्धा साध्यवसाना।

अथ गौनी सारोपा लच्छना यथा

इहि अलवेली ग्वालि नें नैंन विषम सर साँधि।
वस करि लीनें साँवरें ललित गुननि सौं बांधि॥३३॥

इहाँ नैंन आरोपक प्रथम है यातें गौनी सारोपा भई॥

अथ सुद्धा सारोपा यथा

चंद-वदन व्रज चंद की दुति लखि बाल रसाल॥
रही चकित ह्वै पंथ में मनमथ करी बिहाल॥३४॥

इहाँ 'चंद' आरोप्य को नाम प्रथम है, या तें शुद्धा सारोपा भई॥

अथ गौनी साध्यवसाना यथा

वैठि रही क्यौं समिटि कैं लाज साज अपनाइ॥
प्यारी कमल सनाल सौं पिय कौं हियैं लगा॥३५॥

यहाँ कमल आरोप्य ही कौं नाम है यातैं गौनी साध्यवसाना भई॥

अथ शुद्धा साध्यवसाना यथा

आज सखी सकेत में वह कुल कानि भुलाइ[3]॥
लिपटि गई नंदलाल सौं कनक लता सी आइ[4]॥३६॥

यहाँ कनक लता आरोप्य सो वाचक सहित है तातें शुद्धा साध्यवसाना भई॥

---

१. या [३]। २. चकित [३]।
३ भुलाय [१, २]। ४. आय [१, ३]।

अथ व्यंजक सब्द लच्छनं

अधिक कहै कहि अर्थ को व्यंजक शब्द सुजांनि ॥

अथ व्यंग्यार्थ लच्छनं

समझि लीजिऐ अर्थ पुनि और चोज हू होइ।
रसिकनि कौं सुखदानि[1] अति व्यंगि कहावै सोइ ॥६७॥

मूल लक्षना व्यंगि इक, दूजी अभिधा मूल।
कहै ब्यंगि सो व्यंजनावृत्ति बढ़ावै फूल ॥३८॥

टीका--लच्छनामूल व्यंगि मैं लच्छना कौं तत्व ही व्यंग है।

मूल लक्षना व्यंगि कौ द्वै विधि उर मैं आनि।
प्रथम सुगूढ अगूढ़ पुनि, तिन कौं कहतु वखानि। ३९॥
लखै सुकबि जाकौं सु वह गूढ़ ब्यंगि निरधारि।
सो अगूढ जाकौ लखैं सब कोऊ अबिचार ॥४०॥

अथ लक्षनामूल गूढ़ ब्यंगि यथा

मिली द्रुम बेलि वन वागनि त्रिकासनि सौं,
पूरन करत चोखी चौंप उर वानि को ॥
सौमनाथ प्यारें लखै सोभ घनदामिनी की,
कामिनि कौं चाहै वुधि[1] नर सुर ज्ञानि की ॥
श्रौन सुख देति अब आनंद कौं चूकैं एई,
विरहीन हू कैं देति कूकैं मुरवानि की ॥
दिग बनितान की सी अलकें अपार,
मन मोहति कतार वनि धार धुरवानि की ॥४१॥

टीका--नायक ने चलन कह्यो है तापै नायका नैं कही है यह बात व्यंगि कवि ही जानैं। चौथी तुक मैं सुद्धासारोपा लच्छना है।

1. बुद्धि [२, ३]।

अन्यच्च - मीना के महल मंजु मन की प्रकासौ जोति,
साजौ परजंक जे सुगंध बरसानें हैं।
पावड़े अनिंद अरबिदनि के बृंदनि के,
बिमल बिछाओ मृदुता सो परसानें हैं।
सौमनाथ आवत पियारे परताप सिंध,
आजु के सगुन सबै साँचे दरसाने हैं।
बाजे सहदाने ए निसान फहराने,
देखि नैन सरसाने हैं बिनोद बरसाने हैं ॥४२॥

टीका--यह आगमिष्यतिपतिका व्यंगि याकोऊ कवि ही जानैं और बिनोद बरसिबो असंभव तातैं सरलाई जानियैं याते लच्छित लच्छना भई ॥

अथ लक्षनामूल अगूढ़व्यंगि यथा

केसरि रंग से अंगनि में ससिनाथ दुकूलनि की दुति भारी।
भाल में रोरी की आड़ रची मुख बीरी, अबीर की फेंट महारी।
लाल पै डारि गुलाल की मूठि बिलोकति होति हिएँ बलिहारी।
खेलति होरी गुपाल सौं आज यौं लाज तजें वृषभानदुलारी ॥४३॥

टीका--प्रौढा लाज तजिबे तें व्यंगि प्रगटे है और प्रथम तुक मे सुद्धा सारोपा भई। उपमान प्रथम है केसरि यातें।

अथ अभिधामूल व्यंगि लच्छनं

वहु अर्थ कै जहँ शब्द में इक अर्थ की परतीति[२]।
वह मूल अभिधाब्यंगि समझौ हियैं अति करि प्रीति ॥४४॥

यथा—कुंज कुंज गुंजत फिरैं मधुकर पुंज अनंत।
ठौर ठौर फूले सुमन आयौ कत बसंत ॥४५॥

टीका—इहाँ 'सुमन' फूल ही जानि सुमन देवता न समझिऐ॥

अन्यच्च—जब ते तिरछी लखनि लखि हरि हरि लीनें नैन।
री तब ते बिसरो सदन, बिकल करी अरि मैन ॥४६॥

टीका- यहाँ 'हरि' नाँउ कृष्न जानिए और बहुतनि कौ है, सु न समझियै। ऐसे ही और समझि लीजै॥

---

१. लसै [२]। २. प्रतीति [१, २]।

इति अभिधामूल व्यंगि

त्रिविध अर्थ तें व्यंगि ज्यौं होति सु कहत बनाइ ।।

अथ वाच्यार्थ तें व्यंगि यथा

छिन छिन ओछी होति कटि छुटी चपलता आॅन[1] ।
चतुराई बैननि बसी नैन लगे तिरछान[2] ।।४७।।

टीका—यहाँ सब वाच्यार्थ तें जोबनागम व्यंगि ।।

अथ लक्ष्यार्थ तें व्यंगि यथा

भली करी नँदनंद तुम रँगे कूबरी रंग ।
कहियौ ऊधौ नित हमें होति बिरह सौं जंग ।।४८।।

टीका—यहाँ 'भली करी' यह विपरीत लक्ष्यार्थ तें दुख व्यंगि ।

अथ व्यंग्यार्थ तें व्यंगि यथा

कुंडल मुकुट, कटि काछनी, तिलक भाल,
सोमनाथ कहै मंद गवन मनोहरा ।
वारियै री कोटि मनमथ की निकाई,
देखि भृकुटी नचावै री रचावै चित मोहरा ।।
बड़े बड़े नैन पुनि साँवरे बरन वर,
लोगनि कौं लंगर लुभावै पढ़ि दोहरा ।
आवै नित मुरली बजावै, तान गावै यह,
छरहरौ कौन कौ छबीलौ छैल छोहरा ।।४९।।

टीका—यहाँ 'कौन को छबीलौ छैल छोहरा' कहिबै तें अग्यानता व्यंगि है तातें मिलाप की इच्छा व्यंगि ।।

अथ केवल अर्थव्यंजक बर्ननं

होतु अर्थु ही व्यंजक जहाँ । बरनत तिन्हे समझियौ तहाँ ।।५०।।
वक्ता कहुँ काकु कहुँ वाक्य तें जानि ।।[3]
कहू समझिये समय तें, कहु औरहु उर आनि ।।५१।।

---

१. आनि [३]। २. तिरछानि [३]।
३. कहुँ वक्ता तें काकु कहुँ, वाक्य तें कहुँ जानि [१, २] ।

अथ बक्ता तें ब्यंगि यथा

बानी बरनि सकै नहीं तिय तरुनई अनिंद ॥
चरन बरन आगे लसै, मंद अरुन अरबिंद[1] ॥५२॥

टीका—यहाँ जौ नायक कहै तौ गुन कथन ब्यंगि, और सखी कहै तौ नायक कैं चाह बढ़ायबौ ब्यंगि ॥

अथ काकु तें ब्यंगि यथा

गोकुल आजु गई दधि बेचन ग्वालि सबै मिलिकें ठिकु जानिहि ।
आयौ अचानक दौरि कहूँ तें गुपाल तहाँ लिएँ संग सखानिहिं ॥
आनन तें पट घूँघट[2] टारि लुटाय भटू घट तें कुल कानिहि ।
कोन बिकाइ गई बिन मोल बिलोकत मोहन की मुसिक्यानिहि ॥५३॥

टीका—यहाँ 'को न बिकाइ गई' या कहिबे तो जानी कि सब ही बिकाइ गईं यह काकु ब्यंगि ॥

अथ वाक्य तें ब्यंगि यथा

पजरतु हियौ समीर तो, छ्वै न सकै घनसार ॥
सखी दूरि धरि द्रगनि तें नव अरबिंद कतार ॥५४॥
यहाँ बिरहिनी ब्यंगि है ।

अथ समय तें ब्यंगि यथा

चले दुहूँ दिसि तें उमड़ि, सुभट समर किलकारि ॥
हुव विनोद मन में निरखि तिछ्प तरल तरवारि ॥५५॥

टीका—यहाँ संग्राम समय में विनोद बढ़िबे तें जुद्ध की इच्छा ब्यंगि ।

इति श्री मन्महाराजकुमार श्री परताप सिंघ हेत कवि सोमनाथ बिरचिते रस पियूष निधौ शब्दार्थ वर्ननं नाम षष्टस्तरंगः ॥६॥

---

१. अरबिंद [१] ।
२. भूपन [१] ।

अथ ध्वनि बर्ननं

ध्वनि भेद तें होतु कबित्त अनूप ॥
वखानतु सो ध्वनि कौं अब रूप ॥१॥

अथ ध्वनि लच्छनं

होय लच्छनामूल जहँ, गूढ व्यंगि परकास ॥
वाच्य अर्थ है बृथा जहँ, सो ध्वनि कहि सबिलास ॥२॥

कवि की इच्छा है न जहँ, वाच्य अर्थ पै मित्र ॥
सो अविवक्षित वाच्य-ध्वनि कहि बरनतु सु बिचित्र ॥३॥

टीका—अविवक्षित वाच्यध्वनि द्वै भाँति एक अर्थांतरसंक्रमित वाच्य ध्वनि दूजी अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि ॥

अथ दोऊन के लक्षनं

वाच्यार्थ कौ मिलाय अन्यत्र हू होइ सो अर्थातंरसंक्रमितवाच्य-ध्वनि और जहाँ वाच्यार्थ वृथा है सो अत्यंत तिरस्कृतवाच्य-ध्वनि ॥

अथ अर्थातरसंक्रमितवाच्य ध्वनि यथा

मानि कह्यौ मेरौ अरे भलौ बन्यो है साज ॥
को जानै फिरि ह्वै कहा[1] साधि आपनौ काज ॥४॥

यह वाच्यार्थ चाहे तहाँ लगै ॥

अथ अत्यंत तिरस्कृतवाच्यध्वनि यथा

उनि पियूष परस्यौ मधुर, उनि अच्यौ मकरंद ॥
अलि अनूप कौतिक भयौ, मिलि इंदीबर चंद ॥५॥

टीका—यहाँ वाच्यार्थ बृथा है। यह नायक नायका परस्पर अधरपान करते है सो समय है। गौनी साध्यवसाना और लक्षित लक्षना है।

अथ और वाच्यार्थ व्यंगि के लायक हैं जहाँ सो विवक्षितवाच्य ध्वनि ताके है भेद। एक असंलक्ष्यक्रम व्यंगि और दूजी संलक्ष्यक्रमव्यंगि ध्वनि और असंलक्ष्य-

---

१. कहा है, [१, २]।

क्रम के भेद नव रस पंचास भाव और रसाभास, भावाभास और रस की और भावन की सांति, संधि, सबलता, उदय, हांनि सौं भाव विधि कहत हैं।

अथ रसमूल भाव वर्नंनं

रस को मूल भाव पहिचानि[1] ॥
ताकौं यह लक्षन उर आनि[2] ॥
चित वृति ही लौं ठहराइ ॥
भाव वासना रूप बताइ ॥६॥
रस अनकूल विकार जु होत ।
तासौं भाव कहत कविगोत[3] ॥७॥

अथ बिकार लच्छनं

चितु कछु हेतुहि पाइ जब, होइ और तें ओर ।
ताको नाम विकार कहि, बरनत कवि सिरमौर ॥८॥
भाव सु द्वै विधि उर में आनौं, अंतर अरु सारीरक मानौं ॥
अंतर के थाई संचारी, और जानि सारीरक भारी ॥९॥

टीका—विभाव अनुभाव सारीरक हैं ।

यथा सवैया भाव कौ

आनन फूले गुलाब के रंगनि अंगनि में अरसानि भरी है ।
नेकु न भूलति सो ससिनाथ हियें वह मूरति आनि धरी है।
नाम सुने हरपे तुव[4] नैन पै बैंननि ह्वै अब जानि परी है।
कुंजनि में रहठानि करी है[5] नई हरि सौं पहचानि करी है॥१०॥

टीका—यहाँ नाउँ सुनें मन की वृत्ति और ही भई ॥

चारि प्रकार सु भाव है, प्रथम विभाव वखानि ।
फिरि अनुभाव सु जानियै संचारो पुनि मांनि ॥११॥

---

१. पहिचानौ [३]। २. आनौ [३]। ३. सब गोत [१]।
४. तिय [१]। ५. तैं [१]।

तातें पुनि थाई समझि, चौबिधि इमि उर आँनि ॥
सातुक भाव जु हैं सु वह, अनुभावनि में जाँनि ॥१२॥

अथ बिभाव लच्छनं

जिहि तें उपजत है जहाँ जिहि के थाई भाव ।
तासौं कहत बिभाव सब, समझि रसिक कबिराव ॥१३॥

टीका—यह बचन नव हू रस के पच्छ हैं ।

सो विभाव द्वै भाँति वखानि ॥
आलंबन उद्दीपहि जानि ॥१४॥[1]

अथ आलंबन उद्दीपन के लच्छनं

थाई भावन कौ जु वसेरौ ॥ सौ बिभाव आलंबन हेरौ ॥
अति सरसै पुनि जिहिं दरसानें ॥ सो उद्दीपन समझि सयानें ॥१५॥

[यहू नव रस पच्छ है]

रति आलंबन नाइका नाइक जानि सुजान ॥
ससि बसंत सरबर तडित बहु उद्दीपन दान[2] ॥१६॥

अथ अनुभाव बर्ननं

बिहसि चितैबौ रस बचन, सातुक भाव जु और ।
चुंबनादि अनुभाव ए बरतन कबि सिरमौर ॥१७॥

टीका– ए सिंगार के अनुभाव हैं और यह बचन नवरस पच्छ है ।

दरसावै परकास रस सो अनुभाव बखानि ॥

अथाष्ट सात्विक भाव कथनं

स्तंभ स्वेद सुरभंग अरु कंप वैबरन रूप[3] ।
अश्रुपात रोमांच लय, सातुक भाव अनूप ॥१८॥

अथ संचारी भाव नाम कथनं

छंद—निर्वेद ग्लानि बिषाद निंदा संक त्रास अमर्ष है ।
मद नीद आलस गर्व जड़ता लाज चिंता हर्ष है ॥
श्रम बोध स्वप्न बितर्क व्याधि सु उग्रता बुधि दीनता ।
उन्माद अवहित्था समृति[4] धृति मूरछा अरु चपलता ॥१९॥

---

१. यह छंद केवल प्रथम प्रति में है । २ उद्दीप निदान [१, ३] ।
३. बिबर्न सरूप [३] । ४. सुमृति [२] ।

उत्कंठा आवेग पुनि, मोह और लय जाँनि।
सचारी तैंतीस ए रस संगी पहिचानि ॥२०॥

अथ इन के भिन्न भिन्न लच्छनं

झूठो जग, प्रभु सत्य है, यह निर्बेद बिचार।
तन मन दुख तें छीनता होति सुग्लानि अपार ॥२१॥
निपट छीन मन दुख्ख तें सो बिषाद पहिचानि।
सुभ न लखि सकै और कइ, सो निंदा सरसानि ॥२२॥
वस्तु चाहती हानि भय, ताकौ संक बताइ।
त्रास जानि डर, क्रोध थिर जह सु अमर्प सुभाइ ॥२३॥
मद बिनोद की मगनता, नीद सुनिद्रा जानि।
अति अँगिराइ जभाइवौ सो आलस ठहरानि[1] ॥२४॥
हौं सब तें बढ़ि गर्व, यह जड़ता सुन्न निदान।
लज्जा अति ही सकुचिबौ, चिंता प्रिय कौं ध्यान ॥२५॥
उर आनद सु हर्ष है, सिथिलाई श्रम रूप।
बोध जागरन समझिए, सपनो सुपन अनूप ॥२७॥
बहु बिचार सु बितंक है, व्याधि रोग तन जाँनि।
चित जव निदरे सबनि कौं तब उग्रता बखाँनि ॥२८॥
निहचै ग्यान सुबुद्धि है दीनता सु मन हीन।
चित्त भ्रमन उनमाद है,[2] वरनत रसिक प्रवीन ॥२९॥
हर्ष सोक नहिं जानियतु, लज्जा के सरसात।
अवहित्था तासौं कहत, जिते बुद्धि अवदात[3] ॥३०॥
सुधि करिबौ सो सुमृति गुनि, धृति सतोष अपार।
अपस्मार सो मूरछा, चापल[4] चपल बिहार ॥३१॥

---

१. हरठानि [१]; रहठानि [२]।
२. चित्त भ्रम उन्मादता [१, २]।
३. अवहित्था सो जानिए कहत बुद्धि अवदात [३]; अ०हित्था तासौं कहैं [१]।
४. चलता [१. २]।

रुचै अबेर न काज की, तहँ[1] उतकंठा जानि।
निरखि आचिरज चित भ्रम, सु आवेग पहिचानि ॥३२॥
कल न परै चित कौं कहूँ ताहि मोह ठहराइ।
अति प्रानमि कौ बूड़िबौ, ताकौ लय समझाइ ॥३३॥

अथ स्थाई भाव बर्नंनं

नायक सब ही भाव कौ, टारें टरै न रूप।
तासौं थाई भाव कहि, बरनत है कवि भूप ॥३३॥

सो नव विधि हैं॥

रति अरु हाँसी सोक पुनि, क्रोध उछाह अनूप।
भय गिलानि बिस्मय बहुरि, गनि निरबेद सुरूप ॥३५॥

रति लच्छनं

इष्ट मिलन की चाह जो रति समझौ सो मित्त।
दरसन तें कै श्रवन तें कै सुमिरन तैं नित्त ॥३६॥

अथ हास लच्छनं

कौतूहल के बचन ते, कै उलटे अँगबास।
लखि कै होत बिकार हिय, ताहि कहत कबि हास ॥३७॥

अथ सोक लच्छनं

दुर्गति निरखत हितू पर,[2] कै पिय[3] बिछुरन तंत।
हिय में होतु बिकार जो, सो भनि सोक अनंत ॥३८॥
फेरि मिलन की आस नहि, तहाँ सोक पहिचाँनि।
जहँ मिलाप की आस है तहँ निहचै रति जाँनि॥
दूरि गमन पुत्रादि की तहूँ सोक उतपत्ति ॥३९॥

अथ क्रोध लच्छन

लखि अनीति दुरबचन ते, होतु बिकार जु आइ।
ताको बरनत क्रोध कहि, प्रगट सकल कबिराइ ॥४०॥

---

१. सो [३]। २. दुरगति निरख हितून पर [३]। ३. प्रिय [१]।

अथ उत्साह लच्छनं

जुद्ध दान अरु दया करि, हिय में होतु विकार।
ताही सौं[1] उत्साह कहि वरनत रसिक उदार ॥४१॥
धर्मबीर चौथौ उर आनौ ॥

अथ भय लच्छनं

झूँठ और अपराध तें, अनपूरन सुनि मित्र।
होतु विकार जु चित्त में, सो भय जानि विचित्र ॥४२॥

अथ ग्लानि लच्छनं

निंद्य वस्तु दरसन परस, सुमिरन तें अनयास।
उपजनु हिये बिकार जो, सोई ग्लानि प्रकास ॥४३॥

अथ विस्मय लच्छनं

निरखि आचिरजु[2] चित्त में जो कछु[3] होतु[4] विकार।
सो विस्मय जानौं प्रगट, बरनत कवि निरधार ॥४४॥

अथ निर्वेद लच्छनं

सव तें मन अति सिमटि कै बसै ईस में जाइ।
जग बहु भाँतिनि निदरिबौ सौ निरबेद बताइ ॥४५॥

अथ रस लच्छनं

जहँ बिभाव अनुभाव अरु सहित सँचारी भाउ।
ब्यगि कियो थिर भाव यह ही रस रूप बताउ[5] ॥४६॥

---

१. कौ [१]।
२ आचरिज [२]। ३. जु कछु [१]। ४. होय [२]।
५ व्यंग्य कियौ थिर भाव इहि सो रस रूप बताउ [२]।

भरत मत कौ लच्छन कह्यौ ।

अथ अभिनवगुप्तपदाचार्य कौ लच्छन और कहत हैं ।

सुनि कवित्त कौं चित्त मधि, सुधि न रहै कछु और ।
होइ मगन वहि[1] मोद मैं, सो रस कहि सिरमौर ॥४७॥

सो रस नौ बिधि उर में आनौं ।
सब के न्यारे नाउँ बखानौ ॥४८॥

प्रथम सिगार सु हास्य पुनि, करुना रुद्रहि जानि ।
बीर भयानक रस वहुरि, बीभत्सक पहिचानि ॥४९॥

अद्भुत सांत सु नव रस होत ।
बरनत सुकबि सुबुद्धि उदोत[2] ॥५०॥

अथ नव रस रंग कथनं

स्यांम बरन सिंगार रस, स्वेत हास्य रस जानि ।
पारावत के रंग सम, करुना रस पहिचानि ॥५१॥

अरुन रंग पुनि रुद्र रस, बीर पीत रँग होतु ।
मलिन भयानक नील अति, रस बीभत्स उदोतु ॥५२॥

गौर बरन अद्भुत रस भाषौ ।
अति ही स्वेत[3] सांत[4] अभिलाषौ ॥५३॥

अथ नव रसन के स्वामी कथनं

हरि सिँगार कौ स्वामी मानौ ।
पवन हास्य रस कौ पहिचानौ ॥
करुना रस कौ बरुन बखानौ ।
रुद्र रुद्र रस कौ तुम जानौ ॥५४॥

---

१. विहि [१] ।
२. बरनत कबि सुबुद्धि उद्दोत [१] ।
३. सेत [१] । ४ सांति [१] ।

इंद्र वीर रस कौ वहुरि, भय रस कौ जम[1] जानि ।
महाकाल वीभत्स कौ, विधि अद्भुत कौ मानि ॥५५॥

सांत रसहु कौ ब्रह्मा कहियै ।
नव रस के ए नायक लहियै ॥५६॥

इति श्री मन्महाराजकुवार श्री प्रताप सिंह हेत कवि सोमनाथ विरचिते रसपियूषनिधौ ध्वनि भेद रस लच्छन रंग स्वामी वर्ननं नाम सप्तमतरंगः ॥७॥

अथ सिंगार रस बर्ननं

नव रस कौ पति सरस अति, रस सिँगार पहिचानि ।
इक संयोग बियोग अरु, सो द्वै बिधि उर आनि ॥१॥

अथ संयोग सिगार लच्छनं

दंपति मिलि विहरत जहाँ मनमथ कला प्रवीन ।
ताहि सँजोग सिँगार कहि, बरनत सुकवि कुलीन ॥२॥

यथा कबित्त

प्रेम रंग राते परजंक पै लसत दोऊ,
अंक भरि लेत करि बिरह निवारनें ।
कवहूँ विनोद सों विलोकत उमंग भरे,
संग ही सरस किएँ भूषन सवारनें ।
सोंमनाथ रीझि पिएँ अधर पियूष ऐसी,
सोभ कित पाई रति मदन गवार ने ।
छाई अजौं नैननि निकाई आजु दंपति की,
हेरत हिराई री किये है प्रान वारनें ॥३॥

टीका—इहाँ दंपति आलंबन विभाव और आभूषनादि उद्दीपन विभाव ।
बिलोकिबौ अधर पान करिबौ अनुभाव ।
विनोद शब्द तें हर्ष संचारी भाव ।
इन सवनि तें रति स्थाई भाव व्यंगि तातें सिगार रस ॥

अन्यच्च—जगमगे जटित जवाहर कौ परजंक,
फूले से अनूपम बिछौना सरसात है ।
तहाँ ऐंनि मैंनि रति काम से सुघर सजें,
मरगजे[1] बसँन औ भूषन लसात हैं ।
सोंमनाथ कहै चित चाइन सौं मोद भरे,
प्रेम रस रंगनि की बातैं बतरात है ।

---

१. आनद सौं [१] ।

गलबाँही दपति परसपर प्रताप आजु,
रँगमगी आँखिनि[1] निरखि मुसिक्यात है ॥४॥

अन्यच्च—पलकनि पीक लीकैं झलकति, खुले केस,
अबला के मूछम छवानि लौं ढरत है।
सौमनाथ कहै झुकि मुदि[2] कै खुलत नैन,
पवन तें मरगजे वास फहरत है।
अरसौहे अंगनि अनूप चिवुकनि छियें,
मद मद विहसि विलोकि वतरत[3] है।
खरे केलि कुंज में गुविद प्रानप्यारी सग,
सुरपति सची के समाज निदरत है ॥५॥

अन्यच्च—देह लता, नैन अरविद[4] भौंह भौंर पाँति,
अधर ललाई नव पल्लवनि तुंदरी।
हाँसी वेलि, वैन धुनि कोकिल, कपोल चारु,[5]
चिवुक गुलाव, नाक चंपक अमुंदरी ॥
सौमनाथ कहै पीत वसन पराग पुंज,
सोभा कहिवे कौ सारदा की मति कुंदरी।
परसि मकुंद स्वेद बुंद मकरंद वारी,
केलि कुंज अंतर वसत रित सुंदरी ॥६॥

अन्यच्च—पचरंग पाग तैसी चूनरी सुगंध[6] भीनो,
अरविंद वदन अलिंद मडराही वै।
छुटकति[7] जाति छवि छटा चहूँ ओर चारु,
मुसिक्यात वरनत वात चित चाही वै।
अंक भरि वाहे तिहूँ पुर की निकाई देखि,
वृषभाननंदिनी गुविंद गलवाँही वै।

---

१. अँखियनि [१]।
२. मुदित [२]। ३. वितरत [१]।
४. अरविंद [१]। ५. चार [१]।
६ सुरंग [१]। ७. छुटकति [२]।

बरषत नेह हरषत सौमनाथ हिएँ,
निरषत रूप परषत परछाँही वैं ॥७॥

अन्यच्च—अंक भरि आछे अकलंक परजंक पर
पीवत अधर मधु सरस समाज के ॥
सौमनाथ कहै श्रमसीकर सुमुख पैं,
बसीकरन रूप रचैं बचननि लाज के ॥
दंपति के लंक लचकनि तें निसंक सु
अलंकरन राजैं इमि रनित इलाज के ॥
संगी सुख साज रति संगर बिजै के मनौ
वाजे सहदानें मरदाने रतिराज के ॥८॥

अन्यच्च—विपरीत सुरतांत

मनि गन भूषन अनूप तन सजे दोऊ,
विपरीत रमत मनोज ओज सरसैं ॥
विहसि अनूठे भाइ प्रतिबिंब आपनें कौं,
वेर वेर दरपन से मंदिर में दरसैं ॥
सौमनाथ बरनै बरंगना के आनन ते,
श्रम-स्वेद-सीकर-समूह सेज परसैं ॥
भौरनि अछूँदैं जग सुंदरता रूँदैं मनौं,
मकरंद बूँदें अरविंद पैं तें बरसैं ॥९॥

अथ नायका लच्छनं

सुंदर अरु सब गुन सरस, भूषन भूषित अंग ।
इहिं विधि बरनौं नायका रस कौं पाइ प्रसंग ॥१०॥

यथा कवित्त—सोहति कसूँभी सारी सुंदर सुगंध सनी,
जगमगै देह दुति कुंदन के रंग सी ॥
सील सुघराई की सी सींव अरबिंदमुखी,
नैननि की गति गूढ़ तरल तुरंग[१] सी ॥

१. तरंग [३] ।

छूटति चहूँधा मनि भूषन मयूख चारु,
सौमनाथ लागै बानी उपमा बिरंग सी ॥
राजै रति मंदिर अनंग तरुनी सी आजु,
बाढै अंग अगनि में जोबन तरंग सी ॥११॥

दोहा—जानि नायका चतुर पुनि, चारि जाति सुखदानि !
पद्मिनि चित्रिनि संखिनी पुनि हस्तिनी बखानि ॥१२॥

अथ पद्मिनी लच्छनं

सुंदर सहज सुगंध तन कनक बरन मृदु हास।
स्वल्प भोजन रति अति तनक यह पद्मिनो बिलास ॥१३॥

यथा कबित्त—सुबरन रंग सुकुमारि[1] सबै भावनि सौं[2] ,
अंगनि उछाह की लहरि लहरी रहति ॥
भूषन बसन चारु दसनि हसनि और,
नैननि में प्रेम रस प्यास गहरी रहति ॥
सौमनाथ प्यारे अलि भाँवरो भरत रहै,
चहूँघा चकोरनि की चौकी ठहरी रहति ॥
सरद कौ चंद कैसै कहौं मुख चंद सम,
छहूँ रित जाकी छवि छटा छहरी रहति ॥१४॥

अथ चित्रिनी लच्छनं

नृत्य गीत अरु मित्र के चारु चित्र सौं नेह।
वहिरति सौं अति प्रीति चित चित्रनि सुंदर देह ॥१५॥

यथा सवैया—

बीसक बेर सिंगार सजै लखि आपुनपौ रति की रती जानति ॥
मंदिर माँझ नचावै सखीनि लै, बीन प्रवीनता सौं सुर तानति ॥
नाथ सुजान के सग बिहार कौ सोख न औरन की उर आनति ॥
प्रेम चरित्र पगी तरुनी नित मित्र के चित्र ही सौं सुख मानति ॥१६॥

---

१. सुकुँवारि [१]। २. कै [२, ३]।

अथ संखिनी लच्छनं

निलज, सजल तन, रोस अति, नखछत सौं नित प्रीति।
लाल दुकूल, निसंक चित, कहि संखिनि की रीति ॥१७॥

यथा सवैया

लाल दुकूल सजै रुचि सौं, सदही सौं निसंक, न लाज रती गहै।
और की और ही वात कहै ससिनाथ कितौ समझाय सखी कहै॥
पोंछति स्वेदनि अंगनि तें सु अनंग कला अति ही चित में चहै॥
जानि परै न कछू उर की, निसि वासर वाम की भौंह चढ़ी रहै[1] ॥१८॥

अथ हस्तिनी लच्छनं

थूल दंत, भूरे चिहुर, चपल चित्त, गति मंद।
हस्तिनि सुर गंभीर अरु तन दुरगंधि बिलंद ॥१९॥

यथा कवित्त

दीरघ रदन, दुरगंध के सदन अंग,
अंवर मलीन, औ सुमंद गजगामिनी॥
भूरी अलकावलि अनूठी औ चपल चित,
भोजन की वतियाँ सुहाति दिन जामिनी॥
बैंन सुनैं कौन कं परतु चैन काननि में,
वड़े वड़े ओठ ओछी आखैं अभिरामिनी॥
औरनि की चरचा कहा है कहि सोमनाथ,
भीमहूँ कौ लागति भयानक सी भामिनी ॥२०॥

वरनत है सव नायका, तीनि भाँति यह जानि।
स्वकिया परकीया वहुरि, वारवधू पहिचानि ॥२१॥

अथ स्वकीया लच्छनं

निज पति ही सौं प्रीति अति तन मन वचन वनाइ।
ता सौं स्वकिया नायका कहत सकल कविराइ ॥२२॥

---

१ जु सदा निसि वासर भौंह चढ़ी रहै [१]।

यथा कवित्त—प्रीतम की बात सुनिबै की चित चाउ जाके,
रैनि दिन बैननि सुधा सी बरसी रहै ॥
नैननि की दौर पिय पाइनि की पंथ पर,
सासु की न सासनि ते नैक अरसी रहै ॥
सौमनाथ सील चतुराई भरि राखी अंग,
रिसकी न रंचक मरोर दरसी रहै ॥
आनद के कंद नंदनंद गुन मदिर के,
नागरि निरतर सनेह सरसी रहै ॥२३॥

कुलबधू नेत्र बर्ननं

फूले अरबिंद तें छबीले दिन जामिनि में,
लाज के समाजनि टों रती अरसे ना ए ॥
अंजन अँजे से जरबीले नव खंजन तें,
तऊ पट घूँघट ते रती उघरैं ना ए ॥
चाइनि सों विधि ने रचे है कहि सौमनाथ,
अति ही अन्यारे पै अनीति कौं करै ना ए ॥
सम कौं कुरंग ना गुमान की तरंग ना,
बिछौहै पिय संग ना बरंगना के नैना ए ॥

अथ स्वकीया भेद कथनं

मुग्धा मध्या प्रगल्भा त्रिविधि जु स्वकिया जानि ।

अथादौ बैसंधि लच्छनं

लरिकाई तरुनई की, संधि जहाँ ठहराइ ।
ताहि कहत बैसंधि कबि हिय आनँद सरसाइ ॥२४॥

बयसधि कबित्त यथा

बीती लरकाई न झलकि तरुनाई आई
निरखें सुहाई अंग औरै ओप अति है ॥
तुला चल संक्रमन की सी दिन राति कोऊ
घटि बढ़ि है न साधें ठीक ठहरति है ॥

दरस कौ अंत्य ज्यौं उजेरौ न अँधेरौ पाख
सौमनाथ उपमा प्रमान[1] परसति है।
दोऊ वैस-संधि मैं छबीली प्रानप्यारे वह
अरुन उदै की कंजकली सी लसति है ॥२६॥

अथ मुग्धा लच्छनं

जोबन कौ अंकुर जहाँ, सो मुग्धा उर आनि ॥२७॥

यथा कवित्त

छतिया पै रंच कुच कोर अंकुरित भई
देह दुति चंपक सुमन दल की सी है।
बैननि पियूष मधुराई बरसैगी डीठि
खंजन की रीति लहिवे को ललकी सी है।
लंक लघु ह्वै कैं लहकैगी दिन चारिक में
सौंमनाथ गति मंजुता कौ मुलकी सी है।
सुनिए सुजान दिन द्वै तें भावती के अंग
जोबन की तनक झलक झलकी सी है ॥२८॥

अथ मुग्धा भेद कथनं

है अग्यात रु ग्यात पुनि, द्वै बिधि मुग्धा जानि।

अथ अग्यातयौवना और ग्यातयौवना मुग्धा लच्छनं

जोवन आयौ नहिं लखै, सो अग्यात बखानि।
जोवति जोबन आगमन, तन में ग्यात सु जानि ॥२९॥

अग्यात यथा कवित्त

भूली सबै सुधि खेलन की सु घरी भरिहू न कहूँ ठहराति है।
पोछति चारु हथेरिनि सौं दृग कोर जो जोबन तें लहराति है।
ए ससिनाथ सुजान सुनौ सखियानि सौं बूझि महा झहराति है।
साँझ ही तें अरबिंदमुखी कुच अंकुर हेरि हिएँ हहराति है ॥३०॥

---

१. प्रवान [१]।

ग्यात यथा कवित्त

छुटि कैं कटि रंचक छीन भई गति नैननि की तिरछान लगी।
ससिनाथ कहै उर ऊपर तें अँचरा उघरे तें लजान लगी।
लरिकाई के खेल पछेलि कछूक सयाँनी सखीनि पत्यान लगी।
पिय नाउँ सुनें तिय द्यौसक तें दुरिकें मुरिकें मुसिक्यान लगी ॥३१॥

अथ नवोढा लच्छनं

पराधीन रति लाज भय जा तिय के मन होइ।
बालपनैं व्याही सु यौं नौढा बरनत लोइ ॥३२॥

यथा सवैया

जु रची बिधि लाज स्वरूप[1] की रासि लखें छवि को न हिएँ हहरै।
झलकै मनि भूपन अंगनि में मुखचद की औरै छटा छहरै ॥
अचकाँ[2] ससिनाथ सुजान गही उर में रति की अति गी गहरै।
ठहरै न, कितौ पिय प्यार करै, भहरै सफरी ज्यौं तिया थहरै ॥३४॥

अथ नवौढा कौ सुरतांत

रुचि सौं सुरति करै नही, नारि नवोढा जानि।
बरजोरी के करत ही, होइ महा रस हाँनि ॥३५॥

यथा सवैया

है न सम्हार दुकूलनि की लखियैं मुख चंद रह्यो[3] मुरझायौ।
नेकु छियै सिसकी भरै सौकु सुनौ पुनि को न हिएँ हहरायौ ॥
भोर तें और कछू चरचा न, चबाउ यही घर बाहिर छायौ।
या सौं अजू अलबेले सुजान कहौ किहि भाँति मनौज रिझायौ ॥३६॥

अथ विश्रब्ध नवोढा लच्छनं

नवल नारि कैं होत जब, कछु पिय की परतीति।
तब विश्रब्ध नवोढ कहि, हिएँ लाज रति भीति ॥३७॥

---

१. स्वरूप [२, ३]। २. अचिकाँ [१]: अचकै [३]।
३. महा [३]।

कवित्त यथा

नीबी कसि निपट लपेटी किंकिनी सौं, अरु
लाय राखी बहियाँ उरोज बखियानि सौं।
भाजिवौ चहति पै सकै न भजि प्रीतम पै[1],
जानि मन मनही रिसाइ सखियाँनि सौं।
डोलत न डीठि तें निकाई वह सोमनाथ,
देखी निसि जागि जु मै लागि पखियाँनि सौ।
परी परजंक पिय अंक में ससंक प्यारी,
लखै मुख चद अधखुली अखियाँनि सौं ॥३८॥

अथ विश्रब्धनवोढा कौ सुरतांत यथा

कुंदन लता सी श्रमबिंदु मुकतनि फली,
फैली अलकनि की अनूठी बन गति है।
सौमनाथ कहै हरैं हाथ गहि हाहा करै,
डरैं उर अंतर मै होति अनगति है।
निपट निहोरि फुफुंदी की फंदी छोरि लाल,
भुज में बटोरि मानि लीनी मन गति है॥
हीन जल मीन सी नवीन तिय अंक हूँ मैं,
डीठि करि पैनी ह्वै तनैनी तनगति है ॥३९॥

अथ विश्रब्धनवोढा कौ सुरतांत ॥ यथा कबित्त

थहरात अंग श्रम सीकर बदन पर,
बिथुरी अलक फहराति छबि छाई है।
भरगजी माल पीक[1] झलकैं कपोलनि में,
अधबँधी कचुकी सुरंग सुखदाई है।
सौमनाथ सुंदर सुजान पिय संगम तें,
रति रग संक तें हिये में हहराई है॥
धरकति छाती अरसाती रँगराते नैन,
निरखि नबेली अलबेली बनि आई है ॥४०॥

---

१. भजै न सकि प्रीतम पै [१]; भजै न सकै प्रीतम पै [३]।
१. मरगजी पीक लीक [२, ३]।

अथ मध्या लच्छनं

लाज अनंग समान अँग, जा तिय कें दरसाइ।
ताकौ मध्या नायका बरनत है कबिराइ ॥४१॥

यथा कवित्त

पाय परजंक पै धरत हरषत अंग,
पै न छिनु छाती धकधकी कौं तजति है।
ललकै चकोर नैन चंद मुख देखिबे[1] कौं,
आड़ी होति ललकै लई धौ कौन गति है।
बेर बेर कहा कहौं आपनौ सुभाव आली,
बैननि हूँ नेकु न ढिठाई उपजति है।
सौमनाथ सुंदर गुबिंद उर लागिबे कौ,
प्रान लरजैं तौ आनि लाज बरजति है ॥४२॥

अथ मध्या कौ सुरतांत यथा सवैया

भरि लीनि भुजानि में चदमुखी,
नँदनंद हियै लपटाइ रही।
कटि कंकिनी को धुनि तें रसना,
दसनावलि बीच दबाइ[1] रही।
पिय चूँमें कपोलनि त्यौं तरुनी,
पिय कौ मुख चूँमि लज्याइ रही।
अलि यौं रति दंपति की अवलोकि सु,
हौं बिन मोल बिकाइ रही ॥४३॥

अथ मध्या कौ सुरतांत यथा सवैया

अँगिराइ हरे बतराइ खरी,
मुसिक्याइ कें नैन नचावति है।

---

१. दुराइ [१, २, ३]।

सद पीक कपोलनि पोंछि वधू,
दसनावलि दाग दुरावति है।
ससिनाथ सनेह सँकोच के फंद,
परी मन कौं वहरावति है।
मिलि सोइ सकै न सुजान के संग,
उतै न इतै फिरि आवति है ॥४४॥

अन्यच्च

बीति सब रैनि नभ निबरीं तरैयाँ और,
चहकी चिरैयाँ चारु विधि लै अनंद की।
सोमनाथ कहै अलिपुंज गुंजै मंजरीनि,
फैली अरुनाई अरुनोदय अमंद की।
अंग अरसानें, रंग नैन सरसानें, मंग मुकता
सिरानें, गति जीति काम दंद की।
कीनें हित छंद अब छोड़ौ नंदनंद पिय,
फूले अरबिंद मंद भई दुति चंद की ॥४५॥

अथ प्रौढा लच्छनं

केलि कला में अति चतुर, रति अरु पति सौं हेतु।
मोहि जाइ आनंद तें, प्रौढा बरनि सुचेतु ॥४६॥

यथा कवित्त

सुंदर सरस केलि मंदिर में चंदमुखी,
प्रीतम के संग रति रंगहि करन लागी।
आनँद तरंग अंग अंग तें उठत नीकें,
सौमनाथ यौंही सब रैनि निवरन लागी।
तऊ छिन बिछुर्यौ न चाहै रति चाहै चित,
श्रुत अरबिंद ते सुगंध निकरन लागी।
चौंकि हहरानी अरुनोदय ललाई हेरि,
प्यारी के वदन पियराई उघरन लागी ॥४७॥

टीका—प्रात भयौ जान्यौ ॥

अथ आनंद संमोहवती प्रौढा

यथा सवैया

बिथुरी अलकावलि आँनन पै मुकतालि बनी श्रम के जल की।
अँग अंगनि के गहनें भए चूर सखी छबि छीन लखी बल की।
ससिनाथ सुजान के संगम तें भरि आनँद सौं छतिया छलकी।
न रही सुधि रंचक मोहिं कछू फिरि अचल को न दृगंचल की ।।४८।।

अथ प्रौढा कौ विपरीत सुरत

यथा कबित्त

अंक भरि लेति अति आनँद उमगनि सौं
　　किंकिनी झनक विजै गान सुर से भरति।
अलकें बिथुरि छाईं उरज उतंगनि पै
　　अंग रतनावलि उचटि छित पै परति।
झूमि झूमि चूंमति कपोल नैन चायनि सौं
　　सौंमनाथ बिहसि बिलोकि हिय कौं हरति।
मैन मतवारी इंदुमुखी, मनि मदिर में
　　प्रीतम के संग रति रंग रुचि सौं करति ।।४९।।

अथ प्रौढा को सुरतांत यथा कवित्त

अधखुली पलकैं अलक लटकति मंजु
　　चंदमुख निकट भुवगनि भुलानी सी।
मरगजी सारी अंग भूषन कहूँ के कहूँ
　　पाछै संग सोहति सहेली अरसानी सी।
डगमगी डगें निसि जगी कहि सौमनाथ
　　झलकें कपोलनि में पीक सुखदानी सी।
ऐंडि अँगिराति औ जभाँति मुसिक्याति बाल
　　मंद मंद आवति पुरंदर की रानी सी ।।५०।।

मध्या प्रौढा तियनि के, मान समै के भेद।
त्रिविधि जानियौ प्रगट करि, बरनत हौं तजि खेद ॥५१॥
धीरा और अधीर पुनि धीराधीरा जानि।
रोस प्रकासै ब्यंगि सौं, धीरा सो पहिचानि ॥५२॥
प्रगट रोस जो करै सो समझि अधीरा मित्र।
धीराधीरा गुप्त कछु प्रगटै रोस चरित्र ॥५३॥
इनहूँ मै कछु भेद अनूप ।। इमि उर आनौ तिन कौं रूप ॥
नायक कौ अपराध समेति। लखियै बिधि उपजति चित चेति।।५४॥
वक्र उक्ति करि ब्यगि सों, रोस जु प्रगटै नारि।
मध्या धीरा ताहि कहि, बरनत चतुर बिचारि ॥५५॥
बानी कहै कठोर सो मध्याधीरा होइ।
धीराधीरा नैन भरि बचन कहै रिस भोइ ॥५६॥

अथ मध्या धीरा वक्रोक्तिप्रधान

यथा कबित्त

ग्वालनि के संग बन बीथिनि भ्रमे हौ तातें
अग अग स्वेद जल कन सगबगे है।
खेल ही में विमल बिभावरी बिहाँनी वही
आलस तें पग हू परत डगमगे है।
सौमनाथ अलबेले पेच सरसत आछे
कैसे मुखचद के वनाउ जगमगे है।
जाँनति हौं मौहन सुजान रावरे के नैन
मेरेई अनूप अनुराग रंगमगे है ॥५७॥

यह सब वक्रोक्ति ब्यंग है ॥

अथ मध्याधीरा कठोर वचनप्रधान

यथा सवैया

कुंजनि में तुम जागे सबै निसि नैन हमारे भए रतनारे।
प्रीतम पान कियौ मधु[1] कौ तुम घूमत है अति प्रान हमारे।

---

1. मद [३]।

पाए भलें तुम श्रीफल वे ससिनाथ सुरग महा रसवारे।
नाहक मो अँग श्रँग अनंग नें पावक बाननि सौं दहि डारे ॥५८॥

टीका—यहाँ 'नाहक' शब्द कठोर है और सब प्रगट है ॥

अथ मध्या धीराधीरा सरोस सजल नेत्र प्रधान

यथा सवैया

सब को मन राखत ही पन सों निठुराई सु अंतर तें रितई।
गुन मंदिर सुंदर और ही तें अपनो रस रीति सदा जितई।
ससिनाथ बसंत की रैनि इहाँ हम चंद सों जौहर कै बितई।
इतनी कहि चंदमुखी पिय सौं अँसुवा भरि कै तिरछें चितई ॥५९॥

टीका इहाँ द्वै तुक में धीरा द्वै सें अधीरा है।

अथ प्रौढा धीरा लच्छनं

उदासीनता रति समै प्रगटे कोप चरित्र।
प्रौढा धीरा ताहि कहि बरनत परम विचित्र ॥६०॥

यथा सवैया

यह बैठि कै औरहि भाँति कछू बतराति नही नित ज्यौं चित चोरि।
सुबनाइ बिरी न खवाइवी है, सु निहारिवी है न अजौं द्रग जोरि।
ससिनाथ कहै सु वै साज[1] सजे न, रची अँगिरानि[2] नई तन तोरि।
नहिं जानियै तौ तुव रोस रती जु हँसी करती न सखी मुख मोरि ॥६१॥

अथ प्रौढा अधीरा लच्छनं

तर्जन ताड़न करि कछू, करति जु कोप प्रकास।
प्रौढ अधीरा ताहि कहि, बरनें कबि सविलास ॥६२॥

टीका—तर्जन कहियै वचन सौं नेत्र सौं डाटिबौ ॥
और ताड़न फूल माल सौं मारिबौ बाँधिबो ॥

यथा सवैया

आए जऊ निज मंदिर मैं मन की गति अंत तऊ अनुरागी।
प्यारी बुलाइ लई ससिनाथ सु आइ गई बिरहानल दागी।

---

१. सब साज [३]। २. अँगियान [३])

प्यारे की आँखिनि में अपनो प्रतिबिंब निहारत रोस मैं पागी।
जानि कें और तिया भ्रम सौं भुकि भावन कौं समुझावन लागी ।।६३।।

टीका—यहाँ 'झुकिबौ, दरदुरायबौ जानियैं ॥

अथ प्रौढा धीराधीरा लच्छनं

उदासीनता रति समै और तर्जना सग।
प्रौढा धीराधीर यौं बरनौं पाय प्रसंग ।।६४।।

यथा सवैया

प्रीतम पाँइ दियौ परजंक पै चंदमुखी निज ग्रीव लै फेरी।
नेंक हसौंहै कपोल भए पति कीन्ही जबै बिनती बहुतेरी।
हाथ सों ठोढी छुई ससिनाथ कहावन को रस रीति यहै री।
भौंह तनेनी करे तरुनी तब तेह भरी अँखियानि सों हेरी ।।६५।।

अथ जेष्ठा कनिष्ठा लच्छनं

जहँ विवाहिता नारि द्वै, बढि घटि हित अनुमान।
क्रम तें जेष्ठ कनिष्ठिका, बरनत तिन्हें सुजान ।।६६।।

यथा सवैया

बन केलि के कुंज में राजत हे जग की छबि आनि कें भाल छई।
तिय द्वैन के संग सुजान बिलोकत सोभा बसंत बिसाल नई।
इहि औसर एक सौं डीठि चुराइ कें कंठ तें प्यारी कौ लाल दई।
ससिनाथ गुलाब की माल वुही लखि दूसरी कै दृग साल भई ।।६७।।

इति श्री मन्महाराजकुवार श्री प्रताप सिंघ हेतवे कवि सौमनाथ विरचिते
रस पियूष निधौ स्वकिया भेद बर्ननं नाम अष्टमरतरंगः ।।८।।

१. जिहिं] २]।

अथ परकीया लच्छनं

करै नेह परकंत सों, दुरादुरी जो नारि।
ताहि परकिया कहत है, पंडित लोग विचारि ॥१॥
परकीया के भेद द्वै, एक परोढा जानि।
कहत अनूढा दूसरी, रसिकनि कौं सुखदानि ॥२॥

छंद

विवाहिता सु परोढा जांनि।
अनव्याही सु अनूढा मांनि॥
ऊढा कवहुंक सखि सौं कहै।
सब विधि छिपी अनूढा रहै ॥३॥

अथ ऊढा परकीया यथा

जानति मैं तुम चाहत हौ अखियां ए अनोखी रहौ ललचाइ हैं।
है ससिनाथ दुरेई बचाउ, लखे तिय एक तें सौ कुल गाइहैं।
गोकुल मैं कुल मैं चरचा भए फेरि न क्यों हूं कहूं पतियाइहैं।
रावरे कौ न कछू घटिहै, अपलोक लगें हम ही पछिताइहै ॥४॥

अन्यच्च

सुख पावत ज्यौं तुम त्यौं हम हूं कवहूं कतौ भूलि इतैवौ करौ।
दुरि दूरि ही दूरि रहौ अनतैं छिन से निसि द्यौस वितैवौ करौ।
चित दै कै सुजान सुनौ ससिनाथ सनेह की रीति जितैवौ करौ।
अँखियांनि कौ ताप रितैवौ करौ सु रती मुसिक्याइ चितैवौ करौ ॥५॥

अन्यच्च

सीतल पवन पुरवाई के परस नव वेलिनि,
की द्रुमनि सौं लगनि अछेह की।
तैसी चारु चंचला चमकि चहुँ ओरनि तें,
मोरनि कौ सोर सुनें[1] उमग अदेह की।

---

१. सुनि [१]।

सोमनाथ सुकवि निहारि हरषनि दुरि,
कान्हर सुजान सौं मिलन कुंज गेह की।
बिसरै अजौं न छिनु देह थहरनि आली,
नेह सरसनि और वरसनि मेह की ।।६।।

भेद परौढा के षट जानौं।
तिन के न्यारे नांउ वखानौं ।।७।।

दो०—गुप्ता मुदिता लक्षिता कुलटा बहुरि वखांनि।
त्रिबिधि अनुसयां जानि, पुनि दुबिवि[1] विदग्धा मांनि ।।८।।

अथ गुप्ता लच्छनं

भई होइ अरु होइगी, पुनि दोऊ सुनि मित्र।
सुरति छिपावै नारि सो, गुप्ता जानि विचित्र ।।९।।

जथा—लाउ गुलाब के फूलनि कौं हँसि,
वेगि जिठानी कही वलि जाउँगी।
डारनि सौं उरझ्यो अँचरा उहाँ[2],
अग र.ए छिलि कैसे भुलाउँगी।
सासु बड़ी है कहौ सुकहौ कहा,
औरनि के कहे हौं मरि जाउँगी।
आजु गई सु गई बिन जानें सखी,
फिरि वा फुलवारी न जाउगी ।।१०।।

अन्यच्च

आई सब अंगनि दुकूल सजिवे को बांनि,
मति हू न भूपन बनाए अलसाति है।
तुम ही वताओ जू परौसिनि हो प्यारी[3] न तौ,
औरनि के बूझिवे कौं वानी ललचाति है।
वेर वेर सुघर सहेलिनि पै सीखी तऊ,
कहा करौं तोखो कँगही सौं न वसाति है।

---

१. द्विबिधि [१]। २. तहँ [२, ३]। ३. प्यार [१]।

कबहूँक भूलें निज कर सों उरोजनि पै,
वारनि के ऐंछत खरोंट लगि जाति है ॥११॥

अथ मुदिता लच्छनं

सुनत बात मनभांवती, हरषें तिय के अंग।
परकीयतु[1] निरवाह तें, मुदिता कहि रस रंग ॥१२॥

यथा सवैया

सासु नें बोलि बहू सों कह्यो अपनें हिय के अभिलाषनि पूरति।
है यह भांवती आजु कौ नेगु अकेलियै पूजियौ गौरि की मूरति।
नाथ सुजान मिलाप की ठौर सुनैं हरषी तजि मैंन मरूरति।
औरै भयौ तन औरै भयौ मन औरै भए दृग और ही सूरति ॥१३॥

अथ लक्षिता लच्छनं

होइ प्रीति पर पुरुष सौं, सखी लखै पुनि वाहि।
ताहि लक्षिता कहत है ग्रथनि कौ मतु चाहि ॥१४॥

यथा कवित्त

आभरन अंबर सुरंग अग औरै भांति,
सौमनाथ आनंद उमगनि सौं खाँगी हौ।
आधी खुली पलकैं पसेउ कन झलकैं,
वदन फैली अलकें उतै हीं अनुरागी हौ।
तन तें कछू जु[2] बनो बन तें[3] सुजानी जाति,
मन तें रतीकु रति रन तो न भागी हौ।
अति ही सुभागी[4] वा हिये सौं हसि लागी आजु,
प्रेम रस पागी हौ सुजान संग जागी हौ ॥१५॥

---

१ परकियत्व [२, ३]।
२. कछूक [१]। ३. उन तें [३]। ४. सभागी [१]।

अन्यच्च

आलस वलित दरसत अँग अंग प्यारो,
जीतै गति समद मतंगनि के हलकनि ।
मरगजे बसन सुरंग रति रंग वारे,
सरसति सौंधे की तरंग संग अलकनि ।
सोमनाथ मोहन कौं नेह प्रगटत नैंन,
ऐंन उघरै नए बरन वैन बलकनि ।
धरकत हीक नखलोक कुच कंदुकनि,
अजहूँ अलीक झलकति पीक पलकनि ॥१६॥

अथ कुलटा लच्छनं

अंग अंग में सरसई अति अनग की होइ ।
तृप्ति न पावै भोग तें सो कुलटा चित टोइ ॥१७॥

यथा सवैया

ठाढी रहै कुछ अंचल खोलिकै कौंन धौं आनि सुभाउ पर्‌यौ है ।
लोक हूँ लाज लुटाइ सकेलि के दौरि ढिठाई में पाँउ धर्‌यौ है ।
ए ससिनाथ कहा कहियें बिधि नें रचि याकें अनंग भर्‌यौ है ।
बाट को कोऊ न लोग बचै सिगरौ इनि गाँउ खराब कर्‌यौ है ॥१८॥

अथ त्रिविध अनुसयना लच्छनं

बिनसत लखि संकेत थल, हिय उपजावति खेद ।
प्रथम कहत कबि लोग सो, अनुसयना कौ भेद ॥१९॥

यथा सवैया

फेरि सँवारि लगाऊं इन्हे यह जानि सु कोऊ लग्यौ निरवारन ।
खेर पराइ बसाइ कहा[1] ससिनाथ लगी यों विचार बिचारन ।
राखियै याहि बनाइ[2] कै धाम ए आइहै काम अनेक विहारन ।
चंपक बागहि टूटत देखि भयौ तिय कौ हिय टूक हजारन ॥२०॥

---

१. कहौ [३] । २. बताय [३] ।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

होनहार सकेत कौं, उर में करै विचार।
अनुसयना कौ भेद यह, दूजौ समुझि उदार ॥२१।

यथा कवित्त

फूलि फूलि बेलि लपटानी द्रुम डारनि सौं,
झूमि झूमि रहे चहूँ ओर फल पुंज हैं।
ठौर ठौर कोकिल कलापी कल कूजैं अति,
सौमनाथ मजु मंजु भौंरनि की गुंज है।
सीतल सुगंध मंद बहति बयारि तैसी,
परसे तें होति विरही की गति लुञ्ज है।
मित्र मिलिबे की मति चितति अचेत भई[1],
वृंदावन भावती घनेरो इमि कुंज हैं ॥२२।

अथ तृतीय भेद अनुसयना लच्छनं

मित्र जाय संकेत में, आपु न पहुँचै नारि।
सोचु करै पछिताइ सो, तीजौ भेदु निहारि ॥२३॥

यथा कवित्त

अलबेली पाग, झीनें झगा में लसत अंग,
पीत पट बाँधे कटि, निपट हसौहें रुख।
जगमगें मनिमय कुंडल श्रवन और,
मद गति आवत बढावत अनंत सुख।
सौमनाथ सुदर सघन वनमाल कठ,
मुरली सुनाय चारु, चित के हरत दुख।
लखि यौं[2] गुपाल मित्र परम रसाल बाल,
मनमथ जाल उरझानी मुरझानी मुख ॥२४॥

टीका—इहाँ मुख मुरझायबे तें संकेत में न पहुंचिबे की चिंता अरु दुख व्यंगि।

---

१. होय [२]। २. लखि कै [३]।

अथ द्विविध बिदग्धा लच्छनं

करै चतुरई बचन में, बाकबिदग्धा जानि।
रचै चतुरई क्रिया में, क्रियाविदग्धा मानि॥२५॥

वाकविदग्धा यथा

ठाढी बतराति इतराति हो परौसनि सों[1],
जैसी तिय दूसरी न पूरब पछाँही में।
डीठि परि गए तहाँ सुंदर सुजाँन कान्ह,
औचकही प्रगट पछीति परछाँही में।
सौमनाथ त्यों ही प्रानप्यारे कौं सुनाय कह्यौ,
तिय ने सखी सों तरुनाई की उछाँही में।
बंसी बट निकट हमें तू मिलियौ री काल्हि,
कातिग[2] में न्हाऊँगी तरैयनि की छाँही में॥२६॥

अथ क्रियाविदग्धा यथा सवैया

सावन में सुख के सरसावन मेघ रहे दसहूँ दिसि छाइकैं।
सो छवि हेरति ही अलवेली गई मिलि लाल सौं डीठि मुभाइकैं।
सैननि ही रति मानी सबै वतरात में मंद हँसी ढिग आय कै।
गायबे कैं मिस वाल रसाल गुपाल बिदा किए माल फिराय कैं॥२७॥

इति परोढा परकीया

अथ अनूढ़ा

यथा सवैया

खेलति ही सखियाँनि के संग में प्रेम रसै अवरेखन लागी।
आपनी छाँहहु तें डरपै यों कलंक अतंकहि लेखन लागी।
आए तही ससिनाथ सुजॉन मनोमय मूरति पेखन लागी।
तौऊ रह्यौ न पऱ्यो छल सौं दृग कोरनि ह्वै दुरि देखन लागी॥२८॥

इति परकीया भेद

---

१. तें [२]। २. कातिक [२]।

अथ सामान्या लच्छनं

प्रेम न काहू सौं तनक, धन ही सों अति प्रीति।
तन मन बचन निलज्जता, वारबधू की रीति ॥२९॥

यथा सवैया

साजि सिंगारनि पौर बिराजि कै लागी चहूँ दिसि सैननिताननि।
आइकै त्यौं ही घने रसियानि की बात सखी नें कही मिलि काननि।
जान्यौ महा धनदायक ताहि लुभाइ बुलाय लयौ लखि आननि।
लै गई सेज पै मंदिर में सु लगी अति आनँद सौं रति ठाननि॥३९॥

इति श्री मन्महाराज कुवार श्री परताप सिंघ हेत कवि सौमनाथ बिरचिते रसपियूपनिधौ परकीया सामान्या बर्नंनं नाम नवमस्तरंगः॥६॥

अन्य सँभोग सु दुःखिता द्विविधि, गर्विता और।
मानवती सामान्य तिय एऊ कहि कविमौर ॥१॥

अन्य संभोगदुःखिता लच्छनं

जा कामिनि सौं पिय रमै, ताहि लखै मुरझाइ।
अन्य सँभोगसुदुखिता तन मन दुख अधिकाइ ॥२॥

यथा कवित्त

लाउ सुजान कौ केलि निकुंज में,
बोलि यौं बाल सुधा बरसानी।
ह्वाँ उन सों रुचि सो रमि कै,
सु घरीक में आय महा अरसानी।
ज्योंही सखी के कपोलनि मांझ,
तमोर की लीक लगी दरसानी।
बैरी भए रँग रंग के फूल,
अनंग की हूल हिएँ सरसानी ॥३॥

अथ द्विबिधि गर्विता लच्छनं

गर्व करै पिय प्रेम कौ, प्रेमगर्विता सोइ।
करै गर्व जो रूप कौ, रूपगर्विता होइ ॥४॥

अथ प्रेमगर्विता

यथा सवैया

भोर भएँ घर में मँड़रात सु लाज तें सामुहे नाहि चह्यौ परै।
पाँइ छिनौं भरि छेउ तऊ परसें न मनोज कौ तेज सह्यौ परै।
एक या जीभ ही सौ ससिनाथ सुजान सनेह कहाँ लौं कह्यौ परै।
मो सों कहैं निरखे विन तोहि सु मोहि घरी भरि हू न रह्यौ परै ॥५॥

अथ रूपगर्विता

यथा कवित्त

मंदिर की दुति यो दरसी जनु रूप के पत्र अलेखन लागे।
हौं गई चाँदनी हेरन कौं तहँ क्यौं हू घरीक निमेष न लागे।

डीठि पर्‌यौ नयौ कौतिग[1] ह्वाँ ससिनाथ जू यातें बड़े षन लागे।
पीठि दै चंद की ओर चकोर सबै मिलि मो मुख देखन लागे ॥६॥

अथ मानवती बर्ननं

आदौ मान बर्ननं

सापराध पिय कौ निरखि, अनख जु उपजतु आइ।
ताही कौं[2] सब मान कहि बरनत है कविराइ ॥७॥

अथ मान भेद

तीनि भाँति सों मानु है, लघु मध्यम गुरु जानि।
अब तिन के लच्छन कहतु, रसकनि कों सुखदानि ॥८॥

अथ लघु मान बर्ननं

परतिय को निरखत लखै, जब निज पिय को नारि।
उलहतु है लघु मान तब, तिय के हिय निरधारि ॥
रंचक खेल बिलास में छूटि जातु लघु मानु ॥९॥

यथा सवैया

लाल की ओर सों डीठि मिली लखि कामिनि कें रिस बाढी बनाइकें।
बैठि रही अति भौंह चढ़ाइ कही ससिनाथ सुजान यौं आइकें।
भावती तेरे समीप बिना छिन हूँ न कहूँ बिरम्यौं सुख पाइकें।
यों सुनि भोरी मरोर बिसारि गुपाल त्यों गोरी तकी मुसिक्याइकें ॥१०॥

अथ मध्यम मान लच्छनं

और नारि को नाँउ जब पिय मुख सौं सुनि लेइ।
प्रगटतु मध्यम मान तब प्रीतम कौं श्रम देइ ॥
झूठी साँची सौंह तें मध्यम मानु प्रयानु ॥११॥

यथा कवित्त

दंपति ज्यों सेज पे निसंक बतराने त्योंही
पी के मुख[3] काहू बनिता को नाउँ कढ़िगो।

---

१. कौतुक [३]। २ ताही सों [१]। ३. मुख तें [१]।

सुनत हीँ पीठि दै मरोर गहि बैठी ऐँठि
तनक में तनगि तनेंनो त्योर चढ़िगो।
सोमनाथ प्यारे कह्यौ सौंह सरसाइ मोहि
भूलि गई सुधि तेरे मोह सोई मढ़िगो।
छूटि गई रिस हरि कठ सौं लिपटि लागी
आपुस में अंगनि अनंग रंग बढ़िगो ॥१२॥

अथ गुरु मान लच्छनं

और नारि तें कंत के प्रगटे चिन्ह निहारि।
होतु महा गुरु मान तव तिय के हिएँ बिचारि ॥
तब छूटतु गुरु मान जब प्रीतम परसतु पाइ ॥१३॥

यथा सवैया

रति चिन्ह लिएँ पिय आए निहारि तिया रुख रूखौ रिसाइ कियौ।
मन मांनवती पहिचानि सुजान हरेँ हरवा दरसाय दियौ।
ससिनाथ कहै न मनी तनकौ, जब ही हरि फूल सों[1] पाइ छियौ।
तब चंदमुखी मुसिक्याइ लज्याइ कें भांवतौ कंठ लगाइ लियौ ॥१४॥

इति श्री मन्महाराज कुवार परताप सिंघ जी हेत कवि सौमनाथ विरचिते
रसपियूषनिधौ मांन मांनमोचन वर्ननं नामं दशमस्तरंगः ॥१०॥

---

१. फूल सों [१]।

अथ स्वाधीनपतिकादि नायिका बर्नंनं

स्वाधिनपतिका खंडिता, कलहतरिता जांनि।
विप्रलब्ध उतंकठिता, बासकसज्जा मांनि ॥१॥
अभिसारिका अनूप अरु, प्रोषितपतिका बाल।
प्रवत्स्यत्पतिका आगमिष्यतिपतिका पुनि लाल ॥२॥

अथ स्वाधीनपतिका लच्छनं

जाकें प्रीतम होय अधीन।
सो स्वाधिनपतिका परवीन ॥२॥

अथ मुग्धा स्वाधीनपतिका

यथा

मुख देखतु ही रहे चाइनि सों, हित की वतियांनि के ढार ढरै।
अँखियानि में अजन दे मुसिकाइ, हिऍ मुकतांनि के हार भरै,।
ससिनाथ सुजान समौं पहिचांन अनार घनें रचि थार धरै।
पिय क्यों इतनो नित प्यार करै अलबेली सखी सौ विचार करै ॥४॥

यहाँ अयानता प्रगट है।

अथ मध्या स्वाधीनपतिका

यथा

सरसाए दुकूल सुगंधि सौ सानि, सवै रति मंदिर वास रह्यौ।
रँग रँग के अंग अनूप सिंगारि सिंगार निहारिकें मोद लह्यौ।
पुनि बीरी खवावतहू ससिनाथ सुजान सौ प्यारी कछू न कह्यौ।
जब लावन लागे महावर पाय तवै मुसिक्याइ के हाथ गह्यौ ॥५॥

अथ प्रौढा स्वाधीनपतिका

यथा

दोऊ संग सीसे कौ महल अवलोकैं मानौ
उदै भए सुंदर अनेक[1] पून्यौ चंद है।

---

१. अनूप [२]।

प्यारी धरै पाय तहाँ प्यारौ अरविंद राखै
भाखै मृदु वैन अरु नाखै दुख दंद है।
वीजना डुलावै श्रम जानि कहि सोमनाथ
उनके उन्ही पै बनि आवै हित छंद है।
आँखनि मैं आनी तौ बखानी आजु तेरी सौंह
राधा ठकुरानी जानी चेरो नंदनंद है ॥६॥

अन्यच्च

कवित्त—जगमगै मनिमय मंदिर बिलद जाहि
चंद रबि किरनि सुधारिबौ करत है।
सुंदर गुविंद वृषभाननंदिनी के संग,
तहाँ नेह नीति निरधारिवौ करत है।
सौमनाथ सहित सुरेस के समाज लाल,
आरती सी नैननि उतारिवौ करत है।
विरह बिसारि अंग भूपन सिंगारि, मन
वारिबौ करत है बिहारिवौ करत है ॥७॥

अथ परकीया स्वाधीनपतिका

यथा सवैया

न्हान जौ जाय[1] तौ संग सखी बनि पाँवड़े पाँवरी के करिवौ करै।
केसरि लाइ सँवारि कै आड़ निहारिकै नेह नदी तरिवौ करै।
जौ ससिनाथ न डीठि परै कुल कानि ते नारि कछू डरिवौ करै।
तौ निसि बासर साँवरिया घर की नित भाँवरिया भरिवौ करै॥८॥

अथ सामान्या स्वाधीनपतिका

हरे पीरे लाल सेत बरन के फूलनि के,
रचि लावै हार झलकावै आनि अंग में।
सौंमनाथ कहै मुकतावलि अमंद और,
सब ही के आगें सु वनावै यह मंग में।

१, न्हाइवे धाय [१]।

चुटकी वजावै लखि पावै जौ जँभाति वह,
नेकु उर आनति न लालच तरंग में ॥
छोड़ि गृह काज के समाज सिरताज ह्वै,
निलाजि बनि रँग्यौ बार अँगना के रंग में ॥९॥

अथ खंडिता लच्छनं

आवै प्रीतम प्रात जब, राति अनत रति[1] मानि।
जा कामिनि के भवन मे, ताहि खंडिता जानि ॥१०॥

अथ मुग्धा खंडिता यथा

निसि अंत ह्वै आए प्रभात भएँ गति पाइनि औ‍र हौ पाइ लई।
ससिनाथ उनीदी झुकैं अखियाँ पगिया उनि फेरि बनाइ लई।
रति चीन्हनि पूँछति जानि सुजान हँसी मिस बाल भुलाइ लई।
कर चाँपि अमोल कपोलनि चूँमि भुजा भरि कंठ लगाइ लई ॥११॥

अथ मध्या खंडिता

यथा कवित्त

प्रात उठि आए काहू चंदवदनी कैं बसि,
सौमनाथ चार्‌यौ जाम जामिनि बिताइकै।
अरसात अंग पग धरत कहूँ के कहूँ,
आँखिनि में आछी अरुनाई लसी छाइकै।
या बिधि सुजान प्रानप्यारे कौं निहारत ही,
गई मुरझाइ हिएँ अनखु बढ़ाइकै।
तजि के[2] सुभाइनि के[3] भाइ अरविंदमुखी,
मैन सरसाई तरसानी सिरु नाइकै ॥१२॥

अथ प्रौढा खंडिता

यथा कवित्त

औरै उर माल भाल तिलक रसाल लाल,
हाल अवलोके एजू प्रान ललक्यौ परतु।

१. अंत रित [१]। २. तजि वे [१, २, ३]। ३. सुभाइन कौं [१]।

मरगजे बसन लसतु नीकौ नील पट,
हँसनि अनूठी नीठि बैन वलक्यौ परतु।
सौमनाथ प्यारे सौंहै इत पै करत सौहैं,
अरसौंहें अंगनि तें स्वेद झलक्यौ परतु।
जहाँ निसि जागे रस पागे तिन ही कौ लाल,
नैननि ह्वै आजु अनुराग छलक्यौ परतु ॥१३॥

अन्यच्च

उत ही है मन यातें सूधे न परत पग,
अंग अरसात भुरहरें उठि आए हौ।
रगमगी अँखियाँ अनूप चित चोरें लेति,
सौमनाथ आछे यहि रूप लखि पाए हौ।
हम सौं तौ बिहसि बिलोकिबौ बिसार्यौ पिय,
सबै बिधि उनही के हाथनि बिकाए हौ।
काहे कौं नटत वेई बैननि प्रगट होति,
अनुराग जिन कौं लिलार धरि लाए हौ ॥१४॥

अन्यच्च

स्याम घन बरन, बसन तन मिलि रह्यौ
रस बरसन हार चहूँ दिसि छाए हौ।
सौमनाथ कहै सुरचाप सो बिराजै मंजु
मुकुट, बचन गरजनि लपटाए हौ।
कुंडल चमक चमकनि चंचला की चारु
चंद्रबधू जावक लिलार लहि पाए हौ।
को न हरषत रूप रावरौ लखत आजु
सब अंग पावस गुबिंद बनि आए हौ ॥१५॥

अन्यच्च

पलकनि पीक लीक अजन अधर नीक
नैननि के रंग पै मजीठि निदरति हौं।

तिन हो सौं अंक भरि विहरी निसंक जिनि
अंकित करी यौं भुज हेरति डरति हौं।
सौमनाथ सुनिए सुजान वहुरंगी, हौं
निहोरि कर जोरि कोरि विनती करति हौं।
तुम मेरे हिए में सुखद सरसत वह
रावरे हिए में यातें वोझनि मरति हौं ॥१६॥

अन्यच्च

नीकी वह वाल अलवेली भुज वेलिनि सौं
छतियाँ लगाए जिनि मोद उमगंत मैं।
विन गुन हार कंठ राजत उदारु चारु
आवत झुकत पल आलस लसंत मैं।
सौमनाथ सुंदर सुजान विनु हेरे नैन
पावत न चैन कीने जतन अनंत मैं।
मेरौ मनु तुम सौं निरंतर[1] है कंत तुम
अंत विहरौ तौ कहा वसु है वसंत मैं ॥१७॥

अथ परकीया खंडिता

यथा सवैया

कहि कें इत झूठ उहाँ उन सौं मिलि कें निसि में रस रीति करी।
अव भोर भए उठि आए दुरें दुरें वातनि ही सौं सप्रीति करी।
ससिनाथ सुजान हौं रावरे सौं[2] सव ही त्रिधि आपनी जीति करी।
हम हीं यह लाल अनीति करी तुम सौं विन जानें जु प्रीति करी ॥१८॥

अथ सामान्या खंडिता

यथा सवैया

कोपा कलोलनि मैं अटक्यौ सु वस्यौ निसि अंत वियोग निवारि कें।
प्रातहि आइ गयौ अरसात सवै कुल कानि की ओट उघारि कें।

---

१ निर अंतर [१]। २. रावरे जू [१]।

ए ससिनाथ जू या छवि सौं निजु यार निहारि रही मनु गारि कैं।
भौंह चढ़ाइ कैं बारबधू नें लियौ मुकता अवतंस उतारि कैं ॥१९॥

अथ कलहंतरिता लच्छनं

पति कौ अति अपमानु करि, फिरि पीछें[1] पछिताइ।
कलहंतरिता नारि सो, तन मन दुख सरसाइ ॥२०॥

अथ मुग्धा कलहंतरिता

यथा सवैया

क्यों यह रूठि कै वैठि रही वह कौन सी बात सुजानी न जाति है।
नाथ सुजान सिधारे मनाइ कैं औरनि हूँ की कछू न वसाति है।
मान्यौ अयाँनप तें न तवै अव कंज कली ज्यौं भली कुँभिलाति है।
लाजनि तें न बखाँनि सकै मन में परजंक परी पछितातिहै ॥२१॥

अथ मध्या कलहंतरिता

यथा सवैया

हरि तौ मनुहारि मनाइ गए जिन पै जियरा रति वारति है।
ससिनाथ मनोज की ज्वालनि सौं अव कुंदन सो तनु गारति है।
उठि लेटति सेज पै चंदमुखी पछिताइ कैं पौरि निहारति है।
न कहै मुख तें दुख अंतर कौ अँसुवानि सौं आँखि पखारति है ॥२२॥

अथ प्रौढा कलहंतरिता

यथा कबित्त

कौंन धौं कुमति उर आनि बनि बैठी जु मैं
ऐंठी प्रानप्यारे सौं बिसाहे उतपात हैं।
ताकौ फल पायौ मन भायो भयौ सौतिनि कौ
सोमनाथ बिरह भुलाए सुख सात हैं।
तव तौ न काहू सतराय समझायौ आनि[2]
दौरि दौरि ल्याँई जलजातनि के पात हैं।
मैं न मान्यौ प्यारे ब्रजचंद के मनाएँ, अब
चंद की मयूखनि फफोका[3] परे गात हैं ॥२३॥

---

१. पाछें [३]। २. उनि [१, २]। ३ फफोला [२]।

अथ परकीया कलहंतरिता

यथा सवैया

सासु के त्रास बिसारि[1] सबै उपहासनि हू तें निसंकनि हौं भई ।
लीक अलीक न जानी कछू ठकुरांनी कहाय सु रंकनि हौं भई ।
जा ससिनाथ सुजान के काज तजे सुख साज करंकनि हौं भई ।
री तिन सौं हित तोरि कै हाय वृथा ब्रज माँहि कलंकनि हौं भई ॥२४॥

अथ सामान्या कलहंतरिता

यथा सवैया

कंचन के परजकनि पै सु निसंक ह्वै ग्रासव सग पियो मैं ।
दौलति जाकी जवाहर के गहने सजि अंग प्रकास कियो मैं ।
जाके समान उदार अजौं धनदायक और लख्यौ न वियो मैं ।
हाय कहा कहौं भूलि सखी घर माँहि तें ताहि उठाइ[2] दियौ मैं ॥२५॥

अथ विप्रलब्धा लच्छनं

हरखि जाय संकेत में, पियहि न पावै नारि ।
दुखित होइ मन में सु वह, बिप्रलब्धि निरधारि ॥२६॥

अथ मुग्धा विप्रलब्धा

यथा सवैया

खेलिहैं लाल के संग चलौ कहि कैं उर मैं मति औरई ठानी ।
यों बहकाइ कै नेह बढाइ मयकमुखी रति मदिर आनी ।
ह्वाँ न लखे ससिनाथ सुजान कछूक तहीं ठठकी ठकुरानी ।
है न सयान रती भरि हू अलबेली तऊ हिय में अकुलानी ॥२७॥

अथ मध्या बिप्रलब्धा

यथा सवैया

तिय सुंदर अंग सिँगार सिँगारि सिधारी मनोज बिलास छई ।
प्रगटी मुखचद को जोति चहूँ दिसि फैली सरीर सुबास नई ।

---

१. विसारे [२] ।   २. रुठाइ [२] ।

ससिनाथ सुजान विना रतिमंदिर हेरि सखीनि के पास गई।
हिय केलिकला तें उदास भई अँखिया भरि भारी उसास लई ॥२८॥

अथ प्रौढा विप्रलब्धा

यथा कबित्त

उज्जल सरद चंद चंद्रिका अमंद दुति
त्रिविधि समीर की झकोर आनि फहरैं।
मुकुता अनिंद मकरंद के से बिंदु चारु
बदनारबिंद की छबीली छटा छहरैं।
साजि रंग रंगनि के सुंदर सिंगार प्यारी
गई केलिधाम दूजो जामिनी के पहरैं।
पेखि परजंक नंदनंद बिन सोमनाथ
लागी अंग उठनि भुजंग की सी लहरैं ॥२९॥

अथ परकीया विप्रलब्धा

यथा कबित

पूरि अभिलाष नंदनंदन के भेंटिवे कौ
छिपि कै सुधारी सब सूते जानि घर कै।
सूनी केलि कुंजै ह्वां निहारति ही हारि गई
नैन चंदमुखी के अनोखी आगि भर के।
सोमनाथ बरनै समीर तें दुरन लागी
बरुनी उमड़ि आँसू आनन पै ढरके।
तंग भए सुख, दुख संग भए एकै बार
अंग भए प्यारी के निषंग पंचसर के ॥३०॥

अथ सामान्या विप्रलब्धा

यथा कवित्त

साजि कै सिंगार बारअंगना उछाह भरी
पहुँची सहेट थान चैत सरवरी में।
निरख्यो न मीत ह्वाँ अनीति करी पंचबान
फिरी निज धाम को प्रकास अटकरी में।

सोमनाथ वरनै सखी सौं वतरानी इमि
घर तें विचारियौ इतै कौ डग करी में ।
कहा करौं मन की रही री मन ही में न तौ
लेती आजु गहने जवाहर के घरी में ॥३१॥

अथ उत्का लच्छनं

पिय आयौ नहि, कित रह्यौ, सोच करै यों वाल ।
ताको उत्का नायका, वरनत वुद्धि विसाल ॥३२॥

अथ मुग्धा उत्का

यथा सवैया

राजति केलि के मंदिर में सव साज सखीनि रच्यौ छविवारो ।
फैलि रह्यौ सु अमंद तहाँ मुखचंद को चंद हू तें उजियारो ।
लाज तें वूझि सकै न कछू तिय सोचु करै मन ही मन भारो ।
नाथ कहाँ रह्यौ आयो नही अवलौं नित संग विहारनहारो ॥३३॥

अथ मध्या उत्का

यथा सवैया

आधे अकास पै आयौ ससी चुपचाप चहूँ दिसि माँझ भई अति ।
नींद सौं नांहीं झुकैं अँखियाँ ससिनाथ सनेह विहाल करी मति ।
भूलि गए घर की सुधि कौं कि कहूँ रस[1] वातनि में विरमें पति ।
क्यौं नहीं आए कहा करियै तिय नारि नवाय सखीनि सों वूझति ॥३४॥

अथ प्रौढ़ा उत्का

यथा कवित्त

फूलिवे के भए अभिलाष अरविंदनि कै
वंदन वरन प्राची रूप दरसत है ।
हेरि हेरि हारे नैन पंथ चित चाइनि सौं
पाइनि परस विना प्रान तरसत है ।

---

१. रित [३]।

सौमनाथ क्यौं न आए अजौं अरबीले लाल
हंसनि के सबद-समूह सरसत है।
स्याम घन आजु सखी हरन[1] अनंग मन
कौन तिय अंगन में रंग बरसत है ॥३५॥

अथ परकीया उत्का
यथा सवैया

भूलि गए इत की सुधि कै चित में कछू औरई बानि बसाई।
खेलत ग्वालनि संग रहे है किधौं ससिनाथ लई निठुराई।
प्रीति करी कहूँ अंत किधौं डरपै अपलोक तें लाल कन्हाई।
क्यौं नही आए अजौं सजनी कहि मोहि भई रजनी दुखदाई॥३६॥

अथ सामान्या उत्का
यथा कवित्त

आवत बन्यौ न काहू[1] काज कौं सिधार्‌यौ किधौं
और बारबधू सौ सनेह सरसाई की।
परम बिचित्र काहू मित्र ने सिखायौ किधौं
मानी है अटक लोक लाज अधिकाई की।
काहे ते न आयो सो न जानियति बात रंच
कहाँ लौं बड़ाई कीजै वाकी चतुराई की।
खाली ह्याँ न आवतो कछूक धन लावतो री
योही गई रैनि आली आज की जुन्हाई की ॥३७

अथ वासकसज्जा लच्छनं

पिय आगम जिय जानि कें साजे सेज सिंगार॥
वासकसज्जा नारि सो, निरखै रति-गृह-द्वार ॥३८॥

अथ मुग्धा वासकसज्जा यथा

सखियाँन सिंगार सिंगारे सवै बिहसें रति की दुति धारति है।
मन मांझ नई बतियां सुनिबे कौं कछूक बिनोद बिचारति है।

---

१. हरत [२]। १. कान्ह [१]।

ससिनाथ सुजान को आइवो जानि बनी फुँफुदी कौं सँवारति है।
तिय नारि नवाइ विहारति है दुरिकैं पिय पंथ निहारति है ॥३९॥

अथ मध्या वासकसज्जा

यथा कवित्त

न्हाइ कै सुगंधित गुलाव सों वसन साजे
कुंदन तें दूनी दुति देह दमकति है।
राजति अनिंद इंदिरा सी कहि सौमनाथ
ताकी समता कौ लहि वानी क्यों सकति है।
फूल परजंक पै विछाए छवि छाए पिय
आगम विचारि कै उछाह सों छकति है।
सकुचै सखी सौं तऊ नेह की उमंग आएँ
काहू मिस खिरकी में आनि उझकति है ॥४०॥

अथ प्रौढा वासकसज्जा

यथा कवित्त

कंचन रचित मनि विद्रुम जटित भौंन
फटिक कपाट छबि छटा वरखति है।
तोरन अनंत मुकतनि की लसंति[१] जग-
मग दरसंति संत हियौ करखति है।
तामें परजंक पै बिराजति मयंकमुखी
सौमनाथ प्रीतम कौ प्रेम परखति है।
जानि नंदनदन को आगम अनंद भरी
प्यारी रतिमंदिर दुवार निरखति है ॥४१॥

---

१. मुकतामनि लसंति [२]।

अथ परकीया वासकसज्जा

यथा कवित्त

देवरानी ननँद सुवाइ एक ठौर दियो
दीपक घटाय सेवै मदन मरोर कौं।
अंबर सँवारि धरे नूपुर उतारि तऊ
दबकावै गहरी उसासनि के सोर कौं।
रंगभौंन सखी कौं सिखाइ कें बिछाई सेज
फूलनि के हार रचि राखे चित चोर कौ।
सौमनाथ प्रीतम कौ आगम बिचारि हेरै
बेर बेर बौरी लौं किवारनि की ओर कौं ॥४२॥

अथ सामान्या वासकसज्जा

यथा कवित्त

चाँदनी बिछाई चहूँ ओर घर आँगन मैं
तैसी फैलि रही तापै सरद जुन्हैया है।
बासित सुगंध परजंक रचि राख्यो तहाँ
लसे बारवधू परचित की चुरैया है।
बेर बेर डीठि पहुँचावै पौरि पार लगि
उर में उछाह सरसायौ रतिरैया है।
कहति सखी सौं आजु निसि ह्याँ बसैगो प्यारौ
पन को रखैया मोहरन को दिवैया है ॥४३॥

अथ अभिसारिका लच्छनं

पिय पै जाइ कि आपु ही पियहि बुलावै नारि।
ताहि कहत अभिसारिका, पंडित लोग बिचारि ॥४४॥

अथ मुग्धा अभिसारिका

यथा सवैया

नीके न्हवाइ गुलाब के नीर सरीर सिंगारे सखी त्रिय नें सब।
भीत भई हहरै हिय माँझ कहौ यह रंग लख्यौ पिय ने कब।

लाख जिठांनी की सौंह सुनें अति ही पतियारो कियौ जिय नें जव ।
भौंह चढाइ मरू करि कैं पति पास कौं पाइ दियौ तिय नें तव ॥४५॥

अथ मध्या अभिसारिका

यथा सवैया

चीर चिनौटिया चाइनि सौं चुनि कें पहर्यौ दुति चारु लसाति है ।
जाहि निहारत हीं सु भली विधि सौतिनि को मुख जोति विलाति है ।
चाहति बूझ्यौ सखीनि कछू रस रीति हिये मन मांझ लजाति है ।
नाथ सुजान समीप को वाल चलै ठठुकै मुरि कैं मुसक्याति है ॥४६॥

अथ प्रौढ़ा अभिसारिका

यथा कवित्त

साजि अभिसार चारु कंचन की डार सम
चली सुकुवारी प्रानप्यारी नंदनंद की ।
सुंदर दुकूल अंग सहज सुगंध संग
गुंजत मलिंद पूरि उमंग अनंद की ।
सोमनाथ भूषन अनंत जगमग होत
जीतति चलनि सुरपति के गयंद की ।
फैलि गई कुंज कुंज प्रति मंजु मंजरीनि
उज्जल जुन्हैया चंदवदन अमंद की ॥४७॥

अथ परकीया अभिसारिका

यथा कवित्त

स्वाइ निजु सेज पै सहेली चित चाइनि सौं
सजे स्याम अंबर सुघरता की थाती ह्वै ।
छोरि धरे नूपुर निकाई के निकेत अरु
कसि लीनी कंचुकी सुरूप सरसाती ह्वै ।
पाइनि सौं लोक-कुल-कानि कौं पछेलति सी
अंग अंग अति ही अनंग जुर ताती ह्वै ।
रंग करिबे कौं नंदनंदन समीप चली
अरविंदमुखी अनुराग रंग राती ह्वै ॥४८॥

अथ शुक्लाभिसारिका लच्छनं

सजि कैं सेज सिँगार तन जाइ जु निज पिय पास।
सौ शुक्ला अभिसारिका बरनत कबि सबिलास ॥४९॥

कवित्त

स्याम सटकारे बार फूलनि सौं गूँथि रचे
मोतिन के भूषन सरीर सुखदाई मैं।
सौमनाथ प्यारे पै सिधारी सुकुमारि प्यारी
मंद मंद चलनि सुरूप सरसाई मैं।
तेँहीँ[1] साज संग सहचरी चारु चाइनि सौं
चातुरी सौं कौतिक बिलोकति बिकाई मैं।
पैंड़ पाँच सातक अगौंही होत इंदिरा सी
मिलि गई बाल मुखचंद की जुन्हाई मैं ॥५०॥

अथ कृष्णाभिसारिका लच्छनं

भूषन बसन असित सजे, उर में भरे अनंग[2]।
पिय पै तिय जो जाइ सो कृस्ना कहि रस रंग ॥५१॥

कवित्त

मृगमद सार सब अंगनि लगायो आछैं
अतर बसायो नील अंबर उदार में।
छोरि दीनी बेंनी कसी कंचुकी तनेंनी करि
पैनी करी डीठि अति अंजन के ढार में।
सौंमनाथ कहै यो सिँगार सजि कंजमुखी
छिपि के सिधारी रजनी के अभिसार में।
कछू न सम्हार टूटे मनिनि के हार, करी
मदन सु मार मन नंद के कुमार[3] में ॥५२॥

---

१. तेई [३]।   २. अनंद [२]।   ३. कुवार [२, ३]।

अथ दिवाभिसारिका

यथा सवैया

छुटकीं रबि कीं किरनें अति तीछनि मानौ हुतासन झार झरें।
ससिनाथ बिनोद सौं आइ बसी छहिँयाँ तन पाय सुढार तरें।
इहि औसर पीत सिँगारनि साजि तिया हिय नेह अपार भरें।
जिहि कुंज में कान्ह बिहार करै सु चली तितही अभिसार करें ॥५३॥

और जो नायक कौं वुलावै सो

यथा कवित्त

उदै भयौ आठैं कौ निसाकर निसंक रंक
वैरी पंचसर नैं करी है वुधि बाउरी।
रुकी आवै छाती अति सीतल बयारि लागें
साहस रहै न परे अंगनि में घाउ री।
बिस भए वसन बसंत की विभावरी में
सौमनाथ ऐसौ अब और न उपाउ री।
साँची उर आनि जिनि ठानि छर छंद आली
आनँद के कंद नंदनंदन कौं लाउ री ॥५४॥

सामान्या अभिसारिका

यथा कवित्त

कुंदनै से अंग साजे बसन सुरंग सदा
घरहू में धरनी पै चरन धर्यौ ना मैं।
अतर तमोर विनु ठहरी घरी न सखी,
नैकु मुसिक्याइ कौन हियरा हर्यौ ना मैं।
सौमनाथ प्यारे पै चली यौं बतरात बाल
ऐसो पन काहू सग अव लौं कर्यौ ना मैं।
टेढी अलकनि सौं लपेटि मन प्रीतम कौं
ल्याऊँगी जराव जटे सुंदर तऱ्यौना मैं ॥५५॥

अथ पुरुषाभिसार

यथा सवैया

चारु निहारि तरैयनि की दुति लाग्यौ महा बिरहा तन तावन ।
ए ससिनाथ कहा कहिए उन सौं लगि नैन ही कंज से पावन ।
पीत दुकूल में फूलनि लै अलबेली के प्रेम की सिद्धि बढ़ावन ।
कान्ह दिवारी की राति[1] चल्यौ बरसानें मनोज कौ मंत्र जगावन ॥५६॥

अथ प्रोषितपतिका लच्छनं

जाकौ पिय[2] परदेस सो प्रोषितपतिका जानि ।
बिकल रहै तन मन बिषै पंडित कहत बखानि ॥५७॥

अथ मुग्धा प्रोषितपतिका

यथा सवैया

जा दिन तें परदेस गए हरि ता दिन तें परसै न अबीरहि ।
'नाथ' कहै सु इकंत में जाय सरोज के पात लगावै सरीरहि ।
लाज के जोर न बात कहै अँचरा सौं बचावति सीत समीरहि ।
जानतु है रतिराज भट्ट द्विजराजमुखी की बियोग की पीरहि ॥५७॥

अथ मध्या प्रोषितपतिका

यथा सवैया

मलयागिर घोरि लगावत ही सु मनोज सतावतु आइ उरै ।
हम सौं निज पीर वखानति पै झुकि पाइ त्यौं डीठि लजाइ मुरै ।
ससिनाथ मनोहर गाँउ गए जब ते तब तें न उपाइ फुरै ।
लखि चंद उदै अरविंदमुखी अलि मंदिर में नित जाइ दुरै ॥५९॥

अथ प्रौढा प्रोषितपतिका

यथा कबित्त

जा घरी तें व्रजनाथ मथुरा सिधारे आली
ता घरी तें तिय की दसा न बरनी परति ।

---

१. रैनि [१]। २. पति [२, ६]।

वेर वेर चौंकति कहति हैं जरी रो मरी
नीद भूख प्यास सुनि दूरि घरनी परति ।
लिपटी निपट विरहागि सौं उसासनि की
संग सखियनि कौऽव ओट करनी परति ।
घरनी तें सेज पै पलकु ठहरति नीठि
सेज तें पलटि प्यारी फेरि धरनी परति ॥६०॥

अन्यच्च

मौरे है रसाल नटसाल से द्दगनि लागें
पिक डरपावैं कैसी रीति या नगर में ।
सोमनाथ चारु चंद चंदन अवीर हू में
भीर वडवागि की सी चंद्रक अगर में ।
भूपन प्रकास उपजावै कोरि त्रास, रुकी
आवति उसास वा विलास के वगर में ।
तंत सुनि सखी क्यौं अनंत उपचार करै
कंत विनु को वचै वसंत की रगर में ॥६१॥

अथ परकीया प्रोषितपतिका

यथा सवैया

करिए दुरि कैं उपचार कछू तव आप कै सासु रिसाइ तहीं ।
ससिनाथ विदेस वै छाइ रहे अखियाँ ए वियोग के दाह दहीं ।
भरि लेति न साँस कहूँ गहरी वतिया दुख पाय कें साँचु कहीं ।
अव तौं व्रजनंद विना सजनी पति संगति मोहि सुहाति नहीं ॥६२॥

अथ सामान्या प्रोषितपतिका

यथा कवित्त

आवत अनेक और आवेंगे घने पै वैसें
कौन धौं रिझावैगी सुधा सी तान गावैगो ।
सोमनाथ फूलेनि के गहनें वनाइ चारु
अंग सरसावैगो अनंग उपजावैगो ।

राजि परजंक पै निसंक नित चाँदनी में
छतिया लगावैगौ बियोगहि बुझावैगो।
सुख कौ दिवैया वह प्यारौ परदेसनि तें
फेरि कब आवैगौ सखी री धन लावैगो ॥६३॥

अथ प्रवत्स्यत्पतिका लच्छनं

जाकौ पिय परदेस कौं चलनि कहै सुनि मित्त।
प्रवत्स्यत्पतिका नारि सो दुखी रहै चित नित्त ॥६४॥

अथ मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका

यथा सवैया

सजि अंबर आरसी हेरति है बतरानि लगी मुख हास छई।
अब हीं दिन द्वैक तें देखति हौं उपजी है मिलाप की आस नई।
ससिनाथ कछू न सयान हिएँ न अजौं सुख सेज के पास गई।
पति कौ चलिबौ सुनि बाम तऊ सु फिरै घर माँझ उदास भई ॥६५॥

अथ मध्या प्रवत्स्यत्पतिका

यथा कबित्त

जब तें भनक सुनी प्यारे के सिधारिबे की
तब तें न लावै अंग कुंकुम अगर कौं।
कछू न सुहाय अकुलानी उर अंतर में
बिलखी बिलोकैं बाम केलि के बगर कौं।
बेर बेर पूछति हितू सौं दृग नीचे करि
कैसें कैं निबाहौंगी मनोज की रगर कौं।
हाहा कहि आली तोहि मेरी सौंह कालिह कहा
साँचहूँ चलैंगे कान्ह गोकुल नगर कौं ॥६६॥

अथ प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका

यथा कवित्त

चलिवे की चरचा दुराइ राखौं चातुरी में
कीजै सुधि साँवरे मनोहर कलानि कौ।

बार बार बरजे गरजि पथिकनि कौं ए
बेगरज घन साखी कूक मुरवानि की।
सोमनाथ सुंदर समीर के परस हरे
हियै की मिलनि द्रुम ललित लतानि की।
पावस में निरखौ दिनेस दृग मूंदे रहै
बूँदें बिरही के मन बूंदें बदरानि की ॥६७॥

अथ परकीया प्रवत्स्यत्पतिका

यथा सवैया

काहू कह्यौ चलिहै परसौं परदेस गुविंद सखी गुघरी में।
सो सुनि कै सुख भूलि गए ससिनाथ सनेह बिहाल करी में।
सूल भए सब सेज के फूल प्रजोग जुन्हाई की जोति जरी मैं।
ह्याँ लगि सोच समूह भरी पति संग ह्वै सोवति चौंकि परी मैं ॥६८॥

अथ सामान्या प्रवत्स्यत्पतिका

यथा कवित्त

भली कीनी आए मनभावन बिदा कौं आजु
कर में कमान गहि बाँधि तरकसी कौं।
सोमनाथ लोगनि पढ़ी है निठुराई अजू
काहे कौं कसत हौ सनेह फंद फँसी कौं।
छोड़्यौ सब नगरु रची हौं एक साँवरे सौं
नैननि कौ चैन तो लखैगो मुख ससी कौं।
दीजै हित जानि रहठानि मेरे प्राननि की
उर सौं लगाइ राखौं लाल उरबसी कौं ॥६९॥

अथ आगमिष्यतिपतिका लच्छनं

आवत पिय परदेस तें सुनि हिय हर्ष बाल।
आगमिष्यतिपतिका सु वह बरनत सुकवि रसाल ॥७०॥

अथ मुग्धा आगमिष्यतिपतिका

यथा सवैया

रचि भूषन आइ अलीनि के संग तें सासु के पास बिराजि गई।
मुख चंद मयूखनि सौं ससिनाथ सबै घर मै छबि छाजि गई।
इन कौं पति ऐहै सवार सखी कह्यौ यौं सुनि कै हिय लाजि गई।
सुख पाइकें नारि नवाइ तिया मुसिक्याइ कै भौन मै भाजि गई ॥७१॥

अथ मध्या आगमिष्यतिपतिका

यथा कवित्त

पहरे दुकूल रंग रंगनि के अंगनि मैं
पाछिले विरह की सुरति बिसराई है।
उरज उमंगनि तो कंचुकी उकसि गई
आजु मुसिक्याइ के सखी सौं वतराई है।
सौमनाथ मदन सनेह रस भीनी डीठि
मौहन कौ रूप लखिबे को ललचाई है।
औरै छबि छाई बाल मुख पै सुहाई
देखि जब तें लला के आइबे की सुधि आई है ॥७२॥

अथ प्रौढा आगमिष्यतिपतिका

यथा सवैया

बाईं भुजा फरकै अचकाँ सरकै फुँफुँदी की फदी अति तंग है।
आजु सवार ही तें ससिनाथ सुहावने लागत बोल बिहंग है।
साँचहूँ जानि सुजान को आगम चोज सो होत उरोज उतंग हैं।
ही के हुलास तरंगनि ते कछु अँगनि अगनि और ही रंग है ॥७३॥

अथ परकीया आगमिष्यतिपतिका

यथा कवित्त

आली बहु बासर बिताए ध्यान धरि धरि
तिन ही को फल नैन दरसन पावैंगे।

होत हैं री सगुन सुहाँवनें प्रभात ही तें
अंगनि में निपट बिनोद अधिकावेंगे।
सौमनाथ हँसि हँसि बतियाँ अनूठी कहि
गूढ बिरहानल की तपति बुझावेंगे।
सबनि तें प्यारे पति, पतिहू तें प्यारे प्रान
प्रानहू तें प्यारे ब्रजपति आजु आवेंगे[1] ॥७४॥

अथ सामान्या आगमिष्यतिपतिका

यथा कवित्त

उज्जल अनूप नीर न्हाय के नगरनारी
पहरे दुकूल सरसानी रति वेस ते।
सौमनाथ कहै आछौ अतर लगायौ तैसी
छहरी सुगंध चारु चंपक सुदेश ते।
प्रात ही तै और रसिकनि कौं जबाब दीनौ
हँसति कहति वात निवरी कलेस तै।
संक तजि सुंदरी बिछाए परजंक आजु
धन कौ दिवैया सुनि आवतु विदेस तैं ॥७५॥

इति श्री मन्महाराज कुँवार प्रताप सिंह हेत कवि सौमनाथ विरचिते
रसपियूषनिधौ मुग्धादि स्वाधीनपतिकादि नायका
बर्नंनं नाम एकादस तरंगः ॥११॥

---

१. सबनि तें प्यारे प्रान, प्राननि तें प्यारे पति,
पतिहू तें प्यारे ब्रजपति आजु आवैंगे [२]।
सबनि तें प्यारे प्रान, प्रानहू तैं प्यारे लाल
नंद के दुलारे ब्रजपति आज आवैंगे [३]।

अथ उत्तमा नायका लच्छनं

पति अनहित हू करै तौ तिय जु करै हित भूरि।
सो उर आनौ उत्तमा सकल सुखनि कौ पूरि ॥१॥

यथा कबित्त

तिन ही कै संग रतिरंग करियै जू नित
नेंम ही सौं नीकै हित ठाँनें प्रान जिनमें।
भाँवती तुम्हारी[1] सो हमारी मनभाँवती है
सेवा ही के काज मोहि जानिए सखिन में।
सौमनाथ प्यारे रावरे की सौंह साँची कहौं
जुग से बिताए काल्हि एक एक छिन में।
साहिब के सुख सौं हमै हूँ सुख ह्वैगो एपै
दरस तौ दीजै एक बेर एक दिन में ॥२॥

अन्यच्च

मानु करिबे को तुम सीख सिखवति आनि
कासौं कहैं मानु कहि मान है री का को छौन।
हौं तौ ए चबाय कछु जानति न एकौ तुम
अपनी ढिठाई धरि राखौ अपनें ही भौन।
सौमनाथ प्यारे सौं बियोग ही की बात कहा
दीसति सयानी क्यौं अयानी होति गहौ मौन।
छिनु बिनु हैरें नित हरे से रहत प्राँन
भृकुटी मरोरि कै घरी लौं रूठि बैठे कौन ॥३॥

अथ मध्यमा नायका लच्छनं

हित अनहित जो करै तिय पति की रीति समान।
ताहि मध्यमा नारि कहि बरनत निपट सुजान ॥४॥

१, तिहारी [२, ६]।

यथा कवित्त

अरसानें गात अँगिरात उठि आए प्रात
जोति मुखचंद की प्रगट पतरानी है।
बरि रही अंग अंग बिरह दवागिनि सौं
अरबिंदवदनी निहारि कतरानी है।
अनमनी बानि पहिचानि पिय सोमनाथ
बिनती करत जब जीगें तुतरानी है।
बरसौंहैं नैन तरसौंहैं करि सौंहैं तब
मोहन सौं मन सौं बिहँसि बतरानी है ॥५॥

अथ अधमा नायका लच्छनं

करै प्रीति पति अति तऊ, तिय न करै हित रंच।
तासौं अधमा नायका कहत कबिन के पंच ॥६॥

यथा कवित्त

नाहक अनमनी ह्वै ऐंठि हठि बैठि रही
नीकें जनु ही तैं अति प्रीति रीति रितई।
कबहू न काहू को कह्यो सु उर आन्यौं जिनि
और ही तैं आपुनी निठुरता है जितई।
सोमनाथ याकी गति बरनी न जाति कछू
ऐसी तरुनाई यौं अधम ह्वै कै बितई।
खोई निसि नेह सरसावत सुजान तऊ
मृगनैनी नेंक मुसिक्याइ कै न चितई ॥७॥

अथ उत्तमा मध्यमा अधमा ए भेद सबनि मैं जानिए।
और फेरि दिव्य अदिव्य दिव्यादिव्य हू जानिए॥

देवतानि की प्रकृति सब दिव्य तिन्हें उर आनि।
है अदिव्य वे जिन बिपै प्रकृति मानुषी जानि ॥८॥

दिव्यादिव्यै तिन्हैं रामछि सुरनर प्रकृति समान।
लच्छन क्रम तें बरनि यौं उदाहरन परवान ॥९॥

अथ सखीकर्म कथनं

भूषन रचना, सीख, अरु उपालंभ उर आनि।
पुनि परिहासु सु चारि ए करम सखी के जानि ॥१०॥

अथ सिंगार करिबौ

यथा सवैया

ढिग आइ सु केसरि सों उबटाइ कें चाइ सौं नीकें न्हवाइ लई।
पुनि कान्ह सुजान के हेत रचे पट भूषन जोति जगाइ नई।
ससिनाथ कहे नव नारि निहारि सखी फिरि डीठि नवाइ गई।
अँचरा कौं बनाय उरोजनि पै मुसिक्याइ कैं बीरी खवाइ दई ॥११॥

टीका—इहाँ सखी नें सिंगार करि कैं देखि कैं डीठि नवाई या ते यह ब्यंग कि डीठि मति लगि जाइ।

अथ शिक्षा

यथा सवैया

नित सासु की सासन मानि हिएँ हित सों अति सीलता कों लहियै।
तरुनाई के लायक इंदुमुखी गुरुवाई[1] कछूक हिएँ गहियै।
ससिनाथ सुजान वे जानति मै उन सौं न रुखाई रती चहियै।
जिय भावती बात सदाँ कहियै पन सौं मन हाथ लिये रहियै ॥१२॥

अन्यच्च

घर घर दंपति सुरंग वसननि साजि
बिलसैं बिलास, लखि फागु चहूँ ओरी है।
सौमनाथ कहै मंजु बाजत मृदंग डफ
नारि नर नाँचत सुलाज गुन तोरी है।
तुम कहौ कौन की सिखाई सिख ठांनी आजु
तनक से तन रिस मनक बटोरी है।
उठि चलि मानि कह्यौ कितनौं निहोरी गोरी
भोरी ह्वै प्रगटि मनमोहन सों होरी है ॥१३॥

१. गरबाई [१]।

अन्यच्च

उतै स्याम घन तेरे घन से सघन केस
छुवति छवानि सोभा सीस छविवारे की।
उतै सुरचाप तेरे भृकुटी कुटिल प्यारी
उतै वग तेरे मुक्तमाल रूप न्यारे की।
उतै दुति दामिनि दमक तेरे भूषन की
बनी मेघमाला सी रसाल गुन भारे की।
रिस को भुलाइ वरसाइ रस आनँद सों
क्यों न काम तपति हरति कान्ह प्यारे की ॥१४॥

अन्यच्च

उनै आए बादर बिहंगगन गाइ उठे
त्रिविधि बयारि अंग कंपनि गहावनी।
वेर वेर प्रेम रंग राती चहूँ ओरनि तें
कौंधि जाति दामिनि मनोज उपजावनी।
रंच अरुनाई बारुनो दिसि विलोकियति
बन तें भई है बार मोहन की आँवनी।
आनँद वढावनी अटा चढ़ि निहारै क्यों न
साँवन की साँझ सब साँझन सुहावनी ॥१५॥

अन्यच्च

अंबर सँवारि अंग भूषन सिँगारि सुख
सेज पै बिहारि जो सुगंध सरसानी है।
पाँनदाँन वारी और चारु चौंर वारी मनु-
हारि करि हारी पै न कोऊ उर आनी है।
सौमनाथ भावते सुजान कौं निहारि अजौं
ही तें रिस टारि, पुनि एऊ अभिमानी है।
सीख सुखदाँनी मन मानि ठकुरानी, इहि
वानि पै विकानी सु अयान की निसानी है ॥१६॥

अथ उपालंभ लच्छनं

निंदा सहित बचन जो जानौ। उपालंभ कहि ताहि बखानौ ॥

अथ उराहनौ

यथा सवैया

ससिनाथ सुजान सों झूँठी करी अपनी हूँ कही की तौ लाज करौ।
समझाई हजारक बातनि[1] सों पिय के हित के नित काज करौ।
सु तुम्हें इतनों चित चेत कहाँ जु समौ लखि तैसौ समाज करौ।
बनवारी उहाँ अब रूठि रहे तुम बैठी अटारी में राज करौ ॥१७॥

अथ परिहास कहियै हँसी करिबो।
सखी कौ परिहास नायका सों॥

यथा कबित्त

भोर भयौ जानि के सुजान पति संगम तें
आनँद सौं राजी निज मंदिर में आइकैं।
अरसानें अंग रतिरंग रतनारे नैंन
मरगजे बसन रही है छबि छाइकैं।
सौमनाथ कहै अति छल सों बचाइ डीठि
दरसाई आरसी हितू नें ढिग जाइकैं।
देखि दसनावलि कपोलनि में लागी बाल
कुंदकली अली कें लगाई मुसिक्याइ कैं ॥१८॥

अथ नायक कौ परिहास नायका सौं

कवित्त

केसरि के नीर भरि राख्यौ हौद कंचन कौ
बसन बिछाए तापै जोन्ह की तरंग में।
सौमनाथ मोहन किनारे हीं उसरि आपु
ठान्यौ परिहास उर होरी की उमंग में।
आइ मनभांवती अनूप कँवला[2] सी बनि

१. हजारन बातक [१]। २. कमला [३]।

परयौ तहाँ चरन सहेलिन के संग में।
रँगी सब रग में निहारि[1] अंग अंग प्यारी
मंद मुसिक्याइ कै रँग्यौ है प्रेम रंग में ॥१९॥

अथ नायका कौ परिहास नायक सौं

यथा सवैया

होरी की रैनि हँसी करिबे कौ तिया हिय में पति सौं ललचानी।
मैन कौ एक अनार बनाय भर्यौ मुकतामनि सुंदरि स्यानी।
आए तहाँ ससिनाथ सुजान मनोहर केलिकलानि के ग्यानी।
साँच हू जानि छियौ बिन छंद तबै अरबिंदमुखी मुसिक्यानी ॥२०॥

अथ द्विविधि दूतीकर्म बर्ननं

कर्म कहत दूतीनि कै द्वै बिधि सो पहिचानि।
दुहू मिलैबौ प्रथम पुनि, बिरहनिवेदन जानि ॥२१॥

अथ मिलाप करवाइ दैबौ

यथा कवित्त

अब लौं न जाकौ मुख निरख्यौ निसाकर हू
को गिनैं दिवाकर की चरचा बिचार में।
घेरैं ही रहति घर हू में घरहाई सखी
त्रासै सासु आँखि ओट पलक अवार में।
सौमनाथ बरनै न काहू उर आने बाल
अति ही गुमान में करी है निरधार में।
लाई ताहि कान्हर कुँवार सुकुँवार[2] प्यारे
करियै विहार आजु पावस वहार[3] में ॥२२॥

१, अनंग [१]। २, कुमार, सुकुमार [३]। ३. विहार [२, ३]।

अथ नायका कौ बिरहनिवेदन

यथा कबित्त

रुचि न दुकूलनि की, केस माँग फूलनि की
सबही छकाए जाकी अनपरवाहिनैं।
बिलखीं सहेली, ओठ आँगुरी दसन दाबैं
चलैं पैलैं नैननि की सैन बाँएँ दाहिनें।
सौमनाथ निरखै सुजान तुम त्यौं ही और
रंग अग भीने हैं अनग पातसाहि नें।
सोंधो लेत नाहि जानै लाल सेत नाहिनें
हितू सौं हेत नाहिनें हिए कौ चेत नाहिने ॥२३॥

अन्यच्च

एकै वेर तोरी कान्ह प्रीति बरजोरो करि[१]
रावरे की प्यारी जो कहाइ परनारि तें।
सौमनाथ प्यारे रही विरह तिहारे सों
खची सो परजंक पै सची की उनहारि तें।
बरनी न जाति ताकी दुसह दसा की वात
औरनि त्यौं हेरै न अनोखी हित हारि ते।
भावत न बीरी खन ताती खन सीरी होति
पीरी काम तीरनि अहीरी दिन चारि तें ॥२४॥

अथ नायकबिरह निवेदनं

यथा सवैया

क्यों अब यौं सतराइ चितौति चुराइ हियौ सु रसाल नई है।
एकहू वात न मानति है किन धौं मति ऐसी दयाल दई है।
ए अजहूँ अधरामृत प्याइ, गुपाल के हूल विसाल छई है।
और हवाल कहा कहियै अति साल बनी वनमाल भई है ॥२५॥

इति श्री मन्महाराज कुँवार प्रताप सिंघ हेत कवि सोमनाथ विरचिते रसपियूषनिधौ उत्तमादि नायका सखीकर्म दूतीकर्म वर्ननं नाम द्वादशतरंगः ॥१२॥

---

१. धाम [१]। २. कहि [१]।

अथ नायक निरूपनं ॥ आदी नायक लच्छनं

सोरठा

सुचि धनवान अपार, अभिमानी सु उदारमनि ।
छमी गुनी निरधार, चतुर ललित नायक वरनि ॥१॥

यथा कवित्त

सगवगे सौंधे सो दुकूल दरसत[1] अंग
एँड़ भर्‌यौ विहँसै उदारता सौं हेत है ।
अनियारे चंचल विसाल दृग सोमनाथ
सील गुन सागर चतुरई कौ चेतु है ।
आजु निरख्यौ मैं वलवीर जमुना के तीर
ग्वालनि की भीर मधि मानौ मीनकेतु है ।
विरह वितै के री चितै के अलवेली भांति
चित चोरि लेतु है निकाई कौ निकेतु है ॥२॥
नायक त्रिविधि हिएँ में आनौ ।
पति उपपति वैसिक पहिचानौ ॥३॥

अथ पति लच्छनं

विधिजतु व्याही नारि सों, होइ पुरुष की प्रीति ।
पति कहि ताहि कवित्त में, वरनत यौं कवि रीति ॥४॥

कवित्त यथा

काहे तें कमल सो वदन कुँभिलानौ यह
डभकौंही अँखियाँ निरखि अकुलाई हौं ।
सोमनाथ सुकवि कह्यौ है कछू काहू जाते
वोलति न वैन सुनिवे कौ ललचाई हौं ।
प्रानप्यारी निकट पधारियै सिंगार करि
विरह झकोर तें घरी न ठहराई हौं ।

---

१. दरसात [१] ।

तेरे गोरे अंगनि के संग सरसैगो कैसो
सुंदर सुरंग चूनरी कौ चीर लाई हौं ॥५॥

पति के भेद सु चारि बखानौ।
अनुकूल दक्ष सठ धृष्ट सु जानौ ॥६॥

अथ अनुकूल नायक लच्छनं

निज पतिनी सौं प्रीति अति तन मन बचन बनाइ।
परतिय ओर न हेरिबौ, यह अनुकूल सुभाइ ॥७॥

यथा कवित्त

वारि वारि डारी मन मेनका सी कोरि कोरि
जाके आगें को छबि सुरेस घरनी की है।
भूषन बसन दोउ संग ही सजत हसें
संग ही हरषि यह बात अरु नीकी है।
भावती की सुरति अनूप कही सौमनाथ
नैननि बसाई करि बारि बरुनी की है।
सोवत जगत हूं में रैंनि दिन आनन तें
चरचा सुजान के न आन तरुनी की है ॥८॥

अथ दच्छिन नायक लच्छनं

बहु नारी सों नेह सम, सो दच्छिन पहिचानि ॥९॥

यथा कवित्त

होरी के अपार सुख साजनि कौं साजि आजु
राजति है लाल अंग आनंद बढ़ाइ कैं।
एक बेर पांननि कौ तिय ने पसारे हाथ
आनन सुजान कौं निहारि ललचाइ कैं।
सौमनाथ बरनै बिचारि चतुराई करि
चार्यौ चंदमुखनि के आगें सचु पाइकैं।
बीरनि सौं सुभर जटित लाल हीरनि सौं
पी ने पानदान धरि दीने मुसिक्याइ कैं ॥१०॥

अथ सठ नायक लच्छनं

महा मधुर वतरानि मुख, हियें कपट, सठ जानि ॥११॥

कवित्त

अंत रति मानि आए लाल अरसानें लखि
भामिनि की छाती छाई छोह की अँध्यारी है।
डीठि पहिचानि के सुजान सकुचाने रच
बंचकता रीति तब उर में विचारी है।
मंद मंद विहसि मधुर वतराय कह्यौ -
जीय में न भेदु, देह देखिबे कौं न्यारी है।
औरनि को सबनि तें प्यारो प्रानु, चंदमुखी
तेरी सौंह नू तौ मोहि प्राननि तें प्यारी है ॥१२॥

अथ धृष्ट नायक लच्छनं

बरजत हूँ ढीठ्यौ करै नायक धृष्ट बखानि ॥१६॥

यथा सवैया

प्रीति नई नित कीजति है सब सौं छल की बतरानि परी है।
सीखी[1] ढिठाई कहाँ ससिनाथ हमें दिन द्वैक तें जानि परी है।
और कहा कहिए सजनी कठिनाई गरै अति आनि परी है।
मानत है बरज्यौ न कछू अब ऐसी सुजानहि बानि परी है ॥१४॥

अथ उपपति लच्छनं

परतिय ही के गेह में, पर्‍यौ रहै दिन रैन।
उपपति सो उर आनिए बरनत हैं कबि ऐन ॥१५॥

यथा कवित्त

फूलो वर बेली[1] सो विराजै तिय मंदिर में
जा कें नख चंद सों चप्यौ सो हिमकर है।

---

१. सीखे [२, ६]।
१. बन वेली [२, ६]।

ताही भरि डीठि न निहारै निसि वासर हू
बांध्यौ उर अंत मडरायबे कौ कर है।
दुरादुरी हम हू न जानी ही कहानी यह
सोमनाथ कहै पाई एक अटकर है।
पति कौ न लेस मकरंद कौ परौसिनि के
मुख अरबिंद कौं गुबिंद मधुकर है ॥१६॥

अथ बैसिक नायक लच्छनं

गनिका सों बस है पुरुष वैसिक सो उर आनि ॥१७॥

यथा सवैया

राजति ही निज पौरि के ऊपर जा मुख की छबि कीन रती रति।
यों निरखी जब तें तब तें नित नैननि लीनी चकोरनि की गति।
ए ससिनाथ सुजान सुनौ उत लाज समेति सिधारी सबै मति।
नैंकु न चैन परै बिछुरें चित वारबधू की चितौनि चुभ्यौ अति ॥१८॥
उत्तम मध्यम अरु अधम नायक त्रिबिधि सुजानि ॥१९॥

ए इन के लच्छन

तरुनी रुखाई हू करै जौ, पिय अति तऊ
करै रस रीति सबै उत्तम बखानिए।
कोपवती जानि कै लखावै न सनेह, रिस
लहै मन भेद कौं सु मध्यम जु जानिए।
लाज-डर-हीन, केलि कला, भली बुरी बात
जानतु न एकौ, सौ अधम उर आनिए।
सोमनाथ कहै औरौ लच्छन ए नायक के
कविता की रीति सों प्रगट पहिचानिए ॥२०॥

अथ उत्तम नायक

यथा सवैया

वैठि रही रिस नैननि मैं भरि कैं तरुनी तन अंग सिंगारि कैं।
नायक आइ गयौ तब ही बतरानी न वासौं, हँसी न निहारि कैं।

रोस की सूरति की पहिचानि कह्यौ न कछू ससिनाथ विचारि कैं।
लाइची चूर कपूर समेति सुवीरी खवावन लाग्यौ सँवारि कैं ॥२१॥

अथ मध्यम नायक

यथा दोहा

अलबेली की लखनि अति अनख भरी लखि कंत।
प्रगट करै न हरष कछू, हिय के प्रेम अनंत ॥२२॥

अथ अधम नायक

यथा दोहा

परसि पाइ राखन लगी हँसि कामिनि रतिगेह।
तऊ रह्यौ न कठोर पिय, बिचरि गयौ तजि नेह ॥२३॥

अथ रूपमानी नायक लच्छनं

सुंदरता की मानु अति, जाके मन में होइ।
ताहि रूपमानो कहत, नायक पंडित लोइ ॥२४॥

यथा सवैया

आंवदनी सुनि चंदमुखी बनि कें निजु कौं रति ते जितवै री।
बाँधि कतार चहूँ[१] दिसि की चढ़ि मंदिर लाज सबै रितवै री।
औ ससिनाथ विना निरखें निसि वासर बावरी ह्वै बितवै री।
रूप गुमान सुजान गहें उन त्यौं न तऊ हित कै चितवै री ॥२५॥

अथ प्रोषित नायक लच्छनं

निजु नारी सौं बिछुरि कें, चलै जु नर परदेस।
प्रोषित नायक ताहि कहि, बरनत सुकवि सुवेस ॥२६॥

यथा कवित्त

औरै रूप रचि डरपावति समीरन तें
मौरित रसाल में झुकनि झँवरनि की।

१. दुहू [२, ३]।

आज हीं अमतु चित निकट तरंगिनि के
भाँवरि गँभीर मधि[1] नीर भँवरनि की।
सौमनाथ सुकवि अनोखे इन नैननि कों
रंचक रुचै न ए चमक चँवरनि की।
काल्हि तिय संग मनरंजन करति ही सु
गंजन विनोद भई गुंज भँवरनि कीं ॥२७॥

टीका—'झँवरनि की' कौ अर्थ भौंरा औ भँवरनि की' कौ अर्थ पानी में भौंर परत है। तीजे चौथे तुकांत कौ अर्थ प्रगट ही हैं।

अथ अनभिज्ञ नायक लच्छनं

मूरख कौ अनभिग्य सब कहत सुकवि पहिचानि ॥२८॥

यथा सवैया

चाय सौं कंचन के परजंक पै आय बिराजि गई सुखसानी।
नाथ जू और सुनौ उर ते अचरा पटु टारि हरें अँगिरानी।
मैं दुरि कैं निरखी तरुनी मुसिक्याई जऊ रति कौ ललचानी।
पै न तऊ तिय के मन की गति प्रीतम नें सु कछू पहिचानी ॥२९॥

इति नायक निरूपनं ॥

अथ नायक के सखा बर्ननं

मिलै देइ जो तिया कौं, पिय सौं नेह बढ़ाइ।
नर्म सचिव सो जानिऐ, कहत सबै कबिराइ ॥३०॥

छंद—

चौविधि नर्म सचिव पहिचानौ। प्रथम सु पीठमर्द उर आनौ।
विट अरु चेटक बहुरि बखानौ। चौथौ सखा विदूषक मानौ ॥३१॥

अथ पीठमर्द सखा लच्छनं

बातनि ही झूठौ करै, मानवती कौ मानु।
हित सरसावै दुहुनि में, पीठमर्द गुनवानु ॥३२॥

---

१. भँवर गभीर मध्य [३]।

यथा कवित्त

स्याम के सखा की चतुराई मैं निहारी आजु
और पै बनै न ऐसौ बानिक बनाइबौ।
सौमनाथ कहै कीनें दोऊ वस बातनि में
बेर बेर समयौ बसंत दरसाइबौ।
रोस भरी भृकुटी सुभाव की वताई फेरि
कह्यौ कर जोरि यों सनेंह अधिकाइबौ।
राजौ परजंक पै गुबिंद प्रानप्यारी संग
ऐसें निसि बासर विलोके सुख पाइबौ ॥३३॥

अथ बिट सखा लच्छनं

काम केलि की बात अरु, दूतपने में ठीक।
लच्छन यों विट सखा के बरनत हैं कवि नीक ॥३४॥

यथा कवित्त

काहे कौं गुलाब सानि केसरि लगाई अंग
संग मलियागर को नेकु न सुहाइगी।
फूलनि की पाँखुरी बिछाए तें न ह्वैहै कछु
सुमति सखीनि की विलोकें अकुलाइगी।
सौमनाथ प्यारे सो न कोजै अभिमान प्यारी
ऐसे उपचार बिथा औरौ अधिकाइगी।
वैद ब्रजचंद कौ सरूप रस चाखौ चलि
अंतर के ज्वर की जरनि घटि जाइगी ॥३५॥

अन्यच्च

नेह रीति छोड़ें दुख पाइबौ करौंगी, फिरि
भीर घिरि गएँ अति सोति दुखियानि की।
मेरौ कह्यौ कीजै मिलि आनंद कौ लीजै लखि
द्वै दिन में भई गति औरै बखियाँनि की।

सौमनाथ प्यारे कौ सुभाउ पहिचानौ अब
सीख जिन मानौ अलबेली सखियाँनि की।
रीझ ठहरानी दिन रैनि मनभावन के
प्यारी इन तेरी अनखौंहीं अँखियाँनि की ॥३६॥

अथ चेटक सखा नायक लच्छनं

दंपति की मनभाँवती बात लेइ पहिचानि।
तासौं चेटक कहत हैं सकल सुकबि रसखाँनि ॥३७॥

यथा सवैया

छाइ रहे छिति पै धुरवा मुरवानि की टेर बिनोद कबूलनि।
सीतल मंद सुगंध समीर तें मंजुल पुंज लतानि की झूलनि।
तैसियै नीकी निकाई भई अब अगनि साजें सुरंग दुकूलनि।
ऐसे में तौ लौं हँसौ तिय सौं हरि लैन हौं जातु कदंब के फूलनि ॥३८॥

अथ बिदूषक सखा लच्छनं

जानतु बतियाँ हँसी की और न कछू बिचार।
समझि बिदूषक सखा के लच्छन ए निरधार ॥३९॥

यथा सवैया

केलि निकुंज में कुंजबिहारी रमे तिय संग हिएँ सचु पाइ कैं।
ए ससिनाथ जू वाही समै उठि वोल्यौ सखा छल वैन बनाइ कैं।
आइऐ बीर बली बलदेव सुनी यह स्याम सुजान सुभाइ कैं।
आइ गए हरि चौंकत में बिहस्यौ तब ओट लतानि की जाइ कैं ॥४०॥

इति सखा निरूपनं ॥

अथ दर्शन बर्ननं

चौबिधि दरसन सकल कबि बरनत हैं हित ठानि।
श्रवन चित्र अरु सुपन पुनि साक्षात पहिचानि ॥४१॥

इनके नाम ही लच्छन हैं।

श्रवणदरसन यथा

जाके अंगरंग की निकाइ की तरंगनि तें
पावस के तिमिर की तड़ित लजानी है।

रंचक निहारें होइँ चंचल मुनी के मन
कोरि गुनी मधुर महूखहू ते बानी है।
सौमनाथ सुंदर सुजान प्रानप्यारे वह
रावरे की चरचा सुने तैं ललचानी है।
बेरि बेरि आजु अँगिरानी सरसानी डीठि
जाँनी परी लगनि घरीक बतरानी है ॥४२॥

अथ चित्रदर्शन यथा

ऐंड़ि अँगिराति मुख मोरि मुसिक्याति प्यारी
कबहूँक झूठें हूँ अनूठें इतराति है।
देखत ही बनै न बखानिबे की बात सखी
समता के आनिबे कौं बानी तरसाति है।
सौमनाथ परम इकंत रतिमंदिर में
मोहन के चित्र सौं चरित्र सरसाति है।
हेरि हेरि हिय सौं लगाइ सुख पाइ फेरि
बेर बेर कंचन लता सी थहराति है ॥४३॥

अथ स्वप्नदर्शन

यथा सवैया

आए गुपाल सखी सुपनें में समीप हमारे रतीकु डरे नही।
हौं कितनौ समझाइ रही तऊ लाज तें नैन उतै ठहरैं नहीं।
चाइनि सौं मुसिक्याइ कछू ललचाइके वे तौ घरीक टरैं नही।
मैं ही अयानपन्यौं परसी जु निसंक ह्वै मोहन अंक भरे नहीं ॥३७॥

अथ साक्षात् दर्शन। यथा

बिमल दुकूल मकरंद मिली फूलमाल
कुंडल श्रवन सीस मुकुट लसातु है।
चंद्रिका सी सरसै सरस मुसिक्यानि महा
सौमनाथ बैसौ पट पीत फहरातु है।

पान करि करि रूप मधुर पियूष आछे
लोचन चकोरनि के मोद उफनातु है।
ब्रजचंद जू कौ मुखचंद अवलोकि आजु
सरद कौ चंद हू चप्यौ सौ चल्यौ जातु है ॥४४॥

अन्यच्च

जरकसी फेंटा चटकीलौ लटपटे पेच
झलके झगा में छिन छटा मनिमाल की।
आयौ बन निकट निकुंज ते जमुन तट
लटकीली चाल ऐंड मीडतु मराल की।
सौमनाथ सुकबि सनाल अरबिंद कर
मृगमद बिंद मति मथै रतिपाल की।
को न ब्रजबाल ललचानी गुन तेह भरी
नेह भरी निरखि निकाई नंदलाल की ॥४५॥

अथ अनुराग बर्नन

दोहा—सुनि अरु दरसन तें जु हिय, बाढ़ति लगनि अपार।
ताहि द्विविधि[1] अनुराग कहि, बरनत बुद्धि उदार ॥४६॥

श्रवनानुराग

यथा कवित्त

अंजन दै दृगनि खवाई हँसि बीरो, फेरि
सखी नें उढाई हुती ललित पिछौरी है।
सौमनाथ तब लौं न गई लरिकाई अब
द्यौसक तें भई तरुनाई इक ठौरी है।
बेर बेर आवै गेह, मेह न गनत नैंकौ
देह की न सुधि यों सनेह मद बौरी है।
रैनि दिन आली अरबिंदवदनी कें नित
साँवरे के नाउ सुनिवे की चित ढौरी[2] है ॥४७॥

---

१. सुद्ध [२]। २. डौरी [३]।

अथ दृष्टानुराग

यथा कबित्त

अब ही गई ही बंसीवट पनघट आछैं
मेरे आगे बोलति[1] हंसति सखियाँन में।
आइ गयौ औसर ही अचकाँ कन्हाई तहाँ
सजें फूल माल मजु मोर पँखियान में।
सौमनाथ बानिक बिलोकि छबि छाकि छकी
दीनी ऐंचि गांसी पँचबान वखियान में।
गागरि गिराइ बिसराइ कुलकानि ग्वालि
ल्याई भरि मोहन को नेह अँखियान में ॥४८॥

अन्यच्च

एँन एँन ते हौं आजु गोरस के वेचिबे कौं
निकसो अकेली अति सुमति रली रली।
नैंन नैंन जाने दौरि परे मनमोहन पै
रूप ललचाने जैसें मधु पै अली अली।
बैंन बैंन धुनि सुनि भूली अनकूली प्रीति
सौमनाथ काहे को गई हौं वा गली गली।
मैंन मैंन ह्वै है ऐसी बानि आनि कहा कहौं
मद मुसिक्याइ नदनदन छली छली ॥४९॥

अन्यच्च

इंदु से बदन में अनिद अरबिद नैंन
कुंकुम की पूरित कपूर खौरि टटकी।
झलकति कुंडल की झलक कपोलनि में
मंद मद बोलनि औ डौलनि मुकुट की।
जब तें निहार्‌यौ वह रूप कहि सौमनाथ
भूली गति मति उतही मे डीठि अटकी।

---

1. खेलति [३]।

ग्वालनि के संग नंदनंदन कालिंदी तट
राजी गुंजमाल गारी हाथैं पीत पट की ॥५०॥

अथ चेष्टा लच्छनं

सवैया

सुंदरि दूरि तैं दामिनि सी दमकी तिन जोबन जोर जहूर में ।
फैली सरीर सुबास जितौ ससिनाथ इतौ न निकाई कपूर में ।
हार सम्हारि उघारि मुखै सु दुरी लगि प्रेम-पयोनिधि-पूर में ।
फेरि हियौ हरि कौ निरख्यो नख तें सिख लौं गरकाब गरूर में ॥५१॥

इति श्री मन्महाराज कुँवार प्रतापसिंह हेत कवि सोमनाथ विरचिते
रसपीयूषनिधौ नायक सखा दर्शन दूतानुगमन चेष्टा वर्णनं नाम
त्रयोदश तरंगः ॥१३॥

अथ हाव वर्नंनं

होति सँजोग सिँगार में जे चेष्टा अनूप।
तिन हीं कौं सब भाव कहि, बरनत हैं कविभूप ॥१॥
हेला अरु लीला विहृत विभ्रम ललित बिलास।
मद मोट्टाइत कुट्टमित पुनि विब्बोक प्रकास ॥२॥
बोधक अरु बिच्छित्ति पुनि किलकिंचित पहिचांनि।
मुग्ध हाव अरु तपन पुनि, रसिक सुकवि उर आनि ॥३॥

अथ हेला हाव लच्छनं

जहाँ[1] प्रेम सरसानि तें, भूलति लाज अनूप।
बरनत कबि कोविद सबै, यों हेला को रूप ॥४॥

यथा कवित्त

साजि नख सिख लौं सिँगार भाँति भाँतिन के
चौंकति चहूंधा अलबेली गति आन सौं।
सोमनाथ प्रीतम छबीले के निकट आई
झलक्यौ अवास मनि भूषन बिधान सौं।
लाज साज सिगरे भुलाइ अधिकाइ नेह
मतौ करि मन में अकेले पंचबान सौं।
मिली भरि अंक अरबिंदमुखी आनंद सौं
कुंदन लता सी नंदनंदन सुजान सौं ॥५॥

अथ लीला हाव लच्छनं

पिय को रूप बनाइ कें, तिय बिहरै सुख मानि।
तासौं लीला हाव कहि बरनत हैं गुनखांनि ॥६॥

यथा कवित्त

पचरंग फेंटा अलबेली बिधि बांध्यौ तैसी
बहुरंग बागे की निकाई सुखदानी है।

1. तहाँ [२ ३]।

आय परजंक पै निसंक सरसानी, जाके
मुखचंद आगे चंदजोति पियरानी है।
सौमनाथ आए त्यौं ही अचकाँ सुजान तहाँ
जिन की कहानी सुनि रतिहू लुभानी है।
चितै मुसिक्यानी अँगिरानी थहरानी देह
नेह रीति ठानी है लजानी ब्रजरानी है ॥७॥

अन्यच्च सवैया

राजत हे[1] रतिमंदिर में रति सो तिय, काम से लाल कन्हाई।
आपुस में पलटे पट भूषन बाढ़ी तहाँ कहि नाथ निकाई।
वाम सुभाइ किए नँदनंदन, कीनी तबै तिय ऐसी ढिठाई।
चाँपि कपोल दुहूँ कर सौं पिय को मुख चूमि चितै मुसिक्याई ॥८॥

अथ विहृत हाव लच्छनं

जहाँ बोलिवै के समै लाज न बोलन देइ।
बिहृत हाव सो जानिए सब ढिठई हरि लेइ ॥९॥

यथा कबित्त

आए अरसात अँगिरात प्रात मोहन जू
मोहनी के मंदिर में मोद मद सौं मढ़े।
स्वेद-जल-कन सोहैं आनन अमंद पर
मकरंद बुंद मनौ अरबिंद में बढ़े।
सौमनाथ सुकवि सुजान कौ स्वरूप लखि
या बिधि सौं त्यौर तरुनी के तब हीं चढ़े।
बात कहिवे कौ औठ फरके रिसाइ तऊ
लाजनि तें पै न कछू बैन मुख तें कढ़े ॥१०॥

अथ विभ्रम हाव लच्छनं

नेह अधिकई तें जहाँ अनबिधि करियत काज।
ताकौ बिभ्रम हाव कहि, बरनत हैं कबिराज ॥११॥

---

१. राजति है [२, ३]।

कवित्त

साँझ समै आजु नंद जू के नव मदिर में
सजनी प्रकास लख्यौ कौतुक रसाल मैं ।
रगमगे अंबर सँवारि अंग भावती ने
प्रेम सरसायौ मन भूपन विसाल मैं ।
सौमनाथ मोहन सुजान दरसाने त्यों ही
रीझी अलवेली उरझानी और हाल मैं ।
मोरवारी बेसरि लै श्रवन सिगारी चारु
साजे पुनि भूलि के करनफूल भाल मैं ॥१२॥

अथ ललित हाव लच्छनं

सुंदरता अँग अंग की, मधुरी चलनि सुवेप ।
ललित हाव सो जानिए वरनत बुद्धिविसेप ॥१३॥

यथा कवित्त

सजि कै सिंगार रतिमंदिर पधारी त्यो ही
अंगनि तैं महकें सुगंध गति न्यारी कौ ।
सटकारे बारनि के भार लक लचकति
औचकि परत सुनि बोल धुनि भारी कौ ।
खंजन तें चपल छबीले दृग सौमनाथ
रचक निहारि मन हर्यौ गिरधारी कौ ।
मंद मद चलनि गयदनि गरद करै
मद करै चंदहि अमंद मुख प्यारी कौ ॥१४॥

अथ विलास हाव लच्छनं

बोलनि चलनि चितौनि में, जहँ बिलास सु बिलास ॥१५॥

यथा सवैया

बर चंपक बेलि सी चंदमुखी सब अग सिगार सुभाइ कियौ ।
पहुँची नव केलि के मंदिर में ससिनाथ बिनोद सौ छाइ हियौ ।
बतराइ सखीनि कों पान दिए इहि बानि सों प्यारो लुभाइ लियौ ।
ललचाइ गुपाल की ओर चितै मुसिक्याइ के सेज पै पाँइ दियौ ॥१६॥

अथ मद हाव लच्छनं

जहाँ प्रेम सरसानि तें गर्व बढे उर आइ।
सो मद हाव बखानिए मन में अति सुख पाइ ॥१७॥

यथा कवित्त

अलबेली बानि के दुकूल पहिरे है तामें
जीवन के रंग की तरंग रतनारी सी।
डगमगी डग दै चली पै ठठुकी है फेरि
बेर बेर बिहँसि प्रकासै उजियारी सी।
सौमनाथ भावै सो बखानति सखी सौ बात
संक उर अंतर तो निपट बिसारी सी।
प्रीतम सुजान कौ निहारति गुमान भरी
पान खाति ठाढी झुकि जाति मतवारी सी ॥१८॥

अथ मोट्टाइत हाव लच्छनं

जहँ प्रीतम के दरस तें उपजै सातुक भाव।
ताहि दुरावै जुक्ति सौं, सो मोट्टाइत हाव ॥१९॥

कबित्त

पहले ही मोहन बिराजे परजंक आइ
रुचि सौं प्रगटिबे को रीति रस रंग की।
इंदिरा सी सुंदरि पधारी इंदुमुखी तहाँ
छाई सुधि मन में निसा के परसंग की।
सौमनाथ प्रीतम निहारि सरसानो स्वेद
तिय ने दुराई बात आनँद उमंग की।
हैली हिम रितु हू में निरखि असैली रीति
फैली अंग अंगनि में गरमी लवंग की ॥२०॥

अथ कुट्टमित हाव लच्छनं

आलिंगन मरदन करत पिय सौं तिय झहराइ।
मन में सुख पावै महा, सो कुट्टमित बताइ ॥२०॥

यथा कबित्त

लीनी जब अंक में निसक परजंक पर
अकलक पाई जानि सुख की बिसाति है।
झुकि झहरानी अकुलानी छुटिबे कौ अति
झूठे मुरझानी पै हिए में ललचाति है।
सौमनाथ प्रीतम किए जो मन भाए और
आली सुनि सो बिधि बखांनी नहिं जाति है।
उनही के संग अब आनँद उमंग साजे
रंग भरी हँसति लसति बतराति है ॥२२॥

अथ बिब्बोक हाव लच्छनं

प्रीतम के हित सों महा तन मन राख्यो सानि।
झूठे करै अनादरहि, सो बिब्बोक बखानि ॥२३॥

यथा सवैया

नाथ सुजान मनोहर हौ सब तें सुख लेत बनाय कै बागे।
औरनि की न तुम्हें सुधि नेंक भले निज गौं के बिलासनि पागे।
हेरत पंथ गए जुग जाम, सु नाहक नैन इती निसि जागे।
जाहु तही जित हीं अनुरागे कहा अब आँचर ऐंचन लागे ॥२४॥

अन्यच्च कवित्त

जगमगे भूषन दुकूल बहु रंगनि में
छहरी छबीली कला आनन मृगंक तें।
सगबगी सोंधे की तरंग तन सौमनाथ
नैन सुरझैं न लखि अलकनि बंक तें।
आए ढिग भावन बढ़ावन बिनोद त्यों ही
ऐंड़ि अँगिरानी प्रेमपुंज अकलंक ते।
सुंदर गोबिंद जू कौ आजु रतिमंदिर में
प्यारी थंक भरन उठी न परजंक तें ॥२५॥

अथ बोधक हाव लच्छनं

मन के भावहि बुद्धि सौं, जहाँ लेति पहिचानि।
बोधक हाव कहत सबै ताहि सुकबि गुनखानि ॥२६॥

यथा सवैया

राजति ही सखियानि मिली अरबिंदमुखी अति ही छबि छाई।
आए तहाँ ससिनाथ सुजान चितै चतुराई नई चित ठाई।
लै दसनावलि बिंब रसाल औ चंपक माल गरें लपटाई।
डीठि बचाइ कें औरनि की सु हरें तिय सी करि कें मुसिक्याई ॥२७॥

अथ विच्छित्ति हाव लच्छनं

जहँ भूषन कौ निदरिबौ तहँ बिच्छित्ति बताइ ॥२८॥

यथा कवित्त

काहे कौं सजति जरतारी के दुकूल चारु
जा में चहूँ ओर मजु मुकता सँवारे है।
नग जगमगित मँगाए नव भूषन क्यौं
अंजन बिना हू दृगकज कजरारे है।
सहज सुबासु ही रहत मडराने अली
सोमनाथ कहै क्यौं सुगंध ढिग धारे है।
इंदुमुखी आजु इहि वंदन की बिंदु पर
औरनि के सुंदर सिंगार वारि डारे है ॥२९॥

अथ किलकिंचित हाव लच्छनं

हर्ष रोष भय हास अरु जहँ उपजै इकबार।
सो किलकिंचित जानिएँ बरनत बुद्धिउदार ॥३०॥

यथा कवित्त

इंदुमुखी पहुँची अनंद भरी केलि कुंज
ताकी जोति चारु[1] चंद्रिका ते सरसानी है।
फूले अति बालम के लोचन चकोर चाहि

---

१. अंग जोति चारु [१]।

आदर सौ आई परजंक सुखदानी हैं।
कीनी मन भाँवरि छबीले कहि सौमनाथ
अधर पियूष पान लेत अकुलानी है।
अनखाँनी सी करि हँसी करि थरहरानी
फेरि मनमोहन के कंठ लपटानी है ॥३१॥

अथ मुग्ध हाव लच्छनं

प्रगट होइ मुग्धता सो,[1] कछू रीति सौं आइ।
मुग्ध हाव तासौं कहैं कवि कोविद समुझाइ।।३२॥

यथा सवैया

प्रात उठी अरबिंदमुखी निसि मैं करि केलि कलानि सौं पागी।
आरसी हेरति ही उर माँझ अयान छटा सु निरंतर जागी।
चारु कपोलनि मैं झलकी दुति कान के मानिक तैं रँग रागी।
जानिकैं पीक की लीक[2] लगी सुगुलाब के नीर सौं धोवन लागी॥३३॥

अथ तपन हाव लच्छनं

आवत वेर लगै जु कछु, पिय की पंथ प्रभाइ।
तव ली व्याकुल होय तिय, तपन हाव सु वताइ ॥३४॥

यथा सवैया

आजु अवेर लगाई कहाँ पिय नें अपनें तजि वैसे सुभावनि।
नाथ सुजान गुबिंद विना प्रगटै अव चंद हूँ औरै प्रभावनि।
चाउ वढ़ावति ही अति ही सु भई विषु वीन, अलीनि की गावनि।
लागन लागी सरीर घरीक तें तीर सी तीखी समीर की आवनि ॥३५

इति श्री मन्महाराज कुँवार श्रीप्रताप सिंह जी हेत कवि सौमनाथविरचिते रसपियूषनिधौ हाव वर्नंनं नाम चतुर्दस तरंग ॥१४॥

---

१. तहँ मुग्धता [२, ३]।
१. पीक लकीर [२]।

अथ बिप्रलंभ सिंगार लच्छनं

प्रीतम के बिछुरन विषैं जो रस उपजतु आइ ।
बिप्रलंभ सिंगार सो कहत सकल कबिराइ ॥१॥

अथ कबित्त

बादर उत्तंग अति डोलत उमंग भरे
बगुल कतार दंत दीरघ सँवारे हैं ।
चरखी तड़ित चमकनि औ गरज गुंज
बरसत नीर मिस मद के पनारे हैं ।
सोमनाथ प्यारे नंदनद कौ बिरह जानि
व्रज पै अनंग नें हजारक हकारे हैं ।
ए न घन भारे मैं बिचारि उर धारे अरी
कारे रंगवारे ए मतंग मतवारे हैं ॥२॥

अन्यच्च

घोरत घुमड़ि घन सघन तड़ित संग
त्रिबिधि समीर बर तीर से सनसनात ।
सोमनाथ कहै बन बोलत बिहंग पुंज
मत्त भए भ्रमर कदंबनि भनभनात ।
कछु न सुहात अकुलात निसि दिन जात
बूँद परैं गात ताते तए-से छनछनात ।
कैसें ब्रजनाथ बिन पावस बितैयै जहाँ
जिल्ली सों चहूँधा गन झिल्ली के झनझनात ॥३॥

विप्रलंभ कौ भेद पुनि, सुनि पूरबानुराग ।
हैं ताही में दस दसा, बरनत सुकबि सभाग ॥४॥

अथ पूर्वानुराग लच्छनं

प्रीतम निरखत सुख बढै, बिनु निरखें दुख होइ ।
है पूरबानुराग सो, भाषत पंडित लोइ ॥५॥

यथा कवित्त

हम तौ कही ही जिनि नंद के नगर जाहु
तब तौ तिरीछें तकि दाँत मसकन लागीं।
अब भली भई कज कली सी मलतु मैन
चैन चकचूर ह्वै कपूर ससकन लागीं।
सौमनाथ औरई करति उपचार सासु
बौरई भई यों जानि नद घसकन लागीं।
और न कछू है वाही साँवरे के नैननि की
अनियारी कोरैं वै करेजे कसकन लागीं ॥६॥

अथ दस दसा नाम कथनं

छंद—अभिलाष, चिता, गुन कथन, उदबेग पुनि पहिचानिए।
कहि सुमृति, ब्याधि, प्रलाप, अरु उनमाद, जड़ता जानिए ॥७॥
बरनन लाइक नाहिनै मरन दसा दुखदानि ॥८॥

अथ अभिलाष लच्छनं

प्रीतम मिलिबे की हियें हौंस, बरनि अभिलाष ॥९॥

यथा कवित्त

लाइची लवंग करपूर पूरि पाननि में
अरबिंद आनन में हँसि कें खवाइहौं।
प्रेम रस पागी बतियानि सौं अनंत उर
अंतर की विथा मनमथ की सुनाइहौं।
सौमनाथ सुंदर सुजान गुनमंदिर कौ
आली जब रंचक इकौसें फिरि पाइहौं।
बिरह भुलाइहौ विनोद सरसाइहौं री
नैन सियराइहौ हिए सौं लपटाइहौं ॥१०॥

अथ चिता दशा लच्छनं

प्रिय मिलिबे के जतन कौं सोच सु चिता भाषि[1] ॥११॥

---

१. जानि [२]।

यथा सवैया

सासु के त्रासन साँस भरों, मन ही मन माँझ मसोसनि हारिबौ।
घेरे रहें निसि बासर नंद, टरें कितहूँ न, कितौ पचि हारिबौ।
नाथ सुजान वे बेपरवाह पहार हमें निज पौरि बिहारिबौ।
फेरि बनै किहि छंद सखी नंदनंदन कौ मुखचंद निहारिबौ ॥१२॥

अथ गुनकथन दशा लच्छनं

प्रिय गुन वर्नन विरह में ताहि गुनकथन जानि ॥१३॥

यथा कवित्त

रुचि सौं रच्यो है बिधि अति ही विवेक भर्यौ
और ही तो एकहू न[२] जानें छरछंद है।
दुख को हरैया और रिझैया पंचसायक तें
लायक अनूठौ रसनायक अमंद है।
सौमनाथ गूढ गुन वरनौं कहाँ लौं कहि
महा अरबीलौ नित आनँद कौ कंद है।
प्रेम कलपद्रुम छबीलौ व्रजचंद भट्ू
मेरे इन लोचन चकोरनि कौ चंद है ॥१४॥

अथ उद्वेग दशा लच्छनं

होय सुखदहूँ दुखद सब जहँ बियोग में आइ।
सो उद्वेग दसा समझि बरनत है कबिराइ ॥१५॥

यथा कवित्त

सीतल बयारि तरवारि सी वहति, तैसी
लहकनि बेलनि की मूल सरसन लागी।
धरकति छाती घोर घन की गरज सुनि
दामिनि की दमक दवा सी दरसन लागी।
सौमनाथ इते पै करतु कमनैती काम
कौन विधि जीवौं री बिपति परसन लागी।

२. और हिय एक हूँ न [३]।

जेई पिय संग बरखति हीं पियूप धार
तेई अब घटा विपधार बरसन लागीं ॥१६॥

अथ स्मृति दशा लच्छनं

प्रीतम सुमिरन सुमृति कहि बरनत सकल प्रवीन ॥१७॥

यथा सवैया

सुंदर बदन सुघराइ कौ सदन लखि
वारियै मदन वाकी छाँह जितहीं रहै।
सोमनाथ कहै मन मोहै सरसौंहै नैन
चैन परसौंहै दुति दूनी तितहीं रहै।
मंजुल मुकुट, कटि तट पीत पट, बनसी
वट निकट नट भेप नित हीं रहै।
जा छिन ते हेरी हरि मूरति अनेरी वह
ता छिन ते हेरी गति मेरी वितहीं रहै ॥१८॥

अन्यच्च

कुंडल झलक चारु झलकै कपोलनि में
छलकै छविनि भाल मृगमद विंद की।
सीस पे मुकुट कटितट पीत पट बाँधे
गुंजमाल सघन बिलोकिनि अनंद की।
ग्वालनि के आगे, पाछैं गाइनि के आनँद सों
मुरली लकुट लैंनि पानि अरविंद की।
खटकति आनि भटू, घट में निपट वह
आवनि अनूप मृदु गावनि गुबिंद की ॥१९॥

अन्यच्च

सखिनि के संग में अनंग मद भीनी जापै
भूमरि सी परति अनंत उपमानि की।
चूनरी सुरंग दरदावन किनारीवारी
जरतारी कंचुकी अमद सुखदानी की।

सौमनाथ कही न बनति धुनि किंकिनी की
घूँघरी की घनक, छनक बिछियानि की।
चुभि रही मन में सु चंदवदनी की छबि
आवनि गयंद गति मद मुसिक्यानि की ॥२०॥

अथ व्याधि दशा लच्छनं

जहाँ छीनता विरह तें तन की है सो व्याधि ॥२१

यथा सवैया

सोइबे की सौंह सी लई है निसि द्योस अत्र
और उर अंतर में पीर सरसानी सी।
बेर बेर लेटति उठति परजंक पर
सौमनाथ कहै अवलोकनि अयानी सी।
बरनी न जाति गति चदवदनी की कान्ह,
रावरी कहाँनी नेंकु होत सुखदानी सी।
भूख बिसरानी मुखजोति पियरानी कछू
देह दुबरानी सी, रहति मुरझानी सी ॥२२॥

अथ प्रलाप दशा लच्छनं

बचन अनर्थ प्रलाप सो सुनत हियौ अकुलाइ।
प्रीतम के अति विरह तें, यह गति होति सुभाइ ॥२३॥

यथा कवित्त

कौंन सरसी है उर अंतर उपाधि नई
सक गुरजन की निसंक तोरि नखियाँ।
भूली भूख प्यास सुख सोइबौ सहित आली
चढ़ी जाति दीरघ उसासनि सों वखियाँ।
हाय क्यौं निहारी[1] मैं विहारी कहि सौमनाथ
एकौ उर आनी न सिखाय हारीं सखियाँ।
घटि जाइ तेह तौ निवटि जाउँ हेरी भटू
लटि जाउ नेह ए उचटि जाउ अँखियाँ ॥२४॥

---

१. निहारे [२.३]।

अथ उन्माद दशा लच्छनं

अति प्रीतम कौ विरह जव, होइ महा दुखदानि ।
वृथा करै करतूति सब, सो उन्माद वखानि ॥२५॥

यथा कवित्त

गोरी गूजरी की दसा वनति विलोकति ही
कही न वनति मो पैं सुमति विसाल सों ।
कहूँ डारी मटुकी, अनूप भुज टाड़ कहूँ
तोरि तोरि डारै कहूँ मोती कंठमाल सों ।
सोमनाथ बूझति तमाल तरु तालनि कों
हाहा, कहूँ भई भेट तुम्हें नंदलाल सों ।
पटकी अटक लोक घट की विसारी सुधि
भटकी फिरति आँखें अटको गुपाल सों ॥२६॥

अन्यच्च

और ही तें अंगनि के सौरभ सनेह सन्यौं
निपट निसंक सब तोसों डरिवौ करै ।
सोमनाथ सुकवि रसीले अलि होतु कहा
ऐसें नित रैनि दिन ध्यान धरिवौ करै ।
भौरी ही कुटिल अलकनि छ्वै विथा कौं कहि
कामसर कठिन करेजे अरिवौ करैं ।
लाज गुन तोरें हरि गौरी के निहारिवे कौं
जोरें कर भौंर के निहोरे करिवौ करै ।२७॥

अथ जड दशा लच्छनं

जहाँ चेष्टा रहत तन, अति वियोग तें होइ ।
ताकों जडता दसा कहि, वरनत है कवि लोइ ॥२८॥

यथा सवैया

लूटि लुनाई तिहूँ पुर की बिधि जा अंग अंगनि रीझि भरी सी।
हास विलासनि में निसि द्यौस इती जिन वैस वितीत करी सी।
ए ससिनाथ सुजान विना लखि ता त्रिय की गति हौं सु डरी सी।
बोलति हूँ न चितौति परी परजंक में कंचन छीन छरी सी ॥२९॥

इति श्री मन्महाराज कुँवार श्रीप्रताप सिंह हेत कवि सोमनाथ विरचिते
रसपियूषनिधौ दशा वर्नन नाम पंचदश तरंग ॥१५॥

अथ हास्य रस लच्छनं

सुनि कें सरस कवित्त होत ब्यंगि जब हास।
तब ही ताको हास्य रस कहियतु है सविलास[1] ॥१॥

यथा सवैया

जानि कें आवदनी बर की चित चाहनि सो तिन ही करि के रुख।
ठाढी भई मिलि कें तिय गाँव की आछें बरात कौ देखन कौं सुख।
बैल पै नाँगे भुजंग के भूषन भच्छत भंग विसारत हैं दुख।
ऐसें निहारत ही हर कौं हहराइ हँसी सब अंचल दै मुख ॥२॥

इहाँ हर और देखनवारी स्त्री आलंबन विभाव और हर के बनाव उद्दीपन विभाव और हँसिबौ अनुभाव और हर्ष संचारी भाव इन तें हास्य रस पूर्ण।

अथ करुन रस लच्छनं

सुनतहि जहाँ कबित्त मैं ब्यंगि होइ जब सोक।
करुना रस तासों कहैं सकल सुकवि रस ओक ॥३॥

यथा सवैया

काम की देह सरोस हिये हर लोचन ज्वाल बिसाल सौं दागी।
त्यौं रति की उत ही परी डीठि सु अगनि दुख्ख दवागिनि जागी।
वेर अनेक बकी उनसों तुम ऐसी करी प्रभु ह्वै अनुरागी।
चारु सिँगार उतारि सबै अँसुवा दृग पूरि बिसूरन लागी ॥४॥

टीका—इहाँ काम अरु रति आलंबन विभाव और काम को जरिबौ उद्दीपन विभाव और रति कौ बिसूरिबौ अनुभाव और विषाद संचारी भाव। इनतें सोक स्थाई ब्यंगि तातें करुना रसः।

अन्यच्च

बिदा माँगि जब ही चले द्वारावती मुरारि।
तब जसुमति के दृग भए जलधर की उनहारि ॥५॥

अथ रुद्र रस लच्छनं

जब कवित्त में आनि कें क्रोध ब्यंगि ठहराइ।
ताहि रुद्र रस कहत है सबै सुकवि सुख पाइ ॥६॥

---

१. सुबिलास [१]।

यथा कवित्त

ग्वालनि पै कुंजर तुरंग लुटवाऊ और
वा असुर पै तो वसुदेव कौं छुटाऊँ मैं।
फोरि डारौं ठोकर सौं महल अखड वड़े
ठौर ठौर गाइनि के खरक बनाऊँ मैं।
सोमनाथ बेर बेर भृकुटी चढ़ावें कान्ह
कहै बल जू सो तुम्हे मन की सुनाऊँ मैं।
तो न नंदनंद जु न आजु मथुरा में जाइ
कंस को निपट निरवंस करि आऊँ मैं ॥७॥

टीका—इहाँ कान्ह और कंस आलंवन विभाव और कंस की अनीति उद्दीपन विभाव और कान्ह कौ भृकुटी चढ़ाइवौ अनुभाव और गर्व संचारी भाव। इनते क्रोध स्थाई भाव व्यंगि यातें रुद्र रसः।

अथ वीर रस लच्छनं

जहँ कवित्त में सुनत हीं व्यंगि होइ उतसाह।
तहाँ वीर रस समझियो चौविधि के कविनाह ॥८॥

जुद्ध वीर यथा झूलना छंद

कहा रन मग्ग में सोर मँडवौ वृथा जोरि कें दीन जन चहूँघा को।
छाँड़ि बर अस्त्र अरु सूर सब संग लै वेगि ही रत्थ मुख फेरि हाँकौ।
बान अभिमन्यु को लगत जाने अजौ कहत समुझाइ कें सुनौ राँको।
जाउ रे भाजि रे जाउ आयौ सु हौं वीर पारत्थ को पूत बाँको ॥९॥

टीका—इहाँ अभिमन्यु और सेना कौं लोग आलंवन विभाव और सोर उद्दीपन विभाव और वचन अनुभाव और गर्व संचारी भाव। इनतें उत्साह व्यंगि तातें युद्ध वीर रसः।

अन्यच्च सवैया यथा

गेंद के लायवे कौ मिसु कै हँसि कें कढ़ि ग्वालनि संग विहार तें।
पीत पटी कटि सौ कसिकें उर में डरप्यो न कलिंद की धार तें।
ए ससिनाथ कहा कहिए जु वड़ी अरुनाइ उछाह अपार तें।
काली फनिंद के कंदन कौ चढ़ि कूद्यो गुविंद कदंब की डार तें ॥१०॥

अथ रुद्ररस और जुद्धवीर कौ भेद कथनं

रुद्र रस मे क्रोध की प्रधानता करि कै झूठ सत्य वचन बकिबे कौ विचार नाही और जुद्ध बीर में आप समर्थता के वचन प्रधान है ॥

अथ दानवीर रस

यथा सवैया

जानत है सब दान की बात सुहाति सुनें मन माँझ उदारनि ।
ए ससिनाथ कहौ हित सो अपने हिय के अभिलाप विचारनि ।
हौ परताप महा रिझवार सदा बरसावतु कंचन धारनि ।
मौज उमंग में कौनु गने वह रंग तुरंग मतंग कतारनि ॥११॥

टीका—इहाँ कुवर (प्रतापसिंह) और जाचक आलंबन विभाव और जाचिबौ जाचिक कौ उद्दीपन विभाव और कुँवर के वचन अनुभाव और हर्ष संचारी भाव । इनतें स्थाई उत्साह व्यंगि तातें दानवीर रसः ॥

अथ दयावीर रस

यथा कवित्त

हे कपिकत ! विभीषन कों ह्यॉं समेति सचिव्वनि वेगि बुलाइ लै[1] ।
हौं सरनागत को न तजौं प्रन मेरौ यही उर में अपनाइ लै ।
लीनौं सुग्रीव नें बोलि तबै लखि ताहि कह्यो प्रभु ने उर लाइ लै ।।
लंक महीप असंकित हो दुख दद वहाइ अनंद वढ़ाइ लै ॥१२॥

टीका—श्री रामचद्र और विभीषन आलंबन विभाव, विभीषन के दीन वचन उद्दीपन विभाव और समाधान के वचन अनुभाव और गर्व संचारी भाव इनतें उत्साह व्यंगि तातें दया वीर रसः ॥

अथ धर्मवीर रस

यथा कवित्त

कहा भयौ जो पै तीस जोजन वड़ो है और
चौकी दानवन की है तऊ न रती डरौ ।

---

१. हे कपिकंत बिभीषन को संग मित्रन को इत वेगि बुलाय लै [२] ।

वन फल खाइ तरु तोरि तिनुका लौं फेरि
असुरी कुचील तोहि पाइ तल सों दरौं।
सोमनाथ बरनैं उदार हनुमंत हौं सो
उत्तम अनंत निज धरम[1] सवै करौं।
वीर रघुनंदन को मौको न हुकम नातो
सीतै लंक सहित पयोधि पार लै धरौं ॥१३॥

टीका—इहाँ आसुरी और हनुमंत आलंबन विभाव॥ और आसुरी के दुर्वचन व्यंगि ते जानियत हैं, ते उद्दीपन विभाव और हनूमान के वचन अनुभाव और गर्व संचारी भाव। इनतें उत्साह व्यंगि तातें धर्मवीर रस॥

अथ भयानक रस लच्छनं

सुनि कवित्त में व्यंगि भय, जब ही परगट होइ।
ताहि भयानक रस वरनि, कहै सवै कवि लोइ ॥१४॥

यथा कवित्त

कहा कीनी असमै अनीति दसकंठ कत
हरि लायौ सिया को सु ताकौ फल पावैगो।
सेत वाँधि सिंधु मैं अडिग्ग पथ कीनौ उंनि
कौन अब एसें समझाइ जु वचावैगो।
वूडि वूड़ि जातु मन मेरौ भय सागर में
कहा जानौं कैसे त्रास आँखिनि दिखावैगो।
बंदी करि सवको सवारे रघुनंद आइ
हाइ हाइ हाथें हाथ लकहि लुटावैगो ॥१४॥

टीका--इहाँ रामचंद्र औ मंदोदरी आलंबन विभाव और सेत वाँधिवो उद्दीपन विभाव और कातर ताके वचन अनुभाव और अपस्मार और त्रास संचारी भाव। इनतें भव स्थाई भाव व्यंगि तातें भयानक रस॥

अथ बीभत्स रस लच्छनं

जहँ कवित्त कौं सुनत ही, हिय मै सरसे हानि।
ताहि कहें बीभत्स रस, कवि कोविद पहिचानि ॥१६॥

---

१. निज धर्म सों [२]।

यथा कवित्त

इतहि प्रचंड रघुनंदन उदंड भुज
उतै दसकठ वढि आयौ डरु डारि कैं।
सौमनाथ कहै रन मंड्यौ फर मंडल में
नाच्यौ रुद्र श्रोनत सौं अंगन पखारि कैं।
मेद गूद चरवी की कीच मची मेदनी में
वीच वीच डोलैं भूत भैरो मद धारि कैं।
चाइनि सों चडिका चवाति चंड मुंडनि कौं
दंतनि सौं आँतनि चचोरें किलकारि कैं ॥१७॥

टीका—इहाँ चंडिका और देखनवारो आलवन विभाव और आँतनि कौ चचोरिवौं उद्दीपन विभाव और देखनवारे के वचन अनुभाव और असूया संचारी भाव। इनि तें ग्लानि स्थाई भाव व्यंगि। तातें बीभत्स रस।

अथ अद्भुत रस लच्छनं

जहँ कवित्त मे सुनि महा अचरज व्यगि जु होइ।
तहाँ प्रगट उर आनिये अद्भुत रस है सोइ ॥१८॥

यथा सवैया

हाहा तुहूँ चलि देखि भटू अजहूँ वह पालने लाल परयौ है।
जाहि निहारि कहै ससिनाथ अचंभौ महा व्रज माँझ[1] भरयौ है।
ठौर ही ठौर यही चरचा गृह काज समाज सबै विसरयौ है।
नेंक से नंद के छोहरा सो पग सो सकटासुर चूर करयौ है ॥१९॥

टीका—इहाँ बालक अरु देखनवारी आलंबन विभाव और सकट कौ तोरिवौ उद्दीपन विभाव और देखनवारी के वचन अनुभाव और आवेग संचारी भाव। इनतें अचिरज स्थाई भाव व्यंगि तातें अद्भुत रस॥

अथ सांत रस लच्छनं

प्रगट होय निर्वेद जहँ ब्रम्ह ग्यान तें आइ।
सुनि कवित्त तासौं कहै सात सु रस सुख पाइ ॥२०॥

---

१. गाँस [३]।

यथा कबित्त

सुबरन बृंद अरु तात भ्रात नंद जानि
भूत के से छंद निज प्रीतिहि भजाइलै।
पंच तत्व प्रगट ते कपट गुटौ सी खुली
ह्वै है औरै रंग बर संगिहि लगाइलै,
सौमनाथ सुकबि सयान अपनाइ अजौं
दुरमति नीद में तें जीवहि जगाइलै।
नैननि अनिंद नटवर बेष ध्याइ लै रे
वैननि सों सुंदर गुबिंद गुन गाइले।।२१।।

टीका—इहाँ जगत और ग्यानी आलंबन बिभाव और जन्म मरन उद्दीपन बिभाव और बचन अनुभाव और संतोष हर्ष संचारी भाव। इनते निर्वेद व्यंगि तातें सांत रस।

इति श्री मन्महाराज कुँवार श्रीप्रतापसिंह हेत कवि सौमनाथबिरचितं [रसपियूषनिधौ रस ध्वनि बर्ननं नाम षोड़श तरंगः ॥१६॥]

अथ भावध्वनि लच्छनं

जह संचारी होतु है व्यंगि, कवित में आनि ।
देव राज रति भावध्वनि, तहँ निहचै पहिचानि ॥१॥

टीका—इहाँ प्रश्न है रस हू में और भावध्वनि हू में रति और निर्वेद थाई भाव व्यंगि होत है । ए दोऊ रसध्वनि ही अथवा भावध्वनि ही क्यों न कहिऐ । रति निर्वेद ए संचारी हू है यातैं अब याको उत्तर है—जहाँ विभावादिकनि सों पुष्ट होइ तहाँ रसध्वनि और जहाँ साधारन होहि तहाँ भाव ध्वनि जानिऐ ।

अथ संचारी भावध्वनि यथा

गाइ गुवालनि संग में, निरखति फूली साँझ ,
ऊधो गोवर्धन सिखर, वै खरकत हिय माँझ ॥२॥

टीका—इहाँ स्मृति संचारी भाव व्यंगि साधारण है यातैं भावध्वनि । ऐसें देवता और राजादिक पुत्रनि में जहाँ प्रीति होइ तहाँ भावध्वनि ही कहिऐ ।

अथ देवरति भावध्वनि यथा

जौ रिझवार सुधारि बिरंचि लिखी निरधार लिलार सुहाए ।
ता मैं रती न घटैं न वढै फिरि होतु कछू न वृथा ललचाए ।
काहे कौं ओछे उपाइ करै ससिनाथ वनाइ कहौं समझाए ।
प्रेम तरंगहि में सरसै वरसै सुख आनि सियावर गाए ॥३॥

टीका—यहाँ देवता में प्रीति है ।

अन्यच्च

जरद जटानि में फुहारे जिमि गंगधार
हार सेस हिरदें त्रिनैन रूप न्यारे कौ ।
गरल गरे में जौर जाहर जलखवारी
आधे अंग तरुनो सनेह के पत्यारे[1] कौं ।
सौमनाथ एरे उर अंतर निहारि भव-
पारावार तारन की कति हुस्यारे कौं ।
भसम सिँगारैं, जौ लिलार पर धारै जोति
चंद की कला की वा पिनाकी प्रानप्यारे कौं ॥४॥

१, पतारे [२] ।

अन्यच्च

ईस अरधंगिनी दिवौकसतरंगिनी तू
नैन करि नीकैं सुर किन्नरन गानी है।
रिद्धि रुकिमिनी तू प्रसिद्धि कहि सौमनाथ
आठौ सिद्धि तूंही बिद्या बुद्धि बरदानी है।
बरनी न जाति अकलंकित कला जौ तेरी
जोति थिर चर में निरंतर समानी है।
बेदनि बखानी है भवानी सुखदानी तूही
त्रिभुवन रानी है हमारे मन मानी है ॥५॥

अन्यच्च

राखति न तिन के परोसिन कै पाप कहूँ
काहू समै भूलें हू, जो नाउँ मुख जे कहैं।
पंचमुख करि कैं पठावति महेसपुर
जे नर हुलासनि सों न्हात करि टेक हैं।
सौमनाथ कहै अहे सुंदर तरंगे गगे
बूझत हौं तुम्हें ऐसे संसय अनेक हैं।
केते तो मैं बैल औ फनिंद चंदकला केती
केती मुंडमाल औ बघंबर कितेक हैं ॥६॥

अन्यच्च

सुंदर तरंगैं सदा सौहति उमंगैं भरी
नीरदुति जीते छवि गीले अरबिंद की।
सौमनाथ बरनै बिरंचि अति चाइनि सौं
थाकै बरबानी बुद्धि बदनकरिंद की।
पाप हरै हेरें, नाउँ टेरें अमरेस करै,
न्हाइ तिहिँ बेरैं करे मूरति गुबिंद की।
हिंद हद पूरी नदनंदन की रानी सुभ
छंदनि में गानी नित नंदिनी कलिंद की ॥७॥

अथ भावध्वनि लच्छनं

जह संचारी होतु है व्यगि, कवित में आनि।
देव राज रति भावध्वनि, तहँ निहचै पहिचानि ॥१॥

टीका—इहाँ प्रश्न है रस हू में और भावध्वनि हू में रति और निर्वेद स्थाई भाव व्यंगि होत है। ए दोऊ रसध्वनि ही अथवा भावध्वनि ही क्यों न कहिऐ। रति निर्वेद ए संचारी हू है यातें अब याकौ उत्तर है—जहाँ विभावादिकनि सों पुष्ट होइ तहाँ रसध्वनि और जहाँ साधारन होहि तहाँ भाव ध्वनि जानिऐ।

अथ संचारी भावध्वनि यथा

गाइ गुवालनि संग में, निरखति फूली साँझ,
ऊधो गोवर्धन सिखर, वै खरकत हिय माँझ ॥२॥

टीका—इहाँ स्मृति संचारी भाव व्यंगि साधारण है यातें भावध्वनि। ऐसें देवता और राजादिक पुत्रनि में जहाँ प्रीति होइ तहाँ भावध्वनि ही कहिऐ।

अथ देवरति भावध्वनि यथा

जौ रिझवार सुधारि विरंचि लिखी निरधार लिलार सुहाए।
ता मैं रती न घटैं न बढै फिरि होतु कछू न बृथा ललचाए।
काहे कौं ओछे उपाइ करै ससिनाथ बनाइ कहौं समझाए।
प्रेम तरंगहि में सरसै बरसै सुख आनि सियावर गाए ॥३॥

टीका—यहाँ देवता में प्रीति है।

अन्यच्च

जरद जटानि में फुहारे जिमि गगधार
हार सेस हिरदें त्रिनैन रूप न्यारे कौ।
गरल गरे में जौर जाहर जलखवारी
आधे अग तरुनो सनेह के पत्यारे[1] कौं।
सौमनाथ एरे उर अंतर निहारि भव-
पारावार तारन की कति हुस्यारे कौं।
भसम सिँगारैं, जौ लिलार पर धारै जोति
चंद की कला की वा पिनाकी प्रानप्यारे कौं ॥४॥

१, पतारे [३]।

अन्यच्च

ईस अरधंगिनी दिवौकसतरंगिनी तू
नैन करि नीकैं सुर किन्नरन गानी है ।
रिद्धि रुकिमिनी तू प्रसिद्धि कहि सोमनाथ
आठौ सिद्धि तूंही बिद्या बुद्धि बरदानी है ।
बरनी न जाति अकलंकित कला जो तेरी
जोति थिर चर में निरंतर समानी है ।
बेदनि बखानी है भवानी सुखदानी तूही
त्रिभुवन रानी है हमारे मन मानी है ।।५।।

अन्यच्च

राखति न तिन के परोसिन कैं पाप कहूँ
काहू समै भूलें हू, जो नाउँ मुख जे कहैं ।
पंचमुख करि कैं पठावति महेसपुर
जे नर हुलासनि सों न्हात करि टेक हैं ।
सोमनाथ कहै अहे सुंदर तरंगे गंगे
बूझत हौं तुम्हें ऐसे संसय अनेक हैं ।
केते तो मैं बैल औ फनिंद चंदकला केती
केती मुंडमाल औ बघंबर कितेक हैं ।।६।।

अन्यच्च

सुंदर तरंगैं सदा सोहति उमंगैं भरी
नीरदुति जोते छवि गीले अरविंद की ।
सोमनाथ बरनै बिरंचि अति चाइनि सौं
थाकै बखानी बुद्धि बदनकरिंद की ।
पाप हरै हेरें, नाउँ टेरें अमरेस करै,
न्हाइ तिहिं बेरैं करे मूरति गुबिंद की ।
हिंद हद पूरी नदनंदन की रानी सुभ
छंदनि में गानी नित नंदिनी कलिंद की ।।७।।

अथ राजरति भावध्वनि

दान करि विक्रम, सुरेस सनमान करि,
ग्यान करि सिंधुरबदन अवरेखिऐ।
रूप करि काम, बर बान करि राम,
संग्राम करि भीषम उदंड भुज लेखिऐ।
सील करि सरद कौ चंद कहि, सोमनाथ
सत्य करि धरम धुरंधर बिसेषिऐ।
नंद बंदनेस कौ कुँवर परताप सिंघ
दुख्ख-दल-दरन कौ करन सौ देखिऐ ॥८॥

अन्यच्च

पावैं तेई आदर अनंत कहि सोमनाथ
पावैं तेई कंचन अनूप सुख साँचे हैं।
पावैं तेई पालकी पटंबर के पुंज और
तिन ही के द्वारनि तुरंगगन नाँचे हैं।
पावें तेई सिंधुर समद जंग जैतवार
पावैं तेई राज इंदिरा के रस राँचे हैं।
तिन ही के सुजस प्रकास हैं गुनी जे चाहि
कुँवर प्रताप सिंघ जू कौ आनि जाँचे हैं ॥९॥

अन्यच्च

ललित हरित पीत सेत ऊदे रंग जुत
सुबरन तार मखतूलनि कौ लच्छा है।
सोमनाथ सुरुचि निकाई निरखत जाकी
सुर नर किंनरनि हू को मद गच्छा है।
जेता जंग जालम कुँवर परताप सिंह
सुनो यामें कलपलता सें गुन अच्छा है।
सिच्छा रिषराज की परिच्छा नित आनँद की
इच्छा फल दैनी रावरे के हाथ रच्छा है ॥११॥

अन्यच्च

जानि बिजैदसमी समाज परतापसिंघ
सिद्ध मसनंद पै सभा मैं दरसतु है।
सौमनाथ भूपति नजरि गुजराने खरे
डीठि सौं ही तिन की रसाल परसतु है।
महल महल मांझ मंगल बधाए होत
नगर निदान सुभ सोभा सरसतु है।
कीरति सों नेह उर आनँद अछेह भरि
कंचन कौ मेह मघवा लौं बरसतु है ॥१२॥

अथ तुरंगन के कवित्त

खंजन से थहरैं धरा में गरबीले और
दौरि छित ओर छोर छीवैं दीह धाप के।
गहगहे गरुड़ गुमान-गन-गंजन हैं
भंजन प्रभंजन, हरैया दुख ताप के।
सौमनाथ कबि जो रिझावै मौज पावै ताके
पूरे होत सुफल प्रभाकर के जाप के।
चगे जंग रंग में उमंगवारे भारे मोल
ऐसे तुंग तरल तुरंग परताप के ॥१३॥

अन्यच्च

वलख बुखार और काबिल खंधार चीन
खुरासान अरब फिरंगिन के देस के।
हरे नीले नुकरा सुरंग फुलवारी बोज
रँगे रंग, जग जितवैया बित्त बेस के।
जगमगैं हीरा लाल पन्ननि के साज ताजे
सौमनाथ कहै तैसे बाजी न सुरेस के।
आनँद के कंद, छंद करन हयंद ऐसे
बखतबिलंद परताप कुवरेस के॥१४॥

अन्यच्च

साँचे सों सँवारि अवतारे अवनी पै बिधि
सौमनाथ बरने सुगंधिनि सो साने है।
तेह भरे तुंग अंगसंगी पौनपूत के से
मन के सहोदर से कबिनि बखाने है।
सिंघ परताप रावरे के लखि बाजी तुरा
देत चंडकर के तरंगनि कौं ताने है।

सिंधुर कौ कवित्त

सुंदर पुरंदर के सिंधुर सहोदर से
दौर समै परति बसुंधरा में दरजै।
पूजे भाल बंदन, बिलंद सुंडा दंडिनि सौं
बृंदारकबृंद के बिमान गौनु बरजै।
सौमनाथ कहै परताप के मतंग इमि
पेषि प्रान प्रगट दिग्गसनि के लरजैं।
तर्ज्जत जलद्दनि बिहद्द कद कारे रंग
जंग जेता जालिम गरूर भरे गरजे ॥१७॥

इहाँ राज में प्रीति प्रगट ही है।

अथ रसाभास लच्छनं

अनलायक रस बरनियैं जहँ कवित्त में लाइ।
रसाभास तासौं कहैं सकल रसिक सुख पाइ ॥१८॥

यथा दोहा—होरी खेलत ग्वालि के गहे उरोज गुपाल।
तबलौ और गुवाल ने छिए कपोल रसाल ॥१९॥

टीका –इक नारि सों द्वै नर्रान कों बिहार अनुचित है।

अथ भावाभास लच्छनं छंद

अनुचित भाव कबित मैं आनै।
ताको भावाभास वखानै ॥२०॥

यथा—नृत्यत कैसैं हरष ए लै गति परम विचित्र।
कैसे कढ़ति मृदग तें महा मधुर ध्वनि मित्र ॥२१॥

टीका इहाँ चिता वृथा है।

अथ भाव उदयादिकथनं

आयो गोरस लैंन कों वह साँवरो गुवाल[1]।
चहूँ ओर चितई नवल, अलबेली ब्रजबाल ॥२२॥

टीका—यहाँ त्रास भाव कौ उदय है।

---

1. वही साँवरो ग्वाल [३]।

अथ भावसांति

यथा—करि सिंगार पिय पै गई, अति बिनोद सरसाइ ।
लखि सूनी सुख सेज तिय, बदन गयौ मुरझाइ ॥२३॥

इहाँ हर्ष भाव की सांति ।

अथ भावसंधि

यथा—लरजतु हिय पिय पास कौं, बरजति बैरनि लाज ।
बिबस प्रान तिय के परे, बनत न एकहु काज ॥२३॥

टीका—इहाँ रति और लाज भाव की संधि ।

अथ भावसबलता

यथा—नव नागरि अरबिद मुख पिय परस्यौ अधरानि ।
चपल चौंकि उठि सेज तें भहरानी रिस ठानि ॥२४॥

इहाँ चपलता और त्रास, बोध, लाज, रोस भावनि की सबलता है ।

इति असंलक्ष्यक्रम व्यंगि ध्वनि ॥

अथ संलक्ष्यक्रम व्यंगि लच्छनं

यथा-सब्द और पुनि अर्थ तें, सब्दारथ तें जानि।
तीनि भाँति सों होति है, संलक्ष्यक्रम आनि ॥१॥

अथ शब्दमूल ध्वनि लच्छनं

होय सब्द तें व्यंगि जहँ, भूषन बस्त्र जु[1] आनि।
व्यंगि कहन लायक सबद सब्दध्वनि सो जानि ॥२॥

अथ शब्द तें अलंकार व्यंगि

यथा-आयो मोहन खाय कै कान्ह मथिनिया डारि।
कहाँ चले चौंकत चकित चितवत इत उत हारि ॥३॥

इहाँ चकार शब्द तें वृत्यानुप्रास अलंकार व्यंगि है।

सब्द तें वस्तुव्यंगि

मुदी जाति अँखियाँ अरुन, झलकत जावक भाल।
कहा बनावत बात अब, हम सब जानति लाल ॥४॥

टीका—इहाँ 'हम सब जानति' या शब्द तें यह वस्तुव्यंगि कि तुम औरनि ही सों सुख पावत हौ हम सौं नाहि।

इति द्विविधि शब्द तें मूल व्यंगि ध्वनि ॥

अथ त्रिविधि अर्थरूप व्यंगि ध्वनि कथनं

प्रथम अर्थ रूप ध्वनि सो है जहाँ लोक तें प्रगट उक्ति है। और यही स्वतःसंभवी है और जहाँ कव्युक्ति तें है तहाँ कबि प्रौढोक्ति तें व्यंगि कहावति है और जहाँ कबि नें वक्ता राख्यौ है. यातें उक्ति कहावति है।

इनके द्वादस भेद हैं—एमें सुवर्न हों. स्वतःसंभवी उक्ति में वस्तु तें वस्तु व्यंगि, एक भेद। वस्तु तें अलंकार व्यंगि द्वै भेद। अलंकार तें बस्तु व्यंगि तीनि भेद। अलंकार तें अलंकार व्यंगि चारि भेद। ऐसें ई कबि प्रौढोक्ति तें चारि भेद। ऐसे ई कबिनिबद्ध वक्ता की उक्ति तें चारि भेद ॥१२॥

---

१. सु [३]।

अथ स्वतःसंभवी उक्ति में वस्तु तें वस्तु व्यंगि

यथा सवैया

है नख तें सिख एक सी देह मनोज की ग्रामदनी गुन गौरि में।
ओढ़नी सूही सुगंध सनी है बनी बिहसैं सखियानि की रौरि में।
सुंदर आनन में दरसै बर बंदन बिंद ग्रबीर की खौरि में।
काननि हू न सुनी कबहू सु जू मैं निरखी वृषभान की पौरि में ॥५॥

टीका—इहाँ काहू की यह सब कहनावति वस्तु तातें अपनें मन की चाह जताइबौ वस्तुव्यंगि।

अथ स्वतःसंभवी उक्ति में वस्तु तें अलंकार व्यंगि

यथा दोहा

परी उसीसें तें लटकि लट अवनी पर आनि।
बढ़ति जानि मनभावतैं पकरी नागिनि जानि ॥६॥

यहाँ वस्तु तें भ्रमालंकार व्यंगि।

अथ स्वतःसंभवी उक्ति में अलंकार तें अलंकार व्यंगि

यथा—को है रति रंभा सची, को उरबसी गँवारि।
तोसी तुही अनूप तिय रची बिरंचि सँवारि ॥७॥

इहाँ प्रतीपालंकार तें अनन्वयालंकार व्यंगि।

अथ स्वतःसंभवी उक्ति में अलंकार तें वस्तु व्यंगि

अथ कबि उक्ति में वस्तु तें अलंकार ब्यंगि

यथा—ललित हेरि मडरातु है, ह्वै हिय में अनुकूल ।
रे मधुकर जानतु नहीं यह[1] दुपहरिया फूल ॥ १०॥

यहाँ वस्तु तें अन्योक्ति अलंकार ब्यंगि है ।

अथ कव्युक्ति में अलंकार तें अलंकार ब्यंगि

यथा छिति सुरेस रघुबीर दल लखि अरि होत अडीठि ।
दबि पयान करकति विकट, कठिन कमठ की पीठि ॥११॥

इहाँ उपमालंकार तें अत्युक्ति अलंकार ब्यंगि है ।

अथ कब्युक्ति में अलंकार तें वस्तु ब्यंगि

यथा—मधुर बचन बोलै कमल तौ तिय मुख सम होइ ।
बरनें नाहि समान कहि, भेदु न जानत सोइ ॥१२॥

इहाँ प्रथम तुक में सम्भावनालंकार तें, दूजी तुक में वस्तुब्यंगि कमल दिन ही में फूल्यौ रहतु है और जड़ है यह सदा चैतन्य है ।

अथ कविनिबद्ध वक्ता की उक्ति में वस्तु तें वस्तु ब्यंगि

यथा सवैया

कान परी चरचा तब तें चित जाइ लगे उत साँझ सबेरे ।
आजु तौ आपु तें भेट भई नंदनंदन सों अभिलाष घनेरे ।
प्रान बिकाइ गए रिझवार सुहावनी मोहन की छबि हेरे ।
लाज सबै तन छाइ गई जु कहाँ न गई जु हती मन मेरे ॥१३॥

इहाँ सब बस्तु तातें यह वस्तु ब्यंगि कि लाज निवारि कैं अबकैं कहौंगी ।

अथ कविनिबद्ध वक्ता की उक्ति में वस्तु तें अलंकार ब्यंगि यथा

सजनी जब इहि आरसी दुरै निसाकर आनि ।
मीजि डारि कसि बसन में बिरहिनि कौं दुखदानि ॥१४॥

इहाँ सब बतिकहाउ बस्तु, तातें भ्राति अलंकार ब्यंगि है ।

---

१. ये [२]।

अथ कविनिबद्ध वक्ता की उक्ति में अलंकार तें अलंकार व्यंगि

यथा-मेरौ मुख पिय चंद सो कहत, न आप लजात।
वह अंकित, अकलंक यह सदा कलाजुत गात ॥१५॥

इहाँ प्रथम तुक में उपमालंकार तातें दूजी तुक में प्रतीपालंकार व्यंगि है।

अथ कविनिबद्ध वक्ता की उक्ति में अलंकार तें वस्तु व्यंगि

यथा कवित्त

किधौं छीरसागरु अपार उमग्यौ है किधौं
दसहू दिसानि में सुधा ही बरसति[1] है।
किधौं छिति छोर लौं बिछाए हैं रजतपत्र
किधौं काम कीरति बिलास परसति[2] है।
सौमनाथ किधौं यह पारद जलज मथि
अवनि सुहानी जग जोति सरसति[3] है।
ताप निरवारन बढ़ावन बिनोद मन
किधौं प्यारी सुंदर जुन्हैया दरसति[4] है ॥१६॥

इहाँ संदेहालंकार तें यह वस्तु व्यंगि कि ऐसे में सुरति कीजे।

गाजो गंजबकस प्रचंड परताप सिंघ
चंडमान रूप तुव तेज बरसतु है ॥१७॥

टीका—इहाँ शब्दार्थ तें व्यंगि है बिचार सों जानौ। अब सब को जोर। द्वै भेद अबिबच्छित बाच्य ध्वनि के अर्थांतरसंक्रमित और अत्यंततिरस्कृत वाच्य ध्वनि। और एक भेद असंलक्ष्यक्रम कौ। और संलक्ष्यक्रम व्यंगि ध्वनि में द्वै भेद शब्दमूल व्यंगि ध्वनि के। और द्वादश भेद अर्थ रूप व्यंगि ध्वनि के और एक भेद शब्दार्थमूल व्यंगि ध्वनि कौ। सब अष्टादश भेद ध्वनि के भए ॥१८॥ इति उत्तम काव्य भेद।

इति श्री मन्महाराज कुँवार प्रताप सिंघ हेत कबि सोमनाथविरचिते
रसपियूषनिधौ ध्वनिबरननं नाम अष्टादशमस्तरंगः ॥१८॥

॥६॥
भयौ या

अथ मध्यम काव्य बरननं

मध्यम काव्य गुनीभूत व्यंगि अष्ट प्रकार। प्रथम अगूढ व्यंगि। द्वितीय अपरांग व्यंगि। तृतीय वाच्य सिध्यंग व्यंगि। चतुर्थ अस्फुट व्यंगि। पंचम संदेह प्रधान व्यंगि। षष्ठ तुल्य प्रधान व्यंगि। सप्तम काकु व्यंगि। अष्टम असुंदर व्यंगि।

अथ अगूढ़ व्यंगि

यथा—बालक बैस कै बानिक आजु बिलोकि न रंचक नैन अघात हैं।
पीत झगा अरु तैसियै[1] पाग समीप सखा छवि कौ सरसात है।
खंजन से दृग आनन चंद लसै ससिनाथ हिएँ हुलसात है।
कान्ह जसोमति के अँगना मधि मांखन हाथ[2] खरे मुसिक्यात हैं॥१॥

इहाँ सब प्रगट है व्यंगि वक्ता की प्रीति।

अथ अपरांग व्यंगि लच्छनं

व्यंगि कौ व्यंगि पोषै।

श्री प्रताप तुम दौर तें अरि बितरत इमि काज।
ले न सकत छोड़ि न सकत, निजु कंचन मनि साज॥२॥

इहाँ संका और औत्सुक्य भाव की संधि सो राजरति भावध्वनि कौ अंग है॥

अथ भाव कौ अंग भावसबलता तहाँ समाहित अलंकार

यथा—रघुवर चलत सिकार तब अति अरिगन अकुलात।
कंपत अरु रोवत भजत, किते मूरछा खात॥३॥

इहाँ मोह, कंप, अश्रु, त्रास, अपस्मार भावनि की सबलता है। सो देवरति भावध्वनि कौ अंग है॥

अथ बाच्यार्थ कौ अंग व्यंगि

यथा—रूप रंग लखि जिनि भ्रमैं, मधुकर बुद्धि बिलद।
है यह कली कनेरि की, ह्याँ न रती मकरंद॥४॥

इहाँ बाच्यार्थ अन्योक्ति अलंकार व्यंगि कौ पोषतु है॥

---

१. तैसोई [३]। २. खात [३]।

अथ वाच्यसिध्यंग व्यंगि याकौ लच्छन यह है कि वाच्यार्थ कौ सिद्धि करि देइ

यथा—छिन छिन होति औरै औप अवलोकनि में
बरनी न जाति सोभा बदन निकाई की।
अंचल मैं रंचक उचौंहै कुच देखियत
सकुच समेति मुसिक्यानि चतुराई की।
सौमनाथ सुनहु छबीले लाल चोसक तें
कछुक भुलाई है सु बानि लरिकाई की।
गति मंद पाई मंजु बैननि मिठाई नेंकु
आई अग अंगनि तरंग तरुनाई की ॥५॥

इहाँ जौबन को आइबौ व्यंगि चाहियतु हो सो चौथी तुक के वाच्यार्थ नें सिद्ध करयो ॥

अथ अस्फुट व्यंगि कि प्रगट न होय यह लच्छन

यथा कवित्त

केलि करि कला सों अमंद दुति चंदमुखी
रूप की कला सी परजंक पै ठहरि गई।
लागि पिय हिय सों सुहाग सनमान भरी
पागि तन मन अनुराग में गहरि गई।
सौमनाथ सुंदर प्रफुल्लित कमलवारो
सौरभ समीर आनि अचकाँ फहरि गई।
टरि गई नींद, सब सुखन बिसरि गई
गिरि गई मति, तन ताप सी छहरि गई ॥६॥

टीका—इहाँ प्रौढा नायका है। प्रात भयौ जान्यौ सो भविष्य बिरह भयौ या कोऊ कबि ही जानैं ॥

अथ संदेहप्रधान व्यंगि नाम ही लच्छन

यथा दोहा

प्यारी तुम मुसिक्यानि को नहीं समझियति बानि।
लाल डहडहे कीजियत, लहति सौति मुरझानि ॥७॥

इहाँ तेरी हाँसी अमृतमय है कि विषमय है यह वाच्यार्थ कों व्यंगि पोषै है भेद ॥

अथ व्यंगि कौं अंग व्यंगि सो रसवदादि अलंकार जानिये

प्रथम रसवत यथा

प्रथम किए दसकंठ के पात पात सब गात ।
फिरि सीता कों संग लै, चले अवध अवदात ॥८॥

इहाँ रुद्ररस सिंगार रस कौ अंग है यातैं रसवत अलंकार भयौ ।

अथ भाव कौ अंग रस तहाँऊ रसवदलंकार

यथा—हरि अजहूँ आए नहीं, आयौ निकट बसंत ।
क्यौं सजनी करिऐ कहा, सरस्यौ विरह अनंत ॥९॥

इहाँ दीनता भाव कौं अंग सिंगार रस है ।

अथ रस कौ अंग भाव तहाँ प्रेयस्वतालंकार

यथा—साँझ भोर बन कुंज में, सजि दुकूल बहु रंग ।
अलि कबहूँ फिरि बिहरिहै मनमोंहन के संग ॥१०॥

इहाँ चिंता भाव सिंगार रस को अंग है ॥

अथ भाव कौ अंग भाव प्रेयस्वतालंकार

यथा—को जानें ह्वैहै कहा, रघुबर के दरबार ।
पै वे सब लायक जगत-लाज-निबाहन-हार ॥११॥

इहाँ त्रासभाव देवरति भावध्वनि कौ अंग है ।

अथ भाव कौ अंग रसाभास तहाँ ऊर्जस्वित अलंकार

इहाँ शत्रुनि कौ श्रंगनि में खग्ग बाहिबौ अनुचित। क्रोध स्थाई में रुद्र रस कौ आभास देवरति भावध्वनि कौ अंग है।

अथ भाव कौ अंग भावाभास तहाँ ऊर्जस्वित अलंकार

यथा—करि अनीति भाज्यौ वहुरि, चतुरानन मन छुद्र।
सनमुख आवत निरखि कै उग्र रूप अति रुद्र ॥१३॥

इहाँ ब्रह्मा कें त्रासभाव बरनिबौ अनुचित सो भावाभास देवरति भावध्वनि कौ अंग है। सरस्वती पै दौर्‍यौ है ब्रह्मा।

अथ भाव कौ अंग भावसांति तहाँ समाहितालंकार

यथा—बात अचानक सुनत यह, थरथर थह्‍र्‍यो कंस।
कान्हर आयौ निकट अति, जदुकुल कौ अवतंस ॥१४॥

यहाँ कंप भाव कौ उदै देवरति भाव ध्वनि कौ अंग है।

अथ भाव कौ अंग भावसंधि तहाँ समाहित अलंकार

'श्री प्रताप सुन दौर" सु संदेश व्यंगि।

अथ अतुल्यप्रधान व्यंगि यह कि व्यंग अर्थ के समान ही होइ।

यथा सवैया

नँकु न चैन परै दिन रैन कहा कहिए सुख बारि दियौ तिनि।
चंद्रक नीर तें सौगुनी होति, बुझै न हजार उपाइ ठयौ तिनि।
टेरहि सौं ब्रजबालनि के उर औरई आगि कौ बीज बयौ जिनि।
री जिहि बस भई बँसुरो तिहिँ बंस कौं बंस निबंस गयौ किनि ॥१५॥

इहाँ बाँसुरी की शत्रुता व्यंगि चाहियति ही सो श्राप दै कें अर्थ मे बराबरि करि दीनो।

अथ काकु व्यंगि बचन कौ फेर सु

यथा कवित्त

प्रेम रस पूरन पियूष हिय छैलि क्यौं जू
जोग ज्वाल झेलि अलबेलीपन डाहैंगी।
सोमनाथ तिन्हें कैसें भावति बिभूति जटा
जिनकी गुबिंद मिलि खेलि मन साहैंगी।

वरन की[1] माला लै विछाइ मृगछाला साधि
प्रानायाम त्रिकुटी सहेली तन चाहैंगी।
चेली ह्वै तिहारी हम ऊधौ कहा सेली डारि
कंचन की बेली सी अकेली बन गाहैंगी ॥१६॥

इहाँ यह काकु है कि हम बन गाहैंगी अर्थात् न गाहैंगी।

अथ असुंदर व्यंगि लच्छन प्रगट ही है

यथा दोहा

धकधकाति छतिया अजौं, अतनु भरचौ अँग अंग।
तऊ दुरै क्यौं भावती, हम सौं पति रति रंग ॥१७॥

'तऊ दुरावति' यों चाहियै 'तऊ दुरै क्यौं' यह असुंदर है।

अन्यच्च

साँकें भरि काढी तिहूँ पुर की लुनाई लूटि
औपी चारु चंद सौं गुराई गहराति है।
सहज सुबास आसपास मडरात अलि
साँस लेत लकलकी लंक लहराति है।
वानी विनु वरनि सकै को छबि सोमनाथ
रतिपतिहू की मति हेरि हहराति है।
भाँवती के अंगनि पै जितही परति डीठि
तितही घर्याल की घरी लौं बढ़ि जाति है ॥१८॥

'बढि जाति' यह वाच्यार्थ तें असुंदर है। 'ठहराति है' यों आछौ।

इति मध्यम काव्य

इति श्री मन्महाराज कुँवार प्रताप सिंघ हेत कवि सोमनाथविरचिते रसपियूषनिधौ मध्यम काव्य गुनीभूत व्यंगि वरननं नाम एकोनविंशति तरंग ॥१९॥

---

1. सुवरन की [३]।

अथ दोषनिरूपनं

अथ दोषलच्छनं

दोहा

रस कौ सुख मलिनाइहै, जिहि सबदारथ[1] ओट ।
तासों दूषन कहत है, कबि रसिकन के जोट ॥१॥
जा के राखे तें रहै, दूरि करैं मिटि जाइ ।
शब्दारथ अरु बृत्त कौ, रस कौ दोष बताइ ॥२॥

अथ पददूषन

असमर्थ रु पुनि करनकटु अप्रयुक्त पुनि जानि ।
तीनि[2] भाँति अस्लील, पुनि संदेही उर आनि ॥३॥

विभक्ति कौ अंत सो पद ।

अथ वाक्यदोष

क्रमभंगु रु पुनि न्यूनपद, वहुरि बृत्तहत जानि ॥४॥

पद समूहौ वाक्य ।

अथ अर्थदोष

सहचर भिन्न रु चाह जुत व्याहत अरु निरहेतु ।
दुःक्रम अरु पुनरुक्त पुनि, अनुवीकृत दुख देत ॥५॥
पुनि सामान्य बिसेष कहि, सास्त्रप्रसिद्धि-बिरुद्ध[3] ।
देस और पुनि समय कौ, तजि बिरुद्ध कबि सुद्ध ॥६॥

अथ रसदोष

प्रकृतिबिपर्यय मित्र । रस कौ दोष बिचित्र ॥७॥

अथ पददोष असमर्थ लच्छनं

अर्थ होइ, पै अर्थ कौ पद कहि सकै न रूप ।
सो दूषन असमर्थ कहि बरनत हैं कबिभूप ॥८॥

---

१. मनुलाल हौ [२]; तीसरे हस्तलेख में 'रस कौ सुख मन...' के बाद 'है' तक पाठ खंडित है ।

२. तीनि भाँति कौ स्लील [२] । ३. प्रसिद्ध अभिधा [२] ।

यथा कवित्त

फूले कुंज कुंज अलि पुंजनि की गुंजरनि
चहूँ ओर त्रिबिधि समीरनि कौ बहिबौ।
तैसी चारु चद की जुन्हैया की झलक तामे
बेर बेर कोकिल की कूकनि कौ कहिबौ।
सौमनाथ हँसि हँसि पान कौ खवैबो खैबौ
परसनि अधर अनंत मोद लहिबौ।
बिसरति नाहि भटू मोहन की बतियाँ वे
छतियाँ लगाइ रतियाँ में पौढ़ि रहिबौ ॥९॥

इहाँ पथम तुक में 'कुंज' की ठौर 'द्रुम' कहे तौ आछौ ॥

अथ कर्नकटु लच्छनं

सुनि काननि करुवो लगै, ताहि कर्नकटु जानि ॥१०॥

यथा

लसतु नील पट रावरे अंगनि में इहि वानि[1]।
गरें परी पिय, रीझि कें, मनो अकीरति आनि ॥११॥

इहाँ नायिका कौ बचन ऐसौ नायक सौं न चाहिऐ ॥

अथ अप्रयुक्त लच्छनं

जो पद कबिनि कह्यौ नहीं अप्रयुक्ति सो मानि ॥१२॥

यथा कबित्त

धोखें आजु सीख सखियानि की मठा सी मानि
गई दधि बेचन अकेली मधुबन मैं।
सौंमनाथ निरख्यौ गुबिंद बिहरत तहाँ
वौरी भई तब तें भुलानी स्यानपन मैं।
अब कछू और न सुहात दिन रैनि आली
पीर मनमथ की अनंत बढ़ी तन मैं।

---

1. जानि [२]।

फाँसी सी परी है मुसिक्यानि मृदु मोहन की
गाँसी सी लगी है बाँसुरी के टेर मन में ॥१३॥

इहाँ मठ' सी' की ठौर हिये में आलि' कहिए तौ उत्तम ॥

अथ त्रिविध श्लील लच्छनं

पद तें जानि परै जहाँ लाज अमंगल ग्लानि।
श्लील त्रिविध यह कवित में तजौ सबै रसखानि ॥१४॥

अथ लज्जाश्लील

यथा—अब हम गोरस बेचिबौ तजि दैहैं नँदलाल।
सैन रावरी पाइके घोंकल[1] मेलत ग्वाल ॥१५॥

इहाँ 'मेलत' शब्द लज्जाश्लील है ॥

अन्यच्च

चोप सों चटक पीत पट की निहारि छिन
भेटि बनमाल रम्यौ मुरली की घोर में।
कुंडल डुलनि में घरीकु घिरि रह्यौ पुनि
बिहर्यौ चमक चंद्रिकानि छबि छोर में।
अलक मझाय,[2] चारु चिवुक कपोलनि छ्वै
सौमनाथ नेंकु भ्रम्यौ भृकुटी मरोर में।
बिचर्यौ न फेरि मन मेरो रिझवार आली
लाज दै अकोर छिद्यो नैननि की कोर में ॥१६॥

इहाँ 'छिद्यौ' की ठौर 'चुभ्यौ' कहे तौ उत्तम है ॥

अथ अमंगल श्लील

यथा—सगुन साधि परदेस कौं चलिए लाल सुभाइ।
जियत फेरि मुख देखिहौं तब रहिहौं सुख पाइ ॥१७॥

इहाँ अमगल प्रगट ही है।

अथ ग्लानि श्लील

यथा स्वेद सलिल सरस्यो तऊ, लख्यौ न रति के तेह।
अव पिय पोंछौं वेगि दै लिबिलिवाति है देह ॥१८॥

---

१. धाकल [२]। २. मझार [२]।

इहाँ 'लिचिलिबाति' शब्द ग्लानि है ॥

अथ संदिग्ध लच्छनं

प्रगट ही है ॥

यथा—कोटिक पाप कटे बिकट, सटके दुख अकुलाइ ।
आजु सुफल मानो जनमु लखि बाला के पाइ ॥१९॥

इहाँ 'बाला' देवी को नाम है और स्त्री हू सों कहत हैं, यह संदेह है ॥

अथ वाक्यदोष क्रमहीन लच्छनं

क्रम बिहीनता काव्य में, सो क्रमभंग बखानि ॥२०॥

यथा कवित

सकल सकेलि कें सुधा कौं तासौं रच्यौ इंदु
तामरस मुकर सँवारि कें गनत क्यौं ।
सोमनाथ हरषि ज्यौं समता करी त्यौं भए
तिल के न तूल हाथ हाथनि हनि थक्यौ ।
औरै अरबिंद चंद गगन बसायौ फेरि
आरसी पै छानि छार छोह में सनि छक्यौ ।
तेरौ मुख तेरौ सौ बिहारी की सौं प्यारी बिधि
केतौ पचि हार्यौ पै न दूसरौ बनि सक्यौ ॥२१॥

इहाँ यौं कहें तौ आछौ होइ। 'गगन बसायौ चंद औरै अरबिंद और आरसी पै छानि छार छोह में सनि छक्यौ ।'

अथ न्यूनपद लच्छनं

जा पद बिन अर्थ न बनै, सो पद तहाँ न होइ ।
ताहि न्यूनपद कहत हैं रसिक सयानें लोइ ॥२२॥

यथा—होरी खेलत कान्ह के, अंजन दीन्हौं बाल ।
गहकि गुलाल लपेटि कें, मुख चूम्यौ नँदलाल ॥२३॥

इहाँ एक गुवालि पद न्यून है यौं कहें तौं आछौ । 'लाइ गुलाल गुवालि कौ मुख चूम्यौ नँदलाल ।'

अथ वृत्तहत दोष लच्छनं

छंद भंग कविता जु है ताहि वृत्तहत जानि ॥२४॥

अथ मात्रा वृत्तहत

यथा कोऊ काहू को नाहीं, झूँठौ जगत निदान।
सेइ चरन रघुबीर के, उर में उपजै ग्यान ॥२५॥

इहाँ 'नाही' की ठौर 'नही' कहैं तौ आछौ।

अथ वर्नवृत्त हत

यथा कबित्त

कुंदन के अंग रंग, जोबन तरंग राजें
उरज उतंग छीन लक छबि देति है।
बादले की सारी मुखचंद की उज्यारी[1] ता में
न्यारी दुति दसन की हसनि समेति है।
सोमनाथ निरखि सुजान अँगिरानी प्यारी
ऊँचे भुज जोरि ग्रीवा मोरि हित चेति है।
सुमदन मलाह की सलाह सौं उछाह भरी
ठाढ़ी रूप सागर की मानौ थाह लेति है ॥२६॥

इहाँ चतुर्थ तुक आदि में सु अच्छर न पढ़ें तौ आछौ।

अथ अर्थदोष सहचरभिन्न लच्छनं

सहचरभिन्न सुदोप जहँ ऊच नीच कौ संग ॥२७॥

यथा—विद्या ही सौं बढतु है द्विज आदर अभिमान।
त्यौं लौहे के काम सौं है लुहार कौ नाम ॥२७॥

इहाँ ब्राह्मण और लुहार सों सहचर भिन्नता है। और यौं कहैं तो आछौ 'त्यौं ही छत्री कौं सदा जुद्ध करम सों नाम'।

अथ चाहजुत दोष लच्छनं

चाह रहै कछु अर्थ की ताहि चाहजुत जानि ॥

यथा कबित्त

कुंज कुंज प्रति लता पुंजनि मिलत फिरै
नैंननि में मंजु वही मूरति खगी रहति।

---

१. मुख चंद उजियारी [३]।

कोमल ललित बैन ऐन मैन कोकिल से
सुनिबे कौं श्रोननि की सुरति जगी रहति।
सामनाथ अंगनि की सहज सुगंध सुभ
सनि रही स्वासनि मैं सुमति ठगी रहति।
जैसे नेह नाधे पल आधे न बिसारे स्याम
राधे राधे राधे रसना में यो लगी रहति ॥२८॥

इहाँ दूजी तुक में इतनें अर्थ की चाह है। 'कोमल ललित बैन कोकिला की ध्वनि सम' यौं चाहिए।

अथ व्याहत दोष लच्छनं

पहले ताकौ दूषिऐ, फिरि ताको सनमान।
कीजै जहाँ सु दोष जुत, ब्याहत समझि निदान ॥२९॥

यथा—वारौं फूले कमल औ कोरि सरद के चंद।
प्यारी तुव मुखचंद के है चकोर ब्रजचंद ॥३०॥

इहाँ चंद कौ निदरि कैं फेरि आदरिबौ दोष है॥

अथ निर्हेतु लच्छनं

हेतु अर्थ जहँ होइ नहि सौ निर्हेतु बखानि ॥३१॥

यथा—सजि चटकीली चूनरी, चढ़ी अटा सुखदानि।
बेर बेर उझकति चपल, तजि गुरुजन की कानि ॥३२॥

इहाँ हेतु नाहि जानियतु काहे तें उझकति। 'बन तें आवन की भई वे कान्ह की जानि' यौं चाहिए।

अथ दुष्क्रम लच्छनं

लोक वेद की रीति तें अनुचित[१] क्रम जहं हो ।
ताको दुसक्रम दोष कहि, बरनत है कबि लोइ ॥३३॥

यथा—बात यही उर आनिए, हो पिय जौ रिझवार।
राजति छिन भरि, नाहि तौ, सब निसि रचौ बिहार ॥३४॥

इहाँ थोरो कहि कें बहुत कहिबौ दोष है॥

---

१. अनुचित कर्म जु होय [३]।

अथ पुनरुक्त लच्छनं

एक अर्थ द्वै बेर जहँ सो पुनरुक्त बताइ ।।३५।।

यथा कवित्त

केसे ताहि लाऊँ ताकी छाँह भई सखी डोलै
भूषन समूह उदौ कौढि करवीन कौ।
सहज सुगंध तें भँवर भौंन भरे रहे
वैन मद हरै कलकंठ गरवीन कौ।
सौमनाथ बरनै कमलदल पाउँ धरि
आँगन लौं आवति सुभाउ परवीन कौ।
नैकु थिर धाउ अभिराम गुन सुंदर हौ
नाहि घनस्याम यह काम अरबीन कौ ।।३६।।

इहाँ अभिराम और सुंदर एक ही अर्थ है यौं न चाहिए और यौं चाहिए—'अभिराम गुन धाम अजू नाहि इत्यादि'।

अथ अनवीत्कृत दोष लच्छनं

एक भाव वर्ननं जहाँ नव सुरूप नहिं और।
अनवीकृत सो दोप है कहत सुकबि सिरमौर ।।३७।।

यथा—कहा भयो सुंदर बड़े अनियारे ए नैन।
कहा भयो मुख चंद ते, कढत सुधा से वैन ।।३८।।

इहाँ एक भाव बर्नन तें दोष है। और जौ यौं कहै तौ नीकौ। जौ मनभावन कौं निरखि बरसावत नहि चैन।

अथ सामान्य बिसेप लच्छनं

बरनत जहँ सामान्य में कहै बिशेषै आनि।
कै सामान्य बिसेष में विनु पोषक दुखदानि ।।३९।।

अथ सामान्य में विसेष

यथा—निरखि निकाई बाग की लोचन रहे लुभाइ।
सोनजुही के कुसुम ने लीनौ सुमन चुराइ ।।४०।।

इहाँ समस्त बाग सामान्य कहिए, सोनजुही बिसेपऊ कौ कहिबौ दोप है।

अथ बिसेष में सामान्य

यथा—चित चोरति भृकुटी निरखि करत औरई रंग।
पढे मोहनी मंत्र अलि, सब सुजान के अग ॥४१॥

इहाँ भृकुटी और निरखनि बिसेप कहिकैं सब अंग सामान्य कहिबौ दोष है।

अथ प्रसिद्धि अभिधा विरुद्ध द्विविधि एक कवि-संप्रदाय-विरुद्ध, एक सास्त्रविरुद्ध।

अथ कवि-सम्प्रदाय-बिरुद्ध

यथा—अति बिनोद सरसतु हिए, सुनत दुहूनि के बैन।
तुम दिनमनि हौ भावते, हैं चकोर तिय नैन ॥४२॥

इहाँ सूर्य सों और चकोर सों ??ति बर्नन कबिसंप्रदाय विरुद्ध है।

अथ शास्त्रविरुद्ध

यथा—उदै भयौ दिनकर निरखि प्रगटी प्रभा तरंग।
करि भोजन आनंद सों, द्विज न्हाए पुनि गंग ॥४३॥

इहाँ ब्राह्मण कौ बिना न्हाए भोजन करिबे कौ बर्नन शास्त्रबिरुद्ध है।

अथ देशविरुद्ध

यथा—सहित मयूर कदंब अरु सघन रसाल करीर।
गावत सबै गुपाल गुन, धनि सुंदर कसमीर ॥४४॥

इहाँ ब्रज कौ सौ बर्नन कसमीर में करिबौ देसबिरुद्ध है। आँब और करीर कसमीर में नाहीं।

है सिंगार की धीर मृदु प्रकृति कहत कबि लोइ।
धीरोदात्त सु वीर की प्रकृति लहौ सुख भोइ ॥४७॥
धीरोद्धत पुनि रुद्र की प्रकृति प्रगट पहिचांनि।
धीर सांति पुनि प्रकृति यह सांत रसहि की मांनि ॥४८॥
रस की चारि सु प्रकृति है, तीन प्रकृति गुन मांनि।
उत्तम अरु मध्यम अधम गुन सुरूप तें जानि ॥४९॥

अथ दिब्य प्रकृति-गुन-कथनं

उत्ताम दिब्य् सुभाव गुन यों बरनौं[1] सुख पाइ।
गगन गमन निरमोह अरु क्रोध कृपा फल दाइ ॥५०॥

अथ अदिब्य प्रकृति-गुन-कथनं

रति हसिबौ आचर्य सुख दुख सुभाउ नर होत।
दिव्य सुभाव मनुष्य में जिनि बरनौ कबि गोत ॥५१॥

अथ दिव्यादिव्य प्रकृति-गुन-कथनं

दिव्यादिव्यनि मद्धि जे कहे सुभाव अनूप।
लायक होइ सु बरनिए तिनि में सुनि कविभूप ॥५२॥

सिद्धिनि मे दिव्य गुन वर्निऐ और देवतानि में सिद्धिनि के गुन लायक होंइ जेते बर्निऐ तौ दूषन नाहिं।

अथ प्रकृतिविपर्यय दोष लच्छनं

रस गुन प्रकृति प्रतीप जहँ तहँ यह दोप बताइ ॥५३॥

अथ त्रिबिध अश्लील दोषनिवारन

दोहा—हास करुन बीभत्स में लाज अमंगल ग्लानि।
क्रम ते दोष कहै नही रसिक सलील कथानि ॥५४॥

इति श्री मन्महाराज कुँवार श्री प्रताप सिंघ हेत कवि सोमनाथबिरचिते रसपियूषनिधौ काव्यदोष बर्नंनं नाम बिसतितम तरंग ॥२०॥

---

1. बरनै [३]।

अथ गुननिरूपनं

कविता दोपविहीन हूँ विन गुन लसै न मित्र।
ताते गुन वरनतु प्रगट रीझै सुनत विचिच्छ ॥१॥

अथ गुनलच्छनं

छंद—रस सरसाई कौ जो हेत[1]।
ताहि कहत गुन बुद्धिनिकेत ॥२॥

पादाकुलक छंद

त्रिविध सु गुन उर में पहिचानो। मधुरता सु पुनि ओज वखानौ।
तातें वहुरि प्रसाद बतावौ। पढि सुनि अति अनद बरसावौ ॥३॥

रस सिंगार अरु करुन में पुनि सु सात महँ आनि।
मधुराई की सरसई तौ दरसे सुखदानि ॥४॥

अथ माधुर्य गुन

दोहा—श्रवन सुनत ही हिय स्रवै, अंग अंग सुख होइ।
ताहि मधुरता गुन कहै, कवि कोविद सब कोइ ॥५॥

अथ माधुर्य गुन की सामग्री कथनं

ट ठ ड ढ वरजित, विंद जुत, र न लघु बरन अनूप।
रचना सो माधुर्य की, सुनि रीझै कविभूप ॥६॥

यथा कवित्त

एक ओर सकल समाज ब्रजराज त्यों ही
एक ओर राधा वनसीवट के तीर में।
बाजत मृदंग होरी खेलत उमंग भरे
रंग वरसत काहू सुधि न सरीर में।
सौमनाथ सरसें सुहाग वर अंगना में
कोरिक मनोज की निकाई वा अहीर में।
लीनि पिचकारी तकै प्रेम मतवारी प्यारी
सोहै आपु भीर मै पै प्रान बलबीर में ॥७॥

---

1. अर्थ सु सरसाई औ हेत [३]।

अथ ओज गुन लच्छनं

बढै तेज उद्धत महा जाहि सुनत ही चित्त।
ताहि कहत हैं ओज गुन जे कविता के मित्त ॥८॥
बरनि ओज गुन बीर में, तातें अधिक सु रुद्र।
वातें बढि बीभत्स में भाषत बुद्धिसमुद्र ॥९॥

अथ ओज गुन-सामग्री-कथनं

दुत्त बरन रु टवर्ग जुत, रचना उग्र अपार।
जुक्त रेफ यों ओज गुन, बरनें रसिक उदार ॥१०॥

यथा कबित्त

साहिब सुजान श्री कुँवर परताप सिंघ,
तेरे दौरे रौरि होत[1] समुद किनारे लौं।
दुवन की अंगना उतंगगिरि-कंदरनि
मंडल सजति अपछरा के अखारे लौं।
सौमनाथ कहै दिग्ध धौंसा के धुकारे तैसे
फहरे निसान लगें अरिनि को आरे लौं।
पावक प्रताप कोलपट्ट उद्भट्ट भेटें
खंड होत दुर्ज्जन उदंड होत पारे लौं ॥११॥

अथ प्रसाद गुन लच्छनं

नवहू रस में अर्थ जहँ गंग नीर के तूल।
ताकौ कहत प्रसाद गुन, सुनत बढे हिय फूल ॥१२॥

यथा सवैया

आजु मैं केलि के मंदिर मे रति रंगनि कौ सब साज बनायौ।
आए तहाँ ससिनाथ सुजान सनेह सों ठोढ़ी के हाथ छुवायौ।
भेटिवे कौ फरके कुच औ भुज, बातनि कों मनहूँ ललचायौ।
लाज बसी बरुनीन में आनि बिलोकि सकी न कछू बनि आयौ ॥१३॥

---

१. तेरो दौरि दौरा होत [३]।

अथ अलंकार और गुन भेद कथनं

दोऊ रसदायक प्रगट गुन अरु भूषन जांनि।
भेद दुहुँनि में होइ क्यों, कहिऐ सो हित ठानि ॥१४॥

अब याकौं उत्तर—गुन सदा एक रस हैं। और अलंकार कहूं रस को पोषतु है कहूँ उदास, कहूँ दूषरू होय है, यह भेदु।

अथ रसपोषक अलंकार

यथा सवैया

कंचन से तन[1] सारी सुरंग किनारी सो दामिनि जोति जितौनि वे।
ओट अली की अचानक आइ हरैं हँसि पीर वियोग वितौनि वे।
और कहा कहिए ससिनाथ करी[2] उनि ता छिन हेत हितौनि वे।
नैननि में कसकै अजहूँ बरछी सी वनी तिरछौंही चितौनि वे ॥१५॥

इहाँ 'बरछी सी वनी' यह उपमालंकार सिंगार कौ पोषतु है।

अथ रस तैं उदास अलंकार

यथा—विद्या बुद्धि विचार वल वाहन वित्त अपार।
अंत समय पै होत ए वृथा सवै इक वार ॥१६॥

इहाँ सांत रस में वृत्यानुप्रास उदास है।

अथ रस कों दूपक अलंकार

यथा—गहकि गहकि कर खग्ग गहि, लहकि लहकि पद देत।
झनक मनक वखतरनि पै वाहत वाहन लेत ॥१७॥

इहाँ रुद्र रस में छेकानुप्रास दूपक है ए शब्द ह्यौं न चाहिए।

इति गुन निरूपनं

अथ शब्दचित्र-विस्तार-कथनं

अलंकार जो होतु सो उक्ति भेद तें होतु।
बक्र उक्ति कौं प्रथम ही तातें करतु उदोतु ॥१८॥

अथ वक्रोक्ति लच्छनं

शब्द कछू औरै कहै, कढ़ै और ही अर्थ।
ताही कौं बक्रोक्ति कहि, वरनै सुकबि समर्थ ॥१९॥

---

१. कंचन के तन [३]। २ कन्यो [३]।

यथा कवित्त

जा दिन तें आइके अथाई में नच्यौ है सजें
नटवर भेष गति बरनी परति नाहिं।
गोकुल में ऐसी वह कौन कुल की है जाकें
अजौं दृग कोर वे करेजे में अरति नाहिं।
पुरुष पराए ललचाए त मिलत कहूँ
केतौ समझायौ मति साहस धरति नाहिं।
कहा करौं आली तिहि छिन तें निहारी वह
मूरति बिहारी की बिसारी बिसरति नाहिं ॥२०॥

इहाँ यह बक्रोक्ति है कि ऐसी को हैं जाके नैननि की कोरें अरति नाहिने। अर्थात् सब कें अरति हैं।

अथ अनुप्रास कथनं

फिरें बरन जहँ एक से, अनुप्रास सो जानि।
लाटा, छेका बृत्ति पुनि, त्रिबिध हिएँ पहिचानि ॥२१

अथ लाटानुप्रास लच्छनं

वही होइ पद, अर्थ वह, भाव जहाँ फिरि जाइ।
सो लाटानुप्रास है, रसिकनि कों सुखदाइ ॥२३॥

यथा—रन में जे हर्षंत, नहीं ओछे तिन के बान।
रन में जै हर्षंत नही, ओछे तिन के बान ॥२३॥

इहाँ भाव फिरे तें लाटा भयो।

अथ छेकानुप्रास लच्छनं

एक बार ही फिरैं जहँ, घनें बरन सुखदाइ[1]।
सो छेकानुप्रास है प्रगट कह्यौ समुझाइ ॥२४॥

यथा कवित्त

सुंदर सुढार मुख सर के सिवार किधौं
राजत सिंगार के चँवर निरधार है।

---

१. समुदाइ [३]।

मोहन मयूर पखवार कि जमुन धार
दीरघ अपार कि फनिंद परिवार है।
सोमनाथ सहज सुगंध सुकुँवार छके
नंद के कुंवार री निहारि इक वार है।
तिमिर के तार हैं वसीकरन हार है कि,
काम करतार है कि प्यारी तेरे वार है।।२५।

यहाँ उदाहरन के निमित्त छेकानुप्रास ही जानिए और आभूषन पै विचार न कीजै।

अन्यच्च

मीन मद भंजन और गंजन सकल दुख
अंजन बिराहू मनरंजन सँवारे हैं।
भ्रू कमानवारे ते कितेक छबिवारे सोम-
नाथ रननारे किधौं प्रेम मनवारे हैं।
नैन अनियारे मैं न तेरे से निहारे प्यारी
लाज धन वारे नेह नृप के नवारे हैं।
पंचसरवारे पंच सर हू बिसारे हारे
खजन बिसारु भारे कंज दल वारे हैं॥२६॥

प्रथम कवित्त की नाईं यहू जानिऐ॥

अन्यच्च

कौननद के से दल मत्त मधुकरवारे
भारी कोरी जिन में वसीकर की सेनै हैं।
खूँदि डारि खंजन की जरद जलूसदार
मन के बिहार के भवन निधि चैनें हैं।
सोमनाथ सजल सनेह मतवारे नैन
तरुनी सँवारे खूबी सरसान तेनें हैं।
सरनि तें पैने, मीन मृगनि ते ऐनें, हेरे
हियौ हरि लैने हैं सुजान सुख दैनें हैं॥२७॥

ऐसैंई यहू जानिए।

अन्यच्च

दोहा –अबकेँ पिय परदेस की जिन करिए चरचानि।
चैत अधरमी तेँ भई गरमी की सरसानि ॥२८॥

याही सों 'विदग्धानुप्रास' कहत हैँ।

अथ वृत्तानुप्रास लच्छनं

एकौ बरन अनेक हू लगा लगी जहँ होत।
सो वृत्तानुप्रास है कहत कबिनि के गोत ॥२९॥

यथा सवैया

उमगी परति पंच रंग चूनरी ह्वै चारु
चंदबदनी के अंग कुंदन गुराई की।
ललित कपोलनि लगनि अलकनि छोर
चिलकनि दसन हँसनि मधुराई की।
सोमनाथ कहै मुकतावलि उरोजनि पै
भाल अरबिंदन की बिंद अतुराई की।
अंजन समेति अजौँ खंजनि से नैननि की
चुभि रही चित्त में चितौनी चतुराई की ॥३०॥

इहाँ चतुर्थ तुक में चकार की गुंफ वृत्तानुप्रास है।

अथ वृत्यनुप्रास में माधुर्य अरु ओज

प्रसाद क्रम तें गुन होँइ तो उपनागरिका, परुसा अरु कोमला वृत्ति जानिए। इन हीं वैदर्भी गोडी पांचाली वृत्ति कहत है।

इति अनुप्रास निरूपनं।

अथ जमक लच्छनं

सब्द एकही भाँति अरु अर्थ और ही होइ।
जमक ताहि पहिचानियौ सुनत हिए सुख भोइ ॥३१॥

यथा सवैया

सरस बिसाल हैँ बिसाल उर सौतिनि के
प्रेम मतवारे मतवारे प्रेम नीके हैं।
हारे बन हारे ह्वै कुरंग सु कुरंग और
सिपद अमीन मीन रथ रमनी के है।
सोमनाथ सुंदर सुजान प्रानप्यारे सुनो
निपट कहैं ई बनी निपट अनीके हैं।

निरखे जू अंजन सँवारे हैं सवारे नैन
बान कमनी के आगें बानक वनी के है ॥३२॥

अथ श्लेष लच्छनं

एक शब्द के होत जहँ अर्थ अनेक सुभाइ।
श्लेष कवित्त सु जानिए प्रगट कह्यौ समझाइ ॥३३॥

यथा कवित्त

सुंदर दुकूल सरसात सरसाइ सुख
जोबन तरंगनि सों कौतिग करति है।
कोक रस सानी ताकी जग में कथा है सांची
हरि मन भावै गनि कही न परनि है।
नेक नियरात अमलाई कौ लहत नैन
जोग तें मनोज विथा हठि कें हरति है।
सौमनाथ कहै नीके चित्त दे विचारि देखौ
तरुनी तरंगनी के भाँति विहरति है ॥३४॥

अन्यच्च दोहा

भूषन ॥ पहुँची जेहरि गूजरी झूमक नेवर ढार।
पाइजेब चौकी नही फूलति मन चँदहार ॥३५॥

अथ फूलबंध

सदा सुहागिल सुदरसन बंधुजीव औ रंग।
मदनबान अरसी जुही केतिक वन सारंग ॥३६॥

इहाँ सारंग कमल कोऊ नास है, मोरहू को नाम है, औरनि हू कौ नाम है।

अथ चित्रकाव्य लच्छनं

है सुघराई लिखन की प्रगटैं भेद अपार।
तासौं चित्र कवित्त कहि वरनै रसिक उदार ॥३७॥

चित्र कवित्त यथा

कही मुनि बात, गही उन तात, लही मन सात वही अनदात।
नही अनखात यही गुन गात सही तन वात तिही वन जात।
उही रन घात नही बिनसात जही बन पात उहीं सन हात।
मही धन खात दही तिन घात यही दिन रात चही पन सात ॥३८॥

अथ सातौ पन

बाल ॥१॥ कुँवार ॥२॥ पौगंड ॥३॥ किसोर ॥४॥ जुवा ॥५॥ मध्य ॥६॥ वृद्ध ॥७॥ या कवित्त सों मंत्री गति, अश्वगति, कपाट बंध, त्रिपदी, हार बंध ए चित्र होत हैं। चाहैं तो और हू होइँ लिखिबे की प्रवीनता सों। अगले पत्र मैं जंत्र लिखे हैं तासों जानिए।

मंत्री गति

क	ही	मु	नि	वा	त	ग	ही	उ	न	ता	त	ल	ही	म	न	सा	त	व	ही	अ	न	दा	त
न	ही	अ	न	षा	त	य	ही	गु	न	गा	त	स	ही	त	न	बा	त	ति	ही	ब	न	जा	त
उ	ही	ग	न	घा	त	न	ही	वि	न	सा	त	ज	ही	वि	न	पा	त	उ	ही	स	न	हा	त
म	ही	च	न	षा	त	द	ही	नि	न	घा	त	य	ही	दि	न	ग	त	च	ही	प	न	सा	त

अश्व गति

क	ही	मु	नि	वा	तग	ही	उ	न	ता	त	ल	ही	म	न	सा	त	व	ही	अ	न	दा	न
न	ही	अ	न	पा	तय	ही	गु	न	गा	त	स	ही	त	न	बा	त	ति	ही	ब	न	जा	त
उ	ही	ग	न	घा	तन	ही	बि	न	सा	त	ज	ही	न	न	पा	त	उ	ही	स	न	हा	त
म	ही	घ	न	षा	नद	ही	ति	न	घा	त	य	ही	दि	न	श	न	च	ही	प	न	सा	त

त्रिपदी

क	मु	बा	ग	उ	ता	ल्	म	सा	व	अ	दा	न	अ	षा	य	गु	गा	स	त	बा	ति	ब	जा
ही	न	त	ही	न	त	ही	न	त	ही	न	त	ही	न	त	ही	न	त	ही	न	त	ही	न	त
उ	र	घा	न	वि	सा	ज	ब	पा	उ	स	हा	म	घ	षा	द्	ति	घा	य	दि	रा	च	प	सा

हारबंध चित्र

कपाटबंध

क	ही
मु	नि
बा	त
ग	ही
उ	न
ता	त
ल	ही
म	न
सा	त
व	ही
अ	न
दा	त
न	हीं
अ	न
षा	त
य	ही
गु	न
गा	त
स	ही
त	न
बा	त
ति	ही
ब	न
जा	त

ही	ध
न	र
त	घा
हीं	न
न	त्रि
त	सा
ही	ज
न	ब
त	पा
ही	उ
न	स
त	हा
ही	मं
न	घ
त	षा
ही	द
न	ति
त	घा
ही	य
न	दि
त	रा
ही	च
न	प
त	सा

चक्रबंध चित्रं

दोहा—हरि सौं तिय हठि बिसरि हसि आदर हमकौं होइ।
सौति पाय परसै रिझै री कर कीजै सोइ ॥३९॥

धनुर्बंध चित्रं

दोहा—मनमोहन सौं मान तजि लै सब सुख ए बाम।
नातरु हनिहै बान अब हियें कुसुमसर बाम ॥४०॥

अथ गतागति चित्रं

कीनी ए नन एनी की सो हैं सदा दास है सो।
मोहै को न न को है मोती षे न चै चैन षेती ॥४१॥

धनुर्बंध चित्रं

गतागति चित्रं
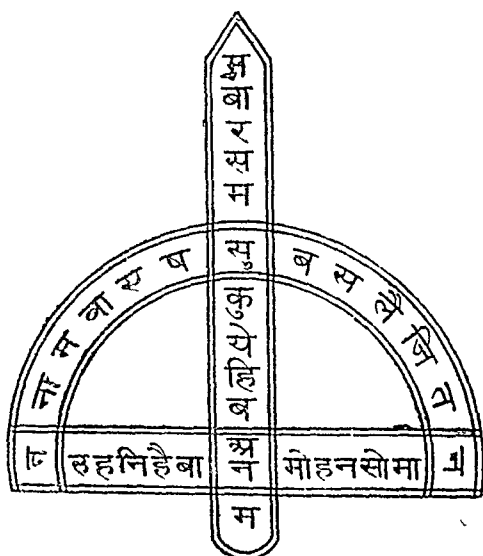
की	नी	ए	न
सो	हैं	स	दा
सो	है	को	न
ती	षे	न	चै

अथ चरणगुप्त

दोहा—रटत रहत सु अटक बिसरि सुर मुनि मन धरि टेक।
तिन चरननि चित मगन करि नित हित निहचै एक ॥४२॥
सकल जगत उतपति करनि, भुगति मुकति कर दानि।
लसति जु भव अँग वाम जपि, संकट हरनि भवानि ॥४३॥

१	र	ट त र	ह	त सु अ	ट
२	क	बि स रि	सु	र मु नि	म
३	न	ध रि टे	क	ति न च	र
४	न	नि चि त	म	ग न क	रि
५	नि	त हि त	नि	ह चै ए	क
६	स	क ल ज	ग	त उ त	प
७	ति	क र नि	भु	ग ति मु	क
८	ति	क र दा	नि	ल स ति	जु
९	भ	व अं ग	वा	म ज पि	सं

इति श्री मन्महाराज कुँवर श्री प्रताप सिंह हेत कबि सोमनाथविरचिते
रसपियूषनिधौ काव्यगुन शब्दालंकार चित्रालंकार बर्ननं
नाम एकविंशतम तरंग ॥२१॥

अथ अर्थालंकार निरूपनं

अलंकार के मूल हैं उपमेय रु उपमान।
ताते तिन कौं प्रथम ही बरनतु सुनौ सुजान ॥१॥
जा कौं समता दीजिए सौ उपमेइ बताइ।
जाकी समता[1] दीजिए सो उपमान सुभाइ ॥२॥
उपमेय रु उपमान पुनि बाचक, धर्म अनूप।
होंइ जहाँ चार्‌यौ सु वह पूरन उपमा रूप ॥३॥
एक दोय पुनि तीनि के लोपें लुप्ता जानि।
शब्द बिचारैं साब्दी अरथ आरथी मानि ॥४॥

सो, जिमि, जैसें, ऐसें-ए साब्दी और सम, समान, सदृश, ए आर्थी उपमा कहिए।

अथ पूर्णोपमा

यथा दोहा—चाहत सुख संपति सबै तौ नित प्रति चित लाइ।
ललित नवल नीरज सदृश रघुवर चरन मनाइ ॥५॥

इहाँ चरन उपमेय, कमल उपमान, ललित यह धर्म, सदृश वाचक यातें पूर्ण उपमा।

अथ साधारन धर्मलुप्ता

यथा–विहरे पगी उछाह में निज पछीति की छाँह।
धरें सषिनि की ग्रीव में हेमलता सी बाँह ॥६॥

इहाँ 'हेमलता सी बाँह' यह उदाहरन है।

अथ वाचकलुप्ता

यथा—चंद बदन की जोन्ह सो छबि की उठति तरंग।
निरखत ही हरि बस भए बिद्रुम अधर सुरंग ॥७॥

इहाँ 'विद्रुम अधर सुरंग' यह उदाहरन है।

---

1. उपमा [२]।

अथ उपमानलुप्ता

यथा--रची बिरंचि बिचारि कें सुनिए श्री घनस्याम ।
राधा सी सुंदर सुघर और न ब्रज में बाम ॥८॥

इहाँ राधा उपमेय 'सी' बाचक, सुंदरता धर्म है और उपमान लुप्त है ।

अथ उपमेयलुप्ता

यथा—फैलि रही रतिकुंज में चहुँ दिसि कला तरंग ।
फिरति चंचला सी चपल मनमोहन के संग ॥९॥

इहाँ चंचला उपमान, चपलता धर्म, सी बाचक और उपमेय 'तिय' कह्यो चाहिए-सो लुप्त है ।

अथ वाचक-धर्म-लुप्ता

अंत तापतन क्यौं सहति अजहूँ सिख उर आँनि ।
चलि ब्रजचंद सुजान की निरखि जोन्ह मुसिक्यानि ॥१०॥

इहाँ 'जोन्ह मुसिक्यानि' यह उदाहरन है ।

अथ धर्म-उपमान-लुप्ता

यथा—कहियो ऊधो निडर ह्वै करुना हियें समोइ ।
ब्रज बनितनि कें साँवरे तुम सम और न कोइ ॥११॥

इहाँ तुम साँवरे उपमेय, सम वाचक है । उपमान और धरम लुप्त हैं ।

अथ धर्म उपमेयलुप्ता

यथा - घूँघट को पट टारिकें चितई नेह निबाहि ।
मगन भयौ मन मोद तिहिं[१] सरद चंद सम चाहि ॥१२॥

इहाँ चंद उपमान और सम वाचक है ।

अथ धर्म-वाचक-उपमान-लुप्ता

यथा—बिलसति साथ सखीनि के पिक बैनीहि निहारि ।
निपट चकित चित ह्वै रहे मोहन सुमति बिसारि ॥१३॥

इहाँ पिकबैनी उपमेय ही कह्यौ; और पिक के बचन उपमान और सम बाचक और मधुर साधारन धर्म ए न कहे, तातें त्रिलुप्ता ।

---

१. तह [३] ।

अथ अनन्वयालंकार लच्छनं

उपमय रु उपमानता एक बस्तु को होइ।
तहाँ अनन्वय जानियो सुकवि सयाने लोइ ॥१३॥

यथा—नख सिख लौं निरखी सबै, ब्रज तिय भलें सिंगारि।
पै तोसी सुदरि तुही श्री वृषभानकुँवारि ॥१४॥

अन्यच्च कवित्त

दीननि के पालिबे को प्रगटे दुनी में तुम्हें
जानि गुन गावत दिगीसनि के डावरे।
आठहू दिसान में बड़ाई पाइबे के काज
औरनि को ढूंढ़त बड़े ते नर बावरे।
जेता जंग जालम कुँवर परताप सिघ
सोमनाथ बिक्रम से कीन्हें नव छावरे।
सज्जन के दरद बिदारिबे की बिस्वा बीस
रावरे सो साहिब निहारे एक रावरे ॥१५॥

इहाँ 'रावरे से रावरे' उदाहरन है।

अथ उपमानोपमेय अलंकार

लच्छनं उपमा जहाँ परस्पर जानो।
उपमानोपमेय सो मानो ॥१६॥

जथा दोहा—रहति डहडही रैन दिन फूल फलनि को मेलि।
तिय तू कचन बेलि सी, तुव सम कंचन बेलि ॥१७॥

अथ प्रतीप अलंकार

जथा--बचन मधुर धुनि को कहा रहो गरूर बढाय।
नैं सुक निज अँगुरीन सों सुनिए बीन बजाय ॥२१॥

तृतीय प्रतीप लच्छन

उपमे तें उपमान जब आदर पावै नाहि।
है प्रतीप को भेद ये तृतीय सु गन चित चाहि ॥२२॥

जथा- क्यों साजति है नवल तिय मनि आभरन अमंद।
तेरे तन की चमक तें दामिनि दीपति मंद ॥२३॥

अन्यच्च कवित्त

कोमल अरु रंग तरुन अनंग कर
आनँदभरन दुखहरन हिसाब के।
पाई है न रंचक निकाई गुडहर गज
जिन वे रसाल दल पटल कवाब के।
सौमनाथ सुकवि निरखि तरुनी के चारु
करनि की उपमा को बरनि वृथा बके।
वारियत बृंद कोकनद के सरदवारे
गारियत गहगहे गरब गुलाब के ॥२२॥

इहाँ चतुर्थ तुक मे उदाहरन है।

अथ चतुर्थ भेद लच्छनं

उपमे के सम कौ जबै नहिँ लायक उपमान।
है प्रतीप को भेद यह चौथी समझि सुजान ॥२३॥

यथा--जे जग में पंडित सुकवि को कहि सकै विचारि।
अति उदार परताप सो सुरतरु की उनिहारि[1] ॥२४॥

अथ पंचम भेद लच्छनं

उपमे को उत्तम निरखि वृथा होय उपमान।
पंचम भेद प्रदीप को यौं बरनौ बुधिवान ॥२५॥

यथा—तिय तो मुख ही सों सदा रहै उजास अमद।
कहिए कहा बिरचि सौं वृथा रच्यो है चंद २६॥

---

१. अनुहारि [३]।

अथ रूपकभेद कथनं

पादाकुलक छंद

रूपक द्वै बिधि उर में आनौ। तद्रुप और अभेद बखानौ।
त्रिबिधि फेरि ए तीन्यौ जानौ ' अधिक न्यून सम करि पहिचानौ॥२७॥

अथ अधिक तद्रूप रूपक

यथा—बिषधर नागिनि तें सरस, तिय लट नागिनि स्याम।
निरखत ही आवै लहरि, बिसरे सब धन धाम॥२८॥
इहाँ निरखत हीं लहरि आवे इह अधिक है।

अथ न्यून तद्रूप रूपक

यथा—मोहन यह सब बिधि लसै[1] पै न ग्रहनि को ईस।
सीसफूल दिनकर नयौ लखौ[2] तरुनि के सीस॥२९॥
इहाँ सीसफूल सूर्य सो रूपक, पै ग्रहनि को ईस नाहीं यह न्यून।

अथ सम तद्रूप रूपक

यथा—मन भाए फल हेत नित, सुनि प्रताप रसखांनि।
साँचे तुव भुज कामतरु, सुरतरु और कथानि॥३०॥
इहाँ 'भुज कामतरु' इह उदाहरन है।

अथ अधिक अभेद रूपक

यथा—ब्रज में बिहरै छहूँ रितु, पुजवै सब के काम।
नेह धार बरसतु सखी मनमोहन घनस्याम॥३१॥
इहाँ 'मनमोहन घनस्याम' रूपक और छह रितु और नेह बरसिबो अधिक।

अथ न्यून अभेद रूपक

यथा—जगमगात मंदिर सबै कान्ह निरखियै रंग।
है साँची तिय दामिनी, पै न चपलता अंग॥३२॥
इहाँ 'चपलता नाहीं' यह न्यून।

अथ सम अभेद रूपक

यथा—निरखत ही रँग रीझि कै लई रँगीले लाल।
छिनहूँ छुटति न कंठ तें, इह तिय चंपक माल॥३३॥
इहाँ 'तिय चंपकमाल' उदाहरन हैं।

---

१ लसत [२]। २. लख्यो [२]।

अथ परिनामालंकार लच्छनं

ह्वै अभेद उपमान सो क्रिया करै उपमेय ।
सो परिनाम कहावई सुनत श्रवन सुख देइ ॥३४॥

यथा—नए नेह तें द्रगनि में कछुक लाज सरसाति ।
लखि अलि[1] तिय मुखचंद सों प्रीतम सों बतराति ॥३५॥

इहाँ 'मुखचंद सों बतराति' यह उदाहरन है ।

अथ उल्लेखालंकार लच्छनं

बहुत रीति सों एक को बहुत लेत जिय जानि ।
कै बहु गुन सों एक को बहु विधि कहे बखानि ॥३६॥

अथ प्रथम उल्लेख

यथा कबित्त

प्रेम करि सुंदर सवारे अरबिंद नंद
जोरि करि कला जग साहस प्रसंग को ।
सौमनाथ बरनै अतंक तें महीप काँपें
पेसकस भेजे वर मानिक मतंग की ।
बखत बिलंद परताप सिघ तेरे बाहु
सीखे बिधि पारथ के धनुष निषंक की ।
सज्जन कै जिनकी प्रतीत कलपद्रुम की
जंग रंग जेता दुसमन के भुजंग की ॥३७॥

इहाँ चौथी तुक में उदाहरन है ।

अथ द्वितीय उल्लेख

यथा कवित्त

बल करि भीम, हनुमत स्वामि काज करि,
सिद्धि करि बिस्वामित्र बखत बिलंद है ।
सांच करि धरम, पियूषनिधि बेला करि
गुन कै गनेस निरवारै दुख दंद है ।

1. लखि लखि [२] ।

सोमनाथ कहै सुनि कुंवर प्रताप सिं[illegible]
संपति समुद्र के [illegible] सुधारि [illegible]
सील करि सरस सुधाकर [illegible] ग्यानि
मौज मारि कें [illegible] है ॥७८॥

अथ स्मृति अलंकार लच्छन

सुधि आवै उपमेय की, लखि उपमान अनूप।
स्मृति आभूषन कहत है [illegible] कविन के भूप ॥७९॥

यथा—जब तें अलि के संग तें, गई [illegible] नैन।
तब तें छिनु बिसरे नहीं, छबिल लाल के बैन ॥८०॥

अथ भ्रांति अलंकार लच्छन

भ्रांतिमान भ्रम सों कहैं [illegible] के निरधार ॥८१॥

यथा—बरनि मानि को लाल [illegible] सखी के अंग।
नैन तामरस जानि अलि, भ्रम सों तजत न संग ॥८२॥

अथ संदेहालंकार

या को नाम ही लच्छन।

यथा—निरखत ही मोहित भए श्री परताप सुजान।
तिय तुव कर की आंगुरी, किधौं मदन के बान ॥८३॥

अपन्हुति अलंकार

अथ शुद्धापन्हुति लच्छनं

करि लीनें आरोप तें जहां धरम दुरि जाइ।
शुद्धापन्हुति कहत हैं ताहि सबै कविराइ ॥८४॥

यथा—चंदन की बेंदी नहीं क्यौं अलि करति बिचार।
परगट भयौ सुहाग यह, तिय के ललित लिलार ॥८५॥

इहाँ बेंदी को धर्म दुरि गयो सुहाग के आरोप तें ॥

---

1. उद्दंड [२]।

अथ हेतु अपन्हुति लच्छनं

जहाँ दुरावै वस्तु को कछू जुक्ति उपजाइ।
हेतु अपन्हुति जानि सौ पगट कह्यौ समुझाइ ॥४६॥
यथा—नर में इतौ न बल, अमर छिति पै धरै न पाइ।
गिरधारन को ठीक यह सेस अवतर्‌यौ आइ ॥४७॥

इहाँ वस्तु श्रीकृष्ण सो ताहि जुक्ति सों दुरायो।

अन्यच्च

तिय में इतौ न रूप, तन थिर न चंचला जोति।
मंदिर में मनिमाल इह जगमग जगमग होति ॥४८॥

अथ पर्यस्तापन्हुति लच्छनं

जहँ लै कै गुन एक कौ, आरोपत पर ठौर।
पर्यस्तापन्हुति कहै ताहि रसिक सिरमौर ॥४९॥
यथा—हिएँ लाल के चुभत ही वेगुधि किए निदान।
तीखे मनमथ तीर, नहि तिय दृग तीछन वान ॥५०॥

इहाँ तीछनता काम के बान कौ गुन नेत्रनि में आरोप कियौ।

अथ भ्रांतापन्हुति लच्छनं

दूरि होय भ्रम और कौ जहाँ वचन सुनि कान।
भ्रांति अपन्हुति बरनि के ताहि कहैं गुनवान ॥५१॥
यथा—लाल अरुनई दृगनि क्यों, कहौ आरसी ताकि।
होरी आगम जानिके पियो राम रस छाकि ॥५२॥

इहाँ साची बात सों भ्रम दूरी करै।

अथ छेकापन्हुति लच्छनं

पर सों बात दुराइए, जहाँ जुक्ति करि मित्र।
छेकापन्हुति सुमति सो वरनत सकल बिचित्र ॥५३॥
यथा छंद—निरखत नैननि चैन अधिक उपजावही
कर परसे ते अंग मनोज बढ़ावहीं।
तिय यह चरचा करति सुमीत गुविद की
नहि अलि, सुंदर बरन सरस अरविंद की ॥५४॥

अथ केतवापन्हुति लच्छनं

मिसु करि कै जहँ एक कौ औरहि कहें बखानि।
बुधि कै बिमल बिचार सों कितव अपन्हुति जानि ॥५५॥
यथा—राखि रही समझाइ पै[1] बिछुरि गई कुल कानि।
हरि मुरली की टेर मिस नित बिष बरसै आनि ॥५६॥

अथ उत्प्रेच्छा त्रिविधि

अथ वस्तूत्प्रेच्छा लच्छनं

और पदारथ में जहाँ तर्क और करि लेत।
वस्तूत्प्रेच्छा ताहि कहि बरनत बुद्धि सचेत ॥५७॥
यथा—भरी माँग मुकतानि तिय, सरसो सोभ अपार।
लसति स्याम घन मे मनों उदित नछत्र कतार ॥५८॥
अन्यच्च तिय लिलार पै लाल यों सरसे सहित सुहाग।
लिएँ रहति नित सीस पै मनु पिय कौ अनुराग ॥५९॥

अथ हेतूत्प्रेच्छा लच्छनं

हेतु समेत बिचार जहँ तर्क करत कबिराज।
हेतुत्प्रेच्छा सो समुझि पढ़त बढ़े सुखसाज ॥६०॥

यथा कवित्त

दिनकर किरनि वरुन रस लीन भई
गगन कछूक ससि किरनि बुझाई है।
संकुचित पंकज कुमुद बिकसित रंच
पंचसर नवल प्रतिच धनु नाई है।
फूली साँझ निपट सुहावनी निहारत ही
सोभा कबि सोमनाथ वरनि सुनाई है।
बालम के आगम उमगनि तें मानों भई
रैंनि मुख मंजुल अमंद अरुनाई है ॥६१॥

इहाँ रात्रिपति चंद ताको आगम हेतु ते अरुनाई भई, यह उदाहरण है।

---

१. समुझाइ है [२]।

अथ फलोत्प्रेच्छा लच्छनं

फल लैबे के भाव सों तर्क करत जहँ जाँनि।
सौ फल की उतप्रेच्छा बरनत है रसखांनि '।६२।'

यथा कबित्त

देतु नित दाँन अमरनि को सरीर वुही
बर तैं वही बिधि तें तम कौ हरतु है।
मित्र के उदै में तऊ सोभ न रहति तव
सौमनाथ कहै यौं बिचार बितरतु है।
रैंनि दिन जागतु न लागतु पलक पल
बिथा के परस तें कहूँ न ठहरतु है।
तेरे मुखचंद सम ह्वैबे कौ अखंड जोति
प्यारी ससि भाँवरी सुमेर की भरतु है ॥६३॥

इहाँ अखंड जोति फल पाइबे के लिये जतन करतु है चंद।

अन्यच्च

श्री परताप सुजान सुनि, सुंदर सुघर दयाल।
तुव जस के सम होन को मुक्ता चुगतु मराल ॥६४॥

अथ रूपकातिशयोक्ति लच्छनं

केवल जहँ उपमान को कहिबो है सुखदानि।
रूपक अतिसय उक्ति सो रसिक लेहु पहिचानि ॥६५॥

यथा कबित्त

थरहरैं कुंदन कदलि, अरबिंदन पै
गुंजरत भँवर समीप सरवर हैं।
फरकत कोक सुरसरि की तरंग संग
भेंटत कलपबेलि काम तरुवर है।
बिद्रुम सुरंगनि में हीरा की जगति जोति
सौमनाथ कहै सो मधुरता कौ घर है।
देखौ लसै दामिनि नछत्र जलधर माहि
नछत्रपति अंक में बिचित्र दिनकर है ॥६६॥

इहाँ सब उपमान कहे हैं और विपरीत रति वर्नन है ।

अथ अपन्हवातिशयोक्ति या सापह्नव अतिशयोक्ति लच्छन

गुन अति परगट और को, औरै ठौर लसाइ ।
कहैं अपह्नुति की सु यौं अतिशय उक्ति बनाइ ॥६७॥

यथा—निसि दिन मुख गरस्यौ रहै राजै गुनी हजूर ।
बिबुधपाल परताप तू, इंद्रहि कहै सु कूर ॥६८॥

इहाँ इंद्र कौ गुन विबुध पालिबौ सो परताप सिंह में लख्यौ ।

अथ भेदकातिशयोक्ति लच्छनं

औरै पद यह छंद में बहुत ठौर जो होइ ।
भेदक अतिसय उक्ति सो समझो कवि सुख भोइ ॥६९॥

यथा—औरै गति बिथुरी अलक औरै रँग के नैन ।
तिय हम सों अजहूं कहति आगे विधि के बैन ॥७०॥

अथ सवंधातिशयोक्ति लच्छन

देत अजोगहि जोग जहँ सुकवि कवित में आनि ।
संवंधातिसयोक्ति सो समुझि लेहु गुनखानि ॥७०॥

यथा—साहिव श्री परताप सुनि जेता जालिम जंग ।
ऊँचे अमर पहार लौं तेरे सगद मतंग ॥७१॥

इहाँ मतंग सुमेर के जोग्य नहीं पै किए ।

अथ असंबंधातिशयोक्ति लच्छनं

जोग्यहि करत अजोग्य जहँ वरनन में कविराज ।
असंबंध सो जानिये अतिसय उक्ति समाज ॥७२॥

यथा—श्री परताप कुवार इमि जालिम तुव तरवारि ।
जा पै दुवनि विदारिवो तड़िता पढति विचारि ॥७४॥

इहाँ तड़ित जोग्य है, पै तरवारि के आगें अयोग्य कीनो ।

अथ अक्रमातिशयोक्ति लच्छनं

हेतु काज जहँ संग सो अक्रम अतिसय उक्ति ॥७५॥

हेतु कारन और काज कार्ज ।

यथा—नख सिख लौं तिय थरहरी उर में सरस्यौ नेह ।
पिय के चाले साथ ही भई दूबरी देह ।।७६।।

इहाँ पिय को पयान हेतु और दुबराई कार्य साथ हूँ और सहोक्ति में कारन कार्य को प्रयोजन नाहीं इह भेद यासों वासों ।

अथ चपलातिसयोक्ति लच्छनं

जहाँ हेतु कौ नाम सुनि कारज होइ अनूप ।
चंचल अतिशयउक्ति सो समझत है कविभूप ।।७७।।

यथा—नेंकु परसि कें लखि सखी कौतिक नयौ अपार ।
नाउँ सुनत हीं पीय को भए चीकने बार ।।७८।।

अथ अत्यंतातिसयोक्ति लच्छनं

हेतु कार्य को है न जहँ पूरब पर क्रम मित्र ।
अत्यंताक्तिसयोक्ति सो वरनत रसिक विचित्र ।।७९।।

यथा—उमगे अंग उछाह सों नोवी डिगी बिसाल ।
बिरह बिथा पहलें टरी पीछे लखे गुपाल ।।८०।।

अथ तुल्यजोगिता त्रिबिध ।। प्रथम लच्छनं

हित को अनहित को अरथ एक शब्द में होइ ।
तुल्यजोगिता प्रथम सो समुझो वुद्धि बिलोइ ।।८१।।

यथा—बखत बली परताप को है यह प्रगट सुभाउ ।
मित्र अमित्रनि को सदाँ निरखि देत सिर पाउ ।।८२।।

इहाँ मित्र को सिरोपा सत्रु के सिर पै भाउ ।

अथ द्वितीय तुल्यजोगिता लच्छनं

बहु बस्तुनि में होइ जहँ एकें बानि प्रकास ।
तुल्यजोगिता दूसरी समझि लेउ सबिलास ।।८३।।

यथा—नेकु न चंचलता रहे किए हजारक छंद ।
दिनकरनंदन की चलनि अरु मूरख मतिमंद ।।८४।।

ईहाँ सनि की गति और मूरख की मति मंद है मंदता द्वै ठौर है ।

अथ तृतीय तुल्यजोगिता लच्छनं

इक ही सो गुन करि तहाँ वहु सों समता साज।
तुल्यजोगिता को कही[1] तृतिय रूप कविराज ॥८५॥
यथा – निसि बासर नँदनद सो तनक न बिछुरति बाल।
तुही मोहिनी मन, तुही, मुरली, तू बनमाल ॥८६॥

इहाँ अनबिछुरिबौ गुन।

अथ दीपक अलंकार लच्छनं

वर्न्य[2] इतर इक भाव ही जहँ निज गुन सों होत।
सो दीपक सुनि कें बढै हिय में हरष उदोत ॥८७॥
यथा—मैं तुम सों जु कही तवै, अब सु लखौ सुख दैन।
सरसै सिंधु तरंग तें[3] चंचलता तें[4] नैन ॥८८॥

इहाँ वर्न्य नेत्र और इतर समुद्र अपनें गुननि सों एक भाइ भए।

अथ दीपकावृत्ति त्रिबिधि

प्रथम दीपकावृत्ति

आवृति हो सबद की जहाँ। दीपक आवृति पहिली तहाँ ॥८९॥
यथा – बिरमि रहे परदेस ही भली निवाह्यो नेह।
बिरह सताई देह पिय अजहूँ दरसन देह ॥९०॥

इहाँ 'देह' शब्द द्वै ठौर है पै अर्थ न्यारौ है।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

जहाँ अरथ की आवृत्ति होइ। दीपक आवृत्ति दूजौ सोइ ॥९१॥
यथा – धन्नि जनम गनि[5] आपनों, तिय आनँद[6] उर आनि।
हरषे नैन गुविंद के निरखि मंद मुसिक्यानि ॥९२॥

इहाँ 'आनंद' और 'हर्ष' एक ही अर्थ, द्वै बेर आवृत्ति भई।

---

१. कह्यौ [३]।
२. बरनि [३]।
३. तरंग में [३]। ४. चंचलता में [३]।
५. धन्य जनम गहि [३]। ६. अनंद [३]।

अथ तृतीय भेद लच्छनं

सब्द अर्थ की होति है आबृति जिहिं ठाँ आइ ।
दीपक आबृति कौ तहाँ तीजौ भेद गनाइ ॥९३॥
यथा--सुंदर फुलवारी सघन लखि लखि भई निहाल ।
लई अंक भरि कान्ह तब संकि थरहरी बाल ॥९४॥

इहाँ 'लखि लखि' द्वै बेर सब्द, अर्थ एक ही है ।

अथ प्रतिवस्तूपमा लच्छनं

होइ समान जु वाक्य दै प्रतिबस्तूपम सोइ ॥९५॥
यथा--सुख बरसो मिलि कान्ह सों, तजौ अटपटे तेह ।
लसै नारि मनि माल सौं लसै नारि पिय नेह ॥९६॥

इहाँ 'लसै नारि' यह वाक्य द्वै बेर है ।

अथ दृष्टांत अलंकार लच्छनं

बिंब और प्रतिबिंब सौं जहाँ निरखियै भाव ।
अलंकार दृष्टांत सो जानंत सबै कविराव ॥९७॥
यथा--परबत-पच्छ-बिदारनौ सुरपुर में अमरेस ।
पर-मद-गंजन जगत में श्री प्रताप कुँवरेस ॥९८॥

अथ निदर्शना त्रिबिधं

बाच्य अर्थ करि सम जहाँ दोऊ दरसैं मित्र ।
सो है प्रथम निदर्शना समझौ सकल बिचित्र ॥९९॥
यथा—फैलि रह्यौ मनि सदन में आनन अमल प्रकास ।
अलकनि चंचलता अजू नागिनि गवन बिलास ॥१००॥

इहाँ अलकनि की चंचलता और गमन करति नागिनि ए वाच्यार्थ सों समान कीनी ।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

होत और गुन और में एक किए निरधार ।
दूजो भेद निदर्शना समझौ कवि रिझवार[1] ॥१०१॥

---

१. सुकवि कहैं रिझवार [३] ।

यथा--श्रीपरताप महाबली तेरो सुजस गँभीर।
लहि बिहार कलहंस के लसतु मानसर तीर ॥१०२॥

इहाँ मानसर बिहरिबौ हंसनि कौ गुन है, सो जस में मानसर बिहरिबो हंस बतायौ।

अथ तृतीय भेद लच्छनं

कारज निरखि बताइए भले बुरे कौ भेद।
तीजौ भेद निदर्शना बरनें कबि तजि खेद ॥१०३॥

यथा—सबै ठौर समता भली दूजी बिधि न सवाद।
श्रवन सुखद कहि कौन कौं सठ पंडित कौ बाद ॥१०४॥

अथ व्यतिरेकालंकार लच्छनं

जहाँ होइ उपमान तें कछु गुन बढि उपमेइ।
सो बितरेक[1] बखानिऐ रसकनि कौं सुख देइ ॥१०५॥

यथा—तिय कंजन की बेलि सी पै इह अंतर जानि।
चितवनि बोलनि चलनि जुत, अधरनि मृदु मुसिक्यानि ॥१०६॥

अथ सहोक्ति लच्छनं

एक संग बरनत जहाँ सो सहोक्ति उर आनि ॥१०७॥

यथा—हरि दुरि कें निरख्यौ हियै जीवन कियौ बिहार।
बढे दृगनि के संग ही नबतरुनी के बार ॥१०८॥

अथ बिनोक्ति द्वै विधि ॥ प्रथम लच्छनं

प्रस्तुत जहँ कछु बस्तु विनु सोभा लहै न रंच।
प्रथम बिनोकति कहत है सब कविता के पंच ॥१०९॥

यथा—नीकी आनन अरु नई, भृकुटी की बिधि बंक।
अलबेली बिनु छीनता लसति न तेरी लंक ॥११०॥

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

प्रस्तुत जहँ कछु बस्तु बिनु सोभा लहै अनंत।
विनय उक्ति कौ भेद यह[2] दूजौ समझो संत ॥१११॥

---

१. व्यतिरेक [३]। २. या विनोक्ति के भेद को [३]।

यथा—या बिधि समझि प्रताप कौ पग सेवत नृप नित्त ।
चौंसठि कला निधान[1] है नैकु न कायर चित्त ॥११२॥

अथ समासोक्ति लच्छनं

प्रस्तुत बर्नन में जहाँ प्रस्तुत फलै अनूप ।
ताहि समासोकति कहै सकल कबिनि के भूप ॥११३॥

यथा—निसि बासर अब रहतु है कुंजनि में व्रजराज ।
मधुपहू भए सचेत तिय लखि फूलौ रितुराज ॥११४॥

इहाँ कुंजनि में रहिबौ हरि कौ प्रस्तुत तामैं मधुपनि कौ सचेत कहि कैं नाइका कों समझाइबौ प्रस्तुत फली कि मधुप भँवर सो औ मतवारे हू सो कहत है कि वेऊ चेते पै तू न चेती जु पिय सौं मिलै ।

अन्यच्च

अलबेली इनि दिननि[3] में ह्वैहै भलै निबाह ।
तेरे तरुनाई भई पिय हू के चित चाह ॥११५॥

इहाँ तरुनाई प्रस्तुत में तहाँ नायक कैं चित चाह प्रस्तुत फली ।

अथ परिकर अलंकार लच्छनं

होय जहाँ आसय लियें कछू बिसेषन रूप ।
परिकर आभूषन कहें ताहि बिचित्र अनूप ॥ ११६ ॥

यथा--उपजति बिथा सरीर में बिछुरत सबै सयान ।
पैनें तिय के नैन ए बैधैं हियौ निदान ॥ ११७ ॥

इहाँ तिय के नैंन पैंनें तिन कौ बेधिबौ बिसेषन दीनौ ।

अथ परिकरांकुर लच्छनं

सहित प्रयोजन है जहाँ सब्द बिसेष्य सुभाइ ।
परिकुर अंकुर समझि[4] कें ताहि कहैं कबिराज ॥ ११८ ॥

यथा—आली इहि दुपहर समें, इह उपाइ अभिराम ।
सब गरमी घटि जाइ जौ अब आवै घनस्याम ॥११९॥

---

१ बिधान [३] । २ टीका—फबी [३] ।
३. इन दिनन [३] । ४. समुझि [३] ।

इहाँ 'घन स्यामे' सब्द विसेष्य-प्रयोजन सहित है। घनस्याम कृष्ण हूँ और जलद हूँ सौं कहत है तापनिवारक दोऊ।

अथ-अप्रस्तुतप्रसंसा लच्छनं

करियतु बर्नन और की जहाँ[1] और पर डारि।
अप्रस्तुत परसंस सो बरनत सुकवि सुधारि ॥ १२० ॥

यथा कवित्त

सुंदर सलिल आछे अंगनि में भरि और
गहगहे रूप चहूँ ओर दरस्यौ करी।
धुरवा बिखेरि धूम धार से अनंत चारु
अंबर तें भूमि-अवनी कौ परस्यौ करौ।
सोमनाथ बरनें गरजि निसि वासर हूँ
मन माँझ नेम सौं मनोज सरस्यौ करौ।
औसर में बरसे बडाइ होति मेघन की
औसर बिसारि बरसौ तौ बरस्यौ करौ ॥१२१॥

अन्यच्च

दिसि विदिसानि तें उमड़ि मढ़ि लीनौ नभ
छोड़ि दीनें धुरवा, जवासे जूथ जरिगे।
डहडहे भए द्रुम रंचक हवा के गुन
कहूँ कहूँ मुरवा पुकारि मोद भरिगे।
रहि गए चातक जहाँ के तहाँ देखत ही
सोमनाथ कहै बूँदबूँदी हू न करिगे।
सोर भयो घोर चहूँ ओर महिमंडल में
आए घन आए घन आइके उघरिगे ॥ १२१ ॥

इहाँ अन्योक्ति ही जानि लीजै और आभूषनें दृष्टि न कीजे।

---

1. कहै [२] ।

अन्यच्च

छीरनिधि नंद नंदनंद को हितू है और
इंदिरा की सोदर, बिभावती को नाह है।
संकर को तिलक, अमंद सुधामंदिर है
सीतल जुन्हाई सौं बिडारै दुख दाह है।
अति ही उदार करतार ने रच्यौ है पुनि
पैज करि पूरौ पुनि मंडित उछाह है।
सोमनाथ बरनैं समत्थ इमि चंद तऊ
केवल चकोरहि बिलोकिबे की चाह है ॥ १२३ ॥

त्यौंहीं इहाँ समझिए।

अन्यच्च

राजहंस मन दै सुनौ यहै अनोखो गाँउ।
बानि भुलाए आपनी, लोग धरैंगे नाँउ ॥ १२४ ॥

अन्यच्च सवैया

आरस को तजि कैं करि उद्यम धाक चहूँ दिसि में अधिकाइहै।
ना तरु छीन तें ह्वै है मलीन औ दीन भए तें मलीन कहाइहै।
प्रेम सों बैन सुनौ ससिनाथ को, ए मृगराज कह्यौ समझाइहै।
सीखौ सबै निज बंस के ढंग, सुरंग तबै मुख ऊपर आइहै ॥ १२५ ॥

अथ प्रस्तुतांकुर लच्छनं

प्रस्तुत मे प्रस्ताव[1] जहँ प्रस्तुत अंकुर सोइ ॥ १२६ ॥

यथा—रीझैगो दिन चारि में लखे बगनि[2] के बंस।
सेवै तुच्छ तलाब को छोड़ि मानसर हंस ॥ १२७ ॥

इहाँ तुच्छ तलाब करि के नीच पुरुष तासों प्रस्तुत हैं। ता में मानसर और उत्तम पुरुष हंस को प्रस्ताव है यह भेद अन्योक्ति सों।

---

१. प्रस्तुत [३]।
२. लखि बगलनि को [३]।

अथ पर्यायोक्ति द्विबिधि

प्रथम लच्छनं

कछु रचना सों बात जहँ पर्यायोकति एक ॥१२८॥

यथा—रीझि रही तुम कौं निरखि, अति प्रवीन सो बाल।
आजु सांवरे को कियो जिनि बहुरंगी लाल ॥१२९।

आजु साँवरे तें बहुरंगी कियो अंजन पीक जावक इत्यादिकनि सौं यह बचन की रचना भई।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

मनभायौ कारज जहाँ मिसु करि कीजतु मित्र।
पर्यायोकति दूसरी समझौ ताहि विचित्र ॥१३०॥

यथा—लखि मोहन तिय को बदन मृदु मुसिक्याइ अमोल।
लट सुरझैबे के मिसिनि[1] छिगुनी छिए कपोल ॥१३१॥

अथ व्याजस्तुति लच्छनं

निंदा की मिसु करि जहाँ होइ बड़ाई चारु।
ब्याजस्तुति तासो कहै रसिकनि को सिरदारु ॥१३२॥

यथा—घर में एक बिसाति है अति कराल किरवान।
परधन को हरि लेत हौ निरखे भले दिवान ॥१३३॥

इहाँ पर' शत्रु को नाम है ताकौं धन तरवारि सो लेत हौ, यह स्तुति भई।

अथ ब्याजनिंदा लच्छनं

निंदा कीजै और की होइ और की आनि।
सबै कबिनि कौ मत यही ब्याजनिंद सौ जांनि ॥१३४॥

यथा बँसुरी सठ सोई निपट ऐसी रची बनाइ।
कीनों नहीं दुसाल तू अति छाती चहकाइ ॥१३५॥

इहाँ निंदा बाँसुरी बनावनवारे की भई प्रगट ये निंदा बाँसुरी की है बनावन वारे की नाहीं।

---

१. मिसुनि [३]।

अथ त्रिविध आच्छेप

प्रथम लच्छनं

होइ जहाँ आभास सो कछु निषेद को आइ।
प्रथम कहत आच्छेप कौ यह सरूप समझाइ ॥१३६॥
यथा—हठि करि बरजति हौं नही चलिऐ लाल बिदेस।
पै बिरहिनि कौ देइगो सावन मास कलेस ॥१३७॥

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

प्रथमहि कहि कै वचन कछु पुनि फेरियै जु ताहि।
आच्छेप कौ सुरूप यह दूजौ जानि सराहि ॥१३८॥
यथा—अलबेली तिय क्यौं ह्वईं[1] लावति सखी सयान।
कै मनिमंदिर में ह्वैंईं[2] चलियै क्यौं न सुजान ॥१३९॥

अथ तृतीय भेद लच्छनं

कछू वचन बिधि सों जहाँ दोष निषेध बिलाइ।
तृतिय भेद आच्छेप कौ समझि लेउ सुख पाइ ॥१४०॥
यथा—दंपति अंक भरन समै ढिग आवति अलि हेरि।
मधुर बोलि बीरी नवल बिहँसि मँगाई फेरि ॥१४१॥
इहाँ बीरी के मगाइबे नें वा सखी के आइबे के निषेध कौ दोष छिपायौ।

अथ विरोधाभास लच्छनं

भासे जहाँ विरोध सौ अविरोधी सब अर्थ।
सु है विरोधाभास कबि जानत बुद्धिसमर्थ ॥१४२॥
यथा—गुन-गन-मंडित जगत में श्रीपरताप सहेत।
नेह न रंचक दान सों, निति प्रति सुवरन देत ॥१४३॥
इहाँ 'दान' मद कौ नाम है।

अथ विभावना प्रथम लच्छनं

विना हेतु जहँ कारज सिद्ध। सो बिभावना जानि प्रसिद्ध ॥१४४॥

---

१. तिय को इहाँ [६]। २. उहाँ [३]।

प्रथम यथा

अलबेली रुचि सों रमैं उही कदम की छाँह।
बिनु हीं पिय निरखे, हरषि[1] बिहँसि पसारे बाँह ॥१४५॥

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

जिहि ठाँ सूछम हेतु तें पूरन सुधरै काज ॥१४६॥

यथा--मोपै नहिं बरने बनै तेरे तरुनि बिचार।
नेकु बिहँसि चेरे किए हरि त्रिभुवन करतार ॥१४७॥

अथ तृतीय भेद लच्छनं

होइ काज की सिद्धि जहँ प्रतिबाधक हू होत ॥१४८॥

यथा--सदा सासु बरजै खरी उघरन देइ न अंग।
जाइ तऊ तिय कुंज में बिहरै हरि के संग ॥१४९॥

अथ विभावना चतुर्थ भेद

वस्तु अकारन तें जहाँ प्रगटै कारज रूप।
चौथौ भेद बिभावना ताहि कहैं कविभूप ॥१५०॥

यथा--कहाँ कहौ ता घरी तें उठति हिए मे सालि।
जब तो लख्यौ मयूर बन चलत हंस की चालि ॥१५१॥

अथ पंचम भेद लच्छनं

जिहि ठाँ काहू हेतु तें काज विरुद्ध जु होइ।
तो बिभावना पाँचवीं समुझि लेउ सुख भोय ॥१५२॥

यथा--प्यारी तू क्यों करि रही अरुन तनैने नैन।
कढ़त मधुर अधरानि तें जहर लपेटे बेन ॥१५३॥

अथ षष्ट बिभावना लच्छनं

कारज तें उतपत्ति जहँ होतु हेत को आइ।
षष्टम भेद बिभावना समझो सो चित लाइ ॥१५४॥

---

१. बिनु पिय निरखें हरषि तिय [३]।

यथा--जानी परति न भोर तें निरखि भई मति लुंज।
तिय तन चंपक माल तें प्रगटतु जल-कन-पुंज ॥१५५॥

इहाँ लता कार्य, ताते जल की उत्तपत्ति भई।

अथ बिसेषोक्ति लच्छनं

कारज होय नहीं जहाँ हेतु होत हूँ मित्र।
ताहि बिसेषोकति कहै पंडित परम बिचित्र ॥१५६॥
यथा--नैंन अधखुलें रँगमगे पलकनि पीक निदानं।
यौं पिय निरख्यौ तरुनि ने तऊ न प्रगट्यौ मान ॥१५७॥

अथ असंभव लच्छनं

बिन संभावन तें जहाँ कारज होइ अनूप।
ताहि असंभव बरनिए रीझें रसिक सुरूप ॥१५८॥
यथा--नींद भूख रुचि टरि गई, बिछुरत ही बलबीर।
कौ जानतु हौ दुखद यह[1] ह्वैहै त्रिबिध समीर ॥१५९॥

अथ त्रिबिध असंगति

प्रथम लच्छनं

जहाँ होतु है हेत अरु कारज न्यारी ठौर।
प्रथम असंगति रूप सो जानि रसिक सिरमौर ॥१६०॥
यथा--श्री परताप सुजान पिय पान रावरे खात।
रचत गहगहौ मो हियौ, जोति जगमगति[2] गात ॥१६१॥

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

और ठौर कौ काज जहँ करत और ही ठौर।
भेद असगति कौ द्वितिय समझि चतुर सिरमौर॥ १६२ ॥
यथा--तिय सिंगार आरंभ ही आवत निरखे लाल।
ईंगुर लायौ चरन में रच्यौ महावर भाल ॥ १६३ ॥

---

१. को जानत हो दुखद यह [३]।
२. जगमगै [१]।

अथ तृतीय भेद लच्छनं

करि आरंभ सु और को, करत और ही काज ।
भेद असंगति कौ तृतिय वरनि रसिक सिरताज ॥ १६४ ॥

यथा--सजी गूजरी एक पग त्यौंही लखे सुजान ।
. आदर करि तिय नें तवै बिहँसि खवाए पान ॥ १६५ ॥

अन्यच्च—दरसन दै अबही चलै, बातैं मधुर बनाइ ।
बिरह निवार्‌यौ नाहि पिय, बिरह वढायौ आइ ॥ १६६॥

अथ बिषम त्रिबिध

प्रथम लच्छनं

अनमिलते[1] कौ संग जहँ प्रथन विषम सो जाँनि । १६७ ॥

यथा—जसुमति या ब्रज में तुही लखी अनोखी बाम ।
कहाँ उदर मृदु कान्ह को कहँ कठोर यह दाम ॥ १६८ ॥

अथ द्वितीय भेद लक्छनं

जहाँ और रँग हेतु तै काज और रँग होतु ।
दूजौ भेद सुविषम कौ या विधि लहतु उदोतु ॥ १६९ ॥

यथा—इति निठुरई कौन पै तुम सीखे नँदलाल ।
असित रावरे बिरह नें जरद रँगी ब्रजबाल ॥ १७० ॥

अथ तृतीय भेद लच्छनं

जतन करै जहँ भलै कौ प्रगट बुरौ फल होइ ।
तृतिय भेद सो विपम कौ समझौ बुद्धि बिलोइ ॥ १७१ ॥

यथा—नेह बढैवे के लिये लखी रावरी ओर ।
सो तुम हम सों भावते सिरती गही मरौर ॥ १७२ ॥

अथ त्रिबिधि समालंकार

प्रथम लच्छनं

जथाजोग कौ सग जहँ प्रथम भेद सो जानि ॥ १७३ ॥

---

१. अनमिलिते [३] ।

यथा--समझि बराबर बिमलता सुनि परताप कुँवार[1] ।
मिलि छीरधि सों तुव सुजस नीति प्रति करतु बिहार ॥१७४॥

अन्यच्च

जानि बराबरि साहिबी चितु चतुराई आनि ।
कीनि रवि सों मित्रता हिमकर नें सुख मानि १७५ ॥

अथ सम द्वितिय भेद लच्छनं

जा कारज[2] में निरखियै सबै हेतु की बानि ॥ १७६ ॥

यथा—मदन मनोहर, कान्ह के सुत, सुंदर सुखदानि ।
क्यों न होंइ परदुमन में तिय बसकरनी बानि ॥ १७७ ॥

अथ तृतिय भेद लच्छनं

जाकौ कीजै जतन सों मिलै भली बिधि आइ ।
सम कौ तीजौ भेद यह बरनै कबि समझाइ[3] ॥ १७८ ॥

यथा— अलबेले सुंदर सुघर नित बिनोद के धाम ,
जनक करत हीं आपु तें सो बर पाए स्याम ॥ १७९ ॥

इहाँ रुक्मिनी कौ समयौ ।

अथ विचित्रालंकार लच्छनं

जतन करत बिपरीति जहँ इच्छा फल के काज ।
तहँ बिचित्र पहिचानिए कहत सुकवि सिरताज ॥ १८० ॥

यथा--चाहत सुख संपति सहित अमरनि के परसंग ।
टारि जगत की गति जती भसम चढावत अंग ॥ १८१ ॥

अथ द्विविध अधिकालंकार

प्रथम लच्छनं

अधिक होइ आधार तें जहँ आधेय अनूप,
ताहि समझिए हिए में प्रथम अधिक कौ रूप ॥१८२॥

---

१. कुमार [३]। २. कारन [३]। ३. समुझाय [३]।

यथा--कैसे लाऊँ नवल तिय सुनिए श्री ब्रजराज[1] ।
छलकै फलक पछेलि कें अँखियनि में तें लाज ॥१८३॥

इहाँ नेत्र आधार ते लाज आधेय अधिक है ।

अथ तृतीय भेद लच्छनं

अधिक जहाँ आधेय तें है आधार समाज ।
भेद अधिक को दूसरो सो बरनें कबिराज ॥१८४॥

यथा--व्यापक चौदह भुवन में अरु अनंत गति मित्त ।
सो रघुबीर, सुजान के हिय में बिहरैं नित्त ॥१८५॥

इहाँ 'रघुबीर' आधेय तें 'सुजान के हियौ' आधार अधिक है ।

अथ अल्पालंकार लच्छनं

जहाँ अलप आधेय तें लघु आधार लखाइ ।
अलप अलंकृत ताहि कहि बरनै सुकबि सुभाइ ॥१८६॥

यथा--पिय बियोग तें तरुनि की पियरानी मुख जोति ।
मृदु मुरवा की घूँघुरी कटि में किंकिनि होति ॥१८७॥

अथ अन्योन्यालंकार लच्छनं

जहँ उपकार परस्पर जानौ । तिहि ठाँ कहि अन्योन्य बखानौ ॥१८८॥

यथा--पावै सोभा सीस तव रचिए मुकुट बनाइ ।
बढति बड़ाई मुकुट की जब हरि सीस लगाइ ॥१८९॥

अथ त्रिबिध बिसेषालंकार

प्रथम लच्छनं

अनाधार आधेय जहँ सो है प्रथम बिसेष ॥१९०॥

लसतु सरोवर गगन पै निकट जमुन के धार ।
दुहूँ कूल चकवा बसैं लखि दृग भए खुमार ॥१९१॥

इहाँ कबि संप्रदाय में कटि को सून्य कहत है । सून्य अकास है ।

---

१. सुनो सिरी ब्रजराज [३] ।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

तनक जतन आरंभ तें मिलै सरस जहँ सिद्धि।
दूजौ भेद बिसेष[1] को जानि जु बुद्धि[2]समृद्धि ॥१९२॥
यथा—साँची कहियति आज अलि थोरे जतन रसाल।
सब कछु पायौ औचक भुज भरि भेंटे लाल ॥१९३॥

इहाँ 'औचकाँ' शब्द में सूछम जतनु जानियतु है।

अथ तृतीय भेद लच्छनं

एक बस्तु बहु ठौर जहँ बरनन करियतु मिश्र।
तीजौ रूप बिसेष कौ समझौ रसिक बिचित्र ॥१९४॥
यथा—सौमनाथ हम तौ सदां सुख सौं करत विहार।
नीर छीर थिर चरन-में लखियतु नंदकुँवार ॥१९५॥

अथ व्याघात अलंकार लच्छनं

जहाँ और ही तें करत कारज औरै मित्र।
प्रथम भेद ब्याघात सौ भाखत रसिक बिचित्र ॥१९६॥
यथा—जा के छ्वैबे तें डरैं नर किन्नर अमरेस।
ता बिषधर की सजत हैं नित आभरनँ महेस ॥१९७॥

इहाँ जो सर्प त्यागन लायक है ताकौ आभरन कियौ।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

जहाँ बिरोधी तें कहूँ काज सँवारे कोइ।
द्वितिय भेद ब्याघात को तब कवित्त में होइ ॥१९८॥
यथा—हरि बनि गौरि कही, निरखि भस्मासुर कौ रंग।
नाचै निज सिर हाथ धरि तौ बिहरौं तुव संग ॥१९९॥

इहाँ भस्मासुर कौ प्रसंग।

अथ गुंफालंकार लच्छनं

जहाँ हेतु की आइ कै[3] परंपरा ठहराइ।
गुंफालंकृत कहत हैं ताहि सबै कविराइ ॥२००॥

---

1. बिसेषि [३]। 2. सुबुद्धि [३]।
3. आनि कै [३]।

यथा—होति समै तें तरुनइ, तातें बाढ़त नैन।
तिन तें सरसतु रूप, मुख लखि मोहे सुखदैन ॥२०१॥

स मय तरुनाई को हेतु है और तरुनाई नेत्र बढिबे कौ हेतु हैं॥ अरु नैन बढिबौ मुख के रूप सरसाइबे कौ हेतु है और रूप नायक मोहिबे को हेतु हैं जैसें।

अथ एकावलि अलंकार लच्छनं

सब्द जहाँ ग्रहि तजि ग्रहै एकावलि तब होय ॥२०२॥

यथा—तें फूलनि गूँथी चिहुर चिहुर चरन परबान[1]।
चरन महावर सों रचे लखि बस भए सुजान ॥२०३॥

अथ मालादीपक लच्छनं

दीपक एकावली मिलि[2] मालादीपक सोइ ॥२०४॥

यथा—अब न कछू बरनो परै कीने जतन अनंत।
मेरौ तुम सों नेहु पिय नेह सु तुम सौं अंत ॥२०५॥

इहाँ 'तुम' द्वै बेर शब्द आवृत्ति भई या तें दीपक और 'नेह' शब्द एकावली के रूप सों प्रगट ही है।

अथ सार अलंकार लच्छनं

अधिक एक तें एक जहँ सार आभरन सोइ ॥२०६॥

यथा—हीरनि हू तें बिमल अति, सरद जोन्ह कहि लेत।
ताहू तें[3] परताप सुनि तेरी कीरति सेत ॥२०७॥

इहाँ हीरा तें सेत चाँदनी चाँदनी तातें अधिक सेत कीरति।

अथ यथासंख्यालंकार लच्छनं

जहँ क्रम सों निरवाह तहँ यथासंख्य ही होइ ॥२०८॥

---

१. पर कान [३]।

२. एकावलि मिलै [२]।

३. सौं [३]।

यथा षड्विधान छप्पै

आनन[1] भृकुटी[2] बचन[3] अधर[4] अरु नाभि[5] गवंन[6] पुनि ।
चंद्र[1] धनुष[2] बीना[3] प्रवाल[4] सरबर[5] गयंद[6] मुनि ।
सरद[1] स्याम[2] तन्नित[3] रसाल[4] सूछम[5] सपुष्ट[6] तन ।
उदय[1] निगुन[2] अरु सुघर[3] पानि नव[4] हेम[5] तरुन[6] पुनि ।
पूरन[1] मनोज[2] वज्जति[3] अरुन[4] बृत्त[5] वहुरि मद वृंद[6] कौ ।
लखि इहि कामिनि आनंद निधि हिय हरषतु ब्रजचंद कौ ॥२०९॥

अथ पर्याय अलंकार लच्छनं

जहँ अनेक कौ आश्रय क्रम ते एकै होत ।
प्रथम भेद पर्याय तहँ कहि बरनत कबिगोत ॥२१०॥

यथा--प्रति बासर हरि होत है तिय के सुघर सुभाइ ।
हुती लरिकई अंग सो बसी तरुनई आइ ॥२११॥

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

एकै कौ क्रम ते जहाँ आश्रय धरै अनत ।
दुतीय भेद पर्याय को समझि लेउ बुधिवत ॥२१२॥

यथा--श्री प्रताप तुव तेग की कौनु करि सकै रीस ।
लखी समर में म्यान तजि लसो अरिनि के सीस ॥२१३॥

इहाँ तेग को आश्रय म्यान और अरि कौ सीस राखतु है । इहाँ आश्रय आधार न जानिए ।

अथ परिवृत्ति लच्छनं

दै पदार्थ रंचक, बहुत लेत, परिवृत्त सोइ ॥ २१४ ॥

यथा—आजु करी नँदनद ने हित की रीति नवीन ।
तनक द्रगनि की सैन दै सरबसु मन हरि लीन ॥ २१५ ॥

अथ परिसंख्यालंकार लच्छनं

एक ठौर कौ बरजि कै ठहरें दूजे ठौर ।
परिसंख्या तासौं कहै कबि कोबिद सिरमौर ॥ २१६ ॥

छितु तन गति छिन में हरनि सोख लेति मन मानि । ?
कठिनाई उर में नही भई उरोजनि आनि ॥ २१७ ॥

अथ विकल्पालंकार लच्छनं

वह के यह यहिं रीति सों कविता सु है विकल्प ॥ २१८ ॥

यथा--कि वह वसत वहार, की प्रफुल्लित नूत कतार ।
के निरखत हरषै हियौ यह धुरवनि की धार ॥ २१९ ॥

अथ द्विविधि समुच्चय

प्रथम लच्छनं

वहुत भाव उपजै जहाँ ताहि समुच्चय जान[1] ॥ २२० ॥

यथा—कर परसतु नँदलाल के तिय कें सरस्यो नेह ।
सकुची निरखि सखीनि पुनि पुलकि थरहरी देह ॥ २२१ ॥

इहाँ रति, लज्जा, रोमांच, कंप ए भाउ उपजे ।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

वहु मिलि चाहत हैं जहाँ कियौ एक ही काज ।
भेद समुच्चय कौ वियौ वरनत कविसिरताज ॥ २२२ ॥

यथा—पावस, सीख सखीनि की, तरुनाई, रतिनाह ।
मिलि के सव तिय नवल के उपजावत पिय चाह ॥ २२३ ॥

अथ कारक दीपक अलंकार लच्छनं

भाव जहाँ क्रम तें वहुत कारक दीपक जांनि ॥ २२४ ॥

यथा—पिय वियोग चहुँ ओर लखि चपला तमक समेति ।
छीन होत छिन छिन तिया त्रसति नैन भरि लेति ॥ २२५ ॥

इहाँ ग्लानि, त्रास, अश्रु भाव क्रम तें हैं ।

अथ समाधि अलंकार लच्छनं

सुगम होत कारज जहाँ और हेतु मिलि मित्र ।
वरनत ताहि समाधि कहि पंडित रसिक विचित्र ॥ २२६ ॥

यथा—निरखन कौ तिय-वदन-छवि पठई डीठि मुरारि ।
उत ह्वाँ चपल समीर नैं घूंघट दियो उघारि ॥ २२७ ॥

---

१. जानि [२] ।

अथ काव्यर्थापत्ति लच्छनं

अमुकौ जीति लियौ तबै बात और की कौन ।
है काव्यरथापत्ति सौ बरनत कवि तजि मौन ॥ २२८ ॥

यथा—हारि मानि अमरेस नें हरि के परसे पाइ ।
औरनि की चरचा कहा जो बरनिए बनाइ ॥ २२९ ॥

अथ काव्यलिंग अलंकार लच्छनं

समर्थिबो जहँ अर्थ कौ कछू जुगत सों होइ ।
काव्यलिंग आभरन सौ कहत रसिक रस भोइ ॥ २३० ॥

यथा—रे घन अब न बसाइगी जिनि सोखे तुव सोत ।
सो में पूजिति[1] प्रेम करि भए अगस्ति उदोत ॥ २३१ ॥

इहाँ प्रयोजन यह है कि घन दुख न देय सो अगस्ति उदे भए तें जल नांहि रहत । नायका विरहनी ।

अथ काव्यप्रकास के मत काव्यलिंग अलंकार लच्छनं द्वै भाँति

पद समूह कौ हेत जहँ होइ कवित में आइ ।
के प्रति पद कौ हेतु यों काव्यलिग द्वै भाइ ॥२३२॥

अथ पदसमूह को हेत

यथा-चैत चाँदनी, कमल वन, कोकिल, त्रिबिध समीर ।
सवै हितू बैरी भए बिछुरत ही बलवीर ॥२३३॥

इहाँ एक तुक कौ हेतु बलबीर कौ बिछुरिबौ ।

अथ पद पद कौ हेतु कहिबौ

यथा-खिले कमल, निवरी निसा, करत मधुप मधुपान ।
चकई हरषी निरखि रबि तउ ललचात सुजान ॥२३४॥

इहाँ कमल खिलिबे कौ हेतु निसा निबरिबौ । और चकई हरपिबे को हेतु रवि निरखिबौ ।

अथ अर्थातरन्यास लच्छनं

पोपन करै बिसेष को जहँ सामान्य सुभाइ ।
सो अर्थातरन्यास है सुनि सुख हिय सरसाइ ॥२३५॥

---

1. पूजित [२] ।

यथा—बसन चोरि हरि द्रुम चढे पुनि वनि वैठे साह ।
कहा न करिहै ए सखी प्रगट भए हित चाह ॥२३६॥

इहाँ विसेष बतकहाउ प्रथम तुक मे हो सो दूसरी तुक सामान्य करि पोष्यौ ।

अथ बिकस्वर लच्छनं

प्रथम विसेषहि वरनि पुनि कहि सामान्य वखानि ।
पुनि विसेष इहि रीति सो गुद्दर विकस्वर जानि ॥२३७॥

यथा—राधा हरि हिय में बसति रँगी रँगीले रग ।
यही नेह की रीति है, हर के तिय अरधग ॥२३८॥

इहाँ प्रथम तुक में बिसेष कह्यो फेरि दूजी तुक में सामान्य कहि कें फेरि बिसेष हर कौ बतकहाउ ,कह्यौ ।

अथ प्रौढोक्ति लच्छनं

बरनन की अधिकई[1] जहँ प्रौढोकति तहँ जानि ॥२३९॥

यथा -जालम कुँवर प्रताप जग जाहर तेरे वान ।
तोरि जवर पाखर करी गरकें भूमि निदान ॥२४०॥

इहाँ 'करी' हस्ती जानिए ।

अथ संभावना लच्छनं

होतौ जौ यौं यों बरनि संभावना सुजान ॥२४१॥

यथा—जहाँ डीठि अटकी अली तितहों कियौ पयान ।
हम सौं होतौ नेह तौ इत आवते सुजान ॥२४२॥

अथ मिथ्याध्यवसित लच्छनं

जो यों होइ तौ होय यौं मिथ्याध्यवसिति जानि ।२४३॥

यथा—कहति रहै नित नेह सो सुनि अलवेली बाल ।
कुंजनि में जौ चले तौ आजु मिलैं नँदलाल ।।२४४।।

अथ ललित अलंकार लच्छनं

ताकी छाया सी जु कछु कह्यौ चहतु है चित्त ।
ललित कहे तासों सुकवि सब रसिकनि के हित्त ॥२४५॥

---

1. अधिकाइ [२]।

यथा—सजी चतुरई आनि हरि हतो इतोई काम।
बिनती अब करिहौ कहा निरखि मनि चुकी वाम ॥२४६॥

अन्यच्च

पिय जोबन के अमल में दृग छकि रहे निदान।
जुलम करत डरपत न ए क्यों लहियतु मद पान ॥२४७॥

नेत्र जोवन के अमल सोई। छके हैं मद पान क्यों करत हौ।

अथ त्रिबिध प्रहर्षन

प्रथम लच्छनं

फल विन जतनहि सों मिलै, प्रथम प्रहर्षन मानि ॥२४८॥

यथा—व्याकुलता प्रगटी महा ग्रीपम के दुख दंद।
अँखियनि तृपा सुधा भई तब ही दरस्यौ चंद ॥२४९॥

अथ द्वितीय प्रहर्षन लच्छनं

श्रम विनु, इच्छा तें सरस जहाँ मिलै फल आइ।
समझि प्रहर्षन दूसरो वर्नत हैं कविराइ ॥२५०॥

यथा—चिबुक छुवौ[1] चाहत हुते नव तिय को हरि आजु।
भेटी भुज भरि आपु तें सु वह सहित सुख साज ॥२५१॥

अथ तृतीय भेद लच्छनं

जतन करै जिहि वस्तु के पैबे कौ करि प्रीति।
सो पावै यौं कहत हैं तृतिय प्रहर्पन रीति ॥२५२॥

यथा—परसों तें ढूँढत हुती गृह वन हरि के हेत।
सो मैं पाए आजु अब, हिरदै भयौ सुचेत[2] ॥२५३॥

अथ विपाद अलंकार लच्छनं

जहाँ कछू चित चाह तें होति वस्तु विपरीति।
तहँ विपाद पहिचानिऐं निरखि कवित की रीति ॥२५४॥

यथा—राज लहन अ[illegible]
सुतसनेह तजि

१. छुवन [३]।

अथ उल्लास लच्छनं

जब गुन औगुन एक तें है अंगीकृत भाउ।
जहाँ और कैं जानियै तहँ उल्लास सुभाव ॥२५६॥
यथा—हम भूली हरि बिरह तें सब सनेह ब्यौहार।
आनि सिखावै कूबरी यह ब्रज तरुनि बिचार ॥२५७॥

इहाँ बिरह कौ तसो गुन ग्रहन कियौ अब कूबरी को गुन ग्रहन कियो चाहति है।

अथ अवग्या लच्छनं

गुन अरु दोष लगै नही जहाँ और के आनि।
ताहि अवग्या कहत हैं सुकवि हिएँ सुख मानि ॥२५८॥
यथा निसि बासर तरुनीनि में विहरै परगट होइ।
सूरबीर नर नेकहूँ हियै न कादर होइ ॥२५९॥

स्त्री कौ कातरता गुन न लह्यौ।

अथ अनुग्या लच्छनं

लेति मानि गुन हिये में जहाँ दोष को कोइ।
तहाँ अनुग्या समझियौ रसिक सिरोमनि होइ ॥२६०॥
यथा—विरह दियौ सु भली करी हमें छबीले लाल।
टरै न छिन भरि दृगनि तें उनके रूप रसाल ॥२६१॥

इहाँ बिरह देबौ दोप कौ गुन मानि लियौ।

अथ लेशालकार लच्छनं

गुन में कीजत दोष को, दोष माझ गुन लाइ[1]।
करत कल्पना जहाँ, तहँ लेस कहत कविराइ ॥२६२॥
यथा—सुनौ सयानें छीरनिधि बचन चारु चित लाइ।
रतन संग्रहन ते सुरनि उदर मथ्यौ तुव आइ ॥२६३॥

इहाँ रतन संग्रह गुन ता मे दोष कल्पना है।

---

१. आइ [२]।

अथ दोष में गुन कल्पना

यथा—आपु कलंकी ह्वै रहै मृग कौं दियौ अनद ।
निपुन बचन प्रतिपाल कौ अजो कहावतु चंद ।।२६४।।

इहाँ कलंकी ह्वैबौ दोष तामैं बचन प्रतिपालकता गुन की कल्पना कीनी ।

अथ मुद्रालंकार लच्छनं

प्रस्तुत पद के बीच जहँ और अरथ हू होइ ।
सो मुद्रा बरनन विषें समझि लेउ कवि लोइ ।। २६५ ।।

यथा—साँचु कहति तो सों सखी सुनि रंचक चितु लाइ ।
लाल लसत तिहि ठौर जहँ नव मनि बनी बनाइ ।। २६६ ।।

सखी सों प्रस्तुत बात तौ यह कहति है कि लाल तहीं सोहै जहाँ बनाइ सौं मनि बनी होइ । और 'लाल' नायक 'बनी' नायका ।

अथ रत्नावली लच्छनं

और नाउँ क्रम तें जहाँ सो रत्नावलि जांनि ।। २६७ ।।

यथा—असुर विदारन तुम सदा सियनायक रनधीर ।
दीन-दुख-हरन जगतपति दया करौ रघुवीर ।। २६८ ।।

अथ तद्गुन लच्छनं

तजि निजु गुन जहँ लेतु है संगति को गुन कोइ ।
ग्रंथनि के मत में निरखि तद्गुन कहिऐ सोइ ।। २६९ ।।

यथा—सरसति जानि सरीर पै रुचि सों पहरी बाल ।
केसरिया रँग ह्वै रही सेत कंचुकी लाल ।। २७० ।।

इहाँ कंचुकी नें सरीर कौ रंग गुन लियौ ।

अथ पूर्वरूप अलंकार लच्छनं

संगति कौ गुन लै बहुरि तजि पुनि निज गुन लेइ ।
पूरवरूप सुजानिए प्रथम सुनत सुख देइ ।। २७१ ।।

यथा—चौको हीरनि जटित पर चरन धरे नव नारि ।
लसी अरुन छबि, हास तें भई सेत उनहारि ।। २७२ ।।

इहाँ हीरा स्वेत चरन रंग तें लाल भए । पुनि हास तें स्वेत भए ।

अथ द्वितीय भेद लच्छनं

किएँ मिटन के हेत हूँ गुन न दुरै जिहिँ ठौर।
पूरवरूप सु दूसरो वरनत कविसिरमौर ॥ २७३ ॥

यथा—विरह समे तिय जानि कें विथा जोन्ह तें होति।
दुरी सदन प्रगटी तहूँ अति सरीर की जोति ॥ २७४ ॥

इहाँ प्रकासता दूरि करिवे को हेतु हो सदन मे दुरिबो पै प्रकास गुन न दूरि भयो।

अथ अतद्गुन लच्छन

संगति हू के होत हूँ जब गुन लगै न रंच।
ताहि अतद्गुन कहत है जे कविता के पंच ॥ २७५ ॥

यथा - सिगरी निसि नव कमल में कीनें रह्यौ निकेत।
निरखो[1] तऊ भयो नहीँ स्यामल मधुकर सेत ॥ २७६ ॥

अन्यच्च

निसि वासर असुरीनि सँग एक ठाउ रहठानि[2]।
तजी न अपनी मति रती सिय रघुवर सुखदानि ॥ २७७ ॥

अथ अनुगुन लच्छन

पहलौ गुन सरसै जहाँ भए और कौ संग।
अनुगुन सौं पहिचानि यौं[3] सुकवि सहित रस रग ॥ २७८ ॥

यथा—श्री साहिब परताप सुनि निरखति[4] डोठि सिहाति।
तुव कीरति सँग तें सरस विमल जोन्ह दरसाति ॥ २७९ ॥

अन्यच्च—आठ पहर निरपे तऊ द्रग सुजान ललचात।
वीरी सँग तें तिय अधर अधिक अरुन ह्वै जात ॥ २८० ॥

अथ मीलित अलंकार लच्छनं

जहाँ वरावरि वस्तु तें भेदु न जानै कोइ।
रसकनि सुख सरसावनो मीलित कहिए सोइ ॥२८१॥

---

१. निरख्यो [२ [। २. रहि हानि [३]। ३. पहिचानिए [३]।
४. निरखत [३]।

यथा—पूछति सखीनि हिएँ समझि नहि रँग अंतर मूल ।
हसति हथेरी पै लिए तिय गुलाब कौ फूल ॥२८२॥

अथ सामान्य लच्छनं

जहाँ कहूँ सादृस्य तें कछु न अधिकई होइ ।
सकल सुकवि कौं सुखद अति कहि सामान्य जु सोइ ॥२८३॥

यथा—लखिए पिय निसि में नवल कौतिक सुख सरसातु ।
हिमकर अरु तियबदन में अंतर लह्यो न जातु ॥२८४॥

अथ उन्मीलित लच्छनं

भेद फुरै सादृस्य तें तहँ उन्मीलित होइ ॥२८५।

यथा—कैसे रँग वरनन करौं प्रीतम नदकुमार ।
झनकत जान्यौ तिय हिएँ सुवरन हिमकर हार ॥२८६॥

झनक भेद चंद्रहार ।

अथ विशेष लच्छनं

समता माँझ बिसेष जहँ कहि बिसेष पुनि सोइ ॥२८७॥

यथा—विमल वरन सब एक से नीर निकट रहठाँनि ।
बगुलनि सँग सुत हस के लिए चलनि सों जानि ॥२८८॥

इहाँ चलनि विशेष पहिचानिऐ ।

अथ गूढोत्तर लच्छनं

ऊतरु दीजतु है तहाँ हिए लिए कछु भाइ ।
गूढोत्तर तासों कहै रसिक सुकबि समुझाइ ॥२८९॥

यथा—इहाँ[1] न लखियतु साँवरे दिनकर तेज कछूक ।
बनी रहति दिन राति नित अति कोकिल की कूक ॥२९०॥

इहाँ रति भाव कौ लिये ऊतरु है ।

अथ चित्र अलंकार लच्छनं

एक वचन में होइ जहँ प्रश्न सु ऊतर चित्र[2] ॥२९१॥

१, जहाँ [२] । २ उत्तर चित्र [३] ।

यथा--रहत सदा जिहि त्रास तें काविल वलख विलाप ।
किहिं प्रगटायौ जगत मे इह जालम परताप ।।२९२।।

इहाँ इह प्रश्न कि परताप किहि नें प्रगटायौ पुनि याही में उत्तर है परताप नें ।'

अथ सूक्ष्म अलंकार लच्छनं

सैननि में कछु भाव तें पर विचार लखि लेइ ।
सूछम सो पहिचानिएँ रसिकनि को सुख देइ ।।२९३।।

यथा--सनमुख ह्वै मीडै करनि श्रीफल रसिक मुरारि ।
कसकि हँसी तिय वदन पै घूँघट असित सुधारि ।।२९४।।'

अथ पिहित लच्छनं

पिहित लखावै भाव जहँ जाँनि दुरो पर बात । २९५।।

यथा--बिछुरे कच रति रग में समझि सखी मुख मोरि ।
दई तरुनि को विहँसि कैं अरुन पाट की डोरि ।।२९६।

इहाँ नायका की रति रग प्रगटायो सखी नें अरुन पाट की डोरी दै कै कि
यासों कसि के बैंनि बाँधि ।

अथ व्याजोक्ति लच्छनं

जहँ दुराइ आकृति कछू कहै और विधि बैन ।
तासों व्याजोकति कहे अति प्रवीन सुखदेन ।।२९७।।

यथा - मृगछौंना सुदर निरखि लियो अंक मे आजु ।
खुर को लगी खरोट उर अलि करि कछू इलाजु ।।२९८।।

इहाँ सुरत चिन्ह दुरायौ और ही बात सों ।

अथ गूढोक्ति लच्छनं

धँ दुराव[illegible] कैं जह और को औरहि देत जनाइ ।
मिसु कवि [illegible] कविता सों कहौं गूढोकति सुख पाइ[1] ।।२९९।।
इहि विधि [illegible]

---

१. इहि कवि कबिता [illegible] नों कहै गूढ उकति सुख पाय [३] ।

यथा– कही टेरि समझाइ उत निरखि छबीलो छेल।
काल्हि अकेली जाऊँगी अलि, मधुबन की सैल ॥३००॥
इहाँ सखी कौ मिसु करि प्रीतम कों सकेत जतायौ।

अथ विवृतोक्ति लच्छनं

पर कौ प्रगट करत जहाँ दुर्‌यो सलेष सुवात।
बरनत ताकौ सुकवि कहि विवृतोकति अवदात ॥३०१॥
यथा–टेरि कहति मिसु हेत कौ सरस्यो हिएँ अनंग[1]।
बन में नंदकिसोर सों करन जाति रस रग ॥३०२॥
इहाँ सखी नें नायका कौ खेत कौ मिसु प्रगट करि दयौ।

अथ युक्ति अलंकार लच्छन

कर्म दुरायौ जातु है क्रिया करत जिहि ठौर।
युक्ति कहें तासों सबै सुकवि रसिकसिरमौर ॥३०३॥
यथा–हरि को पनघट में निरखि पुलकित भयौ सरीर।
तिय ने आँचर ओट सो रोक्यौ सीत समीर ॥३०४॥
इहाँ रोमांच कर्म आँचर ओट करिबौ क्रिया सों दुरायौ।

अथ लोकोक्ति लच्छन

लीनें लोकनि की उकति सो लोकोकति जानि ॥३०५॥
यथा–आवति है उर में सखी करिऐ यही उपाइ।
जित हैं नंदकिसोर तित जैये पंख लगाइ ॥३०६॥
इहाँ 'पंख लगाइ' इह लोकोक्ति है।

अन्यच्च सवैया

चैन सों कुंजनि में बिहरौ कि कलिंदी की कूलनि में वनवारी।
हौं छिन हूं भरि औसर पाइकै आइ मिटैहौं बियोग बिहारी।
मैं तौ उही दिन तें ससिनाथ बिलोकत प्रान कियो बलिहारी।
मेरे लिये इत आवहिं लाल चबाइ लगी मैं बलाइ तिहारी ॥३०७॥
इहाँ 'चैन सों', बलिहारी, चबाई लगी मैं' इत्यादि शब्द लोकोक्ति।

---

1. उमंग [३]।

अथ छेकोक्ति लच्छनं

कछू अर्थ सो होति है लोकोकति जिहि ठाँउ।
समझो सब रिझवार मिलि सो छेकोकति नाँउ ॥३०८॥

यथा—ग्वालनि सो बतरात जो गहे कदम की डार।
हौं मोही मुसिक्याइ के अलि इहि नंदकुमार ॥३०९॥

इहाँ 'जो ग्वालनि सों बतरात हौ तानें मोही' यह रीति है।

अथ बक्रोक्ति लच्छनं

श्लेष होतु स्वर सो अरथ बक्रोकति पहिचानि ॥३१०॥

यथा—सब साँची बतरानि सो लखति नही तिय आनि।
नेह निवाहत जगत सों आछे रसिक सुजान ॥३११॥

इहाँ साँची सों झूँठी जानिए एखेइ सब ठौर।

अथ स्वभावोक्ति लच्छनं

बरनत सहज सुभाव सों सुभावोक्ति है नाम ॥३१२॥

यथा—केसरि रँग भीने बसन कटि गुलाल की फेट।
इहि बानिक नँदलाल सों आजु ह्वै गई भेंट ।३१३॥

अथ भाविक लच्छनं

भून भविष्य प्रतिक्ष ज्यो[1] सो भाविक सुखधाम ॥ ३१४ ॥

यथा—हम सो ऐसो जतन कहि ऊधौ निपट विचारि।
बरसाने में आजु वह बहुरि भेंटिहै[2] नारि ॥ ३१५ ॥

इहाँ 'आजु' वर्तमान 'वह' भूतार्थ और 'भेंटिहै' भविष्य है।

अथ उदात्त लच्छनं

अधिकारी पहिचानिए उपलच्छन दै मित्र।
तासों कहत उदात्त सब सुनि के परम बिचित्र ॥ ३१६ ॥

---

१. जो [३]।
२. भेंटियै [३]।

यथा—नीठि करी है सुमन वह जसुमति नें समझाइ।
तुम आए हौ आजु हरि जाकौ माखन खाइ॥ ३१७॥

इहाँ 'जाकौ माखन खाइ आए हौ' या बातकहाउ सों माखनवारी ग्वालिन पहिचानो।

अथ अत्युक्ति लच्छनं

अति बर्नन हो जह तहाँ अतिसय उक्ति बखानि।
यथा—खेलन चलतु सिकार जब श्रीपरताप कुँवार।
सहसफनो के सीस पर खरकति हय-खुर-तार॥ ३१८॥

अत्युक्ति प्रगट ही है।

अथ निरुक्ति अलंकार लच्छनं

अरथ कल्पना और जब जहाँ जोग तें होइ।
अपने मन में समझियो कवि निरुक्ति है सोइ॥ ३१९॥
यथा- उतही चित हिलग्यौ रहै[1] नैकु न रुचतु निकेतु।
नितप्रति जैवौ खरिक कौ यही सु गोरस हेतु॥ ३२०॥

इहाँ खरिक और गोरस के जोग तें अर्थ कलपना इह भई कि गो इंद्रीनि को नाम है ताके रस निमित्त जाति है।

अथ प्रतिषेध लच्छनं

परगट अर्थ निषेधियै जहाँ सु है प्रतिषेध॥३२१॥
यथा--निरखन ही वस ह्वै रहे हरि कुल कानि बिगोइ।
नहि तिय की मुसिक्यानि, यह, और बस्तु ही होइ॥३२२॥

इहाँ प्रगट मुसिक्यानि को अर्थ निषेध्यौ।

अथ विधि अलंकार लच्छनं

सिद्ध अरथ को साधिए जहाँ बहुरि बिधि सोइ॥३२३॥
यथा--चरन रावरे नेंम सों नित सेवतु सुख पाइ।
दीनबधु तब जौ सजौ मो अब दीन सहाइ॥३२४॥

इहाँ तव दीनबंध हो जो मेरो सहाइ करो यह दीनबंधुता फिरि साधिबे में भई।

---

१ उतही चित लाग्यो रहत [३]।

अथ हेतु अलंकार लच्छनं

हेतु काज जहँ एक ही हेतु समझिए सोइ ॥३२५।

यथा—साँची बात यही सुनो दसरथ नृपति कुँवार।
बीज वृक्ष नर अमर सव तेरी कला अपार ॥३२६॥

इहाँ इनकी कला सब है स्वरूप करिकैं

अथ प्रत्यनीक अलंकार लच्छनं

जब अरि सों न बसाइ तब, वाके कों[1] दुख देइ।
प्रत्यनीक तासों कहें सुनत श्रवन सुख देइ ॥३२७॥

यथा—जब न बसानी[2] पत्थ सों औसर हिएँ विचारि।
भारथ में अभिमन्यु तब लियौ सबन मिलि मारि ॥३२८॥

इहाँ अभिमन्य अर्जुन कौ पुत्र है।

अथ अनुमानालंकार लच्छनं

जहँ कीजै अनुमान तहँ है अनुमान अनूप ॥ ३२९ ॥

यथा सवैया

कूवरी के रस रंग छके ससिनाथ सु वै सुख साजनि साजिहै।
जोग हमें तुम ही कहौ ऊधव ए बतियाँ उनि कौ पुनि छाजिहैं।
ह्याँ निसि में असुँवानि कौ सिंधु बढ़ै मति कोन नई उपराजिहै।
जानाति हौं वा अखैबट ज्यो बनसीवट पै ब्रजनाथ बिराजिहै ॥३३०॥

इहाँ जानति हों इह अनुमान।

इति अर्थालंकार

अथ संसृष्टि लच्छनं

मुख्य अलंकृति दोइ जहँ ताहि कहैं[3] संसृष्टि ॥ ३३१ ॥

यथा छप्पै

खेलन चलत सिकार जबै परताप सिंघ वर।
चढ़ि के तरल तुरंग बान कोदंड धारि कर।
खुर तारनि कौं छार घुंधरित गगन दिवाकर।
मंगल मानत हिएँ जग की धरि उमंग हर।

---

१. अति वाकों [३]। २ जब ना चली [३]। ३ कहौं [२]।

खलभलैं देस तित के जितै पीत पताका फरहरैं।
अरि आगम मगनि विसरि पग धगनि परहरि थरहरैं॥३३२॥

अर्थालंकार

इहाँ अत्युक्ति और छेकानुप्रास सब्दालंकार, दोऊ मुख्य है या तें संसृष्टि। ऐसें ई जहाँ सब्दालंकार द्वै मुख्य हो तहाँ सब्दालंकार संसृष्टि। और जहाँ अर्थालंकार द्वै मुख्य तहाँ अर्थालंकार संसृष्टि।

अथ संकर अलंकार लच्छनं

तीनि चारि भूषन जहाँ संकर तो पहिचानि।
पोष्य रु पोषक भाव सो रसिकनि सुख रहठानि॥३३५॥

यथा कवित्त

सोनें सो सरीर तामें आसमानी रंग चीर
औरे ओप कीनी रवि रतन तरौना द्वै।
सौमनाथ कहै इंदिरा सी जगमगै बाल
गाढे कुच ठाढे जनु इस जुग सोंना व्है।
कारी धुँधरारी मंद पवन झकोर लागें
फरहरें अलक कपोलनि के कोंना छ्वै।
सो छवि अनिद मनो पान सुधा बिंदु करि
इंदु मधि खेलत फनिदनि के छौना द्वै॥३३४॥

इहाँ उपमा और रूपक और उत्प्रेच्छा ए चौथी तुक छेकानुप्रास कौ पोषत है।

छप्पै

जब लग सप्त समुद्र अमर गुरु अष्ट सिद्धि वर।
जब लग दिनकर मेरु और कैलास कलाधर।
जब लग परम पुरान वेद सुक सनक सनंदन।
जब लग गरुड़ गनेस सेस सुंदर हरचंदन।
जब लग्ग दिग्घ दिग्गज अटल सौमनाथ श्रीपति सुध्रुव।
तब लग्ग राज विलसौ सरस सिंघ कुँवर परताप तुव॥३३५॥

सवैया

सागर सील उजागर कीरति आनँद के उपजावनवारे।
आदि अनादि स्वरूप निरजन इद्र कौं आछें खिजावनवारे।
मोंहन श्री ससिनाथ महा जग कौं घनें खेल खिलावनवारे।
लाज हमारी है रावरे हाथ ए नद को गाइ चरावनवारे ॥३३६॥

दोहा—सत्रह सै चौरानवे सवत, जेठ सु मास।
कृष्न पक्ष दसमी भृगौ भयो ग्रथ परकास ॥३३७॥

छद—श्री रघुनंद। आनँद कद।
हिय में ध्याइ। सुख सरसाइ ॥३३८॥

इति श्री मन्महाराज कुवार श्री परताप सिंघ हेत कवि सोमनाथविरचिते रसपियूपनिधौ अर्थालंकार संसृष्टि अलंकार बर्नन नाम द्वाविंशतितमस्तरग ॥२२॥

इति रसपियूपनिधि संपूर्ण ॥

प्रथम अध्याय

मंगलाचरण

सोरठा

जय जय जय वलवीर, मदन मनोहर स्याम[1] घन ।
रमत कलिंदी तीर, संग लिए व्रजसुंदरिनु ॥१॥
जय सुकदेव[2] सपूत व्यास-बंस-अवतंस बर ।
बिहरत विधि अवधूत, नित गुबिंद-छबि-छाक छकि ॥२॥

छन्द

जलधर-रँग सब अंग, भस्म लगि ह्वै दुति दुन्निय ।
सरसति आनन ओप, उदित चंदा जनु पुन्निय ॥
सुद्ध[3] सतोगुन[4] रूप, तमोगुन उर तें धुन्निय ।
हरि-चरित्र बिन और बात नहि रुचि सों सुन्निय ॥
सिर लसति लटूरी कुटिल अति, लोचन लाल दयाल मन ।
ससिनाथ[5] सुनौ सुकदेव[6] मुनि, आए सुख सज्जें अमन ॥३॥
लसति जटा भरि चटक सीस तें, लटकि अंस लगि ।
अरु नीरद के रंग अंग, धूसरित भस्म पगि ॥
उदित चंडकर तूल वदन-मंडल दुति-मंडित ।
दृग विसाल[7] हित लाल कान्हहित मत्त अखंडित ॥
ससिनाथ[8] सुनो सुकदेव[9] मुनि, सुद्ध[10] सतोगुन सिद्धवर ।
स्वच्छंद परीक्षित नृपति के, आए घर आनंदकर ॥४॥

---

१. श्याम । २. शुकदेव । ३. शुद्ध । ४. तमोगुण । ५. शशिनाथ । ६. शुकदेव । ७. विशाल । ८. शशिनाथ । ९. शुकदेव । १०, शुद्ध ।

दोहा—अर्घादिक नृप ने दिए, तिन्हैं निरखि मुनि ईश[1] ।
बैठे आय निसक[2] पुनि, सिंहासन के सीस[3] ॥५॥
तिनसों कर युग जोरि कें, बोल्यौ नृपति विचित्र ।
हरि-चरित्र मोसो अहो, कहिए करन पवित्र ॥६॥

सो०—श्री सुकदेव[4] सुजान, विहंसि परीक्षित नृपति सों ।
उचरी करि सन्मान, हरि-चरित्र-चरचा विमल ॥ ७ ॥

दोहा—व्रज वनितनि कों प्रथम निज, दियौ हुतौ वरदान ।
सो बिभावरी सरद की, सुंदर लखि भगवान ॥ ८ ॥
कियौ मनोरथ रमन कौ, निज माया अपनाय ।
ताछन[5] चंद उदै भयौ, पूरब दिसा[6] रचाय ॥ ९ ॥
बड़ी बेर में तिय मिली, याते हिय हुलसाय ।
नायक मनु मुखमंडलहि, दिय कुमकुम लपटाय ॥ १० ॥
ललित चंद्रमंडल लस्यौ, या विधि मध्य अकास ।
केसरि के रँग रँगमग्यौ, श्री मुख मनौ प्रकास ॥ ११ ॥
प्रफुलित मल्ली कुमुद बन, अरु उडगननि निहारि ।
वंसी[7] की धुनि मोहनी, करी स्याम[8] प्रन[9] पारि ॥ १२ ॥

पादाकुलक

मुरली मधुर मुकुंद बजाई ।
ताकी धुनि छिति अंबर छाई ॥
ताहि सुनत सुर मुनि किन्नर नर ।
तभित हुव खग मृग सब जलचर ॥ १३ ॥
नारद कर ते तंत्री छूटी ।
तारी जटाजूट की खूटी ॥
पढ़िबौ बेद विरचि[10] भुलानौ ।
रह्यौ मूँदि दृग सक्र[11] सयानौ ॥ १४ ॥

---

१. ईश । २ निशंक । ३. शीश । ४. शुकदेव । ५. तत्क्षण । ६. दिशा । ७. वंशी । ८. श्याम । ९. प्रण । १०. विरंच । ११. शक्र ।

खेंच लियौ मन कुंजबिहारी ।
लोकलाज ब्रजतियन बिसारी ॥
निजु निजु गृह तें इहिं बिधि डगरी ।
सिंधुहि मिलन सरित ज्यों सगरी ॥ १५ ॥
जनु पिँजरन तें छुटीं चिरैयाँ ।
बिबिधि रंग नहि घिरैं घिरैयाँ ॥
रंग रंग अबर अँग अंगनि ।
कंचन मनि भूषन के सगनि ॥ १६ ॥
दुहत दूध इक डगरी भामिनि ।
धेनु दुहावति तें अभिरामनि ॥
पय औंटत तें एक नवेली ।
उठि दौरी मनु कंचन बेली ॥ १७ ॥
इक तजि करत रसोई भाजी ।
सुंदरि नँदनंदन हित राजी ॥
अरु इक बंधु परोसति[1] थारी ।
चली अंचकै उठि नव नारी ॥ १८ ॥
इक बालक कौं छाती प्यावति ।
तजि डगरी मन मोद बढ़ावति ॥
अरु इक पति कौं निदरि अकेली ।
चली न रोकी रही सहेली ॥ १९ ॥
अधभूखी इक चली लुगाई ।
मनमोदक के रूप लुभाई ॥
अंग बटावति तें इक सूरी ।
चली तिया हरि हित चकचूरी ॥ २० ॥
अरु इक चली लगावति अंजन ।
हियौ हर्‌यौ मन्मथ-मद-भंजन ॥

---

1. परोसित ।

इक किंकिनि की माल बनाएँ।
चली पान तजि पन्न चबाएं॥ २१ ॥
अरु इक बेसरि जटित जवाहर।
चली साजि कैं श्रवननि जाहर॥
पायजेब भुजबंद बनाएँ[1]।
डगरी इक ग्वालिन छवि छाएँ॥ २२ ॥
अरु इक कर में मेहदी लीने।
चली एक पग जावक दीने॥
अरु इक आड लगाय कपोलनि।
चली प्रेम कर बिकि बिनु मोलनि॥ २३ ॥
अरु इक हुती केस निरवारति।
त्योंही[2] चली सुतन मन वारति॥
चली एक अधगूँथी बेनी।
खुले कुंडलनि इक मृगनैनी॥२४॥
अरु इक नूपुर अंगुरिन पहरैं।
चली रची हरि के हित गहरैं॥
मुक्तहार कटि में लपटायें।
सुंदरि चली एक अतुराँएं॥२५
ओढि कंचुकी एक पधारी।
नहीं ओढ़नी सुरति सम्हारी॥
पति पितु भ्रात बंधु की हटकी।
रहि नहि[3] सकी स्याम[4] सों अटकी॥२६॥
राखी रोकि भवन के कोने।
एक भामिनी उरज निबोने॥
निकसि न सकी महादुख पायी।
पिय बिरहानल दियौ तचायौ॥२७॥

---

१. सजाएँ। २ त्योंहि। ३. न। ४. स्याम।

तिही समय कान्हर ने चाही।
सो तिय उत्साहित अवगाही॥
सीलवती ही सोच समानी।
रही ध्यान धरि जब न बसानी॥२८॥

पिय बिरहानल ज्वाल पजरि के।
भए अमंगल भस्म हहरि कें॥
मिली ध्यान में जो भरि अंके।
तासों सुकृति जरे अकलंके॥२९॥

बरजित पाप पुन्य है नारी।
परमानंद मगन सुकुमारी॥
तजि कैं गुनमय देह सयानी।
हरि के जाय कंठ लपटानी॥३०॥

बिषय वासना करिकै ध्याए।
जार बुद्धिमय ह्वै अपनाए॥
तउ पर परब्रह्म पद पाई।
निहचै सुख समुद्र में न्हाई॥३१॥

सुक[1] मुनि के ये बचन सुनि, नृपति परीक्षित फेरि।
बोल्यौ अति आदर दिएँ, मुनि सों सन्मुख हेरि॥३२॥

स०—जानि दिए पर केत गुपालहिं,
रीझि रही अति नेह बढ़ाय कै।
रंचक हू न हुतौ तिनकौं,
परब्रह्म को ज्ञान, मनोज मनाय कैं।
कैसे मिली गुन बुद्धि मयी है,
निरंजन सों छिन में अतुराय कै।
जा बिधि सौं यह संसय[2] जाय,
कहौ मुनि जू अब सो समुझाइ कै॥३३॥

---

१. शुक। २. संशय।

सो०—यह सुनि नृप के बैन, बोले मुनि सुकदेव[1] पुनि।
मैं तोसौं भरि चैन, कही नाहिंनै प्रथम ही ॥३४॥

व० चोपाई

जो शत्रु हुतौ शिशुपाल, और जो लजानतु हो न भलाई।
सो गयौ सिद्धि कौं पाय, ततच्छन[2] लच्छन[3] छोड़ि चलाई॥
अरु नारायन अव्यय अनंग की, धारी ये ब्रजभामिनि।
नहि कौन भोति सौं लहै भूप[4] सुनि मुक्ति महा अभिरामनि ॥३५॥

यह संशय[5] तोहि उचित नाहि, नृप अपने चित्त मझारें।
है सोई मोहन ब्रह्म निरंजन, वह विधि सृष्टि सँचारे॥
मंगलकरन, अमंगल करत न, चारौं वेद बखाने।
जिहिं कृष्ण नाम लीने नर जग में, फेरि जन्म नहिं ठानें ॥३६॥

बंसी धुनि वंसी काँटे सी, तानन्नि सो मन अटके।
तिय लाजसमुद्र पछेलि मीन सो, आई रही न अटके॥
तन बने कहूँ के कहूँ आभरन, लसत रेसमी[6] पटकें।
अति घुँघुरारी कारी सटकारी, नागिन सी लट लटकें ॥३७॥

बलयावलित ललित मनिबंधन, टुँवा घूवरी खनकें।
तिय निपट लटी कटि में, चटकीली, कनक किंकिनी खनकें॥
नव अनवट नहि[7] बिछिया छनकें, पाय पेजनी झनकें।
मनु भूपन देत बधाई सब मिलि,[8] होत मिलाप रमन कें ॥३८॥

अति झनक मनक भूषन की सुनकें, मोहन लाल निहारे।
तब डीठि परी[9] आगे ब्रज सुंदरि, जिन घर बार बिसारे॥
ते निरखन लगी नंदनंदन की चंद - वदन - उजियारी।
बर पचबान की सहि कमनैती, होत हिए बलिहारी ॥३९॥

---

१ शुकदेव। २. ततक्षण। ३. लक्षण। ४. भूत। ५. संशय।
६. रेशमी। ७. नहीं। ८. मिल। ९. पड़ी।

तव तिनसों भगवान उच्चरे, महबूवी दरसाई।
हे निपट सगवगे हिए प्रेम सों, जाहर सजी रुखाई ॥
तुम आई भली करी अब मोसो, है कछु काम तिहारो।
सो कहौ सुनों मैं अपने, काननि, रंच न ढोल बिचारो ॥४०॥
यह निपट भयानक रजनी, तामें बोलत जतु भयाने।
ह्याँ तुम को रहनो उचित नांहिने, अधिक प्रेम सरसाने ॥
तुम सबही जाहु उलटि व्रज ही कों अति अतुराई ठानें।
ह्याँ तुम, पितु मात भ्रात सुत ह्वैहै, बिकट सोक में साने ॥४१॥
ते ठौर ठौर ढूंढ़ेंगे तुमकौं, जव न देखिहै नैननि।
तव महासोक के सिंधु बूड़िहै, सचै छोरि कै चैननि ॥
तुम देख्यौ यह बृंदावन सुंदर, द्रुम नवपत्रनि सोहै।
बिबिध रंग फूलन की झूमरि, झुकति चित्त को मोहै ॥४२॥
मृदु सीतल गंध सुगंध, पवन की, आवत सुखद झकोरै।
वोलत बानी मधुर विहंगम, उर में मोद वटोरै ॥
पुलिन कलिंदी कूल कूल की, चंद किरनि सो धोई।
जनु चंद्रक चूरि बिछाई, छिति में मकरंदनि सो मोई ॥४३॥
स०—तुम ने निरख्यौ तुलसी-बनराव हरे द्रुम पत्रनि छाय रहे।
बहु रंगनि फूल खिले चहुँ ओर, मयंक मयूखनि पाय रहे।
अरु सीतल मंद सुगंध समीर, झकोरनि सों लहकाय रहे।
जहँ आवन को छिति पावन जानि, मुनीसुर हू ललचाय रहे ॥४४॥
व० चौ० कै मोही सों निपट प्रीति है, ता बंधन सों उरझी।
तुम आई हौ इहँ ठौर सुंदरी, सव कुटुंव सों सुरझी।
सो भली करी तुम ने, तुम, लाइक, बात हुती यह योंही ॥
जो करति हुँती अति प्रेम मोहि सो, कहिए ज्यो की त्योही ॥४५॥
तुम तातें घर जाउ आपने छिनु न अवेर लगैए।
निजु पति सेवन करौ नेम सों, धरम हिए अपनैए ॥
तुम बालक, बच्छ पुकारत ह्वै हैं, दुख को पार न पाएँ।
तहँ तिन्हें पयोधर प्याओ सुंदरि, बछरन धेनु मिलाएँ ॥४६॥

छप्पै—मूरख लंपट वृद्ध और नित रोगनि मंडित ।
बौना बधिर कुचालि सदा दारिद्र घमडित ॥
झूठो चोर कुरूप बहुरि, अंगनि सों खंडित ।
अंध अधरमी अधम रहै अति क्रुद्ध उमंडित ॥
'ससिनाथ' कहौ ऐसो जऊ पति न तऊ कुल तिय तजै ।
उर अंतर प्रीति बढ़ाय कै रीति पतिव्रत की सजै ॥४७॥

दोहा—तिय जो परपुरुषै रमै, ठीक सो नरकै जाय ।
अजस बढ़ै जग और नहीं, कोऊ करै सहाय ॥४८॥

आज तुम्हारो काज कछु, होय सु कहो सुनाय ।
लखिबो हँसिबो बोलिबो, आरस को बिसराय ॥४९॥

तातें निजु पति सेयबो, निहिचै उर में लाय ।
तुम ब्रजही कों तिय सबै, अबै जाउ अतुराय ॥५०॥

तोमर छंद

इहिं बिधि बुद्धि निधान । उचरे बचन भगवान ॥
सुनि सुंदरी अकुलाय । तहँ रही सीस नवाय ॥

पुनि लगे फरकन होठ । रह गई थिर जिम ठोठ ॥
अँखियान तें जलधार । लागी सु बहन अपार ॥५२॥
बहि कै कपोलन नीक । परि गई अंजन लीक ॥
कितनी खुजावत कान । गुनि कें हिए अपमान ॥५३॥

पग अंगुरिन नख कोय । छिति खनति सोच समोय ॥
सुकि गए अधर अनूप । मुरझाय गो मुख रूप ॥५४॥
कोउ अधर दसननि[1] दाब्बि । रह गई उरनि अगाब्बि ॥
धर अंगुली कोउ नाक । निरखे धरी सुनि साँक[2] ॥५५॥

---

१. दशननि । २. शाँक ।

कोउ आपनी[1] लट एक। लहि हाथ में गहि टेक ।।
कुमनी हलावति सीस। हिय सहित मन्मथ टीस ।।५६।।

गहभरे कठनि आप। ब्रजसुंदरी भरि ताप ।।
ब्रजनाथ सों समुहाइ। उचरी बचन समुझाइ ।।५७।।

हम रावरे हित काज। आईं इहाँ तजि लाज ।।
तुम कहे या बिधि बैन। जिन मद्धि बिबिध अचैन ।।५८।।

अरु तुम्हें चहियति बात। यह निपट हर्षित गात ।।
जो करो हम सो नेह। बरसाउ कै सुख मेह ।।५९।।

जो मुक्ति चाहत चित्त। तुम देव तिनहिं उचित्त ।।
हम कों तुम्हारिय चाह। नँदनंद पिय सउछाह ।।६०।।

अरु बेद की बतरानि। तुम कहत जो गुनखांनि ।।
पति पुत्र कों निरबाह। करिए समेत सलाह ।।६१।।

सो है बचन परमान। यह नांहि झूठ बखान ।।
तिय धर्म है इहिं भाँति। जो कहत उत्तम कांति ।।६२।।

हम तुम्हें पूँछति धर्म। जो कहत बेधन मर्म।
तुम कौं उचित यह नांहि। समझौ हिएँ निजु माँहि ।।६३।।

दोहा—तुम सब ही के प्रानपति, अव्यय पुरुष अनादि।
इन पति पितु सुत भ्रात की, बृथा करत बकबादि ।।६४।।
हम नें तुम पै वे सबै, मन करि डारे वारि।
तातें हम को अंक भरि दीजै बिरह बिदारि ।।६५।।

पद्धरी छंद

तुम चित्त हमारे भोर साँझ।
हरि[2] लिए साँवरे धरनि माँझ ।।
गृह काज करेंगी कोन भाइ।
कर कह्यौ न मानत जड़ सुभाय ।।६६।।

---

१ अपनी। २. हुरि।

तुम चरन कमल के पास आय ।
डग हू न चल सकै जुगल पाँय ।
हम जांहिं कौन विधि ब्रज गुपाल ।
अरु कहा करैं अब अति बिहाल ॥६७॥

सवैया

रावरी हाँसी बिलोकन सौं, अरु
बाँसुरी की सुन तान तरेरी ।
जाग उठी मनमत्थ की आगि,
छिनोछिन बाढति भाँति अनेरी ।
सीचौ हमै अधरामृत सों,
'ससिनाथ' कहौ जिनि वात करेरी ।
नातरु या विरहानल में,
जरि होयँगी कान्ह भभूति की ढेरी ॥६८॥

पद्धरी छंद

निज अधरामृत सों सीचि मित्त
हरि करौ हमें अब तृप्ति चित्त ।
तुम हँसनि विलोकिन सों प्रकास
सुनि गान वढ्यौ मनमथ हुलास ॥६९॥
नहिं विरहानल की लपट लागि
हम भस्म होंयगी प्रेमपागि ।
कर ध्यान तुम्हारे पग सरोज,
अब सबही लहिहै सहित चोज ॥७०॥

मुक्तादाम छंद

रमा रमनीय आज महराज ।
लुभात रहे अजहूँ जिहिं काज ॥
तिही[1] पदपंकज की रज़ आस ।
करें नित ही हम मंडि हुलास ॥७१॥

---

1. तिहि ।

जऊ तुलसी सु भई उरमाल ।
तऊ जिहिं चाहति बुद्धि बिसाल ॥
तिही पद पंकज की रज आस ।
करें नित ही हम मंडि हुलास ॥७२॥

घने सुर किन्नर औ मुनि बृंद ।
लह्यौ जिहि चाहत पाय अनंद ॥
तिहीं पद पंकज की रज आस ।
करें नित ही हम मंडि हुलास ॥७३॥

बिरंच महेस रु[1] सेस पबित्त ।
करें प्रभुता जिहिं के बल नित्त ॥
तिही[2] पदपंकज की रज आस ।
करैं नित ही हम मंडि हुलास ॥७४॥

अजू न कछू हम जानत और ।
गुविंद सुनो सब के सिरमौर ॥
जुहे पद पंकज पाइ प्रबीन ।
रहै नित ही तिनि के सु अधीन ॥७५॥

अहो तिहिं अर्थ मनोहर लाल ।
हिएँ अब होउ प्रसन्न गुपाल ॥
प्रफुल्लित पंकज तौ पद पास ।
पहुँच्चियहै हम आनि प्रकास ॥७६॥
निरास भई निजु बंधनि तज्जि ।
लुभाय रही तुम सो हित सज्जि ॥
प्रकासित[3] पूरन चंद समान ।
लखें तुव आनन सोभनिधान ॥७७॥

चितौंनि बरच्छिय सी तिरछाइ ।
पियूष सनी मुसिक्यानि सुभाइ ॥

---

१. अरु । २. तिहिं । ३. प्रकाशित ।

लखै मनमत्थ चढ़ाय कमान।
हनै सर पंचहु ज्वालनिधान ॥७८॥
हमें निज दासिय जानि दयाल।
करौ पुरुषारथ को नँदलाल ॥
समीप भईं जिहि कारन आय।
सिराय हियो करिए सु उपाय ॥७९॥

सवैया

मद हँसी मुख चद समान,
लसै श्रुति कुंडल ओप घनेरी।
बंक चितौनि हिए बनमाल औ,
बाँसुरी की सुनि तान तरेरी।
बानिक यो अवलोकि लुभाय,
भई बिनु मोल बिकाय कैं नेरी।
आन कछू चरचा न रुचै हम,
रावरी कान्ह भयो चहैं चेरी ॥८०॥

मधुभार छंद

गंधर्व जच्छ, किन्नर प्रतच्छ; अरु अमर चंद पन्नग परंद ॥८१॥
बहु वेलि बृच्छ, बहु बाल बच्छ; ते बेनु गीत, सुनिकें अभीत ॥८२॥
जड़ होत अंग, पुलकैं सुढंग; थहरै सरीर लहि हित गँभीर ॥८३॥
अरु तिय बिसाति, कितनी लसाति; यह चित मँझार करिए बिचार ॥८४॥

सवैया

मोहन पंकज से दृग है
इतने, पै तकौ तिरछे मुसकाय के।
कोटि मनम्मथ[१] के मथि प्रान,
करौ कल कान गरूर गराय कै।

---

१. मनमथ।

औ 'ससिनाथ' लगे अचका जब,
कानन बाँसुरी की धुनि आय कैं।
को वह नारि जु धीर धरै उर,
प्रेम की पीर गँभीर पचाय कैं ॥८५॥

ब० चौ०

तुम ब्रज भय अरु पीर हरन कों प्रगटे हौ हम जाने।
वह आदि पुरुष अवतरे सुरन की रक्षा को जिय ठाने।
अब तातें धरौ हमारे उर निज इक कर कमल सिहाने।
करो एक सों छाया सिर पै, हम तुम रूप भुलाने ॥८६॥

सुकदेव उच्चरे बहुरि परीक्षित नृप सों नेह बढ़ाएँ।
इहि बिधि बिनती ब्रजबालनि की सुनि भगवान सुहाएँ।
हैं जऊ आतमाराम तऊ हँसि बिहरे तिनके संगे।
लखि प्रीतम तिनके मुखअंबुज फूले सहित उमंगे ॥८७॥

तिनके संग बिचित्र चरित्रनि प्रकटे सुख सों भीने।
पुनि मंद बिहँसनि मे दरसे दसन कुंद छबि छीने।
तिन ब्रज बनितन के मंडल महियाँ यों नँदनंद बिराजै।
ज्यों तारामंडल मध्य अखंडित चंद सोभ कौं साजै ॥८८॥

बिबिध भाँति के गावें गीतनि बनिता संग हजारन।
पुनि करत आपहू गान मनोहर तान सज्जि बहु बारनि।
उर पहिरै माल बिमल वैजंती कटि पट पीत लपेटें।
किय बन बिहार इहि बिधि स्यामघन त्रिभूवन रूप झपेटें ॥८९॥

जमुना कूल पुलिन सुंदर जहँ फहरे पवन सुहायो।
चंचल चलित तरग मनोहर कमलनि पुंज हलायो।
बर महक रह्यो सौरभ चहुँ ओरनि तहाँ आय हित काजे।
किय तिनके संग नृत्य मनमोहन गति संगीत समाजे ॥९०

त्रिभंगी छंद

बहु बिधि रंगनि वसन सुढंगनि, साजें अंगनि सुख भीने।
कंचन मनिवारे भूषन[1] भारे, लसें अपारे पट झीने ॥९१॥

मुख चीतें चंदनि, परम अमंदनि, पूरि अनंदनि हास करें।
गति लै लै नच्चहिं कटितट लच्चहिं, प्रेम परच्चहिं त्रास हरें ॥९२॥

हरित्रासन गावें पियहि रिझावें, अरु निदरावे पिक बीने।
अधरामृत पीवें, चिबुकनि छीवें, छबि लखि जीवें परबीने ॥९३॥

कबहूँ गलबाही गहहि उछाही, मृदु बतराही मल्कनि में।
झलकें सुकिनारी, कंचनबारी, अति चटकारी अलकनि में ॥९४॥

अलि तत्थेई तत्थेई थेई, अच्छर येही उच्चारें।
कोउ मुरज बजावें, रुचि उपजावें, बीन मिलावें डटतारें ॥९५॥

जुग बनितनि बीचें, हरि सुख सीचें, बदन मरीचें बिस्तारें।
कर चूरी छनके, बिछिया बनके किंकिन झनकें मृदु ढारें ॥९६॥

ढारें निज कंधनि, नवल सुगंधनि, अरु मनि-बंधनि-कनक करें।
करि बाँहाजोटी दंपति गोटी, यारी मोरी चोट भरें ॥९७॥

बिनु संके भेटें, भरि भरि जेटें, भुजनि समेटें छल करिकें।
लै फेरी चितवें, मोहन मितवें, हरि हित जितवें दुख दरिकें ॥९८॥

दरिकें दुख सगरे, आनंद बगरे, मन्मथ झगरे सुरझाए।
कौतुक निरखैया, गगन फिरैया, सुर ललचैया फिर आए ॥९९॥

बरसाए फूलनि चित अनुकूलनि, सहित दुकूलनि अनमोले।
अरु बजे निसानें मधि असमानें, त्रिभुवन जानें अनतोले ॥१००॥

दो०—रति रतिपति कौ गरब हरि, तरिकें बिरह दरयाउ।
नंदलाल ब्रजतियन सँग, यों बिहरे लहि दाउ ॥१०१॥

---

१. भूषण।

आनँदकंद गुबिंद सौं, पाय परम सन्मान।
आपुन कौं जग तियन में, बढ़ती गुनी निदान ॥१०२॥

प्रेम छाक छकि बावरी, ह्वै ताते ब्रजबाल।
तब यह उर में जानि हरि, ह्वैकें निपट दयाल ॥१०३॥

सो० गंजन गरब गँभीर, भक्ति अधीनैं रैन दिन।
तिहि निमित्त बलबीर, तिहि छन अंतर ध्यान ह्वै ॥१०४

इति श्री माथुर चतुर्वेदि मिश्र सोमनाथ कविविरचित 'श्रीकृष्ण लीलावती' रास पंचाध्यायी प्रथमोध्यायः।

अथ द्वितीय अध्याय

सो०—श्री सुकदेव सुजान, बहुँरि परीक्षित नृपति सों।
बोले बुद्धिनिधान, हरि-चरित्र-चरचा मधुर ॥१॥

हुव हरि अंतरध्यान, तच्छन ही ब्रजसुंदरी।
दुःखित भईं निदान, बिन देखें छवि साँवरी ॥२॥

नव हस्थिन नहिं भाय, कछु बिछुरे गजराज के।
चित की चोप भुलाय, बिकल होत अँग अंग ही ॥३॥

तोमर नँदनंद की गज चाल। अरु चंद वदन रसाल।
अरविंद नैन विसाल। जिनमें लसै गुन लाल ॥४॥

मुसकानि मंद सुवेस। तिरछे चितौनि विसेस।
अरु वैन की मृदु तान। करिवौ मनोहरि गान ॥५॥

रस पूरिकै वतरानि। मिलिवो महासुखदानि।
औरौ अनेक विहार। तिनकों सुमिरि बहुकार ॥६॥

बिकि गईं मन अनमोल। ब्रजबाल विसरि कलोल।
करतूति उनकी धारि। निजु चित्त में निर्धार ॥७॥
लागी करन प्रन पारि। अपने स्वरूप निसारि।
हरि रूप ही निजु मानि। सुख लह्यौ औसर जानि ॥८॥
हरि के चरित्र वखान। उचरत्ति सज्जित गान।
ब्रजनारि ते अतुराय। इकठौर भईं सु आय ॥९॥
निरखन लगी सब ठौर। नहिं लख्यौ पिय सिरमौर।
वह छोड़ि कैं वन और। बन में गई कर दौर ॥१०॥
जो पुरुष सबनि मंझार। रमि रह्यौ गगन प्रकार।
द्रुम लतनि सो पुनि ताहि। पूछति फिरीं वन जाहि ॥११॥
नँदनंद के हित रत्ति। हुव बावरी सम अत्ति।
पीपर उतंग सरीर। तुम हो परम गंभीर ॥१२॥

निरख्यौ कहूँ नँदलाल। हमकों बतावहु हाल।
हम भईं निपट बिहाल। बिनु लखें कंत कृपाल ॥१३॥
एरे प्रबीन पलास। दे तू बताय प्रकास।
कहुँ करत बिपिन बिहार। दरस्यौ जु नंदकुमार ॥१४॥
हे द्रुमन में बर बृच्छ। बर तू निपट परतच्छ।
कहुँ लखे होंय गुपाल। तौ देइ बताय दयाल ॥१५॥
तुमहूँ रहे कि बिकाय। लखि हँसनि लखनि सुभाइ।
हम है[1] भई जिहि भाइ। बस सकल सुद्धि भुलाय ॥१६॥
कुरुबक असोक उदार। पुन्नाग चंप सुढार।
हम तुम्हें पूछति बात। कित गयौ स्यामलगात ॥१७॥
हँसि हरन मानिनि मान। बलवीर रूप निधान।
मुखचांद पंकज नैन। निरखे बिना नहिं चैन ॥१८॥
तुलसी रही तुव छाय। हरि चरन परसहि पाय।
उर में महा हुलसाय। हमकौ सु देहु बताय ॥१९॥
कितकौं गयौ ब्रजचंद। दुख हरन आनँद-कंद।
हम तोंहि पूछति भेद। बढि जो बिरह को खेद ॥२०॥
बरबेलि हो सुखदानि। झुकि रही पत्र निधान।
वहुरंग फूल अनंत। दृग तूल निपट लसंत ॥२१॥
कहुँ परे डीठ गुबिंद। इमि हुव जु फूल अनिंद।
हमकौ बतावत क्यों न। घनस्याम सिंधुरगौन ॥२२॥
हे जुही मल्लिय जाति। हे मालती सरसाति।
तुम क्यों रुखाइय ठानि। चुप ह्वै रहीं रसखानि ॥२३॥
चहिए तुम्हें यह नाहि। करि काजु निज बन मांहि।
हमकौं जु मोहन काम। न बताय देत ललाम ॥२४॥
हे कोबिदार प्रियाल। कृतमाल और रसाल।
अरु पनस, अनस उतंग। अरु बेल जामुन संग ॥२५॥

---

1. हम हैं।

अरु अर्क बकुल कदंब। अरु और द्रुमनि कदंब।
पर काज करन सुभाय। बिधि रचे तुम सुख पाय ॥२६॥
तजिकैं जमुन कौ कूल। कितहूँ न जात सफूल।
कित गियो जसुमतपूत। हितपंथ में मजबूत ॥२७॥
हमसों कहो करि हेत। ह्वै हिए धर्म समेत।
बिनु लखें जसुमतिलाल। हम भई अति बेहाल ॥२८॥
तैं बसुमती परवीन। ऐसो कहा तप कीन।
तो पै धरे जु अनिंद। हरि ने चरन अरबिंद ॥२९॥
ता को उछाह अपार। धरि रही उर अविकार।
कैधों त्रिबिक्रम पाय। बलि सों लई अपनाय ॥३०॥
ताको गरूर बढाय। है रही मौन अघाय।
कै धरी दसन बराह। ताको बढ्यो उत्साह ॥३१॥
तातें बतावति है न। हमकों कमलदलनैन।
तन नवल नीरद रंग। वनमाल मुकुट बरंग ॥३२॥
कहि री परम सुकुमारि। मृग की बधू डर टारि।
इत लखे आवत लाल। तिय सहित गुनति बिसाल ॥३३॥
अतिही लसें तुव अच्छ। डहडहे जुगल प्रतच्छ[1]।
निहचैं लखे घनस्याम। तुमने बिनोदनिधान ॥३४॥
हरि भांवती ले आय। निज संग वर्जित ताय।
इत ह्वै गए सउमंग। आवें सुगंधि तरंग ॥३५॥
ही कुंद की उरमाल। नँदनंद के सुरसाल।
तिय कुचनि कुंकुम लाल। ताकी सुगंधि बिसाल ॥३६॥
निहचै बतावति जाति। यह गंधि जौ सरसाति।
पिय गए है इह राह। पूरित मनोज उछाह ॥३७॥

तिय वाम हत्थ गलबाही, दक्षिण कर सो कमल फिरावत।
हिय सखी सुगंधि माल तुलसी की, संग मधुप छबि छावत॥

---

१. प्रतच्छ।

इमि बिहरत निरखे तुम द्रुम नेरे, हौ क्यों नति कों ठाने।
अरु अवलोके, वे तुम, तिन हँसिकें, यातें तुम सुख साने ॥३८॥
अलि पूछों इन नव बेलिन सों, अति अनंद सरसानी।
निजु प्रीतम वृच्छन सों गलबाहीं, दै करिकें लपटानी॥
पै तऊ हमारे पिय गुबिंद के, कर नख छत परसानी।
मिस फूलनि के मुसक्याति मनोहर, हम निहचै यह जानी॥३९॥

दो०—हरि ढूँढति यों सुंदरी, प्रेममत्त वकि बैन।
करन कृष्णलीला लगीं, आपुस में सुखदैन॥४०॥

बनी पूतना एक सहेली।
अरु इक बनी कृष्ण अलबेली॥
लागी करन पयोधर पाने।
मन करि बनिता रूप भुलाने॥४१॥
अरु इक सकट बनी ब्रजनारी।
दूजी बनी गुबिंद सुखारी॥
रोय लात की मारी ताकें।
उलटी गिरी प्रेम मद छाकें॥४२॥
तृणावर्त इक बनि ब्रजबाला।
रज की घूँघुरि करी बिसाला॥
बालक कृष्ण बनी सुरसाला।
लियो उठाय ताहि तिहिं काला॥४३॥
घुटुवनि चालि चलन इक लागी।
मंजुल नूपुर की धुनि जागी॥
हरि अरु राम बनीं द्वै बामा।
और बनी द्वै सखी ललामा॥४४॥
अरु इक बनी बकासुर गाढ़ी।
हनी कान्ह बनि तिह ने ठाढ़ी॥
अरु इक बनी अघासुर बंकी।
और कन्हैया बनी असंकी॥४५॥

मार्‍यो ताहि भूमि पै पटकी।
लिए रीति उर प्रेम लपट की ॥
जाती दूरि निकसि जब गैयाँ।
रंग रंग की मोद बढ़ैयाँ ॥४६॥

त्योंही आपुहि कान्हर माने।
करन लगी अनुहारि सिहाने ॥
इक ने मुख सुर सो छबिछाई।
उच्च नाद सों बेनु वजाई ॥४७॥
और नारि ने करी बडाई।
आछी जू आछी बनि आई ॥
काहू ने इक तिय के कधें।
अलबेली भुज धरि हित सधे ॥४८॥
समद मतंग चालि की मल्हकनि।
चलन लगी छटकाएँ अलकानि ॥
मै हौं कान्ह कहति यों बानी।
कैसी लागति छबि सरसानी ॥४९।
मन में कान्ह तही पुनि ध्यावति।
बौरी भईं ताके गुन गावति ॥
जिन डरपौ[1] लखि पवन झकोरनि।
अरु आवति वर्षा चहुँ ओरन ॥५०॥
मैं तुम कौं रक्षत हौ अबही।
कौतुक यह निरखौ तुम सबही ॥
यों कहिके ओढनी उछारी।
इक कर पै लीन्ही सुकुमारी ॥५१॥
अरु पुनि बोलो एक सुहाई।
अरे गोप सुनि हृदय महाई ॥

---

१. डर्यों।

चहूँ ओर आवै दौ लागति।
अति ही ज्वाला जालनि जागति ॥५२॥
इक छिन रहो मूँदिके नैननि।
तुम कौं अब रक्षौं दै चैननि ॥
अरु इक ने बहुमाला जोरी।
कर बाँधे पिय के ह्वै भोरी ॥५३॥
सो अपनो मुख रही नवाएँ।
डाटत ताहि कपट उर पाएँ ॥
हरि कों यो पूछति ब्रजनारी।
द्रुम बल्ली बृंदावन वारी ॥५४॥
आगे चली सबै बौरानी।
तहँ हरिचरन लख्यौ सुख दानो ॥
आपुस में तब यौं बतरानी।
देखौ री तुम सबै सयानी ॥५५॥
नंदलाल के ए पग लोने।
सुर मुनि किन्नर के जु खिलौने ॥
देखन लगीं सबै हरषाएँ।
झुकि-झुकि झूमि-झूमि अतुराएँ ॥५६॥
लखि ये धुज अबुज जगमंडित।
कुलिस और अंकुस अनखंडित ॥
तिनि ही देखत आगे डगरी।
ब्रजसुंदरी प्रेम सनि सगरी ॥५७॥
आगे जाय लखे तो रूरौ।
तिय पग पास पियापग पूरौ ॥
ताहि देखी बोली बिलखाएँ।
वह को है जाकौं अपनाएँ ॥५८॥
हमकों छांड़ि ताहि लै संगै।
बन में गए समेत उमंगै ॥

हथिनी कों जैसे सँग लीन्हें।
समद मतंग जाय रस भीने ॥५९॥
भली भाँति इन कान रिझाए।
नारायन परब्रह्म सुहाए॥
जो तजि हमैं सनेह बिसारैं।
तिही अकेली संग बिहारैं ६०॥
धनि यह रैनु जु हमने दरसी।
हरि के चरन कमल की परसी॥
ब्रह्मा रुद्र अरु लक्ष्मी जाकौं।
सीस धरैं[1] गुनि सुद्धि कला कौं॥६१॥

पद्धरी छद

ता तिय के उघरे जु पाँय।
ए हमें बढावत दुख[2] बनाय॥
सब गोपिन लाइक जो अनूप।
है अधरामृत निदरन बिधूप॥६२॥
सो करति अकेलें पान आप।
सुख सौं बुझाइकैं मदन ताप॥
अरु ह्याँ ताके आवै न डीठ।
पग चिन्ह मनौ घर लई पीठ॥६३॥
कै कंधा पर लीन्ही चढ़ाय।
अति ही सनेह उर में बढाय॥
तृण अंकुरित क्षण चित्त जानि।
तिय चरन गड़ै जिनि दु:खदानि॥६४॥
इहँ ठौर फूल बीननि निमित्त।
प्यारीहि रिझावन कौं सुचित्त॥

---

१. धौं। २. दु:ख।

निजु उनमि भार दै चरण अग्र।
तोरे प्रसून पुंजन अव्यग्र॥
सो आवेई पग छिति[1] मँझार।
उघरे है देखौ ठार ठार॥
अरु तिय के कुचन सिंगार हेत।
हरि बैठे ह्यां गुनिके निकेत॥६६॥
निज करन गूँथि बेनी बिसाल।
इक ठौर बैठि कै अति दयाल॥
आतमाराम[2] जउ आय रत्त।
तउ तासों पुजयौ मदन मत्त॥६७॥
ह्वै अति गरीबिनी सकल बाम।
अमरषता पूरित उर उदाम॥
हरि प्रीतम के इहि बिधि बिलास।
दरसावति आपुस में प्रकास॥६८॥
मन मद्धि गोपिका ते सरब्ब।
बिचरीं सनेह सजि तजि गरब्ब॥
जाहि (को) संग लीन्हें गुबिंद।
तजि और तियन कौ हित अनंद॥
बन माँझ गई सो तिय सरूप।
आपन को मानति हुत्र अनूप॥
जो तजि कै औरै थल इकंत।
ह्यां लायौ मोकौं कामवंत॥७०॥
तब आगें चलि बन में पुकारि।
उच्चरी[3] कान्ह सो गरब धारि॥
मौ पै न चल्यौ अब जाय लाल।
लै जाउ मोहि जहँ तुम कृपाल॥७१॥

---

१. छिति। २. आत्माराम। ३ उच्चारी।

दो०—ता तिय के मन जानिकै, वढ्यो गुमान समुद्र ।
तब पुनि अन्तर्ध्यान ह्वै, श्री हरि गुननि अछुद्र[1] ॥७२

सो०—सो तिय सुक्ख भुलाय, नख सिख पूरित विरह में ।
दोऊ भुजनि उठाय, लागी करन विलाप को ॥७३॥

पावकुल छंद

हाय ! नाथ हा ! प्रानपियारे ।
हाय ! ईस हा ! बाहु उदारे ॥
हाय ! रमन मन भवन सुहाए ।
हाय ! मदन-मद-मथन कहाए ॥७४॥
कहौ कौन थल जाइ विहारे ।
हित करि हरि कै प्रान हमारे ॥
मैं दासी तुम करुना लायक ।
ताहि लखावौ मुख सुखदायक ॥७५॥
और जुही गोपी गुनवारी ।
ढूँढ़ति हरि कौं विरह उतारी ॥
दूर गई बन मद्धि सुखारी ।
तन मन की सुधि बुद्धि बिसारी ॥७६॥
देखैं तौ वह ग्वालिन ठाढ़ी ।
निज समान ही दुख में बाढ़ी ॥
समाचार ते ताने उचरे ।
ते आपुन प्रीतम सो सचरे ॥७७॥
सुनि कै भई अचभित गोपी ।
पैडो तिहि बन में हित ओपी ॥
जहँ लगि लखी चंद्र उजियारी ।
तँह लौं गई रटत गिरधारी ॥७८॥

---

1. अछुद्र ।

डीठि परी जब अति अँधियारी।
कछू न सूझै राह बिसारी॥
तँह ते फिरी गोपिका सगरी।
हरि में मन दीन्हें पन अगरी ॥७९॥
ता हरि के गुन गावत आछै।
तिही रूप ह्वै हित कौं काछै॥
निज निज गृह की सुरति भुलाएँ।
आईं जमुना कूल सुभाएँ ॥८०॥

सवैया

मनमत्थ मनोहर मूरति स्याम, न क्यौं अचका दरसावत हौ।
सरसाइ के नेह अबेह महा सुख, मेह न क्यों बरसावत हौ॥
'ससिनाथ' गुपाल कहो कित हौ, बिरही बिरहै परसावत हौ।
यह बात न चाहिए लाल तुम्हें, तु हमें इतनो तरसावत हौ ॥८७॥

दो०—पुलिन कलिंदी कूल की, तहँ बैठी ब्रजबाल।
भईं ध्यान में मगन सब, आगम चहत गुपाल ॥८८॥

इति श्री माथुर चतुर्वेदी मिश्र सोमनाथकविविरचिते श्री कृष्ण-लीलावली : रासपंचाध्यायी : द्वितीयोऽध्यायः।

अथ तृतीय अध्याय

दोहा—गोपी बोली कान्ह सों, अनदेखें अकुलाय।
प्रेम सिंधु उमग्यौ हिएँ, सकी न ताहि पचाय ॥१॥

व० चौ०

ह्व ब्रज में जन्म तिहारौ जबतें, मोहन मंगल दानी।
ह्यां तबही तें निज भवन जानिकें, रहति रमा हित सानी।
ये गोपी कान्ह रावरी गाहक, पुलकित ह्वै अँग अंगनि।
सब दिसन बिलोकति फिरति तुम्हैं ही, मान लगाय सुढंगनि ॥२॥
सरद कोकनद दल से सुंदर, लोचन जुगल तिहारे।
तिनसौं करि तिरछौंही चितवन, बेधे हिए हमारे।
हम बिना मोल की दासी तिनको, काहे प्रेम विनासौ।
तुम डीठि परौ मंगल वर-दायक, पूरन प्रेमप्रकासौ ॥३॥
विष जल, व्याल, कपाल रक्कसा, पावक ते तुम रच्छे[1]।
घन धहराय बेहद्द बरष्षै, तड़ित पवन मिलि अच्छे[2]।
वृषभासुर मय नंद प्रलबा, ताने भय प्रगटाई।
तुम इनतै रच्छा[3] करी हमारी, पुरुषोत्तम जदुराई ॥४॥
तुम केवल नाहि गोपिकानंदन, मोहनलाल पियारे।
हौ साखी रूप सकल जीवन के अंतरगत उजियारे।
करत प्रनाम अमर किन्नर हूँ तुमको, नर पुनि को है।
अघफंद-निकंदन जगहर जग में, तुम एकै सरसो है ॥५॥
भुवभार उतारन जाँचे विधि ने, तुम जग रच्छा[3] काजै।
तब उदित भए जदुकुल में सूरज, नूल तेज कौं साजै।
तुम निसिबासर तिन सुभदायक, जदुनायक छवि छाजै।
बिकट कोटि कष्टन के काटन अपनी सक्ति समाजै ॥६॥

---

१. रचे। २. अचे। ३. रचा। ३. रचा।

तुम चरनकमल की सरन होत, जे तिनकौं डर न सतावै ।
हत्थ लक्ष्मी, हत्थ ग्रहन, समरत्थ निगम यौं गावै ।
सो पूरन करन मनोरथ, निज कर धरिए सीस[1] हमारे ।
हम कपट भुलाय असीसति, प्यारे मिलि बिहरौ सुख धारे ।७।।
ब्रजजन के तुम दरददरैया, बनितनि[2] हियौ हरैया ।
मंद मंद मुसक्यानि रावरी, धीरज-गरब-गरैया ।
हम निपट किंकरी कान्ह तिहारी, तिनसों नेह रचाओ ।
तुम इत उत मति परचाऔ मन कौं, हम कौं मन दरसाओ ।।८
जे करें प्रनति तिनके अघहारी, मंगल छैल छबोले ।
गायन के अनुचारी, श्री गृह, कल्पद्रुम सम सीले ।।
पुनि कूर गरूर हरन काली के, फन-फन नृत्य करैया ।
ते चरनकमल हमरे उर ऊपर, धरहु त्रितापहरैया ।।९।।
मंजुल मधुर बैन मुक्ताफल, बुध जन के मनहारी ।
हे कमलनैन तव बानी सुनि, हम मोही बुद्धि बिसारी ।।
अब तिनकौं अधरामृत छाकनि, नीकी भाँति छकैये ।
हैं तुम बियोग की ज्वालन मंडित, तिन्हे नही दहकैये ।।१०।।
शुद्ध अमृतनिधि कथा तुम्हारी, ताप बुझावनहारी ।
कविजन करत बड़ाई जाकी, उजियारी अघहारी ।।
प्रेम अमल मय गान तुम्हारो, श्रवननि मगलकारी ।
नर गावत जाकौ ते पावत, उत्तम पद छितचारी ।।११।।
पिय हँसनि रावरी लसन बिलोकनि, परम प्रेम सरसावन ।
बिमल अंक भरि नीवी परसन, बचनन बिरह सिरावन ।।
पुनि औरौ बिबिध विहार बिहारन, कपटी छल बरसावन ।
ते हमको भई निपट दुखदाइनि, मन्मथ ज्वाल जगावनि ।।१२।।
जब ब्रज तें जात चरावन गैयाँ तुम श्री कुंजबिहारी ।
मृदु समद मतंग चाल की मल्हकनि पदपंकज अनुहारी ।।

---

[1] शीश । [2] बनतनि ।

तिन मद्धि तीख अंकुर लगि तुमकों ह्वै है करत दुखारी।
पिय तिहि निमित्त लघु हृदय हमारे होत बिथा अति भारी॥१३॥
दिवस अंत आवनि छबि छावनि, वन तें गैयन पाछैं।
नव अरविंद खिल्यौ सो आनन ढिग जुल्फैं जुग आछैं॥
श्रम जलबिंदु भाल सुंदर पै गोखुर-रज सरसाने।
तिहि लखै पंचसर हम कौं नित प्रति करत निपट कलकाने॥१४॥
जानै न बात तिन दै मनबांछित श्री जिन सौं हित ठायौ।
हरै तमोगुन आधि अखंडित छितमंडल छबि छायौ॥
पग अरबिंद बिपत्ति बिखंडन बेदन में जो गायौ।
सो तुम धरौ हमारे उर पै सीतलता सरसाऔ॥१५॥
पिय ऊँचे सुर सौं बेनु बजाओ अधर सुधा सौं सानी।
जिहि सुनै न और राग सुधि आवै दुख न होय दुखदानी।
तुम सब दिन फिरत बिपिन के अंतर, हम इक टक मग चितवैं।
तुम मुख अरबिंद बिना अवलोके छिनहूँ जुग सौ बितवैं॥१६॥
तुव आननचंद अलक मंडल में, प्यारे जब लखि पैये।
तव पलकनि ओट होत ही मन में, मुग्ध बिरंचि वतैये॥
पति पिता पुत्र कुल भ्रात बंधु की, मरजादा कों तज्जै।
हम आसा करि आईं तुव पासैं परम प्रेम कौ सज्जै॥१७॥
रति रंग ढंग परवीन साँवरे, तुम मुख गान सुहायो।
हम ताहि सुनै मोहित ह्वै, इतकों परबस चित्त चलायो॥
तुम कपटजुती बातैं प्रगटावत, अब निज हिएँ विचारौ।
नर कोउ तजत रैनि में नारी, प्रेमपंथ गतिवारौ॥१८॥

स०--मिलिकैं वतरात सिरात हियो,
 अंग-अंग[1] अनंग महा सरसै।
मुसिक्यात से आनन प्रेम सने,
 अवलोकनि सौं सुख सो बरसै।

---

१. अंग।

अरु श्री कौ निवास बिलास भर्‌यौ,
उर रावरो सुंदरता परसै।
लखि ताहि समुद्र बढ़ै मन मोह कौ,
वार न पार कछू दरसै ॥१९॥

दोहा

हम ब्रजवासिन प्रगट सब, दरसन चाहत चित्त।
तातैं जग-मंगल-करन, सो सब दीजै मित्त ॥२०॥
दूर करन हिय रोग कौ, निहचै यही उपाय।
मुख दिखाइ नीकौ अपुनु, डारौ दरद मिटाय ॥२१॥
सुंदर कोमल कमल से, चरन तुम्हारे स्याम।
ते धरि जिन कुच कठिन पर, हम सब डरपीं बाम ॥२२॥

सोरठा

सब दिन तिनसौं लाल, तुम बन जा हित फिरत हौ।
किती न विथा बिसाल, उरनि हमारे होति है ॥२३॥
मन बच कामनि एक, हमकौं कम घन साँवरे।
तातैं सजि निज टेक, दरस देउ अतुराय कैं ॥२४॥

तृतीय अध्याय समाप्त।

अथ चतुर्थ अध्याय

बहुरि परीच्छत नृपति सों, श्री सुकदेव सुजान ।
प्रेम पगे बोले बचन, गुनिके भक्त निधान ॥१॥

पादाकुल

यों बिबिध व्रजसुंदरि आईं । बहु विलापयुत विरह सताईं ।
कितहू नहीं डीठि में आयौ । जब मनमोहन मित्र सुहायौ ॥२॥
तब ते अति पुकारिकै रोईं । दरसन के अभिलाष समोईं ।
तिनहीं मद्धि सूरकुलदिनकर । प्रगट भए तच्छन[1] तम-कुल-हर ॥३॥
अंग प्रत्यंगन बने तरंगनि । लसैं पीत पट चारु सुढंगन ।
फूलन की उर माल सुहाई । मनमथ कौ मनमथ जदुराई[2] ॥४॥
लखि समीप वह प्रीतम आयौ । [illegible] के नैनन सुख छायौ ।
एकै संग उठीं सब ऐसें । देह प्रान[3] के आए जैसें ॥५॥
काहू हरिके कोमल हत्थहिं । गहि लीनौं ह्वै हित लथपत्थहिं ।
अपने जुगल करन में लैकै । मोह रही मन में सुख ह्वैकै ॥६॥
अरु काहू ने भुज छबि छाई । चंदन सों चर्चित सुखदाई ।
अपने कंधा ऊपर धरिकैं । मगन भई सुख मैं हित भरिकैं ॥७॥
अरु काहू भरि प्रेम बिसाले । निज कर अंगुल लियौ उगाले ।
अरु इक हरि के पग अरविंदन । रही उरजि धरि भाँति अनिंदनि ॥८॥
अरु एक भृकुटी कुटिल डिढाएँ । मनु मन्मथ को चाप चढ़ाएँ ॥
वान समान कटाच्छनि[4] चितईं । हरि को ओर प्रेमगति जितईं ॥९॥
ह्वै विह्वल हित रिस अधिकानी । प्रीतम की ग्रीवा लपटानी ।
निज दंतनि में अधरहिं लीने । रही मौन ह्वै आनँद भीने ॥१०॥
सीतल[5] नीर तृषित ज्यों पाएँ । पियत एकरस रुचि उपजाएँ ।
त्यों छवि सुधा पान कौं करि करि । नहीं अघान विरह कौं दरि दरि ॥११॥

---

१. तत्क्षण । २. यदुराई । ३. प्राण । ४. कटाक्षनि । ५. शीतल ।

जिहि बिधि संतन के गुन रूरे। तिनके पग पंकज जस पूरे।
तृप्ति न लहें ध्यान में लै लै। मन तें धोइ विषय वदफैलें ॥१२॥
अरुइक दृग मग ह्वै हिय धरिकैं। रही मूँदि पलकनि दुख दरिकैं।
अरु इक भेंटि सुपुलकित अंगनि। जोगेसुर जिमि वही सुढंगनि ॥१३॥

दो०—पिय कौ दरसन[1] पायकैं उर में मंगल मानि।
ते सब बिरह हुतास तें निकरीं यों सुखसानि ॥१४॥
जैसे बिरहिन भामिनी, बहु दिन में पति पाय।
मिलति बिलोकति चित्त में, रंचक हू न अघाय ॥१५॥
तिन सब के दुख दूरि करि, मदन मनोहर स्याम।
संग लिएँ जमुना पुलिन, आए पूरनकाम। १६॥

छं०—खिले कुंद मंदार वृच्छ बल्ली जहँ दरसत।
सरद चंद की किरनि, लागि रजनी में सरसत॥
त्रिविधि पवन फहूराति, मिटै[2] श्रम जाके परसत।
इंदीवर अलि रत्त मत्त पुंजनि छबि बरसत॥
ससिनाथ[3] तरंगनि करनि सो, कालिंदी चित चाइकै।
सित चंद्रक[4] चूर समान दिय, तट बालुका बिछाइकैं ॥१७॥
ता पिय कौ मुख लखत रोस[5] उर सों इमि भज्जिय।
ज्यों तम चंद उदोत होत सटके निर्लज्जिय॥
जिहि जिहि बिधि श्रुति अन्य मनोरथ लहि अति सज्जिय।
प्रगट ब्रह्म गुन गाय अनेकनि संसय तज्जिय॥
रंगीन कुचनि कुंकुमनि तें, बसन बिछाए तियन सब।
मंडित उमंग अँग अंग में, मिलि राजे प्रभु तहाँ तब ॥१८॥

पद्धरी छंद

ज्यों जोगीसुर उर अमल मद्धि। दिन रैन बिहारत साँच सद्धि।
सो सहसनि सुंदरि[6] मद्धि आप। इहि विद्धि लसै कान्हर प्रताप ॥१९॥

---

१. दरशन। २ मिलै। ३. शशिनाथ। ४. चंद्रक। ५. रोय।
६. सुन्दरी।

ज्यों तार नछत्रनि मांझ चंद। संपूरन दरसै दुति अमंद।
तिहुँ लोकनि की सोभा सहित्त। बिधि हूँ नहिं जानै जिहि चरित्त॥२०॥

दो०—भली भाँति सन्मान करि, हँसि बिलोकि मुसकाय।
हरि के सुंदर कर चरन, अंक धरे सचु पाय॥२१॥
चम्पति धीरज सज्जि कैं, रंचक रिस उर लाय।
बोलीं नंदकुमार सौं, ब्रजसुंदरी सुभाय॥२२॥

प० छं०

इक चाहति आपुहि चहै ताहि। नहि चहै जु तिहिं चाहै सराहि।
अरु दुहुनि तजे तें कौन आहि। कहिये सु मनोहर प्रभु उछाहि॥२३॥
ब्रजसुंदरीन कौ वचन एह। सुनि स्याम उच्चरे उर अतेह।
जो होत परस्पर चाहवंत। ते स्वारथमंडित सुनहु तंत॥२४॥
नहिं धर्म और नहि नेह रंच। यह बात जानिए अप्रपंच।
नहिं चाहति[1] तिनसों करत प्रीति। ते मात पिता सम होत रीति॥२५॥
तहँ धर्म होत निदाबिहीन। अरु होत नाहिने प्रेम छीन।
अरु दुहूँनि चहत जो नांहि आप। निर्लेप ब्रह्म सो उर अताप॥२६॥
अछतंज कि गुरु द्रोही अपार। से जानि लीजिए बारम्बार।
सखि मोकों जो प्राचीन है न। हौं ताहू कौं चाहत सचैन॥२७॥
तुम प्रीति बढ़ावन के निमित्त। आपुन में निहचै बिमलचित्त।
ज्यो कोऊ धन पावै अनंद। नसि गए वहुरि धन सो तुरंत॥२८॥
तिहिं धन की चिंता मद्धि न्हाय। नित मगन रहै तन मन भुलाय।
इहिं बिद्धि सुमोहित है निदान। तुम लोक वेद की तजिय आन॥२९॥
जो अधिक चित्त में चोप होय। मेरे बिलाप की बिरहमोय।
हौं याते हुव तुव दृगनि ओट। तुम रही एक रस लोटपोट॥३०॥

दोहा

तातें तुम रिस मत करौ, मोपै सव ब्रजबाल।
हौं तौ निहचै प्रेम के, हौं आधीन उताल॥३१॥

---

१. चाहित।

तुम अदोष न्हाई महा, संगम सुधा समुद्र।
तुव कीरति निन गाइहै, लोक असोक अछुद्र ॥३२॥

हौं अमरनि के आयु के, वृंदनि हू हित छाइ।
तुमसौ उरिनी होउँ नहि, सेवा करि वहु भाइ ॥३३॥

सो०—सो तुम मो हित काज, दृढ़ साँकरि करि गेह तजि।
तृन सम गिनो न लाज, आईं आतुर मो निकट ॥३४॥

दो०—तुम अपनी करतूति सौं, तातै सब ब्रज भाम।
सौभा पावौ जगत में, ह्वैकैं पूरनकाम ॥३५॥

अथ पंचम अध्याय

दो० -वहुरि परीक्षित नृपति सौं, बोले सुक मुनिराय।
सुनौ और हू कहतु हौं, जो प्रभु कियौ सुभाय ॥१॥

ब०चौ०

इमि मुनिकै वचन नंदनंदन के, ब्रजसुंदरी सुहाइ।
सब छूटि गईं भव के फंदनि तें बिरह झकोर झुलाइ ॥२॥
निजु जानि ईश ने अपने लाइक, प्रेमपूर सरसानी।
तिनहिं बाहु बलीत कंठ धरि रच्यौ रास सुखदानी ॥३॥
तहँ भयौ रास मगल अनखंडित मंगलरूप सुहायो।
तिन द्वै द्वै मध्य एक नंदनँदन आनंदनि सरसायौ ॥४॥
ते अपने अपने सग सुंदरो जानति सब गलबाही।
दसहु दिसा अरु चार भुवन की सोभा बसी आनि तिहि ठाही ॥५॥
तहँ कौतुक लखत बिमान सुरन के अनगन अंबर छाए।
निज सग सुंदरी लिए हिए में अभिलाखन अधिकाए ॥६॥
बहु भाँति दुंदुभी बज्जन लागी अंबर में मधुरानी।
अरु मकरंदन मंडित फूलन की बरसा[1] बहु बरसानी ॥७॥
गुनगरुवे गंधर्बन के नायक संग सुंदरी लीने।
गुन गावन लगे नदनंदन कौ परम प्रेम सों भीने ॥८॥
अरु पिय तिय के पाइन की गति[2] की चंचलता छिति लागै।
बहु वलया वलय किंकनी नूपुर धुनि सज्जी सुख दागै ॥९॥
ताल मृदग तीन सर मदर सारंगो मुँहचंगै।
मिलि कठ सुरन सौं एक रूप है प्रगट्यौ सद्द सुढंगै ॥१०॥
तिन कामिनीन के मंडल में यों कंत साँवरौ दरस्यो।
ज्यौं कचन मनिमाला में मरकत मनिगन सोभा सरस्यौ ॥११॥

---

1 फूलन बरसइ। . तिय के पाइन।

त्रि०-चंचलता पावनि, भुजा हलावनि,
प्रगटै भावै ललचानी।
भृकुटी मटकावनि, नाक चढावनि,
कटि लचकावनि तिरछानी ॥१२॥

खुलि बेली बलकैं, बढ अंचल कैं,
लट छबि छलकै, बिथुरानी।
तन[1] भूषन भारनि, होति, अपारन,
झनक सुढारन, गतिसानी ॥१३॥

गति साती हुलसै, अरु मृदु बिहँसै,
कुंडल बिलसै, चपकाएँ।
अंचल चहूँ ओरनि, कंचनि कोरनि,
तड़ित करोरनि, निदराएँ ॥१४॥

चोली बंदन, फुँफरी फंदनि,
जति छर छंदनि, सियलाई।
मडित श्रमबूँदै, सुख ससि[2] रूँदै,
दृग अधमूँदै छबि छाई ॥१५॥

छवि छाई पी के, रसिक वली के,
सब उनही के गुन गावै।
तिरछौंहे देखै, विसरि निमेखैं,
हित अनलेखै, उमड़ावै ॥१६॥

गीवनि लहकाएँ उरनि उचाएँ,
जानु लचाएँ लहराएँ।
घन तड़ित समानी, दुति दरसानी,
सुख बरसानी थहराएँ ॥१७॥

इक जिति अभिमानै, उचरी तानै,
सुर मधुराने, अलबेली।

---

१. तव। २. शशि।

हरि प्रेम अदौले, बचन अमोले,
तासौं बोले घनि हेली ॥१८॥
मिजु लीन्हीं फिरकै, taननु नरिकैं,
असनी नरकैं, रस मेली ।
सो सुनि ब्रजनारी, बचन उचारी,
तुम निरवारी तलवेली ॥१९॥

इक निकट ही ब्रजबाल । सो श्रमित भइय बिहाल ॥
ति वहु धरि बिज्जु अंस । हरि गगन के अवतंस ॥२०॥
लिय ताहि तुरत उठाइ । नृत्य निमित्त सुभाय ॥
हिय हुती मल्लिय माल । सिथलाइ गइय बिसाल ॥२१॥
खुलि गइय कंकन कील । सो दिय सुधारि सुसील ॥
हुव सावधान सुभाम । लखि प्रेम पन अभिराम ॥२२॥
गलबाँह ही तिय और । ताने सु लहि हित ठौर ॥
अरबिंद के मकरंद । राख्यौ मिलाय अमंद ॥२३॥
हरि अंग चंदन लाइ । लिय सूँघि मंडित चाइ ॥
अरु कियौ चुंबन फेरि । तन भुजुनि कौं हरि हेरि ॥२४॥
इक हुती नच्चति नारि । कुंडलनि छबिहि बिथारि ।
ताके कपोलन बीच । छइ रही तिहि सु मरीचि । २५॥
तिय सो कपोल अमोल । हरि के कपोलहिं गोल ।
रहि गइय अग्गु लागइ । बिरहानलौ सियराइ ॥२६॥
दिय ताहि पिय ने पीक । हित छाइकै बिधि नीक ।
इक करति ही तिय गान । इक नच्चि निकट निदान ॥२७॥
कटि किंकिनी झनकार । अरु घूँघुरुन घनकारि ॥
अति होति ही इकसार । सोभा सु तासु अपार ॥२८॥
सुखसनी पाइ इकंत । नित जाहि ध्यावत संत ।
ब्रज सुंदरी स उछाँह । ताको लिये गलबाँह ॥२९॥
निसि मध्य मंडिय रास । पुरई सबै मन आस ।
ताके बिबिधि गुन गाइ । दीन्है बिषाद बिहाय ॥३०॥

सबने सु अपने संग । जान्यौ समेत उमग ।
श्रुत में बने जलजात । जुत कुंडलनि सरसात ॥३१॥
परसै कपोलन गोल । अलकै कुटिल अति लोल[1] ।
मुख चंद पै छबिवान । श्रम खेद बिंदु अमान ॥३२॥
तन भूषनन के सद्द[2] । बहु भाँति होत अहद्द ।
कवरीन ते खुलि केस । बिथुरे बिसाल सुकेस ॥३३॥
तिन सें सु झरि झरि फूल । मंडल लस्यौ मुख कूल ।
भूषन अनेकन बाल । भू परै टूटि बिहाल ॥३४॥
नंदलाल संग सुबाल । नच्चै अनेक रसाल ।
अँग अंग वसन सुरंग । फहरात निपट सुढंग ॥३५॥
लहरै सुगंध झकोर । अलि गुज्जरै चहुँ ओर ।
मनु हरषि रचि तहि गान । परिपूरि रास बिधान ॥३६॥

मुक्तादाम छन्द

कियौ परिरंभन यों अँक अंक । मनोहर ने कर चोंप सुढंग ।
सनेह भरी अवलोकनि साजि । हुलास भरे मुख हासनि राज ॥३७॥
रमेंद्रहिँ विद्धि रमापति स्याम । लिए ब्रजसुंदरि संग ललाम ।
कला सब जानत बुद्धिनिधान । कह्यौ न परै पिय जेहि समान ॥३८॥
अनेकन दर्पन में जिहि बिद्धि । लसंत घने प्रतिबिब प्रसिद्ध ।
तिही बिधि सो ब्रजबालिन साथ । इकै सु अनेक भयौ ब्रजनाथ ॥३९॥

दोहा

ब्रजसुंदरि पिय अंग कौ, संगम पाय सुभाइ ।
सबै छकी आनंद में, सुधि अरु बुद्धि भुलाइ ॥४०॥
खसिगो उरजन कचुकी, खुलिगे अंचल चीर ।
बिथुरे कुंतल सिरन ते, निबरी भूषन भीर ॥४१॥

---

१ अति कुटिल । २ सद्द ।

सोरठा

जो छवि ही अँग अंग व्रजवनितन के वंद में।
तातें निपट सुढंग, फूलनि की मालानि हुव ॥४२॥
निरखि सुरन की भाम, नंदलाल के रास कौं।
गोपिन समहिं सकाम, आई नारी रूप धरि ॥४३॥
तिनहूँ सों नँदनंद, रमन कियौ चितचाइ कै।
पूरि सु हिएं अनंद, वची मदन के त्रास से ॥४४॥
जऊँ आत्माराम, हुते मनोहर स्यामघन।
प्रगटि कला अभिराम, तऊ रमन तिन संग कियो[1] ॥४५॥
करि करि विविध विहार, तिनको श्रमित निहारिकै।
निजकर कमलनुसार, तिन सौं पौंछे चंद मुख।४६।
सहित नछत्रनि[2] चंद, अचल भयौ कौतिक निरखि।
भए अनिद्र परिंद, औरन की गिनती कहा ।।४७।।

पादाकुल छंद

व्रजतिय पूरित प्रेम अखंडित। कुंडल श्रवन करकमनिमंडित।
राजत खुले कुंतलनि नीके। गोल कपोल भावते पीके।४८॥
अमृतसनी मुसिक्यानि सुभाइन। भृकुटी कुटिल कमान प्रमाइन।
करति गान भरि तान विचित्रै। पिय चरित्र मंडित सु पवित्रै ॥४९॥
नँदनंदन पिय के कर परसैं। पुलकित तन आनंदनि सरसैं।
कुच कुटुम्ब के रगति रंगी। माल मरगजी लसी सुढंगी ॥५०॥

कवित्त

फहरे दुकूल गोरे अंगन सुरग और,
मनिमय भूषन सुभग सरसाइ कें।
सोमनाथ कहै तिय तिरछी चितौनि चितै,
लंक लहकाइ बंक भृकुटी नचाइ कै।

---

१. कियौ। २. तछत्रिन।

जाति लै[1] विचित्रै चारु तिनके चरित्रै, जाय
तरुनी निसंकै भरै जाति ललचाइ कै।
छोड़ि छल छंदै प्रेम उर में अनंदै भरि,
मोहति[2] गुबिंदै मंद मद[3] मुसिक्याइ कैं ॥५१॥

दोहा

तिनके संग सुहावनी, इहि विधि रचिकैं रास।
श्रम टारन जलकेलि कौं, गए समेत हुलास ॥५२॥
करत गान गंधर्वगन, पाछै आवत संग।
जिनि में मीठी होति ही, बहु विधि तान तरंग ॥५३॥

सोरठा

पुलकौ तोरि सुढंग, श्रम निवारिबे के लियें।
जैसे मत्त मतंग, साथ लियें सिंधुरिन कौं ॥५४॥

संजुता छंद

ब्रज की तरुनिगन संग में, नँदनंद पूरि उमंग में।
जमुना गए श्रम टारने, जल मद्धि विबिध विहारने ॥५५॥
तिहि कूल हरषित जाइकै, जल में धँसे अतुराइ कै।
कटि के समान सुनीर में, न्हाए तियन की भीर में ॥५६॥
कर कमल अंजुलि साजिकै, नँदलाल छबि सौं छाजिकै।
छिरकी सु यौं ब्रजकामिनी, जनु मेघ मे बहु दामिनी ॥५७॥
विहरे परस्पर चाइकै, जलसौं वियोग वहाइकै।
इतराइकै बतराइकै, मुसकाइकै ललचाइकै ॥५८॥
परसे सरीर छिपाइकैं, मन में मनोज वढ़ाइकै।
अरु भीजि अंगन में लगे, पट झीन सौरभ में पगे ॥५९॥
इक भीजि लट कुटलाइकें, लपटो कपोल सु आइकै।
× × × ॥६०॥

---

१ लै जाति। २. मोहित। ३. नंद नंद।

छंद

ब्रज बनितन के संग कान्ह यौं नीर केलि करि।
पट भूषन बहु मोल सज्जिकै महामोद भरि॥
अलि गुजे वन जहाँ परत बहु रंग कुसम झरि।
फहरै त्रिबिधि बयारि लेत है जो श्रम कौं हरि॥
विहरै ज्यों सिवुरिन महँ. मत मतग उतंग वर।
ससिनाथ मु यौं सोभा बढी, बरसै फूलनि को अमर॥६१॥
सरद रैनि की चंद चद्रिका सीतल राजति।
रति रँगन की चाह चित्त में जो उपराजति॥
सत्य मनोरथ सदा आप भगवान विस्वपति।
ब्रजतियान के हिएँ सुक्ख भरि[1] दुःख हरनि अति॥
वाहि ओर अतरी सुरति सब मधि नायक ज्यौ लसि करिय।
ससिनाथ अजौं यात सरस, रस चरचा जग मे भरिय॥६२॥

सोरठा

ए सुक मुनि के वैन, सुनि सुपरिच्छित भूपती[2]।
सुमहै करिकै नैन, पुनि बोल्यौ कर जोरिकै॥६३॥

प्लवंग

जग में श्री भगवान परघटे आइकै।
परमेसुर सब अंस आपु अपनाइकै॥
प्रतिपालन कौ धर्म अधर्मैं[3] टारने।
जानि लिए परब्रह्म सकल संसार ने॥६४॥
तिन ये निंदित करम रमन परनारि के।
महापाप कौ मूल कछू न सम्हारिके॥
क्यों कीन्हौं जगदीस भेद नहिं जानिए।
है यह संसय मोहि सत्य करि मानिये?॥६५॥

---

१ भीर। २. भूपति। ३. बिधर्म।

जैसे संसय जाय बचन सो भाखिए।
हरि-चरित्र-रसपान श्रवन सों चाखिए॥
ए सुनिकै सुकदेव बचन छितिकंत के।
बोले[1] नृप सो आर प्रभाव अनंत के।'६६॥
कबहूँ धर्म विनास करत भगवान है।
तेजस्वी कौं नेक न पाप बिधान है॥
जैसे रच न दोस हुतासन कौं लगै।
परै पजरि सो जाइ प्रबल ज्वाला जगै।।६७॥
नहि अवनीस्वर मनुज करै इहि काम कौं।
जऊ लहै जग मद्धि अमित धनधाम कौं॥
जो सठता सौं करै नास कौं तौल है।
ज्यों समुद्र कौ जहर रुद्र समता गहै।६८॥
एक वचन ही सत्य प्रभुन कौ मानिए।
उनकी करनी कछू[2] न निहचै ठानिए॥
कहै जु वे कछु वैन सु उर में धारिए।
बुद्धिवत हैं वही न और बिचारिए॥६९॥
उत्तम कर्मन करत न कछु सुख साजई।
अहंकार तें रहित कुकर्म न लाजई॥
भलौ वुरौ जो करै अहता तज्जिकैं।
धर्न अधर्म न लगें तिनै सुर गज्जिकै॥७०॥

दोहा

जो नाइक जग को रह्यौ, सब जीवन में पूरि।
ताइ सुभासुभ कौन बिधि, व्यापै जस कौ दूरि॥७२॥
जाके पद पंकजन की, रज कौं ध्याइ मुनिंद।
भव फंदनि तें छूटिके, बिहरति भांति अनंद।७३॥
है ताको बंधन कहा, जो काटे जगफंद।
नर किन्नर मुनि अमर हू, जाहि जपै सानंद॥७४॥

---

१. डोली। २ कछु।

निज इच्छा सों जिन लह्यौ, नर देही अवतार।
भक्त अनुग्रह करन को, यह जानौं निरधार ७५॥

सोरठा

गोपिन के तन मद्धि, औ गोपिन के पतिन में।
निज प्रभाउ कौं सद्धि, व्यापि रह्यौ मनि सूत जिमि ॥७६॥
लीला जैसिय विद्धि, प्रकट जगत मे स्यामघन।
ताही विधि परसिद्ध, गाय तरैं भवसिंधु कों ॥७७॥

पादाकुल

गोपिनसों गोपिनके कतनि। कीन्हों नही ऐस तिहि ततनि॥
कृष्ण हेत नहि मन दुख पायौ। असि तिहि माया हाथ विकायौ॥७८॥
सबनि आपुने ढिगहो जानी। नहि बिछुरन की चरचा आनी॥
निज निज घर में बिहरन लागी। नंदलाल के हित मे पागी॥७९॥

प्लवंग--ब्रज वनितन के संग करी जो स्याम ने।
यह लीला सुखधाम परम अभिराम ने॥
पढै सुनावै सुनै याहि जो नेम सो।
लहै सु हरि की भक्ति पूरि कें प्रेम सो॥८०॥

दोहा - सवत ठारह सै वरस, उत्तम अगहन मास।
सुक्ल द्वितीया बुद्ध दिन, भयौ ग्रथ परगास॥८१॥
माथुर कवि 'ससिनाथ' की सुकविन कौं परनाम।
भूल होय सो सोधियौ, यही गुनिन कौ काम॥८२॥
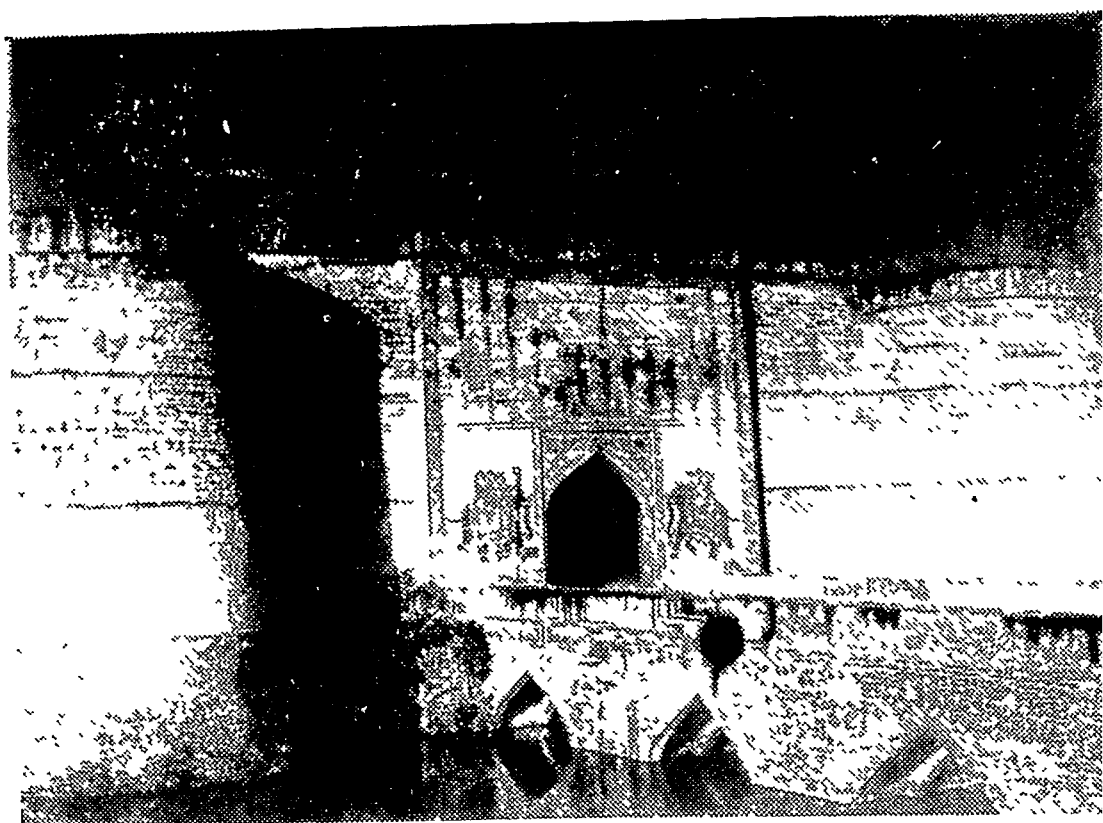
भरतपुर का किला

* श्री गणेशायनमः *

प्रथम उल्लास

उदय दिवाकर रंग अंग आभा वर धारिनि ।
त्रिनयनि चंदलिलार ईस अरधंग बिहारिनि ॥
सिंघवाहनी सिद्धि चारि भुज आयुध मंडिनि ।
जुग्गिनि मंडल सग चंड दानव दल खंडिनि ॥
बहु बुद्धि वृद्धि बरदाइनी मोहनि सुर-नर-मुनि-मननि ।
हूजै सहाइ ससिनाथ कों जय जय सिंधुरमुख-जननि ॥१॥

दोहा

सुमुख सिद्धिधर बुद्धिवर गुनमदिर सुभदाइ ।
सोमनाथ के होउ अब सिंधुरवदन सहाइ ॥२॥

कविनि बनाए ग्रंथ बहु रस के सहित हुलास ।
छाया बाँधि सु हौं रचतु यह सिंगारबिलास ॥३॥

काग करी कूर्यो कोकिलन सौं कलेस कहा
काहे कै करीर के बरेन जारियत हैं ।
कविकुलमनि कालकूट के कलंग हेतु
सुधा के कलस तें बिरस ढारियत है ।
महि के दिनेस हृदयेस तोहि पूछतु हौं,
जाति ही के नाते एक से निहारयित है ।
मृगन के रोस मृगनैननि सो रूसियतु
बगनि के बैर का मराल मारियत है ॥

रस कौ मूल भाव है ताते ताही कौ प्रथम बर्नन करत हों ।

रस कौ मूल भाव पहिचानौ । ताकौ लच्छन यह उर आनौ ॥
चित्तवृत्ति ही लौ ठहराइ । भाव वासना रूप बताइ ।४॥
रस अनुकूल बिकार जु होतु । तासों भाव कहत कविगोत ॥

अथ बिकार को लच्छनं

चित कछु हेतहि पाइ जब होइ और तें और।
ताकौ नाम बिकार कहि वरनत कबिसिरमौर ॥५॥

चारि प्रकार सु भाव है प्रथम विभाव बखानि।
फिरि अनुभाव सो जानिए संचारी पुनि मानि ॥६॥

तातें पुनि थाई समझि चारि भाँति यौं जानि।
सातुक भाव जु है सु तौ अनुभावनि मैं मानि ॥७॥

अथ विभाव लच्छनं

प्रगटत थाई भाव है जिनके जिनतें मित्र।
ते कवित्त अरु नृत्य में जानि ब्रिभाव विचित्र ॥८॥

सो विभाव द्वै भाँति वखानि।
आलबन उद्दीपन मानि ॥९॥

अथ आलंबन उद्दीपन बिभाव के लच्छनं

थाई भावनि कौ जु वसेरौ।
सो ब्रिभाव आलंवन हेरौ ॥
चमकि उठै पुनि जाहि निहारै।
सो उद्दीपन कहतु पुकारै ॥१०॥

रति के नाइक नाइका आलवन उर आनि।
तरवर सरवर तडित घन ए उद्दीपन मानि ॥११॥

अथ अनुभाव संचारी के लच्छनं

प्रगटावें थिर भाव कों ते अनुभाव बताइ।
सचारी सो जानि जो सहचर ह्वै दरसाइ ॥१२॥

अथ अनुभाव बर्ननं

करिवौ सरस कटाच्छ अरु सातुक भाव अनूप।
चुंवनादि अनुभाव ए है सिंगार के रूप ॥१३॥

अथ सात्त्विक भाव बर्ननं

स्तंभ स्वेद सुरभंग अरु कंप बेबरन जानि।
अश्रु पुलक पुनि लय समझि सातुक भाव बखानि ॥१४॥
(इनके नाम हीं लच्छन हैं।)

अथ संचारी भाव बर्ननं

निरबेद ग्लानि मद सका जानि। और असूया स्मृति धृति जानि ॥
आलस और दीनता कहौ। श्रम चिंता पुनि मोहहि लहौ ॥१५॥
व्रीडा पुनि आवेग बताइ। हृष चपलता बहुरि गनाइ ॥
त्रास और जड़ता उर आनौ। गर्व विषाद फेरि पहिचानौ ॥१६॥
निद्रा और अमर्ष पुनि बोध व्याधि मति जानि।
अपस्मार अरु उग्रता तर्क बहुरि मनमानि ॥१७॥
उत्कठा उनमाद अरु स्वप्न जानिऐ मित्र।
मरन'रु अवहित्था बहुरि बरनत सुकवि बिचित्र ॥१८॥
कहे तीस अरु तीन ए संचारी समझाइ।
नवहुन रस में संचरत ह्वै के संग सहाइ ॥१९॥

अथ संचारीन के लच्छनं (निर्वेदु)

जग झूठौ प्रभु सत्य है यों निरबेदु बिचार।
तन मन दुख तें छीनता होति सु ग्लानि अपार।२०॥
मोहि जाइ मन मोद ते मद कहियतु है ताहि।
बस्तु चाहती हानि डर संक सु उर अवगाहि ॥२१॥
पर कौ भलौ न लखि सकै सु वह असूया जानि।
स्मृति सुधि करिबौ बस्तु कौ धृति धीरज उर आनि ॥२२॥
अति ऐंडाइ जँभाइ पुनि सो आलस कौ रूप।
दुख ते होइ मलीन मन सो दीनता अनूप ॥२३।
सिथल होत कछु काज तें अंग सु श्रम पहिचानि।
ध्यान सदा प्रिय बस्तु को रहै सु चिता जानि ॥२४॥

कल न परै चित कों कहूँ सु वह मोह ठहराइ।
अति सकोच करिबौ हिए यह लज्जा समुझाइ ।।२५।।
लखि अचरज भ्रम चित्त में होतु जु-सो आवेग।
बढ़ै चित्त आनद अति सु वह हर्ष कौ नेग ।।२६।।
चंचलता सब काज में सु वह चपलता चित्त।
त्रास कहत उर सो बहुरि सुन्न सु जड़ता मित्त।।२७।।
हौं ही सब तें अधिक हौं यहो गरव अनुमान।
निपट घटै मन दुख्ख ते सो विषाद परमान ।।२८।।
निद्रा सो इंद्रीन तें जब न काम कछु होइ।
रोस रहत थिर ह्वै जहाँ सो अमर्ष चित्त टोइ।२९।।
बोध जागिबौ बिरह तें, तन कौ रोग सु व्याधि।
निहचै ग्यान सु बुद्धि है निज मन में अवराधि ।।३१।।
होइ मूरछा भ्रमसहित अपस्मार सो जानि।
निदरै सबको चित्त जब सो उग्रता बखानि।३१।।
बहु बिचार जहँ चित्त में सो हैं तर्क विलास।
सहै न कारज ढील मन उतकठा सु प्रकास ।।३२।।
है उनमाद जु चित्त भ्रमु स्वप्न सोइबौ जानि।
बूडि जाइबौ प्रान को मरन ताहि पहिचानि ।।३३।।
हर्ष सोक नहि जानिएँ जबै लाज तें मित्र।
अवहित्था सो जानिए वरनत सबै विचित्र।३४।।

अथ स्थाई भाव बर्ननं

थिर अति थाई भाव बखानौ। सब भावनि को ठाकुर जानौ।
नौ बिधि ताहि हिए में आनौ। सो अब परगट कहतु सु मानौ ।।३५।।
रति हाँसी अरु सोक पुनि रोस उछाह बखानि।
भय गिलानि बिस्मय बहुरि निर्वेदहि पहिचानि।३६।।

इति श्री कवि सोमनाथ विरचिते सिंगार बिलासे प्रथमोल्लासः ।।१।।

द्वितीय उल्लास

अथ रसलच्छनं

जहँ बिभाव अनुभाव अरु पुनि संचारी भाउ।
करत व्यंगि थिर भाव कों सो रस रूप बताउ ॥३७॥

अन्यच्च

लखि सुनि नृत्य कबित्त कौं सुधि न रहै कछु और।
होइ मगन वा मोद में सो रस कहि सिरमौर ॥३८॥

सो रस नौ बिधि उर में आनौं।
सब के न्यारे नाउ बखानौं ॥३९॥

प्रथम सिंगार सुनाइए फेरि हास रस जानि।
करुना रुद्र रु बीर रस बहुरि भयानक मानि ॥४०॥

बीभत्सक अद्भुत पहचानो।
सांत रसहिं[1] नवमो उर आनो ॥४१॥

सांत रस नहीं होतु है नाटक में सुनि मित्र।
बरनत हैं कबिता बिषें पंडित सुकबि बिचित्र ॥४२॥

अथ रस के रंग कथनं

स्याम वरन सिंगार पुनि हास फटिक सम जानि।
पारावत के रंग सम करुना रस पहिचानि ॥४३॥

लाल रंग पुनि रुद्र रस, बीर पीत रँग होतु।
मलिन भयानक नील अति रस बीभत्स उदोतु ॥४४॥

गौर बरन अद्भुत पहिचानौ।
उज्वल सेत सांत रस जानौ ॥४५॥

अथ नव रसन के स्वामी कथनं

हरि शृंगार[2] कौ स्वामी मानौ।
पवन हास रस कौ उर आनौ ॥

---

१. रसहिं। २. सिंगार।

करुना रस कौ बरुन बखानौ।
रुद्र रुद्र रस कौ तुम जानौ ॥४६॥

दोहा--इंद्र बीर रस कौ बहुरि भयरस को जम जानि।
महाकाल बीभत्स कौ, विधि अदभुत कौ मानि ॥४७॥

सात रस को ब्रह्मा जानो।
नऊन[1] रसनिके पति ए मानो ।।४८॥

इति श्री कबि सोमनाथ बिरचिते सिगारविलासे रसलच्छन रंग स्वामी बर्ननं नाम द्वितीयोल्लासः ॥२॥

---

१. नउन।

तृतीय उल्लास

नव रस को पति सरस अति रस सिँगार पहिचानि ।
इक संजोग वियोग अरु सो द्वै बिधि उर आनि ॥१॥

अथ संजोग सिंगार लच्छनं

दंपति मिलि बिहरत जहाँ, रति मति गति करि एक ।
सो संजोग सिँगार कहि, वरनत सुकबि अनेक ॥२॥

यथा

मैन रंग राते परजक पै हसत[1] दोऊ,
अंक भरि लेत करि बिरह निवारने ।
कवहूँ[2] बिनोद सों बिलोकत उमंग भरे
संग ही सरस किए भूपन सँवारने ।
सोमनाथ रीझि पिएँ[3] अधर पियूष ऐसी
सोभा कित पाई रति मदन गँवार ने ।
छाई अजौं नैननि निकाई आजु दंपति की,
हेरत हिराई री किए मै प्रान वारने ॥३॥

इहाँ दंपति आलंबन बिभाव, भूपन सुंदरता ।
उद्दीपन विभाव विलोकिवो अरु अधर पान करिवौ । अनुभाव विनोद सब्द करि हर्ष संचारी भाव ॥ इन सबते रति स्थाई व्यंगि तातें सिंगार रस पूर्ण ।

रस सिँगार की नाइका आलबन जिय जानि ।
तातें ताको प्रथम हौ वरनत हौं हित मानि ॥४॥

अथ नाइका लच्छनं

सुदर केलि-कला-चतुर भूषन भूषित अग ।
इह विधि वरनौं नाइका रस को पाइ प्रसंग ॥५॥

---

१. लसत । २. कबहूँ । ३ पीएँ ।

नायिका को उदाहरण

यथा—सोहति कँसूभी सारी सुंदर सुगंधसनी,
जगमगै देहदुति कुंदन के रंग सी।
सील सुघराई की सी सींव अरबिंदमुखी
नैनन की गति गूढ तरल तुरंग सी।
छूटति चहूँघाँ मनि-भूपन-मयूष चारु
सोमनाथ लागै बानी उपमा बिरंग सी।
राजै रतिमंदिर अनगअंगना सी आजु
बाढ़ै अंग अंगनि में जोवन तरंग सी ॥६॥

जानि नाइका चतुर पुनि चारि जाति सुखदानि।
पद्मिनि चित्रिनि संखनी पुनि हस्तिनी बखानि ॥७॥

अथ पद्मिनि लच्छनं

सुंदर सहज सुगंध तन कनक वरन मृदु हास।
रिस भोजन रति अति तनक यह पदमिनी बिलास ॥८॥

यथा

सोने सी गुराई बिधि सुविधि रची है लाल
अंगनि उछाह की लहरि लहरी रहति।
भूषन बसन चारु, दसन हसनि नैंन,
प्रेमरस पीबे की पियास गहरी रहति।
भौंरन की भीर भारी भाँवरी भरति रहै
चहूँघा चकोरनि की चौकी ठहरी रहति।
सोमनाथ कैसें कहौं चंदमुख चंद सम
छहूँ रितु जाकी छवि छटा छहरी रहति ॥९॥

अथ चित्रनी लच्छनं

नृत्य गीत अरु मित्र के चारु चित्र सों नेह।
बहि रति सो अति प्रीति चित चित्रनि सुंदर देह ॥१०॥

यथा

दीसक बेर सिँगार सबै लखि आपुनपौ रति को रती जानति।
बैठि अकेलिय मंदिर में गहि वीन प्रवीनता सों सुर तानति।
वानि परी यों नई ससिनाथ सखीन की सीख नही उर आनति।
प्रेम चरित्र पगी तरुनी नित मित्र के चित्र ही सों सुखु मानति ॥११॥

अथ संखनी लच्छनं

निलज सजल तन रोस अति, नखछत सो नित प्रति।
लाल दुकूल निसंक चित लहि संखनि की रीति ॥१२॥

यथा

लाल दुकूल सजै रुचि सों सब ही सों निसंक न लाज रती गहै।
और की और ही बात कहै ससिनाथ कितौ समझाइ सखी कहै।
पोछति स्वेद न अंगनि ते सु अनंग कला अति ही चित में चहै।
जानि परै न कछू उर की निसि बासर भांय की भौंह चढ़ी रहै ॥१३॥

अथ हस्तिनी लच्छनं

थूल दंत भूरे चिकुर चपल चित्त गति मंद।
हस्तिनी सुर गंभीर अरु तन दुरगंध बिलंद ॥१४॥

यथा

दीरघ रदन दुरगंध के सदन अंग
अंबर मलीन औ समद गजगामिनी।
भूरे केस बिथुरे विराजै सदा पीठि पर
भोजन की बतियाँ सुहात दिनजामिनी।
वैन सुने कौन के परतु चैन काननि में
बड़े बड़े ओठ ओछी आँखि अभिरामिनी।
औरन की चरचा कहा है कहि सौमनाथ
भीमहू को लागइ भयनक सो भामिनी ॥१५॥

वरनत सब कवि नाइका तीनि भाँति यह जानि।
स्वकिया परकीया बहुरि बारवधू पहिचानि ॥१६॥

अथ स्वकिया लच्छनं

निज पति ही सों प्रीति अति तन मन वचन वनाइ।
तासों स्वकिया नाइका कहत सकल कविराइ ॥१७॥

यथा

प्रीतम की बात सुनिबै कौ चित चाउ जाके
रैनिदिन बैननि सुधा सी बरसो रहै।
नैननि की दौर पिय पाइन के पथ पर
सासु की न सासन तें नेकु अरसी रहै।
सोमनाथ अगनि सुधाई भरि राखी सोधि
मांन हो सो मन की मरोर दरसी रहै।
आनँद के कंद नदनंद गुनमंदिर के
नागरि निरंतर सनेह सरसी रहै ॥१८॥

अथ स्वकियाभेद कथनं

मुग्धा मध्या प्रगल्भा त्रिविध स्वकीया जानि।
इनके भेद अनंत है बरनत कवि सुखमानि ॥ १९॥

(मुग्धा लच्छनं)

जोवन कौ अंकुर जहाँ सो मुग्धा उर आनि ॥२०॥

यथा

छतिया पै रंच कुचकोर अंकुरित भई,
देहदुति चंपक नवल दल की सी है।
वैननि पियूष मधुराई बरसेगी डीठि,
खंजन की रीति लहिबे को ललकी सी है।
लक लघु ह्वै के लहकेगी कहे सोमनाथ,
चचल ते गति मंदता को मुलकी सी है।
सुनिए सुजान दिन द्वै तै भावती के अंग,
जोवन की तनक झलक झलकी सी है ॥२१॥

अथ बैसंधि लच्छनं

लरिकाई तरुनई की जहाँ संधि दरसाइ।
ताहि कहत बैसंधि कवि हिय आनँद सरसाइ ॥२२॥

यथा

बीती लरिकाई न झलक तरुनाई आई
निरखें सुहाई अंग औरै ओप अति है।
तुला चल संक्रमन की सो दिन राति, कोऊ
घटि बढि है न साधें ठीक ठहरति है।
दरस को अंत जों उजेरौ न अँधेरो पाख
सोमनाथ उपमा प्रमान परसति है।
दोऊ बैससंधि में छबीली प्रानप्यारी वह
अरुन उदै की कंज कली सी लसति है ॥२३॥

अथ मुग्धाभेद

है अग्यात रु ग्यात इक द्वै विधि मुग्धा जानि।
(इन कौ अब लच्छन कहतु रसिकनि कौं सुखदानि)[1] ॥२४॥

अथ अज्ञात अरु ज्ञात लच्छनं

जोबन आयो नहि लखे, सो अग्यात बखानि।
जानति आयौ अंग में जोबन, ग्यात सु जानि ॥२५॥

अज्ञात यथा

भूलि सबै सुधि खेलन की
न घरीक कहूँ इकठौं ठहराति है।
पोंछति चारु हथेरिनि सो
दृग कोर जो जौबन तें लहराति है।
ए ससिनाथ सुजान सुनो
सखियान सों पूछि चितै झहराति है।

---

१. यह पंक्ति लिखकर फिर काट दी गई है।

काल्हि ही तें अरबिंदमुखी
कुच अंकुर हेरि हिये हहराति है ॥२६॥

अथ ग्यात यथा

छुटि के कटि रंचक छीन भई गति नैननि की तिरछ्यान लगी।
कुच अंकुर ऊपर तें अँचरा उघरें ससिनाथ लज्यांन लगी।
लरिकाई के खेल पछेलि कछूक सयानी सखीनि पत्यान लगी।
तिय द्यौसक तो पिय नाउँ सुने दुरि के मुरि के मुसिक्यान लगी। २७॥

अथ नवोढा लच्छनं

पराधीन रति लाज भय अति जाके मन होइ।
बालपनें ब्याही सु यों नौढा बरनत लोइ ॥२८॥

यथा

जु रची बिधि लाज सुरूप की रासि लखें छबि को न हिएँ हहरै।
झलकै मनि भूषन अंगनि में मुख चंद की औरै छटा छहरै।
अचकाँ ससिनाथ सुजान गही उर में रति की अति गौं गहरै।
ठहरै न कितौ पिय प्यार करै भहरै सफरी ज्यों तिया थहरै ॥२९॥

रुचि सों सुरत करे नही नारि नवोढा जानि।
बरजोरी के करे तो होति सु रस की हानि ॥३०॥

नवोढा सुरतांत

है न सम्हार दुकूलनि को सु रह्यौ मुरझाइ सरीर सुहायौ।
नेंकु छिये सिसकी भरे सौकु बिलोकत को न हिएँ हहरायौ।
भोर ते और कछू चरचा न चबाउ यहीं घर बाहिर[1] छायौ।
पूँछति हौं ससिनाथ सुजान कहौ तुम यामें कहा रसु पायौ ॥३१॥

अथ बिश्रब्धनवोढा लच्छनं

लाज मनोहर रोस मृदु, नव भूषन सों प्रीति।
पति सों रंच पत्याति यह बिश्रब्धा की रीति ॥३२॥

---

१. बाहर।

यथा

नीवी कसि बाँधी उर औरे मति नाँधो॑ साधि
लाइ राखी॑ वहियाँ उरोज बखियानि सों।
भाजिबौ चहति पै सकै न भजि प्रीतम पै
जानि मन मन ही रिसाइ सखियानि सों।
डोलति न डीठि दों निकाई वह सोमनाथ
देखी निसि जागि मैं जु लागि पखियानि सों।
परी परजंक पिय अंक में ससंक प्यारी
लखै मुखचंद अधखुली अँखियानि सों ॥३३॥

अथ मृदुकोपा बिश्रब्धनवोढा

यथा

हँसत और सों पिय लख्यौ, तिय हिय रही रिसाइ।
जानि सुजान भुजा गही चितै दियौ मुसिक्याइ[1] ॥३४॥

अथ बिश्रब्धनवोढ़ा को सुरतांत

थहरात अंग श्रमसीकर वदन पर,
बिथुरीं अलक फहराति छबि छाई है।
झपकि झपकि झुकि मुँदि कै खुलत नैन
अधबँधी कंचुकी सुरंग सुखदाई है।
मरगजी माल पीक झलकै कपोलनि पै
सोमनाथ रहे निसि सोच मे बिताई है।
धरकति छाती मुख बातौ न कढ़ति अजों
छल सों छबीली पिय संग तजि आई है ॥३५॥

अथ मध्या लच्छनं

लाज अनंग समान तन जा तिय के दरसाइ।
तासों मध्या नाइका कहि बरनत कबिराइ ॥३६॥

---

१. मुसकाइ।

यथा

पाइ परजंक पै धरत हरषत अंग
पै न छिनु छाती धकधकी कौ तजति है।
ललकै चकोर नैन चंदमुख देखन कौं
आडी होति पलकैं लई धौं कौंन जति है।
सोमनाथ कहा कहो अपनों सुभाउ आली
बैननि हूँ नेकु न ढिठाई उपजति है।
सोवत हूँ सुंदर गोबिंद उर लागिबे को
प्रान लरजैं तौ आनि लाज बरजति है ॥३७॥

अथ मध्या कौ सुरतांत

भरि लीनि भुजानि में चंद्रमुखी शशिनाथ हिएँ लपटाइ रही।
कटि किंकनी की धुनि तें रसना दसनावलि बीच दबाइ रही।
पिय चूमें कपोल सु त्यो तरुनी पिय को मुख चूमि लजाइ रही।
अलि यों रति दंपति की अवलोकि सु हौं बिन मोल बिकाइ रही ॥३८॥

अन्यच्च

अँगिराति हरें बतराति खरी मुसिक्याति लला कों लुभावति है।
सद पीक कपोलनि पोंछि बधू दसनावलि दाग दुरावति है।
ससिनाथ सकोच सनेह के फंद परी मन कों बहरावति है।
मिलि बैठि सकै न सुजान के संग उतै न इतै फिरि आवति है ॥३९॥

अथ प्रौढा लच्छनं

केलि कला में अति चतुर रति अरु पति सो प्रीति।
मोहि जाति आनंद तें यह प्रौढा की रीति ॥४०॥

रतिप्रीति प्रौढा यथा

सुंदर अमंद केलि मंदिर में चंदमुखी,
प्रीतम के संग रति रँगहि करन लागी।
आनँद तरंग अंग अंग तें उठति नीकें,
सोमनाथ यों ही सबै रैनि निबरन लागी।

तऊ छिन बिछुर्‌यौ न चाहै रति चाहै चित्त,
श्रुति अरबिंद तें सुगंधि निकरन लागो।
चौंकि हहरानी अरुनोदय ललाई हेरि,
प्यारी के बदन पियराई उघरन लागी ॥४१॥

प्रात भयो जान्यौं।

अथ आनंदसंमोहवती प्रौढा

बिथुरीं अलकावलि आनन पै मुकतालि बनी श्रम के जल की।
ससिनाथ भए गहनें चपि चूर सखी छबि छीन लखी बल की।
पिय संग अनंग के रंगनि में भरि आनँद सो छतिया छलकी।
न रही सुधि रंचक मोहि कछू फिरि अंचल की न दृगंचल की ॥४२॥

अथ प्रौढा को विपरीत सुरत

अंक भरि लेति अति आनँद उमंगनि सो
किंकिनी झनक बिजै गान सुर से भरति।
कुंतल बिथुरि छाए उरज उतंगनि पै
अंग रतनावलि उचटि छिति पै परति।
झूमि झूमि चूमति कपोल नैन चाउनि सों
सोमनाथ बिहसि बिलोकि हिय कौ हरति।
मैन मद छाकी रतिमंदिर में चंदमुखी
प्रीतम के संग रति रंग रुचि सों करति ॥४३॥

अथ प्रौढा को सुरतांत

अधखुली पलकें अलक लटकति मंजु
चंदमुखी निकट भुजंगिनि भुलानी सी।
मरगजी सारी अंगभूषन कहूँ के कहूँ
पीछे संग सोहति सहेली अरसानी सी।
डग डगमगी निसि जगी सब सोमनाथ
झलकै कपोलनि में पीक सुखसानी सी।
ऐंडि अँगिराति औ जँमाति मुसिक्याति बाल
मंद मंद आवति पुरंदर की रानी सी ॥४४॥

जो कोऊ पूछे कि केलिकला में सामान्या हूँ चतुर होति है तो कहिए वा ठौर पति शब्द को अभाव है यह भेद।

मध्या प्रौढा तियनि के मान रामै के भेद।
त्रिविधि जानिए चित्त में सो वरनतु तजि खेद ॥४५॥

धीरा और अधीर पुनि धीराधीरा जानि।
(कोप प्रकासै व्यंगि सो धीरा सो पहिचानि)[1] ॥४६॥

प्रगट कोप जो करै सो समझि अधीरा मित्र।
धीराधीरा गुप्त कछु परगट कोप चरित्र ॥४७॥
इनहूँ में कछु भेद अनूप। सो परगट कवि वरनतु रूप।
नाइक को अपराध समेति। लखि ए बिधि उपजति चित चेति ॥४८॥

बक्र उक्ति करि व्यंगि सों कोप जु प्रगटै नारि।
मध्याधीरा ताहि कहि वरनत चतुर विचारि ॥४९॥
बानी कहै कठोर सो मध्य अधीरा जानि।
धीराधीरा नैन भरि वचन कहै रिस ठानि ॥५०॥

अथ मध्या धीरा वक्रोक्तिप्रधान

यथा

ग्वालनि के संग बन बोथिनि फिरे हौ तातें
अंग अंग स्वेद-जल-कन सगबगे हैं।
खेल ही में बिमलि विभावरी विताई उहीं
आलस तें पगहू परत डगमगे है।
सोमनाथ अलबेली पाग सरसति नीकी
कैसे मुखचद के वनाउ जगमगे है।
जानति हौं सुंदर सुजान रावरे के नैंन
मेरे अनुराग ही के रंग रंगमगे है ॥५१॥

ह्याँ सब बक्रोक्ति है। व्यंगि कि वाके अनुराग सों रँगे हैं।

---

1. यह पंक्ति पांडुलिपि में लिखकर फिर काट दी गई है।

मध्या अधीरा कठोर-बचन-प्रधान यथा

कुंजनि मैं तुम जागे सबै निसि नैन हमारे भए रतनारे।
प्रीतम पान कियौ मधु कौ तुम, घूँमत हैं अति प्रान हमारे।
पाए भले तुम श्रीफल वे ससिनाथ सुरंग सदां रसवारे।
नाहक मो अँग अंग अनंग ने पावक बाननि सों दहि डारे ॥५२॥

इहाँ सब ही बात कोप प्रकासति है प्रगट।

अथ मध्या धीराधीरा सरोस-सजल-नेत्र-प्रधान यथा

सबको मन राखत हौ पन सों निठुराई सु अंतर तें रितई।
गुन मंदिर सुंदर और ही तें अपनी रसरीति सदाँ जितई।
ससिनाथ बसंत की रैनि इहाँ हम चंद सों जौहर कै बितई।
इतनी कहि चंदमुखी पिय सौं अँसुवा भरि कै तिरछें चितई ॥५३॥

ह्यां द्वै तुक में धैर्य द्वै में अधैर्य्य है।

अथ प्रौढा धीरा लच्छनं

उदासीन ह्वै रति समै प्रगटै कोप चरित्र।
प्रौढ़ा धीरा ताहि कहि वरनत परम बिचित्र ॥५४॥

(प्रौढ़ा अधीरा लच्छनं)

तर्जन ताड़न करि कछू करति जु कोप प्रकास।
प्रौढ अधीरा ताहि कहि बरनै कवि सबिलास ॥५५॥

तर्जन कहिए बचन सों नेत्र सों दरबाइबो और ताड़न कहिए फूलमाल सों मारिबो बाँधिबो।

अथ प्रौढा धीरा यथा

बैठनि औरई भाँति कछू बतराति नही नित जो चित चोरि।
बनाइ बिरी न खवाइबौ है न निहारिबौ है दृग सों दृग जोरि।
ससिनाथ सुहावनें साज सजे न रची अँगिरानि नई तन तोरि।
न जानितौ रोसु तुम्हारौ रती मुसिक्याती न जौ सखियाँ मुख मोरि॥५६॥

अथ प्रौढा अधीरा यथा

आए जऊ निज मंदिर में मन की गति अंत तऊ अनुरागी ।
प्यारी बुलाइ लई ससिनाथ सु आइ गई विरहानल दागी ।
मोहन की मनि में अपनों प्रतिबिंब निहारत रोस में पागी ।
जानि कै और तिया हिय में झुकि भावन को समझावन लागी ॥५७॥

झुकिवो क्रोध करीवे कौ कहत हैं ।

अथ प्रौढा धीराधीरा लच्छनं

उदासीनता रति विषै तर्जन ताड़न सग ।
प्रौढा धीराधीर तिय बरनो पाइ प्रसंग ॥५८॥

यथा

प्रीतम पाइ दियौ परजंक पै चंदमुखी निज ग्रीव लै फेरी ।
नेक हँसौंहें कपोल भए पति कीनी जबै बिनती बहुतेरी ।
हाथ सो ठोडी छुई ससिनाथ कहावन को रस रीति यहै री ।
भौंह तनेनी किएँ तरुनी तब तेह भरी अँखियान सो हेरी ॥५९॥

अथ अब कहत हैं कि धीरादिक भेद स्वकीया ही को हैं परकीया को नाहिनें धीरत्व तासों अधीरत्व, धीराधीरत्व, ए मान अवस्था में होत हैं। सो जो परकिया कों मान होइ तो ए भेद वाहू को है और जो कहिए कि परकिया को मान नहीं तौ यह कैसें कही जाति है तातें बडेनि को आज्ञा मानि लेति है तातें ए भेद स्वकिया में निश्चै जानिए।

अथ ज्येष्ठा कनिष्ठा लच्छनं

जहँ व्याही द्वै नाइका बढि घटि हित अनुमान ।
क्रम तें ज्येष्ट कनिष्टका बरनो तिन्हें सुजान ॥६०॥

ज्येष्ठा यथा

बनि केलि की कुंज में राजत है जग की छवि आनि के भाल छई ।
तिय द्वैनि के संग सुजान बिलोकत सोभा बसंत बिसाल नई ।
इहिँ औसर एक की डीठि बचाइ के कंठ तें प्यारो कों लाल दई ।
ससिनाथ गुलाब की माल वही लखि दूसरी के दृगसाल भई ॥६१॥

इति स्वकिया भेद । इति श्री तृतीयोल्लासः ॥३॥

चतुर्थ उल्लास

अथ परकिया लच्छनं

करै प्रीति पर पुरुष सो दुरें दुरें जो नारि।
ताहि परकिया कहत है पंडित लोग विचारि ॥१॥
परकीया के भेद द्वै एक परोढा जानि।
कहत अनूढा दूसरी निज उर में पहिचानि ॥२॥
ऊढा परकीया सु तौ जौ व्याही है नारि।
कहत अनूढा परकिया अविबाहिता निहारि ॥३॥

अथ ऊढा परकीया यथा

जानति मैं तुम चाहत हौ दुखियाँ अखियाँ ए रही ललचाइ हैं।
है ससिनाथ दुरे हो बँचाउ लखें तियाँ एक की सौ कुल गाइहै।
गोकुल में कुल में चरचा भएँ फेरि न क्यों हूँ कहूँ पतियाइहैं।
रावरे को न कछू घटिहै अपलोक लगे हम लोक तें जाइहैं ॥४॥

ऊढा मन की बात कबहुँ सखि सों कहै।
अनऊढा की, छिपी चेग सब रहै ॥५॥

भेद परोढा के षट जानौ। न्यारे न्यारे नाँउ बखानौ ॥६॥

गुप्ता मुदिताँ लक्षिता, कुलटा बहुरि बखानि।
त्रिविध अनुशया जानि पुनि द्विविधि विदग्धा मानि ॥७॥

अथ गुप्ता लच्छनं

भई होइ अरु होइगी अरु दोऊ पुनि मिश्र।
सुरति छिपावै नारि सो गुप्ता जानि विचिश्र ॥८॥

यथा

लाउ गुलाब के फूलनि कौं ससिनाथ जिठानी कही वलि जाउँगी।
कंटक सौं अटकी अँगिया उहाँ छाती गई छिलि कैसें भुलाउँगी।
सासु बड़ी है कहौ सु कहौ, ननँदी के कहै कहा मैं मरि जाउँगी।
आजु गई सु गई अनजाने न हौं फिरि वा फुलवारी में जाउँगी ॥९॥

अथ मुदिता लच्छनं

सुनत बात मनभांवती हरषि उठै थँग अंग।
मुदिता तासों कहत हैं सुकवि सहित रस रंग ॥१०॥

यथा

सासु नें बोलि बहू सौं कह्यो हित सों अपने अभिलापनि पूरति।
है 'ससिनाथ' यौं आजु को नेग अकेलियै पूजियौ गौरि की मूरति।
मीत मिलाप के बाग को नाउँ सुनैं हरषी तनि मैंन मरूरति।
औरै भयौ तन औरैं भयो मन औरै भयौ दृग और ही सूरति ॥११॥

अथ लक्षिता लच्छनं

प्रीति होइ परपुरप सौं सखी लखैं पुनि वाहि।
ताहि लच्छिता कहत है पंडित लोग सराहि ॥१२॥

यथा—जानी रति मानी तुम सुंदर सुजान संग
औरै अँग अंगनि के रंग परसोंहे वैन।
पोंछी पीक अंचल सो झलकै अनूप माल
स्वेदकन छाए औ प्रगट अरसौंहें गैंन।
सोमनाथ पूछे तै रुखाई क्यो करति झूठी
कछु तौ बखानि री पियूष वरसौंहे बैन।
हम सों छिपाई न छिपैगी प्रीति चंदमुखी
सौहें किएँ कहत हँसौंहैं सरसौंहै नैन ॥१३॥

अथ कुलटा लच्छनं

अंग अग में सरसई अति अनंग की होइ।
तृप्ति न मानै भोग तें सो कुलटा चित टोइ ॥१४॥

यथा

ठाढी रहै कुच अंचल खोलि कै कौन धौं आनि सुभाउ परचौ है।
लोक की लाज लुटाई सकेलि के दौरि ढिठाई में पाउ धरचौ है।
ए ससिनाथ कहा कहिए बिधि याही के अंग अनंग भरचौ है।
बाट कौ कोऊ न लोग बचै सिगरौ इनि गाँउ खराव करचौ है॥१५॥

अथ त्रिविधा अनुशयना लच्छनं

बिनसत लखि संकेत थल उर उपजावै खेद।
प्रथमु कहत कवि लोग यों अनुसयना कौ भेद ॥१६॥

यथा

फेरि सँवारि लगाऊँ इन्हें यह जानि के कोऊ सु लाग्यौ उजारन।
ठौर पराई बसाइ कहा ससिनाथ लगी यों बिचार बिचारन।
प्यारी सखीनि कौ संग बिसारि करी हम केलि इहाँ बहु बारन।
चंपक कौ बन टूटत देखि भयौ तिय कौ हियौ टूक हजारन ॥१७॥

अथ अनुशया को दूसरो भेद लच्छनं

होनहारु संकेत कौ उर में करै बिचार।
अनुसयना कौ भेद यह दूजौ समझि उदार ॥१८॥

यथा

फूलि फूलि बेलि लपटाँनी द्रुम डारनि सों
झूमि झूमि रहे चहूँ ओर फलपुंज है।
ठौर ठौर कोकिल कलापी कल कूजैं तहाँ
सोमनाथ मंजु मंजु भौंरनि की गुंज है।
सीतल सुगंध मंद बहति बयारि तैसी,
नैंक परसे तें होतु तन मन लुंज हैं।
मीत मिलबे की जिनि सोचु करै चंदमुखी
बृंदाबन में हू री[1] अनेक ऐसी कुंज हैं ॥१९॥

अथ अनुशया को तृतीय भेद लच्छनं

मीत जाइ संकेत में आपु न पहुँचे नारि।
सोचु करै पछिताइ सो तीजौ भेदु निहारि ॥२०॥

---

१. बृंदाबन माँझ हू। इस प्रति में 'माँझ' को काट कर 'में हू' बनाया गया है।

यथा

जरकसी पाग टेढी काछनी कसूँभी कछें,
बांधे पीतपट कटि निपट हँसौंहौ रुख।
मकर की आकृति के कुंडल अनूप, कर
मुरली लकुट, अंग अंग भरि राख्यौ सुख।
माल मौलसिरी की रसाल कंठ राजै अति,
सोमनाथ रंचक निहारत बिलात दुख।
आए केलिकुंज तें गुविंद यों हिए मैं जानि,
प्यारी सोचसिंधु में समानी मुरझानो मुख ॥२१॥

अथ द्विविध विदग्धा लच्छनं

करै चतुरई वचन में वाकविदग्धा जांनि।
करै क्रिया में चतुरई क्रियाविदग्धा मांनि ॥२२॥

अथ वाकविदग्धा

यथा—ठाढी इतराति बतराति ही परौसिनि सों,
जासी तिय दूसरी न पूरव पछांही में।
डीठि परि गए त्यों ही सुंदर सुजान कान्ह,
सोमनाथ अचकां पछींति परछांही में।
ताही समै प्यारे कों सुनाइ के सखी सों कह्यौ,
चंदवदनी नें तरुनाई की उछांही में।
बंसीबट निकट हमें तू मिलियौ री काल्हि,
कातिक में न्हाउँगी तरैंयनि की छांही में ॥२३॥

अथ क्रियाविदग्धा

यथा

सांवन में सुख के सरसांवन मेघ रहे दसहूँ दिसि छाइ के।
सो छबि हेरति ही ससिनाथ गई मिलि लाल सों डीठि सुभाइ के।
सैंननि ही रति मानी सबै. बतरात में नंद लसी ढिग आइ के।
गाइबे कौ मिसु कै हँसि बाल गुपाल बिदा किए माल फिराइ के ॥२४॥

इति परोढा भेदाः।

अथ अनूढा

यथा

खेलति ही सखियानि कै संग पै प्रेम रसै अवरेखन लागी।
छाँहू हूँ तें उर पै ससिनाथ कलंक की संकहि लेखन लागी।
आइ गए इँहि औसर कान्ह मनैं मन मूरति पेखन लागी।
तौऊ रह्यो न पर्‌यो छल सों दृगकोरनि ह्वै उहि देखन लागी ॥२५॥

इति परकिया।

अथ सामान्या लच्छनं

प्रेम न काहू सों रती धन ही सों अति प्रीति।
नारी सब जग की सु यौं[1] बारबधू की रीति ॥२६॥

यथा

साजि सिंगारनि द्वार पै बैठि के लागी चहूँ दिसि सैननि ताँनन।
ए ससिनाथ घनें बिसनीनि की बात सखी ने कही लगि काँनन।
जान्यौ बडो धनदाइकै ताहि लुभाइ बुलाइ लियौ लखि आँनन।
लै गई सेज पै मंदिर में सु लगी अति आनंद सों रति माँनन ॥२७॥

इति श्री कवि सोमनाथ विरचिते सिंगारविलासे संयोगसिंगारे परकिया सामान्या वर्ननं नाम चतुर्थोल्लासः ॥४॥

---

१. बरनत हैं कवि लोग यौं। पहले इसे लिखकर फिर काट दिया गया है।

पंचम उल्लास

अथ अन्य संभोग दुखिता और द्वै बिधि गर्विता और मानवती ए जु हैं सो स्वकिया परकिया सामान्यां हू में होति हैं ।

अन्य अन्यसंभोगदुखिता को लच्छनं

जा तिय सों पति रति करी ताहि निरखि अनखाइ ।
अन्य-सँभोग-सुदुखिता यों बरने कबिराइ ॥१॥

यथा

पठई सहेली मनमोहन के बोलिवे कौं
आपै वह लाल संग आनँद करन लागी ।
आई बड़ी बेर में बनाइ नयौ भेष अंग
लाई रतिचिन्ह मिस झूठें वितरन लागी ।
सोमनाथ या बिधि निहारि के सखी की गति
भांमिनी की आँखिन में आगि सी बरन लागी ।
दांतनि में अधर दबाइ अनखाइ प्यारी
बार बार खीझि भारी साँसनि भरन लागी ॥२॥

अथ द्विविधि गर्विता लच्छनं

गर्ब करै पतिप्रेम को प्रेमगर्विता सोइ ।
करै गर्व जौ रूप को रूपगर्विता होइ ॥३॥

अथ प्रेमगर्विता

यथा

भोर भए घर में भँडरात सकोच तें सौंहे न मो पै चह्यौ परै ।
पाइ छिनों भरि छेउ[1] तऊ गहि लेत न मैन को तेज सह्यौ परै ।
एक या जीभ ही सों ससिनाथ सुजानसनेह कहाँ लौं कह्यौ परै ।
मोसों कहै हँसि तेरे लखे बिनु मो पै घरी भरि हू न रह्यौ परै ॥४॥

---

१. छोड़ ।

अथ रूपगर्विता

मंदिर की दुति यों दरसी मनो रूपे के पत्र अलेपन लागे ।
हौं गई चाँदनी हेरन को तहँ आली घरीकु निमेषन लागे ।
डीठि पर्‌यो नयौ कौतिक ह्वाँ ससिनाथ सु यातें बड़े षन लागे ।
पीठि दै चंद की ओर चकोर सबै मिलि मो मुख देखन लागे ॥५॥

अथ मानवती

आदौ मान लच्छनं

सापराध प्रीतम समझि छोभ जु उपजतु आइ ।
ताही कौ सब मान कहि बरनत है कबिराइ ॥६॥
तीन भाँति सो मान है लघु मध्यम गुरु जानि ।
तिन के अब लच्छन कहतु रसिकन कौ सुखदानि ॥७॥

अथ लघु मानलच्छनं

परतिय कों निरखत लखै निज पति कों जब बाल ।
उलहतु है लघु मान मन कामिनी के तिहि काल ॥८॥
हँसी खेल की बात में छूटि जातु लघु मान ॥९॥
यथा—लाल की ओर सों डीठि मिली लखि,
बाम हिएँ रिस बाढी बनाइ कै ।
बैठि रही अति भौंह चढ़ाइ
कही ससिनाथ सुजान यों आइ कै ।
भाँवती तेरे बिलोके बिना छिनु,
मो पै रह्यौ न परै कहूँ जाइ के ।
यो सुनि मान मरोर बिसारि,
तिया पिय त्यों चितई मुसिक्याइ कै ॥१०॥

अथ मध्यम मान लच्छनं

और नारि कौ नाम जब पतिमुख तें सुनि लेइ ।
प्रगटतु मध्यम मान तब प्रीतम की सुख[1] देइ ॥११॥

---

१. श्रम ।

झूठी साँची सौंह तें मध्यम मान प्रयान ॥१२॥

यथा—दंपति ज्यो सेज पै निसक बतराने त्यों हीं,
पी मुख तें काहू वनिता कौ नाम कढिगो।
सुनत हीं पीठि दै मरोर गहि बैठी ऐंठि,
तनक में तनगि तनेंनों त्यौर चढ़िगो।
सोमनाथ प्यारे सौंहें खाइ के कह्यो यो, मोहि
भूलि गइ सुधि तेरे मोह ही में मढ़िगो।
छूटि गयो मान हँसि कंठ सो लपटि लागो,
दोउन के अंगनि अनंग रंग बढ़िगो ॥१३॥

अथ गुरु मान लच्छनं

और नारि तें कंत कें उपजे चिन्ह निहारि।
होतु महा गुरु मान तब कामिनि हिएँ बिचारि ॥१४॥
छूटत तब गुरुमान जब प्रीतम परसतु पाइ ॥१५॥

यथा

रति चिन्ह धरें पिय आए निहारि तियाँ रुख रूखौ रिसाइ कियौ।
मन मांनबती पहिचानि सुजान हरें हरवा पहिराइ दियौ।
ससिनाथ तऊ न मनी तनकौ जब ही हरि हारि के पाइ छियौ।
तब चंदमुखी मुसिक्याइ लजाइ के भांवतो कंठ लगाइ लियौ ॥१६॥

इति श्री कवि सोमनाथ विरचिते सिंगारविलासे संजोगसिंगारे मान-
मोचनबर्ननं नाम पंचमोल्लासः ॥५॥

षष्ठ उल्लास

अथ स्वाधीनपतिकादि दस नाइका बर्ननं

स्वाधिनपतिका खडिता कलहंतरिता जानि ।
विप्रलब्ध उतकठिता बासकसज्जा मांनि ॥१॥
अभिसारिका अनूप अरु प्रोषितपतिका बाल ।
प्रवत्स्यतपतिका आगमिष्यतिपतिका पुनि लाल ॥२॥

अथ स्वाधीनपतिका लच्छनं

जाके प्रीतम बस रहे तन मन बचन बनाइ ।
स्वाधिनपतिका ताहि कहि बरनत है कबिराइ ॥३॥

अथ मुग्धा स्वाधीनपतिका

यथा

मुख देखतु ही रहै चाइन सों हित की बतियाँनि के ढार ढरै ।
अँखियानि में अंजनु दै ससिनाथ हिएँ मुकतानि के हार भरै ।
ढिग बैठि के भोजन काज सुजान घने पकवान के थार धरै ।
पिय क्यों इतनों नित प्यार करै अलि सों तिय पूछि बिचार करै ॥४॥

लाजतें काहूसों कहति नाहिनें ।

अथ मध्या स्वाधीनपतिका

यथा

पहिराए दुकूल सुगंध सों सांनि सबै रतिमंदिर बासि रह्यौ ।
रँग रंग के अंग अनूप सिँगार सिँगारि निहारि के मोदु लह्यौ ।
पुनि पान खवावत हूँ ससिनाथ गुमान तें प्यारी कछू न कह्यौ ।
जब लावन लागे महावर पाइ तबै मुसिक्याइ के हाथ गह्यौ ॥५॥

लाज काम सम प्रगट ही है ।

अथ प्रौढा स्वाधीनपतिका

यथा

दोऊ संग सोसे को महल अवलोकैं मानों
उदै भए सुंदर अनेक पून्यों चद हैं ।

प्यारी धरैं पाइ तहां प्यारो अरबिंदु राखै
भाखै मृदु बैन बर नाखै दुख दंद हैं।
बीजना डुलावै श्रम जानि तहाँ सोमनाथ
उनके उन्ही पै वनि आवै हित छंद हैं।
आँखिनि में आँनी तौ बखानी आजु तेरी सौंह
राधा ठकुरानी अरी चेरे नंदनंद हैं ॥६॥

रति सौं अरु पति सौं प्रीतिप्रधान।

अथ परकीया स्वाधीनपतिका

न्हान जो जाइ तौ संग सखी बनि पाँउड़े पाँवरी के करिबो करै।
केसरि लाइ बनाइ कै आड़ निहारि कै नेह नदी तरिबो करै।
जौ ससिनाथ न दीठि परै कुलकानि तें बाल कछू डरिबो करै।
तौ निसि बासर साँवरिया घर की नित भाँवरिया भरिबो करै ॥७॥

अथ सामान्या स्वाधीनपतिका

यथा—फूलनि की माल रचि लावै भाँति भाँतिन की
कठ पहिरावै झलकावै आनि अग में।
सोमनाथ ओर[1] मुकतावलि अमंद लाइ
सब ही के आगें मु बनावै हँसि संग में।
चुटकी बजावै लखि पावै जौ जभाँति वह
नैंको उर आनति न लालच उमंग मे।
छोड़ि गृहकाज के समाज लोक लाज लाल
रँगि रह्यो याही बारअगना के रंग में ॥८॥

अथ खंडिता लच्छनं

आवै प्रीतम प्रात जब अत राति रति माँनि।
जा कामिनी के भवन मे ताहि खडिता जाँनि ॥९॥

---

१. कहै।

मुग्धा खडिता

यथा

निसि अत ह्वै आए री भोर भएँ गति पाइनि औरई पाइ लई।
ससिनाथ उनींदीं झुकैं अँखियाँ पगियाऊ न फेरि बनाइ लई।
रति चीन्हनि पूछति जानि सुजान हँसी मिस बाल भुलाइ लई।
कर चाँपि अमोल कपोलनि चूँमि भुजा भरि कठ लगाइ लई ॥१०॥

मुग्धता प्रगट है।

अथ मध्या खंडिता

प्रात उठि आए काहू चंदबदनी के वसि
सोमनाथ चार्‌यो जाम जामिनी बिताइकै।
अरसौंहें अंग पाइ धरत कहूँ के कहूँ
आँखिनु में आछी अरुनाई लसी छाइ कै।
या विधि मुरारि प्रानप्यारे कों निहारत ही
गई मुरझाइ हिएँ अनख बढ़ाइ कै।
तजि वे सुभाइनि के भाइ अकुलाइ प्यारी
आँसू ढरकाइ कै रही री सिरु नाइ कै ॥११॥

अथ प्रौढा खंडिता

औरे उर माल भाल तिलक रसाल लाल
हाल अवलोकें ए जू प्रान ललक्यौ परतु।
मरगजे बसन लसतु नीको नील पट
हँसनि अनूठी नोठि बैन बलक्यौ परतु।
सोमनाथ प्यारे सौंहें इते पै करत सोंहें
सरसौंहें अगनि ते स्वेद झलक्यौ परतु।
जहाँ निसि जागे रस पागे तिन हीं कों लाल
आँखिनि ह्वै आजु अनुराग छलक्यो परतु ॥१२॥

अथ परकिया खंडिता

कहि के इत झूठु उहाँ उनसों मिलि कै निसि में रस रीति करी।
अब भोर भए उठि आए दुरें दुरें बातनि ही सों सुमीति करी।
ससिनाथ सुजान हौ रावरै तौ सब ही बिधि आपनी जीति करी।
हम ही यह कान्ह अनीति करी तुम सों अनजाने जु प्रीति करी ॥१३॥

अथ सामान्या खंडिता

काम कलोलनि में अटक्यौ सु बस्यौ निसि अंत वियोग निवारि कै।
प्रात ही आइ गयौ अरसात सबै कुलकानि की ओट उघारि कै।
ए ससिनाथ जू या छवि सों निजु यार निहारि रही मन मारि कै।
भौंह चढाइ कै वारबधू नें लिये मुकतानि के हार उतारि कै ॥१४॥

अथ कलहंतरिता लच्छनं

पति कौ अति अपमान करि फिरि पीछै पछिताइ।
कलहंतरिता नारि सो तन मन दुख सरसाइ ॥१५॥

अथ मुग्धा कलहंतरिता

यथा

क्यो यह रूठि कै बैठि रही वह कौन सी बात सु जानी न जाति है।
लाल मनाइ कै जात रहे ससिनाथ हमारी कछू न बसाति है।
मान्यो अयानप तें न तबै अब कंजकली ज्यो लली कुँभिलाति है।
लाजनि ते न बखानि सकै मन ही मन में नवला पछिताति है ॥१६॥

लाज की सरसाई प्रगट ही है।

अथ मध्या कलहंतरिता

यथा

हरि तौ मनुहारि कै हारि गए जिन पै जियरा रति वारति है।
ससिनाथ मनोज की ज्वालनि सो अब कुंदन सो तन गारति है।
उठि बैठति सेज पै चंदमुखी पछिताइ कै पौरि निहारति है।
न कहै मुख तें दुख अंतर को अँसुवा अँखियानि तें ढारति है ॥१७॥

अथ प्रौढ़ा कलहंतरिता

कौन धौं कुमति उर आनि बनि बैठी जु मे
पीठि दीनी प्यारे को बिसाहे उतपात हैं।
ताको फल पायौ मनभायौ भयौ सौतिनु कौ
सोमनाथ बिरह भुलाए सुख सात हैं।
संग की सखीनि हूं न मोहि समझायौ तब
दौरि अब लाई जलजातनि के पात हैं।

आली व्रजचंद के मनाएँ मैं न मान्यों तातें
चंद की मयूखनि सों अंग जरे जात हैं ॥१८॥

चंद की किरनि सों।

अथ परकिया कलहंतरिता

सासु के त्रास बिसारि सबै उपहासनि हूँ ते निसंकिनि हौं भई।
लीक अलीक न जानी कछू ठकुरानी कहाइ सु रंकिनि हौं भई।
जा ससिनाथ सुजान के काज तजे सुखसाज करंकिनि हौं भई।
री तिन सों हित तोरि कै हाइ वृथा व्रज मॉझ कलंकिनि हौं भई ॥१९॥

अथ सामान्या कलहंतरिता

यथा

कंचन के परजंकनि पै सु निसंक ह्वै आसव संग पियो मैं।
दौलति जाकी जवाहिर के गहनें सजि अंग प्रकास कियो मैं।
जा सम कों ससिनाथ अजों धनदाइक और लख्यौ न वियो मैं।
हाइ कहा कहों भूल अरी घर माँझ तें ताहि रुसाइ दियो मैं ॥२०॥

अथ बिप्रलब्धा लच्छनं

हरषि जाइ संकेत में पियहि न पावै नारि।
दुखित होइ मन में सु वह लब्धाविप्र बिचारि ॥२१॥

अथ मुग्धा विप्रलब्धा

खेलिहै लाल के संग चलौ कहि के उर में मति औरई ठानी।
यों बहकाइ के सौंह दिवाइ मयंकमुखी रतिमंदिर आनी।
ह्वाँ न लखे ससिनाथ सुजान कछूव तहाँ ठठुकी ठकुरानी।
ग्यानु न काम कलोलनि को सु तऊ नवला मन में अकुलानी ॥२२॥

अज्ञानता प्रगट ही है।

अथ मध्या विप्रलब्धा

अथ प्रौढा विप्रलब्धा

उज्वल सरदचंद चद्रिका ग्रमद दुति,
सीतल सुगध गद मद पान फहरै।
मुकता ग्रनिद मकरद जैसे विंदु चारु,
वदनारविद की छबोली छटा छहरै।
साजि रग रंगनि के सुंदर सिंगार प्यारी,
गई केलिधाम दूजें जामिनी के पहरै।
पेखि परजंकहि गुविंद विनु सोमनाथ,
लागीं ग्रग उठन भुजग की सी लहरै ॥२४॥

अथ परकिया विप्रलब्धा

पूरि ग्रभिलाष नदनंदन के भेंटिवे को,
छिपि के सिवारी सव सोए जानि घर के।
सूनी केलि कुंज ह्वाँ निहारत ही हारि गई,
नैन चदमुखी के वियोग ग्रागि भरके।
सोमनाथ मद मंद पौंन ते दुरन लागी,
वरुनी उमँड़ि ग्राँसू ग्रानन पै ढरके।
तग भए सुख दुख सग भए एकै बार,
ग्रग भए प्यारी के निपंग पंचसर के ॥२५॥

अथ सामान्या विप्रलब्धा

साजि के सिंगार बारग्रगना उछाह भरी,
पहुँची राहेट थान चौत सरबरी मैं।
निरख्यौ न मीत ह्वाँ ग्रनीति करी पचवान,
फिरी निजधाम को प्रकास ग्रटकरी मैं।
सोमनाथ सग की सखी सों बतरानी इमि,
घर तें विचारि यों इतै को डग धरी मैं।
कहा करौं मन की रही ही मन में हीं न तौ,
लेती ग्राजु जेवर जवाहिर के घरी मैं ॥२६॥

अथ उत्का लच्छनं

पिय आयौ नहि कित रह्यो, सोचु करै जो बाल ।
ताकों उत्का नाइका वरनत बुद्धिबिसाल ॥२७॥

अथ मुग्धा उत्का

राजति केलि के मंदिर मे झलके तन चीर महा छबिवारौ ।
खेलि रह्यो ससिनाथ तहाँ मुखचंद को चंद तैं दूनों उजारौ ।
लाज तें पूँछि सकै न कछू तिय सोचु करै मन ही मन भारौ ।
आजु कहाँ रह्यौ आयौ नही अब लौं निसि संग को खेलनहारौ ॥२८॥

अथ मध्या उत्का

आधे अकास में आयो ससी चुपुचापु चहूँ दिसि माँझ भई अति ।
नीद सौं आवै झुकी अँखियाँ ससिनाथ सनेह बिहाल करी मति ।
भूलि गए घर की सुधि कों कि कहूँ रसबातनि में बिरमे पति ।
आए अजौं न कहा करिए तिय नारि नवाइ सखीन सौं पूँछति ॥२९॥

अथ प्रौढा उत्का

फूले द्रुम पुंज मंजु गुंजत फिरत भौंर,
सोमनाथ लेत मनभाए मकरंद हैं ।
सीतल सुगंध मंद बहति बयार तैसो,
परसे सँजोगिन के उर में अनंद है ।
कौंन जानै ह्वैहैं कित ऐसे में सुजान आजु,
ह्याँ सु फैले अंगनि अनंग दुखदंद है ।
बोलतिँ चिरैंयाँ री तरैयाँ निबरन लागी,
मंद भयौ चंद पै न आए ब्रजचंद हैं ॥३०॥

अथ परकिया उत्का

भूलि गए इत की सुधि कै चित मे कछू औरई बानि बसाई ।
खेलत ग्वालनि संग रहेऽब किधौं ससिनाथ लई निठुराई ।
प्रीति करी कहूँ अंत किधौ डरपे अपलोक तें लालु कन्हाई ।
क्यों नही आए अरी सजनी कहि मोहि भई रजनी दुखदाई ॥३१॥

अथ सामान्या उत्का

आवत वन्यौ न कहूँ काज कौ सिधार्‌यो किधौं,
और बारबधू सों सनेह सरसाई की।
परम बिचित्र काहू मित्र नें सिखायौ किधौं,
मांनी है अटक लोकलाज अधिकाई की।
काहे तें न आयो सो न जानियति सोमनाथ,
कहाँ लौं वडाई करों वाकी चतुराई की।
खाली ह्याँ न आवतौ कछू पै धन लावतौ री,
येंही गई रैनि आली आजु की जुन्हाई की ॥३२॥

अथ वासकसज्जा लच्छनं

पिय आगम जिय जानि कै, साजै सेज सिँगार।
बासकसज्जा नारि सो, निरखे रतिगृह द्वार ॥३३॥

अथ मुग्धा वासकसज्जा

सखियाँनि सिँगार सिँगारे सबै बिहँसें रति की दुति धारति है।
ससिनाथ नई बतियाँ सुनिवे कौं कछूक बिनोद विचारति है।
पिय आगम चोंप सों आँचर ओट हरें हिय हार संवारति है।
अँखियानि की कोरनि ह्वै नवला रतिमंदिर द्वार निहारति है ॥३४॥
लाज की अधिकाई प्रगट ही है।

अथ मध्या वासकसज्जा

न्हाइ कै सुगंधित गुलाब सो बसन साजे,
कुंदन ते दूनी दुति देह दमकति है।
राजति अनिंद इंदिरा सी कहि सोमनाथ,
ताकी समता को लहि बानी क्यों सकति है।
फूल परजंक पै बिछाए छबि छाई पिय
आगम बिचारि कै उछाह सों छकति है।
सकुचै सखी सों तऊ नेह की उमंग आएँ,
प्यारी रंगरावटी के द्वार कों तकति है ॥३५॥

अथ प्रौढा वासकसज्जा

कंचन रचित मनि बिद्रुम जटित भौंन,
फटिक कपाट छबि छटा बरखति है।
तोरन अनंत मुकतनि की लसंति जग-
मग, दरसंति संत हियो करखति है।
तामे परजंक पै बिराजति मयंकमुखी,
सोमनाथ प्रीतम को प्रेम परखति है।
जानि नंदनंदन को आगम अनंद भरी प्यारी
रंगमदिर कौ द्वार निरखति है ॥३६॥

अथ परकिया वासकसज्जा

देवरानी नँनद सुवाइ एक ठौर दिए,
दीपक बढ़ाइ सहै मदन मरोर कों।
अंबर सँवारि धरे नूपुर उतारि तऊ,
दबकावै गहरी उसासनि के सोर कों।
सोमनाथ सखी कों सिखाइ के बिछाइ सेज,
फूलनि के हार रचि राखे चितचोर कों।
आगम सुजान को बिचारि परनारी तकै,
बार बार बार के किवारन की ओर कों॥३७॥

अथ सामान्या वासकसज्जा

चाँदनी बिछाई चहूँ ओर घर आँगन मैं,
सौमनाथ फैली तैसी सरद जुन्हैया है।
बासित सुगंध परजंक रचि राख्यौ तापै,
बैठी वारवधू परचित्त की चुरैया है।
बेर बेर डीठि पहुँचावै पौरि पार लगि,
उर में उछाह सरसायो रतिरैया है।
कहति सखी सों आजु निसि ह्याँ बसैगो प्यारो,
मन कौ रखैया मुहरन कौ दिवैया है ॥३८॥

अथ अभिसारिका लच्छनं

पिय पैं जाइ कि आपु हीं पियहि बुलावै नारि ।।
ताहि कहत अभिसारिका, पंडित लोग विचारि ।।३९।।

अथ मुग्धा अभिसारिका

नीकें न्हवाइ गुलाब के नीर सरीर सिँगारे सखी विय नें सब ।
भीत भई हहरै ससिनाथ कह्यौ यह रंग लख्यो पिय ने कब ।
सीक जिठानी की सौंह सुने अति ही पतियारो कियो जिय नें जब ।
भौंह चढाइ गरू करि कै पिय पास कौं पाइ दियौ तिय नें तब ।।४०।।

अथ मध्या अभिसारिका

चीर चिनौंटिया चाइनि सों चुनि कै पहिर्यो रुचि चारु लसाति है ।
जाहि लखें ससिनाथ भली विधि सौतिनु की मुख जोति विलाति है ।
चाहति पूछ्यौ सखीनि कछू रस रीतिहि पै मन माँझ लजाति है ।
प्यारे सुजान समीप कों वाल चलै ठठुकै मुरिकै मुसिकाति है ।।४१।।

अथ प्रौढा अभिसारिका

साजि अभिसार चारु कंचन की डार ऐसी,
चली सुकुमारी प्रानप्यारी नंदनंद की ।
सुंदर दुकूल अंग सहज सुगंध संग,
गुंजत मलिंद पूरि उमँग अनंद की ।
सोमनाथ भूपन अनत जगमग होत,
जीतति चलनि सुरपति के गयंद की ।
फैलि गई कुंजु कुंज प्रति मंजु मंजरीनि,
उज्जल जुन्हैया चंदवदन अमंद की ।।४२।।

अथ परकिया अभिसारिका

स्वाइ निज सेज पैं सहेली चित चाइनि सों,
सजे स्याम अंबर सुघरता की थाती ह्वै[1] ।
छोरि धरे नूपुर निकाई के निकेत अरु,
कसि वाँधी कंचुकी सुरूप सरसाती ह्वै[1] ।

---

१. है ।

सौमनाथ लोक कुलकानि को पछेलति सी,
अंग अग अति ही अनंगजुर ताती ह्वै[1] ।
प्यारी केलिकुंज में सिधारी ब्रजचंद जू पै,
रंग करिबै कौं अनुराग रंग राती ह्वै[1] ॥४३॥

अथ सामान्या अभिसारिका

कुंदन से अंग साजे वसन सुरंग सदाँ,
घरहूँ में धरनी पै चरन धरयो ना मैं ।
अतर तमोर बिनु ठहरी घरी न सखी,
नेकु मुसिक्याइ काकौ हियरा हरयो ना मैं ।
सोमनाथ प्यारे पै चली यों वतराति बाल,
ऐसौ पनु काहू संग अबलों करयो ना मैं ।
बाँकी अलकनि सों लला कौ मन बाँधि आजु,
लाऊँगी जराव जरे मुंदर तरयोना मैं ॥४४॥

अथ शुक्ला अरु कृष्णा अभिसारिका परकिया के भेद हैं ।

प्रथमा शुक्ला कौ लच्छनं

सजि कै सेत सिँगार तन, जाइ जु तिय पिय पास ।
सो सुक्ला अभिसारिका, बरनत कबि सबिलास ॥४५॥

यथा—स्याम सटकारे बार फूलनि सों गूँथि सजे,
मोतिन के भूषन सरीर सुखदाई मैं ।
तिही साज सग सहचरी चारु चाडनि सों,
सौमनाथ कौतिक बिलोकत बिकाई मैं ।
पिय पै पधारी रीझि वारने करति प्रान,
मंद मद चलनि सुरूप सरसाई मैं ।
पैड पाँच सातक अगौंही होन इंदिरा सी,
मिलि गई बाल मुखचंद की जुन्हाई में ॥४६॥

अथ कृस्ना अभिसारिका

भूषन बसन असित सजै उर में भरें अनंग ।
पिय पै तिय जो जाइ सो कृस्ना कहि रस संग ॥४७॥

---

१. है ।

यथा

मृगमदसार सब अंगनि लगायौ आछें,
अतर बसायो नील अंबर उदार में।
छोरि दीनो बेनी कसी कंचुकी तनैनी करि,
पैनी करि दीठि अति अजन सुढार में।
सोमनाथ सजि यो सिँगार अरविंदमुखी
छिपि कै सिधारी रजनी के अभिसार में।
कछू न सम्हार गिरि परै मनिहार करी
मदन सुमार मन नंद के कुमार में॥४८॥

अथ दिवाभिसारिका

छुटकी रवि की किरने अति तीछन मानों हुतासन झार झरैं।
ससिनाथ सुभाइ सौं आइ दुरी तन छाँह हूँ पाई सुढार तरैं।
इहि औसर पीत सिँगारनि साजि तिया हिय नेह अपार धरैं।
जिहि कुंज में कान्ह बिहार करैं सु चली तितहीं अभिसार करैं॥४९॥

औरु जु नाइका नाइक को आपुहीं बुलावै सो अभिसारिका

यथा

उदै भयौ पाँचें की निसाकर निसंक रंक
बैरी पंचसर नै करी है मति बाउरी।
रुँधी आवै छाती बीर सीतल समीर लागै,
धीर न रहतु परे अंगनि में घाउ री।
बिसु भए बसन बसंत की वहार लखें
सोमनाथ रह्यो अब और न उपाउ री।
साँची हौं कहति तोंहि मेरी सौंह बेगि जाइ
आनँद के कंद नंदनंदन को लाउ री॥५०॥

अथ पुरुषाभिसार

यथा

घुमँड़ो गगन घनघटा चहूँ ओर घोर,
बरसतु नीर लिएँ तीर से पवन कौं।

झाँइ झाँइ झिंकरत झिल्ली धरि जील अरु,
को गनें अनंत बन जीव के रवन कौं।
सीस पर काँवरी लकुट कर सोमनाथ,
देत डग जीति मद सिंधुर गवन कौं।
प्यारी के मिलन काज भादो की बिभावरी में,
चले ब्रजराज बृषभान के भवन कौं ॥५१॥

अथ प्रोषितपतिका लच्छनं

जाकौ पिय परदेस सो प्रोषितपतिका जानि।
बिकल रहै तन मन बिषैं पंडित कहत बखानि ॥५२॥

मुग्धा प्रोषितपतिका

यथा

जा दिन तें परदेस गए हरि ता दिन तें न धरैं छिनु धीरहिं।
ए ससिनाथ इकंत में जाइ सरोज के पात लगावै सरीरहिं।
लाज के जोर न बात कहै अँचरा सो बचावति सीत समीरहिं।
जानतु एक मनोज अरी नव नागरी के तन प्रान की पीरहिं ॥५३॥

अथ मध्या प्रोषितपतिका

मलयागिरि[1] घोर लगावत हीं सु मनोज सतावतु आइ उरै।
हम सो निज पीर बखानति पै निजु पाइ त्यों डीठि लजाइ मुरै।
ससिनाथ मनोहर गाँउ गए जब तें तब तें न उपाइ फुरै।
निसि में लखि चंदहि कंजमुखी रतिमंदिर में नित जाइ दुरै ॥५४॥

अथ प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

जा घरी तें ब्रजनाथ मथुराँ सिधारे आली,
ता घरी तें तिय की दसा न बरनी परति।
सोमनाथ चौंकति कहति हाँ जरी री मरी,
नींद भूँख प्यास सुनि दूरि घरनी परति।

---

१ मलयागरि।

लिपटी निपट बिरहागि सों उसासन कीं,
संग सखियानि कोऽब और करनी परति।
धरनी तें सेज पै पलकु ठहरति नीठि,
सेज तें पलटि प्यारी फेरि धरनी परति ॥५५॥

परकिया प्रोषितपतिका

यथा

करिए दुरि कै उपचार कछू तब आइ कै सामु रिसाइ तहीं।
ससिनाथ बिदेस में छाइ रहे अँखियाँ ए वियोग के दाह दहीं।
भरि लेति न साँस अरी गहरी बतियाँ[1] दुख पाइ के साँचु कहीं।
अब तो ब्रजचंद बिना छिन हूँ पति संगति मोहि सुहाति नहीं ।।५६॥

अथ सामान्या प्रोषितपतिका

आवत अनेक और आवैगे घनें पै वैसें,
कौन धौं रिझावैगो सुधा सी तान गावैगो।
सोमनाथ फूलनि के भूखन बनाइ चारु,
अंग पहिरावैगो अनंग उपजावैगो।
बैठि परजंक पैं निसक नित चाँदनी मैं,
छतियाँ लगावैगो वियोगहि बुझावैगो।
सुख को दिवैया वह प्यारी परदेसनि तें,
फेरि कब आवैगो सखी री धन लावैगो ॥५७॥

अथ प्रवत्स्यतिपतिका नाइका कौ लच्छनं

जाकौ पिय परदेस कौं चल्यो चहै. कछु काज।
दुखित होइ चित में सु तो प्रवत्स्यतिपतिका राज ॥५८॥

अथमुग्धा प्रवत्स्यतिपतिका

सजि अंबर आरसी हेरति है बतरान लगी मुख हास छई।
अब ही दिन द्वैक ते देखति हौ उपजी है मिलाप की आस नई।

---

१. बितियाँ।

ससिनाथ कछू न सयान हिएँ न अजौं सुख सेज के पास गई।
पति को चलिबी सुनि बाल तऊ सु फिरै घर माँझ उदास भई ॥५९॥

मध्या प्रवत्स्यतिपतिका

जब तें सुनी है धुनि कान्ह के सिधारिबे की
तब तें न लावै अंग कुंकुम अगर कों।
कछू न सुहाइ अकुलानी अति सोमनाथ
बिलखी बिलोकै बाल केलि के वगर कों।
बेर बेर पूँछति हितू सों दृग नीचे करि,
क्यो करि सहोंगी पंचवान की रगर कों।
हा हा कहि आली तोहि मेरी सौंह कान्हि कहा
साँच हूँ चलेगे लाल गोकुल नगर कों ॥६०॥

अथ प्रौढा प्रवत्स्यतिपतिका

चलिबे की चरचा चली है जब ही तें लीने
तब ही तें लोचननि बारिद के ढंग है।
भूली भूख प्यास अरु किरचैं करेजौ भयौ,
भूलि न सुहात ए दुकूल वहुरंग हैं।
सोमनाथ प्यारे सुनों साँची हौं कहति देखौ,
अब ही तें पीरे परि आए सब अंग हैं।
जो पै कान्हि गाँउ कौं सिधारिऐ तों बीसौ-
बिसे रावरे की सेवा में हमारे प्रान सग हैं ॥६१॥

अथ परकीया प्रवत्स्यतिपतिका

काहूँ कह्यौ चलिहैं परसों परदेस गुबिंद अरी सु घरी मैं।
सो सुनि के सुख भूलि गए ससिनाथ सनेह बिहाल करी मै।
सूल भए सब सेज के फूल अजोग जुन्हाई की जोति जरी मैं।
ह्यां लगि सोच समूह भरी पति संग हूँ सोवत चौंकि परी मैं ॥६२॥

सामान्या प्रवत्स्यतिपतिका

भली कीनी आए मनभावन बिदा कौ आजु,
कर में कमान गहि बाँधि तरकसी कों।
सोमनाथ लोगनि पढ़ी है निठुराई अजू,
काहे कों कसत हौ सनेह फद फसी कों।
छोड़्यौ सब नगर रची हौं एक रावरे सौं
नैंननि कों चैन तौ लखें जौ मुख ससी कों।
दीजै हित माँनि रहठानि मेरे प्राननि की,
उर सो लगाइ राखो लाल उरबसी कों ॥६३॥

अथ आगमिष्यतिपतिका लच्छनं

आवत पिय परदेस तें सुनि हिय हरषै बाल।
आगमिष्यतिपतिका सु तो जानौ सुकबि रसाल ॥६४॥

मुग्धा आगमिष्यतिपतिका

रचि भूषन आइ अलीन के संग तें सासु के पास बिराजि गई।
मुख-चंद-मयूषनि सौं ससिनाथ सबै घर में छबि छाजि गई।
इनको पति ऐहै सबार सखी कह्यौ यो सुनि के हिय लाजि गई।
सुख पाइ के नारि नवाइ तिया मुसिक्याइ के भौन में भाजि गई ॥६५॥

मध्या आगमिष्यतिपतिका

पहिरे दुकूल रंग रंगनि के अगनि मै,
पाछिले बिरह की सुरति बिसराई है।
उमगि उरोजनि पै कंचुकी दरकि गई,
आजु मुसिक्याइ के सखी सो बतराई है।
सोमनाथ मदन-सनेह-रस-भीनी डीठि,
मोहन को रूप लखिबे कों ललचाई है।
औरै छबि छाई बाल मुख पै सुहाई देखि,
जब तें लला के आइबे की सुधि पाई है ॥६६॥

अथ प्रौढा आगमिष्यतिपतिका

छाती में उछाह की छटा सी छहरति कछू,
सोमनाथ और और अंगनि के भाइ है।
फूले फूले फूल नीके नैननि सुहाए लगें,
पंचसर पीरहू न सकति सताइ है।
फरकि-फरकि जाति बेर-बेर बाँई आँखि,
भोर हीं तें बोले काग भाग ही जगाइहैं।
लहकि लहकि उठे बाह भरि भेटिबे कौं,
मेरे जान बीसौ बिसे आजु हरि आइहै ॥६७॥

परकिया आगमिष्यतिपतिका

आली बहु बासर बिताए ध्याँन धरि धरि,
तिन हीं कौं फलु नैन दरसन पावैंगे।
होत है री सगुन सुहावनें सबार ही तें,
अंगनि में अति हीं बिनोद सरसावैंगे।
सोमनाथ हँसि हँसि बतियाँ सुहाई कहि,
अंतर के बिरह की तपति बुझावैंगे।
सबनि तें प्यारे प्रान, प्राननि ते प्यारो पति,
पति हू तें प्यारे ब्रजचंद आजु आवैंगे ॥६८॥

अथ सामान्या आगमिष्यतिपतिका

उज्जल गुलाब नीर न्हाइ के नगरनारी,
पहिरै दुकूल सरसानी रति बेस तें।
सोमनाथ चदन को अतर लगायौ चारु,
छहरी सुगंध तन कंचन सुदेस तें।
भोर ही तें और रसियनि कौं जबाब दीनें,
हँसति कहति बात निबरी कलेस तें।
उमगि उरोजनि पै आँगी दरकति जाति,
धन को दिवैया सुनि आवत बिदेस ते ॥६९॥

इति श्री कवि सोमनाथविरचिते सिंगारविलासे संजोगसिंगारे
मुग्धादि स्वाधीनपतिकादि नाइका बर्ननं नाम
षष्टमोल्लास ॥ ६ ॥

अथ उत्तमा लच्छनं

पति अनहित हू करै तौ तिय जु करै हित भूरि।
सो उर आनों उत्तमा सकल सुखनि की मूरि ॥१॥

यथा

तिनही के संग रस रंग करिये जू नित,
नेम हीं सों नीके हित मानें प्रान जिन में।
भाँवती तुम्हारी ते हमारी मनभाँवती है,
सेवा ही के काज मोहि लीजिए सखिन में।
सोमनाथ प्यारे रावरे को सौंह साँची कहों
जुग से बिताए काल्हि एक एक छिन में।
रावरे के सुख ही सों सुख है हमें हूँ एपै,
दरसन दीजै एक बेर एक दिन में ॥२॥

अन्यच्च

मान करिबे की तुम सीख सिखवति आनि,
कासों कहै मान कहि माँन है री काकौ छौन।
हौं तो ए चबाउ कछू जानति न एकौ तुम,
अपनी ढिठाई धरि राखौ अपनेंई भौंन।
सोमनाथ प्यारे सौं बियोग ही की बात कही,
दीसति सयानी क्यों अयानी होति गहो मौन।
छिन बिना देखे हरि हरे-से रहत प्रान,
भौंहनि मरोरि के घरी लौं ऐंठि बैठे कौन ॥३॥

अथ मध्यमा लच्छनं

हित अनहित जो करैं तिय पति की रीति समान।
ताहि मध्यमा नारि कहि बरनत सकल सुजान ॥४॥

यथा

अरसाने गात अँगिरात उठि आए प्रात,
जोति मुखचंद की प्रगट पसरानी री।
बरि··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ॥५॥

माधव विनोद

नाटक के पात्र

पुरुष पात्र

देवरात—विदर्भपति के मंत्री

माधव—देवरात के पुत्र : नायक

मकरंद—माधव का मित्र

कलहंस—माधव का भृत्य

भूरिवसु—पद्मावतीश्वर के मंत्री

नंदन—पद्मावतीश्वर के नर्म सचिव

अघोरघंट—एक कामाचारी कापालिक

स्त्री पात्र

मालती—भूरिवसु की पुत्री : नायिका

लवंगिका—मालती की सखी : मालती की धाय की पुत्री

मदयंतिका—नंदन की बहिन

कामंदकी—बौद्ध संन्यासिनी योगिनी

सौदामिनी—कामंदकी की पूर्वशिष्या योगिनी

अवलोकिता—कामंदकी की परिचारिका

बुद्धिरक्षिता—कामंदकी की सखी

मंदारिका—कलहंस की प्रणयिनी

कपालकुंडला—अघोरघंट की शिष्या, कापालिकी।

प्रतिहारी, चेरियाँ, आदि।

महाराज सूरजमल

प्रथमांक

छप्पै—झमकतु बदन मतंग कुंभ उत्तंग अंग बर।
वदन बलित भुसुंड कुंडलित सुंडि सिद्धिधर॥
कचन मनिमय मुकुट जगमगै सुभर सीस पर।
लोचन तीनि बिसाल चारि भुज ध्यावत सुर नर॥
ससिनाथनंद स्वछंद नित कोटि बिघन-छर-छंद-हर।
जय बुद्धि बिलंद अमंद दुति इंदुभालआनंदकर॥१॥

कबित्त—पूरि रह्यौ अमल अखंड ब्रह्मंडनि में
जाकौ तेज, ऐसैं वेद भेदन बतायो है।
गावतु अनंत द्वै सहस्र रसना सों जाके
नित नए नाम ओर छोर नाहिं पायो है।
सोमनाथ कहै बसुदेव देवकी कै धाम
आइ सोई ब्रम्ह प्रेमपंथ अधिकायो है।
और भरि अंकनि असंक ब्रजमंडल में
नंद जानि नंद जसुमति ने खिलायौ है॥२॥

दोहा—कंसादिक रिपु दमन करि सुहृदनि दियौ अनंद।
बिहरैं गोपिन सँग अजौं ब्रज मै गोकुलचद॥३॥
भाव सिंह तिनि बंस में प्रगट्यौ सिनसिनवार।
पग जाके परसत रहै अनगन भूमिभतार॥४॥

छप्पै—परगट जाकौ रूप निपट कंदर्प-दर्प-दर।
अरु पुनि जाकौ तेज जगमगै मनहुँ चंडकर।
सरद चंद सम सील, धर्म करि धर्मधुरधर।
क्रुद्ध रुद्र परिमान, साहिबी सहस पुरदर।
इम भावसिंह भूपाल हुव अति उदार चित ज्यो करन।
अरु भीषम सो जो बिक्रमी सत्रुसंघ-रन-संघरन॥५॥

दोहा—ता भाऊ के प्रगट हुव बदनसिंह बड़ भाग।
ब्रजमंडल को राज सब दीनौ जाहि गुपाल ॥६॥
राज करत जो अवनि पै इहि विधि अब सुख पाइ।
अमरपुरी मैं अमरपति जैसें दुति सरसाइ ॥७॥

कवित्त—जगमग जाको चंडकर सो प्रचंड तेज
दुवन उदंड जाते लुकत रहत हैं।
नीति निरवाह सौं निरंतर प्रतीति जाके
रंचक न बैन परपंचहि लहत है।
ऐसौ ब्रजमंडल बदन सिंह महाराज
जाको जस उज्जल दिगंतनि कहत हैं।
देस परदेस के नरेस पग लगैं आनि
जगौं निस बासर न खग्गनि गहत है ॥८॥

दोहा—बदनसिंह महाराज के सुंदर पुत्र अनेक।
जेठो सूरजमल्ल है मंडित चारु बिबेक ॥९॥
सोदर सूरजमल्ल को श्री परताप प्रचंड।
महिमंडल में जगमगै जाको सुजस अखंड ॥१०॥

कबित्त—डहडहे भारे नैंन लाल रंगवारे लखि
कौन के न त्रास उर उपजैं उदारे हैं।
दाहक अरत्थ सदां समर समत्थ तेरे
हत्थ पत्थनत्थी के से बिधि ने सँवारे है।
सोमनाथ कहैं सिद्ध सूरज सुजांन तेही
भली भाँति छत्री के अखंड प्रन पारे हैं।
सहृदि उमंडे तिन्हें आनंद घमंडे करि
चंडे खल खंडे औ अखंडे डंडि डारे है ॥११॥
जगमगै आभा जाके आनन कलाधर की
औंथौ सी अमंद अंग कुंदन बरन है।
बुधि कौ निधान औ प्रधान गुनवंतनि में
भूपनि के सिर को अनूप आभरन है।

सील जस मंदिर श्री कुँवर प्रतापसिंह,
सोमनाथ मिन्ननि बिनोद बिस्तरन है।
संकटहरन है अरिंद अहरन सदा
हिंद को सरन है कबिंद को करन है ॥१२॥
दीननि कौ पालै गाढ़े गढ़नि उसालै तब,
सज्जै करवालै ऐसो कौन बलबंड है।
आठौ जाम नित चंडकर ते उदंड जग
जगतु प्रताप सात दीप नव खंड है।
सील को समुद्र श्री कुँवर परतापसिंह,
सोमनाथ कहै सुद्ध सुजस अखंड है।,
बिजय घमंड जाकै भरै भुजदंडनि मैं
मंडन मही को खलखंडन प्रचंड है ॥१३॥

सोरठा—सिंह बहादुर नाम, ताको पुत्र सुहावनो।
सकल गुननि को धाम, मोहन मूरति काम सी ॥१४॥

सवैया

ज्यों रतनाकर के प्रगट्यौ है सुधाकर चार पियूष को बासन।
श्री ससिनाथ के जैसे गनेस रु कस्यप के जिमि कंजविकासन।
कित्ति प्रकासन ज्यों नृप पंडु कैं पत्थ भयौ अरिपुंज को त्रासन।
है परताप के त्योंहीं बहादुर ज्यौं गरुड़ासन के कमलासन ॥१५॥
राखतु हैं सब ओर की चौकस सासन मद्धि है फूल सरासन।
ए ससिनाथ प्रसन्न सदाँ सु रहे कबहूँ छिन एक उदासन।
दुज्जनि पुंजनि कौं पजरावतु इंधन ज्यों जिहि तेज हुतासन।
पूरन मित्रनि के अभिलाष वहादुर है कि बियौ कमलासन ॥१६॥
सुंदर आनन कौं अवलोकि प्रफुल्लित अबुंजपुंज बिसारिऐ।
जुद्ध में पत्थ समान समत्थ गनेस ज्यों बुद्धिबिलास बिचारिऐ।
और बली श्री बहादुर सिंह के तेज करालनि सत्रु पजारिऐ।
दान अरत्थ कहा कहिऐ जिहिं हत्थनि पै कलपद्रुम वारिऐ ॥१७॥

कवित्त – सजि दल चलतु बहादुर कुँवर जब
खेलन सिकार वन निकट उदारे की।
सोमनाथ कहै तब्बै पब्बय खिरत रेनु
दब्बै मारतंडहि तुरंग खुर तारे की।
उथल पथल महिमंडल सकल होतु
डगमगे डिढ्ढ गढ अडिग उहारै की।
रारे लुग राखि रखवारे दुग्गवारे रिपु
लरजे अपारे सुने गरज नगारे की ॥१८॥

जंग जितवैया जटाजूट रिझवैया सर-
नागत बचैया विधि कीनै जस हत्थ है।
तिय अलिनी कौं सनाल अरविंदनि से
अरिंदन के मद के त्रिमद्दन जे तत्थ है।
सोमनाथ कहै हरिनंदन पुरंदर हू
जिन के न तूल जऊ परम समत्थ हैं।
छहूँ रितु जाहर गुनी के प्रतिपालबे को
बरसै जवाहर बहादुर के हत्थ हैं ॥१९॥

दोहा—कही बहादुर सिंह ने, एक दिना सुख पाइ।
सोमनाथ या ग्रंथ की, भाषा देहु बनाइ ॥२०॥
माधव औ मालती के प्रेमकथा को ख्याल।
बरनतु सो ससिनाथ कवि, हुकुम पाय के हाल ॥२१॥

पद्धरी छंद-- माधव बिनोद यह ग्रंथ नाम।
सुनि रीझैं जाको बुद्धिधाम।
नर प्रेमी बिनु समझै न याहि।
हौं कहतु सत्य उर मे उछाहि ॥२२॥

अथ ग्रंथारंभ लिख्यते

छप्पय—अद्वय अभय अनंत नित्य आनंद उमंडित।
जटाजूट ससि भाल तीनि लोचन दुति मंडित।
कर त्रिसूल अरु डमरु व्याल भूषन अवखंडित।
नृत्य प्रिय सितरंग अंग भभूति घमंडित ॥१॥
अरधंग बाम कुंदन वरन बिकट कोटि संकटहरन।
जय कित्ति उजागर गंगधर सौमनाथ मंगलकरन।

(नांद्यंते सूत्रधार।)

दोहा—सभा निवासी नरन सौं उचरयो रंगाचार।
मौन भए कौतिक लखौ हौ तुम सबै उदार ॥२॥

छप्पय—माथे मोर किरीट मंजु मंडित कुंदन मनि।
कंचन कुंडल कान, हार उर रहे सोभ सनि।
नव जलधर सम अंग काछनी सूही सज्जित।
कटि लपट्यौ पट पीत होति दामिनि लखि लज्जित।
तिय-बदन-चंद निरखित हरषि नृत्यत मुरली धरि अधर।
कहि सौमनाथ ब्रजनाथ जय श्री गुबिंद आनंदकर ॥३॥

दोहा—नेपथ्यहि अवलोकि कै सूत्रधार सुखदैन।
पारिपारसिक सौं बिहँसि बोल्यौ पुनि यौं बैन ॥४॥

छप्पय—सूत्रधार उच्चर्‌यो पारसिक सौं हितमंडित।
कुँवर बहादुर सिंह सभा ताकी सब पंडित।
और विचित्र अनेक चित्त मथि आनँद सरसन।
अंतर कपटविहीन करत निज प्रभु को दरसन।
कछु सामग्री तुमने रुचिर रच्चियहै मन लाइकै।
जाते प्रसन्न ए होय नर सुनि अवलोकि सुभाइ कै ॥५॥

दोहा—यौं जब रगाचार नें कह्यौ बचन समझाइ।
बहुरि पारसिक नें हरपि उत्तर दियौ बनाइ ॥६॥

इनके मन की भावना हम कौ परै न जानि।
तातें ज़ो तुम कही सो करिए अति सुख मानि ॥७॥

सूत्रधार पुनि उच्चर्यौ रीझति जिन्हें प्रवीन।
सु तौ गिनी सी वस्तु है चतुराई आधीन ॥८॥

नट

सवैया—अक्षर की रचना रमनीय सबै रस की चरचानि मिलानो।
पंडित और प्रवीननि के सुनि होति जु कांननि कौ सुख दांनो।
कै कछु नृत्य समाज बिलोकि विनोद वढै हितु कै अगवांनी।
ते जो विचारत यार सबै तुम हूं निरखो नहि बुद्धि सयानी ॥९॥

दोहा—सूत्रधार पुनि उच्चर्‌यो यह सुनि नट की बात।
हम को सुधि आई जु तुम कियौ समाज सिहात ॥१०॥

यह सुनि नट बोल्यो बहुरि कहा विचारी चित्त।
उचरची रंगाचार पुनि नट सो हर्ष सहित्त ॥११॥

पादकुलक छंद—चरित मालती माधव वारौ।
सौमनाथ बरन्यो सुख भारी।
सो समाज तुमने ठहरायो।
भली भाँति मोहू मन भायो ॥१२॥

सूत्रधार की सुनि यह वानी।
पुनि बोल्यौ नट बात सयानी।
हमने सिखाए सबै खिलारी।
पै इक चिंता हिए बिहारी ॥१३॥

कार्मंदिक जुगनि कै रूपै।
को धारैगो भाँति अनूपै।
अवलोकिता सिप्पिनी वाकी।
हौं बनिहौं करि वुधि चालाकी ॥१४॥

कौन मालती माधव बनि है।
जु या समाज सिरोमनि धनि हैं।
यह सुनि नट के बचन प्रवीने।
सूत्रधार बोल्यो हित भीने ॥१५॥

दोहा—कलहंसरु मकरंद के आगम समै उदार।
सो तौ लखि राखे हिए ताको कहा विचार ॥१६॥
सूत्रधार सौ नट बहुरि बोल्यो सन्मुख हेरि।
सबै खिलारिन को करौं सावधान हौं फेरि ॥१७॥
ए सुनि के नट के वचन, सूत्रधार अतुराइ।
आगु गयौ नेपथ्य में कहि के भला सुभाइ ॥१८॥
कामदिक को रूप धरि, आयो बाहिर आप।
अरु बनि के अवलोकिता नट आयौ अनताप ॥१९॥

कामंदको वर्णन सवैया

वक्र जटानि को जूट सजें सिर चक्र समेंति निकेत निकाई।
अंबर लाल औ भाल भभूति सु कानन कुंडल की छबि छाई।
कंठ में माल जपै ससिनाथहिं नैनन में तप की अरुनाई।
यौं सब सिद्धिन सों अभिरामिन कामँद नामिन जुग्गिन आई ॥२०॥
कुंडलिका—आई पुनि अवलोकिता ताकी सिष्षिन संग।
कटि कटि लौं लटकत जटा भसम लपेटें अंग।
भसम लपेटें अंग हत्थ पुस्तक अरु माला।
वंदन बिंदी भाल कमल दल नैन बिसाला।
बेर बेर हित सहित करति ससिनाथ बड़ाई।
इहि बिधि सब जग रूप मनौ सो लूटति आई ॥२१॥
दोहा—कामंदिक अवलोकिता इहि बिधि बाहर आइ।
नृत्य कियौ दोऊन मिलि लीनी सभा रिझाइ ॥२२॥
सोरठा—अवलोकितै सुनाइ, निज बोली कामंदकी।
दुहूं सखियन सुख पाइ, भयौ चहै सबंध अब ॥२३॥

फरकतु लोचन बाम, उर में अति सरस्यौ हरष ।
होनहार हैं काम, चित्तु उगाही देतु है ॥२४॥
कामंदनि के बैन, ए सुनि के अवलोकिता ।
करिके रूखे नैन, या विधि सों पुनि उच्चरी ॥२५॥

सवैया

तुमको इतनो सोच कहा, जग को सब रीति नसाय दई ।
सिर जूट जटानि को साजतु हो अँग अग भभूति रमाइ लई ।
कबहूँक बघंबर अंबर लाल कि भूख औ प्यास निराइ गई ।
अब तौ ससिनाथ सों नेह करो यह मो मन में मति आइ गई ॥२६॥
दोहा—यों उचरी अवलोकिता कामंद सों अनखाय ।
सुनि पुनि बोलि जुग्गिनी तासों वचन सुभाइ ॥२७॥

सवैया

मित्र ने भेद कह्यौ अपनो जु निरंतर खेदनि को हरनो है ।
प्राननि हूँ करि कै तप के अब मोहि नही पन तें टरनो है ।
ए अवलोकिता झूँठ गिनैं जिन श्री ससिनाथ हिएँ धरनो है ।
है जग माँझ यही हित को फल या बिनु और कहा करनो है ।

दोहा—देवरात अरु भूरिवसु, हम सौदामिनि संग ।
पढत हुते इकि ठौर सो तू जाने परसंग ॥२९॥
देवरात मन्त्री भयो कुंडिनपुर में जाय ।
विदरभ देस नरेस के, सरस्यौ चित्त अघाय ॥३०॥
और भूरिवसु ईहि पुरी नृप को भयौ प्रधान ।
दोऊ विप्रनि कें भई सचित रूपनिधान ॥३१॥

पादकुलक छंद

देवरात के माधव भयौ । सबै भाँति सोभा सों छयो ।
भई भूरिवसु के कन्या । रूप सील कर के धन्या ॥३२॥
सो अब कुंडिनपुर ने रूरौ । देवरात ने बुद्धि समूरौ ।
माधव अपनो पुत्र पठायो । पद्मावती पुरो में आयो ॥३३॥

पढ़न भूरिबसु मंत्री पासैं। विद्या तर्क बुद्धि परकासैं।
अरु करार की सुध्धि दिवाई। सुत हू की सब रीति दिखाई ॥३४॥
यह विचार उन आछो कीनों। समये कौ टरि जाननि दीनों।
यह सुनि कामँदानि की बानी। उचरी अवलोकिता सयानी ॥३५॥
मंत्री कौन मालती बेटी। देतु माधवहि बुद्धि लपेटी।
जो चुराय के ब्याह करायो। चाहतु है उर में अतुरायौ ॥३६॥
कहा भूरिवसु को डर ऐसो। कहौ क्यो न जैसे को तैसो।
भगवति दया कीजिए अब्बैं। पूछति हौं मैं छोड़ि गरब्बैं ॥३७॥

सोरठा—अवलोकिता बिचारि जब जुग्गिन सो यों कही।
तब सिद्धिनी निहारि चेली सों लागी कहन ॥३८॥

सवैया

नंदन नाम नरम्म सचिव्व है भूपति को जिनि राख्यो रिझाइ के।
ताके लिये तिय मालती कौं निजु मंत्रिहिँ सों कहि राखी लुभाइ के।
ह्वै न सकै यह बात प्रसिद्ध कह्यौ अवलोकितै तोहि सुनाइ के।
मालती माधव को स-उछाह सु यो करनो है बिबाह छिपाइ के ॥३९॥

सोरठा—याते आछौ और दूजो नही उपाव है।
दुराँ दुरी धरि मौर, इन दोउन को ब्याहिऐ ॥४०॥

तोमर छंद—अवलोकिता पुनि आप। जुग्गिनिय सौं अनताप।
उचरी बनाय सुबैन। करि के अचल जुग नैन ॥४१॥
अचिरज्ज है यह एक। वसुभूति सहित विवेक।
माधवहि जानतु आहि। पै रहतु बेपरवाहि ॥४२॥
यह सुन सु जुग्गिनि फेरि। उचरी दया दृग हेरि।
अवलोकिते यह भेद। कहनौं नहीं अनखेद ॥४३॥
अरु इते पै सुनि और। निहचै छिपावन ठौर।
मालतिय माधव मद्धि। लरिकई ते बुधि लद्धि ॥४४॥
बढ़ि रही अति ही प्रीति। यातै छिपैबो नीति।
नृप और नंदन अब्ब। ए छले जाइँ सगब्ब ॥४५॥

सवैया

माधव की अब रीति बिलोकति औरन सूँ बतरात घनो है।
सूधे स्वभाव रहै सब सौं यह जानत नाहि कछू सुमनो है।
कोऊ नहीं पहिचानत जो मनमत्थ के तीरन को तपनो है।
लाज दराज भर्‍यौ दरसै सरसै हित काज करै अपनो है ॥४६॥

दोहा—यो सुनि कै अवलोकिता पुनि बोली मुसिकाय।
सुमिरि तुम्हारे बचन तें हे भगवति सुख पाइ ॥४७॥
सचिव भूरिवसु भवन के निकट निकसि तित राह।
माधव सौं मैंने कही मंडित हिए उछाह ॥४८॥

अथ माधव बरनन

तोमर छंद—तन नवल जलधर रंग। अरु रुचिर गोल बरंग।
जुग भृकुटि कुटिल निदान। जनु स्याम काम कमान ॥४९॥
पुनि पलक सोभ निकेत। बर बक्र बरुनि समेत।
नव कमल दल सम नैन। बिषवलित मनु सर मैन ॥५०॥
छिनु लगत चूरत चैन। सुधि बुद्धि सब हरि लैन।
जनु सरद खजन छौन। अति बिमल चपल सुठौन ॥५१॥
श्रुति छियत जिन के छोर। मनमत्थ तीछन जोर।
सित असित अरुन बिसाल। तम बिरह दरन मसाल ॥५२॥
मृदु अमल गोल कपोल। मनु मदन मुकुर अमोल।
अरु नासिका इम ढंग। मुख-सोभ-समुद-तरंग ॥५३॥
पुनि दसनवसन अनूप। निदरै जु दलनि बिधूप।
जब विहँसि के वतराइ। तब को न भाम लुभाइ ॥५४॥
लघु कुंद कलिकनि भाँति। दरसत्ति सित रद पाँति।
नव नूत फल उनहारि। लखिए चिबुक छबिधारि ॥५५॥
अति सुभर गोल सुगीउँ। कमनीयता की सीउँ।
परसै भुजा जुग जानु। उर उच्च साहस थानु ॥५६॥
मृदु उदर नाभि गँभीर। उरु जुग सुथभन भीर।
दरसै जुगल इमि पाइ। लखि जिन्है कंज लजाइ ॥५७॥

विधि ने सुविधि करि नेह । सब रची माधव देह ।
लखिए न जिहि सम और । जग नरनि में सिरमौर ॥५८॥

इमि सिर सुरंग सुपाग । उमग्यौ मनौ अनुराग ।
कलधौत कुंडल कान । जगमगत सोभनिधान ॥५९॥

झोनें झगा विच लाल । झलकै सु विद्रुम भाल ।
केयूर मनिमय बाहु । निरखे मिटै दृगदाहु ॥६०॥

चूरा चटेपत चित्त । मनि मंजु कनिक सहित्त ।
कर कोकनद उनमान । जुत मुद्रिका दुतिवान ॥६१॥

माधव सुसहज सुभाइ । तिहि भवन ढिग ह्वै जाइ ।
बिनु मिस विलोकति नांहि । इत उत समझ मन माँहि ॥६२॥

सवैया

नव बानिक सौं वनि बेपरवाहि विचारनि सो सरसातु रहै ।
ससिनाथ न औरन सों बतरातु लजात कछूक डरातु रहै ।
वसुभूरि प्रधान के मंदिर कूल हिए अनुकूल सिहात रहै ।
नित मालती के हित माधव मित्त मलिंद भयौ मडरात रहै ॥६३॥

तोमर छंद—यह सिप्पिनी की बात । सुनि कामँदा मुसिक्यात ।
उचरी बचन पुनि सार । निरवारि कपट उदार ॥६४॥

दोहा—धाइसुता मालतिय की लवंगिका इहि नाम ।
सदा संग ताके रहे, अंग अंग अभिराम ॥६५॥

सवैया

कंचन के तन भूखन की झलकै दुति झीनें दुकूलनि माँहीं ।
आरसी सो मुखमंडल है दृग देखे लगैं मृग, कंज वृथाँ ही ।
अग सिंगार करै तिहिं को, सुकुमारि कह्यौ कछू टारति नाँही ।
संग रहै यौं लवंगी सखी नित मालती की है मनौ परछाँही ॥६६॥

सोरठा—तिहि लवंगिका मोंहि सबै मालती की दसा ।
कही, सु उचरौं तोहि मन दै सुन अवलोकिते ॥६७॥

अथ मालती वर्नन

छंद बड़ी चतुष्पदी

नव जरतारी सारी में कुंदन रंग, अंग छवि छहरैं।
अरु रस मंडी रहत भवन मैं निस दिन तन सुगंध की लहरें।
बर मृदु कारे मखतूल तार से, बार छवनि कौं परसैं।
अलि अतर डारि नागिनि सी गूँथी बेनी आनंद सरसे ॥६८॥

अति तिमिर पटल सी पाटी महियाँ मुकतिनि माँग सुधारी।
मनु नील गगन के मद्धि पाँति रचि चलत नछत्र सुखारी।
अरु सिंदुर सीसफूल अरु बैनी कनक बंदियाँ भारी।
नव मुकतनि की झुलमुली जेब सी, औरै ओप बिहारी ॥६९॥

पुनि अरधचंद से भाल विमल में चंदन विंदु बतायो।
जनु मिलन चंद को तजि छरछदन धरनीनंदन आयो।
अरु भृकुटी कुटिल सघन अतिकारी चतुर विरंचि सँवारी।
जनु भरिकै अनख जीति त्रिभुवन को काम कमान उतारी ॥७०॥

पुनि बरुनी बक्र सहित झपकारी पलकें यों छबि छलकें।
जनु रेसम के छोरनि सौं बिजना पिय श्रम हरिबौ ललकें।
दृग मृग अरु मीन समद खंजन से अंजन सहित अन्यारे।
लगि विकल करैं अँग अंगनि मानो मनमथ बान बिसारे ॥७१॥

सुभ श्रवननि जटित जवाहर तरिवनि गोल कपोलनि झलकें।
तिय मुख अरविंद निकटि मधुपन की सैनी सी बर अलकें।
तिल फूल तूल कामिन की नासा नथमंडल यौं राजै।
नट पचबान की मनौ कुंडली हित अखंड उपराजै ॥७२॥

मृदु पल्लव से अधरन की रेखा हिरदे करति दरारैं।
लखि दाडिम दसन चमकि विहसनि में सुधि बुधि कौन सँभारैं।
जिहि बानी कौं सुनि कै पिक बीना धुनि को उर में आनें।
अरु जाकी सहज स्वास के सौरभ रहे भँवर मँडराने ॥७३॥

यों नवल नारि मालति की ठोढ़ी लीला सहित सुहाई।
जनु है यह चित मित माधव कौ छुप्यौ छोड़ि अतुराई।
अरु सुभर गोल ग्रीवा मे राजै रेखा तीनि अछीनी।
मनु नरबानी सुरबानी प्राकृत तिन की गिनती कीनी ॥७४॥
तिहि मध्धि कंठ श्री मनिमय मंजुल मुकतनिहार हुमैलै।
जुत ललित कंचुकी बौंने उरजनि छुवति छटनि की रेलैं।
वर बाजूबंद बलित बाला की कनक बेलि सी बाहैं।
लखि जिन्हैं मृनाल कठिन की उपमा को कवि हिए सराहै ॥७५॥
नव टाड छन्न बलया अरु कंकन मनि बंधन में सोहैं।
अति जिनकी जगमग जोति निरखिकै सुर मुनि के मन छोहैं।
कर फूले लाल कमल से कोमल निरखैं लोचन फूले।
अरु चंपकली की उपमा अंगुरिन को कबि हरखि कबूलै ॥७६॥
मनि कनक मूँदरी खूँदै मन कौ मिहदी नखन रचाई।
मनु तिहूँ पुरन की सोभा ब्रिधि नैं तिय के हाथ सजाई।
अरु पेट पान सो त्रिबलि सीढ़ी जनु जोबन आवनवारी।
अति नाभि गँभीर सरित भ्रमरी लखि जापर अनगन वारी ॥७७॥
अरु किंकनि सों अटकी है मानौ निपट लटी कटि ऐसी।
सम पुलिन नितंब दुरे लहिगा मैं उपमा और अनैंसी।
अरु है जुग जंघ प्रताप कनक के रंभा थंभ समानैं।
पुनि गुलफै गोल गूजरी मुरवनि पायजेब धुनि ठानैं ॥७८॥
अति कोमल चरन महावरमंडित नूपुर लसत नवीनैं।
अरु समद मतंग मराल चालि सौं कीने जीति अधीनैं।
सो नवल मालती उझकि झरोखनि दुरि माधवहि निहारै।
उर उमग्यौ प्रेम समुद्र लाज तैं ताकौं नीठि सम्हारै। ७९॥
रति जैसें नवल काम अभिरामैं मन तें छिनु न बिसारै।
तिहि बिध्धि मालती के उर अंतर माधव मीत विहारै।
अरु सिथिल अंग ह्वै जात तनक में मुख सरसै पियराई।
पुनि पुलकित अमल कपोल अमोलनि प्रतिपल लेत जँभाई ॥८०॥

दोहा—हित करि मेरे भवन में लवंगिका नै आइ।
यह सुमालती की दसा मो सौं कही बनाइ ॥८१॥
कामँदानि के बचन ए, सुनि कै चित्त लगाइ।
पुनि बोली अवलोकिता भली भई मुसिकाइ ॥८२॥
कुँवरि मालती नैं लिख्यौ माधव को यह चित्र।
मन परचांवन के लियैं ढावन बिरह चरित्र ॥८३॥
लवंगिका नें आजु सौ, मंदारिकैं बुलाइ।
सब की डीठि बचाइ कै दियौ हिएँ अतुराइ ॥८४॥

मंदारिका दासी बरननं

हरगीत छंद—सब अंग लौंने उरज बौनें बिरह संकट हारिका।
हित कौं बढावति अरु पढावति कोक रस की कारिका।
जिहि मंद हांसी मनहुँ फाँसी इमि सु दासी दारिका।
अरु तिक्ष अक्ष कटाक्ष × × × ॥८५॥

दोहा—यों सुनिके कामंदकी कीनों नैकु बिचार।
फिरि बोली कि भली करी है यह एक प्रकार ॥८६॥
माधव कौ सेवक जु है कलहंसक इहि नाम।
चाहतु सो मंदारिकै लखैं लहतु आ ाम ॥८७॥
यह देहै कलहंस को वह माधव के हाथ।
देहैं चित्र उताल ही मन में गुनि यह गाथ ॥८८॥
मधुभार छंद—यह सुनि बिलासु। अवलोकिता सु।
पुनि सहित चैंन। उच्चरिय बैंन ॥८९॥

हरिगीतिका छंद

मनमत्थ उपबन ओर माधव आजु मैं सु पठाइयौ।
कहिके कि उत्तम तहाँ कौतिक महा मोद मढ़ाइयौ।
सुकुँवारि सचिवकुमारि सुंदर मालती तहाँ आइहै।
ह्वैहै परस्पर दुहूंनि दरसन परम हित सरसाइहै ॥९०॥

अवलोकिता को बचन यह सुनि कामदानि सुहावनी।
स्याबासि! आछो करी तैंनें बात मो मनभावनी।
सौदामिनी मो सिष्षि पहिली सु तैं सुध्धि दिवाइयौ।
इहि खेल में वह हुती चौकस तोहि आजु सुनाइयौ ॥९१॥
यह बात सुनि अवलोकिता पुनि उच्चरी समुहाइकैं।
हे भगवती सौदामिनी सो बड़ी सिध्धिहि पाइकैं।
अब श्री परब्बत पै बिराजति व्रति कपालहि धारिकैं।
संसार के व्यवहार सुख के दिए सकल बिसारिकैं ॥९२॥
यह सुनि सु कामंद फेरि बोली तैं सुनी कित बात है।
सब भेद कहि तजि खेद मोसों सुनै सुखु सरसात है।
पुनि उच्चरी अवलोकिता इहि पुरी निकट मसान है।
चडी कराला नाम है तिहिं थान निपट भयान है ॥९३॥

दोहा—पुनि बोली कामदंकी मै जानति हौं ठीक।
पर्व पर्व हौं जाति हौं पूजा कौं बिधि नीक ॥९४॥
सो चंडी तौ लेति है बिबिधि जीव बलिदान।
महा सिंह सी रहति है तिनि यह कर्यौ बखांन ॥९५॥

छप्पै—उचरी अवलोकिता फेरि सिद्धिनि सौ हित भरि।
बस्यौ एक मजबूत तहाँ अवधूत भेष धरि।
श्री पब्बइ ते आइ नाम अघ्घोरघंट बर।
जटा मुकुट...॥
उद्दंड कुंडला सिष्पिनी ताकी तिहि ढिग साँझ नित।
आवति है अर्चा करन जात तिहीं नग हरषि चित ॥९६॥

सोरठा—ताने सब समझाइ सौदामिन कौ भेद यह।
मो सौं कह्यौ सुनाइ तातें हौं जानति अजू ॥९७॥
यह सुनि के बतरानि पुनि बोली कामंदकी।
सौदांमिन तपखांनि है वासौं सब ही बनै ॥९८॥
कामदांनि की बात यह सुनि पुनि अवलोकिता।
बोली हरषित गात याहि ह्वँई पूरन करौ ॥९९॥

और सुनों चित लाइ तुम सब लाइक भगवती।
माधव को सुखदाइ बालमित्र मकरंद है।।१००।।
मदयंतिका ललाम तिहिं नंदन की बहनि है।
होय बड़ो यह काम ए दोऊ जौ ब्याहिए ।।१०१।।

दोहा—पुनि बोली कामंदकी बुद्धिरच्छिता नाम।
मैं अपनी प्यारी सखी राखी प्रथम ललाम ।।१०२।।
मदयंतिका समीप सो बसति रैनि दिन आप।
निपट निरंतर प्रीति है होत समान अलाप ।।१०३।।

पादकुलक छंद—अवलोकिता कही पुनि बानी।
भली करो भगवति सुखदानी।
माधव या मैं अति सुख लैहै।
मकरंद जु मदयंती पैहै ।।१०४।।
यह सुनि पुनि कामंदिनि हँसि के।
बोली बैन निएन हुलसि के।
बुद्धिरच्छिता सखी पियारी।
मैंने निज राखो तहँ भारी ।।१०५।।
अवलोकिता सुनी पुनि बोली।
कामदिक सौं बुद्धि अमोली।
भगवति प्रथम भली यह कीनी।
तुम तें और कौन परवीनी ।।१०६।।
सुनि कै यो सिद्धिन अतुराई।
बोली अवलोकितै सुनाई।
उठि माधव और मालति देखैं।
यों कहि उठी दुवौ हित लेखैं ।।१०७।।
तहँ कामंदकि लगी विचारनि।
निपुन मालती कला अपारनि।
अरु है अति ही उच्च सुभावनि।
इहाँ प्रगटिवौ बुद्धि प्रभावनि ।।१०८।।

सवैया

मालती के नित जाइ समीप सु जाहर और त्रिया गति नाहीं।
आपनें मंदिर तें पुनि बाहर आइबे की तिहिं तागति नहीं।
श्री ससिनाथ कथा बिनु आन नई बतरानि सों पागति नाहीं।
ताकी लुनाई कहा कहिए रति राई समानहूँ लागति नाहीं ॥१०९॥

दोहा—ताते ह्यां करतव्य है अति दूती कौ काम।
यों कहि पुनि आसिष बचन उचरी बुद्धि ललाम ॥११०॥

कबित्त

नृप और नंदन की बुद्धि छरछंद भरी
ताहि अति मंद करौ धारत जु बीन कौ।
सौमनाथ बरनैं अनिंद रचना कौ फल
सुजस अमंद मिलौ सुबुधि प्रबीन कौ।
लहलही बेलि ज्यों तमालहि प्रफुल्लित ह्वै
ओप अधिकावे लिऐं पुंजन अलीन कौ।
अरु चैत चंद्रिका ज्यों सुंदर सु चंदमुखी
सरसौ अनंद माधौ कुमुद नवीन कौ ॥१११॥

दोहा—कामंदिक अवलोकिता इहिं बिधि सौं बतराइ।
परदा के भीतर गईं उर में हर्ष बढ़ाइ ॥११२॥

इति निष्क्रांतो विष्कम्भकः।

दोहा—परदा ते बाहर तहां आयौ जन कलहंस ।
लिऐ चित्र कौ हाथ में दूतन को अवतंस ॥१॥

सवैया—ऐंठवा फेंटा सजै सिर पै अरु भाल पै चंदन बिंदु बनायो ।
आगिलै बंदन बानै बन्यौ रु बड़ी कटि पै पटुका लपटायो ।
दच्छिन हस्त पै सोटा लसै सुभ माधव के हित सैं अतुरायो ।
चित्र सुलच्छन तच्छन ले तँह सेवक सो कलहंसक आयो ॥२॥

संजुता छंद—कलहंस ने तहँ आइ के ।
यह कह्यौ बैन सुनाय के ।
अब हैं कहा सुभ लच्छनो ।
माधव सुबिधि सु बिचच्छनो ॥३॥
कंदर्प्प दर्प्पहि दरन जो ।
मालती को हिय हरन जो ॥
× × ×
हौं ताहि लखिहौं चाइ कै ॥४॥
यो कहि सभा मधि नच्चि कै ।
सुर तालताननि जच्चि कै ।
थिति भयौ आनँद मच्चि कै ।
अति हांस कौतुक रच्चि के ॥५॥
कहि कै कि ह्याँ उद्यान में ।
थिर ह्वै छिनकु सुखवान मैं ।
प्रभु माधवै पुनि हेरिहौ ।
मन तें कलेस निबेरिहौं ।
फिर नच्चि बहु बिधि ऐंठि कै ।
छिन मैं गयो पुनि बैठि कै ।
तिहि सभा मद्धिहि चातुरी ।
माधवहि देखन आतुरी ॥७॥

सोरठा—फेरि रंग पटु टारि, द्विज आयो मकरंद तहि।
सब जन रहे निहारि, नैननि पलक बिसारि कैं ॥८॥

अथ मकरंद बर्ननं

सवैया—पाग सुरंग सुगंध सनी डुपटा कटि अंबर ओप जगावतु।
अंबुज को निदरै मुख, नैननि खंजन हूँ को गुमान गरावतु।
कंचन के श्रुति कुंडल चारु अखंडित फूल छरीहिं फिरावतु।
माधव को मकरंद सखा तहँ आयौ अनिंद अनंद बढ़ावतु ॥९॥

सोरठा—आय सभा के मध्धि यौं मकरंद सुहावनौ।
उर में आनंद लध्धि बोल्यो बचन पुकारि कै ॥१०॥
मों सौं हित सरसाइ, अबै कही अवलोकिता।
मदन अरन्य सुभाइ केतकि हित माधव गयौ ॥११॥
मैं हूँ अब तिहि थान माधव के ढिग जाइहौं।
यों कहि बुध्धिनिधान नच्चौ पुनि तिहिं सभा में ॥१२॥
करि सो नृत्य उदार इत उत फेरि निहारि कै।
यहि पुनि कियो विचार माधव इत ही आइयो ॥१३॥

सवैया—बैंननि तै न कछू उचरै अरु नैंननि तें पहिचानि भुलाई।
नीठि परै पग, सूकत ओठ, उसासनि की श्रम की सरसाई।
हूक भई कि सुनै पिक कूक न, जांनि अचूक अनंग दुहाई।
माधव के मन में उमड्यो भ्रम कै तन में उमड़ी तरुनाई ॥१४॥

दोहा—लाग्यौ करन बिचार यौं निजु मन में मकरंद।
लख्यौ तिही बिधि रूप सब हिएँ बढ्यौ दुख दंद ॥१५॥
पट उघारि कै सभा मैं आयौ माधव आपु।
पुनि मन सौं लाग्यौ कहन तन मैं बढ़्यौ जु ताप ॥१६॥

सवैया

दोहा—इहि ग्रौसर मकरंद निजु बोलि उठ्यौ हित भाउ ।
अति बिचित्र मो मित्र हे माधव इत कौं आउ ।।१८।।
बचन सुनत मकरंद को माधव इत उत डोलि ।
बोलि उठ्यौ इहिं विधि तहाँ कपट गाँठि कौं खोलि ।।१९।।

सोरठा—हे हितकरि मकरंद, तू कित हो ग्रानंदनिधि ।
यह सुनि तजि छरछंद, माधव सौं बोल्यौ बहुरि ।।२०।।
निपट चंडकर ज्वाल, जगत सीस पर झलमलति ।
इह उद्यान बिसाल मध्धि एक छिनु विरमियौं ।२१।।
यौं कहि दोऊ मित्र, थित भे मनमथ बिपिन में ।
कलहंसक सुविचित्र तानैं देखे दूरि तें ।।२२।।

प्लवंग छंद—इंही विपिन के मध्धि सु माधव सोभई ।
जाहि देखि नर नारिन कौं मन लोभई ।
मालति कौं सुखदानि दृगन दुख टारनो ।
दरसैहौं यह चित्र प्रयोजन पारनो ।।२३।।
कै जब माधव लहै तनक आराम कौ ।
तब दरसैहौं जाइ छोड़ि सब कांम कौं ।

दोहा—माधव सौं मकरंद पुनि बोल्यो मधुरे बैन ।
प्रफुलित इहि कचनार तर बैठो मन सुख दैन ।।२४।।
यो कहि बैठे वृच्छ तर, पुनि बोल्यौ मकरंद ।
माधव तू उद्यांन तें आयौ कछू सदंद ।।२५।।

कबित्त—मुख अरबिदक अनिंद मुरझांनो अरु,
दीरघ उसासनि सों ढंग अंग लटि गयो ।
चक्रत से नैंन बैंन हँसि कैं कढैं न, रैन
सैन की कहा है चैंन गैन हू को छुटि गयो ।
सोमनाथ की सौं पुनि औरौ घनी भाँतिनि सो
काम अभिराम के चरित्रनि में जटि गयो ।
तेरौ मन मित्र, आजु काहु मृगग्रच्छिनि के,
मेरे जानि तीछन कटाच्छनि सों कटि गयो ।।२६।।

सोरठा—यह सुनि बचन लजाइ, सिर नवाइ माधव रह्यौ।
पुनि मकरंद सुभाइ, बोल्यौ मृदु मुसिकाइ कै ॥२७॥

कवित्त—परम उदार करतार सब लोकनि कौ
बिधिहू अबिधि करि निपट खिसांनो है।
हरि की कथा सु हरि कोऊ जग जानतु है
समै बिनु जापै सौमनाथहू रिसानो है।
और नर-किन्नर-अमर-गन कौंनु गनै
जाकी ज्वाल झेलि नाहि सकतु किसानो है।
मेरो बैन मांनो भेद आपनों वखानो मित्र
कौंन रहै स्यांनो पंचबांन कौ निसांनो है ॥२८॥

दोहा—यह सुनि माधव उच्चर्यौ, सुनि प्रीतम मकरंद।
तोसौं क्यौं नहि भाखिहौं अपने उर कौ दंद ॥२९॥
कही वात अवलोकिता, सो मैं उर मै धारि।
मनमथ के उद्यांन में गयौ कलेस निवारि ॥३०॥

अथ मन्मथोद्यान बर्ननं

प्लवंग छंद—सघन दलनि जहँ मंडित हरित रसाल हैं।
जवू श्रीफल बेलिरि फालसे लाल हैं।
दाडिम तूत कपित्थ मधूक बिसाल है।
कटहर वड़हर हरी आमलक जाल हैं ॥३१॥
खिरनी अरु अंजीर बिजौरे सोहनैं।
गोंदी अरु अँकोल महा-मन-मोहनैं।
मिट्ठा निंबू औरु चिरौंजी बृंद है।
नरियर अँविली बकुल खजूर विलद है ॥३२॥
तंदू औ कमरख्ख करौंदा ऐनि है।
चकोतरा कचनारि लवलि सुखदैनि है।
सीताफल जंभीर करहरी और है।
गूलर गन अखरोट ठौर ही ठौर है ॥३३॥

जाइ जाइफल और सुपारी ताल है।
गजमुख पीपरि पुंज अनेक तमाल है।
सीस्यो सँवरि कंचि असोक अनत है।
सिरस सहजनैं निब घने बिलसंत हैं ॥३४॥
चपा कहूँ सकंप कुंडली रूप हैं।
तिही भाँति सौं कहूँ कदंब अनूप है।
रही माधवी लता लपटि वहु ठाम है।
जिनकी सोभा चित्त बढावति काम है ॥३५॥
औरु बेदिका चित्र सँवारी पुज है।
तिहि मडल के रूप वकुल को कुंज है।
औरौ वहु बिधि वृच्छ जहाँ फलदानि हैं।
मिसिलिबंद बिधि किए समझि रहटांनि है ॥३६॥

त्रिभंगी

बल्ली द्रुम डारनि परम सुढारनि बिबिध प्रकारनि लपटानी।
बहुरंगे फूलनि सुभ रस मूलनि करते सूलनि अगवानी।
केकी किलकारे, पिकी पुकारें, भँवर गुँजारे मदभारे।
जनु कहै पँवारे प्रगट उदारे मनमथवारे मतवारे ॥३७॥

दोहा—नवल वकुल प्रफुलित निरखि आलवाल पर जाइ।
कौतिक अवलोकन अरथ मैं वैठौ सुखु पाइ ॥३८॥
बिखरे फूल जु हैं तिन्है वोनि चैन उपजाइ।
लग्यौ बनावन माल मैं मनहरनी मन लाइ ॥३९॥

पादकुलक छंद—रूप सिधु मथि काढ़ी जानौं।
चलती मदनपताका मानौं।
बाल वैस मनि भूषन पहरै।
फहरै तन सुगध की लहरै ॥४०॥
अग अग अंबर वहु रगनि।
सुंदरता की खांनि सुढंगनि।

मनु अवतार लियौ बर बाँनी।
दरसी ऐसी बुद्धि सयानी ॥४१॥

विमल मुकर सो आंनन राजै।
जाकी सोभा लखि ससि लाजै।
अधरनि सुधा स्रवति सी बातनि।
भुज मृनाल तें मृदु सुभ घातनि ॥४२॥

कमल दलनि से नैन अन्यारे।
डोरे अरुन सहज कजरारे।
तिन मैं मिहीं लगायौ अंजन।
खजन - मृग - सफरी - मद - भंजन ॥४३॥

सग सहचरी निपट सयाँनी।
अदब करति आवति अगवांनी।
वोनत फूल लाड़िली काजै।
हित अनंत उर में उपराजै ॥४४॥

तिहीं वकुल तरुवर तट सगरी।
आईं चली रूप-गुन-अगरी।
तिन के मध्धि सु वह सुकुमारी।
दमकति जनु दामिनि दुति भारी ॥४५॥

मै पूरब पुन्यन तें दरसी।
उर अरु दृगनि सुधा सी बरसी।
बिनती वह बिधि करैं सहेली।
तब कछु काज करै अलबेली ॥४६॥

ललित कपोलनि झलकि सिताई।
ससि, गजरद की दुति निंदराई।
चुबक लोह सटाई जैसें।
ऐंचतु मो हिय खैंच्यौ तैसें ॥४७॥

विनां हेतु मो कौं दुख बाढ्यौ ।
तोसौं साँचु बचन मैं काढ्यौ ।
पै सुभ असुभ दुवौ जग मांही ।
करति भावई कछु वसु नाही ।।४८।।

सोरठा—सुनि माधव कौ भाउ, पुनि बोल्यौ मकरद यौं ।
चित्त ठिकानैं लाउ, बिनु कारन कछु होतु नहिं ।।४९।।

सवैया—अतर के पुनि कोउक हेतु सु काज बिगारि सँवारत केते ।
ऊपर भेदनि जांनि परैं जिनके अब तोहि बतावतु तेते ।
फूलत है ससिनाथ रतोपल भानु उदोत प्रभात भए ते ।
चद्रमनी अरु चद उभौ ! लखि नीर वहै सुखु भीर समेते ।।५०।।

सोरठा—यातैं आगैं और, कहा भई सो भाखियै ।
यह सुनि द्विजसिरमौर, माधव बोल्यौ मधुर पुनि ।।५१।।

हरिगीतिका छद

तिहि सग सखियनि हित परखियनि भृकुटि कुटिल नचाइकै ।
मनमथक लासनि भरि हुलासनि अमृतमय मुसिक्याइ कै ।
पहिचांनि कछु उर आंनि अंतर एकतंत रचाइ कैं ।
करि डीठि तिरछी मनहुँ बरछी दियौ मोहि बताइ कैं ।।५२।।

कर कमल तालनि हित बिसालनि छाइ कै ।
नच्चिय हरखति इत निरखति चित करिखति गाइ कैं ।
भूषन सुढंगनि बजत अगनि दई धूम मचाइ कै
परसैं कपोलनि परम गोलनि अलक डोलनि आइ कै ।।५३।।

तोकौं वधाई बहु सुहाई कही ताहि सुनाइ कै ।
किहुँ कौ पियारौ द्रिगनि तारौ छबि उदारौ काइकै ।
संतरु असतैं तजि इकतैं रितु बसंत मनाइ कैं ।
सजि कै बिवेकै आपु एकै थिर सटे कै चाइ कैं ।।५४।।

इक अंगुली सेंमुहाइ मो तन दाइ कै लचकाइ कैं ।
मेरी रु वाकी करि चलाकी दई दीठि मिलाइकैं ।

वतरानि माधव मित्र को यह सुनत चित्त थराइ कैं।
मकरंद तजि छरछद समझ्यौ प्रथम लगन वराइ कैं ॥५५॥

दोहा—कलहंसक वोल्यौ तहाँ, विनु पूछै अतुराइ।
कैसी सुंदरि त्रिय कथा होति श्रवनु सुखदाइ ॥५६॥
फिरि वोल्यौ मकरंद कहि यातै आगै मित्र।
लाग्यौ पुनि माधव कहन निरख्यौ जु है चरित्र ॥५७॥

कवित्त—पुलकनि अंग रंग औरै भयो आँनन को
जांनि परी दुरी पंचबांन की अभितई।
दरसाँनैं नैन अधखिले अरबिदन से
पहिलै हुती सो धुनि बैननि की रितई।
सोमनाथ मित्र वाकी गति के चरित्रन कौं
वरनि सकौं न घरी बरष सी बितई।
चलतउ ताकै वह वेर वेर मेरी ओर
चोरि चितै चितई सनेह रीति चितई ॥५८॥

दोहा—वानैं विविधि कटाच्छि करि मनमथ कियौ निहाल।
अरु कोनौं मेरो हियो कैऊ ठौर दुसाल ॥५९॥
अरु वाही कौ ध्यान करि ठिक अपनौं मन राखि।
मैं मु मरू करिकै रची वकुल माल अभिलाखि ॥६०॥

सोरठा—खोजति भीर मझार इतने में सो ससिसुखी।
ह्वै सिंधुरि असवार पंथहि सोभा देति हुव ॥६१॥

पादकुलक छंद—हथिनी चढ़ि वह जवै सिधारी।
तव मुख मोरि सु फेरि निहारी।
गोल बक्त्र पकज अनुहारी।
लस्यौ वदन ताकौ छवि धारी ॥६२॥
अमृत और बिष सने कटाछनि।
खिनि डारचौ मेरौ हिय ता छिन।
तातै और दसा सुनि मेरी।
प्राननि परी प्रेम की वेरी ॥६३॥

कोऊ बढ़्यौ बिकार उदारौ।
मोपै कह्यौ न जातु सु भारौ।
गयौ बिबेक अयानप सरस्यौ।
मैंने प्रथम न कबहूँ परस्यौ ॥६४॥
जडता करै दाह उपजावै।
हिम हिमकर नहि ताहि बुझावै॥
धरी रहति है वस्तु जु आगै।
पहिचानतु न तिन्है हित पागै ॥६५॥
करि अभ्यास जु सीखी बातै।
भूलि गयौ ते ज्ञान बिलातै॥
भ्रमतु रहै मन निहचौ भूलें।
उर मैं उठति अनूठी हूलें ॥६६॥

दोहा—अपने मन तें ज्ते मैं बोलि उठ्यौ कलहंस।
ऐसौ किनि हियरा हरचौ रसिकनि को अवतंस ॥६७॥
पै यह ह्वै है मालती जाके लखत प्रमान।
जाके चूरत चैन को पंचबान के बाँन ॥६८॥

सोरठा—मकरदहु मन मध्धि कहन लग्यौ तक्षन तहाँ।
सरसो मदन बिरुध्ध याके उर मैं निपट ही ॥६९॥
मनै करौं इहि भाँति, अपनै प्यारे मित्र कौं।
भई और ही कांति, याकी तौ इहि खेल मैं ॥७०॥
कै याके मन मोह, मति सरसावौ पंचसर।
घन विकार कौ छोह, जिनि उर कौं मैलौ करो ॥७१॥
पै ए दोऊ बात निहचै याहि विरत्थ है।
नव जोबन गुन गात, प्रतिपल मनमथ बाढ़ई ॥७२॥

दोहा—माधव सौं पुनि प्रगट करि, कहन लग्यौ मकरंद।
कुल अरु ताकौ नाम तू जाँनतु है अनदद ॥७३॥
यहे सुनि कै मकरंद सौं बोल्यौ माधव आप।
अरे मित्र सुनि चित्त दै, मै जो करतु अलाप ॥७४॥

छप्पै—चलिबे कौ वह बाल जबै हथिनी पै चढ्ढिय।
तब त्रियपुंजनि छंडि एक उनमै तें कढ्ढिय ॥
नवल बकुल के फूल बीनिबे के मिस मढ्ढिय।
मंद मद मो निकट आनि कैं भई सु ठढ्ढिय ॥
पुनि मिसु लहि मनमथ्थ कौ मोकौं हरखि प्रनाम करि।
यह बचन अदव सौं उच्चरी अति ही साहस चित्त धरि ॥७५॥
हे बडभागी तुहूँ फूलमाला सुभ रच्चिय।
सो मैंने अवदात बात निजु उर मैं जच्चिय ॥
निपट चतुर है चित्त हमारे प्रभु की वच्चिय।
कौतिक निरखि नचाउ नवल बुधि बिधि नैं सच्चिय ॥
तुव सब्र सुघराई सफल अब होउ अनंद बढाइ कैं।
यह ताके सुंदर कंठ मैं सोभा पावहि जाइकैं ॥७६॥
पुनि बोल्यौ मकरंद, चतुर है अति सो कामिनि।
उचर्यौ माधव फेरि सुनहु बातैं अभिरामिनि ॥
मेरे बिनुही कहै भेद उनि और सुनाइय।
है जु भूरिवसु सचिव तासु नंदिनि छबि छाइय ॥
तिहि नाम मालती जानिऐ धाइबहनि हौं तास की।
मोसौं लवंगिका कहत है, तुम सौं कथा प्रकास की ॥७७॥
दोहा—मो सों नित प्रति मालती, करति निपट ही प्रीति।
मैं हूँ अंतर करति नहि, यौं बढ़ि रही प्रतीति ॥७८॥
प्लवंग छंद—कलहंसक पुनि बोल्यौ सुखु सरसाइ कै।
लखौ मालती ठीक वियोग बहाइ कै ॥
यह मनमत्थ बिलास उदार प्रगट्टियौ।
जीते हम निरधार महा जस जट्टियौ ॥७९॥
पुनि बोल्यौ मकरंद भली हुव बात है।
भूरिबित्त की कुँवरि जु वह मृदु गातु है ॥
मालति मालति कहति हुती कामंदकी।
है यह साँची बात परम आनंद की ॥८०॥

पै नंदन के हेत ताहि नृप जाँचई।
निजु मंत्री पै नित्त विनोदनि राँचई॥
यह जग मैं हम सुनी वात परकास है।
है ऐसी बिधि रची जु सहित हुलास है॥८१॥
माधव बोल्यो फेरि सुनौ मकरद जू।
मैं लवंगिकै माल समेति अनंद जू॥
निजु कंठहि तैं छिप्र दई सु उतारि कै।
कछू अनमिली बनी प्रिया हिति हारि कै॥८२॥
बकुल सुमन की माल सु कर मैं धारि कै।
अति ही भई प्रसन्न कलेस विसारि कैं॥
कौतिक गयौ निराइ गईं सब नागरी।
जोबन रूप सुभाइ गुननि की आगरी॥८३॥

मुक्तादाम छंद—गयो पुनि औरहु लोग सुभाइ।
चलो इत कौं तब हौं अकुलाइ॥
चलौं कितहूँ किनहूँ पग जाइ।
सनेह बढ्यौ सब देह कंपाइ॥८४॥
चहौं कुछ और कह्यौ मुख वैन।
कढ़ै कछु और बढाइ कुचैन॥
सुनौ समझौ नहिं और सु बात।
समोइ रह्यौ बिष सों सब गात॥८५॥
सुहाइ न कोकिल की किलकार।
पलास प्रसून मनौ सुअँगार॥
सुगधित सीतल मंद समीर।
करैं कँकरी सम लागि सरीर॥८६॥
नही पुनि नैनन नीद पत्याइ।
न भोजन कौं मन होत अघाइ॥
गई पसुरी चढि लेत उसास।
प्रिया मुख देखन दृग्ग पियास॥८७॥

रई वर तिष्ष चितौंनि बनाइ ।
मथ्यौ मन को मनमत्थ छुहाइ ॥
गयो टरि साहस लाज सहित्त ।
रुचै नहि अंबर भूषन मित्त ॥८८॥
कहा करियै कहि तू उपचार ।
मिले बिनु रचक नाहि करार ॥
उठ्यौ वह बारनि खाय पछार ।
फटै हिरदौ किनि पूरि दरार ॥८९॥
सदा बिहरै सुप्रिया घटि मध्धि ।
तऊ भटकै मन मोहि बिरध्धि ॥
न जानि पर्‌यो यह मों कहँ भेद ।
इत्तौ बढिहै उर अंतर खेद ॥९०॥

काव्य छंद—सुनि माधव की बात, फेरि मकरंद उचार्‌यो ।
मालति दरसन तोहि भलो है मैं निरधार्‌यौ ॥
ताके तैनें कही कपोलनि मध्धि सिताई ।
ताते वाके चित्त प्रीति निहचै ठहराई ॥९१॥
तौ कौ देख्यो कहाँ मालती ने, हौं लाग्यो ।
औरे ऐसो प्रथम किधौं चित हित सौं पाग्यो ॥
पै ऐसी बड़भाग सीलवंती सुकुमारी ।
नही लगावैं नैन बात हम सत्य बिचारी ॥९२॥
है तोही सो नेह जु तैं यह कही कहानी ।
करि नैननि की सैन जु ताकी सखी सिहानी ॥
काहू को प्रिय इहौ चित्त कहि प्रगट जताई ।
अरु लवंगिका कही सज्जि कैं पुनि चतुराई ॥९३॥
इतने में कलहंस सरकि अति ही ढिग आयो ।
माधव अरु मकरंद तिन्हें सो चित्र दिखायो ॥
तब बोल्यो मकरंद अरे कलहंसक लीने ।
माधव को यह चित्र लिख्यो ज्यों को त्यों कीने ॥९४॥

पुनि बोल्यो कलहस हियौ जाने हरि लीनौ।
ताही नै यह चित्र लिख्यौ मैं प्रगट सु कीनौ ॥
पुनि उच्चर्यौ मकरद, कहा मालतिय बनायौ।
पुनि बोल्यौ कलहस कहा मैं झूठ सुनायौ ॥९५॥

अरु माधव ने कही मित्र मकरंद सुहाए।
तेरे सत्य वितर्क आनि वेई ठहराए ॥
पुनि उच्चर्यौ मकरंद जु रे कलहंसक मेरे।
सत्य भाखि किहिं भाँति हथ्थ आयो यह तेरे ॥९६॥

फेरि कही कलहस दारिका ने मुहिँ दीनौ।
लवंगिका नै दियौ दारिका को रँग भीनौ ॥
ऐसे मेरे पास चित्र आयो यह रूरौ।
मैंने तुम कौं दियो सज्जि सेवक प्रन पूरौ ॥९७॥

दोहा—पुनि बोल्यो मकरद यौं, कहि कलहंस उदार।
कहा कह्यौ मंदारिका, चेरी नें तिहिं वार ॥९८॥

माधव के या चित्र के लिखिबे को सु अरत्थ।
पुनि बोल्यो कलहस यौं लहि कै बुधि समरत्थ ॥९९॥

बिनु देखे न रह्यो परचौ ताते परम विचित्र।
कुँवरि मालती ने लिख्यौ माधव को यह चित्र ॥१००॥

पुनि बोल्यो मकरंद, सुनि माधव मेरे मित्र।
सुचितौ रहि ह्वैहै सफल तेरो प्रेमचरित्र ॥१०१॥

सोरठा—तिहि हित तू ललचाइ, वहू तोहि चाहति हियो।
विधि अरु मदन सहाइ, मिलिबे में ससय नही ॥१०२॥

तुम विकार कौ हेतु, लखिबे लाइक बाल सो।
तू चित मै लहि चेतु, माधव ढिग लिखि मालती ॥१०३॥

अपनें मन कौं बेरि, मानि कह्यौ मकरद को।
माधव बोल्यौ फेरि, भलो चित्र मैं लिखतु हौं ॥१०४॥

कवित्त—भरि भरि आवतु उमड़ि आँसू नैननि मै
औरई कढ़ै जु कछू बैननि कौं उचरौं।
छिन मैं निपट जडताई परगट होति
जऊ उतसाहनि सौं साहस हिए धरौं।
सोमनाथ की सौं मित्र परम पवित्र तेरे
बचन बिचित्रनि ते मै न कबहूँ टरौं।
मन उरझानौं नेह नदी की तरंगनि मैं
थरहरै अंग इनि ढगनि कहा करौं ॥१०५॥

पद्धरी छंद—मैं तऊ कष्ट करि तोहि मित्र।
दैहौं दिखाइ लिखि तासु चित्र॥
माधव इतेक कहि चित्र रच्चि।
दरसाइ दियौ हित सौं परच्चि ॥१०६॥

मकरंद मालतिय चित्र देखि।
माधव सौं बोल्यौ बुधि बिसेखि॥
यह प्रथम भयौ तो सों मिलाप।
इक चित्र मध्धि अब तजहु ताप ॥१०७॥

हे माधव सुंदर गुन त्रिसाल।
तै लिख्यौ चित्र अति ही उताल॥
अरु लिख्यौ कवित हू चित्र पास।
जिहि पढ़त चित्त सरसै हुलास ॥१०८॥

सवैया

चदन चंद्रक चंद अनिद वसत समाजनि को अधिकाई।
और हजारनि सुंदर वस्त्र सु है जग कौं सुखदानि महाई।
मोकहँ श्री ससिनाथ को सौंह नहीं इहि मध्धि रतीक भुठाई।
तक्षिन दाँनि अनिद भई मुखचद को तेरी अमंद जुन्हाई ॥१०९॥

दोहा—अब आई मंदारिका दासी पट कौं टारि।
'अरे अरे कलहसका' ऐसें कह्यौ पुकारि। ११०॥

तिहि माधव मकरद कौं देखत चित्त लजाइ।
मन मै चितो ए दुवौ कित ह्यॉ थित सुखदाइ ॥१११॥
निकट आय पुनि दुहुँन कौं कीनौं हरषि प्रनाम।
तब दोऊ मित्रनि कह्यौ आगैं आउ सु भॉम ॥११२॥
सुनि कै यह मंदारिका बैठो परम विचित्र।
पुनि बोली कलहंस सौं अरे लाव उह चित्र ॥११३॥
सुनि कै यौं कलहंस नै उन पैं तैं लै ताहि।
दियौ चित्र अतुराइ कै सुखसमुद्र अवगाहि ॥११४॥
चित्र निरखि मंदारिका बोली रे कलहस।
किहिं निमित्त कौंनै लिखी मालति सिवी असस ॥११५॥

पद्धरी छद

उच्चरचौ फेरि कलहंस दास। दारिका बात मो सुनि प्रकास ॥
मालती लिख्यौ हो जिहिं निमित्त। तानै सु लिख्यौ है यह उचित्त॥११६॥
यह सुनी दारिका ह्वै सचैन। उचरी पियूख सगबगै वैन ॥
दोऊ सुरूप-गुन-हित समान। विधि सफल भयौ लखि जस निधॉन॥११७॥
मकरंद फेरि बोल्यौ सुभाइ। दारिके बात कहि सत्य छाड ॥
कलहंस जु तेरौ परम मित्र। सो सॉंचु कहतु है यह चरित्र ॥११८॥
यह सुनि सु दारिका सलज हेरि। है सॉंचु बात हँसि कही फेरि ॥
मकरंद बहुरि उचरचौ प्रवीन। मालतीय नै सु माधव नवीन ॥११९॥
हो देख्यौ पहलै कौन ठॉम। किहिं विधि सौं मडित चित्तकाम ॥
फिरि कही दारिका नै बनाइ। मो सौं लवंगिका दिय जताइ ॥१२०॥
मालतिय झरोखनि ह्वै सुनित्त। माधव कौं निरखति है सहित्त॥१२१॥
सोरठा—मकरद सु सउछाह, माधव सौं बोल्यौ बहुरि।
सचिव भवन की राह, निहचै हम तुम चलहिगे ॥१२२॥
यौं कहि भए तयार, चलिबे कौ दोऊ जनै।
तब दारिका उदार हाथ जोरिकै उच्चरिय ॥१२३॥
अज्ञा दीजै मोहि यह चरित्र सव जाइकै।
लवंगिका कौं टोहि कहौ प्रगट समझाइ कै ॥१२४॥

यह सुनिकै मकरंद बोल्यौ बहुरि उताल यौं।
अपनौं काज अदंद साधि समय पै दारिकै ॥१२५॥
लै सो चित्र उताल, गई दारिका तहाँतै।
तव बोल्यौ हितपाल, माधव सौं मकरंद यौं ॥१२६॥

दोहा—देव चंडकर दिपतु है सज्जे किरन हजार।
भये द्वै पहर मित्र अव चलिए भवन उदार ॥१२७॥
यौं कहि कै इत उत फिरे नृत्य समाज मझार।
पुनि बोल्यौ माधव तहो मैं यो मानतु यार ॥१२८॥
स्वेद नीर नवतियन के कुंकुम चित्र कपोल।
अवै बिगारतु होइगौ रचे जु अलिन अमोल ॥१२९॥

सवैया

लै पहिलैं घनसार के सारहि फेरि हजारनि बेलि चपेटै।
ए ससिनाथ औ कुंदन के अरबिंदन के मकरंद समेटै।
चदन सों छिरके बहुर्‌यौ तिहिं सुंदरि के उर ऊपर लेटै।
चाहतु यौ मधुराइ समीर सु आइ कै मेरे सरीरहि भेटै। १३०॥
ए सुनिकैं वतरानि अधीन हिये मकरंद बिचारनि लाग्यौ।
मोहि बड़ो यह खेद भयो निरवारि सकै अब को हित खाग्यौ।
माधव के सुकुमार सरीरहि त्रासतु काम जु यों हठ जाग्यौ।
कूर कठोर महावतु ज्यौं इभ छौनहि अंकुस लै रिस पाग्यौ ॥१३१॥

दोहा—तातै हम को भगवती कामंदकी सरन्य।
वही कलेसहि काटिहै वा बिन और न धन्य ॥१३२॥
माधव यौ मकरद की सुनि कै वात प्रकास।
मनही मै लाग्यौ कहन बढे मदन कौ त्रास ॥१३३॥

सवैया

नागरि डीठि परी जब तै तब तैं सुधि एक भई तिहियाँ की।
वा बिनु नांहि दुकूल रचै ससिनाथ कहा कहौं और तहाँ की।
जानतु मेरो कठोर हियौ जु कियौ सरसाल मनोज नै झाँकी।
नैननि मै, घट मै अटकी खटकै वह वाकी बिलोकनि बाँकी ॥१३४॥

सोरठा—यौं मन मद्धि विचारि, माधव पुनि मकरंद सौं
बोल्यौ वचन पुकारि, बीततु है जो दुसह दुखु ॥१३५॥

कवित्त—भूले भूख प्यास बास भूषन अवास अरु
लुवें सम दीरघ उसास उमड़ी रहै ।
सोमनाथ कहै और बरनौं कहाँ लौं मित्र
चित्र उनहारि चहूँ ओरनि गड़ी रहै ।
घरी घरी प्रतिपल यह गति मेरी तऊ
दरस उपाइन की चिंता घुमड़ी रहै ।
कुंदन के रंग मृदु अंग तिहिं सुंदरि की
नैननि के अदर निकाई रमड़ी रहै ॥१३६॥

दोहा—एक ओर सब सिमटि के बैठे सभा मझार ।
और स्वांग की तहँ भई आंवदनी निरधार ॥१३७॥

इतो प्रथम ही अंक यह बकुल वीथिका नाम ।
दरसन दुहूँ दुहूँन को जहाँ भयो अभिराम ॥१३८॥

हरिगीत छंद

बदनेस नंद प्रताप जाकौ तेज दिनमनि तूल है ।
अब करन सो ताकैं बहादुर कुँवर आनँदमूल है ।
तिहिं हित कवी ससिनाथ नै रच्यौ विचारि निसंक है ।
माधवविनोद सुग्रंथ को यह भयौ प्रथमहि अंक है ॥१३९॥

इति श्री कवि सोमनाथ विरचिते माधवविनोदनाटके प्रथमांकः ॥१॥

द्वितीयांक

दोहा—पुनि परदा कौ टारि तहँ आईं चेरी दोइ।
नृत्य कियौ तिनकौ निरखि रहे सबै सुख भोइ ॥१॥

पादकुलक छंद

दासी प्रथम सु यौं बतरानी। हे सखि तू है निपट सयानी।
तिहिं संगीत भवन के कौनै। अवलोकिता हुती हित लौंनै ॥२॥
तासौं कहा कहति ही बातनि। मो सौं कहि तिहिं सगरी घातनि।
यह सुनि के सु दूसरी बोली। हे सहचरि सुनि बात अमोली ॥३॥
अवलोकिता कही यह मोसौं। सो अब निहचै भाखौं तोसौं।
माधव कौ जु मित्र मकरंदा। तानै आइ छोड़ि छरछंदा ॥४॥
कामंदक सों मनमथ बन कौ। सब बिरंतत कह्यौ हित पन कौ।
यह सुनि पहिलो बहुरि उचारी। आगै फेरि कहा कहि प्यारी ॥५॥
पुनि दूजी बोली हित भरिकै। सुनि सखि, कामंदकि नै अरिकै।
हो अब अवलोकिता पठाई। लखन मालती कौं छबि छाई ॥ ६ ॥
अवलोकिता कही मो आगैं। लवंगिका जुत हित सों पागैं।
है इकंत सो सचिव कुमारी। नाम मालता अति सुकुमारी ॥ ७ ॥
बोली बहुरचौ पहिली चेरी। दूजी सौं करि भौंह तरेरी।
वह तौ फूल बीनिबे काजै। रही हुती पाछे हित साजै ॥ ८ ॥
लवंगिका जु कही अब आई। मनमथ के उपवन तै धाई।
यह सुनि दूजी नैं पुनि भाख्यौ। मैंने कहा झूठ अभिलाख्यौ ॥ ९ ॥
माधव कौ सु चित्र कर लैकैं। मनैं और सखियनि कौं कैकैं।
लवंगिका हि सग अपनाएँ। गई अटा ऊपर छवि छाएँ ॥ १० ॥
पुनि पहिलो बोली हित भीनो। हे सखि सुनि निहचै हित कीनो।
× × ×। लियौ जु कर माधव के चित्तौ ॥११॥
दुतिय उचारी लै पुनि साँसैं। वाकौ सुख्खु कहा सुप्रकासैं।
अलैं आजु माधव जिनि देख्यौ। मनमथ बन में रूप बिसेख्यौ ॥१२॥

और बात अब तोहि सुनाऊँ। नृप नैं नंदन हित श्रीमांऊँ।
मंत्री पे सु मालती जाँची। तब यौं कही सचिव नैं साँची ॥१३॥
निजु पुत्री के प्रभु नरनाइक। या की कहा कहतु सुखुदाइक।
तातें बड़ो साल यह ह्वै है। मालति के जी तब सुख थैहैं ॥१४॥
फिरि पहलो बोली हुलसांनी। कामदकि सिद्धिनि हम जांनी।
कछू सिद्धिता सो दरसैहै। अपनौं भायौ सुख सरसैहै ॥१५॥
पुनि बोलो दूजी गहि गब्बैं। हमैं कहा इनि बातनि अब्बैं।
यों कहि दोऊ नांच्चि सभा तें। निकसि गईं परदा मैं ह्वांतें ॥१६॥

दोंहा—कथा जु पहिले अंक की कहत दूसरी मध्धि।
ताहि प्रबेसक कहत है सुकबि सबै हित लध्धि ॥ १७ ॥
सोरठा—इतने मैं पटु टारि, मालति और लवंगिका।
आईं औसर धारि, रंगभूमि मैं चाइ सों ॥ १८ ॥

काव्य छंद—नच्ची सभा मझार मालती सहित लंवगिय।
मनिगन भूषन अंग बसन सज्जै वहु रंगिय ॥
लवंगिका सौं फेरि मालती पूछन लग्गिय।
मनमथ बन की बात चित्त मैं प्रेम उमंगिय ॥ १९ ॥
लवंगिका उच्चरिय फेरि मालति सों तक्षन।
हौं वाके ढिग गई हुती वह परम बिचक्षन।
बकुल माल यह मोहि दई हिय हरष वढ़ाएं।
इतनो कहि सो दई मालती को हित छाएं ॥२०॥

त्रिभंगी छंद

माधव निजु मन की मनमथ बन की बकुल सुमन को माल रची।
सो प्रगट ढिठाई, करि अतुराई, सहचरि लाई, सोभ सची।
मालति कौ दीनी ह्वै सुख भीनी, निपट प्रबीनी, जनु बानी।
तिहि लखत सयानी, सौरभ सानी, मृदु मुसक्यानी, थहरानी ॥२१॥
दोहा—बकुल माल कर माँझ लै मालति सुख सो हेरि।
बनो अमिल इक ओर क्यों, ऐसे उचरी फेरि ॥२२॥

बोली वहुरि लवंगिका मालति सौं लहि धीर।
इहिं रचना में रावरी है निहचै तकसीर ॥२३॥
यह सुनि के पुनि मालती बोली रस में न्हाइ।
कैसे मो तकसीर है सो तू कहि समझाइ ॥२४॥
सोरठा—ए मालति के बैंन सुनि के हरखि लवंगिका।
कहन लगी सुख दैन, उत्तर ताही बात को ॥२५॥

सवैया

अंगनि में थहरानि छई अरु नैनन में प्रगटो रंगु लाल है।
बार अनेक सियौ अँगुरीन भयौ तिहिं ठौर ही और हवाल है।
भांवती तैंही बिगारी हुती यह मौरसिरी के प्रसून की माल है।
तू चितई तिरछौंही चितौनि सु वाके भई वरछी सी दुसाल है ॥२६॥
तोमर छंद—उचरी सु मालति फेरि। उर तें कलेस निबेरि।
सखि सांच भाषत तोहि। तू निपट प्यारी मोहि ॥२७॥
मन राखि जानति ठीक। सु लवंगिका बिधि नीक।
यह सुनि लवंगिय आप। उचरी सिरावति ताप ॥२८॥
मैं कहति सांचु सुभाइ। जानौं कहा समझाइ।
पै एक निहचै बात। सुनि मालती मृदुगात ॥२९॥

सवैया

मंद समीर लगे बिकसे अरबिंदन को दुति छावनवारे।
खंजन मीन नवीन मृगीन के पुंजनि के मद भंजनवारे।
ते द्रिग तैंनें बिलोकन को बकुलावलि के मिस ही उत डारे।
भौंह नची के कटच्छन तच्छन वाकौं भए जनु वान विसारे ॥३०॥
यौं सुनि मालती बात सवै सु लवंगिय सो उचरी भरि अंकहि।
हे सखि जाकौ बिलोकत आनन कीजिऐ कैसैं समान मयंकहि।
जा सौं बियोग भए ससिनाथ सहै पुनि कौन मनोज अतंकहि।
री सुख सोइ सकै परजंकहि को करिकै सुधि वा अकलंकहि ॥३१॥
सोरठा—तैं हूं नाच्यौ नाच, तिहिं औसर पै लाडिली।
मै भाखति हौं सांच, चाहै सो तू किनि कहै ॥३२॥

यह सुनि कैं बतरानि, ह्वै सलज्ज सो मालती।
लवंगिकै ढिग आनि, कहन लगी फिरि और कहि ॥३३॥
लवगिका हुलसाइ, बैन वहुरि यों उच्चरिय।
कौतिक गयौ तिराइ, हौं ह्वाँ तैं पुनि आइकै ॥३४॥
गई दारिका गेह, ता पैं तैं लै चित्र वह।
उर में भरे सनेह तो पै आई चपल गति ॥३५॥

काव्य छंद—फिरि बोली मालती दारिकहि क्यौं तैं दीनौं।
मेरौ लिख्यौ सुचित्र निपट ही रंगनि भीनौं।
पुनि लवंगिका कही सुनौ मैं दीनौं याते।
माधव कौ कलहस दास है हितू सिहातें ॥३६॥
मंदारिय कौ मित्र दारिका ताहि दिखैहै।
वह अपनैं उर मध्धि निपट यासौं सुखु पैहै।
यह सुनि कैं मन मध्धि मालती नै निरधार्‌यौ।
अपने प्रभु को जाइ दिखैहै सो प्रन पारचौ ॥३७॥
फिरि बोली मालती प्रगट करि सुदर बानी।
अब तू चाहति कहा सहचरी कहि सुखदानी।
लवंगिका यह सुनत चित्र मालतिहि दिखायौ।
ताहि निरखि सुकुमारि उच्चरिय हिय भरि आयौ ॥३८॥
बड़ौ अचंभौ एह हृदय मेरौ नहि मांनौं।
अजहूँ लौं सुनि सखी बचन मै साँचु बखांनौं।
कछु अच्छरहू लिखे लगी पुनि तिन कौं बांचन।
पंकज दल से नैन लगे रंगन मै राचन ॥३९॥

सवैया—चंदन चंद्रक चंद अनिद वसंत सभाजनि की अधिकाई।
और हजारनि सुंदर बस्तु सु है जग कौं सुखदांनि महाई।
मौ कहैं श्री ससिनाथ की सौंह नही इहिं मध्धि रतीक झुठाई।
तच्छिन दांनि अनंद मई मुख चंद की तेरी अमंद जुन्हाई॥४०॥

सोरठा—परगट बाँचि कवित्त, पाइ परम आनंद कौ।
लिए हाथ मैं चित्र ता सौं यौं लागी कहन ॥ ४१ ॥

सवैया

है लिखिबे की तुम्हें चतुराई रयो वैननि हूँ मैं भरी मधुराई।
तक्षन ही सुखु होतु तुम्है तकि पाछैं मनों उर ज्वाल जराई।
ए ससिनाथ न देख्यौ तुम्है जिनि सौ नवला क्यौ मही पर आई।
जानै बिलोकि लिए कितहूँ धिकु ताहि न जो बिन मोल बिकाई॥४२॥

दोहा—इतनों कहि फरके अधर, ढरके अश्रु अपार।
भीजे अंचल कचुकी, रंच न रह्यौ करार॥ ४३ ॥
बोली बहुरि लवंगिका, उर मैं प्रेम बहोरि।
धीरज तोहि न मालती, अजहूँ लौं दुख तोरि॥ ४४ ॥
बहुरि उचारी मालती, कैसें धीरज नाँहि।
उचरी फेरि लवंगिका सुनि समझो मन माँहि॥ ४५ ॥
मालति जिहि हित तू लखी मल्ली मिंडी समान।
ताहू कौ जीवौ दुलभ, लगे मनस्मथ बांन॥ ४६ ॥
बोली बहुर्यो मालती, साहस हिए बढ़ाइ।
अब तो वह जीवतु रहौ, संकट दूरि बहाइ॥ ४७ ॥

सोरठा—मोकौ तों पुनि दूरि, समाधान सखि जगत में।
मैं जु कहति हित पूरि, सुनि ताकौं चितु लाइकैं॥ ४८ ॥

सवैया

जुर जीरन ज्यौं पजरावतु अंगनि को इहिं पीरहि पाइ सकै।
उर मैं अनुराग हुतासन सो दहके सु न मेह बुझाइ सकै।
ससिनाथ कहा कहिए वह बैननि नैननि नींद न आइ सकै।
सजनी सुनि, तात न मात तुहूँ पुनि मोहि न क्योंहूँ बचाइ सकै॥४९॥
मोंहन मूरति नीरज नैन मनौ फिरि मैन सरीर धर्यौ है।
डीठि पर्यो जब ते तब तें सु उसासनि जातु हियौ रगर्यो है।
और कहा कहिए ससिनाथ, चहै अब प्रेम दुर्यौ उघर्यौ है।
कोरि भुजंगनि कौ निदरै अँग अंगनि यों विप सो बगर्यौ है॥५०॥

सोरठा—बहुरि लवगिय वैन, उचरी सचित्रकुमारि सों।
या मैं संसय है न, तू जु कहतु अकुलाइ कै॥५१॥

सज्जन के जु मिलाप, परगट तौ सुखु देत है।
बिछुरि बढ़ावै ताप, ते जानैं अनुभव जिन्है ॥५२॥

सवैया

तुम ओट अटारी झरोखनि ह्वै दुरि कै छिनु जाइ निहारति हीं।
परिपूरन चंदहि ज्वाल कराल सो मान्यौ हिए सुधि हारत हीं।
ससिनाथ लख्यो अब तो भरि डीठि सुकास अरन्य विहारत हीं।
तिहिं भीर गँभीर की वात कहा दिन बीतत क्यौंत विचारत ही॥५३॥

पावकुलक छंद

छंद—तातें सुनौ मालतिय प्यारी।
दुलभ मनोरथ फल है भारी॥
काम निपट साहस कौ यामैं।
कबि पंडित यो कहत कथा मैं॥ ५४ ॥
निहचै इती बात हम जानैं।
तेरे आगे साँच बखानैं॥
यह सुनि लवंगिका की वानी।
बोली सचिवकुँवरि हित सानी॥ ५५ ॥
हे सखि मो सुभ चाहनवारी।
हिम्मत हिए बढ़ावनहारी॥
जा चलि कछू जु तोको भावै।
तानि हिए तू सज्जि उपावै॥ ५६ ॥
इतनौ कहि अँसुआ भरि नैननि।
उचरी यौं मालति पुनि बैननि॥
वेर वेर हौं वाहि निहारी।
सो मैनेंई बात बिगारी॥ ५७ ॥
नैकु न धीरज उर में लाई।
अरु अपनी कुलकानि भुलाई॥
तुच्छ भई हौं अति ही तातैं।
उरझि गई दुख मैं हित रातैं॥ ५८ ॥

पै सुनि और सहचरी मेरी ।
भावति मोहि भलाई तेरी ॥
तातैं तोसौं कहति अकेली ।
गुनि यौं साँचु हिए मैं हेली ॥५९॥

सवैया

बाँननि बेधि कठोर अनग सु अंगनि कौ झँझरी करि डारौ ।
जालिम ज्वाल समान मयूखनि चंद उदौ लहि नित्त पजारौ ।
उत्तम मात पिता कुल प्रीतम क्यौं हूँ नही इन सौं निरवारौ ।
मो मरिबौई बन्यो सजनी करतार बिनाँ न बचावनहारौ ॥६०॥

तोमर छंद—यह सुनत बैन मलीन । सु लवगिका परवीन ।
चिंती हिएँ अकुलाइ । याको कहाऽब उपाइ ॥६१॥
इहिं समय मैं प्रतिहारि । नेपथ्य अर्ध उघारि ।
उच्चरिय बचन पुकारि । अपनौं सु काम बिचारि ॥६२॥
कामंदकी भगवाँनि । आई इहाँ सुख माँनि ।
यह सुनत श्रवननि बैंन । बोलीं दुवौ लहि चैन ॥६३॥
भगवति कहा इहैं ठाम । आई विनोदनि धाम ।
प्रतिहारि उचरी फेरि । कर जोरि संक निबेरि ॥६४॥
मालतिहि देखन काज । आई सु सिध्धि जहाज ।
यह सुनत दोऊ बाम । बोलीं समेत अराम ॥६५॥
तौ कहा है अब ढील । आओ चली सुभ सील ।
यह बात सुनत रसाल । प्रतिहार दुरिय उताल ॥६६॥
मालतिय नै सो चित्र । राख्यौ छिपाइ पवित्र ।
चिंती लवंगिय चित्त । तिहिं समै काज निमित्त ॥६७॥
यह भई उत्तम बात । जो सिध्धिनी सुभगात ।
आई अबै इहिं ठौर । सब मंगलनि की मौर ॥६८॥

दोहा—इतनें मैं कामदकी अवलोकिता सहित्त ।
पट के बाहिर आइ यह बोली बचन उचित्त ॥६९॥

धन्नि भूरिवसु कौं जु यह दुहुं लोकनि अविरुद्ध ।
कह्यौ बचन छितिपाल सौं ह्वै कै उर मै सुद्ध ॥७०।
निहचै हौ महराज प्रभु निजु कन्या के आप ।
तो सौं ताकौ कीजिए इतनौं कहा अलाप ॥७१॥
अरु मनमथ उद्यान में भयो जु है विरतत ।
वकुल माल अरु चित्र को यहू सब्बो सुभ तत ॥७२॥
अरु जु परस्पर प्रीति अति नारि पुरुष में होइ ।
यहू महा मगल कह्यौ अंगरि नै मति टोइ ॥७३॥
मन अरु नैननि मध्धि जो होइ उछाह उदार ।
तौ निहचै वा काज को सुगम करै करतार ॥७४॥
यह सुनि कै अवलोकिता बोली समय बिचारि ।
आगै है यह मालती देखि जु यह निरधारि ॥७५।

सोरठा—यह सुनि के बर बैन, कामदकि लखि मालतिहि ।
बरनन लगी सचैन, अवसर को पहिचानि कै ॥७६॥

सवैया

कदली नव कोस समान महा सुकुमार सरीरनि डीठि परै ।
मुख चंद कछूक कला घटि सो अवलोकत ही तन ताप दरै ।
ससिनाथ कहै सु मनम्मय दाह सहै न इतै उत को बिहरै ।
यह मो मन मध्धि बिलास भरै बहुरचौ थहरावति त्रास करै ॥७७॥

बड़ी चौपई छंद

बर कोमल गोल कपोलनि ऊपर दरसति बिरह सिताई ।
अरु घूमत से लोचन दुखमोचन अग अंग दुबराई ।
यह लागति तऊ निपट अब नीकी तऊ सनेह सताई ।
ढिग आनि ध्यांन में प्राननि प्यारौ सफल करतु तरुनाई ॥७८॥

सवैया

ओठ अनूप दुवौ फरकै उचकै कलिका कुच कोर सुहेली ।
है पुलकालि कपोलनि पै अरु देह दबी जनु चंपक बेली ।

संग उसास हलै फुंफुदी मनमत्थ विथा नहि जाति पछेली।
घूमति नैननि होत अचेत उठै कबहूँ पुनि चेति नवेली ॥७९॥

संजुता छंद

डगरी निकट कामंदकी। बुधि को सजै छरछंद की।
उत मालतीहि सिखाइ कै। लाई लवंगिय चाइ कै ॥८०॥
ठाढ़ी भई कर जोरि कै। दोऊ सनेह बटोरि कै।
मालतिय उचरि सचेत सौं। कामंदकी सौं हेत सौं ॥८१॥
हे भगवती हित भरति हौं अव तुम्हें वंदन करति हौं।
कामंदकी सुनि वात कौं। उचरी लियें निजु घात कौं ॥८२॥
सवैया–पूरनचंद समान लसै मुख जाकौ अमंद समेति लुनाई।
काम कमान वनी भृकुटि सर नैननि में झलकैं अरुनाई।
चैन कढ़ै सुनि बैननि को, ससिनाथ सनेह तैं साँच सुनाई।
तू जिहि लायक तोहि फलै अव ता मनभावन की तरुनाई ॥८३॥

पादकुलक छंद

हे महाभागिन बाल ती। लहि भावतौ फल मालती।
बोली लवंगिय तच्छनै। सिध्धिनिहि सों सुभ लच्छनै ॥८४॥
इह मंजु आसन राजिऐ। यह भवन सोभनि साजिऐ।
थिति भई वाहि निहारि कै। वैठीं सबै हित पारि कै ॥८५॥
मालति सु बोली फेरि कै। सिद्धिनिय सौं हित घेरि कैं।
भगवति तुम्हारे कुसल है। सुनिके खिलै हिय कमल है ॥८६॥
सुनि सिद्धिनी सु उचारि यों। लैकै उसास निहारि यौं।
है कुसल ही यह जानिए। ताको कहा सु वखानिए ॥८७॥
दोहा—यह सुनि कै सु लवंगिका मन में कियौ विचार।
कपट नाटकौ प्रकट यह कीनौ इहि व्यौहार ॥८८॥
ऐसे मन मे चिंति कै लवंगिका सु प्रकास।
कामंदकि सौं उच्चरी मन में पूरि हुलास ॥८९॥
गहबरि आए कंठ सौं क्यो बोली तुम बैन।
सो हम सौं कारन कहौ नातरु बढ़्यौ कुचैन ॥९०॥

सोरठा—लवंगिका की बात, सुनि कैं पुनि कामंदका ।
उचरी लै निजु घात, औसर को पहिचानि कै ॥९१॥
निहचै प्रेम विरुद्ध, संसारी अरु जुग्गनिय ।
हित गुन बाढ्यो क्रुद्ध, अनमिलती तुव बात सुनि ॥९२॥
यह सुनि बात मलीन, बोली बहुरि लवंगिका ।
हे सिद्धिनी प्रवीन, कहा कह्यौ तुम ने वचन ॥९३॥
यह सुनि सिद्धिन आप लवगिका सौं उच्चरिय ।
तैं नहि सुन्यो अलाप, जो जानतु सिगरौ जगत ॥९४॥

सवैया—अस्त्र मनंमथ कौ यह सिद्धि सरीर सबै जग जीतनवारौ ।
और अनेक बिलासन कौ घर कुंदन की द्युति कंदनहारौ ।
सो अनलाइक नाइक जोग कौ सोच बढ्यो उर मद्धि उदारौ ।
मालती सुंदर के गुन सुंदर मन्द ह्वै जैहै बिलाइ अपारौ ॥९५॥

अन्यच्च सवैया

कारी कुरंग कुढंग बन्यौ मुख नैन कुचैन भरे मुड़रानै ।
ओठनि के पुनि बाहर लौं चमकै सित दंत अनंत भयानै ।
सत्तरि संवत कौ मतिमंद सभा बिन बात निलज्ज बखानै ।
री तिहि नंदन लाइक है कहा मालती जाहि सबै जग जानै ॥९६॥

पादकुलक छंद—कामंदकि की बात असैली ।
यह सुनि कै मालति अलबेली ।
भई चित्त में निपट मलीनी ।
पजरति उच्च उसासैं लीनी ॥९७॥

दोहा—सभा मध्धि तिय मालती नच्चिय निपट दुचित्त ।
अँसुवनि सौं अँखियानि भरि उर में उरझ्यौ मित्त ॥९८॥
बोली यौं सुलवंगिका, मंत्री ने सुखदाइ ।
नंदन को मालति दई, नृप के हुकमै पाइ ॥९९॥
भूरिबित्त कौ नगर के निंदत है जन सब्ब ।
यह सुनि बोली मालती उर तैं छाँड़ि गरब्ब ॥१००॥
मो कौं मेरे पिता ने लागै लोभ चपेट ।
अपनौ भलौ बिचारिकै कीनी नृप की भेंट ॥१०१॥

फिर वोली कामंदकी अपनी समय विलोकि ।
बड़ी अचंभो है यही कहिए कासों टोकि ॥१०२॥
विना विचारे सचिव ने क्यों यह कीनी काम ।
अथवा कित कपटीन के संचित नेह ललाम ॥१०३॥
नृप को निपट खुसामदी है नंदन तिहिं अर्थ ।
कन्या दिऐ सु होइगो मेरो मित्र समर्थ ॥१०४॥

तोमर छंद—सुनि कियौ चित्त विचार । मालतिय ने तिहिं बार ।
पितु कौं भलौ हुव भूप । नहिं मालती सु अनूप ॥१०५॥
यह सुनि लवंगिय फेरि । उचरी दया दृग हेरि ।
भगवतिय नें जो बैन । उच्चर्‌यो सत्य सु ऐन ॥१०६॥
जानतु न हो परवान । नहिं सब कुल्लनिधान ।
अरु वृद्ध है मतिहीन । नंदन सुअंगनि छीन ॥१०७॥
क्यों ताहि मालती देतु । जग मध्धि अपजस लेतु ।
यह श्रवन सुनत अलाप । मालतिय चिंती आप ॥१०८॥
मो कौं हत्यो पितु हाइ । हुव बज्रपात सु आ. ।
मैं अति अभागिनि हाल । विधिक्यो कियौ यह ख्याल। १०९॥
वहुर्‌यो लवंगिय नारि । उचरी प्रकासि पुकारि ।
जुगिनिय सौं कर जोरि । छर छंद वृंद बटोरि ॥११०॥
है निपट ही सुकुमारि । मेरी महा हितकारि ।
मालतिय ताके प्रान । तुम राखि लेहु सुजान ॥१११॥
तुव पुत्रिका परमान । है यह बुद्धिनिधान ।
यह सुनत सिद्धिन भाम । उच्चरिय वचन उदाम ॥११२॥
भगवती पन अव और । का करि सकौं इहि ठौर ।
कन्यान को प्रभु बापु । जो नहि करै सु आपु ११३॥

दोहा—पै सकुंतला ने कियो, अपनो आप विवाह ।
धरनीपति दुष्यंत सौं, मंडित हिऐं उछाह ॥११४॥
और अनेकनि किए यो अपने व्याह विलास ।
है मेरे उपदेस में साहस को आभास ॥११५॥

दै नंदन कौ मालती सुचितौ होउ प्रधान।
धूमकेतु ग्रह वस परै, ज्यों ससिकला सु ठान ॥११६॥

अमृतगति छंद

यह सुनि मालति मन में। पुनि इमि सोचिय छन में।
अँसुवनि अंचल भिजयो। सुवरन सो तन छिजयो ॥११७॥

पादकुलक छंद—नामहि को तुव पितु कहवायौ।
अति ब्रह्मा के हाथ विकायौ।
हाइ हाइ पव्वय तें पटकी।
तैं जु करी यह बात कपट की ॥११८॥

अवलोकिता उच्चरी तक्षन।
भगवति भई अवार विलक्षन।
वह ह्वाँ ह्वैहै अति अकुलानौं।
वाकौं दुख निहचै तुम जानौं ॥११९॥

कामँदानि यह सुनि के वोली।
तहँ उताल तू जा अनमोली।
है मेरो वह निपट पियारौ।
नहिं एकौ छिन करत नियारौ ॥१२०॥

सुनी दुहुन की यह बतरावनि।
लवंगिका भरि के चित चावनि॥
सरकि मालती के लगि काननि।
वोली वचन सनेह उठाननि ॥१२१॥

भगवति सौं वाकी सब रीत्यै।
सुनि लीजै अब सहित प्रतीत्यै।
यह सुनि पुनि मालति ने भाख्यौ।
भली बात मो हिय अभिलाख्यौ ॥१२२॥
यौं बतराय लवंगिय जाहर।
सिद्धिनि सौं वोली तिहिं ठाहर।

को है सो माधव तुम जाकौ।
ऐसौ चाहति प्रगट प्रभा कौ ॥१२३॥

यह सुनि कमंदकिय उचारी।
है यह कथा निपट ही भारी।
यौं सुनि लवंगिका पुनि भाखी।
मै सुनिबै कौं अति अभिलाखी ॥१२४॥

ऐ सुनि बैन सिद्धिनी बोली।
दूती कर्म मध्धि अनमोली।
हे लवंगिके सुनि मनहीनै।
मै भाखति हौं तेरे लीनै।१२५॥

बिदरभ देस नृपति को मंत्री।
विद्यावान् सुसील स्वतन्त्रो।
जाको सुजस दिगंतनि छायौ।
उज्जल मनौं बितान तनायौ॥१२६॥

धीरजवंत जुद्ध जितवैया।
जाचक को सन्मान करैया।
महा सुधर्मी है वह जैसो।
जगत मध्धि दुर्लभ नर तैसो ॥१२७॥

देवरात है नाम सुहायो।
बिप्र वर्न उत्तम पद पायो।
अपने सम तेरो पितु जानौ।
जिनके गुन सब जगत बखानौ॥१२८॥

यों सुनि के मालति सुकुमारी।
लवगिका सौं कह्यौ सुखारी।
हे सखि, नाँव जु भगवति लीनौ।
सुमिरै मों पितु ताहि प्रवीनौ॥१२९॥

दोहा—यह सुनि वहुरि लवंगिका, वोली हित सरसाइ।
संग पढे विद्या दुवौ, यों सब्र कहतु सुभाइ ॥१३०॥
पुनि बोली कामदकी सिद्धिन बुध्धि वढ़ाइ।
लवंगिकै अरु मालतिह अच्छी भाँति सुनाइ ॥१३१॥

सवैया

बालक चंद उदै गिरि तें प्रगटो जनु ताप अतूल हरैया।
सुंदर मंदिर है जिसको ससिनाथ समूह कलानि भरैया।
ता सम और वियो जग मैं न कियो विधि ने हित फंद परैया।
वैन वनाय कहा कहिए अति ही नित नैननि चैन करैया ॥१३२॥

तोमर छंद

यह सुनि लवंगिय फेरि। मालतिय को मुख हेरि।
लगि कान उचरी वैन। ह्वैहै सु माधव ऐन ॥१३३।
पुनि कही सिद्धिन बात। औरो सुनो हुलसात।
बिद्या पढन इहि ठाम। आयौ सु है तजि धाम ॥१३४॥

सवैया

अब स्याम नवीन पयोधर सो अभिराम जहाँ मगु आवतु है।
ससिनाथ तितै तित आनँद-चंद-प्रकास अमंद वढ़ावतु है।
पुर की झंझरीनि झरोखनि कौं कमलाकर की छवि छावतु है।
अति सील सने त्रिय नैनन कों कुवलेनि कै तूल खिलावतु है ॥१३५॥

सोरठा—बाल मित्र मकरंद, नित प्रति ताके संग ही।
विद्या तर्क अमंद पढ़न जातु इहिं नगर में ॥१३६।
है माधव तिहिं नाम, यह कहि जुगिगनि चुप भई।
तब मालतिय ललाम अति आनँद मान्यो हिएँ ॥१३७॥
लवंगिका के कान, लगि कै यह उचरी वचन।
तैं सखि सुन्यौ वखान जो भगवति नै प्रगट किय ॥१३८॥

दोहा—यह सुनि बहुरि लवंगिका वोली सखि सुख चैन।
बिनु समुद्र कहूँ होतु है कल्पवृच्छ सुख दैन ॥१३९॥

इहि औसर नैपथ्य में भई संख धुनि धीर।
बोलि उठी कामंदकी तच्छन बुधि गंभीर ॥१४०॥

सोरठा—बड़ो आचिरज एह, बातनि मैं टरिगो समय।
करनौं जप जुत नेह, आँवदनी निसि की भई।१४१॥

सवैया

अस्त दिनेस भए, अवलोकि, नही पति संग बिहंगनि छंडति।
संपुट बाँधि रहे अरबिंद, घटा सम, आवति रैनि घुमंडति।
रंचक जोति नछत्रनि का दरसाति बिचित्र कलेसनि खंडति।
संख प्रतिध्वनि उच्च अवासनि पूरि उमंडि अकासहि मडति ॥१४२॥

दोहा—सो अब अपनै धाम कौं, चलिऐ यौं बतराइ।
कामंदकि अवलोकिता, ठाढ़ी ह्वै अँगिराइ ॥१४३॥
बोली बहुर्‌यौ मालती सब की डीठि बचाइ।
मै भूपति कौ बलि दई, पितु नै मोह भुलाइ ॥१४४॥
पितु कौं नृप प्यारौ भयौ नहीं मालती रंच।
यौं कहि अँसुवनि नैन भरि फिरि उचरी अप्रपंच ॥१४५॥
हाइ हाइ पितु बिकि गयौ तू लक्ष्मी के हाथ।
माँगि लई अब अन्य पै यही चलैगी साथ ॥१४६॥

पादकुलक छंद—यह कहि पुनि उर आनँद मान्यौ।
प्रथम जु सखि नें बचन बखान्यौ।
उत्तम कुल उन पति जु बताई।
वाकी सो वह सुभ बनि आई ॥१४७॥
कल्पबृच्छ बिनु समुद न प्रगटै।
नहिं क्यौंहूँ मेरौ मन पलटै।
फिरि वह कहूँ डोठि मै आवै।
तो नैननि कौ सुखु सरसावै ॥१४८॥

दोहा—कामंदकि अवलोकिता जब उठि चली उताल।
तब बोली सु लवंगिका अति ही बुद्धिबिसाल ॥१४९॥

तोमर छंद

अवलोकिते इत आइ। इहि सिढी धारहु पाइ।
यह निपट उत्तम राह। यौं कहि भई सउछाह ॥१५०॥
अवलोकिता सों फेरि। कामंदकी हित हेरि।
उच्चरिय औसर पाइ। एकंत ह्वै मुसिक्याय ॥१५१॥
अति चतुर दूती कर्म। मैंने कियौ अब पर्म।
अरु रही न्यारी आपु। लघु कियौ काज अनापु ॥१५२॥
वर और सौं हुति प्रीति। पितु बचन की अप्रतीति।
पहिलौ कह्यौ बिरतंत। अरु काज ह्वैबो तंत॥१५३॥
हम तैं महातम तासु। इनि सुन्यौं मंडि हुलासु।
करनो हमैं हो काज। सो कियौ हित सौं आज ॥१५४॥

दोहा—जो बिधि को कर्तव्य है, सो करिहै निरधार।
यामें कछु संसय नही वही जगत आधार ॥ १५५ ॥

मधुभार छंद—कहि यों सुबात, अति ही सिहात।
पट मद्धि सव्व, डगरीं अगव्व ॥ १५६ ॥

दोहा—लवंगिका सौं संग लै, मालति सचिवकुमारि।
धवल अटा में जाइ के, लसी बिरह उर धारि ॥ १५७ ॥

हरिगीत छंद—वदनेसनंद प्रताप जाको तेज दिनमनि तूल है।
अब करन सो ताके बहादुर कुँवर आनँद मूल है।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ ने बिरच्यो विचारि निशंक है।
माधवविनोद सुग्रंथ को यह भयो दूजो अंक है॥१५८॥

इति श्री कवि सोमनाथविरचिते माधवविनोद
नाटके धवलगृह नाम द्वितीयांकः ॥ २ ॥

तृतीयांकः

दोहा—इतने में बुधिरच्छिता, आई अंबर टारि।
सकल सभा के नरनि ने, दीने पलक बिसारि ॥ १ ॥

हरिगीत छंद

तन बसन कंचन हृदय बंचन कला सकल निधान है।
जिहि उरज उन्नत बिरह धुन्नत बदन चंद समान है।
मदयंतिका की गुरू सुंदर समर-सिंधुर-गच्छिनी।
शुभ लच्छनी जनु जच्छिनी मृगअच्छिनी बुधिरच्छिनी ॥ २ ॥

दोहा—पुनि समाज में नाचि कै बुद्धिरच्छिता आप।
बिनु देखेई उच्चरी तजि कै उर कौ ताप ॥ ३ ॥

तोमर छंद—अवलोकिते अभिराम। कित भगवती सु ललाम।
इतनो कहत सुख पाइ। अवलोकिता गइ आइ ॥४॥
बुधिरच्छिता सौं बैन। उचरो सु यौं बुधि ऐन।
सठ है कहा तू बाल। उचरे जु है यों हाल ॥५॥
भगवती को अबिकार। डगरै भई सु अबार।
मालतिय के घर जाइ। बैठी सनेह बढ़ाइ ॥६॥
बुधिरच्छिता यह बात। सुनि कै हरखित गात।
बोली बहुरि अतुराय। अवलोकिताहि सुनाय ॥७॥
अब तू चली किउँ ठार। सो भाखि भेद उदार।
यह बैन सुनत प्रमान। अवलोकिता गुनवान ॥८॥
उच्चरी सन्मुख हेरि। बुधिरच्छिनी सौं टेरि॥
भगवतिय ने जहँ मोहि। पठयो सु भाखों तोहि ॥९॥
मौं सो कही तुँव जाह। ह्याँ ते समेत उछाह।
अरु माधवै समझाइ। कहियौ सु यह लहि चाइ॥१०॥
वन कुसुम निधि में जाइ। बैठै सुआप छिपाइ।
ससिनाथ मदिर पास। है दिव्य थल परकास ॥११॥

तहँ घन असोकनि मद्धि। उर निपट आनंद लद्धि।
माधव गयौ अतुराइ। सब और काज भुलाइ ॥१२॥

सुनि कै इहीं विधि वैन। बुधिरच्छिता सुखदैन।
उचरी कहा तिहिं ठौर। माधव गए सिरमौर ॥१३॥

ह्वैहै बखान सु बात। उर सुनन को अकुलात॥
अवलोकिता सुनि फेरि। उचरी हिए हित घेरि। १४॥

है कृस्न चौदसि आज। भगवती सिद्धि जहाज॥
मालतिय को लै संग। जैहै तहाँ सउमंग ॥१५॥

इहि विधि बढ़ाइ सुहाग। तो सौं कही बड़भाग॥
निजु हत्थ ही समरत्थ। ससिनाथ पूजन अत्थ ॥१६॥

वर बीनिहै नव फूल। मंडित सुगंध समूल॥
मालति सु अति सुकुमारि। सँग लवंगिय प्रन पारि॥१७॥

अरु भगवती हू आप। चुनिहैं सु फूल अताप॥
निधि कुसुम विपिनमँझार। पग धारिहै अविकार॥१८॥

ह्वैहै दृगनि की दौर। दोऊन मे तिहिं ठौर॥
अरु तू चली किहि ठौर। सो सखी प्रगट उचार॥१९॥

यह सुनि भली बिधि भेद। बुधिरच्छिता तजि खेद॥
उचरी समेत सयान। छर छंद छोड़ि निदान ॥२०॥

दोहा—कुसुमाकर वन चलन को संकर दरसन काज।
मोहि बुलायौ संग तहँ मदयंतिका सलाज ॥ २१ ॥
सु मैं भगवती को अवै वंदन करि सिर नाइ।
फिरि उताल तिहिँ जाइहौं तोसौं कही सुनाइ ॥ २२ ॥

यह सुनि के अवलोकिता, पुनि उचरी भरि चाइ।
भगवति ने जिहिं अत्थ तहँ राखी सौ कहि दाइ ॥२३॥

पुनि बोली बुधिरक्षिता सुनि यह वचन रसाल।
जिहिं हित राखी काज सो करि राख्यो प्रतिपाल ॥२४॥

चतुराई मकरंद की बात बात में भाखि।
मदयंती के उर महल मध्धि दियौ है राखि ॥२५॥
मदयंती अब दृगनि सौं लख्यो चहै मकरद।
अरु मै न्यारी सी रहति छिप्यौ प्रगट छरछद ॥२६॥
सोरठा—इतनौ कहि कै बैन, मौन भई बुधिरच्छिता।
अवलोकिता सचैन तासौं बोली घन्नि तू ॥२७॥
पुनि बुधिरच्छिन आप बोली तासों तुरतई।
आउ चलै अनताप यों कहि नाचि सु टरि गई ॥२८॥

प्रवेशक

दोहा—फिरि समाज में सिध्धिनी आई पटहि उघारि।
निजु चेली सों बचन यौं कहन लगी हित धारि ॥२९॥

सवैया

लाज लपेटी हुती तब सो अब कैऊ उपायनि ढीठ करी है।
मो सौ सखी सम ह्वै बतराति, नही बिछुर्‌यौ चहै एक घरी है।
फूल दुकूलनि भेंट धरै नित मालती कौं यह बानि परी है।
सौंह दिवावति आँवन कौं फिरि लागि कै कठ सनेह भरी है ॥३०॥
सोरठा—यहू भली बिधि एक, आसा पूरन होन की।
दैव राखिहै टेक, अवलोकिते न झूठ गुनि ॥३१॥
सकुंतला की बात, सुनति अंक मो लेटि कै।
ह्वैकैं पुलकित गात, नैंन मूदि चुप ह्वै रहति ॥३२॥
सु अब और बतरानि माधव के परतच्छि ही।
ह्वैहै तहँ सुखदानि तू सुनि लैहै चैन सौं ॥३३॥
इहि बिधि सौं बतराइ, नेपथ्यहि अवलोकि कै।
कामंदकि लहि चाइ, बोली बत्से आउ इत ॥३४॥
तच्छिन पट कौं टारि, मालति और लवगिका।
कढ़ि आई प्रन धारि, जिमि घन मै तै दामिनी ॥३५॥
दोहा—तहँ बोली पुनि मालती मंद मंद सिरु नाइ।
हौं भूपति कौ बलि दई, पितु नै मोह भुलाइ ॥३६॥

पितु कौं नृप प्यारौ भयौ नहीं मालती रंच।
यौं कहि अँसुवनि नैन भरि फिरि उचरी अप्रपंच ॥३७॥

हाइ हाइ पितु बिकि गयौ तू तृष्ना के हाथ।
माँगि लई अब अन्य पै यहो चलैगो साथ ॥३८॥

पावकुलक छंद—यह कहि पुनि उर आनँद मान्यौ।
प्रथम जु सखि ने वचन वखान्यौ।
उत्तम कुल उतपत्ति बताई।
वाकी सो यह सुभ वनि आई ॥३९॥
कल्पवृच्छ विनु सिंधु न प्रगटै।
नहि क्यों हूँ मेरौ मन पलटै।
फिरि वह कहूँ डीठि मैं आवै।
तौ नैननि कौं सुख सरसावै ॥४०॥

दोहा—कामंदकि अरु मालती अरु लवंगिका संग।
कुसुमाकर बन के निकट पहुँची सहित उमंग ॥४१॥

अथ बन वर्ननं

प्लवंग छंद—रुचिर बनाए थान चहूँघां चाइ कै।
वहु चौपरि उनिहारि सोव सरसाइ कै।
जहँ केतक केतकी गुलाब चँवेलि हैं।
गुलखैरू करवीर जुही अरु वेलि हैं ॥४२॥
करना, गुडहर और हारसिंगार हैं।
सुगधरा गुलवांस बिधूप वहार हैं।
नाफरमा सतवर्ग गुलाला सोभई।
बाबूना सितरग लखै मन लोभई ॥४३॥
सदासुहागनि और सुदरसन कुंद हैं।
चेती गुलचंद्रिका और मुचुकुंद हैं।
रूपमजरी सोसन और अगस्ति हैं।
दाऊदी सुभ ढंग मनौं निजु हस्ति हैं ॥४४॥

गुलाचीन अरु नरगिस द्वै बिधि राजई।
अरु गुलबगुला इस्कपेच छबि छाजई।
अरु रसाल मंजरिनि गुंजरत भौंर हैं।
लाल असोक अनिंदित तिन की झौंर हैं।।४५।।

उन्नत सूधे घनै सरू के बृच्छ हैं।
अरु पुनि फूले फले कदलि परतच्छ हैं।
घनें और हू बृच्छ कहाँ लौं भाखिए।
जाहि देखि सुरबिपिन दूरिही नांखियै।।४६।।

दोहा—सोमनाथ की कृपा तें सु बन छहूँ रितु माँझ।
फूल्यौ और फल्यौ रहै, निसदिन प्रात रु साँझ।।४७।।

हरिगीत छंद

तन वसन जेवर है सजे, बर बजै नेवर सोहने।
मुखचद पूरन तिमिर चूरन गर्व हूरन को हनै।
सर तूल तीछन त्रिबिध ईछन प्रनतही छन पालती।
जिहिं बृच्छ बल्लिय खिली मल्लिय तहाँ चल्लिय मालती।।४८।।

सोरठा—वन में करत प्रवेस मालति सौं सु लवंगिका।
बोली बचन सुदेस अपनो हित सरसाइ कै।।४९।।

सवैया

मौरे रसालनि छोड़ि उड़े अलि ज्यों पिकपुंजन सोर मचायौ।
सो अरु मौरसिरी करि आदि पुहुप्पनि के मकरंद मिलायौ।
श्री ससिनाथ कृपा पर भावते मालती में यह भेद सु पायौ।
भेंटन को यह तोहि मनो अब आयो है आगे समीर सुहायौ।।५०।।

अन्यच्च

चंपक वेलि चमेलि गुलाब रसालनि को अलि संग हलावनौ।
रंभनि को परिरंभनि दै, घनसार के सार अपारनि लावनौ।
मालति श्री ससिनाथ दया बिनु कौन सुनै यह कोकिल गावनौ।
तेरे सबै श्रम को निरवारन आयौ है आगे समीर सुहावनौ।।५१।।

अन्यच्च—मौजि मौजि मंजुल रसालनि की मंजरीनि
पुंज-पुंज रंभनि के चंद्रकनि झारनौ।
विकसत वेली चारु चंपक चमेली चूमि
भूमि-भूम नवल गुलावनि विहारनौ।
× × ×
धारनौ अनिंद मकरंद अरविंदनि कौ
आयौ तेहि भेटन समीर श्रम टारनौ ॥५२॥

दोहा—यौं कहि पैठी वन विषै नृत्य कियौ चहुँ ओर।
कंचन मनि भूपनन कौं मंजु मधुर ह्वै सोर ॥५३॥
आयौ माधव इते मैं, परदा विमल उघारि।
एक ओर थित कहत ह्वै यौं मन मैं सुखु धारि ॥५४॥

पादकुलक छंद—भली भई भगवति अब आई।
यह मोकौं ह्वै यौं सुखदाई।
विरह सनै वरही कौ जैसैं।
बरसाऊ नीरद सुभ वैसैं ॥५५॥
वाह वा सु मालति हू प्यारी।
अरु लवंगिकै लिएँ सुखारी।
मालति के मुख चंद हि देखैं।
मो दृग कमल भए जड़ लेखे ॥५६॥
अरु ज्यों मेरु चंद्रमनिवारौ।
चंदहि निरखि स्रवै जल भारौ।
तैसैं भयौ स्रवै हिय मेरौ।
हुतौ जऊ वहु भांति करेरौ ॥५७॥
यह मालति चपक से अगनि।
हियें बढावति मोद तरंगनि।
अरु मनमथ की अगनि जगावति।
दृगनि करति कृतकृत्य प्रभावति ॥५८॥

सोरठा—मालति सचिवकुमारि, लवंगिका सौं उच्चरी।
इहिं निकुंज मैं झारि, आयौ वीनैं फूल हम ॥५९॥

मधुभार छंद—माधव उदार। तिहि छिन मझार।
यह किय बिचार। सहि मदन मार ॥६०॥

दोहा—प्रथम प्रिया के बैन सुनि यौ ह्वै मो तन सूल।
नव-नीरद-जल-परस तैं ज्यौं कदंब के फूल ॥६१॥
बोली बहुरि लवंगिका मालति सौं सुखु छाइ।
यौंही करिहै, भाखि यौं, नृत्य कियौ वह भाइ ॥६२॥

मधुभार छंद—माधव अगव्व। चित्यौ सु तव्व।
भगवति दयाल। अति बुधि बिसाल ॥६३॥

दोहा—फिरि लवंगिका सौं कह्यौ मालति नैं यह बैन।
आउ और अब कुंज मैं बीनैं सुमन सुचैन ॥६४॥

बडी चौपई छंद

हँसि भरिकै अंक मालती सौं तब कामंदकि यौं बोली।
तू दरसति निपट थकित सी मोकौं त्रिभुवन रूप अमोली।
अब मेरौ कह्यौ मानि कै रंचक बिरमि चित्त लहि चैनै।
तुव वचन और हीं भाँति कढत वह बीने फूल सु तैनै ॥६५॥
जनु चपी चंप की माल मलती अंग-अंग अरसानै।
अरु पूरन चद वदन सुंदर पै स्वेद बुंद सरसानै।
अधखिले कमल से नैन गैन गुन डगमगता परसानैं।
यौं लखियै तेरौ रूप होतु ज्यौं प्रीतम के दरसानै ॥६६॥
यह सुंदर वचन सिध्धिनी कौ सुनि मालति हियै लजानी।
तिहिं औसर जानि लवगिय मधुरै बोलि उठी यह बानी।
है सुभ अति ही भगवति नैं अब जो परगट बात बखानी।
तू समझि देखि उर अंतर इनतै है को और सयांनी ॥६७॥

संथान छंद—माधौ हिए मध्धि। आनंद कौं लध्धि।
छंडै सवै त्रास। सु ज्यौ हरैं हास ॥६८॥
औ कामदांनी। बोली सुबानी।
राजौ इंही ठौर। भाख्यौ चहौं और ॥६९॥

ऐसे सुने वैन । ताके भरे चैन ।
बैठीं सबै घेरि । आछौ समौ हेरि ॥७०॥

सोरठा—कामदिक पुनि आय, चिबुक मालती की उँचै ।
बोली सुनि सु अलाप, जु मैं कहति समझाइकै ॥७१॥
यह सुनि मालति बाल, कामंदकि सौं उच्चरी ।
कहि यह हरपि दयाल, सावधान मैं निपट हौं ॥७२॥

छप्पय—इक दिन पाय प्रसग कह्यौ माधव कै नामहि ।
जिहिं विधि चाहौं तोहि तिहीं बिधि ता गुनधामहि ।
यौं सिध्विन के वैन सुनै बोली सु लवंगिय ।
यह हम को सुधि बात कही हो तुम नु सुढंगिय ।
यौं सुनि कै पुनि कामंदको बोली समय बिचारि कै ।
सोमनाथ वन ते आइकै, पर्‌यो बिरह दुख धारि कै ॥७३॥

सवैया

चंद लखै न अनंद लहै अति ही अपनैन सों प्रीति घटी है ।
है पुनि साहसवान तऊ उफिनाइ वियोग विथा प्रगटी है ।
और कहा कहौं माधव को गति देह सबै पियराय लटी है ।
साइक पच के झेले प्रपच पै रचक नाहि निकाई घटी है ॥७४॥

दोहा—तच्छिन बहुरि लवगिका बोलि उठी सुख पाइ ।
भगवति सौं अवलोकिता कही हुती अकुताइ ॥७५॥
चलियै भगवति वह उहाँ ह्वैहै निपट विहाल ।
यह सुनि कै अवलोकिता पठई हुती उताल ॥७६॥

सोरठा—सिध्धिनि कामँद नाम, बोलि उठी मधुराइ कै ।
मैं तब ही अभिराम समझी हेतु सु मालती ॥७७॥
जलनिधि जल के तूल, हो माधव को अचल मन ।
भयो सु चपल समूल, मालति-मुख-ससि ध्यान तें ॥७८॥

पावकुलक छंद—माधव पुनि मन मध्यि त्रिचार्‌यो ।
कामदंकि ने अति प्रन पार्‌यौ ।

नई नई बिधि के कहि बैननि ।
साधत मेरी बात सचैननि ॥७९॥

कै यह साँची है कहनावति ।
सबै प्रवीननि के मन भावति ।
सास्तर की परतीत सुहाई ।
अरु जो सहज ग्यान सुखदाई ॥८०॥

दृढ़ता अरु अभ्यस्त सुबानी ।
समय जानिबौ बुद्धि सयानी ।
जामैं ए गुन बिलसैं रूरे ।
ताके काज होइँ सब पूरे ॥८१॥

फेरि सिध्धिनी बोली ऐसे ।
मालति सौं बन मध्धि सु बैसे ।
बिरही को दुखदायक बातें ।
ते माधव झेलत अकुलातें ॥८२॥

सवैया

पिक गुंजनि स्यौं नव नूत की मंजरी ओर रुढीठि लगाइ रहै ।
अरु मौरसिरी के सुगंध समीर की घ्राँ अति ही समुहाइ रहै ।
तन के तजिबै के लिये उर पै जलजात के पातन छाइ रहै ।
चितवै पुनि चंदहि चंदन लाइ मसूसनि सौं मुसकाइ रहै ॥८३॥

सारवती छंद

माधव फेरि कह्यौ मन में । कामँद जोर पगी पन में ।
और हो और बखानति हैं । नेहु निबाहु सु जानति है ॥८४॥

सोरठा—मालति मन के मध्धि, यौं बिचार लागी करन ।
ता दुख की न अवध्धि, वापै बीततु है जु अब ॥८५॥
पुनि सिध्धिन बुधिवान, कहन लगी समयौ निरखि ।
माधव रूपनिधान, दुख ही दुख मरि जाइ जिनि ॥८६॥

यह सुनि कै दुख मानि, लवंगिका सौं कान में।
मालति परम सुजान, कहन लगी अतुराइ कै ॥८७॥
हे सखि अपने काज, सो प्रीतम त्रिभुवनमुकुट।
मति निमि जाइ सलाज, भगवति भय सो हौं डरी ॥८८॥
ताते कहा उपाय, अलि हम को कर्त्तव्य है।
सो तू कहि समुझाइ, मन मेरौ थिर नहि रहै ॥८९॥

मधुभार छंद—माधव उदार। सुनि किय विचार।
मो पै दयाल। है श्री गुपाल ॥९०॥

पावकुलक छंद—पुनि लवगिका बोली तच्छन।
कामंदकि सौं निपट विचच्छन।
तुमने कही सु हमने जानी।
अबै मालती को सु कहानी ॥९१॥
घर के निकट गली मधि ठाढ़ो।
निरख्यौ छिनकु सुहितपन गाढ़ो।
तब ते ज्यौं रवि किरनि तचाई।
कुमुदनि मूल तूल उरझाई ॥९२॥
निपट सखिन को दुख में रेले।
नहीं और कछु खेलन खेले।
एक कमल कर धारि कपोले।
बैठी रहति न मुख सौं बोले ॥९३॥
और कुंद अरविंद खिले कौं।
पवन मधुर मकरंद मिले कौं।
पवन आग को तन में लागे।
मन में निपट ज्वाल सी जागे ॥९४॥
अरु अपने उद्यान मझारे।
जनु मनमथ है अग सिँगारे।
रूप और जोवन कर रूरो।
सोभति औरों गुनन समूरो ॥९५॥

तहाँ परस्पर दर्सन पायौ।
दुहुँनि दुहूँ को चित्त चुरायौ।
पुलकनि कंप थंभ ह्व अंगनि।
हरषी सखी निरखि इनि ढंगनि ॥९६॥
तब तैं हित में यो अनुकूली।
खान पान की चरचा भूली।
भूषन गिरै न ताहि उठावै।
कछू सखिन सौं नाहि जतावै ॥९७॥

तरफरात ज्यौं जल विनु सफरी।
कहि नहि सकै जाति अति अफरी।
चंद्रक चूरन चदन लावै।
चंदकिरन सौं अंग दुरावै ॥९८॥
हुतो डहडहौ कमल समानो।
लखिए सुमुख महा मुरझानो।
सिख नख लौं पियराई छाई।
पै न रंचहू घटी निकाई ॥९९॥
अँसुवनि सौ भरि आवत अँखियाँ।
उकसी जाति उसासनि वखियाँ।
दावि दसन तर अधर बिसूरै।
प्रीतम विरह हियौ चकचूरै ॥१००॥
नैकौ नीद न आवै नैननि।
वोले अनखि सखिन सों बैननि।
कितहूँ चलै कहूँ को चितवै।
अंतर ही अंतर हित जितवै ॥१०१॥
कबहूँ चकृत मृगी अनुहारी।
ठाढ़ी होत परम सुकुमारी।
छिन में पुनि अँगिराइ किसोरी।
अस मैं कहै कौन सो चोरी ॥१०२॥

सवैया

तन औचकई थहराइ उठे अधमुद्रित नैन निहारत है।
छिन में पलटे मुख रगनि को पुनि ह्वै जड सी सुधि टारति है।
ससिनाथ सनेह तरंगनि पूरि वढ्यौ उर में प्रन पारति है।
इहि भाँति बियोग बिसारति हैं, मन में पिय संग विहारति है ॥१०३॥

अन्यच्च कवित्त

ओठ फरकन में दसन चमकंत हूँ मैं
लागत पलक जो पलक परंजक में।
सोमनाथ सरसै पुलक प्रति अंगनि में
झलमलै स्वेद बिंदु वदन मयंक में।
धरकति छाती नीवी विचरै उसासनि सों
थरहरै जघ होति लहकनि लंक में।
औ बकति कबहूँ निसकित मनोजमय
चोजनि सों राखति उरोज भरि अंक मै ॥१०४॥

अन्यच्च—उघरत नैन रतोपल से प्रकासै लखि
सूनै परजकहि उसासे लेत गहरी।
फिर मूँदि लेति फिर खुलत अनंग वस
बाढ़ै नेह नवल तरगनि की लहरी।
सोमनाथ चदन चरचि कदली के पत्र
कीजत पवन त्यों छबीली जात छहरी।
उचरै बिथा न कछू अकथै कथा है वाहि
सीत ऋतु रैनि होत जेठ की दुपहरी ॥१०५॥

अन्यच्च—प्रगटि पसेउ अग थंग छिनु सीरे होत
उड़ी जाति सांसनि बँकाई वखियानि की।
चंद्रमा निहारि पहिरावति उदोत ससि
निघटै तऊ न अरुनाई अँखियाँनि की।
सोमनाथ की सौं अब आवतु बसत ऋतु
गाकी गति ह्वै है जलहीन झखियाँनि की।

रोसै भरि दैवहि अकोसति इकौसे फेरि
दौरी फिरै व्याकुल बहीर सखियाँनि की ॥१०६॥

सवैया

पाइ महावर कौ निचुरै रँग यौं अँग अंगनि स्वेद कढे रहैं।
सीरी ह्वै जाति घरी भरि मांझ, घरीक मैं ताप समुद्र बढे रहैं।
प्रौढ़नि के से बिलास करै दृग मूँदत हौ सु बिनोद मढे रहै।
बैस कुमार बिलोकि अपक्व सहेलनि के चित चक्र चढे रहै ॥१०७॥

दोहा—लवंगिका के बैन सुनि कामदकी प्रवीन।
बोली छरछदनि भरी प्रगट मोद मै लीन ॥१०८॥
माधव सौं अनुराग जो है याकौ निरधार।
तौ जग मै गुन ज्ञान कौ है फल यह अविकार ॥१०९॥
उर मै सुख अतिही भयौ, तऊ दसा सुनि एह।
मेरो हिय दरकन लग्यौ जऊ लगाई खेह ॥११०॥

सोरठा—माधव चित्यौ फेरि तिही असोकनि मै दुर्यौ।
लई जु दुख नें घेरि, कामंदकि सो ठीक यै ॥१११॥

दोहा—पुनि बोली कामदकी, लवगिकै समझाइ।
निपट अटपटौ खेद अब उर में प्रगट्यौ आइ ॥११२॥

सवैया

बैस कुमार महा सुकुमार सरीर है याकौ लहै हित संसहि।
श्री ससिनाथ की सौह मनम्मथ है निरदै अति हो गहि गंसहि।
सीतल मंद समीर इतै पै वहै लपटाइ रसाल के वसहि।
दारुन है विरहीन समौं यह चद कौ सीस सजै अवतसहि। ११३॥

बड़ी चौपाई

ए कामंदकि के वचन सुनत ही लवंगिका सु उचारी।
तुम देखौ और भगवती है यह माधव चित्र सुखारी॥
यो कहि लवगिका नै मालति के उर तें अंचल टार्‌यौ।
मृदु हिय पै लग्यौ चित्र कचुकि मै तिहि सिद्धिनो निहार्‌यौ ॥११४॥

अरु देखौ बौरसिरी पुहपनि की माला तिहिँ जु बनाई।
सो याके कठ मद्धि है याते जीवति सखी सुहाई ॥
यह सुनि बतरानि दुरे माधव नै उर मैं अति सुख पायौ।
पुनि लग्यौ बडाई करन माल की रचक बिरह बिलायौ ॥११५॥

सवैया

बकुलावलि जीती तुही जग मैं सखि तेरी बराबरि कौन करै।
ससिनाथ की सौंह सुहाग सनी नहि तोहि घरी भरिहू बिसरै ॥
अति चोज सौं बौनें उरोजनि मैं जु लखैं अखियांनि की खेद हरै।
दिन रैनि बिनोदनि सौं गहरै मनभांवती के हिय पै बिहरै ॥११६॥

दोहा—इहि औसर नेपथ्य मे कलकल भई अपार।
सबनि लगाए कान उत सुनिवे कौं सविकार ॥११७॥
पुनि नेपथ्य मझार तै, इहि बिधि भई पुकार।
सकर घर वासी मनुज दृढ हूजी इहि वार ॥११८॥

भुजंगप्रयात छंद

महादेव के मट्ट के पिट्ठ पाछे, करालौ महाकाल सौ सिंह आयौ।
कढ्यौ लोह कौ पिंजरा तोरि बंको बडे जुव्वनारंभ के गव्व छायौ ॥११९॥
बिजै की धुजा तूल लंगूल तुंगी, उचक्कै, चहूँ ओर तक्कै छुहायौ।
झलक्कै दुवौ नैन कुच्चैन मंडे, मनौ मुरख है भार ज्वाला जगायौ ॥१२०॥
जमड्ढाढ सी दिढ्ढ डाढै कडक्कैं, घने जंतु घतो परे रत्तरत्ते।
बरच्छोन से नख्ख तिख्ये उदारे, परत्तारिते काम सज्जें कुपत्ते ॥१२१॥
उतक्कट्ट नट्टे प्रगट्टे न हट्टे, भजे जे हुते और कौतुक्क मत्ते।
चरब्बीरु श्रोनित्त की कीच मच्ची, उरे मास के ठौर ही ठौर लत्ते ॥१२२॥

दोहा—जथासक्ति अब आपनै रच्छि सको जो प्रान।
सावधान हूजौ सु नर समयौ समझि भयान ॥१२३॥
इहिं औसर पट टारि के बुधिरच्छिता उताल।
थरहराति सौं उच्चरी रच्छा करौ दयाल ॥१२४॥

त्रिभंगी छद—तन पीरे-कारे चिन्न अपारे नैन डरारे चमकाएँ।
क्रुद्धिन सौं मढ्ढे डाढे कढ्ढे गुंजत गुड्ढै मुँह बाए ॥

निजु पुच्छ उठाएँ केसु फुलाएँ सिहु लुभाए दरसायौ ।
करि दपट तुरंती जानि इकंती तिय मदयंती पर धायौ॥१२५॥

दोहा—नदन की भगनी चतुर मदयंतिका ललाम ।
मेरी प्यारी सखी सो घेरी सिघ उदाम ॥१२६॥
यह सुन बोली मालती लवगिका सौं बैन ।
बडौ अचंभौ इहि समै बाढचौ निपट कुचैन ॥१२७॥

मुक्तादाम छंद—कढ़चौ द्रुम ओटनि में अतुराइ ।
सु माधव यो उचर्यौ सतराइ ॥
बताइ अबै बुधिरच्छित आप ।
कितै वह नाहर है जुत ताप ॥१२८॥
अचानक माधव मित्र निहारि ।
विनोद सनो डरपीं सुकुमारि ।
कह्यौ (तव) मालति ने मन मध्धि ।
तहइँ प्रगटौ यह औसर लध्धि ॥१२९॥

करौ तहँ माधव चित्त विचार ।
रचौ विधि भत्रि सु हौं इहि ठार ।
लख्यौ अब मोहि प्रिया हित नंधि ।
लियो जनु अंबुज मालनि बंधि ॥१३०॥
दियो सुख सो जनु छीर न्हवाइ ।
कि नैन पसारि लयौ असि हाय ।
सुधा बरखा रुचि सौं बरसाइ ।
सिराइ दियौ हिय दुख्ख नसाइ ॥१३१॥

सवैया

बाँधि लियौ अरविद की मालनि जो यह मोहि तको तिरछाइ कै ।
छीर सौं दीनौ न्हवाइ मनौ ससिनाथ अनंत बिनोद वढ़ाइ कै ।
औ अनिमेष बिलोकनि सौं सब सेष लियौ गहि सो ठहराइ कै ।
नेह चितौंनि चितै रुचि सौं पुनि सीच्यो सुभाइ सुधा बरसाइ कै ।१३२॥

सोरठा—बुधिरच्छिता पुकारि, माधव सौं बोली बहुरि।
वन बाहर डर डारि गुजत है मृगराज सठ ॥१३३।
माधव मडित ऐड़, इतै उतै लाग्यौ फिरन।
कामदकि लहि मैड, तासौ बोली समय लखि ॥१३४॥
सावधान ह्वै तात, प्रगटु पराक्रम आपनौ।
है न बड़ो उतपात झूँठ न हौं तोसौं कहति ॥१३५॥
लवगिका के कान, लगि पुनि बोली मालती।
है धिक हमें निदान, कौन आनि ससौ पर्यौ ॥१३६॥
सबही निपट उताल, उठि इत उत लागी भ्रमन।
दरस्यौ समौ कराल रंग सभा के मध्धि ही ॥१३७॥

मधुभार छद—माधव उताल। क्रुध्धित बिसाल।
चल्यौ अ०.ग्र। लख्यौ सुअग्र ॥१३८॥
पथ अति कराल। जुत अत्र जाल।
कहुँ परे मुंड। अरु मनुज रंड ॥१३९॥
कहुँ खड खड। है भुज उदंड।
अनगनतु रग। कहु परे भंग।१४०॥
गुल्फै प्रमान। चहलौ निदान।
मिलि मांस रत्त। है जत्र तत्त ॥१४१॥
मृगराज मग्ग। लखि यौं अभग्ग।
मन में बिचार। इमि किय उदार ॥१४२।

दोहा—नदन बिप्र प्रधान की वहनि कनिका बाल।
है नजीक मृगराज तें मौ ते दूर मुहाल ॥१४३॥
हाय हाय मदयतिके, यों सब बोलीं बैन।
सभा मध्धि को त्रियन के मुख पै लख्यौ अचैन ॥१४४॥

मद्धरी छद—कामदकि माधव उर मझार।
हुव हर्ष अचंभौ तिही बार।
हर नेह तेजु है नर घुमड।
तिन के हथ्यार ले हत्थ चड ॥१४५॥

मदंयति रु नाहर के सुमध्धि ।
मकरंद पहूँच्यौ समय लध्धि ।
हो कहा ह्वई सोनित्त थित्त ।
मृगराज विहडनि के निमित्त ॥१४६॥

है धन्नि धन्नि मकरद बीर ।
यौं औरनि भाखी धुनि गँभीर ।
कामंदकि माधव हियौ आनि ।
भै भई सिह ने हन्यो जानि ॥१४७॥

फिरि भयौ हर्ष उर मैं अपार ।
तिहिं समै दुहूँनि कौ निरबिकार ।
अरु मार्‍यौ नाहर हू भयान ।
ध्वनि परी आंनि कै यही कान ॥१४८।

औरनि बिलोकि बाढ्यौ अनंद ।
फैली कराल आर्त सदंद ।
सिध्धिनी फेरि उच्चरिय आप ।
मकरंद हित्त उर मडि ताप ॥१४९॥

त्रिभगी छंद

हौ धायौ नाहर जनु जम जाहर पंजे बाहर नख कढ्ढैं ।
तब तजि छरछदा बदन अमंदा यह मकरंदा रिस बढ्ढैं ।
सनमुख ह्वै उठ्यौ ताहि नहट्यौ असि सौं कट्यौ छल पग्गौं ।
अब रंग्यौ अंगनि श्रोनित रंगनि नख रद जंगनि छत लग्गौं ॥१५०॥

दोहा—मदयंती कौ कर गहे कर सौं टेकतु खग्ग ।
मकरंदा मो पुत्र यह आवतु श्रमित सु अग्ग ॥१५१॥
हाइ हाइ धिक और यौं कहन लगी दुख पाइ ।
अति प्रहार अंगनि लगे रह्यौ रुधिर सौं न्हाइ ॥१५२॥

सोरठा—कामंदकि सौ बैन, वोल्यौ माधव तच्छनैं ।
उर मैं बढ्यो अचैन, भगवति मोकौं रच्छियै ॥१५३॥

यह सुनि बोली फेरि माधव सौं सो सिद्धिनी।
मन तें दुक्ख निवेरि आउ चले देखें प्रथम ॥१५४॥

दोहा—यौं कहि सिगरी नांचि कें सभा मध्धि सुखु पाइ।
पट के मधि नेपथ्य में जाति रही अतुराइ ॥१५५॥

अब या तीजे अंक मैं भई दुक्ख की बात।
सभा मध्धि नटवानि के थहराने सब गात ॥१५६॥

हरिगीत छद

वदनेसनंद प्रताप जाकौ तेज दिनमनि तूल है।
अब करन सो ताके बहादुर कुँवर आनंदमूल है।
तिहि हितु कवि ससिनाथ ने रच्यौ बिचारि निसक है।
माधवबिनोद सुग्रंथ कौ यह भयो तीजौ अंक है ॥१५७॥

इति श्री कवि सौमनाथविरचिते माधवविनोद-
नाटके सोकग्रहं नाम तृतीयोंकः ॥ ३ ॥

चतुर्थांकः

वसंततिलका छंद—कामंदकी पट उघारि फिर्यौ सु आई।
घुम्मंत माधव गहै अति मोह छाई॥
मदयंतिका सु मकरंद लिऐं सुहाई।
औ मालती बुधिसुरच्छिनीं स्यौं निकाई॥१॥

मधुभार छंद—मदयंति आप, उर भरे ताप।
उच्चरिय बैन, भरि नीर नैन॥२॥
भगवति-बिसाल, हूजै दयाल।
यामैं सरीति, उर सज्जि प्रीति॥३॥
इनि मौन मीति, निज प्रान मित्त।
तजिबौ बिचार, लिय सिंह मारि॥४॥
अरु मोहि रच्छि, लीनौ प्रतिच्छि।
नख दंत घात, लगि रहे गात॥५॥

सवैया

इमि देख दसा निजु रच्छक की किहिं भाँति सु धीरज को धरिऐ।
प्रन पारि महा मनुहारिन सौं निरधारि बिचार तहीं घरिए॥
मदयंतिका कामँदु जुग्गिन सों उचरी हित ढारनि कौं ढरिऐ।
बिनती सुनिके तुम सिद्धिन यों इन पै सुख बृद्धि कृपा करिऐ॥६॥

दोहा—बोली औरौ तच्छनै धिक जीवन है हाइ।
हम पै वनि आवत नहीं अब ह्याँ कछू उपाइ॥७॥
कामंदकि ने दुख सनी यह सुनि कै बतरानि।
दुवौं कमंडल नीर सौं छिरके सुत सम जानि॥८॥

सोरठा—मदयतिकैं निहारि, अरु पुनि यह बानी कही।
निजु अंचल सों व्यारि, तुम आतुर अब ही करौ॥९॥
यह-सिद्धिन की बात सुनि माधव मकरंद को।
कीनी पवन सिहात मालति अरु मदयंति ने॥१०॥

पावकुलक छंद

मकरंद सुदृग कमल उघारे। सावधान ह्वै चित्त मझारे।
माधव सौं बोल्यौ सुनि प्यारे। मैं नीको हौं खेद बिसारे॥११॥
ह्वै हर्षित मदयंति उचारी। ससि मकरंद पूर्न सुखकारी।
उद्दित भयौ, तिमिर दुख डगन्यौ। उर अँखियानि उजेरो बगन्यौ॥१२॥
बहुरि मालती माधव औरें। करि के हाथ सनेह बटोरे।
लवंगिका सौं बोली बानी। तोंहि बधाई है मनमानी॥१३॥
महाभाग सो चेतहि पायौ। भले भयो तेरो मनभायो॥
मालति की यह बात प्रवीनी। माधव ने उर में लिखि लीनी॥१४॥
माधव यौं अचिरज मैं सान्यौ। मकरंदहि यह बचन बखान्यौ॥
मित्र साहसी आउ पियारे। यों कहि मिल्यौ कलेस बिडारे।१५॥
कामदकी दुहुन के सीसनि। सूँघि उचारी बहुत असीसनि।
धनि हो जिए जु मेरे बेटा। दोऊ तजि कै कष्ट चपेटा॥१६॥
भली भई यौं और उचारी। कामंदकि की ओर निहारी।
सभा मद्धि मिलि के वे नच्ची। अंबर मनि भूषन तन सच्ची॥१७॥
ताल मृदंग बीन (औ) चंगनि। रह्यौ रंग भरि प्रेम सुढंगनि।
सब समाज करि पलक बिसारे। मानहुँ सुर भूलोक पधारे॥१८॥

सोरठा—मदयंती के कान, लगि बोली बुधिरच्छिता।
है यह वही सुजान, मै तो सों जाकी कही॥१९॥
यह सुनि कै सुख पाइ, निजु बोली मदयंतिका।
मै जानी तिहिं दाइ माधव सो ह्वै है वहू॥२०॥

चउरंग छंद पुनि बुधिरच्छी, उचरिय अच्छी।
हम ह्वै सच्ची, अब हित रच्ची॥२१॥
तब मदयंती, बरनिय संती।
तुम सम नारी, अति हितकारी॥२२॥
अनृत न भाखैं, धरमहि राखै।
हम तुम एकै। सहित बिबेकै॥२३॥

प्रमानिका छंद—माधवै निहारि कैं। चित्त मोद धारिकैं।
यौं कह्यौ पुकारि कैं। लाभ कौं निवारि कैं ॥२४॥
या महा प्रभाव सौं। मालती जु चाउ सौं।
नेह रीति पारियौ। सो भली बिचारियौ ॥२५॥

दोहा—यौं कहि कैं मदयंतिका अंतर बिरह बिसारि।
पुनि प्रीतम मकरंद की ओर लखी सुकुमारि ॥२६॥

धारी छंद—कामंदानि। चित्त आंनि।
यों विचार। कीन सार ॥२७॥

सोरठा—मदयंती मकरंद, मिले परस्पर द्रिगन सों।
यह हुव बात अदंद, दैव कृपा तें आजु हीं ॥२८॥

छप्पै—कामंद जुग्गिनि फेरि प्रगट यौं बुल्लिय बैंननि।
एरे सुत मकरंद साँचु कहि मंडित चैंननि।
कैसैं लायौ तोहि इहां ससिनाथ सुहावन।
मदयंती के प्रांन रच्छिबे कौं चितचावन।
यह सुनि वोल्यौ मकरंद पुनि सुनी नगर में बात इक।
सो माधव दुचितौ होइगौ तातैं धायौ ठांनि ठिक ॥२९॥
मोसौं अवलोकिता कह्यौ सुख पाइ अनंतहि।
कुसुमाकर के आजु आइबे के बिरतंतहि।
आवत मैं अवलोकि सिंघ नैं घेरी कन्या।
अति सुकुमार सरीर रूप गुन करिकैं धन्या।
मै निरखि ताहि अतुराइ कै दोर्‌यौ कर मै खग्ग गहि।
यह दैव जोग तें बच्चि गई तुम सब जानिति ज्ञान लहि ॥३०॥

सोरठा—सुनिकें यह वतरानि, माधव और सु मालती।
चिंता उर मै आनि, लगे विचारन तच्छिनें ॥३१॥
सिध्धनि कामंद नाम तिन यह कियौ बिचार मन।
मालतीय अभिराम तिहि दैवे की होइगी ॥३२॥

तोमर छंद—बोली वहुरि परकास। उर मध्धि मडि हुलास।
है पुत्र माधव आज। तो कौं बधाइय साज ॥३३॥

मालतिय कौं बुधिवांन। है दान समय सुजांन।
पहिलै बधाइय तोहि। इन दई है हित टोहि ॥३४॥
उचर्‌यौ सु माधव फेरि। सिद्धिनिय सौं हित हेरि।
अब मो हृदय अरु प्रांन। तुव भेट है हितवांन ॥३५॥
यह सुनि लवंगिय चाल। उचरी बखान रसाल।
मो सखी मालति आप। चाहति यही अनताप ॥३६॥
मदयंति अपने चित्त। किय यौं बिचार उचित्त।
है उत्तमन की रीति। बतरानि सजुत नीति ॥३७॥

दोहा—मन मैं चिंती मालती कहा सुन्यौ मकरंद।
जातैं माधव के हियैं सरसैगो दुखदद ॥३८॥
माधव पुनि मकरंद सौं बोल्यौ कहि मो मित्र।
कहा सुनी उद्वेग की तैंनें बात विचित्र ॥३९॥

सोरठा—इहिं औसर अतुराइ, एक पुरुप आयौ चल्यौ।
पट नेपथ्य डुलाइ, मदयंती सौं उच्चर्‌यौ ॥४०॥
हे मदयती तोहि, नंदन जेठे भ्रात नें।
कह्यौ सँदेसौ तोहि, सो तू सुनि मन लाइ कैं ॥४१॥

छप्पै—आजु हमारे धाम आपु आयौ छितिनायक।
भूरिवित्त के चित्त कियौ बिस्वास सुभाइक।
अरु हम ऊपर कृपा आपनी जगत प्रकासिय।
दई मालती मोहि भूप ने दुख्ख विनासिय।
री सु तू आइकै छिप्र ह्यां मंगलचारनि सज्जि अब।
जो जाकौं दैनौं होइ सो तू जानति है भेद सब ॥४२॥

मधुभार छंद—यह सुनि अलाप, मकरंद आप।
बोल्यौ विचित्र, सुनि महामित्र ॥४३॥
है यह सु बात, दुखदानि गात।
कहि सक्यौ नाहि, चपि हृदय माँहि ॥४४॥

सवैया

कान परी दुखदाइन बात सयान समूह निदान पर्‌यौ टर्‌यौ।
ए ससिनाथ मनम्मथ ने उर को परिवार हरैंई हरैं हर्‌यौ।
चित्रलिखी सी रही टक बाँधि बिचित्र सु मालती हाइ गरै कर्‌यौ।
भूलि गई सुधि गेह की, देह की, तेह बिसारि सनेह गरैं पर्‌यौ ॥४५॥

बड़ी चौपाई छंद

अन्यत्र—जब कह्यौ वचन प्रतिहार आनि कैं अपने जानि रसाले।
सो भयो मालती के उर अंतर बरछी तूल दुसालै।
यह बिधि नै कहा बनाई अनविधि यो मन मध्धि बिचारै।
पुनि भई चौकरी चूक मृगी सी कासौं दरद उचारै ॥४६॥

त्रिभंगी छद

कासौं उच्चारै दरद पहारै कौ निरवारै हितकारी।
दौऊ कर मीजै पितु सौं खीजै मन मे सीजै नव नारी।
नीरज से लोचन ह्वै रँग रोचन लागै मोचन जल भारी।
भीजो रतनारी सहित किआरी अंगिया सारी जरतारी ॥४७॥
जरतारो सारी हुव दुखकारी भूषन भारी को झेलै।
मालति कहलानी कौंति बिलानी भभरि भुलानी तिहिं खेलै।
तिरछौंही चितवै माधव मितवै जुग से बितवै पलक लगै।
कछु भई उदासी उसरी हाँसी कुल की फाँसी कंठ खगै ॥४८॥

दोहा—यह सुनि माधव मालती बिबरनता छबि छाइ।
नाचे दुवौ समाज में ब्याकुलता दरसाइ ॥४९॥
मदयंती पुनि हरषि कै मालति को भरि अक।
बोली अति मधुराइ के ह्वै के निपट निसंक ॥५०॥

सवैया

हम सो तुम सो हितु हो यह लेन दुभाँति कछू दरसाति सखी।
अब तो यह नातो नयो प्रगटौ उर आनंद की बरखा बरखी।
नित ही मिलि संग बिहारहिंगी सब आवन जान उपाधि नखी।
बिधि नै रचि राखी हुती पहिलै वह रीति सु नैननि आजु लखी ॥५१॥

छप्पय—हम तुम खेली संग मालती तब रज खेलति।
अब मों घर की भई सिरोमनि आनँद फेलति।
यह सुनि कामंदकी कह्यौ मदयंती सों हँसि।
तोहि बधाई होउ कहति हौं संकट को नसि।
तुव भ्रात नंदनहि मिली जो कुँवरि मालती गुन भरिय।
पुनि सुनि उचरी मदयंतिका तुव प्रसाद तै दुख टरिय ॥५२॥

दोहा—लवगिके तुव लाभ ते मेरे मन के अर्थ।
पूरे कीनै प्रेम सौं, है विधि परम समर्थ ॥५३॥
बोली बहुरि लवंगिका मदयंती सौं आप।
सखी हमारे हिए को निहचै निबर्यौ ताप ॥५४॥

तिलका छंद—मदयंतिय ने; गुनवंतिय ने।
बुधिरच्छिय सौं; उचर्यौ जिय सो ॥५५॥

बिजोहा छद—ब्याह के साज ते; सज्जनौ आज ते।
वेग ही चलिए; मोद मैं रलिए ॥५६॥

संजुता छंद

बुधिरच्छिनी इहिं बैन को; सुनि कै लहै चित चैन को।
उचरिय समो लखि पाइ कै; मदयंतिकै समझाय कै ॥५७॥
चलिए सखो अतुराइ कै; अबु और ख्याल भुलाइ कै।
इहि बिधि भाखि दुवौं जनी; उठि कै लसी छबि सौं सनी ॥५८॥

सोरठा—कामंदकि के कान, लगि उच्चरिय लवंगिका।
भगवति सिध्धिनिधान, निरख्यो कौतिक होतु जो ॥५९॥

सवैया

सुख के बरसाइ कै मेहनि कौं उर मे ससिनाथ दया परखै।
अँगिराइ के फेरि भुलाइ कछू सकुचाइ कै भौंहनि में बिलखै।
मदयंतिका औ मकरद दुवौ मनमथ्थ कठोर अतक नखै।
तिरछै अधमुद्रित नैननि सौ अरबिदनि से मुख मजु लखै ॥६०॥

दोहा—इहिं औसर नृप को मनुज, बोल्यौ अब इत आइ ।
मदयंती क्यौं करति है, तू अबेरि की दाइ ॥६१॥
पुनि बोली मदयंतिका बुधिरच्छिन सों बैंन ।
फिर कबहूं यह दरसिहै, प्रानेसुर सुखदैन ॥६२॥

तोमर छंद—बुधिरच्छिता अतुराइ, उचरी फिरौ समुहाइ ।
प्रभु होइगो अनुकूल, मिटिहै तबै द्दगसूल ॥६३॥
नृप कै मनुज के संग, मदयंतिका सउमग ।
बुधिरच्छिनि की बाँह, गहि दुरी पट के माँह ॥६४॥
पुनि तच्छिनै थहराइ, सुधि और सकल भुलाइ ।
माधौ हिए भरि ताप, लाग्यौ बिचारन आप ॥६५॥

सवैया

आस की डोरि रही बढ़ि के जु सु औचक आजु तटाक दै टूटौ ।
आधि औ ब्याधि अगाध महा अँग अंगनि में दुखदाइक जूटौ ।
होउ अनंग हियें कृतकृत्य रहो सुचितौ बिधि सोच ते छूटौ ।
हाइ न मेरी बसाइ कछू ऋतुराज हू लाज समाजनि लूटौ ॥६६॥

दोहा—जग में दुरलभ है सुजन जाके प्रेम समान ।
उलटि गयौ बिधि तौ ऽब ए है गति उचित निदान ॥६७॥

सवैया

जद्दपि सौंहै बिराजति पै न ठिकाने तऊ अजहूँ चित आवतु ।
नंदन को नृप नैं दिय मालती बैन सुन्यौ यह चैन घटावतु ।
औरै भयो रुखु तच्छन ही परपच्छिन के मन मोद बढावतु ।
सो वह भोर के चंद समान प्रिया मुख मेरी हियौ पजरावतु ॥६८॥
कामद सिध्धिन ने उर अंतर कीनौ बिचार सुन्यौ हितकारी ।
मालती माधव के मन मध्धि कलेस वढ्यौ इहिं औसर भारी ।
आस बिनास भई निहचै दुहुँ प्राननि तै अचका दुखहारी ।
खैंचि कै कान प्रमान कमानहि मारिहै वान मनोज खिलारी ॥६९॥

दोहा—प्रगटै बोली वहुरि यौ, सिध्धिनि कामद नाम ।
माधव सों परिहास करि, मंडित प्रेम ललाम ॥७०॥

सोरठा—माधव पूछौं तोहिं, तैं जानी हो चित मे।
मालति दैहै मोहिं, भूरिबित्त सुख पाइ कै ॥७१॥
माधव हियै लजाइ तब सिध्धिनि स्यौं उच्चरयौ।
नहिं नहि पै उर आइ खटकती ही वातें प्रथम ॥७२॥
इहि औसर मकरंद सिध्धिन सौं बोल्यो प्रगट।
थह संसय अनदद प्रथम दई ही माधवै ॥७३॥
कामंदकि तजि खेद सुनि बोली मकरंद सों।
मै जानति यह भेद जग मै सोउ प्रकासिहै ॥७४॥

दोहा—भूरिबित्त पै मालती माँगी जबै नरेस।
नंदन काजै तब्ब ही ताने कही सुदेश ॥७५॥
निज कन्या कै आप हो निहचै प्रभु महाराज।
ताको पूछत हो कहा बली गरीबनिवाजु ॥७६॥
यह सुनि कै मकरंद पुनि बोल्यो समौ निहारि।
ऐसे ही है बात यह देखौ चित्त बिचारि ॥७७॥
पुनि उचरी कामदकी राजपुरुष ने आय।
कही आजहूँ वात यह नृप ने दई सुभाइ ॥७८॥
है सुत बानी, तंत्र सों बँध्यौ सबै संसार।
ताते बानी मुख्य है पुन्यापुन्य बिचार ॥७९॥
भूरिबित्त ने प्रथम जो कह्यौ बचन लहि रीति।
है वह झूँठौ ही कहा समझैया सब नीति ॥८०॥

सोरठा—निहचै मालति नाहिं, निज कन्या महाराज की।
कन्यादानहिं माहिं नहिं नरपति सुप्रधान है ॥८१॥
तातैं सुत निरधार समझ्यौ चित्त बिचार यहु।
अरु तू मोहि असार, मानतु है उर में कहा ॥८२॥
तातै जतन अपार, मै नहचै कैं करौंगी।
जैसे माधव यार, तासौं मिलै सु मालती ॥८३॥
मधुभार छंद—मकरंद फेरि; उचरचौ सु हेरि।
तम कहति बैन; भगवति सुचैन ॥८४॥

नहिं झूंठ रंच; सो बिन प्रपंच।
मै कहतु ताहि; सुनिए उछाहि ॥८५॥

छप्पय—दया करति कै नेह तुम्हारचौ इहिं बालक पर।
जो विरक्त ह्वै चित्त द्रवे भगवति अब अरवर।
और तुम्हारो जतन सफल जग में सब लाइक।
अरु पुनि कहिए कहा प्रबल है त्रिभुवननायक।
वह चाहेगौ सो करइगौ है अंतरजामी निडर।
नहिं काहू कौ तासो चले वाही के बस चरअचर ॥८६॥

मधुभार छंद—इहि समय आइ। पट मै सुभाइ।
धुनि भई एह। मंडित सनेह ॥८७॥

दोहा—हे भगवति यह कही है भूरिबित्त की वाम।
लै मालति को बेगि, तुम घर आओ अभिराम।८८॥
यह सुनि कै कामंदकी बोली अति अतुराइ।
'उठि बत्से', यह सुनि सबै ठाड़ी भईं सुभाइ॥८९।

सोरठा—मालति माधव तब्ब हित करुना भरि दृगन में।
निरखन लगे अगब्ब, छिनकु विरह बिसराइ कै ॥९०॥

पावकुलक छंद—माधव मन में चिंतन लाग्यौ।
सिगरौ सुख्ख तनक में भाग्यौ।
मालति संग माधवै एती।
भई जात्रा दुख्ख निकेती ॥९१॥
कै यहि मोहि अचंभो भारो।
दैव मित्र ह्वै के अविकारो।
प्रथमहि एकु रूप सुख दैके।
अब दुख देत सत्रु सम ह्वै के ॥९२॥
मालतिहू मन मध्धि विचारी।
इतनौ ही प्रीति मै निहारी।
अरु मोको यानै ह्यॉ देख्यो।
इतनौई विधि ने अवरेख्यो ॥९३॥

संमोहा को भेद छंद—सुलवंगिका, गुभढंगिका ।
तिहिं यों कह्यो, दुख को लह्यो ॥९४॥

पावकुलक छंद—हाइ-हाइ मालति सुकुमारी ।
सोच सिंधु में पितु ने डारी ।
नंदन को जु मालती दीवौ ।
जानि पर्यौ दुर्लभ इहिं जीवौ ॥९५॥
मालति सोचन लागी मन में ।
ज्वाल विरह की जागी तन में ।
इतनीई सुख विधि ने दीनो ।
जीव जायगो दुक्ख अधीनो ॥९६॥
और तातहू निहचै मेरी ।
ह्वैहै सो औधूत करेरी ।
औरो घने दुक्ख फल पैहै ।
सुख समूल उर तें उड़ि जैहै ॥९७॥
दे हूं लंभी काहि अभागी ।
काके सरन जाउँ दुखपागी ।
को ऐसो मेरो हितकारी ।
जो यह विथा बटावै भारी ॥९८॥

दोहा—इतने में सुलवगिका बोलि उठी अतुराइ ।
आउ आउ इत मालती निजु घर चले सुभाइ ॥९९॥
यो कहि कामंदकि सहित भई सुपट की ओट ।
उर के मधि लागी रही दुसह मदन की चोट ॥१००॥

काव्य छंद—माधव मन के मध्धि विचारन लाग्यौ तच्छन ।
समाधान मो करत भगवती परम विचच्छन ।
सोच सिंधु में मगन रहैगी मेरो जीवनु ।
सो अब कहा कर्तव्य लग्यो है लोहू पीवनु ॥१०१॥
बिना मंत्र की सिध्धि जतन कछु सूझतु नाँहीं ।
ताते चल मरघट्ट काज कीजै तिहिं ठाँहीं ।

प्रगटै बोल्यो फेरि, अरे मो प्रिय मकरंदा ।
मदयंती को तोहि कछू खटकत मुख चदा ।।१०२।।
यह सुनि कै मकरंद मित्र माधव की बानी ।
आपु उच्चरयौ फेरि डीठि करि नेह बिकानी ।
कहा कहौं निजु बिथा जु मेरो उर में व्यापै ।
पैं मैं तोसों कहतु चित्त दै के सुनि आपैं ।।१०३।।
तिरछै चितई चलत सरस सिर सारी सरकी ।
ताहि न सकी सम्हारि बिथा बिछुरन की भरकी ।
अस्त बालमृग तूल दृगनि पुनि चंचल करि कै ।
सुधा सनी करि डीठि मनौ मेरो हित भरि कै ।।१०४।।

अन्यच्च सवैया

पाय दियौ चलिबै को उतै सिर तै इकलाई गिरी रँग सानी ।
ताहि न थामि सकी कर सौं ससिनाथ मनोज बिथा सरसानी ।
तच्छन और ही ढंग भयो अँग अँगनि को जड़ता परसानी ।
सो उर छाइ रही वह जो तिरछाइ बिलोकि निरचो लपटानी ।।१०५।।

मुक्तादाम छंद—कह्यौ यह बैन जबै मकरंद ।
तबै सुनि माधव बुद्धिविलंद ।
कियौ पुनि अप्पुनु पौं सु अलाप ।
जऊ उर हो अति मंडित ताप ।।१०६।।

सखी बुधिरक्षिन तोहि सुलभ्भ ।
न ताहित तें तुव काज दुलभ्भ ।
हिए वह चाहति तोहि निदान ।
प्रिया लखिहै फिर हू छबिवान।।१०७।।

फिर्यौ असु रच्छिय नाहर तंत ।
मिल्यौ तन सों तन और इकंत ।
छिनौ छिन तोहि लखी तिरछाइ।
भुलाइ निमेष सनेह बढ़ाइ ।।१०८।।

सु तो बिनु औरहि आप मिलै न।
दिनेस बिना जिमि कंज खिलै न।
इती सुन कैं उचरयौ पुनि बैन।
हितू मकरंद रतोपल नैन ॥१०९॥
चलौ उठि कै सरिता अवगाहि।
चलै अपने पुर में चित चाहि।
इतनौ कहि नाचि सभा तिहि मध्धि।
भली बिधि सो उर आनँद लध्धि।

दोहा—है यह संगम नदिन को मै जु कह्यौ हो मित्र।
सब दिस के आवत इहाँ तीरथ जानि पवित्र ॥११०॥

सवैया

जानि अनेक उमंगनि सौं कढि आवत केती तरंगनि न्हाइ कै।
अंगनि मै लपटाइ रहे पट भीजि लटै लटकै छबि छाइ कैं।
रंचक है न छिपाउ कछू ससिनाथ चितै चितु लेत चुराइ कैं।
कंचन बेलि सी बाँहनि मै तिय चोजनि सों जु उरोज दुराइ कै ॥१११॥

दोहा—इतनौ कहि पट मै दुरे माधव अरु मकरद।
सबै समाजिक लखि रहे आगम और अदंद ॥११२॥
नाहर तै मकरंद ने लिय मदयती रच्छि।
या ही चौथे अंक मै कीनौ प्रेम प्रतच्छि ॥११३॥

हरिगीत छंद

वदनेसनंद प्रताप जाकौ तेज दिनमनि तूल है।
अब करन सौ ताकै वहादुर कुँवर आनँद मूल है।
तिहि हित्त कवि ससिनाथ ने रच्यौ बिचारि निसक है।
माधवबिनोद सुग्रंथ कौ यह भयौ चौथौ अंक है ॥११४॥

इति श्री कविसोमनाथविरचिते माधवविनोदनाटके सादूँल-
संभ्रमो नाम चतुर्थांकः॥४॥

पंचमोंकः

दोहा—पट उघारि कै सभा मैं आई बिकट सरूप।
क्रूर कपाल सुकुंडला नभ के गमन अनूप ॥१॥

नराच छंद—रटैं जु नित्य नाम औ चरच्चइ पिछांनिहै।
तिन्हैं प्रसिध्धि सोमनाथ अष्ट सिध्धि दांनि है।
अनेक सक्ति संग संग हीं रहै घमंडि सौ।
स्वतंत्र ब्रह्म रूप जै अखंड तेज चंड सौं ॥२॥

दोहा—यों महेस कौं बर्नि कै नभ मैं हिऐं उताल।
अपनी गति लागी कहन सो कुंडला कपाल ॥३॥

सवैया—जानति जोग की रीति सु यौं
हिय अंबुज मध्धि समध्धि लगाइकै।
देखति हौं ससिनाथ समान ही
आपुनपो जग दुख्ख भुलाइकै।
नाडिन हूं के उदै पहिचांन तै
अंबर के पथ मैं अतुराइकै।
घोर घटानि की है लपटानि सो
काटति जाति चली छबि छाइ कै ॥४॥

नराच छंद—जरें मसाल सें बिसाल नैंन नील वर्न मै,
कराल अंत्रजाल (औ) कपाल कंठ कर्न मैं।
हलें धुजा सुरंग छोरि व्यारि जोर खग्गि कै,
खडक्कई सु मंडुमालहू उरोज लग्गि कै ॥५॥
जऊ घटानि सौ जटानि कौ सु जूट छुट्टियौ,
.. .. अंग मैं लपट्टियौ।
बजति बारबार चारु छुद्रघटिकावली।
लसत्ति यौ उदंड हो कपालकुंडला भली ॥६॥

जरत्तिहीं चिता अनेक तासु बासु पाइ कै।
धुवाँनि तें लखी धरन्नि ओर डीठि लाइ कै।
मसान के नजीक थान चंडिका कराल को।
निहारि कै कियौ बिचार ख्याल कूर काल कौ ॥७॥
अघोरघंट मो गुरू कहो हुतो सुनाइ कैं।
जप्यो जु मंत्र हो सु आज पूर्यौं सुभाइ कै।
कराल चंडिका निमित्त चारु इक्क नागरी।
चुराइ लाव भेंट को कपालकुंडला अरी ॥८॥

दोहा—सो जाहर या नगर में मंजु मालती नाम।
अब ताही को ढूँढिहौं करनो गुरु को काम ॥९॥
इत उत को निरखन लगी चलतें मधि अकास।
डीठि परचौ माधव तहाँ आवतु निपट उदास ॥१०॥

सोरठा—मधि मसान में ताहि, देखि चित्त इमि चिंतयौ।
को साहस अवगाहि मोहनि मूरत जातु है ॥११॥
कुवलय दल से स्याम, अंग अंग रज रँगमगे।
चंद वदन अभिराम, मंद मंद डग देतु है ॥१२॥
बाम हस्त नर मांस, लटकै सोनित सौं सन्यौ।
या कौ निपट प्रकास, साहस जान्यौ जातु है ॥१३॥
यौं बर्नन करि आप, क्रूर कपाल सु कुंडला।
पुनि उर हरपि अनाप, मन मैं निजु लागी कहन ॥१४॥

दोहा—कामंदकि के मित्र को, है यह पुत्र प्रचड।
हमै कहा चलि आपनौ, कीजै काज अखंड ॥१५॥
इतनै मैं संध्या भई, ताहि निहारि उदार।
लागी यों बर्नन करन, छावतु जानि अँध्यार ॥१६॥

हरिगीत छंद

लगि पवन झोंकनि अति अरोकनि धूम जो मढ़ि लाइहै।
ज्यों वृच्छ वेलिनि सघन केलिनि तिमिर मंडिय आइ है।

जनु नवल नीरनि बहु गँभीरनि मग्न छिति न लखाइ है।
आरंभ ही तजि दंभ रजनी दियो आपु जताइ है ॥१७॥

विष्कुंभक:

यों कहि कपाल सुकुंडिला पट मैं दुरी अतुराइकै।
पुनि तच्छनै पटु टारि माधव प्रगट भो तिहिं भाइ कै।
यौं कहत निजु उर मद्धि प्रतिपल निपट ही ललचाइ कै।
कब भेंटिहै वह मोहि प्यारी नेह को सरसाइ कैं ॥१८॥
लखि जाहि नैन अचैन सिगरे एक बेर भुलाइहैं।
नहि और काज समाज कोऊ चित्त में लहराइहैं।
खुलि केस मंडित बदन मेरे हिए उरज अराइ कै।
मो अंक मैं बिन संक लसिहै प्रिया कबहूँ दाइ कैं ॥१९॥
अथवा कलंकबिहीन सुंदर चंद के हरि सार कौं।
बिधि नै रच्यौ मुख सुबिधि जाको साजि बुध्धि अपार कों।
जुत मत्त मधुकर कमल दल से नैन बिरह बिडारनै।
इक बेरहू लखि बहुत मानौं किए तन मन वारनै ॥२०॥

सवैया

है प्रतिबिंबित चित्रित कै निजु बाननि सौं जड़ि काम दई है।
सोच निरंतर तंतु के जालनि सी कै किधों अति ठीक ठई है।
कै ससिनाथ की सौंह बिरंचि नै भावती बीज समान बई हैं।
नैक इते उत होत नही सु किधौं उर अंतरलीन भई है ॥२१॥

दोहा—इहिं औसर नेपथ्य मैं, कलकल भयो अखंड।
माधव नें मन मैं कह्यौ, है मसान परचड ॥२२॥

मंथान छंद—दिख्यौ मरघ्घट्ट। तिठ्ठाँ निघरघट्ट।
खिल्ली करैं भूत। ठठ्ठे मजब्बूत ॥२३॥
कित्ते करै तत्ता। दै ताल उन्मत्त।
कोऊ किलक्कंत। कढ्ढैं सितद्दंत ॥२४॥
कित्ते भखैं अंत। ज्वालै उछारत।
कोऊ करैं गान। लै तंडवी तान ॥२५॥

कित्ते जुटैं जंग। मैदानि के ढंग।
कित्तों जुटैं दोइ। भैसानि से होइ ॥२६॥
कित्ते करै नट्ट। ह्वै कट्ट बे हट्ट।
गज्जै मनौं मेह। सज्जैं प्रलै तेह ॥२७॥
कित्ते पियै रत्त। लै अप्पनी घत्त।
कित्तै लियें नाग। कुट्टै चहूँ भाग ॥२८॥
चब्बैं घनै हाड़। कै चित्त की चाड़।
नैना मनौं ज्वाल। बैताल के बाल ॥२९॥
लै हत्थ हड्डीनि। खेलै कवड्डीनि।
चाटैं चरब्बीन। मानैं परब्बीन ॥३०॥
चूसैं घनैं आंत। कंपाइ कै गात।
दंतावली भार। सज्जै हियैं हार ॥३१॥
आनद सौं मढ्ढि। जिव्हा कितै कढ्ढि।
उच्छारईं मुंड। यों रच्चि के झुंड ॥३२॥
औ अंत्र के जाल। कै जुग्गिनी माल।
हत्थै धरा देति। नट्टी कला लेति ॥३३॥

दोहा—रे रे भूत बिताल जे सदा बसत मरघट्ट।
लेउ सु बेचत मांस हौं नर कौ सत्र अकट्ट ॥३४॥
पुनि कलकल नेपथ्य मैं भई सुनत यह बैंन।
माधव पुनि चिंत्यौ हियैं है मसान भयदैंन ॥३५॥

त्रिभंगी छंद

बैताल उचक्कैं कहूँ मचक्कै आनंद छक्कैं छल धारैं।
भूतन के छौना कहूँ डरौंना मुंड खिलौंना उच्छारैं।
मुख पावक झारैं अबर जारै अंग उघारैं डर डारैं।
प्रेतन की नारी अरु तन कारी दै दै तारी किलकारैं ॥३६॥

सोरठा—नच्च्यौ माधव आप, दै परिक्रमा सभा में।
लहि निर्खेद अनाप इत उत निरख्यौ चित्त मैं ॥३७॥

दोहा—है मसान के कूल यह कैसी नदी भयाँन।
सघन बृच्छ वल्ली तिमिर छायौ जहाँ अमान ॥३८॥

नाराच छंद—उलूक के घमंड ते घरघ्घरैं प्रचंड हैं।
शृगाल के समूह और फिक्करैं उदंड हैं।
सरित्त बीच हाड़ पुंज नीर बेग मंडिकैं।
बिहद्द सद्द सज्जई भयद्द ठौर छंडि कैं ॥३९॥

मधुभार छंद—नेपथ्य मध्धि; पुनि खेद लध्धि।
यह धुनि ससोक; प्रगटी अरोक ॥४०॥
हे हाइ तात। मालतिय गात।
अब नास होतु। हुव दुख उद्योतु ॥४१॥
सुनि यह उचार। माधव उदार।
चित्यौ सु एह। मंडित सनेह ॥४२॥

छप्पय—दुखित कुररी कूक तुल्लि यह सद्द सुहावन।
परिच्चित सो मन हरै श्रवन को मोद मढ़ावन।
अरु भ्रमाइ कै हियो करै बिह्वल अँग अंगनि।
कंपि डगमगं पाइ भई गति निपट कुढंगनि॥
यह कहा बात मरघट्ट मैं रंचक नहिँ समझी परति।
पै है कराल चंडी निकट तहँ ते धुनि प्रगटीय अति ॥४३॥

सोरठा—इहां होतु बलिदान, नर-पसु-पुंजनि के सदा।
तातें चलि तिहिँ थान, देखौं अब ह्वैहै कहा ॥४४॥

दोहा—पट उघारि के सभा मैं आए निठुर निदान।
दुचित कपाल सुकुंडला, घंट अघोर भयान ॥४५॥
अरु बलि दैबे के लिये करि मालती तयार।
चदन ललित लगाइ कै पहिराए हिय हार ॥४६॥

मधुभार छंद—मालतिय वाल। पुनि तिही काल।
इमि रटिय बैन। जल पूरि नैन ॥४७॥

पावकुलक छंद

हाय तात अरु मात अयाने। अब मो प्रान सु करत पयाने।
हाय लवंगिय सखी सहेली। अब तू रहियो दुखित अकेली ।।४८।।
हाय हाय कामद मो प्यारी। सुधि करिहै तू मोहि दुखारी।
मों सौ हित्त करत दुख पायो। मेरो हू न भयो मनभायो ।।४९।।
माधव नै सो आइ निहारी। पहिचानो कि वहै यह नारी।
मृग के दृग सम नैननिवारी। जो कुसमाकर मध्धि विहारी ।।५०।।
याकों अब यह मार्‌यो चाहै। पाप रीति उर में अवगाहै।
क्यौं हूँ याको जीव बचैयै। अति उताल विक्रम दरसैयै ।।५१।।

सोरठा—तच्छन सो अवधूत, नाम अघोराघंट है।
देवी को मजबूत, स्तुति करिवें की सुरुख हुव ।।५२।।

काव्य छंद—चंचल कुंजर चर्म तासु नख लग्गयउ चंदहि।
चंड माल के मुंड सु धारे पाइ अनंदहि।
खिलखिलाइ कै हँसैं भूतगन तिन कौ उट्टत।
त्रस्त हत्थ जुग जोरि चहूँ दिस विनय उघट्टत ।।५३।।
तृतिय नैन की ज्वाल भ्रमत मैं इहि विधि राजइ।
मनहुँ उग्यो अल्लात चक्र मंडल छबि छाजइ।
दब्बित भुजनि भुजंग फुक्करैं गरल उग्गिलत।
नरपंजर ध्वज नौंक उरझि तारागन छिल्लत ।।५४।।
कर गति सौं उख्यारि तुंग उच्छारति पव्वइ।
धरनि पग्ग उद्दंड कोल अहि कच्छप दव्वइ।
देत ताल उत्ताल वीर वेताल किलक्कत।
जिनकै उदभट रंग अग सितदंत चिलक्कत ।।५५।।
होत सद्द अनहद्द गौरि उर में लहि सकै।
सौमनाथ के कंठ लिपटि कै बिलसी अंकै।
यह जु तुम्हारो नृत्य अव्व उत्तम छलवारो।
ह्वै सहाइ अतुराइ हमारो काज सुधारो ।।५६।।

मधुभार छंद—माधव दयाल। सो लखि हवाल।
चित में बिचार। यों किय उदार ॥५७॥

छप्पय—है पापिन के मध्धि भूरिबसु की यह कन्या।
ठाढी है इहिं विध्धि सील गुन करि कै धन्या।
जुग स्यारनि के बीच मृग्गि ज्यों दुख्ख समोई।
जिहि ठाँ लखिए नाहि सहाइक दूजौ कोई।
है धिक्क धिक्क अनइष्ट अति समयौ आवतु डीठि अब।
बिधि तुव गति जानी जाति नहिं दूर करति सब कौ गरब॥५८॥

बड़ी चौपाई

तहँ बोली बहुरि कपालकुंडला मालति सौं रसभीनौं।
है प्यारौ तोहि ताहि सुधि कर लै वचन सत्य कह दीनौं।
सुनि निपट कठोर काल अब तोको चाहत है अतुरानै।
नहिं नैंको दया हमारे मन में हम निजु काज लुभानै ॥५९॥

तोमर छंद—सुनि मालती यह वैन। उर मध्धि चूरति चैन।
सरसाइयो हित मैन। उचरी सजल करि नैन ॥६०।

बड़ी चौपाई

अब हाइ हाइ हे प्यारे माधव हौं परलोक पधारति।
तू निहचै मेरी सुध्धि कीजियौ पूरि हिए मैं आरति।
जग जाकौ प्रीतम जन सुधि करई सो तौ अमर सदा ही।
अरु जाहि न सुमिरै कोऊ ताको जीवन मरन वृथा ही ॥६१।

प्रमानिका छंद—सुनै सु वैन यों जवै। कपाल कुंडला तवै।
गरव्व चित्त धारिकै। कह्यौ सु यौं पुकारि कै। ६२॥

दोहा—माधव सो अनुरक्त है यह रंकिनी निदान।
बड़ो खेद यह पाइकै विकल करै मो प्रान ॥६३॥

मधुभार छद—उर में अग्ग। कर ले खग्ग।
अघ्घोर घंट। उचरचो सुरंट ॥६४॥
जप सिध्धि हेत। वलि तोहि देत।
तू सहित फूल। यहि करि कवूल ॥६५॥

अघोरघंट बर्नन

हरिगीत छंद—सिर केस ठढ्ढे अहि लपट्टे अंग कज्जल रंग है।
जनु ज्वाल जग्गै लोम पग्गैं नैन निपट कुढंग है।
अरु दंत कढ्ढे पाइ गढ्ढे हत्थ में करबाल है।
मालतिहि डट्टै नहिं अहट्टै मनहुँ क्रुध्धित काल है।।६६॥
जिव तोहि प्यारो है उदारो ताहि बेगि पुकारि लै।
हित स्वाद चक्खैं तोहि रक्खै जाइ जो घर नारि लै।
तुव सीस खंडित मोद मंडित चडिकै बलिदान दैं।
नहि जान कच्चिय बात सच्चिय उच्चरौं सिव आन दै॥६७॥

सवैया

घंट अघोर को घोर स्वरूप निहारि कै सागर सक समोई।
घेरी अहेरी ने बाल मृगी सम एक ही बार सबै सुधि खोई।
कंपित गातनि बात कढै न पर्यौ तिहि डीढि सहाइ न कोई।
माधव नाम उचारि तबै तहँ मालति हारि पुकारि कै रोई।।६८।

हरिगीत छंद

अपने सु नामै सुनि ललामै तजि बिरामै तेह सों।
बरि चपल डग्गै चल्यौ अग्गैं निपट पग्गैं नेह सौं।
तिहि धूत दिख्यौ रिसि बिसिख्यौ मूढ लिख्यौ तब्बई।
माधव सरक्कस गहि बरक्कस भरि करक्कस गब्बई।।६९॥
सिर मसक पग्गहि काढ़ि खग्गहि उच्चर्यो ललकारि कैं।
रे छंडि याको मंडि मोसो जुध्ध कुध्धिहि धारि कैं।
मालति सुलक्छन नारि को गहि हत्थ माधव तच्छनैं।
अघ्घोरघंटैं समर टंटैं करौ न्यारौ तच्छनैं।।६०॥

सवैया

हालै हियौ हिलकीन कै संग भई अँग अंगनि में निवलाई।
छूटि कैं बैनी गए खुलि कुंतल आनन पै अलिकावलि छाई।
ऊँची उसासनि ग्रासु चपै अँखियाँन तैं आँसू की धार बहाई।
दुज्जन को घर घालती या विधि मालती माधव के ढिग आई।।७१॥

आभीर छंद—मालति अति सुकुमारि। माधव ओर निहारि।
यौं उचरी अकुलाइ। तच्छन औसर पाइ ॥७२॥
अब तू मोकौं रच्छि। पिय माधव परतच्छि।
यौं कहि कै अतुराइ। लिपटी विरह नसाइ ॥७३॥
माधव बोल्यो फेरि। तासौं दुःख निवेरि।
प्यारी मति भय मानि। मो ढिग पहुँचो आनि ॥७४॥
संका मरन मिटाइ। तोकौं लियौ छुटाइ।
मैं तेरो अति मित्र। आगे हो सु विचित्र ॥७५॥
यह पापी निरधार। निज करनी को पार।
पावैगो इहिं ठार। अबही कछु न अबार ॥७६॥

मधुभार छंद—यह बचन कान। सुनि कै भयान।
अघघोर घंट। उचर्‌यौ सुरंट ॥७७॥
यह कौन आइ। उर छोह छाइ।
मेरो बिगार। कीनौ अपार ॥७८॥

प्रमानिका छंद—सुनै सुबैन यों जबै। कपालकुंडला तबै।
कह्यौ अघोरघंट सों। प्रचंड बुध्धि रंट सों ॥७९॥

दोहा—हे प्रभु याको मित्र है, यह माधव बलधाम।
कामंदकि के सुहृद कौ पुत्र महा अभिराम ॥८०॥
इहिं उद्भट मरघट्ट में पल को बेचनहार।
जाको विक्रम आपहू लखि लीनो इहिं ठार ॥८१॥

पावकुलक छंद

माधव असुवा पूरित नैननि। × × ×
सावधान ह्वै कहि निजु बातनि। प्यारी क्यों व कँपावति गातनि ॥८२॥
यह सुनि बचन मालती बोली। प्रेम पंथ ते नेकु न डोली।
इतनी तो प्यारे हाँ जानति। सो अब साँची बात बखानति ॥८३॥
मैं अपनी सुअटारी सोई। जागी इहाँ दुख्ख में भोई।
जानति नाहिँ कौन लै आयो। तुम सौं सिगरी भेद बतायो ॥८४॥

तुम ह्यां कहौ कौन बिधि आए। अंग अंग दुख सौं अधिकाए।
यह सुनि कै मालति की बानी। पुनि बोल्यौ लज्जित सुखदानी ॥८५॥
तोसो ब्याह होन के काजैं। मांस लियौं साहस के काजै।
बेचत ही प्रेतन के हत्थै। मरघट में नहिं कोऊ सत्थै ॥८६॥
तेरी टेरि रुदन की सुनिकै। आयो हौं आतुर सिर धुनि कै।
यह सुनि कै मालति हित गरुवै। लागी फेर कहन मुख हरुवै ॥८७॥
मेरे लिये अकरने कामहि। करतु फिरै यहि निपट उदामहिं।
रंचक नही मरन भय माने। निहचै प्रान सनेह बिकाने ॥८८॥

सोरठा—माधव बोल्यो फेरि, न्याइ काकतालीय हुव।
या को लायो घेरि कोऊ हों आयो इहां ॥८९॥

दोहा—दुष्ट चोर के खग्ग तै, यों उबरी सुकुमारि।
चंदकला ज्यों दैवबस राहु बदन कौ फारि ॥९०॥

सवैया

यह मैं इत आइ बचाइ लई जु मुनीसनि के मन कौं करखै।
इहिं औसर मेरी भई गति यौं ससिनाथ बिना तिहिं को परखै।
कहलाइ अतंक बढ़ाइ छुहाइ अचंभित ह्वै करुना बरखै।
कबहूं रिस पावक सौं पजरै कबहूं सुख पाइ हियौ हरखै ॥९१॥

मल्लिका छंद—उच्चर्‌यो अघोर घंट। पाप कर्म काज रंट।
माधवै सक्रुध्ध हेरि। चित्त तें दया निवेरि ॥९२॥

दोहा—रे डिंभी द्विज मरन ह्यां, क्यौं आयो इहिं भाइ।
नाहर घेरी मृगी पै, ज्यों मृग नेह बढाइ ॥९३॥
अब तेरो सिर खंडिहौं, गहि कर खग्ग उदंड।
रुधिर पियैगी प्रेतिनी, फरकैगौ धर चंड ॥९४॥

अमृतगति छंद—यह सुनि माधव उचर्‌यौ। हितगति मै नही बिचर्‌यौ।
सठ मति रंट अधरमी। तनक न तो उर नरमी ॥९५॥

कबित्त—चारे त्रिभुवन को चुराइ कैं रतन अरे
सार बिनु जगत को करिबो बिचार्‌यो है।

रहतो कछू न पुनि लोकनि के लखिबे कौ
याके बंधवनि को मरन बिस्तार्यौ है।
दृगनि बनाइबे को बिधि कौ परिश्रम सो
बिफल कर्योई हुतौ खग पट तार्यौ है।
जीरन अरन्य के से बृच्छ रहि जाते नर
अदरप तैंने कंदरप करि डार्यौ है॥९६॥

अन्यच्च—बड़ी चौपाई

अरु अति हित करनी सखी खेल में प्रगट सरस परिहासैं।
नव सिरस कुसुम की देती उर में मन में पूरि हुलासैं।
तब लटपटाइ अरसाती अंगनि चंदवदन पियराती।
तू ताहि खग हति रह्यौ चहतु हौ जगत मध्धि उमदाती॥९७॥
सोरठा—तातें मो भुजदंड, यह उद्यत जमदंड सो।
अब ही पर्यौ अखंड, पापी तेरे मुंड पर॥९८॥

मल्लिका छंद—तच्छिनै अघोर घंट। उच्चर्यौ निराट रंट।
मारि मारि दुःखदानि। रंचहू दया न ठानि॥९९॥
मालती हिये सिराइ। कोटि दुःख को बहाइ।
उच्चरी समौ बिचारि। मित्त माधवै निहारि॥१००॥
साहसीक नाह मोर। हो प्रसन्न चित्त चोर।
रच्छि मोहि सुख्ख दीन। दुष्ट तें बचाइ लीन॥१०१॥
प्रमानिका छंद—फिर्यौ अघोर घंट सों। महा अकर्म टंट सों।
कपालकुंडला रटी। नही सयान में घटी॥१०२॥
मल्लिका छंद—ईस सावधान चित्त। हत्थ लै कृपान थित्त।
या दुरजन कौ बिनासि। आप नैन को हुलासि॥१०३॥

अथ माधव को बचन मालती सों और अघोरघंट कौ बचन कपालकुंडला सों।

सवैया

डरपै मति धीरज राखि हियैं दरसावतु विक्रम तोहि नयौ।
जिमि कुंजर कुंभनि कौ मृगराज बिहंडतु चंड छुधित्त भयौ।

अरु पब्बय कूटनि खंडतु ज्यौं गहि वज्र पुरंदर रोस रयौ ।
अब त्यौं निरवारंतु या अनभग्गहि खग्ग प्रहारनि छोह छयौ ॥१०४॥

दोहा—भई भूरिबसु कौं खबरि, गई मालती खोइ ।
सुनत बात तन मन गयो कहर जहर सौं भोइ ॥१०५॥
हुकम कियौ तब फौज सों, मंत्री नै अकुलाइ ।
चहूँ ओर तें घेरि सब यह बन ढूँढौ जाइ ॥१०६॥

भुजंगी छंद—चले बीर बाँके तुरगानि चढ्ढे ।
पगे स्वामि के काज आनंद मढ्ढे ।
इराखी अरब्बी तुरक्की सुरंगे ।
कुरंगानि की चालवारे उतंगे ॥१०७॥
बलख्खी अवल्लख्ख लख्खी कुमैता ।
बड़े मोल कल्लोल सोजे समेता ।
हरे और नीले सुसीले सुराजी ।
बड़े अच्छ के स्वच्छ कच्छी रु ताजी ॥१०८॥
धरै बिप्र छत्री पर-त्री न जानैं ।
सजें सेल समसेर ढालै अमानैं ।
दुहूँ ओर तूनीर हत्थे कमानैं ।
उदारे कटारे कसे बुध्धि ठानें ॥१०९॥
दवट्टै दई मत्थ पै हत्थ दिन्नौं ।
अरन्यैं चहूँ ओर तें घेरि लिन्नौं ।
बिहंट्टे भए नट्ट तें त्रास पग्गे ।
बिभुक्के भजे जंगली जंतु जग्गे ॥११०॥

दोहा—इहि औसर नेपथ्य में, कलकल भई अखंड ।
सुनन लगे सब कांन दै कैसौ सद्द घमंड ॥१११॥
फेरि सद्द नेपथ्य मै या विधि भयौ बिसाल ।
सो अब आगे कहतु हौं दूरि होइ नटसाल ॥११२॥

पावकुलक छंद—अरे मालता ढूँढनहारे ।
सुनियौ मनुज सबै हित भारे ।

भूरिवित्ता को अति सुख दानी ।
तुम सों कामंदकि नें बानी ॥११३॥
इहि बिधि कही कराला धामैं ।
घैरो जाइ करौ न बिरामैं ।
विना अघोरघंट इहि काजैं ।
और न कोऊ करै अलाजैं ॥११४॥

भुजंगी छंद—सुनै बैन यों तब्ब सब्बै छुहानै ।
लियौ घेरि के चंडिका के सथानैं ।
प्रवीना तहाँ मालती दिख्ख पाई ।
नवेली मनौ हेम बेली सुहाई ॥११५॥
जलज्जात से नैन भारे अन्यारे ।
जिनप्पै मृगम्मीन मम्मोल वारे ।
मनम्मत्थ के बान की सान टारें ।
मनी हेम के अंग में साज धारें ॥११६॥
रकत चंदना खौरि लग्गी लिलारें ।
करब्बीर के कंठ में हार डारें ।
लसै अंग में वास सौगंध पूरे ।
झलक्कै पहुँच्चेन में चारु चूरे ॥११७॥

प्रमानिका छंद—कपाल कुंडला रटी । नहीं सयान में घटी ।
समौ हियै बिचारिकैं । उछाह उग्ग धारिकैं ॥११८॥

पावकुलक छंद

हे प्रभु साहस उर में धारौ । सावधान विक्रम परतारो ।
चिंता सबै चूरि करि डारौ । करिहै ईस सहाइ तुम्हारौ ॥११९॥

मल्लिका छद—वैन एसु कान धारि । आपनौ समौ निहारि ।
फेरिए अलाज रंट । उच्चर्‍यौ अघोरघट ॥१२०॥

सोरठा—है विक्रम को काल, अब तो पहँ संसय नही ।
सुनि कुंडलाकपाल, सावधान मैं निपट हौं ॥१२१॥

प्रिया छंद—उच्चरी मालती । प्रेम यो पालती ॥

मल्लिका छंद---हाइ तात लोभवंत। हाइ कामंदानि संत।
कौन सो कहौ सुभेद। जो हियै अनंत खेद ॥१२२॥

दोहा—नृप के नर आए निरखि, माधव कियौ बिचार।
इन सौं मिल के मालती, सुचिती होइ अपार ॥१२३॥
तब हौं घटअघोर कौ, इन के देखत आज।
खंड खंड करि डारिहौ, गहि करवाल दराज ॥१२४॥

बडी चौपाई

तिय मालति और कपालकुंडला दोऊ दुहूनि उसांरी।
पुनि कीनौ नृत्य समाज मध्य लै गति उद्दंडउ सारी।
द्विज माधव और अघोर घंट पुनि जुध्ध अत्थ समुहानै।
अब सावधान हो अरे अधरमो, ऐसे बचन बखानै ॥१२५॥

त्रिभंगी छंद

जिमि सक्र अलग्गौ प्रहरै नग्गौ त्यो अब खग्गो पटतारौं।
रे पाप घमंडे तुव अंग चडे खड विहंडे करि डारौं।
ते जल बिन रोहू सम भरि छोहू फरके लोहू लपटानै।
भखि स्यार सिहानै तिन्हैं अघानै फिरै अमाने दपटाने ॥१२६॥

दोहा—इतनौ कहि कै ह्वै गए सिगरे पट की ओट।
कौतिक निरखन की रही, समाजिकन कैं चोट ॥१२७॥
आएं जन जे सचिव के ते लहि मालति संग।
गए आपनो काज करि उर में सज्जि उमग ॥१२८॥

सोरठा—मालति कों लै साथ, चले सु जब परधान जन।
तब तिय उच्चरी गाथ, मन ही मै मुरझाइ कै ॥१२९॥

सवैया

सब कोऊ इतै उत डीठि परै जिनकी गति हेरि हिऐं डरिऐ।
ससिनाथ कहै बिनु मित्र बिचित्र अनूठी उसासनि को भरिऐ।
उपचारि बिचारत हौं सु फुरै नर ही अब तो गिनती धरिऐ।
न बसाइ कछू गुरु लोगनि सौं कहि रे मन हाइ कहा करिऐ ॥१३०॥

दोहा—हैं यामें मरघट्ट को बर्नन महा भयान।
अरु अघोराघंट को खंडन क्रूर निदान ॥१३१॥

हरिगीत छंद—बदनेसनंद प्रताप जाको तेज दिनमनि तूल है।
अब कर्न सो ताके बहादुर कुँवर आनँद मूल है।
तिहिं हित्त कबि ससिनाथ ने बिरच्यौ बिचारि निसंक है।
माधवबिनोद सुग्रंथ कौ यह भयौ पंचम अंक है ॥१३२॥

इति श्री कवि सोमनाथविरचिते माधवविनोदनाटके मसान बरननं
नाम पंचमोंकः ॥५॥

षष्ठांकः

दोहा—फेरि कपाल सुकुंडला पट उघारि के आइ।
बोली ऐसे रंग में लोचन कुध्ध रचाइ १॥
रे पापी तैंने हत्यो मेरो गुरू दयाल।
इहाँ मालती के लिये करि के क्रोध कराल ॥२

पध्धरी छंद—तू मोहू हनतो तव समत्थ।
पै तजिय जानि त्रिय धरम अत्थ।
सो मेरे क्रुध्धहि को बिरत्थ।
जिति जानैं माधव मूढ़ मत्थ ॥३॥

विषधर भुजंगनी के समान।
हौं बची जगत में सावधान।
फल याकौ तोको होनहार।
निज नैननि लखिहै अघ उघार ॥४॥

दोहा—इहिं औसर नैपथ्य में प्रगट भयो यह सद्द।
सुनन लगे सब श्रवन दै कौतिकवार अहद्द ॥५॥
या मालति के ब्याह को प्रकटौ मंगलचार।
बिप्र वेद मंत्रनि पढ़ौ नैंकु न करौ अबार ॥६॥

सोरठा—और सचिव की नारि, देवि नगर की पूजिबै।
यह मालति सुकुमारि, ताहि संग लै जाहु अब ॥७॥

प्रमानिका छंद—हिऐ समौ बिचारि कै। कराल क्रोध धारि कैं।
नही सयान में घटी। कपालकुंडला रटी ॥८॥

दोहा—भला मालतो ब्याह के, होउ सुमंगलचार।
समझि लैहुँगी समै पै, या कौ प्रगट अकार ॥९॥
इतनौ कहि पट में दुरी सो कुंडला कपाल।
तब ही आयो टारि पट, कलहंसका उताल ॥१०॥

मधुभार छंद—पुनि सभा मध्धि । हित हिऐं सध्धि ।
यों कह्यौ बैन । अति सुक्ख दैन ॥११॥
मकरंद मोहि । पठयो अछोहि ।
यह कही बात । हुलसात गात ॥१२॥
मालतिय जब्ब । आवै सु तब्ब ।
हम सों सुभाइ । कहियौ सु आइ ॥१३॥
मेरो सुमित्र । माधव बिचित्र ।
ताके नजीक । मै जातु ठीक ॥१४॥

दोहा—नगरदेवि के भवन में, माधव अरु मकरंद ।
दुरे जाइ कै प्रथम ही, सज्जि हिएँ छरछंद ॥१५॥

सोरठा—माधव अरु मकरंद, पट उघारि आए तहाँ ।
मंडित दुख रु अनंद, माधव यौं बोल्यो बहुरि ॥१६॥

बड़ी चौपाई

जब प्रथम ही दिन निहारी नैननि मालति प्रान तें प्यारी ।
उर तब तें प्रगट भई है अति ज्वाल मनस्मथ वारी ।
अब कामंदकि की नीति होइगी भली कि अनरथ कारी ।
यह जा. निमित्त मो चित्त सोच के चढ़े हिंडोरे भारी ॥१७॥

तोमर छंद—यह बात सुनि मकरंद । उचरचौ सु आनँदकंद ।
जो कही भगवति नीति । सो नाहिने विपरीति ॥१८॥
बुधिवांन हैं निरधार । कामंदकी सुनि यार ।
बतराति है जुग मित्र । इहि भाँति परम विचित्र ।१९॥
ताही समै कलहंस । आयो चतुर कल हंस ।
ढिग आय बोल्यो बैन । तहँ दुहुन को सुख दैन ॥२०॥
तुम को बधाइय नाह । चित मध्धि लहिय उछाह ।
मालति सु आवत अव्व । संजुत समाज सरब्ब ॥२१॥
यह सुनत उचरचौ फेरि । माधव कलेस निवेरि ।
कलहंस सौं मुसिक्याइ । रे कहत सांच सुभाइ ॥२२॥

मकरंद ने अनखात। माधवहि उचरी बात।
क्यों झूठ जानत चित्त। आई तबै सुनि मित्त ॥२३॥

दुंदुभी नद्दति नद्द। .... ।
गंभीर भेरि मृदंग। बज्जें सहस्रनि संग ॥२४॥

धुनि पूरि श्रवनन माहिं। कछु और सुनिए नाहिं।
इत आउ मोखनि देखि। माधव सु बुद्धिविसेखि ॥२५॥

दोहा—माधव सुनि छिनु दुंदुभी, उर में बढ्यौ अचैन।
तच्छन हिय धरिक्यौ भरकि, फरक्यौ दच्छिन नैन ॥२६।

कुछ औचट सी टरि गई निपट सगुन पहिचानि।
तब द्विज ने विधि सौं कही, तुव गति परै न जानि ॥२७॥

सोरठा—नगर देवि की फेरि, लग्यौ वड़ाई करन सो।
तिय हिय की औसेरि, ताहि न वानी कहि सकै ॥२९॥

छप्पय—सुंदर कुंदन रंग अंग उतमंग कला ससि।
लोचन लाल विसाल, माल उर सोभ रही लसि।
अंबर मुकुट अमंद कनक भूपन मनिमंडित।
सिंहासन पर थित्त कित्ति ब्रह्मंड अखंडित।
सुर किन्नर नर मुनि जोरि कर, वरनै संजुत वेद विधि।
जय त्रिभुवन की रानी सुखद, सर्वानी आनंदनिधि ॥२९॥

तोमर छंद—करि यौं वड़ाइय चाहि।
पुनि लगौ देखन ताहि।
कलहंस तिहि छिन आइ।
यह कह्यौ बैन सुनाइ ॥३०॥

दोहा—हे प्रभु माधव यहे लखौ, सोभा परम विसाल।
सेत छत्र जनु कमल हैं फूले अंबर लाल ॥३१॥

हलत चौंर तिनके निकट मनु फरकत है हंस।
उड़िवै के हित अनगनै बिहंगनि के अवतंस ॥३२॥

बड़ी चौपाई

बहु हथिनी चढ़ी नर्त्तकी नच्चति अति अनंद सरसांनी।
अरु बरन वरन के अंबर तन में सुभ सुगंध परसांनी।
मनि कंचन जटित जगमगैं भूषन दिसनि किरनि बरसांनी।
कटि किंकिनि की झनकार होत है मो नैननि दरसांनी ॥३३॥
यह सुनि कैं कलहंसक की बानी माधव अरु मकरंदा।
पुनि देखन लगे तमासौ दोऊ परे प्रेम के फंदा।
पुनि बोलि उठ्यौ मकरंद ता समैं, भूरिबित्त बड़भागी।
है जाकी यह संपत्ति सुहेली जगा जोति सौं जागी ॥३४॥
दोहा—पुनि बोल्यौ कलहंस सौं, कौतिक निरखौ और।
और पास जाके लसै महा छबिन की झौंर ॥३५॥
छंद—घटा समान अंग गोल कुंभ ते सुढंग हैं।
भुसुंड सुंडि पै बिचित्र चित्र पाँच रंग हैं।
सिरौ बिसाल भाल पै सुबर्न तार संगिनी।
सफूल कर्न मूल चौंर द्वै मनों तरंगिनो ॥३६॥
बनाति की ललित्त झूल हैम फूलवंति है।
अनेक घंट की घनंक खेद कौं दरंति है।
कनक्क की जँजीर पाइ मध्धि ते झनंझनै।
बन्यौं नवीन आसनौं जड़ाव जेब सौ सनै ॥३७॥
उदित्त मेरु पै मनौ प्रकासवांन भान है।
तिही सु मध्धि मालती त्रिया बिराजमान है।
लवंगिका सुहावनी सखी सु चौंर ढारती।
महा प्रवीन औतरी मनौं द्वितीय भारती ॥३८॥
मनीन के अनंत साज अंग में लसंत हैं।
× × × ।
करैं विचार चित्त यौं सुरी सबै निहारि कैं।
न और या समान त्री लखी सु भूमि झारि कैं ॥३९॥
सु सिंधुरी सवार कै प्रधान भूरिबित्त ही।
दई पठाइ मालती समौ विचारि हित्त ही।

अरच्चिवे निमित्त आगदेश कौं उमंडि कैं।
उचित्त साज संग दै महा विनोद मंडिकै।४०॥
अनेक रंग अंबरै सजै सुपत्तिको रहै।
अभित्त रच्छिवे अरथ्थ भीर चारि ओर है।
पुकारि चोवदार नैं दई सुकोर वंधि है।
रहैं सवै सलूक सौं अनूक वुध्धि नंधि कै॥४१॥

सवैया

चहुँ ओर सु कौतिक होतु इतो, न कहूँ मन को गति घेरी घिरै।
मुकतामनि भूपन, अंवर हू, तन दूषन जानि वनी विखिरै।
ससिनाथ मनोहर माधव को रसना मैं वसी रट एक थिरै।
परि सोच समुद्र न पार लग्यै, तिय के हिय मांझ रई सी फिरै॥४२॥
नव फूलन ओर नहीं निरखै, अनखै जु सुगंध लग्यो लट मैं।
सुनि कै धुनि आवज साजनि की उरझी रतिराज के संकट मैं।
विधि नैं अनभावरि भेद रच्यो पजर्यो तन जातु जरी पट मैं।
इक प्रीतम नाम लग्यो रट मैं अरु मूरति आनि वगी घट मैं॥४३॥

वड़ी चौपाई

मृदु अमल कपोलनि लसति सिताई दरसति अंग लटाई,
नहि इत उत डिगति कमल सी अँखियाँ कौतिक वुध्धि हटाई।
इहि विध्धि भांवती नैं निजु मन की प्रथम लगनि प्रगटाई।
अव मेरे जान नांहिनैं याके रंचक हू कपटाई॥४४॥

सुगति छंद—पुनि मकरंद। मिनु छरछंद।
उचरिय वैन। सगवगि चैन॥४५॥
प्रीतम देखि। वुध्धि विसेखि।
तिय के अंग। है इमि ढंग॥४६॥
भूपन सध्धि। परवस लध्धि।
फूलनि भेलि। ज्यों कुस वेलि॥४७॥
अरु इशनारि। दिय वैठारि।
यह सुनि वात। हरपित गात॥४८॥

माधव फेरि। उचर्‌यौ हेरि।
उतरिय अब्ब। इभि तें सब्ब ॥४९॥

दोहा—सिद्धिनि और लवगिका लिऐ मालतिय संग।
आवति है इत को चली, छुटित सुगंध तरंग ॥५०॥

सोरठा - आई मधि समाज, पटि उघारि कामंदकी।
अरु मालती सलाज, आई और लवंगिका ॥५१॥

घारी छंद—उच्चरी सु कामदानि।
यों हिए सुबुध्धि खानि ॥५२॥

दोहा- सफल होइ मेरौऽब श्रम अरु बिधि होइ सहाइ।
मदन होउ कतकृत्य अरु, ए जुग मिलौ सुभाइ ॥५३॥

प्रिया छंद- उच्चरी चित्त में। मालती हित्त में ॥५४॥
प्रान कों तज्जिए। रीति सो सज्जिए ॥५५॥
पैं न मो कालहू। लेइगो हालहू ॥५६॥

सुगति छंद—सु लवंगिका। सुभ ढंगिका।
चित यों कह्यौ। दुख को लह्यौ ॥५७॥
यह मालती। प्रनपालती।
बिरहै भरै। उर में जरै ॥५८॥

दोहा- लिये पिटारी हाथ में, पट उघारि प्रतिहारि।
आई रंग समाज में, यौं पुनि कह्यौ बिचारि ॥५९॥
सचिव भूरिबसु ने कही, सुनौ भगवती ताहि।
गहनै पठए भूप ने ले के तिन्है उछाहि ॥६०॥
देवी के पग छूइ कै मालति के प्रति अंग।
पहरिय यौं अब व्याह कौ है मंगल सउमग ॥६१॥

घारी छंद—यौं सुबैन कामदानि।
उच्चरी सुबुध्धिखानि ॥६२॥

पावकुलक छंद

नृप ने उचित काम यह कीनौ। भूषन पुंज पठाइ जु दीनौ।
है मंगल को समय उदारौ। प्रतिहारी दरसाइ सबारौ ॥६३॥

सुनि प्रतिहारी खोलि पिटारी । दरसावन लग्गिय सुखकारी ।
यह सित चारु सुगंधनि सान्यौ । अरु यह उत्तरीय मन मान्यौ ॥६४॥
अरु ए प्रति अंगनि के भूषन । यह मुक्तनि कौ हार अदूषन ।
अरु अवतंस कुसुम को रूरो । अरु यह चंदन सौरभ पूरो ॥६५॥
कामंदिक मन मध्धि बिचारी । ए भूषन मनिमय द्युतिधारी ।
मदयंतिकै दिखैहैं नीकैं । मकरंदा मेरो हित ही कैं ॥६६॥
यौं मन में कहि प्रगट बिचारी । सो कामंदकि गुन उजियारी ।
यौं ही करिहै सुचितै रहिऐ । ऐसौ जाइ सचिव सौं कहिऐ ॥६७॥
इतनो सुनि प्रतिहारि सिधारी । दुरी जाइ पट में दुनिवारी ।
तब कामंदकि सिध्धिनि बोली । लवंगिका सों बुध्धि अमोली ॥६८॥
दोहा—लवंगिकै तुम मालतिहि लै मठ भीतर जाइ ।
भूषन ए प्रति अंग में सजियौ सहित उछाइ ॥६९॥
सुगति छंद—सु लवंगिका । सुभढंगिका ।
तिनि यों कह्यौ । सुख को लह्यौ ॥७०॥
सोरठा—भगवति तुम कित जाति, सो मौं सौंऽब जताइए ।
बिनु जाने अकुलाति, मेरी बुध्धि समौं निरखि ॥७१॥
धारी छंद—यौं सुनत्त कामदानि ।
उच्चरी सु सिध्धिखानि ॥७२॥
दोहा—हौं इन भूषन वसन की, करती रच्छा जाइ ।
ग्रंथ रीति परमान सौं, ए वढि मोल सुभाइ ॥७३॥
इतनी कहि कामंदकी दुरी वसन में जाइ ।
कौतिकवारे लखि रहे, उर अंतर ललचाइ ॥७४॥
प्रिया छंद—उच्चरी । मालती ।
प्रेम कों । पालती ॥७५॥
दोहा—लवंगिका अब एक तू, है मेरौ परिवार ।
और न कोऊ तीसरौ, दुःख-निवारन-हार ॥७६॥
सुगति छंद—सु लवंगिका । सुभढंगिका ।
पुनि उच्चरी । हित रुच्चरी ॥७७॥

संजुता छंद—यह देवि मंदिर देखिए। मंडित प्रकास विसेखिए।
चलिए तहाँ अतुराइ कै। यौं कहि गईं जुग चाइ कै ।७८॥
मकरंद हो तिहिं धाम मैं। माधव समित्ति अराम मैं।
सो माधवै समुझाइ कै। उच्चरयौ औसर पाइ कै।७९।
अब दुवो ओट सुथंभ की। बैठे सुमति तजि दंभ की।
यो भाखि आपुस मै तवै। छिपि गए पुतिलहि कै ढवै ॥८०॥

सुगति छंद—सु लवंगिका। सुभढंगिका।
पुनि उच्चरी। हित रुच्चरी ॥८१॥

मधुभार छंद—हे सखि सभाग। यह अंगराग।
अरु फूल माल। सौरभ बिसाल ॥८२॥

संजुता छंद

यह वात सुनि कै मालती। हित को हिएँ प्रतिपालती।
उचरी कहा इन कौ करौं। कहि बेग औसर कौं भरौं ॥८३॥
पुनि उच्चरी सुलवंगिका। मालतिय सौं सुभ ढंगिका।
तुव मात ने अब जान कै। पठई इहाँ सुख मानि कै ॥८४॥
करि देवि पूजन चाइ कें। मंगल समौ ठहराइ कै।
सुनि मालती इमि वैन कों। उचरी वढ़ाइ कुचैन कौं ॥८५॥
दुख देत मो कहँ क्यौं अरी। कहि बात संका सों भरी।
सखि, तोहि रंच दया नहीं। अरु करतु मोह मया नहीं ॥८६॥
सुनि के लवंगिय फेरि कै। उच्चरी सन्मुख हेरि कै।
कछु कह्यौ चाहत बात को। तो सों लियो निज घात को ॥८७॥
पुनि मालती उचरी तवै। लहि के सयानप के ढवै।
मो मंदभागिन सों सखी। कहि जो कछू तैने लखी ॥८८॥

दोहा—माधव सो मकरंद ने कहौ तहाँ यह बैन।
अरे, मित्र तैने कछू, सुन्यौ बिसारि अचैन ॥८९॥
पुनि वोल्यौ मकरद सौं माधव यौं अकुलाइ।
याके उर संतोष नहि, लई विरह नै छाइ ॥९०॥

सोरठा—तजि कै संक अतंक, देवि भवन के मध्धि ही ।
लवंगिकै भरि अंक, पुनि यौं उचरी मालती ॥९१॥

सवैया

बालपनै तें सखी सुनि भांवती, मो अरु तोहि सनेह महा रह्यो ।
आपुस मै करुई बतरानि भई कबहूं न, विनोद सदां लह्यो ।
मैं अब सो मरिवे के समै यह माँगति तोपै छिपाउ कहा रह्यो ।
माधव को मुख चंद मनोहर मो मय ह्वै लखि यौ सुख सौं गह्यो ॥९२॥

सोरठा यौं करिकै बतरानि, सचिव दुलारी मालती ।
रोई हिलकी टांनि और बात विसराइ कै ॥९३॥

दोहा—ऐ बातें सुनि कै तहाँ, माधव परम प्रवीन ।
मकरंदा निजु मित्र सौं, बोल्यौ प्रेम अधीन ॥९४॥

कलहंस छंद—दुतिहीन फूल समान प्रान खिलावनै ।
अरु और इंद्रिनि कौं जु मोद बढावनै ।
मन को सकेलि सुभाइ एक तलावनैं ।
विधि नै दिए सु बनाइ बैन सुहावनै ॥९५॥

प्रिया छंद उच्चरिय मालती ।
प्रेम कौं पालती ॥९६॥

कलहंस छंद—परलोक मै सुनि मोहि सो परवीन है ।
जिहि त्रिध्धि खेद लहै नही अति छीन है ।
विधि सोइ तू अलि प्रीति सों निजु लीजियौ ।
निहिचै यही उपकार मो पर कीजियौ ॥९७॥
अरु औरहू जग काज नाहि भुलावई ।
पुनि प्रेम तें मन कौं रतो न डुलावई ।
करियौ सु ज्यौं विचरै न मोत निकेतनै ।
कृतकृत्य यौं सखि होहुँगी तुव हेत नै ॥९८॥

मालती छंद—फिरचौ मकरंद । सनै उर दंद ।
कह्यौ यह बैन । रतोपल नैन ॥९९॥

वडो उर धारि। सहै दुख नारि।
कछू न सुहाइ। सनेह बिकाइ ॥१००॥
सु माधव आप। सनें उर ताप।
कह्यौ हरवाइ। हितूहि सुनाइ ॥१०१॥

सवैया

उर मांझ निरास भई मुरझाइ चलै न कछू जिहि कौ वस है।
सुनि ता मृगलोचनि की वतरानि भयौ इमि प्रांननि मैं रस है।
सरसाइ दया कबहूँ अतुराइ बढ़ै दुख ताहि हियौ न सहै।
कबहूँ बरसै सुख मेह अरे दरसै रतिबाल्लभ कौ जस है ॥१०२॥

मालती छंद—लवगिय फेरि। कही मुख हेरि।
हिऐं निरधारि। समै सु बिचारि ॥१०३॥

दोहा—अब या मगल मैं कहा कहति अमंगल बात।
फिरि न सुनौंगी मालती यह तेरौ उतपात ॥१०४॥

प्रिया छंद—उच्चरी मालती। प्रेम कौं पालती। १०५॥

दोहा—निहचै तोकौं प्रिय भयौ मालति जीवौ आलि।
प्यारी भई न मालती कहा कहति घर घालि ॥१०६॥
लवंगिका उचरी वहुरि सगिबगि हिएँ सनेह।
कछु तोसौं चाहति कह्यो मति सरसावै नेह ॥१०७॥
सुनि पुनि उचरी मालती, उर तै अंचल टारि।
नैंक आपनै द्रिगन सौं मेरी दसा निहारि। १०८॥

सवैया

औरनि ही पै हजारनि बार अरी सुनि मेरी दसा निजु कांननि।
जीवनु कौ विसराइ कै लोभ सहै अजहूँ जु मनोज के बांननि।
× × × ×
ता मनभावन की गुन कीरति गावत ही निरवारिहौं प्रांननि ॥१०९॥

सोरठा—यौं कहि कै अतुराइ, सचिव दुलारी मालती।
लवंगिका के पाइ, सीस लगाइ सु रहि गई ॥११०॥

मुक्तादाम छंद—निहारि सुमालति की यह रीति।
कही तव माधव ने गहि नीति।
भरयो तिय के हिय प्रेम अपार।
बखानि सकै रसना न उदार ॥१११॥
तिहो छन माधव सौं करि सैन।
कही सुलवंगिय ने हँसि वैन।
इहाँ अब आउ हरैं धरि पाइ।
रच्यौ बिधि ने यह औसर आइ ॥११२॥
दियौ मकरंदहि तू समझाइ।
लसौ तिहि ठौर सु माधव जाइ।
कह्यौ तव माधव ने सुख पाइ।
भली करिहौं जु कह्यौ तुहि दाइ ॥११३॥
इतो सुनि कै उचरयो मकरंद।
नजीक अरे यह आनँदकंद।
हिऐ धरि माधव वैन रसाल।
भयो तिहि ठा थित बुध्दिविसाल ॥११४॥

सोरठा—बहुरि मालती बाम, लवंगिका सौं उच्चरी।
हो प्रसन्न अभिराम, मेरी सखि मनभावती ॥११५॥

सवैया

कहि री तजि संक कलंक न तोहि न मैं यह बात सुनैं डरिहौं।
निजु कुंकमभंडित सीसहि खंडि सु देविहि के पग पै धरिहौं।
ससिनाथ मनोज बिहाल करै इहि ओज करालहि क्यौं भरिहौं।
पन तैं अपने कौं नहीं टरिहौं बिनु प्रीतम जी के कहा करिहौं ॥११६॥

मधुभार छंद—यह दसा देखि। बुधि कौं बिसेखि।
माधव अगव्व। उचरयो सु तव्व ॥११७॥

कलहंस छंद—अब छोड़ि साहस बानि कौं नव कामिनी।
× × ×
तुव बात ए रसहीन जो बिरहै भरी।
दुख देति मोहि अनंत फाँसिय सी परी ॥११८॥

बहुरचौ लवंगिय सौं उचारी मालती।
उर मध्धि चंद चकोर ज्यौं प्रन पालती।
गहि पाइ जो अब तोहि भाखति बात कौं।
नहि ताहि तूऽब, र लंघि री सजि घात कौं ॥११९॥

दोहा—मालति की बतरानि सुनि, माधव हरषित अंग।
बोलि उठ्यौ हहराइ यौं, पूरित बिरह तरंग ॥१२०॥
कहा कहौं जो मै सहे तुव हित मदन अतंक।
है सुंदरि यह काम करि मोहि भेटति भरि अंक ॥१२१॥

प्रिया छंद—उच्चरी। मालती। प्रेम कौ। पालती ॥१२२॥

बड़ी चौपाई छंद

अब तैनें कही दया करि मोसौं मेरे हू मनमानी।
यौं कहि कै उठि सहसा अलबेली तासु कंठ लपटानी।
फिरि बोली तेरौ पश्रिम दरसन होतु न मोहि सयानी।
सखि मो तुव कंठ कंठ मिलिवे तें मै यह सत्य बखानी ॥१२३॥
उर हरखित ह्वै पुनि कुँवरि मालतो बोली नेह बिकानी।
सखि, तेरे अंग और से मौकौं आजु लगै सुखदानी।
× × × ×
हैं कछु कठोर कछु कमल कोस सम कोमलता परसानी ॥१२४॥

दोहा—सखी जानि कै मिलि रही, माधव सों नव नारि।
लगी सँदेसौ कहन पुनि, नैंननि तै जल ढारि ॥१२५॥

सवैया

तू अपनै कर जोरि दुवौ, सिर पै धरि नेह अनंत बढ़ाएं।
ता मनरंजन सौं कहनावति मेरी इती कहियौ अकुलाएँ।
पंकज पुंजन कौं निदरै द्रिग औ मुख चंद जु तो छबि छाएँ।
सो न विलोकि लियो भरि डीठि रही मन की मन मै ललचाएँ॥१२६॥
चारु अनेक मनोरथ ही रथ मै पथ मैं दिन रैनि बिताए।
और कछू चरचा न रुची सखियाँनि जऊ अति कांन लुभाए।

चदन चंद्रक चूरि मिलै दुखदाइ कहूँ अँग अंग लगाए।
एती उपाधि सही न तऊ अब मो दुखिया के भए मन भाए ॥१२७॥
दोहा—ताते सखि नित मो हितू, करियौ तू वहु वार।
अब मो पापिनि को हियौ किय निरास करतार ॥१२८॥

सवैया

यह माधव हाथ रची वकुलालि सुगंध छटा छहराइ गई।
उचिरी रुचि सौं उनि मोहि दई तव मैं हित सों गहराइ लई।
सुनि मो सम जानियौ याहि सखी जव चाह हिऐँ लहराइ नई।
इतनौ कहि कंठ ते माल उतारि सु माधव कौं पहिराइ दई ॥१२९॥

दोहा—माधव कौ मुख लखि सरकि, लज्जा संक समेति।
नच्ची रुचि सो मालती, जनु चपला गति लेति ॥१३०॥
माधव नें मधुराइ तव, कही ओट मौं आप।
वड़ो हर्ष सरस्यौ हिऐँ, घट्यौ मदन कौ ताप ॥१३१॥

सवैया

वौनें उरोज कठोरनि सौं मसकी छतिया भुज मे भरि लैकै।
कंठ सौं कंठ लगाइ रही ससिनाथ कहै अनि जो हित कै कै।
चंदन औ हरिचंदन चद्रक चारु सिवाल मृनाल मिलै कै।
मो प्रति अंगनि की इन मांनहूँ सीचि दई है तुचा सुख दैकैं ॥१३२॥

प्रिया छंद—उच्चरी। मालती। प्रेम कौं। पालती ॥१३३॥

दोहा—बड़ौ अचभो यह भयौ, कासौं कहौं सुनाइ।
लवंगिका ने मालती छली वुध्ति सरसाइ ॥१३४॥

मधुभार छंद—यह सुनत वात। माधव सिहात।
उच्चरिय वैन। वरसाइ चैन ॥१३५॥

सवैया—भावती तू अपनीयें विथा
ससिनाथ भली विधि सौं कहि जांनति।
और की पीर गँभीर सरीर की
ताहि नहीं तनकौं पहिचांनति।

देति उराहनौं मेरे निमित्त
सखी कौ इते पर लाज बितांनति।
मो जिय तेरे सनेह को आस
रह्यौ अब लौं थिर क्यौं हठु ठाँनति ॥१३६॥
दाह उदंड मनम्मथ कौ
तन पै दिन रैनि अखडित झेल्यौ।
तो मिलिवे के विचारनि मैं अरु
मैं मन वार हजारन पेल्यौ।
ज़ीव रह्यौ तुव नेह को आस
उसासनि सों हिय मास उचेल्यौ।
ए अब क्यौं न चितौति इतै
तिय ज्यौं पहिलैं हित खेल सु खेल्यौ॥१३७॥

सुगति छंद—सुभ ढंगिका। सु लवंगिका।
तव उच्चरी। हित रुच्चरी॥१३८॥

दोहा—है उराहनें जोगि तू, हे सखि सचिवकुमारि।
तातें तोहि उरांहनौं, दीनौं बिरह बिसारि॥१३९॥

तोमर छंद—सुनि उच्चरचौ कलहंस। तव पाइके हित गंस।
रमनीय संगम बैन। अव होत आनँद दैन॥१४०॥

सोरठा—लवंगिका सौं वैन, वोल्यौ फिरि मकरंद तिहिं।
वड़भागिन सुख दैन, है यौं ज्यौं माधव कहत॥१४१॥
निपट दुखित दिन राति, यानैं वितए विरह मैं।
तू दयाल दरसाति और कहा कहिऐ बहुत॥१४२॥
कंकन वधनि पांनि, सफल होउ या बाम कौ।
अरु सुख को सरसानि, बिबिधि भाँति सौं देहु विधि॥१४३॥

सुगति छंद—सु लवंगिका। सुखरंगिका।
तिनि यौं कह्यौ। दुख कौं दह्यौ॥१४४॥

दोहा—कंकन बधन कौ कहा मन मैं गहत बिकार।
प्रन पूरी यह मालती टरै न कोउ प्रकार॥१४५॥

अपनै कीनै नेह कौ सज्जैगी निरवाह ।
याकी मति चिंता करौ उर मैं गहौ उछाह ॥१४६॥

सुमति छंद—पुनि मालती । जसु पालती ।
मन मै बकी । छिन क्वैं तकी ॥१४७॥
अब हौ मरी । हा दुख भरी ।
बच अटपट्यौ । इंहि ने रट्यौ ॥१४८॥
नहि कन्यका । जसु धन्यका ।
इमि सज्जई । कुल लज्जई ॥१४९॥

दोहा—इतने मैं कामंदकी पट उघारि कै आइ ।
मालति सौं यौं उच्चरी अपनौ औसर पाइ ॥१५०॥
ऐसी डरपति क्यौं हिऐं हे मालति नव वाल ।
इंहि ओसर नहिं चाहिऐ तोकौं संक विसाल ॥१५१॥
यह सुनि कै सो मालती कामदकि सौं आप ।
सुंदर कुंदन बेलि सी लिपटि गई भरि ताप ॥१५२॥
जुगनि नै मालतिय को कर सों चिवुक उठाय ।
कही बात यह प्रेम सौं पहिली सब समझाइ ॥१५३॥

सवैया

पहिलै अनुराग भयौ अँखियानि विलोकि बिनोद महा सरस्यौ ।
फिरि प्रांननि सौं मिलि प्रांन रहे परि अंगनि अंगनि सौं परस्यौ ।
दुवरानि हूँ तेरे समान भई दिन रैनि मनोरथ कै तरस्यौ ।
यह माधव सो नव जोवनवत मनंमथ बांननि कौ अरस्यौ ॥१५४॥

अन्यच्च

पियरांनि लसी अँग अंगनि मै उर अंतर प्रेम अछोर छयौ ।
जिहि काज तजे सुख साज सवै जग में उपहास कठोर ठयौ ।
ससिनाथ मनोहर मूरति माधव देखि वही यह चोर नयौ ।
छर छंद बिना तुव आँनन चंदहि ठाढौ चितौतु चकोर भयौ ॥१५५॥

दोहा—जडता कौं तजि मालती, मनमथ होइ सकाम ।
अरु बिधिहू की चतुरई सफल होउ अभिराम ॥१५६॥

आभीर छंद—मालति सौं यह बैन। सिध्धिनी कह्यौ सचैन।
तब सु लवंगिय आप। उचरिय चतुर अनाप ॥१५७॥

छप्पै—कृस्न चतुर्दसि रैनि बिच्च अद्भुत मरघट्टै।
दुग्गथांन के अग्ग तौलि भुजदड अहट्टै।
खंड्यौ सो परचंड घट अघ्घोर अधर्मी।
भए ज्वाल के तूल लाल लोचन गहि गर्मी।
हे भगवति सो सुधि सज्जि उर कंपि यहै अब नागरी।
कछु और न मन मै आनिऐ तुम तैं को गुनआगरी। १५८॥

आभीर छंद—पुनि मन मै मकरद। उचरचौ आनँदकद।
धन्नि लवंगिय धन्नि। तो सम तिय नहि अन्नि ॥१५९॥
औसर पै बतराइ। जानति नेह बढ़ाइ।
क्यौं नहि सुधरै काम। जहँ तो सी गुनधाम ॥१६०॥

प्रिया छद—उच्चरी। मालती। धर्म कौं। पालती ॥१६१॥

धारी छद—हाइ तात। हाइ मात। कौंन ख्याल। मौ दयाल ॥१६२॥
कामदानि। बुध्धिखान। उच्चरी सु। ध्याइ ईसु ॥१६३॥

आभीर छंद—सुत माधव परवीन। सुनि मो बचन कुलीन।
यह सुनि माधव फेरि। उचरचौ सनमुख हेरि ॥१७४॥
आज्ञा करिऐ अब्ब। सो मै करहुँ सरब्ब।
यह सुनि सिध्धनि आप। लागी करन अलाप ॥१६५॥

दोहा—सचिव भूरिवसु की जु यह, कन्यारत्न उदार।
बिधि, मनमथ अरु मैं दई तोकौं सो यहि बार ॥१६६॥
यौं कहि कै अखियानि तैं दीनै अँसुवा ढारि।
तब बोल्यौ मकरंद तहँ औसर हिऐँ बिचारि ॥१६७॥
भगवति तुव परसाद तैं तौ हमरे सब अर्थ।
सफल भऐ निहचै सु अब, सटके बिरह अनर्थ ॥१६८॥
भगवति ए तो दृगन तैं क्यों छोडति जलधार।
यह सुनि अँसुवा पौंछि सो पुनि बोली सु बिकार ॥१६९॥

सवैया

नेह भयौ तुम सौ इन सौ कुल सील समान फलौ जग माहीं।
मानियौ मोहि दुवौ वहु भाँतिनि जानि समौं छरछंद विना ही।
नीरस होइ न आपुस मैं करियौ कवहूँ न अनीति वृथा ही।
दंपति के सुख कौं लहियौ परजंकनि मैं गहि कै गलवाही ॥१७०॥
दोहा—यह कहि पायन परन कौं जुगिन इच्छा कीन।
कहा करति हौ, यौं कह्यौ तव माधव परवीन ॥१७१॥

सवैया

उत्तमता कुल की, अरु संपति, सुंदरता, गुन की अधिकाई।
सील प्रसिद्धि औ सिद्धि वड़ी अरु बुद्धि औ विद्यनि मध्धि ढिठाई।
ए जगमोहन है इन में वकसे जु विरंचिइ कौ चितु चाई।
सो तुम तौ सब की सिरमौर कहा करिऐ पुनि और वड़ाई ॥१७२॥
चारी छंद-फेरि वैन कामदानि। उच्चरी सु बुद्धिखानि ॥१७३॥
दोहा—हे सुत माधव, मालती, लवंगिकै, अभिराम।
यह सुनि तीनहु उच्चरे अज्ञा करहु ललाम ॥१७४॥
इन की निरखि सुसीलता महा मोह दरसाइ।
फिरि बोली कामदकी नीति रीति समझाइ ॥ ७५॥
तिय कौं पति, पति कौं तिया, है तन, धन अरु प्रान।
तातैं आपुस मैं सदाँ रहियौ प्रेमनिधांन ॥१७६॥
आभीर[१] छंद—यह सुनि कै मकरंद। वोल्यौ बुध्धिबिलंद।
भगवति तुमने सत्ति। वात कही हित रत्ति ॥१७७॥
तहाँ लवगिय फेरि। उचरी हित सौं हेरि।
अज्ञा करिऐ आप। करिहौं सो तजि ताप ॥१७८॥
प्रिया छंद—कामदा। फेरिकैं॥ उच्चरी। हेरिकैं ॥१७९॥
आभीर छंद—ए रे सुत मकरंद। सुंदर आनँदकंद ॥१८०॥
मालति व्याह निमित्त। भूषन जे वहु वित्त।
आए तिनि कौं अंग। तू सजि सहित उमंग।
यह कहि कैं सु उदार। दीनौ ताहि पिटार ॥१८१॥

मकरंद सु कर जोरि । बोल्यौ बुध्धि बटोरि ।
आप कह्यौ जिहि बिद्धि । सौ करिहौ सुखनिद्धि ॥१८२॥

दोहा—जौ लौं तुम ह्याँ थित्त हौ तौ लौं हौं पट मध्धि ।
सजि आऊँ भूषन सबै उर मैं आनँद लध्धि । १८३॥
इतनौं कहि मकरंद पुनि दुरचौ बसन मैं जाइ ।
कचन मनि आभरन सव सजे अग हुलसाइ ॥१८४॥

हस छंद—माधव बोल्यौ । प्रेम अडोल्यो ॥
हे गुनपूरी । कामँद रूरी ॥१८५॥

पावकुलक छद—सुगम भयौ मालति को छलिबौ ।
पै अलभ्य सज्जन मन रलिबौ ॥
सकट बड़ौ मित्र मकरंदै ।
यह चिंता मो मन कौं फदै ॥१८६॥

घारी छद—फेरि बैन कामँदानि । उच्चरी सु बुध्धि ठाँनि ॥१८७॥
क्यौं करत्तु चित्त सोच । होइगी न बात पोच ॥१८८॥

हंस छन्द—माधौ बोल्यौ । फेरि अमोल्यौ ॥
कामँद मानौं । तुमही जानौं ॥१८९॥

पावकुलक छंद—पट कौं टारि सभा में बाहरि ।
आयौ पुनि मकरंद सु जाहरि ॥
बिहसत कह्यौ, मालती मैं हौं ।
नंदन के मन कौं हरि लैहौं ॥१९०॥
सिगरे लगे तमासौं देखन ।
निज नैननि तैं तजै निमेषनि ॥
माधव ताहि भेंटि भरि अंकै ।
बोल्यौ करि परिहास निसंकै ॥१९१॥
धन्नि भाग नंदन के जानौ ।
जो या तिय के लोभ लुभानौ ।
सबै कामना कौं भरि पैहै ।
छिन मैं उर कौ ताप नसैहै ॥१९२॥

घारी छद

उच्चरी सु । बुध्धि खानि । फेरि बैन । कामदांनि ॥१९३॥

तोमर छंद—हे पुत्र माधव बीर । है मालतिय गभीर ।
इहि ठौर तैं ऽब उताल । तुम जाहु बुध्धि विसाल ॥१९४॥
मो बिहरिवे कौ थांन । है वृच्छ सघन सुठांन
अरु नागवल्लिय छाइ । अति रही है सुखदाइ ॥१९५॥
तिहि ठौर व्याह अरथ्थ । अवलोकिता समरथ्थ ।
राखे सबै सजि साज । जे मगलीक समाज ॥१९६॥
तुम जाइकै तिहिं ठार । तबलौं रहौ लहि प्यार ।
मदयति अरु मकरंद । जबलौं सु आवइ चंद ॥१९७॥

हंस छंद—फेरि अमोल्यौ । माधव बोल्यौ ।
हे गुनपूरी । कामंद रूरी ॥१९८॥

दोहा—अधिक अधिक सुख होइगौ हमकौ यह निरधार ।
मदयती मकरद लै आवैगौ मो यार ॥१९९॥

सोरठा—पुनि बोल्यौ कलहस, सेवक माधव कौ तहां ।
हम पायौ सरबस, जौ महेस ऐसी करै ॥२००॥

घारी छंद—फेरि बानि । कामदांनि ।
उच्चरी सु । बुध्धि खानि ॥२०१॥

आभीर छद—यामै कछु सदेह । जो तुम भाखत एह ।
उत्तमहू है काम । है वेऊ गुनधाम ॥२०२॥

चउरस छद—बहुरि लवगी । परम सुढंगी ॥
उचरिय बानी । हित सरसानी ॥२०३॥
भगवति बोली । बहुरि अमोली ॥
हितपन पूरी । सब गुन रूरी ॥२०४॥
सुनहु पियारी । सखिय हमारो ॥
भगवति बैना । हरन अचैना ॥२०५॥

दोहा—हे बेटा मकरद अरु हे लवगिके बाल ।
हम तुम आओ इत चलै, करनो काज उताल ॥२०६॥

प्रिया छंद—उच्चरी मालती । प्रेम कौं पालती ॥२०७॥

सोरठा—सखी लवंगिय अब्ब, तुहू जाइगी उत कहाँ ।
यह सुनि तज्जि गरब्ब, लवंगिका हँसि उच्चरी ॥२०८॥
हम कौं करनौं जाइ, काज उताइल सौं उहाँ ।
तू निजु हित सरसाइ मति मन मैं चिंता करै ॥२०९॥

दोहा—इतनो उचरि लवंगिका, सिद्धिनि अरु मकरंद ।
तीनों पट अंतर गए, भरे कोटि छरछंद ॥२१०॥
कामंदकि के बाग मैं मालति के परसंग ।
माधव यौं लाग्यौ कहन, मन मैं पूरि उमंग ॥२११॥

बड़ी चौपाई

अब हौं इहिं ठौर लसतु हौं ऐसें काम अगिनि सरसानैं ।
गहि नवल मालती की भुज पुलकित दुसह बिरह बिसरानैं ।
ज्यों जर समेति कटंकित नाल को लाल कमल विकसानैं ।
लहि सुंडि मध्धि सरवर मैं सिंधुर ग्रीषम लीला ठानैं ॥२१२॥

दोहा—यौं कहि कै नेपथ्य मैं, एऊ दुरे दयाल ।
और स्वांग आगमन की, भई तयारी हाल ॥२१३॥
मालति कौं इहिं अंक मै, भयौ स्वयंबर आइ।
नगरदेवि के भवन में बिरह झकोर भुलाइ ॥२१४॥

हरिगीत छंद

बदनेसनंद प्रताप जाकौ तेज दिनमनि तूल है ।
अब करन सौ ताकै बहादुर कुँवर आनँदमूल है ।
तिहि हित्त कवि ससिनाथ नै रच्यौ विचारि निसंक है ।
माधवविनोद सुग्रंथ कौ यह भयौ षष्ठम अंक है ॥२१५॥

इति श्री कवि सौमनाथविरचिते माधवविनोदनाटके मालतीस्वयंवरो नाम षष्ठमोंकः ॥६॥

सप्तमांक

दोहा—पट उघारि नेपथ्य को बुध्धिरच्छिता आइ।
हरषि बचन यौं उच्चरी सिगरे नरन सुनाइ ॥१॥

कबित्त—छुटत हवाई साँझ धूम सरसाई भई
चकचौंधे लोचन मसालनि प्रकास में।
सौंमनाथ कहै भीर वढ़ी नर नारिन की
जांनति हौं होइगौ हमारौ भलौ या समै।
काहू ठौर भयौ मालती कौ और माधव कौ
ब्याह कामदाइनि के वचनविलास मैं।
मालती के भूषन अमदन सौं नदन कौं
छल्यौ परधांन भूरिबित्त के अवास मै ॥२॥

दोहा—मकरंदौ पुनि कुसल सों छिप्यौ रह्यौ सविलास।
काहूँ पहिचान्यौ नही यह छरछद प्रकास ॥३॥
इतनो कहि नच्ची चपल बुधिरच्छिता प्रवीन।
कौतिकवारे लखि रहे इकटक संकविहीन ॥४॥

सवैया

मैं अब नंदन के घर हौं अरु कामँद हूं तिहिं ठौर सयानी।
सो तौ गई अपने घर कौं निजु माँगि बिदा सुख में सरसानी।
और नवीन बधू के बिलास मै भूलि रहे सिगरे सु बखानी।
होइगौ काज समाज भली बिधि सो मन में निहचै हम जानी ॥५॥

पावकुलक छद

अब नंदन मन मे ललचायौ। नवल बधू कौं भेंटन आयौ।
अति अनंग जुरे सों सरसायौ अतुराई करि हत्थ चलायौ ॥६॥
तिय सरूप मकरंद प्रबीनी। वाकैं दई लात रिस भीनी।
लागैं लात क्रोध अधिकायौ। तब नदन यौं बचन सुनायौ ॥७॥
निपट बाल बिभिचोरिनि, तो सौं। रह्यौ काज कछु नाहिं सु मोसौं।
सत सौगंद साँच उर धरिहौ। तेरौ फिरि ससर्ग न करिहौं ॥८॥

यौं कहि रंगमहल तें डगरयौ। उर में कहर जहर सौ बगरयो।
नर नारिन मै भयौ खिसानौं। तन मन सुख्ख समूल बिलानौं ॥९॥

दोहा—सो मैं या परसग करि मदयंति कौं लाइ।
चंदबदन मकरंद सौं देहौं आजु मिलाइ ॥१०॥
इतनौं कहि कै नृत्य करि दुरी सु पट मैं जाइ।
सबै दिखैयनि कै हियैं अति ही चौंप बढ़ाइ ॥११॥

प्रवेशक—पट उघारि नेपथ्य को इतने मैं मकरंद।
आयौ लेटयौ सेज पै मालति भेष अमंद ॥१२॥

सुगति छंद—सुलवंगिका। सुभ ढंगिका।
तिहिं संग ही। स उमंग ही ॥१३॥

मालती छंद—फिरयौ मकरद। समेति अनंद।
कह्यौ यह बैन। रतोपल नैंन ॥१४॥

तोमर छंद—हे लवगिय सुखदानि। बुधिरच्छिता गुनवांनि।
मदयंतिकै समझाइ। दैहैऽब मोहि मिलाइ ॥१५॥
यह सुनि लवंगिय फेरि। उचरी बिषाद निबेरि।
इहि भांति मैं संदेह। मति मान संजुत नेह ॥१६॥

हरिगीत छंद

सुनि वात नंदन भ्रात की अकुलाति क्रुध्धिन चित्त ही।
मालतिहि डाटन गरब आटन कपट काटन हित्त ही।
बुधिरच्छितै सँग लै सुहेली ह्वै अकेली धाइ कैं।
तिहिं रंगभवनैं कियौ गवनैं बिबिधि बुध्धि सजाइ कैं ॥१७॥

नव बसन भूषन अति अदूषन अंग अंग बिराजई।
मृग मीन खंजन गरव गंजन द्रिगन की छबि छाजई।
जनु दामिनी अभिरामिनी इमि कामिनी गुनवतिका।
तिय भेष जहँ मकरंद हो तहँ कौं चली मदयंतिका ॥१८॥

तोमर छंद—मो जांन नूपुर नद्द। ए होत बे अनहद्द।
लावति अबैस उमंग। मदयंतिका कौ संग ॥१९॥

तातें दुपट्टै तानि। तू लेटि जा चुप ठानि।
यह वात सुनि कै कान। सोयौ समेति सयान ॥२०॥

दोहा—इहिं औसर मदयंतिका बुध्धिरच्छिता साथ।
आई पट कौं टारि कैं यौं पुनि उचरी गाथ ॥२१॥
सखी साँचहूँ भ्रात मो नदन कौं निदराइ।
क्रुद्ध करायौ मालती अपनौं गर्व वढ़ाइ ॥२२॥

हंस छंद—बुधिरच्छिनी। मँदगच्छिनी।
बैंन यौं कह्यौ। चैन कौं दह्यौ ॥२३॥
झूंठ मै कहा। भापियौं महा।
तूऽव देखियौ। रूप लेखियौ ॥२४॥

मधुभार छंद—मदयंति फेरि। रस कौं सकेरि।
उच्चरिय वात। थहरात गात ॥२५॥
तिहि अधम काम। कीनौ उदांम।
मै ताहि अव्व। करिहौं अगव्व ॥२६॥
इतनौं उचारि। मदयंति नारि।
उत इत निहारि। × × ॥२७॥
बुधिरच्छिता सु। मंडे हुलासु।
पुनि सुख्ख दैन। उच्चरिय बैंन ॥२८॥
यह रंगभौन। है प्रीति ठौन।
तहँ दुवौ भाम। पैंठी ललाम ॥२९॥

चउँरस छंद—फिरि मदयंती। अति रिसवंती।
उचरिय बांनी। मुख मधुरानी ॥३०॥
सखि सुभ ढंगी। सुनहुँ लवंगी।
सोवति प्यारी। हितू तिहारी ॥३१॥
उचरिय चंगी। वहुरि लवंगी।
इहि न जगाऔ। तुम हित ठाऔ ॥३२॥
तनक सु सोई। अव रस मोई।
अहि समझाई। तव सियराई ॥३३॥

पलंग सु अंतैं। मृदु बिलसंतैं।
सरसहु आछें। कहियहु पाछें ॥३४॥

दोहा—यह सुनि कै मदयंतिका पंडित बैठि सुभाइ।
लवंगिका सौं बैंन पुनि बोली छोह बढ़ाइ ॥३५॥
कहि तै रिस मैं क्यों सनी, तेरी सखी कुनारि।
यह सुनि बहुरि लवंगिका बोली अनखै बारि ॥३६॥

सवैया

सुंदर औ नवजोबनवंत मनंमथ हू कौ गुमान गरैया।
जांनतु है बतराइ कठोर न नारि नईन कौ चित्त हरैया।
जाहि न रंचक रोस कहूँ पतियाइ कै या बिधि कौ तुव भैया।
क्यौं दुख पाइहै मेरी सखी लखि कै तिहिं आनन-चंद-जुन्हैया ॥३७॥

आभीर छंद—बुध्धिरच्छिते देखि। मन मैं बुध्धि बिसेखि।
लवंगिका यह चेति। उलटि उलंभौ देति ॥३८॥
बुधिरच्छिनी सु मिलाप। सुनि पुनि बोली आप।
झूंठ साँच कै बात। हम नहिं जांनैं घात ॥३९॥
तब मदयंतिय फेरि। बोली अनिमिष हेरि।
नंदन की तकसीर। कैसे कहि लहि पीर ॥४०॥
बुधिरच्छनि यह बात। सुनि कैं उर अकुलात।
मदयंतिय सौ बैंन। उचरी झूंठ कहै न ॥४१॥

सवैया

भूपति कौ जु मुसाहिब है सुखदाइक जाहि सबै जगु जानैं।
औ भगवान समान गिनै पति कौं इमि बेद पुरान बखानैं।
तासहू प्रीति की रीति भुलाइ बढाइ अनीति निरादर ठानै।
क्यौं न उराहनै लायक सो यह सोवति याकी सखी पट तानैं ॥४२॥

सोरठा—और सुन्यौं मन लाइ जो मैं तुम सौं कहति हौं।
नवल वधूनिहिलाइ तब करयौ है निजु मतौ ॥४३॥

सवैया

फूल समान सुभाव सदां मुरझाइ जो घाँम घरीकु सतावतु ।
लाज लपेटि रहै अति ही पतिहू निरखैं तें महा डरु आवतु ।
तासौं करी बरजोरी इते पर भाख्यौ कुवैन अचैंन वढावतु ।
नंदन की है इतौ अपराध कलंक लगाएँ न को दुखु पावतु ॥४४॥

सोरठा—यह सुनि कै बतरांनि, अंसुनि ढारि लवंगिका ।
बोली कपटहि ठांनि, दोऊ त्रियनि सुनाइ कैं । ४५॥

सवैया

है सब कैं नर और कुमारिय, को पुनि लाज नहीं अपनावैं ।
नाइक सौं पहिले ही मिलापन कौन के चित्तहि संक हटावैं ।
है रस ग्रंथन की यह रीति जु तेह सिराइ सनेह बढावैं ।
यौं कुल आगर कोऊ कहूँ नव नागरि के हिय कौं पजरावै ? ॥४६॥

दोहा—मालति कौ यह वचन हुव साल जन्म परजंत ।
रंचक खटपट होत ही कहिहैं वधु असंत ॥४७॥

चउंरस छंद—पुनि मदयंती । गुननि अनंती ।
उच्चरिय बानी । अनख मिलानी ॥४८॥
सखि बुधिरच्छी । मुनि हित अच्छी ।
सचिवकुमारी । निपट दुखारी ॥४९॥

दोहा—लवंगिकै की प्रिय सखी निपट रुठाई आज ।
नंदन मेरे भ्रात नैं करि तकसीर दराज ॥५०॥
बुध्धिरच्छिता नैं कही मदयंती सौं फेरि ।
रस में तेरे भ्रात नें दोनौं जहर बिखेरि ॥५१॥

बडी चौपाई

उनि कह्यौ याहि कौमार बध की क्रुध्ध अधिक दरसाए ।
अब यातें मेरी सखी सुहेली सोइ गई अनखाए ।
यह सुनत वात मदयंती रहि गइ श्रवननि हाथ लगाए ।
पुनि छिन मैं सोच उच्चरी देखौ कहा कही हठु छाए ॥५२॥

सुनि सखि लवंगिके ! अब मैं तोकौ मुख दरसाइ सकौं ना।
पै कछू बात मैं यासौं कहिहौं रहिहौं तबै सु मौना।
यह सुनि लवंगिका पुनि बोली मदयंती सौ बानी।
अब यह तुम्हरे आधीन भई है चहौ सु कहौ सयानी ।।५३।।
चउरस छं०—यह मदयंती। सुनि दुतिवती।
उचरिय बैना। सहित अचैना ।।५४।।
दोहा—भली भयौ मो भ्रात ही क्रोधी निठुर निदान।
तऊ याहि चाहिऐ जु पति कहै सु करै प्रमान ।।५५।।

सवैया

है रिस कारन एक अली सुनि कै जिहिँ नंदन देह गरी है।
औरन सौं बतराइ सकै न, छुधा अरु नीद तृषा ढगरी है।
जानति है न लवंगिय तू अनजान भई जु इती झगरी है।
माधव मालती के हित की चरचा सगरी नगरी बगरी है ।।५६।।
तातें यही सिखऔ अब याहि जु चाहति हौ अब चित्त मझारे।
जा बिधि सौं पति के उर तैं कढ़ि जाइ सु बात कलेस बिडारें।
सोई करै निस द्यौस उपाइ भुलाइ कै और सुभाइ बिचारे।
नातरु नाहि घरी भरि हू सुख दंपति कौ कबहूँ हठु धारें ।।५७।।
सोरठा—पै मति कहियौ एह, हे सहचरी लवगिके।
मदयंती भरि तेह, मोसौं कटु बातैं कहीं ।।५८।।
इहि बिधि के सुनि बैंन लवंगिका पुनि उच्चरी।
साँची क्यों ऽब कहै न जाह कहा तो सों कहौं ।।५९।।
यह सुनि चैन छुहाइ बोली मदयंती बहुरि।
हे सखि रोस भुलाइ तुमही कहि जानौं प्रगट ।।६०।।
दोहा—रहौ और हू कहत पुनि ताहि सुनौ दै कान।
है हम हू साँची अजू छोड़ौ अजौं अयांन ।।६१।।

सवैया

मालती जीव है माधव कौ यह बात कहा हम नांहिनै जाँनति।
जाके निमित्त भई तन की गति पीत सिताई लियैं दुति ठाँनति।

और सुनौ पुनि माधव के कर की बकुलावलि प्रांन के मांनति।
कंठ मै राखें रहै दिन रैनि सु मालती औरें नही उर आंनति ॥६२॥
भोर के चंद समान लसै मुखु माधव कौ छबि सौं सरसायौ।
देह रही दुबराइ सबै अरु सो न कछू तुव डीठि मैं आयौ।
ता दिन वा पुहपाकरि खोरि मै ताहि तिरीछे निहारि लुभायौ।
सो न कहा हम जांनी सबै अवलोकि वहू बिन मोल बिकायौ ॥६३॥
और सुनौ मम भ्रात के ब्याह कौ कान परयौ बिरतंत जबैई।
दोउन के अँग अगनि कौ थकि ह्वै गयौ और हवाल तबैई।
मूल समेति उखारि लिए द्रुम तूल भए हिय भांति सबैई।
सो तुम नैन लखी हित हौं निजु यौं अनखी बतराति अबैई ॥६४॥
डीठि जुराइ इतै चितऔ अब और हू बात हमें सुधि आई।
ए सुनि कै बतरांनि लवंगिय बोलि उठी उर मै अनखाई।
है वह कौन सी बात कहौ किनि कौं तुमनै अब लगि छिपाई।
फेरि कह्यौ मदयंतिय ने सु लवंगिय सौं सजि कै चतुराई ॥६५॥
सुमनाकर खोरि मझार सखी जब वा गुनवंत ने चेत लह्यौ।
तब तो पर डारि कै माधव सौं इन हेरि बधाई कौं बैन कह्यौ।
तिहि औसर कामँद बातनि सौं उच्चरयौ पुनि माधव नेह नह्यौ।
तन औ मन हूँ धन जीवन मेरौ सु भेट है यौं प्रन मैने गह्यौ ॥६६॥
दोहा—अरु यौं तै हूँ ता समै, कह्यौ बचन मधुराइ।
यही चाह मो सखी कै रही हुती सरसाइ ॥६७॥
मोहनी छंद—बोली बहुरि लवंगिय औसर पाइ।
को हो वह गुनवंत सु कहहु सुनाइ ॥६८॥
यह सुनिकै मदयंतिय वोली फेरि।
सखि सुधि करि मन महियाँ सनमुख हेरि ॥६९॥
छप्पय—ता दिन कढ्ढे डढ्ढ गड्ढ जम डढ्ढ सरिख्खी।
अरु टिढ्ढे नख बीस नौक जिन की अति तिख्खी॥
महाकाल उनिहारि सिह मो उप्पर धायौ।
करि दपट्ट उदभट्ट सद्द बेहद्द सुनायौ॥

तिहिं औसर मेरे प्रांन जिनि रच्छि लिए मन धर्म धरि।
अरु दुरलभ अपनैं जीव कौ लोश न कीनौ क्रुध्धि भरि ॥७०॥
दोहा—सहे बज्र से नखनि के, अनगन घात अतूल।
ताकौ हिय सरस्यौ तबै, गुडहर कौ सौ फूल ॥७१॥
मोहनी छंद—यह बतरांनि लवंगिय सुनि कै आप।
बोली ह्यां मकरंदा हो अनताप ॥७२॥
बैंन कह्यौ मदयंतिय पुनि हुलसाइ।
कहा कह्यौ सखि नाम सु फेरि जताइ ॥७३॥
सुनि पुनि बैंन लवंगिय कह्यौ अमंद।
कहा कहौं बहु बारनि हो मकरद ॥७४॥
मदयंती के अंगनि छ्वै मुसिकाइ।
बोली भरि छरछंदनि पुनि मधुराइ ॥७५।
दोहा–काहे तैं यह नाम सुनि ह्वै हित सौं अनुकूल।
कुल की कन्या कौ भयौ तन कदंब कौ फूल ॥७६॥
मधुभार छद मदयंति फेरि। लज्जा सँवेरि।
उच्चरिय बैंन। लहि चित्ति चैंन ॥७७॥
मोहनी छंद हे सहचरिय लवंगिय बुध्धिनिवास।
अब तू मेरो करई कहा सु हास ॥७८॥
दोहा—हति नाहर श्रोनित रँग्यौ, कर टेकतु किरवांन।
लख्खौ ताकौ नाम सुनि, थहरे मो तन प्रान ॥७९॥
कुंडलिका छंद—छिनकु चकृत सी रहि गई अँखियनि झलक्यौ नीर।
मुख कौ रँगु औरै भयौ पुलकित लस्यौ सरीर ॥
पुलिकित लस्यौ सरीर कहै कासों निजु पीरै।
उत्तिम कुल कन्यका तची लगि सीत समीरै ॥
तन की यह गति भई सुमिरि कै प्रिय सुभ लच्छन।
इही बिध्धि सौं नृत्य सभा मैं कियौ बिचच्छन॥८०।
हंस छंद—बुध्धिरच्छिनी। मंद गच्छिनी।
वैंन यौं कह्यौ। ताग कौं दह्यौ ॥८१॥

पावकुलक छंद

पुलिकित ह्वै अचकाँ थहराई । यह तै गति तन की दरसाई ।
कहि अव कहा हिए ठहराई । सुनिबे कौ अब मोहि लुभाई॥८२॥
यह सुनि मदयंतिका लजाई । बुधिरच्छिनी सौं छबि छाई ।
कही जाह उत सखी पियारी । मैंनें तू अति ढीठ निहारी॥८३॥
सखी निपट मिलि बैठी यातै । गरमी भई हियौ अकुलातै ।
नही कामवस तै जिय मानौ । तोसो मैं ना झूठ बखानौं ॥८४॥
यह सुनि मदयंती को बानी । लवगिका सहचरी सयांनी ।
बोली इहि विधि अति सरसानी । मै अव तेरे मन की जानी॥८५॥
ह्वै प्रसंन यह रिस बिसरैऐ । मेरौ कह्यौ चित्त मै लैऐ ।
आऔ रस की कहै कहानी । एक ओर थित ह्वै हितसानी॥८६॥
वुधिरच्छिनि बोली पुनि तव्वै । अपनै मन तै टारि गरब्बै ।
लवंगिका यह आछें वैना । तोसौं कहति बढ़ावन चैना ॥८७॥
पुनि वोली मदयंति प्रवीनी । मं तौ तुम्हरे निपट अधीनी ।
कहति जु प्यारी सखी सु करिहौं । या पन तै कबहूँ नहिं टरिहौं॥८८॥
यह सुनि लवंगिका सु उचारी जौ है यौं ही बात पियारी ।
तौ तू कहि कैंसें दिन अपने । बितवति है जागति अरु सपनै॥८९॥
यह सुनि पुनि बोली मदयंती । प्रेमपंथ मै अति गुनवती ।
सुनि अब सखी सुन्यौं जौ चाहै । जान्यौं चाहति मन की थाहै ॥९०॥

सवैया

पहिलै बुधिरच्छिनी की बतरांनि सुनैं रस की हियरा उमग्यौ ।
बहुर्‌यौ ससिनाथ दया तें सखी निरख्यौ अचकाँ वह प्रेम पग्यौ ।
तब तें निजु ज्वाल करालनि सौं मनमथ्थ जरावतु जौर जग्यौ ।
थहराति पसेव सूं न्हाति कभूं मुरझाति नियौं यह रोग लग्यौ ॥९१॥

अन्यच्च

मदिरा मद घूमति सी अँखियांनि बिलोकति हौ न कहूँ सरकै ।
रु मनोरथ के सुपनें मधि आइ पुकारतु मोहि गरौ घर कै ॥

पुनि चंचल अंचल ऐंचतु है अचकाँ ससिनाथ महा अरकै ।
तब ही थरकै सब अंग सखी-भरकैं अतुराइ हियौ घरकै ॥९२॥
औचक अंबर ऐंचि लियौ तब ही सब मो अँग अंग उघारे ।
किंकिनि हूँ कटि तैं सरकी उरझी सु उरू मधि गौन बिसारे ।
लाज तैं रोस भयौ मन मैं झहरानी न पैं कटु बैंन उचारे ।
फेरि सखी सुख सारु लहैं उमड़े द्रिग नेहु के सिंधु अपारे ॥९३॥
नाहर के नख तिख्ख प्रहारनि जो चहूँ ओर रही छतियाँ भरि ।
तासौं लई लपटाइ सु हौं इहि भाति सकी न इतै उत कौं टरि ।
तच्छन मै मन मैं बिहसी सखि आनँद के द्रग आंसू परे ढरि ।
एक ही बेर गँभीर बियोग की पीर न जानी गई कित कौं डरि ॥९४॥
हौं फिरि भाजि चली छुटि कैं, अतुराइ तबैं कबरी पकरी ।
मुख मेरो नवाइ सुभाइन सौं मिलिकैं अपनैं बस मांझ धरी ।
मृदु वाम कपोल पैं ओठ लगाइ रह्यौ उर मै नहिं सक भरी ।
अनखांनी तऊ कर जोरि पर्‍यो पग औ बिनती ललचात करी॥९५॥

दोहा—इतनैं मैं कछु चेत लहि, उघरि गए मो नैन ।
सब जग सूनौं सौ लख्यौ बिछुरि गयौ सुख दैन ॥९६॥
मदयंती सुकुमारि की यह सुनिकैं बतरांनि ।
बोली बहुरि लवंगिका बिहसि चतुरई खांनि ॥९७॥

चउरस छंद—सुनि मदयंती । गुननि अनंती ।
नहिं तुव बांनी । अनृत सुजानी ॥९८॥

मोहनी छंद—तिहीं समै सुनि नागरि तुव कटिवास ।
फरक नितंबनि फरक्यौ बढ़त बिलास ॥९९॥
वृधिरच्छिनि की अँखियनि प्रगटिय हास ।
तिहि रति रंगि जताइय कहि परकास । १००।

मधुभार छंद—मदयंति तव्व । तजि कै गरव्व ।
उच्चरिय फेरि । लज्जा सँघेरि ॥१०१॥
सखि हित अथाह । चलि उतै जाह ।
अनमिल प्रकास । तू करइ हास ॥१०२॥

वुधिरच्छिता सु। गहि कै विलासु।
पुनि उच्चरीय। नहि विच्चरीय ॥१०३॥

दोहा—हे मदयंती वात यह मालति जानति ठीक।
है तेरी प्यारी सखी यामैं नाहि अलीक ॥१०४॥
पुनि बोली मदयंतिका सुनि कै इहि विधि बैन।
मालति कौ उपहास यौं काहे करति सचैन ॥१०५॥

पावकुलक छंद

यह सुनि पुनि वुधिरच्छिनि बोली। हे मदयंती सखी अमोली॥१०६॥
एक बात हौं पूछौ तोसौं। जो अब साँच कहै तू मोसौं॥
यह सुनि कै मदयति सयानी। बुधिरच्छिनि सौं बोली वांनी॥
को सखि तेरी वात सु मैंने। मानी नहीं जु कहियो तैंने॥१०७॥
तू है मेरी सखी पियारी। अरु लवंगिका हिय अनुहारी॥
यह सुनि पुनि बोली बुधिरच्छी। कला चतुरई घातनि अच्छी॥१०८॥
जु अब तोहि मकरंद पियारौ। मिलै रूप जोवन गुन भारौ॥
तौ तू कहा करै कहि सोई। प्रेमसिधु की लहरि समोई॥१०९॥
सुनि यह बात कुँवरि मदयती। उचरी फेरि सयांन अनंती॥
एक बेर नख सिख लौं अंगनि। निरखौं पलक पसारि सुढंगनि॥११०॥
यह सुनि बुधिरच्छिनि पुनि उचरी। चित के मध्धि बढ़ावति रुचि री।
हे मदयंति रुकिमिनी ज्यौंही। हरि के सग गई गहि गौंई॥१११॥
त्यौं तू धर्म बढ़ावनहारी। होइक नाहि परम सुकुमारी॥
यामैं कछू कलंक न लागै। यों यह विधि ह्वै आई आगै॥११२॥
मदयंती यह बातै सुनि कै। लै उसास यौं उचरी पुनि कै॥
समाधान किहि अर्थ वृथाही। करत सखी मेरौ इहि ठाहीं॥११३॥

दोहा—पुनि बोली वुधिरच्छिता चतुराई सरसाइ।
सखि मदयंती आपनं मन की बात सुनाइ॥११४॥
बोलि उठी सुलवंगिका इहि औसर परकास।
आय गयौ आवेस चित तातै लई उसास॥११५॥

मोहनी छंद—पुनि बोली मदयंती नेह बढ़ाइ।
लवंगिका सौं सुख भरि साँच ढिठाइ ॥११६॥
हे सखि मो जिहि काजैं अपनैं प्रान।
दीनैं हुते निसंकित परम सुजान ॥११७॥
नाहर मुख तें मो कहँ लियउ बचाइ।
निहचै यह तन वा कहँ औसर पाइ ॥११८॥

सोरठा—बहुरि लवंगिय बैन, मदयंती सौं उच्चरी।
जु तू कहति लहि चैन, है भलेन की रीति यह ॥११९॥
बुधिरच्छिनि यह बात सुनि कै बोली ता समै।
हे मदयंति सिहात सुधि करिहै यह बचन तू ॥१२०॥

मधुभार छंद—मदयंति फेरि। झगरी निबेरि॥
उच्चरिय बैन। चित मंडि चैन ॥१२१॥

प्रवग छंद—हौं अब ह्या ते जाइ निपट अतुराइ कै।
है सक्रुद्ध मो भ्रात ताहि समझाइ कै॥
सखि मालति के पास पठैहौं चाइ कै।
यौं कहि ठाढी भई कलेस भुलाइ कै ॥१२२॥
इहि औसर मकरंद उपरना टारि कै॥
आनन चंद समान अमंद उघारि कै।
मदयंती को हत्थ आपनैं हत्थ मैं॥
गहि लीनौं अतुराइ पूरि मनमथ्थ मैं ॥१२३॥

मधुभार छंद—मदयंति बाल। गुन करि बिसाल।
उच्चरिय बैन। पुनि सुख्ख दैन ॥१२४॥

हंस छंद—नीदनि रागी। मालति जागी।
यौं कहि देखी। बुद्धि बिसेखी ॥१२५॥
फेरि उचारी। यौं सुकुमारी।
तू इहि ठौरै। लागति औरै ॥१२६॥

मालती छंद—तबै मकरद। भर्यो छरछद।
उच्चरिय बैन। रतोपल नैन ॥१२७॥

कबित्त—बीते बहु बासर भए हैं मनचीते अब,
अधर सुधा सौं सने बैन बतराइऐ।
ता छिन तें मोहि न परी है कल एकौ पल,
सौमनाथ कहै यह साँचु ठहराइऐ।
तैं हीं यौं कही है तन अरपन कीनौं ताहि,
सोई वह सेवक हौं क्यौं न अपनाइऐ।
कपट भुलाइ नेह मेह बरसाइ प्यारी,
कंठ लपटाइए हिए कौं सियराइऐ।१२८॥

दोहा—मुख उठाय मदयंति कौ सखी लवंगिय नाम।
अपनौं औसर पाइ कै बोली बचन ललाम॥१२९॥

सवैया

सो यह प्यारौ निहारि सखी जु हजारन तेरे मनोरथ पूरिहै।
सोइ गए सब तो घर के अँधियारी न कोऊ इतै उत घूरिहै।
औसर पै कंत को पहिचानि असंकित ह्वै ऽब कलंकनि चूरिहै।
लै कर मैं मनि नूपुर खोलि चलौ अतुराइ सु ठौर न दूरि है॥१३०॥

मदयंती। गुनवंती॥
अनमोली। पुनि बोली॥१३१॥

तोमर छंद

बुधिरच्छिनी अब मोहि। करनौं कहा हित टोहि।
सुनि बात बुद्धिय फेरि। बुधिरच्छिनी निजु हेरि।१३२॥
जो कियौ मालति बाल। करि सो तुहू इहि काल।
यह बात सुनि मदयंति। बोली फिर्‌यौ दुतिवंति॥१३३॥
सखि मालती ने आप। कीनौ कहा सु मिलाप।
कर ग्रहन माधव संग। गहि साहसै सउमंग॥१३४॥
बुधिरच्छिनी हुलसाइ। पुनि उच्चरी समुझाइ।
मदयंतिके तुव सत्थ। का बकति हौं सु बिरत्थ॥१३५॥
मदयति सुनि यह बात। बनि गई औचकि घात।
अँखियान ते जलधार। बरसाइ दइय अपार॥१३६॥

बुधिरच्छिनी पुनि तब्ब। बोली बिसारि गरब्ब।
बड़ भाग हे मकरंद। अति हाँसि आनँदकंद।१३७॥
निजु पिय सखी मैं अब्ब। तोकों दई लहि ढब्ब॥
मकरंद यह सुन बात। बोल्यो हिए हुलसात॥१३८॥

सवैया

पूरब पुन्य उदोत भए निरधार दया बिध काम करी है।
जोबन औ इन नैनन को फल पायौ निहारि बिथा निबरी है।
जाके लिये ससिनाथ अनेक उपाय किए नहिं संक धरी है।
सो वह आज की धन्न घरी जु मिली मनभावती भाग भरी है।१३९॥

दोहा—ताते पश्चिम द्वार है चलि करिए निजु काज।
यौं कहि के इत उत फिरे चार्यो मध्धि समाज॥१४०॥

सवैया

मनि कंचन के अनदूषन भूपन अंबर अंगनि में पहिरैं।
नर नागरि संग उमगनि सौं बिहरैं जुग जामिन के पहरैं।
तिन की मदिरा मिलि चंद्रक चंदन सीरे समीर इतै फहरैं।
भुकराइ अटारनि की झँझरीनि सु आवैं सुगंधन की लहरैं॥१४१॥

सोरठा—इतनी कहि कै बात सिगरै परदा में दुरे।
देखन को अकुलात कौतुकवारे रहि गए॥१४२॥

दोहा—मदयंती कौ ब्याहु ह्याँ हुव मकरंदा संग।
इही सातएँ अंक में वाढ़ी हरष तरंग॥१४३॥

हरिगीत छंद—बदनेसनंद प्रताप जाकौ तेज दिनमनि तूल है।
अब करन से ताकें बहादुर कुँवर आनँद मूल है॥
तिहि हेत कबि ससिनाथ ने रच्यौ बिचारि निसंक है।
माधवबिनोद सुग्रंथ कौ यह भयौ सप्तम अंक है॥१४४॥

इतिश्री कवि सोमनाथविरचिते माधवविनोदनाटके मदयंति को विवाहवर्ननं नाम सप्तमोंकः॥ ७॥

अष्टमांक

दोहा—पट उघारि अवलोकिता आई मध्धि समाज ।
बोली बहुरि पुकारि कै सजि नैनन मैं लाज ॥१॥

पद्धरी छंद

नंदन के घर तें कामँदानि । आवति है ताको प्रेम ठानि ।
मैं वंदन करि जैहौंऽब तत्र । मालति अरु माधव थित्त जत्र ॥२॥
यौं कहि परिक्रमा सभा मध्धि । करि कै पुनि बोली नेह सध्धि ।
उच्चरी लसति ए दुवी साँझ । वापिका किनारे सिला माँझ ॥३॥
यौं उर परिक्रमा करि उताल । दुरि गई ओट पट में रसाल ।
कौतिक निरखैया रहे देखि । उर मध्धि परम आनँद बिसेखि ॥४॥

प्रवेशक

सोरठा—तातै पट को टारि बैठे माधव मालती ।
आयौ स्वांग सिंगारि और तहाँ अवलोकिता ॥५॥
माधव चित्त मझार, लाग्यौ करन विचार यौं ।
संध्या समय उदार, लागतु परम सुहावनी ॥६॥

कवित्त—परम उदार सिरदार ग्रहमंडल को,
प्राची को सिँगार-बिंदु-तूल दरसत है।
निस-भरतार तोम तिमिर प्रहार करि,
यार मनमत्थ को पियूष बरसत है।
छीरधि को नंद सोमनाथ को सिरोमनि है,
जा बिनु चकोरन को चित्त तरसत है।
अधिक अनंद यह उदित अमंद चंद,
निरखत नैनन अनंद सरसतु है ॥७॥

मुक्तादाम छंद—लगौ चित मध्धि करन्न विचार ।
सु माधव यों सब विध्धि उदार ॥
किही बिधि सौं समझावहुँ याहि ।
सुभाव गहौ उलटौ इनि आहि ॥८॥

उचारिउ माधव फेरि प्रकास।
भरे उर मैं मनमत्थ बिलास॥
प्रिये सुनि मालती मो अब बैन।
बिलोकि इतै समुहै करि नैन॥९॥
भई गरमी अति मो अँग अंग।
सिराय सु तू अब सज्जि उमंग॥
करौं बिनती कर जोरि बनाइ।
बिराजि यहै लखि साँझ सुहाइ॥१०॥

दोहा—कहा और ही और तू जानति है नित मोहि।
अजहूँ नहिं परतीत है पूछत हौं मैं तोहि॥११॥

सवैया

जब लौं मखतूल कै तार से बारनि नीर को बिंदु चुचाति रहै।
अरु बौने उरोज कठोरन की जब लौं जुग कोर सिराति रहै।
ससिनाथ अनूपम अंगनि की जब लौं पुलकैं दरसाति रहै।
तब लौं लगि सुंदर मो हिय सौं, जिय की गरमी सरसाति रहे॥१२॥

दोहा—जैसे ससि की किरन लगि होइ चंद्रमनिहार।
स्वेद बिंदु जुत भुजा तुव तैसी है इहि बार॥१३॥
तै अब मेरे कंठ में डारि सु लेहि जिवाइ।
यह कठोर हठ हठीली, मन ते दूर बहाइ॥१४॥

मोहनी छंद—मैं अबिलसत दूरि सु आवत पास।
यौं कहि सरक्यौ माधव सहित बिलास॥१५॥
पुनि बोल्यो सुनि प्यारी तजि अभिमान।
बातनि हूँ के लाइक हम न सुजान॥१६॥

सवैया

चंद की चारु मयूखनि सो वहु वासर मैं तच्यिबो अपनायौ।
मूल से फूल, दुकूल गिनै, अरु चंद्रक चंदन हू बिसरायौ।
सौ ससिनाथ करौं बिनती अब लागि हिए तिय क्यौं हठ छायौ।
बीन से बैनन के सुनवे हित हौं मन मैं अति ही ललचायौ॥१७॥

मधुभार छंद—अवलोकिता सु । सज्जें हुलासु ।
पुनि सुक्ख दैन । उच्चरिय वैन ॥१८॥
हे तिय कठोर । पिय चित्त चोर ।
यह कोन बानि । उर बसी आनि ॥१९॥

कवित्त—जाहि बिन देखें छिनु गिनती अलेखें प्रान,
बेर बेर मो सों इन बैनन को भाखती ।
कहां रह्यौ प्यारो वह नैनन को तारो सखि,
रूप गुन भारो लाज साल सब नाखती ।
फिर जु निहारौ तो विसारौ पलकनि अंग,
अंगन बिलोकबो अनंत अभिलाषती ।
ताको भरि अंक अब दूनी ह्वै निसंक प्यारी,
याको फल यही कौन जाने कब चाखती ॥२०॥

सोरठा—जब मालति को टोकि, यों उचरी अवलोकिता ।
तब सु हिएं रस रोकि चितई ता तनु मालती ॥२१॥
माधव हू पुनि तब्ब, लाग्यो कहन सु मध्धि यों ।
जानत बात सरब्ब, कामंदानि की सिष्यनी ॥२२॥

पावकुलक छंद—माधव पुनि इमि बोल्यो बानो ।
प्यारी सुनि मो बच सुखदानी ॥
अवलोकिता सांच यह भाखै ।
ता कौं तू भू में मत नाखै ॥२३॥
यह सुन मालति परम बिचच्छन ।
अपनौ सीस हलायौ तच्छन ॥
तब माधव बोल्यो हित छाएं ।
कपट गुड़ी को दूर बहाएं ॥२४॥

दोहा—लवगिका अवलोकिता, दुहूँ के जिय की तोहि ।
सो है प्यारी जोऽब तू भेद न भाषै मोहि ॥२५॥

प्रिया छंद—उच्चरी, मालती ।
प्रेम कौं, पालती ॥२६॥

दोहा—मैं जानत कछू नाहिं यों अध्धे बरन उचारि ।
ह्वै सलज्ज सो सभा में नच्ची आरस टारि ॥२७॥

हंस छंद—माधव बोल्यो । फेरि अमोल्यौ ॥
हे अवलोकी । नित्त असोकी ॥२८॥
क्यौं यह बाला । रूप बिसाला ।
चारु मृगच्छी । रोवति लच्छी ॥२९।

तोमर छद—अवलोकिता समुहाइ । मालतिय सो समुझाइ ।
पुनि उच्चरी मधुराइ । ढिग जाइ निपट भुलाइ ॥३०॥
सखि क्यो ऽब हिल्किय लेत । फरकै भुजा दुख देत ।
उछरै दुवो पुनि अस । कहि सो बिचार असंस ॥३१॥
उचरी सु मालति फेरि । अवलोकता तन हेरि ।
मो सों लवंगिय आय । मिलिहै कवै अतुराय ॥३२॥
कव लौं सखी यह ताप । सहिहौं बिनाहि मिलाप ।
है दुलभ सो धौं तासु । किहिं भाँति होइ हुलासु ॥३३॥
पुनि ता समै परवीन । उचर्यौ सु माधव दीन ।
अवलोकिते कहि भेद । यह है कहा हिय खेद ॥३४॥
अवलोकिता यह बात । सुनि के सजै पुनि घात ।
उचरी समेति सयान । तुम हो करी विधि आन ॥३५॥
सु लवंगिके की सौंह । दै कै सरल करि भौंह ।
याकैऽब ताकी चाह । चित में बढ़ी अनथाह ॥३६॥
यह सुनत माधव बिप्र । उचर्यौ बचन पुनि छिप्र ।
अब ही तहा कलहंस । पठयौ चतुर अवतंस ॥३७॥
नदन भवन को छेम । सव जानिकै लहि प्रेम ।
रहियौ दुरै पुनि भाइ । मो सो सु कहियौ आइ ॥३८॥

दोहा—सुनि अब हे अवलोकिते, बुधिरच्छिनि के ख्याल ।
मकरंदै मदयंतिका मिलिहै रूप रसाल ॥३९॥
पुनि वोली अवलोकिता माधव सो तजि मौन ।
महाभाग ईहिं वात में है अब संसय कौन ॥४०॥

सवैया

नाहर के तन घातनि मूरछि मित्र जबै तुव चेतहि पायौ।
मालती ने सु वधाई दई तव ताहि तें आपो दियो छवि छायौ।
जो मदयंती मिली मकरंदहि कोऊ कहै अति ही अतुरायौ।
माधव ताकों कहा अब देह, कहौ हँसि बैन सनेह सनायौ ॥४१॥

दोहा—यह सुनि के माधव हिए बोल्यो औसर जानि।
जो कहिवे लाइक बचन सो छन कह्यौ बखानि ॥४२॥

सोरठा—अपने हियहि निहारि, अवलोकिते सुनाइ कें।
चित में निपट विचारि प्रगट वचन पुनि उच्चर्‌यौ ॥४३॥

सवैया

मालती डीठि परी ही जबै मनमत्थ के कानन में पहिलै ही।
है तब की यह सापिनि ठीक कहौ न अलीक सनेह सजै ही।
जो फिर मोहि लवगिय गान दई भ्रम छाकैई सुंदरि एही।
सो निज हाथ रची बकुलावलि देंहुँ मैं ताहि उतारि अवै ही ॥४४॥

अन्यच्च

कवित्त—मनमथ बन को मुकुट जो बकुल द्रुम,
ताके पुहपनु की रची है अति प्रीति सौं।
हाथ सहचर के, बिराजी कंठ भांवती के,
बोने उरोजनि सौं ....।
.... व्याह विधि को निबाह करि
दीनौ मोहि सखी के भरमपन जीति सौं।
सोई निज कर की वनाई यह माल हाल
देहौ ताहि निपट उछाहि चित नीति सो ॥४५।

पावकुलक छंद

यह सुन अवलोकिता बिचारी। सावधान हो मालति प्यारी॥
मोरसिरी की माल सुहाई। पर कर अब जैहै अतुराई ॥४६॥
सुनि यह बात मालती बोली। भली बात सखि कहत अमोली।
रही मौन महि उत मन लायौ। सिच्छा बैन जु सखी सुनायौ ॥४७॥

अवलोकिता कही पुनि बानी। कहा भई पैंदर सुखदानी।
यह सुनि के नैपथ्यहि औरे। चितयौ माधव प्रेम वटोरे ॥४८॥
यह बानी बोल्यो सरसावतु। अरे इतै कलहंसक आवतु।
इहि औसर माधव सौं आतुर। बोलि उठी मालति अति चातुर॥४९॥
प्यारे तुम को निपट बधाई। तुव सहचर मदयंती पाई।
सुनि यह माधव ने छबि छाई। हरषि मालती कंठ लगाई ॥५०॥
बकुलावलि सौ हिय पहराई। मन की बात सबै बनि आई।
अवलोकिता कहन पुनि लागी। है मालति तू परम सुभागी ॥५१॥
कामदकि की बात निबाही। बुध्धिरच्छिता ने तिहि ठाही।
इतने में मालति ने बैना। कह्यो फेरि यों मडित चैना ॥५२॥
लवंगिका मो सखी पियारी। आई डीठि निपट गुनभारी।
वड़ी वेर ह्वव ताहि निहारे। सुख पाऊँगी अब हितधारे ॥५३॥
दोहा—ईहि औसर नेपथ्य के पट कौं टारि उताल।
कलहंसक मदयंतिका बुध्धिरच्छिता बाल ॥५४॥
अरु लवंगिका इनि सबनि यौं पुनि भाखे बैन।
हमें रच्छिए रच्छिए, महाभाग सुखदैन ॥५५॥

बड़ी चौपाई

छंद—तहँ अरध पंथ में चौकीदारन घेरि लियौ मकरंदै।
हम कलहंसक संग पठाई इत कौ सजि छरछंदै ॥
पुनि बोलि उठो माधव सों तच्छन कलहंसक जन रूरो।
हम इत को सोर सुन्यौ तब मन में किय बिचार यौ पूरो॥५६॥
बहु औरौ प्यादे महीपाल ने मेरे जान पठाए।
यह चोर जान नहिं पावै कितहूँ रहियो चौकस छाए ॥
सुनि इहि बिधि के बैननि तच्छन मालति बचन उचारी।
हे अवलोकिता हाइ अब सुख दुख संग भए अति भारी॥५७॥

माधुरी छंद

उच्चर्‍यौ तहाँ माधव प्रवीन मदयंति आउ सुंदर नवीन।
मो भवन अनुग्रह करि पधारि। अब सकल दुख्ख डारे निवारि॥५८॥

हो सुचित, संक रंचक न मानि । इक मित्र ग्रौर ग्ररि भीर जानि ।
जिन हत्यो क्रूर नाहर कराल । तिहिं ग्रागे ए नर तुच्छ पाल ॥५९।
पै तौहूँ मै ता मित्र पास । करिहौं बजाइ विक्रम प्रकास ।
यौं भाखि इतै उत डगनि धारि । कलहम रहित दुर्गा विचारि॥

हरिगीत छंद

ग्रवलोकिता रु लवंगिका, बुधिरच्छिता पुनि ए सबै ।
बतरानि लग्गिय सोच पग्गिय खेद खग्गिय यों तबै ॥
बड़ भाग ए इहिं ठौर निहचै फेरि सुख सौं ग्राइहैं ।
दरसाइ लोचन विरह मोचन दुःखदंद बहाइहैं ॥६१।

सोरठा—इहिं ग्रौसर ग्रतुराइ बचन उचारी मालती ।
ग्रवलोकितै सुनाइ, बुधिरच्छिनि को हाथ गहि ॥६२॥
तुम दोऊ ग्रब जाइ भगवति सों विरतंत यह ।
कहौ रावै समझाइ पथ मैं नैकु न विरमिए ॥६३॥

दोहा—हे प्रिय सखी लवंगिका तू इहवां ते जाइ ।
महाभाग सो मो वचन यह कहि ग्राउ सुभाइ ।६४॥
हम पै जु हो दयाल तौ, तुम यह विनती मानि ।
सावधान ह्वै कीजियो, तहँ विक्रम सुखदानि ॥६५॥

हरिगीत छंद

सुलवंगिका ग्रवलोकिता बुधिरच्छिता हितु राखि कैं।
दुरि गई पटकी ग्रोट तीन्यौं ग्रातुरी ग्रभिलाषि कैं ॥
तिहिं हाइ हाइ उचारि मालति हाथ उर पर मारि कैं ।
पुनि उच्चरी यह बैन मुख ते सकल साहस टारि कैं ॥६६॥
हुव बहुत बार लवंगिका कौं, रही कित ठहराइ कैं ।
हाँ जाइ ताकौ पंथ निरखौं रह्यौ हिय हहराइ कैं ॥
यौं भाषि इत उत फिरी तिहिं ठाँ अंग सब ठहराइ कैं ।
नर रहै कौतिकवार निरखत द्रिगनि रस गहराइ कै ॥६७।
मदयंतिका यह जान ग्रौसर उठी हेत उपासिकै ।
पुनि उच्चरी इहि बिधि बैननि हिए के मधि त्रासि कैं ॥

मो नैंन दच्छिन लग्यौ फरकन सगुन उत्तम नासि कै ।
थित भई रंग समाज मै पुनि दीह स्वास उसासि कै ॥६८॥

दोहा—फेरि कपाल सुकुंडला, आई पट कौं टारि ।
ठाढी रहि पापिन कह्यौ मालति सौं रिस धारि ॥६९॥
यह सुनि सकित मालती बोली यौं सु पुकारि ।
हाइ भांवते अरध वच, कहि नच्चो प्रन पारि ॥७०॥

प्रमानिका छंद—तवै धरम्म सौं घटी । कपालकुंडला रटी ।
पुकारि रीति नट्ट कै । सनेह कौ बिहट्ट कै ॥७१॥

सवेया

हैऽब कहाँ वह जानै हत्यौ गुरु मेरो तपस्त्रिय जोग जगैया ।
तो कहँ लेइ बचाइ कुचील महासठ पापिनि कौ अपनैया ।
क्यौं तरफै इहिं भाँति अधर्मिनि बाज गही ज्यो नवीन चिरैया ।
जौ लगि श्री नग पै पहुँचौं तहँ भच्छिहौं तोहि रकत्त पिवैया ॥७२॥

सोरठा—यौं कहि बचन अलीन ले मालति कौ अंक मै ।
पट मैं दुरी कमीन, निठुर कपाल सुकुंडला ॥७३॥

श्री पर्वत पै मालती अभिलाष करति है ।

सवैया

मुख चंद निहारि बिसारि वियोग चकोरनि के प्रन तैं न टरौं ।
अपनी बिरहानल-ज्वाल-कथा अब कै ससिनाथ सवै उचरौं ।
गलवांही कपोल कपोलनि छ्वै निरखौं छबि आरसी सौंहै धरौं ।
जु मिलै कबहूँ फिरि तौ समुहाइ, निसकित ह्वै पिय अक भरौं॥७४॥

चउंरस छद—तहँ मदयंती । गुननि अनती ।
उचरिय आपै । चहति मिलापै ॥७५॥

मोहनी छद—हौं हूँ अब तिहिं ठाँही जैहौं धाइ ।
है जित मो सखि मालति हिय अकुलाइ ॥७६॥
यो कहि इत उत फिरि कै बोली ऐनि ।
कित है हे सखि मालति, पंकजनैनि ॥७७॥

पट को टारि लवंगिय आई तव्व ।
बोली यो पुनि वानिय विसरि गरव्व ॥७८॥

हे मालतिय सहेलिय यह सुनि बानि ।
बोलो यों सुलावगिय रस की खानि ॥७९॥

मोहि लवंगिय जानहु मालति नांहि ।
फिरि उचरी मदयती गुनि उर माहि ॥८०॥

महाभाग की वतिया कहि समुझाइ ।
हैऽब कुसलि सों अगनि मन सुखदाइ ॥८१॥

उचरी वहुरि लवगिय ओसर जानि ।
माधव की सब करनी प्रगट बखानि ॥८२॥

छप्पै—सुनत सद्द अनहद्द खग्ग चमकंत सु डिट्ठिय ।
ठुक्कि दीह भृजडड सत्रु सैना हिय इट्ठिय ॥
निपट मंदभागिनी तव्व मैं आई इत्तहि ।
पुरके सब नर नारि कहत हैं यों सु दुचित्तहि ॥
द्विज होइ वली मकरंद, अर माधव होइ उदार मन ।
यह अति अनर्थ अब होतु है, यातें मो थहराइ तन ॥८३॥

मंत्रिन कौ विरतंत भूप सुनि कै रिस रल्ल्यौ ।
चढ्यौ आपनें धाम हिए के मध्धि कहल्ल्यौ ।
और फौज कौं हुकुम कियौ यह मैं उर जानौं ।
भयौ कुलाहल उग्ग सत्य सब तोहि वखानौं ॥
इहि भांति वचन मदयंतिका सुनिकै वोली आपु पुनि ।
मैं होइ मदभागिनि महा मरी जु नहि यह वात सुनि ॥८४॥

सोरठा

यह सुनि कै बतरांनि बोली बहुरि लवंगिका ।
कहं मालति रसखानि इत उत डीठि न आवई ॥८५॥
पुनि मदयंतिय आपु वोली यह बतरानि सुनि ।
तो सौं चहतु मिलापु प्रथम गई तुव मग लपन ॥८६॥

बड़ी चौपाई

अब पोछैं वाहि लखन हौं निहचें या उपबन में जैहौं।
कै और ठौर वह कौतिक निरखति ह्वैहै तिहि ठाँ पैहौं॥
यह बात सुनतही सुघर लवंगिय बोली अति अतुराई।
सखि मेरी प्यारी सखी मालती काइर चित्त महाई॥८७॥
इहि औसर मै वह कौतिक निरखत रहै न कहूँ अकेली।
अब तातै बेगि ताहि चलि ढूँढैं उपबन माँझ सहेली॥
यौं कहिकै दुवौ चपल गति इत उत फिरौं सहित दुचिताई।
सखि मालति मालति टेरौ ऊँचे पै न डीटि मै आई॥८८॥
तहँ इतनैं मै कलहंस हरष्षित पट उघारि के आयौ।
औ बोल्यो फेरि बचन यह उत्तम साहस मैं लपटायौ॥
ते दोऊ दुग्ग समर संकट तैं बचे बिजै सरसाए।
मै बरतन हौं जु उनन ह्वाँ उध्धत बल बिक्रम दरसाए॥८९॥

त्रिभंगी छंद

नृप के नर बाँके निपट निसाँके पथ चहुँघा के घेरि रहे।
जम डाढ बरच्छे सजि कै अच्छे क्रुध्धित चच्छे हेरि रहे॥
हल्ला करि जब्बे सहित गरब्बे दौरे सब्बे जनु भट्टे।
तव दुवौ न हट्टे उमडि दबट्टे गहि कर पट्टे अरि कट्टे॥९०॥
कट्टे सरपट्टे हियैं न लट्टे मारे रट्टे मरदानें।
रन भू अवगाहीं सहित उछांही सनमुख वांहीं किरवांनें॥
वहु नच्चे कवंधे परगट अंधे प्रन सौं बंधे क्रुध्ध भरे।
कहुँ फरके खंडे बाहु उदंडे खंड बिहंडे मुंड परे॥९१॥

पावकुलक छंद

अटां चढ़े नृप वुध्धि विशेष्यौ। यह दोउन कौ विक्रम देख्यौ।
नृप नैं तब प्रतिहार पठायौ। अर वासौं यह वचन सुनायौ॥९२॥
मेरे चौकीदार अनेरे। तिन सौं यौं कहियौ तू एरे।
इन कौं जान देहु जित चाहैं। अब मति कीजौ घात उछांहैं॥९३॥

दोहा—भूरिबित्त परधान सौं अरु नंदन सौं वैन।
बोल्यौ इहि बिधि रीझि कै नृप नंदनसुख देन ॥९४॥
सुंदरता तिहुँ लोक की जिन के तन दरसाइ।
तुम ऐसे पैहौ कहाँ हितू अनेक उपाइ ॥९५॥
सोरठा—यह सिगरौ विरतंत माधव अरु मकरंद कौ।
भगवति सौं इहि तत कहन जातु हौं अब सु मैं ॥९६॥
इतनी कहि कै बात पट कै भीतर दुरि गयौ।
रहे सबै मुसिकात कौतिकवारे मनुज तहँ ॥९७॥
माधव अरु मकरद औसर कौं उर आनि कै।
पट उघारि करि छंद सभा मध्धि आए बहुरि ॥९८॥
मालती छद—तहा मकरद। समैति अनंद ॥
कह्यौ यह बैन। रतोपल नैन ॥९९॥
छप्पय—परे कहूँ भुजदंड खड कहुँ मुड उदारे,
और कुम्हेड़े तूल कहूँ उर पेट प्रहारे।
अद्भुत बिक्रम कियो मित्र माधव तुव हत्थनि।
पाटि दई रन भूमि काटि कै सुभट समत्थनि ॥
मचि रही कीच कहूँ मेद मिलि कहूँ श्रोनित नारे ढरत।
अरु कहूँ पलभच्छी भूतगन अपनौं मनभायौ करत ॥१००॥
हंस छंद—यो सुनि बोल्यो। प्रेम अमोल्यो।
माधव बदा। मानहुँ चंदा ॥१०१॥

सवैया

तब चद की चाँदनी मध्धि सु जे नर सुंदरी सग बिहारत हे।
अरु अंबर अगनि साजि सुढगनि बाग बिहार निहारत हे।
अब मो भुजदंडनि ते छिति लेटत क्योंहूँ न जे रन हारत हे।
निरधार है यार असार सबै जग जो हम नित्त बिचारत हे ॥१०२॥

पावकुलक छंद

अरु उत्तम है अवनीनायक। जग के मध्धि बड़ाई लायक।
जाने हम अपराधी दोऊ। छोड़ दिए नहिं छोड़े कोऊ ॥१०३॥

यह सुनि कै मकरंद उचार्यो । माधव सों हित उर में धार्यो ।
आउ मालती के चलि आगे । यह चरित्र कहिहैं प्रन पागे ॥१०४॥

सवैया

पै मदयंतिय कैं हरिबे के चरित्र जबै तू बनाइ जताइहै ।
सो सुनि कै ससिनाथ की सौंहै सनेह समुद्र महा उफनाइहै ।
मालती हाथ हिए धरि के तब खंजनि नैननि को चपलाइहै ।
माधव तोहिं चितै तिरछाइ कै नारि नवाइ हरैं मुसिकाइहै॥१०५॥

तोमर छंद—यह भाखि कै मधुराइ । करि नृत्य गति सरसाइ ।
बोले बहुर इहि भाइ । यह वही बिपिन लसाइ॥१०६॥
फेरि आप माधव एक । यह बचन कह्यउ सटेक ।
यह वापिका कौ थान । क्यो सुनसान निदान ॥१०७॥

मालती छंद—तबै मकरंद । बिना छर छंद ।
सु बुल्लउ बात । लहै उर घात ॥१०८॥

सवैया

मित्र हमारे बियोग तै ब्याकुल मालती हू बन मध्धि सिधाई ।
कौतिक देखति ह्वै है इते उत क्यौं चित मैं गहिए दुचिताई ।
आउ बिलोकैं प्रफुल्लित बृच्छनि है जहँ सौरभ की अधिकाई ।
गुंजनि पुंज अलिदनि की सुनिऐ जहँ श्रौननि कौं सुखदाई ॥१०९॥

तोमर छंद—सो आउ मित्र उताल । देखै दुवौं तिहिं हाल ।
यौं कहि सभा के मध्धि ।इत उत फिरे हित लध्धि॥११०॥
तब लौं लवंगिय संग । मदयंति बिगत उमंग ।
उचरंति ही अतुराइ । हे मालती सुखदाइ ॥१११॥
अचकाँ परे पुनि डीठि । मकरद माधव नीठि ।
उचरीं तबै विय बाल । लखिऐ दुवौ सरसाल ॥११२॥
मकरंद माधव फेरि । मि उच्चरे तित हेरि ।
है कहाँ मालति नारि । सो निपट ही सुकुमारि॥११३॥
फिरि दुवौ उचरीं वैन । कित मालती है ऐन ।
तुव पाइ पैदर पाइ । हम छली है इहि दाइ ॥११४॥

हंस छंद—माधव बोल्यौ। प्रेम अडोल्यौ।
ही भरि तापे। पूरि विलापे ॥११५॥

सवैया

आवतु है मृगनैनी निमित्त सु मेरे हिए मैं विचार अचैनौं।
प्रांननि अंतर त्रास बस्यौ फरकै द्रिग वाम त्रिलच्छन पैनौं।
कंप बढ्यौ अँग अंगनि मैं अब देखिए आगें कहा लखि लैनौं।
मैं नहि काम बिगार्यौ कछू जु विचार्यौ दई नैं इतौ दुख दैनौं॥११६॥

चउरस छंद—यह मदयंती। सुनि गुनवंती।
उचरिय बानी। हिय हहरानी ॥११७॥

हरिगीत छंद

बड भाग ह्याँ लें चलो जब ही सखा अपनै पास कौं।
बुधिरच्छितै अवलोकितैं तब मंडि दीह उसास कौं।
भगवतिय कूल पठाइ दीनीं समाचार सु कहन कौं।
पठई लवंगिय निकट माधव कहन साहस गहन कौं ॥११८॥
जब हुव अबेर लवंगिकै तब मालती अकुताइ कै।
तिहिं मग्ग देखन गई आगैं आतुरी अधिकाइ कै॥
हौंहूं कढी तिहिं पिठ्ठि पाछै जाइ निजु सखिऐ लखौं।
जबलौं बिलोकति ही विरच्छनि मध्धि नहिं अंतर रखौं॥११९॥

दोहा—तब लौं आए डीठि तुम आगैं दुवो सभाग।
यह सुनि माधव उच्चर्यौ हिय उमगैं अनुराग ॥१२०॥

सवैया

राखत प्रांन मरू करिकै उर मैं बिरहानल ज्वाल बढ़ी है।
भांवती तेरी हँसी अब ह्वै चुकी क्यौं जक आँनि इतीक चढ़ी है।
तेरौ कछू सुभ सूझतु है न, दुरी कित जाय अयाँन मढी है।
सुंदरि वेगि सुनाइ सुबैन कहाँ यह तू निठुराई पढ़ी है ॥१२१॥

दोहा—लवंगिका मदयंतिका दोऊ निपट छुहाइ।
बोलीं हा सखि मालती ! तू कित गई दुखाइ ॥१२२॥

छप्पै—पुनि बोल्यौ मकरंद मित्र क्यौं विहबल ऐसै ।
यह पुनि माधव कह्यो, सखा भाखतु (यह) कैसै ।
तू नहि जानै कहा मालती माधव हित मैं ।
जकरि रह्यौ है महा बिकल ह्वै है अति चित मैं ॥
यह सुनि बोल्यौ मकरंद पुनि आवति है मन बात इक ।
मति भगवति कै ढिंग मालती गई होय इह ठानि ठिक॥१२३॥

सोरठा—सो अब चलि तिहि ठार, आऔ देखै प्रथम ही ।
सुनि कैं यह सु उचार, दुवौ सखी पुनि उच्चरी ॥१२४॥
हमरे चित्त मझार, यह आवति है बात अब ।
सुनि माधव सिरदार बोल्यौ यौं पुनि आतुरौ ॥१२५॥
तुम जु कह्यौ यह बैंन सौमनाथ प्रभु यौं करै ।
यह सुनि सब सुख लैन समा मध्धि इत उत फिरै ॥१२६॥

मालती छंद—तबै मकरंद । बिना छर छंद ।
कह्यौ यह बैन । हिए मधि ऐन ॥१२७॥

सवैया

मालति कामद सिध्धिनि के घर होइ गई उर में अकुलानी ।
जीवित है वह नाँहि किधौं दुविधा यह एक महा सरसानी ।
पै निहचैं ससिनाथ की सौंह हितू मिलिहै हम कौ सब जानी ।
कौंधि उठी अभिरामिनि दामिनि औचक ही समुहै सुखदानी ॥१२८॥

दोहा—यौं कहि कै पट मै दुरे सिगरे औसर ठानि ।
कौतिकवारे लखि रहे अँखियनि अनिमिषु वाँनि ॥१२९॥
लायौ है इहि अंक में मदयंती मकरद ।
आई नृप की फौज सौ खंडी पाइ अनंद ॥१३०॥

हरिगीत छंद

वदनेसनंद प्रताप जाकौ तेज दिनमनि तूल है ।
अब करन सो ताकैं बहादुर कुँवर आनँदमूल है ॥
तिहि हित्त कवि ससिनाथ नै रच्च्यौ विचारि निसंक है ।
माधवबिनोर सुग्रथ कौ यह भयौ अष्टम अंक है ॥१३१॥

इतिश्री कविसौमनाथविरचिते माधवविनोदनाटके
मकरंदविजयवर्ननं नाम अष्टमोंकः ॥८॥

नवमांक

दोहा—पट उघारि सौदामिनी, आई सभा मझार।
कामदानि की सिख्निनी, जोगिन रूप उदार ॥१॥
सोरठा—सो जुग्गिनि तिहि ठाम, बोली परगट बचन यों।
सौदामिनि मो नाम, आई श्रीनगराज ते ॥२॥

पावकुलक छंद

पद्मावती पुरी में आई। यह मैं जानि प्रसंग महाई ॥
माधव मालति विरह सतायौ। ताने आपुनपौ बिसरायौ ॥३॥
सुहृद बंधुजन सिगरे तजि कें। बृहद्रोन गिरि बिपिननि तजि के ॥
भ्रमतु तहाँ मै निहचै जैहौं। वाकी खबरि सु आतुर लैहौं ॥४॥
जोग रीति उर में अपनाऐं। कैसै आवति उड़ी सुहाऐं ॥
नगर ग्राम पब्बय बन अगरे। कढ़त जात अँखियनि ह्वै सगरे ॥५॥
पीछै की सौदामिनि चितई। सिध्धिनि ता निहचै कै जितई ॥
बोली पुनि ऐसैं सो वानी। पदमावतीपुरी यह जानी ॥६॥
उन्नत अटौ अटारी जामैं। परसत जे अंबर अभिरामैं ॥
लवना नाम तरंगनि सोहै। उठै तरंग तुंग मन मोहै ॥७॥
राजत अंकुर हरे किनारै। नागरि गागरि भरै विहारै ॥
अरु जलकेलि करति हित सानी। तजि कैं सब की संक सयानी ॥८॥
बहुरयौं ओरौ ठौर निहारी। फिरि या बिधि सौं वचन उचारी ॥
कैसे कूल नदी नै काटे। ठौर ठौर थल लखि यौं फाटे ॥९॥
तिन मै गिरै नीर अतुरानौ। होतु नद्द घन गरजै मानौं ॥
कुंजर सद्द समान भयद्दा। काहू ठौर होतु अनहद्दा ॥१०॥
अरु लखियै बन यह अति भारौ। वृच्छनिकुंजनि कौं अँधियारौ ॥
अस्वकर्न सूधे अति रूरे। सघन हरित पत्रनि सौं पूरे ॥११॥

पद्धरी छंद

धव निम्ब खैर दामिनि उदार। सीस्यौ षँडारि बट कोविदार ॥
पीपर खजूरि कंजे तमाल। सागौनि छौंकरा अंडसाल ॥१२॥
पीलू बबूर हिंगोट ताल। मख्खी करील अर्नी बिसाल ॥
सैंवरि कंदव पापरिय बेरि। सालरि फरास औंगा गँगेरि ॥१३॥
सहंजनै फोग अरु केचि ढाक। पाडर पवाँर अरु कुडा आक ॥
वरनारु वज्रदंती सुवेल। कंगही सर्रफोंका निरेल ॥१४॥
झोभुरू कठुंमरि अमलतास। अरु हींस बकाइनि जालिपास ॥
अरु चनक संभालू तिलक पुंज। सैंहड़ि अनगंने बंस मुंज ॥१५॥
अंकोल भिलाए सप्तपर्न। तेंदू अरु थूहरि हरित बर्न ॥
करहरी चिरौंजी अरु पटीर। नारियर सुपारी द्रुमनि भीर ॥१६॥
कठरंभा नींबू बैत और। बहु बेलि लपट्टीं ठौर ठौर ॥
औरौ अनेक तरबर अटूट। जहँ पंथ नाहि बन जटाजूट ॥१७॥
डुल्लंत रीछ बुल्लंत स्यार। घघ्घरे घोर घुघ्घू अपार ॥
गुंजरत बाघ ह्वै मत्त चूरि। भज्जैं कुरंग चीते सुदूरि ॥१८॥
गाढे अनेक पाढे फिरंत। ठाढे द्विर्दद कहुँ मद झिरंत ॥
गैंडा सऐंड़ भयभीर छंडि। क्रीडंत कहूँ मनमोद मंडि ॥१९॥
वड़ फनै फुंकरैं कहूँ नाग। डारंत जहर के कहर झाग ॥
झिकरैं जोर झिल्ली अनंत। बन जंत घनें औरौ रटंत ॥२०॥

दोहा—यह लखि दच्छिन दिसा के, बन गिरि सरित अपार।
सुधि आवत गोदावरीवारे ब्योत उदार ॥२१॥
पुनि वोली सौदामिनी, आहा कहि तिहि वार।
है यह मधुमत्ती नदी, सिंधुगामिनी धार ॥२२॥

संजुता छंद

अति अमल सीतल नीर है। कहुँ थाह कहुँ सु गँभीर है।
सुथरी उतंग तरंग है। वहु रंग कौल सुढंग है ॥२३॥
चहुँ ओर सौरभ जोर है। लहकै बयारि झकोर है ॥
भननात पुंजनि भौंर है। सरि तें ढुरैं मनु चौंर हैं ॥ २४ ॥

जलजाति पातनि पै धनी। जलबिंदु सोहति यौं बनी ॥
मरकत्त के जनु थार मै। मुकता धरे अनढार मै ॥ २५ ॥
अरु कच्छ मच्छ तिरंत है। जलजत और अनंत हैं ॥
अरु तीर तीर कुलंग हैं। कुररी रु चक्र विहंग है ॥ २६ ॥
विहरैं इतै उत चैंन सौं। उचरंति है भरि मैंन सौं ॥
पुलिनैं अनूप बिराजई। अवदात सोभ समाजई ॥ २७ ॥
कहूँ कूल कट्टि गिरंत है। कहूँ नीरभौंर फिरत है ॥
कहूँ घोर सद्द सजंति है। मनु अद्द अद्द हसंति हैं ॥ २८ ॥
कहूँ नीर कुक्कुट जुट्टई। पग पंख चुट्टनि कुट्टई ॥
कहूँ सारसागन बुट्टई। कहूँ ग्राह अद्भुत लुट्टई ॥ २९ ॥
कहूँ नीर पीवत आइकै। मृग पुंज प्यास बुझाइकै ॥
कहूं केलि कुंजर मंडई। अरु बृंद बृंदन खंडई ॥ ३० ॥
पुनि सुंडि मैं जल धारिकै। निज अग लेत पखारि कै ॥
पुनि या नदी जलपान सौं। नर भोगई सुख स्यान सौं ॥ ३१ ॥

दोहा—देव प्रतिष्ठित हैं इहाँ, सुबरन बिंदु महेस।
जिनके दरसन के करे, सिगरे कटत कलेस ॥ ३२ ॥
यौं कहि कै लागि करन सिव अस्तुति मन लाइ।
जोगिन सो सौंदामिनी दोऊ हाथ उँचाइ ॥ ३३ ॥

छप्पै—सरद घटा से अंग पीत सिर जटा-जूट-धर।
तापर चलित भुजंग तुंग गंगा तरंग वर ॥
चद लिलार अमद तीनि द्रिग कोटि कष्टहर।
भूत पास अट्टट्टहास नित श्रीबिलास कर ॥
अरु मुंड माल कंकाल कर कठ बिसाल कराल गर ॥
जय सौमनाथ आनदनिधि जस प्रसिध्धि सब सिध्धिधर ॥३४॥

दोहा—तहाँ उतरिवे कौं करी चित्त वृत्ति ललचाइ।
अरु बोली पव्वय निरखि बांनी मधुर बनाइ ॥ ३५ ॥

त्रिभंगी छंद--वह श्रृंगं जाकी मकुट प्रभा की नील घटा की दुति जीतैं।
सीतल जलवारे स्रवत अपारे झिरना भारे लहिरी तैं ॥

द्रुमपुंजनि बेली जुटीं सुहेली पुहपनि मेली थिर थहरैं।
मकरंद बटोरैं पवन झकोरैं जहँ चहुँ ओरैं मृदु फहरैं ॥ ३६ ॥
फहरैं सु प्रभंजन गरमी गंजन, खग दुखभंजन धुनि वोलैं।
अरु नचत मयूरा शृंगनि रूरा सिखिनि हजूरा मन खोलैं।
बहु विधि के बिहरैं मृग छबि छहरैं आनँद लहरैं लाइ हिएँ।
तपसी जिय कंदर बसि कै अंदर बन फल सुंदर खाइ जिएँ। ३७॥
सोरठा—इतनौ कहि सुख पाइ ऊँचै कौ निरखी बहुरि।
दुपहर भयौ अघाइ, सोई लच्छन देखियत ॥ ३८ ॥
सवैया—चील्ह चिकारति अंबर मैं अरु टिट्टिभ टेरति मंडि बिहारनि।
सारसि औ चकई चकवा मुख ढांकि रहै निजु पच्छ उदारनि।
कुक्कुट कूकत ताप तचै अरु चातक जाचत मेह की धारनि।
जंतु अडोल भए बन के अरु बोलति है पिंडकी द्रुमडारनि ॥३९॥
सोरठा—भला होहु कछु क्यों न, मोहि तहाँ चलनौं अबै।
जहँ माधव तजि भौन, बिलखतु है मकरंद सँग ॥ ४० ॥
इतनी कहि कै बात, सौदामिनि पट में दुरी।
सबै रहे मुसिकात कौतिकवारे मनुजगन ॥ ४१ ॥
माधव अरु मकरंद, पट बाहिर आए बहुरि।
लै उसास भरि दंद, बोल्यो यों मकरंद निजु ॥ ४२ ॥

सवैया

निहचैं अति प्रान निरास भयो चित में भ्रम आंनि महा सरस्यौ।
इक बारही मोह अँध्यार बढ्यौ अँखियानि कलेसनि कौं परस्यौ।
अरु काज कछूवे सकैं करि नांहि फिरै पसु से इमि को तरस्यौ।
विधि के विपरीति भए हम पै सु जलद्द बिपत्तिनि कौ बरस्यौ ॥४३॥
हंस छंद—बाँह उठाएँ। छोहहि छाएँ।
प्रेम अतोल्यौ। माधव बोल्यौ ॥४४॥

पावकुलक छंद

हाइ मालती प्यारी मेरी। कौन कौन विधि सुमिरौं तेरी।
कहाँ गई तू मैं नहिं जानौं। तो बिनु हियौ महा अकुलानौं ॥४५॥

वेगि आइ दै दरसन प्यारी । क्यों तैं मेरी सुरति बिसारी ।
हो प्रसन्न अब भरि मो अंकै । चूरि डारि मनमथ्थ अतंकै ।।४६।।
कंकन बंध हत्थ अरबिंदा । तेरौ जो भूपननि अनिंदा ।।
ताकौ दरसन अति सुखदाई । कब मोकौं ह्वैहै अचकाई ।।४७।।
हे मकरंद मित्र सुखकारी । दुर्लभ फिरि मिलिबौ इमि नारी ।
और को ऐसैं नेह निवाहै । मो समान जो मोकौं चाहै ।।४८।।
सिरस कुसुम से कोमल अंगनि । रह्यौ मदन कौ दाह कुढंगनि ।
तृन समान जीतवु ठहरायौ । ताकौ डर मन मधिंध न आयौ ।।४९।।
अरु पनि कौंन गहै इमि आहै । कीनौं अपनौ आपु बिवाहै ।
तातैं वैसी सब जग माही । दूजी कहूँ रची बिधि नाहीं ।।५०।।

सवैया

बार अनेक हियौ धरकै पुनि होतु नहीं किरचैं अचकांही ।
मोह समुद्र समान भयो अरु चेत रहे किहि हेत वृथां हीं ।
देह जरै पर खेह न होइ, कलेस करै पै हतै बिधि नांहीं ।
और कहा कहिऐ ससिनाथ सनेह कियौ रु उपाधि वसांहीं ।।५१।।

मालती छंद—फिर्‌यौ मकरंद । लहै उर दंद ।
रट्यौ यह बैंन । रतोपल नैन ।।५२।।

हरिगीत छद

चहूँ ओर पाहन पारि तापै बिबिधि बृच्छ अनंत है ।
लखि मित्र माधव सलिल तामैं अमल कमल खिलंत हैं ।।
ससिनाथ मंजुल पुंज पुंजनि भ्रमर गुंज करंत है ।
पग चंचु चिन्हित पंक हसिनि हंस वहु बिहरत है ।।५३।।
फहराति सोरभ सनी सीतल मंद मंद बयारि है ।
वढ़ि रह्यौ बिरह हुतास तो तन ताहि तुरत निवारिहै ।।
सजि कै बिबेकहि चित्त अंतर नैंकु ह्यां थिर ध्याइऐ ।
मे परसि ठोढी कहतु प्यारे बचन कौं अपनाइऐ ।।५४।।

मालती छंद—इती कहि बात । हिऐ अकुलात ।
इतै उत जाइ । गऐ सु थिराइ ।।५५।।

तोमर छंद

अब और बिधि मैं याहि। बहराइहौं बुधि गाहि।
मकरंद नै तिहि बार। यह कियौ चित्त बिचार ॥५६॥

उचर्‌यौ फिरौं परकास। मकरंद बुद्धिनिवास।
यह खिली मल्लिय मित्र। लखि नेकु ताहि बिचित्र ॥५७॥

दोहा—इतनैं मै माधव उठ्यौ आतुरता सौं दौरि।
अंग अंग ज्वालिम जगी पंचबान को रौरि ॥५८॥

त्रिभंगी छंद

ढंगनि कौं छंडै हित कौ मंडै सुखन बिहंडै तररानौं।
तिहि बन मैं पैठ्यौ ठानहिं बैठ्यौ दुखनु अमैठ्यौ अररानौं॥
मालति बिनु देखें छोह बिसेखें माधव भेखें पिगरानौं।
मकरंद सिखावै को उर लावै तन थहरावै अकुलानौं ॥५९॥

अकुलानौ पैं देटै तजि के दपटै बोलिन लपटै भ्रम छायौ।
मालति सुधि लहरै, पाइ न ठहरै, स्वेदनि भहरै मुरझायौ॥
कबहूं हित जितवै इत उत चितवैं बासर बितवै सांवरिया।
पुनि बुधि बिसराएं गिरै अठाएं औचक आंऐं तांवरिया ॥६०॥

ताँ बरियां भूलैं तन दुख रूलैं प्रेम कबूलैं उठि धावै।
प्यारी द्रिग टौनैं सुधि करि लौनैं निजु मृगछौनैं गहि लावै॥
बैनी अनुहारी नागनि कारी पकरि डरारी नहिं डरपै।
मकरंद अकेलौ मित्र सुहेलौ जानि दुहेलौ असु अरपै ॥६१॥

अरप्यौ असु चाहै सहित उछाहै पै दुख थाहै नहिं पावै।
मालति अति प्यारी हियें बिहारी नेकु न न्यारी जो भावै॥
सो रंच न दरसै द्रिग जल बरसै फिरि फिरि तरसै हाट कहै।

को तियै मिलावै हियौ सिरावै बिरह बचावै जस लीनै ।
माधव यौं उच्चरैं प्रन कौ संचरै नैकु न बिचरै रसभीनै ॥६३॥
भीनै बिष जामैं षट रस खानैं बसन ठिकानै बिसरानैं ।
...निद्रा नहि नैननि बिलपै बैननि बिलखानै ॥
रसना तुतरानी पियै न पानी कथा कहानी कौ मानैं ।
पूछै मकरंदै निबरि अनंदै नहि छरछंदै पहिचानैं ॥६४॥
पहिचानैं एकै सहित बिबेकै अपनी टेकै निरबाहै ।
जनु मालति आई निकट सुहाई यौं बुधि ठाई गहि आहै ॥
निजु भुजनि पसारै मिलनु विचारै सुन्न निहारै तब हारै ।
कर उर सौं मारे खाइ पछारै फेरि सम्हारैं पग धारै ॥६५॥
धारै पग अग में डग मग मग मै ता बिनु जग मै अँधियारौ ।
सुमिरै हित घातैं, पहिली बातैं, नैकु सु बातें न करारौ ॥
मकरंद सिखावै हिऐं लगावैं अरु ललचावै परचावै ।
नहिं तौऊ माधौ मन करि साधौ छिनु पल आधौ सचु पावै॥६६॥

दोहा—माधव कौं तिहिं ताल तट बैठार्यौ फिरि आइ ।
तऊ भज्यौ मकरद तब बोल्यौ नेह वढ़ाइ ॥६७॥

तोमर छंद-उनमत्त तूल असंक । भजि क्यों चलै गहि बंक ॥
पुनि लै सु दीह उसास । बोल्यौ फिर्यौ अनआस ॥ ६८ ॥
परसन्न हो मम मित्र । ए नांखि बिकल चरित्र ॥
ए बैत कुंज निहारि । परसै जु सरिता वारि ॥ ६९ ॥
जूहि प्रफुल्लित और । अरु जाल तरु बहु ठौर ॥
गिरि श्रृंग कुटज खिलंत । मनु हरष मंडि हसंत ॥ ७० ॥
अरु घनै मोर नचंत । घन रहे छाइ अनंत ॥
फूले कदंब लसात । मानो खरे सु जँभात ॥ ७१ ॥
अरु कंदरानि उदार । केतक लसात अपार ॥
अरु औरहू बहु बृच्छ । ते सोसिएं परतिच्छ ॥ ७२ ॥
मकरंद की ए बात । सुनिकै बिकल ह्वै गात ॥
उचर्यौ सु माधव फेरि । भरि नैन सनमुख हेरि ॥ ७३ ॥

हे मित्र यह गिरि भूमि। जो रहो फूलनि झूंमि ॥
मो पै सु लखिय न जाइ। उर मै रह्यौ दुख छाइ ॥ ७४ ॥
हे मालती त्रिय हाइ। आछौ दियौ बिसराइ ॥
करुना ना आवति मोर। प्रहरै मनोज कठोर ॥ ७५ ॥

दोहा—सोक रूप ह्वै सभा मै कीनौं नृत्य विसाल।
कौतिक दरसैयानि कै, हियरा भयौ दुसाल ॥ ७६ ॥

मालती छद-फिरचौ मकरंद। लहै उर दंद ॥
कह्यौ यह बैंन। भरै जल नैन ॥ ७७ ॥

सोरठा—माधव की अब आस मेरे मन में नाहिंनैं।
याकी दसा प्रकास निपट अटपटी देखिऐ ॥ ७८ ॥
सभय गगन तिनि देखि मूरख की सी भाँति पुनि।
बौल्यौ छोह बिसेखि मालति सौ मकरंद सौं ॥ ७९ ॥
अब दिय दया बिसारि तब साहस करि ब्याह किय ॥
माधव सो दुख धारि तो बिनु प्राननि कौं तजै ॥८०॥
को नहिं अबहूँ आइ समाधान को करति है।
सरबसु लियौ चुराइ मै मार्‌यौ तैनै सखी ॥ ८१ ॥

सवैया

आवत रूँध्यौ हियौ अति ही अरु अंगनि मै सिथलाई छई है।
डीठि परै जग सूनौ सबै अरु अंतर की गति ताप तई है।
बूड़तु मोह समुद्र पर्‌यौ अब ना उन सूझत रूप रई है।
ज्वाबु दियौ निहिचै विधि मोहि कहा मैं करौं मति भाजि गई है ॥८२॥

मोहनी छंद—मोहि कष्ट हुव अति ही हिय अकुलाइ।
दैव प्रबल है निरदै कछु न बसाइ ॥८३॥
मालति नैन चकोरनि पूरन चंद।
माधव-विरह-जलद्दनि होत सुमंद ॥८४॥
मो तन तेरी डीठि सु लागति ऐम।
चंदन रस की छींटै ज्यौं भरि प्रैम ॥८५॥

अरु तेरो ससि आनन मैंटन दंद ।
ताहि लखत ही मो हिय वढ़इ अनंद ।।८६।।
सो अव तू अनसमए तजइ परांन ।
हारि मर्यौ मैं माधव ह्वै कलकांन ।।८७।।
ह्वै माधव के अंगनि उचर्यौ फेरि ।
हितू निपट मकरंदा सुख्ख निवेरि ।।८८।।
माधव हाइ पियारे रंचक वोलि ।
मो तन क्यों नहिं चितवतु अँखियनि खोलि ।। ८९ ।।
दोहा—इतनैं मैं माधव लह्यौ चैत आपनै चित्त ।
लै उसास बोल्यो तवै मकरंदा तिहिं मित्त।। ९० ।।

वड़ी चौपाई छंद

सित धोए नवल वसन सम जाके अंगनि सोभ सुहाई ।
सो मेरो मित्र वरसि जलधर ने हित करि लयौ जिवाई ।।
मो वड़े भाग जो वच्यौ भांवतो नित्त महा सुखदाई ।
यौं कहिं कै लई उसास हियौ भरि कछुक विपत्ति भुलाई ।।९१।।
इहिं औसर हीं आवेग सहित पुनि माधव उचर्यौ वांनी ।
अव काहि बिपन के मद्धि प्रिया की वात कहौं सुखदांनी ।
फिरि चितै उच्च कौ साधु साधु कहि वात कहन पुनि लाग्यौ ।
ए पकी स्याम जंवू कुंजनि तैं स्रवैं असित फल खाग्यौ ।।९२।।
पुनि सहसा उठि ठाढ़ौ हुव माधव नीचें नारि नवाऐं ।
जुग हाथ जोरि अंजुल करि जाचन लग्यौ छोह अधिकाऐं ।।९३।।
दोहा—मैं जु जातु हौं प्रेम सों, हे भगवान जलद्द ।
सुनियौ तुम मेरी विथा वाढ़ी हिऐं अहद्द ।। ९४

कवित्त

सव दिस डोलत कलोल भरे मेघ तुम,
ताप निरुवारत सलिल बरसाइ कै ।
मालती कहूँ जो रावरे की डीठि आवै तव,
मेरी दसा कहियौ दया कौ सरसाइ कै ।

तो बिनु बिकल माधौ भूल्यौ खान पांन अरु,
भाजि गई नैंननि तै नीदौ अरसाइकै।
है अब उपाइ एक यही सचु पाइ प्यारी,
ताहि लै जिवाइ मुख चंद दरसाइ कै ॥९५॥

सोरठा—सुख पायौ मन मध्धि माधव नै यह जानि कैं।
मो बानी हित सिध्धि मानी जलधर नैं अबै ॥९६॥
अरे चले तजि थान एऊ अपनैं काज कौं।
अंत समेति सयांन हौंऊं जाइ निहारिहौं ॥९७॥
इत उत कौं डग धारि, सभा मध्धि माधव फिर्यौ।
तव मकरंद निहारि बोल्यौ लखि उन्माद गति ॥९८॥
कैसौ माधव चंद ग्रस्यौ राहु उन्माद नैं।
भगवति बुध्धिबिलद हमरी रच्छा कीजिए ॥९९॥

हंस छंद—माधव बोल्यौ। प्रेम अतोल्यौ।
छोहहि छाएं। सीस नवाएं ॥१००॥

सवैया

लोद के बृच्छनि देह की दीपति, लोचन चारु कुरंगनि छीनैं।
चोरि लियौ नइवौ नव वेलिनि, जांनि अकेली बिनोद बिहीनैं।
श्री ससिनाथ की सौंह मतगनि, सुंदरि की गति आनँद भीनैं।
बाँटि लिए अँग अंग सु यौं मनभांवती के अपनौ मत कीनैं ॥१०१॥

दोहा—भली करी सो करी विधि, अब मैं नग, बनजीव।
तिन कौं हित सौं पूछिहौं तिय कौ भेद अतीव ॥१०२॥
यौं मन मैं कहि कैं बिकल पूछन लाग्यौ भेद।
क्यौं हूं करि आवै नहीं परिपूरन निरबेद ॥१०३॥

कबित्त—कंचन की बेलि सी अकेली अलबेली बैस,
बौंनै कुच लौंनै नैंन चैन उपराजई।
ब्याह के समै कौ कर कंकन बिराजै अरु,
मनिमय भूषन बसन छबि छाजई।

सौंमनाथ की सौं जाके आननु अमंद आगें,
कोरि कोरि पून्यौं के मयंक लखि लाजई।
ऐसी मनभांवती कहूं जौ तुम देखी होइ,
दीजियै वताइ तौ अनंत सुख साजई ॥१०४॥
हंस छंद—काहि अगाऊँ। दुख्ख सुनाऊँ।
कौन बचावै। काम सतावै ॥१०५॥

सवैया

नव मोरनी ओर निहारि कुहक्कत नच्चत मोर मनोज भरे।
अरु मत्त चकोर चकोरनि कौं ललचावतु नैनन चाइ खरे।
मुख पोंछति चुंवति बामनि कौ पुनि लगर लंगुर औ वनरे।
अब पूँछिऐ काहि उछाहनि सौं इत एऊ सवै हित फंद परे ॥१०६॥

वड़ी चौपाई छंद

यह देखौ गोल कपोल त्रिया के द्विरद सुंडि सौं छीवै।
अरु अधमूँदी अँखियन तरुनी को रद खुजाइ रस पीवै।
पुनि कोऊ नाल समेति कमल कौं लै उखारि अतुराएँ।
निजु प्यारी के मुख मध्धि गहावै निपट मोद सौं छाएँ ॥१०७॥
दोहा—प्रति उतंग वन सघन कौं है यह धनि गजराज।
संगु आपनी प्रिया के बिलसतु सुख्ख समाज ॥१०८॥
आगै चलि कै फेरि इक दंती लख्यो उतंग।
ताकौं पुनि बर्नन लग्यौ माधव विगत उमंग ॥१०९॥
पावकुलक छंद—हथिनी के दुख निपट दुखारी।
लखिऐ यह दंती प्रन भारी।
घन की धुनि सुनि गुंजतु नाही।
भूख प्यास भूल्यौ मन माही ॥११०॥
मद उतार ह्वै गयौ बिचारौ।
लखिए दुरबल डील डरारौ।
गुंज करत नहिं पुंज अलिंदा।
दरसै सुन्न भसुंड अनिंदा ॥१११॥

यह कहि और ठौर पुनि देख्यौ । हिएँ भाँवती बिरह बिसेख्यौ ।
अरु बोल्यौ पुनि या बिधि बानी । निपट अयाँनप सौं लपटानी ॥११२॥
अति ही जाति रही बुधि मेरी । मूरखता हिय बढी घनेरी ।
वचन मित्र सौं कहिवे लाइक । सु मै पसुनि सौं कहतु सुभाइक ॥११३॥
हा ः मित्र मकरंद पियारे । यौं कहि औरौ वचन उचारे ।
मोंपै कछू नाहि बनि आयौ । प्रिया बिरह नै अति बौरायौ ॥११४॥
कबहुँ मित्र मकरदै लैकै । बैठ्यौ नही इकते व्है कै ।
मृगतृष्ना रूपी या सुख्वै । है धिक्कार अनंत पुरुखवैं ॥११५॥
ए सुनि कै माधव की बातैं । प्रेम जाल जकर्यौ अकुलातै ।
बोल्यौ परम सखा मकरंदा । मंद मंद त्रिधि बुध्धिबिलंदा ॥११६॥
देखौ याकौ नेह अपारौ । कैसौ है मौ सौं उजियारौ ।
जऊ विरह मै व्याकुल ठाढ़ौ । तऊ मोहि सुमिरै हित गाढ़ौ ॥११७॥
मौहि आपनै निकट न जानतु । मन आवै सो बचन बखानत ।
तातै आपौ याहि जतैएं । औरु बात उर मैं नहिं लैएँ ॥११८॥
यौं विचारि माधव के आगै । ठाढ़ौ ह्वै कै अति हित पागै ।
निजु बोल्यौ मकरंद प्रवीनौं । करकें वचन प्रेमरस भीनौं ॥११९॥
मैं यह तेरो साँचौ चेरौ । जोरैं कर तजि और बखेरौ ।
ठाढौ हौं तुव आगैं भाई । बिधि सौं मेरी कछु न वसाई ॥१२०॥

दोहा—यह सुनि कैं मकरंद की अपनाइत की बात ।
बोल्यौ माधव प्रेम कौ हियै सिंधु उफिनात ॥१२१॥

पावकुलक छंद-हाइ मित्र मिलि मोहि पियारे ।
समाधान मो करि गुन भारे ।
गई मालती भए निरासा ।
फट्यौ जातु हिय लेत उसासा ॥१२२॥

सोरठा—यह सुनि कैं मकरंद दसा मित्र की देखि पुनि ।
तजि कै सब छरछंद बोल्यौ हरषहि पाइकैं ॥१२३॥
समाधान तुव मित्र, अब हौं करिहौं भली बिधि ।
धीरज राखि बिचित्र, दुखहरता समरत्थ हर ॥१२४॥

करुना भरि कैं बैंन हितकारी मकरंद पुनि ।
उचर्‌यौ मंडि अचैंन, निपट बड़ौ यह दुख्ख है ॥१२५॥

सवैया

ससिनाथ कहा कहिऐ यह बात मो अंक मैं माधव आवत ही ।
ततकाल ही मूरछा पाइ कुभाइ अचेत भयौ तन ताव नहीं ।
अब याके कहा जिय की कछु आस अनेक उपाय उपावत ही ।
मन मेरौ गयौ थकि सौ अति ही लखि कैं मुख कौं पियरावत ही॥१२६॥

तुव नेह कौं देह मैं दाह बढै अँग अंगनि मैं थहरानि भई ।
तिनि कारन तोपै बिपत्ति निहारि सबै बिसर्‌यौ भय चित्त छई ।
छिनबेई हुते सुभ तोहि सचेत बिलोकत है जब मोदमई ।
दिन राति न जानियते कित जात किये बतरानि न पैये नई ॥१२७॥

अब तौ मुहि भारी सरीर लगे अरु जीवनु बज्र की मूल भयौ ।
दिसि औ बिदिसा सब सूनी समान सु डीठि परैं अँधियार छयौ ।
नहिं इंद्रिय काज करैं अपनौं रसनां जपनौं तुव नाम लयौ ।
× × × ॥१२८॥

प्लवंग छंद—मन मैं चित्यौ सु तबै मकरंद है ।
प्रीति रीति निरबाहक बुध्दिबिलंद है ।
मित्र मरन की साखि होंउगौ मैं कहा ।
यातैं या गिरि शृंग चढ़ौंगौ उहडहा ॥१२९॥

तहँ तैं गिरिहौं छिप्र सङ्क बिसराइ कैं ।
मित्र मरन ते आगे पहुँचौं जाइ कैं ।
फिर्‌यौ सभा के मध्धि इतेक बिचारि कै ।
करुना भरि लखि फेरि उचार्‌यौ हारि के ॥१३०॥

हाइ कष्ट है कष्ट जु याकौ कमल सौ ।
कोमल परम सरीर चंद तें अमल सौ ॥
मो कौं तृप्ति न होती जासौं भेंट तें ।
और मालती लखति हुती दुख मेटतें ॥१३१॥

ताकौं है यह दुक्ख अचंभो अत्ति है।
बालकपन मैं हुतौ गुनी यह सत्ति है॥
ताकी यह गति होति कहा अब कीजिऐ।
परचो राहु मुख मध्धि चंद लखि छीजिऐ।।१३२॥
सजल मेघ ही लखौ उड़ाए हेरनै?
सफल वृच्छ ही जारचौ दवां गंभीर नै॥
जगत सिरोमनि ह्वै तू पावतु काल है।
अब तातै तोकौं भेटतु मित्र बिहाल है॥१३३॥
छप्पै—मिलि कै बोल्यौ हाइ बिमल बिद्यानिधि प्यारे।
गुन बृंदनि के गुरू मालती प्रान अधारे॥
कामंदकि मकरंद दुहूँनि के आनंदकंदा।
अंत्य समै कौ मिलतु मोहि दै तजि दुख फंदा॥
अब मेरौ जीवनु जगत मैं माधव जांनि न एक छिन।
अरु मैने मां कौ दूधहू कबहू पियो न तोहि बिन॥१३४॥
दोहा—सो तू चाहत है पियो मिश्र तिलजलि एक।
माधव यह अब कौन बिधि बनिहै तजैं बिबेक॥१३५॥

सवैया

माधव की पलकै न लगैं लखिए मुख चंद्र महा मुरझानौ।
बैननि मालति नामहूँ तै जिय बूड़ि गएँ सुख ही विसरानौ।
नैकहु हाथ न पाइ हलै बढ़ि स्वेद सरीर सवै सिहलानौ।
नैम के पेचनि तैं सुरझ्यो परि प्रेम के पेचनि तें उरझानौ॥१३३॥

हरिगीत

धरि हाथ छाती लखौ ताती गति सिराती जांनि कै।
तजि लोक बीड़ै करनि मीड़ै हृदय पीड़ै हानि कै।
लखि यों विचित्रै परम मित्रै हित चरित्रै पार तौ।
जनु डस्यौ रिसुवनि अहि अकसुवनि चल्यो असुवनि धारतौ॥१३७॥
मकरंद तरसतु अश्रु बरसतु सोक सरसतु चित्त में।
गिरि परन ठान्यौ मरन मान्यौ सोचु आन्यों मित्त में।

तिहिं मेरु शृंगनि चढ़ि कुढंगनि सिथिल अंगनि चातुरौ ।
माधवहि टेर्यौ गगन हेर्यौ पगनि फेर्यौ आतुरौ ॥१३८॥

सोरठा—उठ्यो सभा के मध्धि करुना भरि इत उत फिर्यौ ।
अपनौ औसर लध्धि मेरु पहुँचि बोल्यो सु यों ॥१३९॥

काव्य छन्द—नटी पाटलावती भगवती कहति यही है ।
मै यह जाचतु तोहि मान यों बात सही है ॥
मेरो अरु मो मित्र जु माधव है अब ताकौ ।
हुतौ संगही जनम लखावन मोद कला कौ ॥१४०॥
बेर बेर यह भाषि गिरन गिर पै तें लाग्यौ ।
औरनि सो निरमोहि मित्र के हित सौं पाग्यौ ॥
तौ लौं सौदामिनी खोल पट बाहर आई ।
अरबराइ के बात उच्चरी यह मन भाई ॥१४१॥
ए बच्चा मकरंद करै मति साहस ऐसो ।
यह सुनि कै मकरद देखि बोल्यो सु अनैसो ॥
माता ! तू है कौन ? मोहि जो बरजै ठाढ़ी ।
मनौ हैम की लता तपस्या मडित गाढ़ी ॥१४२॥
सौदामिनि उच्चरी फेरि बानी मधुराऐं ।
रे तू है मकरंद बिकल सुधि बुध्धि भुलाऐं ॥
पुनि बोल्यौ मकरंद मंदभागी हौं सोई ।
छोड़ि छोड़ि मो हत्थ मित्र कौ मिलबौ होई ॥१४३।
यह सुन कै बतरानि फेरि उचरी सौदामिनि ।
भस्म भाल में लगी देह दमकै जनु दामिनि ॥
रे मै जोगेसुरी पतो मालति कौ लाई ।
है वह जीवति ठीक जानि जिनि रंच झुठाई ॥१४४॥
वकुल फूल की माल देखि यह छबि लपटाई ।
निपट डहडही बनी नहीं नैंको कुँभिलाइ ॥
यह सुनि के मकरंद, लख्यो, पहचानी माला ।
फेरि उचर्यौ अरी जियति है मालति बाला ॥१४५॥

यह सुनि सौदामिनी उच्चरी फेरि सयानी ।
है जीवति निरधार सत्य तौसौं बतरानी ॥
कछु अनिष्ट माधवै भयो रे कहा कहै किनि ।
कंपतु मेरो हियो मरै तू जातै मरि धनि ॥१४६॥
पुनि वोल्यौ मकरंद सुनौ जोगेसुरि अब्बै ।
जानि मर्‍यो सो ताहि इतै आयौ तजि सब्बै ।
तातै वाको वेग चलौ हम दोऊ देखें ।
यों कहि इत-उत फिरे सभा में प्रेम बिसेषें ॥१४७॥

सोरठा—मानौ पहुँचे जाय, दोनों माधव के निकट ।
लखि माधवै सुभाइ, तब बोल्यौ मकरंद निजु ॥१४८॥
माधव भयौ सचेत, आहा देव दायहि तैं ।
लोचन सोभ निकेत, खुलत मुँदत पलकौ जुगल ॥१४९॥
सौदामिनि हूँ देखि, बोली यौं लखि कै समौ ।
मालति बुद्धिबिसेषि, कहै हुतो है भांति तिहि ॥१५०॥

मधुभार छंद—लैके उसास । माधव प्रकास ।
इमि कह्यौ बैन । पूरित कुचैन ॥१५१॥
मो को छुहाइ । काहू जगाइ ।
दीनौ उताल । कीनो बिहाल ॥१५२॥

दोहा—पै निहचै यह वात मैं जानी अपने चित्त ।
मेह-बूँद-जुत पवन ने प्रगट्यौ आपु चरित्त ॥१५३॥

सवैया

हे पुरवाइ समीर बड़े नव नीरद पुंजन के घुमड़ैया ।
चातिक और मयूरन के उर अंतर के परिताप उडैया ।
केतक के बन कौ अति पोखि सँजोगिनु के सुख सिंधु बुड़ैया ।
मूरछा में ते जगाय कठोर दियो दुख मोहि क्यों धीर छड़ैया ॥१५४॥
सोरठा—पुनि बोल्यौ मकरंद, जगतप्रान या पवन ने ।
भली करी तजि छंद, माधव कौ जु सचेत किय ॥१५५॥

माधव बोल्यौ फेरि अँखियन अंबर हेरि कैं।
तौहू जाचतु टेरि, देवरूप एरे पवन ॥१५६॥

सवैया

फूले कदंब सुगंधि समेति समीर मो प्राननि को सँग लीने।
जाइ तहाँ जहाँ मालती है नव चंपक वेलि सी केलि बिहीने।
कै मिलि वासहिं मोकहिं भेंटि कहौं ससिनाथ की सौंहन दीने।
मेरी तवै निहचै गति होइ, न खोइ बृथा समयो परबीने ॥१५७॥

दोहा—यों कहि माधव जोरि कर लाग्यो करन प्रनाम।
मन में तब मकरंद ने यों बच कह्यो ललाम ॥१५८॥

जीयति मालति कौ पतौ दैबे को छिन एह।
यो बिचार कै माल सौ डार दई भरि नेह ॥१५९॥

पादकुलक छंद—माधव तच्छन उचर्‌यौ बैना।
बड़ौ अचंभो है सुख दैना।
मन्मथ बन में मैं सु बनाई।
बकुल कुसुम की माल सुहाई ॥१६०॥

मालति हिय पै लोटनवारी।
कैसे ह्याँ आई सुखकारी।
है यह वही किधौं यह औरौ।
यह सदेह कछुक हिय झौंरौ। १६१॥

निरखत याहि प्रीति सरसानी।
तातैं ठीक वहां मैं जानी।
बिषम बनी ही तन मन हारै।
मालति कौ मुखचद निहारै ॥१६२॥

लवंगिका कौ 'मोद बढ़ावनि।
सुरति मालती की सरसावनि।
यों कहि के उन्माद समानौ।
ठाढ़ो ह्वै बोल्यौ बौरानौ ॥१६३॥

हे प्यारी मालति तू देखति ।
मेरी नहीं दया अवरेखति ।
यौं कहि कैं उर मै अनखानौ ।
माधव बोल्यौ पुनि अनस्यानौ ॥१६४॥

सवैया

जात हैं प्रान कढ़ै से बढ़ै दुख, लागत और हियो दरकै सो ।
छाइ अँधेरो रह्यो चहूँ ओर सो अंग जरैं दुख से भरि कैसो ।
होत कठोर उतावल, साजि नही उपहास समौ धरकै सो ।
मो अब नैन चकोरनि कौ सुख दै मुख ऊगि निसाकरि कैसो ॥१६५॥

दोहा—यों कहि चाऱ्यो ओर को सजल दृगनि सों हेरि ।
'ह्वां कित प्यारी' भाखि यों, वोल्यो माधव फेरि ॥१६६॥
वकुल माल तू प्रिया की उपकारिनी समर्थ ।
भली करी आई यहां, मेटनि विरह अनर्थ १५७॥

सवैया

मो मिलिबे के निमित्त हुतौ जब मालती के हिय दाह दुहेलो ।
ता समयै तू रही जिय दानि, औ कै चतुरानन आप अकैलो ।
मेरे मिलाप समान प्रिया कहँ तो मिलवो है निदान सुहेलो ।
तो विन वाके हिए को बिषादु सुहोइगौ कौन सी भाँति पछेलौ॥१६८॥

सोरठा—यौं कहि करुना धारि, फिरि सुभाव मालतिय के ।
कहन लग्यो प्रन पारि माधव न्हायो प्रेम नद ॥१६९॥

सवैया

मालती कंठ तैं तोहि धरी न विसारति ही इतनो हिय हेत भौ ।
ताहि मनंमथ को सरसाइ कै तैरो मिलाप महा सुख देत भौ ।
सो सुधि आवति है अब मोहि सरीर थक्यो दुचिताई निकेत भौ ।
यों कहि के वकुलावलि को उर लाइ कै माधव फेरि अचेत भौ॥१७०॥

दोहा—निकट आय पंखा करतु फिरि बोल्यो मकरंद ।
सावधान हो मित्र तू टरि जैहै दुख दंद ॥१७१॥

यों सुनि माधव उच्चर्यो लै के उच्च उसास।
तोहि कछू दरसातु है कौतिक मित्र प्रकास।१७२॥
वस्तु मालती की कछू पाई है मो मित्र।
सो तेरे मन में कहा आवति परम विचित्र ॥१७३॥
सोरठा—पुनि मकरंद उदार, बोल्यो माधव मित्र सौं।
इहि जोगेसुरि यार पतौ मालती कौ दियौ ॥१७४॥

बड़ी चौपाई

यह सुनि कै दीन रूप व्है माधव हाथ जोरि कैं बोल्यो।
हे जोगेसुरि, परसन्न होउ तुम लखिए धर्म अतोल्यौ॥
कह जीवति है वह मेरी प्यारी मालति नाम सुहाई।
पुनि सौदामिनि सुनिकै यह बोली है जीवति दुवराई॥१७५॥
सुनि माधव अरु मकरद उच्चरे सावधान व्है तासौं।
जो ऐसे है तो समाचार कहि हम सुखु पावैं जासौं॥
तब सौदामिनि ने कही कराला देवी के मठ आगे।
यहिँ माधव नै अघघोर घंट कौ मारचौ क्रुद्धहि पागे॥१७६॥
यह बात सुनत ही माधव बोल्यो मौन गह्यौ हम जानी।
तब बोलि उठ्यौ मकरंद मित्र कहिहै यह कहा कहानी॥
पुनि यह सुनि माधव नै मकरंदै इतनी बात जताई।
यह सठ कप्पालकुडला नै निज करी बात मनभाई॥१७७॥
तहँ सौदामिनि सौँ फेरि उच्चरयो सो मकरंद सयानौ।
यह ऐसे ही है बात कहतु है ज्यो माधव मरदानौ॥
पुनि सौदामिनि सुनि कै यो बोली तप अरु सत्य समानी।
है ऐसे ही ज्यो कहतु पुत्र मो माधव मधुरी बानी॥१७८॥
मोहनी छंद—यह सुनिकै मकरंदा बोल्यो हाइ।
बड़ो कष्ट हुव विधि सौँ कछु न बसाइ॥१७९॥

कवित्त

सरद के चंद की अमंद दुति चंद्रका सु,
कुमुद के वृंदनि के मधि गुन पाई ही।

सोमनाथ कहै और कहिऐ कहाँ लौं वात,
सो तौ भली भई सब के ही मनभाई ही।
फिरि कौन कीनी चतुराई चतुराननि सु,
बिधि में अबिधि ऐसी कहा मन आई ही।
ताहि असमै जो अति सघन घटानि बीच,
दाविनि दुराई कछू कहा दुखदाई ही ॥१८०॥

मोहनी छद—फिरि बोल्यो सो माधव मालति हाइ।
बड़े दुख्ख मधि प्यारी तू अकुलाइ ॥१८१॥

नाराच छंद—जवै कपालकुंडला गही सु तू उताल ही।
भयौ हवाल होयगौ कहा सु तो अकाल ही॥
कराल धूमकेत की हती कला मयंक की।
तिही समान होइगी भई भरी अतंक की ॥१८२॥

छप्पै—हे कपालकुंडले मालती बिधि नै हित करि।
आदर लाइक रची त्रिपुर की सुंदरता भरि।
तूऽत्र पूतनाभाव आपु मति पायो चाहइ।
क्रूर बुध्धि इमि प्रगटि पाप के सिंधुहि गाहइ॥
जो फूल सीस पर धरि हरषि, नर नारी सोभा लहैं।
नहि तिन्हैं मुसलि सौं कूटिबौ उचित यही स्यानै कहैं ॥१८३॥

पावकुलक छंद

माधव सौं बोली सौदामिनि। चुप करि लहतौई निजु कामनि।
जु मै रच्छि नहि वासौं लरती। तो पापिनि मनभायो करती ॥१८४॥
पुनि माधव मकरंद सयानै। दोऊ यो बोले सुखुसानै।
कौन हमारी तू हितकारी। जिनि यह दुखहर बात उचारी ॥१८५॥
सौदामिनि पुनि बोली बैना। जाँनौगे आगै सुख दैना।
यह कहि ठाढ़ी ह्वै पुनि बोली। जोग सिध्धि के मध्धि अलोली ॥१८६॥
देखौ गुरुप्रसाद तैं अब्बै। चाह तुम्हारी करिहौं सब्बै।
मंत्र और जत्रनि के बल सों। और जोग की जुगति अमल सो ॥१८७॥

यौं कहि माधव कौं सँग लीनै । परदा ओट दुरी सुख भीनै ।
श्री पर्वत पै पहुँची आछे । मालति सों मिलि तों प्रन काछे ॥१८८॥
यह कौतिक लखि कै मकरंदा । पुनि यों बोल्यो बिगति अनंदा ।
बड़ो आचिरज भयो अचानक । अव कासौं कहिऐ यह बानक ॥१८९॥
चमकि तडित सौ द्रगनि मु दैकै । यौं जु बेगि ही जोति बितैकै ।
निरखि इतै उत फिरि भय भीज्यो । बोल्यो इमि अंतर उर छीज्यो ॥१९०
नहीं मित्र माधव ह्या मेरो । नयौ भयौ यह कहा बखेरो ।
छिनुकु आपनै चित्तु बिचारचो । मन तै मित्र टरै नहि टारचो ॥१९१॥
फेरि तर्क मन में उपराजी । जोगेसुरि नै व्है के राजी ।
निजु प्रभाव कछु परगट कीनो । पै मेरो मन भयो मलीनो ॥१९२॥
अर्थ भयो कि अनर्थ अपारो । हर्ष सोक सों भरि के मारो ।
सो बिरतंत फेरि सुधि आयौ । जाते यों हमने दुख पायो ॥१९३॥

दोहा—ताते ह्या करिहौं कहा चलिए तेही थान ।
जहाँ बाटिका मध्यि मो संगी है बुधिमान ॥१९४॥
कामदांनि सों जाय कै कहिए सिगरी बात ।
यों कहि परदा मै दुरचो लहि कै अपनी घात ॥१९५॥
सौदामिनी इहि अंक में आइ सुदरसन दीन ।
समाचार मालती के कहे मोद सों लीन ॥१९६॥

हरिगीत

बदनेसनंद प्रताप जाकौ तेज दिनमनि तूल है ।
अव करन सौ ताकै बहादुर कुँवर आनँदमूल है ।
तिहि हेत कबि ससिनाथ ने रच्यो बिचारि निसंक है ।
माधवविनोद सुग्रंथ को यह भयो नवमो अंक है ॥१९७।

इतिश्री कविसोमनाथविरचिते माधवविनोद नाटके
सौदामिनीदर्शनं नाम नवमोंकः ॥

दशमोंकः

दोहा—कामंदकि मदयंतिका अरु लवगिका नाम ।
सभा मध्धि पट्ट टारि कै आईं दुखित उदाम ॥१॥

काव्य छंद—कामंदकि उच्चरी हाइ मालति सुकुमारी ।
मो गोदी के मध्धि सोभ सरसावन वारी ।
अपनो बोल सुनाइ मोहि तू कहाँ पधारी ।
तुव बातै मोहनो मोहि सुधि आवत भारी ॥२॥
बालपनै के मध्धि रोवने हँसने तेरे ।
छोटे छोटे दत कुंदकलिका से नेरे ।
निकसि आवते रुचिर और तूतरि बतरावनि ।
सुधि आवति है निपट और तुव बाँह हलावनि ॥३॥

दोहा—लवंगिका मदयंतिका बोलीं दोऊ हाइ ।
माधव को लै नाम कौ व्याकुलता दरसाइ ॥४॥
मालति सुंदरि कित गई कहा भयौ यह ख्याल ।
है माधव तोकों भयो दुख यह निपट बिसाल ॥५॥

सोरठा—कामंदकी पुकारि बोली अति अकुलाइ कै ।
माधव मालति नारि हाय कठिन तुमको बनी ॥६॥
तुम दुहनौ अनुराग, ऐसी बिधि परगट भयौ ।
ज्यों द्रुम लता सभाग, मिलि समीर बल टूटई ॥७॥

तोमर छंद—करि कै अनंत बिलाप । प्रगटाइयो हित छाप ।
मन में भरे परिताप । उचरिय लवंगिय आप ॥८॥

सवैया

रे हिय ! बज्र हजारनि हू तै कठोरता तोमैं रही सरसाइ कै ।
ठौर ही ठौर नही दरक्यो जुटि क्यों इमि सोक समुद्र पचाइ कै ।
नैनन तै अँसुवा ढरकाइ औ बैननि यों सब ही को सुनाइ कै ।
कूटि दुहूं कर सो छतियाँ सु लवंगिय भू मै गिरी भहराइ कै ॥९॥

मुक्तादाम—तबै मदयंतिय बोलिय बैन।
भरे जल सों नव नीरज नैन।
अरी छिन एक सु धीरज राखि।
बिलोकि कहा अब हो अभिलाषि ॥१०॥
लवंगिय यो सुनि कै बतरानि।
उचारिय फेरि भई दुखलानि॥
अरी मदयंतिय मैं इहि बार।
कहा सु करौं नहि नेकु करार ॥११॥
हियो अति वज्र समान कठोर।
बस्यो जिय ता मधि पापिय मोर।
नही निकसै लहि औसर एह।
सरीर जऊ पजरै भरि नेह ॥१२॥
इते मधि मालति सिखिनि फेरि।
उचारिय सीस जटानि बिखेरि।
अरी सुनि मालति ! प्रान अधार।
लवंगिय सौं तुव ही अति प्यार ॥१३॥
रही नित ओरहिं ते तुव संग।
भयो कबहूं न कलेस प्रसंग।
गई अब तू तजि ताहि इकंत।
दया उपजै नहि तोहि असंत ॥१४॥
न तो बिन सोहति है इहि भांति।
बुझी जिमि बत्ति बरज्जित कांति।
अरी अरु छोड़ति मालति मोहि।
कहा कहि कारन पूंछति तोहि ॥१५॥
उठाइ सु आंचर में भर काइ।
बढाइ लिये तुव अंग सुभाइ।
पढाइय पुत्तलि ज्यो सब रीति।
प्रवीन करी अति ही लहि प्रीति ॥१६॥

फिरचों तुव लाइक सुंदरि कंत।
बिना हिय ताहि लखै गुनवंत।
इतौ थरु तो सह तेरिय माय।
कह्यौ नहि मैं जु कह्यौ हुलसाय ॥१७॥
सु तोहि न मो तजिबौऽब उचित्त।
बिचारि लहै अपने किनि चित्त।
इतौ कहि सिध्धिनि सो तिहि काल।
भई तन औ मन मध्धि निहाल ॥१८॥
उचारिय कामंद फेरि दुखाइ।
महा उर अतर छोह मढाइ।
रह्यौ अभिलाष इतौ मम प्रान।
लखौ नहि सो विधि है बलवान ॥१९॥

सवैया

मालतो हाइ गई कित तू अब कंचन बेलि समान सुभेखी।
बाति रही यह मो मन मध्धि सु पीर नही चतुरानन लेखी।
सीस पै लागी पिसी सरसौं मुसिक्यात बिलोकति नेह बिसेखी।
आपने पूतहि गोद में राखि उरोज को दूध न प्यावत देखी ॥२०॥

दोहा—बोली आप लवंगिका कामंदानि सों फेरि।
भावति होहु प्रसन्न तुम दया दृगनि सों हेरि ॥२१॥
मै अब अपने प्रान कों क्यों हूँ राखि सकौं न।
तातैं चढि गिरि शृंग तें गिरि मरिहौं गहि मौन ॥२२॥

सोरठा—तातै मोहि असीस भगवति तुम अब देहु यह।
वासौं विस्वेबीस और जन्म हूँ मैं मिलौं ॥२३॥
कामंदानि यह वात सुनि कै बहुरचौ उच्चरी।
लवंगिके मृदु गात सुनि मैं हूँ जीबो नही ॥२४॥
मेरो तेरो प्रेम, है समान मालतिय सों।
तातैं कीनो नेम, हौंऊँ गिरिहौं मेरु ते ॥२५॥
जौ कर्मनि के खोट ह्वैहै नही मिलाप हू।
तउ वियोग की चोट प्रान तजैं सियराइहै ॥२६॥

तोमर छंद—कामंदकी को वैन। यह सुनि लवगिय ऐन।
उचरी तबै इहि भाइ। भगवती सौं समझाइ ॥२७॥
जौ कहौ तुम अपनाइ। सो करैं हम अतुराइ।
यह भाखि तीन्यो नारि। ठाढी भईं डर डारि ॥२८॥
तिहि समै कामँद फेरि। उचरी सयान बखेरि।
सुकुमारी हे मदयंति। रसखानि गुन की पंति ॥२९॥
मदयंतिका यह बानि। सुनि कै सयानप ठानि।
उचरी समौ पहिचानि। भगवती सौं हित मानि ॥३०॥
तुम कहा अज्ञा आप। मो सौं करो लहि ताप।
मैं चलहुँगी तुव अग्ग। गिरि ते गिरति लखि मग्ग ॥३१॥
यह सुनि लवगिय तव्व। उच्चरिय आप सगव्व।
मदयंतिका तन देखि। उर में कछुक रिस रेखि ॥३२॥
अब रहौ तुम इहि ठार। ह्वै कै प्रसन्न अपार।
लैहो कहा तजि प्रान। बिसरौ हमै प्रभु आन ॥३३॥
चलि दूर तू उतसाह। जानै न बचन सलाह।
मै हौं कहा बस तोर। जो कहति बात कठोर ॥३४॥
कामंदकी अकुलाति। बोली बहुरि एहि भाँति।
मति यों कहे अरसाय। भरि रहै यह समुदाय ॥३५॥

दोहा—मदयंती नै चित्त में, बच यों कहे ललाम।
तोकों मेरे अंत्य के है मकरंद प्रनाम ॥३६॥
ती यौ पर्वत शृंग पै पहुँची जाय उताल।
यों उर मै पहिचानि कै लपियै नृत्त रसाल ॥३७॥

सोरठा—पुनि लवगिका नारि बोली पर्वत शृंग चढि।
हे भगवति निरधारि कौतुक यह अद्‌भुत लखौं ॥३८॥
नदी मधुमती नाम या पर्वत के कूल है।
मिली बहति अभिराम उठै, तरगैं तरल अति ॥३९॥
यह सुनि कामँद फेरि बोली दुहूँ सुनाइ कै।
झगरौ सबै निबेरि गिरियै अब या मेरु तें ॥४०॥

सुनि कै यह बतरानि मरिबै को उद्यत भई।
राखे हिय हित सानि चूरि करीं चिता सकल ॥४१॥

दोहा—इहि औसर नेपथ्य में भयो अचानक सद्द।
कहिऐ कहा बनाइ कै हुव अचिरज बेहद्द ॥४२॥
भाई कोऊ तेज इक आँखिन कौ झपकाइ।
सांति ह्वै गयौ तुरत ही रह्यौ तमौगुन छाइ ॥४३॥
कांमंदकि अवलौकि के मेरु शृंग तें फेरि।
वोलि उठी अकुलाइ कैं दुहुनि दया तैं हेरि ॥४४॥
कछु बच्चा मकरंद सो दौर्यौ आवत इत्त।
कहा जानिए है कहा बात अहित की हित्त ॥४५॥
इहि औसर पटु टारि कैं सभा मद्धि मकरंद।
कढ़ि आयौ छबि सौ छयौं प्रगटावन नट छंद ॥४६॥

सोरठा—यों बोल्यो अतुराइ, पुनि मकरंद सुहावनो।
जोगेसुर ने आइ, अति महिमा परगट करी ॥४७॥
पुनि नेपथ्य मझार, और सब्द यह प्रगट हुव।
कहा होन है हार, लोगनि को दुस्सह समय ॥४८॥
सुनि मालति को नास, भूरिवित्त निज जरन कौं।
स्वर्न बिंदु सिव पास, सब सुख तजि कै जात है ॥४९॥
हम अब मारे जात, याही के जिय जियत है।
यह ब्यौरो अवदात, पद्मपुरी में जानिए ॥५०॥

काव्य छंद—मदयंतिका लवंगिय बोलीं औसर लखि कै।
माधव अरु मालती गए दोऊ सुख नखि कै।
बुरी भई इहि बात निपट ही दुख अधिकायौ।
बिधि सौं कहा बसाय करै सो निजु मन भायो ॥५१॥
कामदकि मकरंद इते में दोऊ बोले।
देखो (अब) यह बात कहां धौं भई कलोले।
असि लगिबौ उर और छिरकिबौ चंदन तन में।
और बरसिबौ अग्नि सुधा न्हैबौ पुनि मन में ॥५२॥

दोहा—फेरि सद्द ने.थ्य मे भयो अचानक एह।
कौतुकवारे कान दै सुनन लगे भरि नेह ॥५३॥

काव्य छंद—हाइ तात थिर धारु कमल मुख तुव हौं देखति।
अरु अपनी करतूति आपनै उर अवरेखति।
दीपक जंबू दीप मरै तू मेरे काजै।
मै खोटी नै त्याग कर्‌यौ तेरो तजि लाजै ॥५४॥

तोमर छंद—यह सद्द करुन अपार। गुंजियै अकास मँझार।
नेपथ्य के मिस मित्र। बरन्यौ प्रकास बिचित्र ॥५५॥

पावकुलक छंद

अहे पुत्रि कामद यो वोली। तू विय जन्म लही अनमोली।
अरु अनर्थ दूजौ यह लेख्यो। उर अंतर अति खेद विसेष्यो ॥५६॥
जैसे चद्रकला छबि छाई। दुष्ट राहु के मुख में आई।
यह सुनि कामंदकि की वानी। लवंगिका वोली विलखानी ॥५७॥
हाइ मालती प्रानपियारी। सुंदर मेरी सखि सुकुवारी।
कहां गई मो को दुख दैके। कौन विचार चित्त मैं लैके ॥५८॥

सोरठा—इहि औसर पट टारि, माधव मालति को लिए।
सभा मद्धि सुख धारि आयो सोभा सौं सन्यौं ॥५९॥

दोहा—माधव बोल्यौ तिहि समै वड़ो कष्ट है एह।
निजु प्रवास के दुख्ख तै छुटि मालती अतेह ॥६०॥
भूरिबित्त निजु पिता के मरन सदेह मझार।
फेरि परी यह दैव कौ कहिए कहा बिचार ॥६१॥
यह सुनि कै मकरद पुनि माधव कै ढिंग जाय।
बोल्यो वह जोगेसुरी है कित मित्र सुभाइ ॥६२॥

पद्धरी छंद

पुनि माधव बोल्यौ समी जानि।
मकरंद मित्र सुनि सत्य मानि ॥
श्री पर्वत तै हम तिही संग।
आवत हे पाछै जुत उमग ॥६३॥

उहि वन में करना बचन आप ।
सुन कै उर अंतर सहित ताप ॥
सो बिछुरी तव तैं फिरि लखी न ।
कौ जाने कित डगरी प्रवीन ॥६४॥
कामंदकि पट की ओर देखि ।
नभ जानि सु बोली सुधि विसेपि ॥
करि रच्छा जोगेसुरी अब्ब ।
हम कहत दुरि रही कित सगव्व ॥६५॥
मदयति लवंगिय दुवौ वाम ।
इमि वोलीं सिध्धिनि सों ललाम ॥
हे भगवति ! है मालतिय एह ।
हम कहत लखौ या तनु सनेह ॥६६॥
हिय धरकै याकौ थरथराय ।
अब समाधान कीजै सुभाय ॥
हा भूरिबित्त हा सखि सुसील ।
हा मृत्यु हेतु तुम अब न ढील ॥६७॥
पुनि कामंदकि बोली सु आपु ।
हे मालति यौं करिके विलापु ॥
अरु यौं पुनि माधव कह्यौ वैन ।
हा प्यारी मालति सुगुन ऐन ॥६८॥
मकरंद उच्चर्‌यौ करु नवाई ।
हे अति ही प्यारी सखी हाइ ॥
यौं भाखि मूरछा मैं अचेत ।
ह्वै गए सवै पुनि लह्यौ चेत ॥६९॥

दोहा—ऊपरि कौ लखि कै बहुरि, बोली कामंद नाम ।
देखो कोउ घटानि तें, निकसतु घन अभिराम ॥७०॥
सुखित करतु सोहे हमें यामैं झूठ न रंच ।
जाने कौन बिरंचि कै अगनित भाँति प्रपंच ॥७१॥

सोरठा—माधव बोल्यो फेरि रे मालती सचेत हुव ।
रहे सबै मिलि हेरि सुख सरस्यो हिय में कछुक ॥७२॥

सवैया

ऊँची उसासनि केउ समै उचकै अब याके उरोज सुहाए।
खंजन से मनरंजन और लसै पुनि लोचन हूँ छवि छाए।
और लसै मुख मंडल हूँ चटकीली महा मनमोद वढाए।
भान उदोत समै सरसीरुह ज्यों सब ही निरिख्यो अतुराए ॥७३॥

दोहा—फेरि भयो नेपथ्य में सद्द अचानक और।
सो मैं आगे कहतु हौं सुनो रसिक सिरमौर ॥७४॥

काव्य छंद—भूरिवित्त के पाइ परसि नृप नंदनिहारे।
तिनकी करि अपमान चित्त यौं व्यौंन विचारे।
जरिहौं अग्नि मँझार नही संका उर आनीं।
ताकौं आई राखि आजु मैं साँची जानीं ॥७५॥
माधव अरु मकरंद दुवौ ऊँचे कौ लखि कै।
कामंदक सौं वैन कह्यौ इहिं भाँति हरखि कै।
तुम्हैं बधाई लच्छ भगवती सुनौ सुहाई।
सो जोगिनि है येह घटा जाने दरसाई ॥७६॥
जाकी वानी अमृत धार पुंजनि सों आपै।
निदरै घन जलधार जऊ मेटति तन तापै।
यह सुनि कामंदकी उच्चरी मधुरे वैननि।
भली भई यह वात भरे असुवाँ सुख नैननि ॥७७॥

बड़ी चौपाई छंद

इतनी सुनत मालती बोली मैं भगवान जिवाई।
पुनि कामंदकि बोली मालती सौं वच्ची आउ सुहाई।
तब सुनि कै मालती उच्चरी आगैं भगवति ठाढ़ी।
यौं कहि कै पाय कमल सिद्धिनि के रही पकरि हितु वाढी ॥७८॥
इहि औसर सीस उठाइ पगनि तै हित सौं हिऐ लगाई।
पुनि माथौ सूँघि उच्चरी सिद्धिनी आनँद में लपटाई।
अब तुहू वची अरु तेरो प्रीतम जियौ सुमंगल छायो।
तू निजु सीतल अगनि सौ मोकौं सीतल करि मनभायो ॥७९॥

अरु तेरी सखी लवंगिय प्यारो री जिवाउ तू ताकौ।
यह तो बिनु हुती निपट ही ब्याकुल परगट प्रेम कला कौ।
पुनि बोलि उठ्यौ माधवहूँ तच्छन हे मकरंद पियारे।
तू निहचै तियो जानि अब मौको मैं बच सत्य उचारे ॥८०॥

यह सुनि मकरंद उच्चर्यो माधव मित्र! बात है योंही।
ज्यों तैंने कही प्रैम करि मों सों तजि प्रपंच को गौंही ॥
पुनि लवगिका मदयंतिय बोली मालति सौं हितसानी।
तू हमहूँ सौं मिलि सखी पियारी हम तो बिन बिलखांनी ॥८१॥

तब हाइ प्रिय सखी यौं कहि मालति मिली दुहुनि सौं आछे।
यह कौतुक निरखि सिध्धिनी बोली परम प्रेम कौ काछै ॥
हे माधव, हे मकरंद, दुवौ तुम हौ मो पुत्र प्रमाने।
यह है बिरतंत कहा सो मोसौ प्रगट कहौ हित सानै ॥८२॥

पुनि माधव अरु मकरंद उच्चरै हे भगवति! सुनि लीजै।
ह्व क्रुद्ध कपालकुंडला तातै दुख पायौं कह कीजै ॥
हम ता कलेस तैं जोगेसुरि ने करि के कृपा छुड़ाए।
तव पग-अरबिंद तिहारे तिन के हमने दरसन पाए ॥८३॥

दोहा—यह सुनि कै कामंदकी, बोलो दुहुनि सुनाइ।
हत्यौ अघोर जु घंट फल ताकौ प्रगट्यौ आइ ॥८४॥

लवंगिका मदयंतिका बहुरचौं उचरी बैन।
बड्यौ आचरच देव को अंत भयौ सुख दैन ॥८५॥

कुंडलिका छंद

दामिनी सी दुति देह की दमकति तप के जोर।
रतनारे भोरे नयन छुवै श्रुतिनि कौ छोर ॥
छुवैं श्रुतिनि कौ छोर हरैं खंजन चपलाई।
कुंडल अरु मृगचर्म, फटिक की माल सुहाई ॥
कहि ससिनाथ सुजान सिद्धि करि कैं अभिरामनि।
तच्छन पटु कौ टारि प्रगट ह्व यौं सौदामिनी ॥८६॥

सोरठा—नच्ची बिबिध प्रकार ताल मृदंगनि धुनि सहित ।
सिगरी सभा मँझार पुनि बानी यों उच्चरी ॥८७॥
हे भगवती उदार सौदामिनि तुव सिक्खनी ।
प्रनति करत बहु बार हित सौं जोरें कर जुगल ॥८८॥

मुक्तादाम छंद—इतौ सुनि सिध्धिनि कामद फेरि ।
उचारिय तासु हँसी मुख हेरि ।
सुदामिनि है तुव मंगल दानि ।
लखो बहु बासर मैं तप खानि ॥८९॥

पावकुलक छंद—माधव अरु मकरंद सयानौ ।
दुहूँनि बचन इहि बिध्धि बखानौ ।
आहा यह सिख्खनि तुम्हारी ।
हे सौदामिनि गुन गन भारी ॥९०॥
जो इन रच्छ्या करी हमारी ।
सो तो जुक्त करी सुखकारी ।
यह सुनि पुनि कामंदकि बोली ।
सोदामिनि सौं प्रेम कलोली ॥९१॥
आउ भूरिवसु-प्रसु की रच्छिनि ।
जोग जुगति मैं परम बिचच्छनि ।
मैं सुखुसनी देव सुख ताको ।
मिलि मो सों लहि नेह कला कौ ॥९२॥
भला करि चुकी प्रनति अपारनि ।
तुही प्रनति लाइक बहु बारनि ।
बीज जु हम तुव हीय पँवारो ।
सफल भयौ सो अब उजियारौ ॥९३॥
यह सुनि कै बतरानि सुहाई ।
लवंगिका मदयंति सुनाई ।
है यह भगवति वह सौदामिनि ।
कहति हुती जो तुम अभिरामिनि ॥९४॥

इहि औसर बोली पुनि मालति।
भगवति सौं हित को प्रन पालति।
या जोगिनि नै मोहिं बचायो।
डारि कपालकुंडलै नायौ ॥९५॥
निजु घर लाइ बहुत सुख दीनो।
प्रगट्यो मो जनु जन्म नवीनो।
और वकुल माला दरसाई।
तुमहूँ सिगरे लिए जिवाई ॥९६॥
यो सुनि लवंगिका मदयती।
बोलि उठी दोऊ गुनवती।
हम पै भई प्रसन्न महाई।
छोटी भगवति हूँ छवि छाई ॥९७॥
इहि औसर बोल्यो पुनि माधौ।
देखो है अचरज यह साधौ।
चिंतामनि हूँ चिंतत फल कौ।
चाहति है कछु विधि धमल कौ ॥९८॥
सुनि उचरी सौदामिनी मन में।
है माधव पूरौ दृढ़ मन में।
सज्जनता याकी अति मोंकौं।
लज्जा उपराजति अनरोकौं ॥९९॥
फेरि खरे बोली सौदा मनि।
जोग-रीति-ज्ञाता अभिरामिनि।
हे भगवति मै और बखानौं।
सुन कै ताहि सत्य उर आनौं ॥१००॥

छप्पै—लिए नंदनै साथ चित्त तें खेद भुलाए।
पद्मावति जो पुरी नृपति ताकौ छबि छाए।
भूरिवित्त के अग्र पत्र लिखवाइ सिहाए।
पठयो माधव अर्थ प्रेम करि के अपनाए।

यह कहि माधव हत्थ में सौंप्यो समयो जानि कै।
तिहि बाचन लाग्यौ चाह कै सो माधव सुख मानि कै ॥१०१॥

दोहा—भूरिवित्त की ओट ते नृप ने दियो लिखाइ।
भलौ होउ अब सबनि कौ इतनौ वचन सुनाइ ॥१०२॥

छप्पै—स्वस्ति श्री द्विजराज सकल उपमनि कै लाइक।
गुन समुद्र अनछुद्र आपने कुल कै नाइक।
तोहि पाहुँनौ पाइ दुक्ख मैने सब टारे।
अरु अति भयौ प्रसन्न सुखी रहिवो करि प्यारे।
तेरे निमित्त मदयतिका तुव नैही मकरंद कौ।
मैं दीनी सो तू संक बिनु विहरि कहूँ तजि छंद को ॥१०३॥

सोरठा—कामदकि हुलसाइ बोली माधव सों वचन।
वच्चा सुन्यो सुभाइ जो इस चीठी में लिखो ॥१०४॥

पुनि यह सुनि कै बात माधव कर जुग जोरि कै।
भगवति सौं हुलसात बोल्यो इमि बानी मधुर ॥१०५॥

दोहा—समाचार ऐसे सुनै बाचे नैन लगाइ।
सकल हमारे काज अब बिधि ने किए सुभाइ ॥१०६॥

तोमर छंद—पुनि मालती यह बात। सुनि कै हरख्खित गात।
उचरी समेति सनेह। अब गये सब सदेह ॥१०७॥

बोली लवगिय नाम। लखि कै समौ अभिराम।
मन के सबै बिधि अथ। कीनै बिरंचि समर्थ ॥१०८॥

मकरंद पट तिनि देखि। हित सनी डीठि बिसेखि।
उचर्‌यौ बचन परकास। उर मध्धि पूरि हुलास ॥१०९॥

दोहा—बुधिरच्छिनि अवलोकिता, अरु कलहस उताल।
नृत्यत आवत हैं चले आहा दैव दयाल ॥११०॥
पट उघार कै तिहि समै तीन्यौ हर्ष निकेत।
सभा मध्धि परगट भए नृप ते सब सुख देत ॥१११॥

त्रिभंगी छंद

बहु रंगे चीरनि सजे सरीरनि मुख मैं बीरनि झमकाए ।
कंचन-मनि-वारे भूषन भारे बनै अपारे छबि छाए ।
लै आवत संगनि तान तरगनि भरी उमगनि गति ठाए ।
सब मिलि कै नच्ची गुन करि सच्ची प्रेम परच्ची प्रिय पाए ॥११२॥
पाए पिय सगरी रूपनि अगरी सौरभ बगरी चहुँ ओरें ।
कटि किंकनि उनकै पाइल झनकै नूपुर ठनकै चित चोरें ।
खंजन से अच्छनि करै कटच्छनि हँसि-हँसि लच्छनि बय थोरे ।
जनु दमकै दामिनि इमि अभिरामिनि मुख पै कामिनी पटु कोरे ॥११३॥

दोहा—विविध भाँति सब नच्चि करि करि भगवतिहि प्रनाम ।
सभा मध्यि सजि मंडलौं बैठीं पुनि अभिराम ॥११४॥

तोमर छन्द—अवलोकिता ढिग जाइ । निजु सरकि कै हुलसाइ ॥
भगवती सों इमि बोल । उचरी समेति कलोल ॥११५॥
जय भगवती तपखानि । तो सी तु ही मृदुबानि ॥
चित मैं करै जु विचार । सो करनिवार उदार ॥११६॥
इहि बात कौ सुनि सब्ब । अचिरज्ज सहित अगब्ब ॥
लखि रही मृदु मुस्क्याति । समझी कछू नहिं भाँति॥११७॥

दोहा—सबै सभा के नरनि सों लवंगिका मुसक्याइ ।
बोली चंचल नैन करि, उत्तम औसर पाइ ॥११८॥
ऐसो कबहुँ बसंत में दूजौ प्रकरन और ॥
काहू नैं नैननि लख्यौ हौ रसिकनि सिरमौर ॥११९॥

सोरठा—इमि सुनि के बतरानि सौदामिनि पुनि उच्चरी ।
या प्रकरन मैं आनि यह बिलास आछौ भयौ ॥१२०॥

बड़ो चौपाई छंद

इहि भूरिवित्त अरु देवरात सौं हुव संबध सुहायो ।
अति सफल मनोरथ भए दुहुनि के मोद हिए अधिकायो ।
यह सुनि के बात मालती मन में इहि बिधि चिंतन लागी ।
किय कौन भाँति ही प्रथम प्रतिज्ञा परम प्रेम सों पागी ॥१२१॥

पुनि समौ जानि कै अपनौ माधव अरु मकरंद प्रवीने।
गुननिधि कामदानि के आगे उचरे निपट अधीने।
नहिं कबहूँ झूठी होइ बात वह जो भगवती विचारै।
यह निहचै है मेरे उर अंतर वह विधि ··· ··· संचारै ॥१२२॥
यह सुनि कै लवंगिका सिष्यनि सौ कान लागि बतरानी।
अब भई सिद्धि सगरे काजनि की हो पहिले जो ठानी।
पुनि कामंद की उच्चरो सका दुवौ सुतनि को भाजी।
जो नंदन और नृपति सुदूरहू भए कटप तजि राजी ॥१२३॥
द्विज देवरात अरु भूरिवित्त ने कह्यौ वचन हो आगे।
करि मोहि और सौदामिनी उर अति ही हित जागे।
जव ह्वै हैं हित संतती पियारे मेरे और तिहारे।
तव आपुस मै संवंध परस्पर करिहै प्रन को धारे ॥१२४॥

सोरठा—यह सुनि कै मृदु गात, हरपि उचारो मालती।
भई उचित ही बात, उर ते सव संका गई ॥१२५॥

छप्पै छंद—पुनि माधव मकरंद उच्चरे औसर को लहि।
धन्नि-धन्नि भगवती वडी है तू वुध्दिनि गहि।
यह सुनि कामदकी वचन वोलो इमि आपं।
वच्चा हो तुम भेद सुनो मोपै तजि तापै।
ही करी प्रतिज्ञा भूरिवसु देवरात ने प्रथम ही।
सो उनकै पुन्यनि सो वहुरि मेरे विक्रम सौं रही ॥१२६॥

काव्य छंद—अरु मेरो जो सिस्न सफल इच्छ हुव तिनकी।
आछै भयो मिलाप कहा कहिए या छिन की।
अव ह्यां कैसी लाज हँसौ निरखौ किनि दंपति।
अरु यातै अति चारु कौन है दूजो सम्पति ॥१२७॥

पावकुलक छंद—माधव जिहिं दुख हुतौ दुखारो।
अवलोकी सु मालती प्यारी।
इक टक रह्यो विसारि निमेखैं।
प्रेम सिंधु की लहर विसेखैं ॥१२८॥

यह सुनि उर में ईस बिचारै।
कौन भाँति ए बचन उचारै॥
सदा रहति जो मेरे संगैं।
पूरित मन मैं मोदि तरगैं॥४३॥
अब यह लोक रीति निरबाहैं।
मोसो बचन कहायौ चाहैं॥
है यह तौ मरजादा ऐसी।
सुरगुर नें भाखी है जैसी॥४४॥
जौं बिचारि मन में जगनाइक।
प्रगट उच्चरे सबके लाइक।
तुम मुख ह्वै जु गौरि नें बातें।
मो सों कहीं प्रेम सौं रातें॥४५॥
तिही भाँति निहचें हीं करिहौं।
या पन तें कबहूँ नहिं टरिहौं।
यह सुनिकें सिव जू की बानी।
पारबती मन में मुसिक्यानी॥४६॥
यह सुनि पुनि गुरु उचरे हँसिके।
समझि दुहूँ कौं भेद हुलसिके।
गौरि सु आउ बाम ह्वाँ हरकें।
तुम दच्छिन आवौ त्रिय करकें॥४७॥
गुरु नें कही तिही बिधि बैठें।
दुवौं नहिं अभिमान अमैंठें।
तब सुरगुर पब्बय सों बोले।
देवरूप मन मध्य कलोले॥४७॥
लै जल कुस निज हाथ मझारें।
भाखि बचन यों संक बिसारें।
मैं निज तनया अति अभिरामनि।
गौरी सर्वमंगला नामनि॥४९॥

दीनी मन सौं ब्रह्म महेसैं।
जाहु सुचित लै अपने देसैं।
यह सुनि कें सुरगुर को सासन।
त्योंही करी सुबुद्धि प्रकासन ।.५१।।
तव गुरु नें पुनि कें समझायौं।
पुत्री कौ कर गहि छवि छायौं।
महादेव के दच्छिन कर में।
दै गहाइ अब आनँद भर में ।।५१।।
सुनि कें करी मेरु में योंही।
सुरगुरु नें ही भाषी त्योंही।
पुनि गुरु कही कि पाइ पखारी।
सो जल पुनि निज सीसहिं धारी ।।५२।।

दोहा—यहूँ करी विधि सो लगुन तव सुरगुर नें फेरि।
करौ पाइ पखरामनी सव कुटंब कौं टेरि ।।५३।।
सो सुनि कें आए सबै पाय पखारन काज।
तब सरवत लै सैल में कीनों तृपा इलाज ।।५४।।
फेरि गयौ हिमवंत तहँ जहँ वरात के लोग।
जेंमत हे अति प्रेम सों अपनें अपनें जोग ।।५५।।

तोमर छंद

गुरु नें कह्यौ पुनि वैंन। सरसाइ कें चित चैंन।
लाऔं हुतास उताल। भामरि निमित्त सु हाल ।।५६।।
यह सुनत ही अतुराइ। लैकें वृहस्पति ताइ।
लीनी जुगाय उछाय। सब विधि सुमंत्र कराय ।।५७।।
किय मंत्र पढ़ि के होम। तिहिं समै हरपत रोम।
भावरि दिवाइय चारि। वर कन्या के प्रन पारि ।।५८।।
आरंभ चौथिय चार। लागे करन अधिकार।
लीनी मँगाय परात। तब स्वर्न की अतुरात ।। ५९ ।।

जल पूरि हरद मिलाय। लीनी नजीक रखाय।
अरु मुद्रिका जु नवीन। हिय ही सबहि मन लीन॥ ६० ॥
ही कनक की अनमोल। कहिए कहा तिह तोल।
सो लई गुरु ने आपु। यों कियौ बहुरि अलापु॥ ६१ ॥
लावौ इहाँ अब एक। कंजा नयों सबिबेक।
मनि पुष्पराज सु और। लावौ रतन सिरमौर॥ ६२ ॥
यह कहत ही परमाँन। आए दुवो दुतिवाँन।
लै तिनहि सबै मिलाइ। ते दियै जल में नाइ॥ ६३ ॥
अरु कही दुहूँनि सुनाइ। जीते जु लेइ उठाइ।
यह मुद्रिका इहिँ बेर। पावै सुखनि कौ ढेर॥ ६४ ॥
यों भाखि हत्थ झुलाइ। दिय डारि नीर डुलाइ।
हर गौरि नें इकसार। दिय डारि हत्थ उदार॥ ६५ ॥
आई गवरि के हाथ। रहि गए श्री ससिनाथ।
पुनि कही सुरगुर बात। अबकैं जु लेत सिहात॥ ६६ ॥
तब लही हत्थ महेस। करि हाथ नीर प्रवेस।
पुनि कही तीजी बार। जीतै जु हठ निरवार॥६७॥
ताकी सदा पुनि जीति। है जन्म लौं सप्रतीति।
यों भाषि गौरिय अग्र। दिय डारि गुर अनबिग्र॥ ६८ ॥
आई सु गौरिय पानि। सुख भयो और त्रियाँनि।
लागीं कहन इतराति। तरुनी सबै मुसिक्याति॥ ६९ ॥
दोहा—जुवा खेलि हारे इहाँ महादेव तुम आजु।
लिए हमारी गौरि नें जीति समेत समाज॥ ७० ॥
आज्ञा में रहियौ सदा चेरे की सी भाँति।
तौ पुनि प्रतिपल रावरी बढ़ति रहेगी कांति॥ ७१ ॥

इति श्री माथुर कवि सोमनाथ विरचिते शशिनाथविनोदे कन्यादान बर्ननं नाम चतुर्थोल्लासः॥ ४॥

दोहा

इतने में हिमवंत कौ सुत पहुँच्यौ तहँ आइ।
भोजन अब सब करि चुके चलौ आप सुखदाइ॥ १ ॥

सुनि बांनी मैंनाक की गयो तहाँ हिमवंत ।
बिष्नु आदि सब की करी बिनती गुनि के तंत ॥ २ ॥
महाराज ह्वाँ ह्वै चुक्यौ ब्याह बेद की रीति ।
करौ तयारी आपहू चलिवे की लहि प्रीति ॥ ३ ॥
यों कहि कें आगे धरे भूषन बसन विविध्ध ।
सबनें लीने ईस कों नातौ जानि प्रसिद्ध ॥ ४ ॥

सोरठा

सबै देवता आनि ह्वै तयार ठाढ़े भए ॥
पंथ लखत सुख सानि महादेव कौ चित्त मैं ॥ ५ ॥

पावकुलक छंद

सुनी त्रियनि की सिव ने बाँनी ।
अपने मुख तें कछु न बखाँनी ।
तब गुरु नें यह उचर्यौ बैंना ।
रहौ मौंन गहि कें चित चैंना ॥ ६ ॥
भाँवरि और तीनि हैं बाकी ।
ते करामनी सज्जि चलाकी ।
यों कहि अग्नि प्रकासित कीनी ।
भईं सुभाँमरि तीनि नवीनी ॥ ७ ॥
इतने में पब्बय की रानी ।
बोली अति आनंद समानी ।
अब करवाओ दूधा भाती ।
जाते रहै सदाँ रँग राती ॥ ८ ॥
तब दूधा भाती करवाई ।
दुहुँ की झूठनि दुहूँनि खवाई ।
गौंनें की अब रीति करावौ ।
गाँठि जोरि के सुख बरसावौ ॥ ९ ॥
यह सुनि के गुर रीति कराई ।
गौंने की बिधि मंत्रन छाई ।

जोरा और नयौ पहिरायौ।
मौंरीजुत सो सीस लसायौ ॥१०॥
गाँठि जोरि सिव सों जब गौरी।
ठाढ़ी भई सुबुद्धि बटोरी।
तब बोली पब्बय की नारी।
आओ पूजौ मौर सुखारी ॥११॥
सुनि यह बैंन दुवौ अतुराएँ।
पूजन माँह गए छबि छाएँ।
सीस नवाइ भेंट धरवाई।
पुनि दुहूनि पै मौर पुजाई ॥१२॥
जोरें गाँठि चलन जब लागी।
सिव के संग हिएँ अनुरागी।
गरें लागि मैया तब रोई।
बिछुरन के दुख मद्धि समोई ॥१३॥
और निहुँ औ छुटाई तौलौ।
गौरि लियाहि लागी हिय तौलौं।
जेठाँढी ही और लघु गाँई।
तिनिहूँ अँसुवन धार बहाई ॥ १४ ॥
समझावति मैना हित साने।
त्यों हूँ गौरि कह्यौ नहिं माने।
तब मैंनावति हित सों बातें।
कहन लगी अति ही हित रातें ॥ १५ ॥
रहियौ तुम याकौं मन लीनें।
अब यह भई तुमहि आधीनें।
रही खेल ही में चित ठानें।
कछू नहीं यह अबलों जानें ॥ १६ ॥
इह कहि सिव सों पठई भाँमा
इहाँ गौरि सों उचरी राँमा

यह मैंना ब जु तेरी भैया।
तो सों है अति हित सरसैया ॥ १७ ॥
तो कों लेन बेगि पठवैहौं।
तो बिन ह्यां मै कैसे रैहों।
पितु हिमवंत इते में आयौ।
नैननि ते धारे जल धायौ ॥ १८ ॥
अँसुवन सों सब भिजई छाती।
लोकरीत सबते अधिकाती ॥
पितु को यह गति निरखि सयांनी।
गौरी लपकि कंठ लिपटानी ॥ १९ ॥
बेटी बाप दुहूँ मिलि रोए।
अति बिछोह के खेद समोये।
पितु नें अबै गौरि समुझाई।
प्रगटति है अब क्यों लरिकाई ॥ २० ॥
बेगि बुलाय लेंहुगौं तोकौं।
है सौंगंद आपनी मो कों।
जब क्यों हूँ करि ग्रीवा छोड़ी।
तबै पाहुनी औली ओडी ॥ २१ ॥
हमें असीस अबै कछु दीजै।
है गौरी जाते कहु लीजै।

दोहा

यौं बिनती जब गौरि सों करी नवाएँ सीस।
तब तीनि सों सनमुख कही सिच्छा सहित असीस ॥ २२ ॥

पावकुल छंद

सिव समेत मो पूजा करियौ। उर अंतर अति निहचौ धरियौ।
रहियौ सदाँ सुहागिल घर में। नित्त लछिमी बसिहो कर में ॥२३॥
पुत्र और नाती के सगरे। सुख्ख रहेंगे गृह में बगरे।
दै असीस उनिकों इंहि भाँतिनि। चली फेरि छट कामति कातिनी॥२४॥

पारवती अति हित सरसानी । मैनावती बोली बिलखानी ।
पूजि देहरी हर के संगा । हिलकी लेति चली इकरंगा ॥२५॥
महादेव जब पहुँचे बाहर । हुँते देवता गए जहाँ हर ।
चढ़े बैल पै संकर आछें । लई चढ़ाइ गौरि पुनि पाछें ॥२६॥
ताही भाँति बरातें सज्जें । तिही ठौर आए गलगज्जें ।
तहाँ बैल तें उतरि विराजे । सिव औ सिवा छबिन सों छाजे ॥२७॥
ब्रह्म बिष्णु सिंहासन सरसें । बानी अरु श्री संजुत दरसें ।
सगरै रहे देवता ठाढ़े । आगें अति आनंदनि बाढे ॥२८॥
इतने में हिमवंत जु आयौ । अपनें संग कुटंबी लायौ ।
महादेव सों बिनती कीनी । बानी बोलि प्रेम रस भीनी ॥२९॥

पद्धरी छंद

महराज ईस हौ निरविकार । तुम सबके सुखदाइक उदार ।
त्यों मोइ बड़ाई भई आइ । तुम नित्त भक्तबत्सल सुभाइ ॥३०॥
यह कन्याँ तुम सेवा निमित्त । मैं दीनी हैं प्रभु हित सहित्त ।
अरु मोहि जानियो निपट दास । अरु एहू यह भाखें प्रकाश ॥३१॥
सुनि पब्बय कौं इह बचन दीन । पुनि आपु उच्चरे सिव प्रवीन ।
तुम मोसों ऐसी करी आप । नहिं बनी और सों जो अताप ॥३२॥
यह भाखि कही तुम जाहु गेह । अब लिए कुटंबिनि कों सनेह ।
अरु सदाँ सुखित रहियौ बिचित्र । नित गाइ प्रेम सों मो चरित्र॥३३॥
हिमवंत गयौ करिकें प्रनाँम । जब अपनें गृह को विधि ललाँम ।
तब ईस उच्चरे हाथ जोरि । हरि जी सों उर में प्रेम ढोरि ॥३४॥
तुम दई बड़ाई मोहि ईस । तुम पारब्रह्म हौ बिसेबीस ।
निज भक्त जानि के ह्वै दयाल । अब आइ मोहि कीनौ निहाल ॥३५॥
यह महादेव सों सुनत बैन । भगवान उच्चरे कमल नैंन ।
है मो में अरु तुम में न भेद । पूछौ बिरंचि कौं रीति बेद ॥३६॥
पुनि ब्रह्मा सौं बोल्यौ महेस । कर जोरि बोलि वाँनी सबेस ।
तुम सकल सृष्टि के करनहार । है तुम समान अरु को उदार ॥३७॥

तुम पढ़त वेद चार्‌यो पवित्र । जिहि मद्धि ब्रह्म की वह चरित्र ।
अरु लिए आपनी तरुनि साथ । ह्याँ आइ मोहि कीनों सनाथ ॥३८॥
यह सुनि बिरंचि नें सुख सु पाइ । स्तुति करी ईस की हित बढ़ाइ ।
अव्यय अनंत हौ तुम महेस । धरि रूप जगत विहरौ हमेस ॥३९॥
को और दूसरो तुम समान । जो रमत जोग में सावधान ।
है एक तुम्हारौ यहूँ ख्याल । हम पै हमेस रहियौ कृपाल ॥४०॥
पुनि इंद्रादिक सों हित बढ़ाइ । उच्चरे आपु संकर सुभाइ ।
तुम को उचित्त ही यही वात । आए सु इहाँ हरखंत गात ॥४१॥
यह सुने ईस के मधुर बोल । उच्चरे देवतादिक अमोल ।
कर कमल आपनों जुगल जोरि । उरझाइ हिए मधि प्रेम डोरि ॥४२॥
तुम हौ अनादि अव्यय अनंत । सब जीवन में सब विधि लसंत ।
ज्यौं मान मनिन में गुन सु एक । ह्वै व्यापक सब में जुत विवेक ॥४३॥
जे करत तुम्हारौ नित्य ध्यान । तुम देत तिन्हें हर ब्रह्मज्ञान ।
अरु जे करंत पूजा विधान । कै जपत रैंन दिन सुखनिधान ॥४४॥
ते लहत परम पद दुख बिसारि । भव सिंधु तरत हैं हरष धारि ।
जे चाहत सुत धन और ना र । ते पामत निहचे रारि टारि ॥४५॥
हम पै प्रसन्न तुम रहौ ईस । हम दास तुम्हारे बिसेबीस ।
हम सुफल कियौ निज जन्म आइ । तुम दरसन पायौ सहत चाइ ॥४६॥
यह कहि महेस सों सुर सुभाइ । बोले सुरेस सों चित लुभाइ ।
स्तुति करौ गौरि को हम कहंत । हम संग तुम्हारे नित बसंत ॥४७॥

दोहा—यह बांनी सुनि सुरनि की कर जुग जोरि सुरेस ।
लग्यौ बड़ाई करन को गौरी का वर वेस ॥४८॥

त्रिभंगी छंद

श्री जै जै चंडी हरष उमंडी, त्रिभुवन मंडी जोति रहै ।
तूही हिमकर में पावक झर में दुति दिनकर में सिद्धि लहै ॥
अंमृतु सु अमल में तुही कमल में नित जलथल में प्रगट लसै ।
तुव सुंदर घरनी कंचन बरनी संकर घरनी अंग बसै ॥४९॥

बसि हरि के हिय में हरषति जिय में प्रगटति तिय में पहिचानी ।
एही बिधि रानी देव बखानी बुद्धि सयानी सिद्धानी ॥
गानी सुखदानी तुही सयानी कहा कहानी परवानी ।
अब किरपा कीजै जग जस लीजै हँसि बर दीजै सर्बानी ॥५०॥

दोहा—इंद्रादिक की बीनती यह सुनि संकरभाम ।
ह्वै दयाल निज उच्चरी बैन परम अभिराम ॥५१॥
जहाँ कहूँ कछु होयगौ तुम को दुख अनयास ।
करिहौं तहाँ सहाय हौं धरि कें रूप प्रगास ॥५२॥
आपुस में करि बीनती या बिधि सो समुहाय ।
सिव सों अज्ञा माँगि सब गए अमर जस गाय ॥५३॥
ब्रह्मादिक जू पुनि गए सिव सों सज्जि प्रनाम ।
तब गौरी कों संग लै चले बैल अभिराम ॥५४॥
सब समाज लीनें हरखि निज पहुँचे कैलास ॥
तहाँ जाइ मंगल कियौ अरु मंड्यौ अतिहारा ॥५५॥
एक समै मुसिक्याइ सिव लख्यौ गौरि को रूप ।
एकदंत परगट भयौ बालक तबै अनूप ॥५६॥
भालचंद गज कौं बदन तीनि नैंन भुज चारि ।
गनपति ताकौं नाम प्रभु तबही कह्यौ बिचारि ॥५७॥
तू देवी कौ पुत्र है यह कहि दिय बरदान ।
सब काजनि में पूजिहै प्रथम तोहिं बुधिमान ॥५८॥
तै निहचै करिहै सदा निजु काजन की सिद्धि ।
और होइगी जगत में बहुत भाँति की बृद्धि ॥५९॥
अरु संकर के बीज सों षटमुख भयौ प्रसिद्धि ।
स्वामिकार्त्तिक नाम पुनि ताकों कह्यौ सुबृद्धि ॥६०॥
देवी को नंदन भयौ तासों प्रेम बढ़ाइ ।
सेनानी सब सुरनि कौं कह्यौ ताहि समुझाइ ॥६१॥
उंदरबाहन गजबदन, षटमुख बाहन मोर ।
सिव कौं बाहन बैल है, देवी को हरि जोर ॥६२॥

सिंधुर आनन प्रगट हुव ब्रह्मा कौं अवतार।
यह मैं ग्रंथनि में सुन्यों विघ्नन को हरतार ॥६३॥

रहि कुटंब में मिल सदा विहरन लगे महेस।
नितप्रति आवैं दरस कौं ब्रह्मा विष्नु हमेस ॥६४॥

कवित्त

जरद जटानि में फुहारें जिमि गंगधार,
हार शेष हिरदे त्रिनैन रूप न्यारे कौं।
गरल गरे में जोर जाहर जलूसवारी,
आधे अंग तरुनी सनेह के पत्यारे कौं।
सोमनाथ एरे उरअंतर निहारि भव
पारावार पारत हकीकति हुस्यारे कौं।
भसम सिंगारें जो लिलार पर धारें जोति
चंद की कला की वा पिनाकी प्रानप्यारे कौं ॥६५॥

दोहा

सुनै सुनावै अरु लिखै सिव सुगौरि को ब्याह।
सो संतति सपति भगति लहै समेत उछाह ॥६६॥

संबत ठारै सै बरस तेरह पौष सुमास।
कृष्न सु दि्वतिया वुद्ध दिन भयौ ग्रंथ परगास ॥६७॥

सज्जन अरु दुर्ज्जनहुँ कौं मेरी प्रनति अनेक।
भूल्यौ हौंउ बनाइ सो दीजो सज्जि विवेक ॥६८॥

इति श्री माथुर कवि सोमनाथविरचिते शशिनाथविनोदे भवानीशंकर-विवाहवर्णनं नाम पंचमोल्लासः ॥ ५ ॥

दानाध्यक्ष की हवेली का बाहरी भाग

ध्रुवविनोद

श्री गणेशाय नमः

प्रथम उल्लास

दोहा

ध्यावतु चरननि कों सुबिधि, गावत गुननि मुनीस।
जनवत्सल श्रीबत्स नित, जय जय श्री जगदीस ॥१॥
मैतरेयजू उच्चरे, आपु बिदुर सों बात।
ध्रुव चरित्र की भक्ति लखि, अति ही हरषित गात ॥२॥
कमल नाभि की नाभि तें, भयौ कनक अरबिंद।
तामें कमलासन भयौ, सुब्ररन बरन अनिंद ॥३॥
स्वायंभुव मनु सुत भयौ, विधि कें आनंदकंद।
सतरूपा ताकी तिया, जिहिं मुख मानहु चंद ॥४॥
स्वायंभुव के सुत भए, द्वै कीरति अवदात।
जेठौ प्रियब्रत दूसरौ, नाम उतान सुपात ॥५॥
बासुदेव की कला हुव, दोऊ पुत्र उदार।
जग की रक्षा के अरथ, सुंदर अरु अबिकार ॥६॥

छंद पद्धरी

उत्तानपात कें जुगल भाम।
जेठी सुनीति लघु सुरुचि नाम।
ही निपट भावती सुरुचि बाल।
अरु नहिं सुनीति सों नृप दयाल।
ध्रुव सुत सुनीति कौ बुधि बलंद।
उत्तम इहिं नामहिं सुरुचिनंद ॥७॥
इक दिना नृपति उत्तमहि अंक।
लीनें सु खिलावतु हौ निसंक।
लखि ताहि चित्त में ध्रुव लुभाइ।
पितु गोद चढ़न लाग्यौ सुभाइ ॥८॥

नहिं ध्रुव सों आवन कह्यौ भूप ।
रहि गयौ रुखाई सजि अनूप ॥९॥

इतने में बोली सुरुचि तब्ब ।
नृप के सनेह कौ गहि गरब्ब ।
रे बालक तू समुझै न बात ।
जो भयौ कोन के गरभ गात ॥१०॥

भगवान ध्याइ के प्रथम आप ।
मो गरभ जन्म ले बिसरि ताप ।
तब इँहिठाँ बैठन जोगि होइ ।
नहिं और भाँति किनि कहौ कोइ ॥११॥

ध्रुव सो बिमांत कौ बचन एह ।
सुनि भयौ हिए में इमि सतेह ।
ज्यों लगे दंड कारौं भुजंग ।
फुंकरै उसासनि लै उतंग ॥१२॥

अनखाइ अनमनों मुख नवाइ ।
उसरचौ पितु ढिग तें हरबराइ ।
रँ गयौ जहर सों अंग अंग ।
पै कह्यौ नही कछु बचन भंग ॥१३॥

पावकुलक छंद

नृप की ओर पीठि ध्रुव करिकें । निज जननी ढिग चल्यौ कहरिकें ।
पाँच बरष की बैस सुहाई । अंग अंग में भरी लुनाई ॥१४॥

नवल कमल सौ आनन सोहै । निरखत जाहि को नही मोहै ।
भृकुटी बक सघन अतिकारी । बरुनी सुमिलि पलक झपकारी ॥१५॥

अरुन कमल दल से छबिवारे । निपट बिसाल नैंन अनियारे ।
रुचिर नासिका सुक लखि लाजें । श्रवन ज्ञान के बिबर बिराजें ॥१६॥

अमल कपोल गोल अति नीके । ललित अधर सुखदाइक जीके ।
छोटी कुंद कली सी दतियाँ । को ललचाइ न सुनि के बतियाँ ॥१७॥

नवल नूत सी चिबुक सुहाई। को गुलाब उर आनें भाई।
ग्रीवा गोल त्रिरेखा तामें। दरसे सुबिधि महा अभिरामें ॥१८॥
भुज मृनाल कर कमल समानें। उर अरु उदर निकाई सानें।
नाभि गँभीर लटी कटि रूरी। जंघनि कदली उपमा पूरी ॥१९॥
पल्लव से मृदु चरन लसाने। मन हरि लेंन ललाई सानें।
लसें अँगुरियाँ चंपकली सी। ससि की सोभा नखनि छली सी ॥२०॥
सिर तें कुटिल लटूरी लटकें। लगें समीर कुंडलनि अटके।
कंचनमय विद्रुम की माला। लसै कंठ में जोति बिसाला ॥२१॥
मनि बंधनि में सरसें जाहर। सुंदर चूरा जटित जवाहर।
छुद्रघंटिका कटि तट दरसें। मुरवनि कनक करे छबि बरसें ॥२२॥
डभकि रही असुवनि सों अँखियाँ। उचकी जाति उसासनि बखियाँ।
ध्रुव डग धरै डिगत से पाइनि। परैं कहूँ के कहूँ कुभाइनि ॥२३॥
हिय बिमात के खटकें बैंना। रमडि रह्यौ अँग अंग अचैना।
ऐसें निज जननी ढिग आयौ। लै सुनीति ने अंक थिरायौ ॥२४॥
पुनि बोली तू हँसत पठायौं। ह्वाँते क्यों आयौ मुरझायौ।
फरकें दोऊ ओठ खिस्यानें। कलकें अँसुवा निपट रिसानें ॥२५॥
औरनिंही सब कही कहानी। नृप आगें जु सुरुचि बतरानी।
सुनि सुनीति सो दुख्ख समोई। ध्रुव को हिएं लाइके रोई ॥२६॥
अरु हे ठाढ़े जे नर नारी। ते सब रोए लाज बिसारी।
दंतनि तरें अंगुली दैके। रहे जहाँ के तहाँ चितैके ॥२७॥
पुनि सुनीति ध्रुव सुत सों बोली। परम धर्म के मद्धि अतोली।
जो बिमात नें तोसों बातें। कहीं सु करि तू अति अतुरातें ॥२८॥
हमने दियौ दुख्ख तव औरै। सो अब फल्यौ आइ लखि ठौरै।
जो काहू को निपट सतावै। कैसे सो आपुन सुख पावै ॥२९॥
मैंने प्रभु की भक्ति न कीनी। ताही तें अति रही मलीनी।
मोसों नारि कहत नृप लाजें। सो कैसे हम को सुख साजें ॥३०॥
ताके गरभ भयौ तू लाला। मति मानें उर खेद बिसाला।
तेरे दादे नें हरि ध्याए। अपने मन वंछित फल पाए ॥३१॥

वे भक्तनि के दुख्ख हरैया। नारायन सब लोकनि रैया।
उनि विनु करै सहाइ न कोई। कही सुरुचि नें साँची सोई ॥३२॥
तातें हरि को जपि सउछाहैं। जौ उत्तम सम आसन चाहै।
चाहत जाहि मनुज रिपि देवा। सो श्री करति चरन की सेवा॥३३॥
दोहा—मैतरेय पुनि विदुर सों, वोले औसर जानि।
सुनन लग्यौ सो प्रेम सों, चतुराई की खानि ॥३४॥
यों माता के वचन सुनि, सुखदाइक ध्रुव वाल।
मन कौं वस करि पिता के, पुर तें कढ्यौ उताल ॥३५।

मधुभार छंद

ध्रुव चल्यौ एक, मंडित विवेक।
तव कनक रंग, तजि वसन संग ॥३६॥
सव सुख समाज, तजि दिय दराज।
कछु खेद नाहिं, हरि हिए माहिं ॥३७॥
नारद मुनीस, यह विसेवीस।
सुनि कथन कान, ध्रुव को प्रयान ॥३८॥
पर काज अर्थ, सव विधि समर्थ।
आए सिहात, मुसकात जात ॥३९॥

छप्पै

उज्जल मृदु अँग अंग जगमगै कमल वदन अति।
हरि रस मत्त विसाल लाल लोचन चंचल गति॥
सीस लटूरी कुटिल जनेऊ तुलसी माला।
तिलक भाल कर वीन लसै कटि तट मृगछाला॥
कहि सोमनाथ उद्दार अति, होंनहार कौं ग्यान गुनि।
वर बुद्धि बिसारद सिद्धि निधि, दरसे नारद देव मुनि ॥४०॥

सोरठा

ध्रुव के निकट सु आइ, दच्छिन अपनो कर कमल।
सिर पर धरचौ सुभाइ, अरु वोले अचिरज सने ॥४१॥

आहा छत्रिय तेहु मानभंग नहि सहि सक्यौ।
कह्यौ जु सहित मजेज बचन बिमाता नें अनखि ॥४१॥
ध्रुव सों बोले फेरि, नारद समय बिचारिके।
हित की चितवनि हेरि, दया अधिक उर आनि के ॥४२॥

प्लवंग छंद

अबही तोकों कहा मान अपमान सों।
रह्यौ खेल में पागि पुत्र बिधि आन सों।
है जवलों अज्ञान मान अपमान है।
तबलों बाधा करत कर्म अनुसार है ॥४३॥
ताही बिधि संतोष लहै चित चाइकै।
जो परमेसुर देइ समौ लखि पाइकै।
जौ तू जानें आपु कि माके बैन को।
मानि करोंगो जोग तज्जि सब चैन को ॥४४॥
लैहौ प्रभुहि रिझाइ आरसै छोड़ि कें।
मन भायौ फल परम अंजुली ओड़ि कें।
सुनों बात अति कठिन बिष्नु छबि देखिबौ।
है यों मेरे जान हिएँ अवरेखिबौ ॥४५॥
करि करि तीच्छन जोग मुनिनि के गन घनें।
चाहत दरसन अजों निपट हित सों सनें।
तऊ न पावत भेद और कहिए कहा।
तातें तू फिरि जाहु रोस तजि कें महा ॥४६॥

छप्पै

उद्भट कारे रंग भंग जुट्टत जहँ हत्थिय।
बुल्लत स्यार अपार सिंघ गुंजरत समत्थिय।
ल्यारी सूकर ऋक्ष घूरि डरपावत अच्छनि।
फुंकत फूलि भुजंग ज्वाल छंडत मुख लच्छनि।
तँह घनें तपी तप सज्जइँ बिबिध भाँति के कष्ट करि।
नहि तिन्हें सुकबि 'ससिनाथ' कहि कबहूँ दरसन देतहरि ॥४७॥

प्लवंग छंद

है तेरौ भ्रम बृथा जु तें उर आनियों।
बिनु श्रीपति की दया सत्य करि मानियों॥
ह्वै हैं हरि परसन्न आपुही तें जबै।
आवेंगे निरधार आपुही तें सबै॥४८॥

सवैया

हरषै अधिकी गुनवान लखें, सम सोमित ईसु गुनी गन में।
घटती निरखें करुना बरसै, सजि रीति जो होति घना घन में।
'ससिनाथ' असंसय संसय छोड़ि, सुखौ-दुख ब्यापै नही तन में।
नर सो न कलेस लहै मन में, हरि होहि दयाल पगे पन में॥४९॥

दोहा

नारद मुनि के बैन ए, सुनि कें ध्रुव नृपनंद।
निज बहुरचो कर जोरि कें, बोल्यौ बुद्धि अमंद॥५०॥

काव्य छंद

तुमनें समता भाव कह्यो यह जो मुनि रूरे।
नर दुख सुख सों जटित लिएँ तिन के तप पूरे।
सो हम पैं क्यो सधै भाव तुम समता भाष्यौ।
छत्री करम उदंड करन हमनें अभिलाष्यौ॥५१॥
सुरुचि मात कौं बचन बान सौ मेरें लाग्यौ।
ब्याकुल है सब अंग साँच बरनों रिस पाग्यौ।
उत्तम त्रिभुवन मद्धि जु है पद हे मुनिनाइक।
ता पावन कौ पंथ बताओ मोकों लाइक॥५२॥
मेरे पुरिखा और औरहू नें नहि पायौ।
कहिऐ सो महाराज निपट में चित्त लुभायो॥
हरि कौं पुत्र बिरंचि पुत्र ही मुनि तुम ताकै।
बीन बजावत फिरत जनैया ज्ञान कला के॥५३॥

जग के भले अरत्थ दिवाकर की गति लीनें।
दरत तमोगुन तोम सदा प्रभु में मन दीनें।
ए सुनि ध्रुव के बैन देव मुनि नारद हरषत।
बोले तासों फेरि दया करि हित कों बरषत ॥५४॥

जननी नें जो कह्यौ तोहि पंथा सुभकारी।
करि तू सो हरिभजन एक मन ह्वै अबिकारी।
धर्म अर्थ अरु काम मुक्ति जो तोकों चहिऐं।
हैं वे सब के दानि सत्य, यह तोसों कहिऐं ॥५५॥

हे सुत तातें जाहु भलौ अति ह्वैहै तेरौ।
जमुनातट सुभ थान सदा मधुबन हरि नेरौ।
कालिंदी जल मद्धि न्हाइ लसि उत्तम आसन।
प्राणायामहिं सज्जि चित्त की सुद्धि प्रकासन ॥५६॥

मन, इंद्रिय अरु प्रान अमल इनको करि आछे।
गुरु के गुरु भगवान ध्याय हिय पुनि हित काछे।
अरु जो उन कौ ध्यान सुने सब तोहिं सुनाऊँ।
जा सम त्रिभुवन मद्धि औरहू जौ न गुनाऊँ ॥५७॥

तोमर छंद

मुख मंजु मृदु मुसिक्यात। रुचि नवल नीरद गात।
बर कोकनद दल नैन। दरसंत अति सुख दैन ॥५८॥

भृकुटी कुटिल अति स्याम। अरु नासिका अभिराम।
कमनीय गोल कपोल। अरु लसत कुंडल लोल ॥५९॥

तरुनई मंडित अंग। अरु अरुन अधर सुढंग।
श्रीबत्स अंक अनूप। बनमाल संरसति रूप ॥६०॥

जे सरन चाहत चित्त। तिनकों सरन्य अभित्त।
धृत संख चक्र सुढार। अरु गदा पद्म उदार ॥६१॥

भुज चारि जुत भुजबंद। मनि जटित मुकट अमंद।
अरु कौसतुभ मनि ग्रीव। दरसै निकाइय सीव ॥६२॥

पट पीत सुवरन रंग। लखि लजत जाहि अनंग।
कटि किंकिनी झनकार। जुत मनिनि सोभ अपार ॥६३॥
नव कनक नूपुर पाँति। सरसाति उत्तम भाँति।
अति मंजु मनहर बानि। अखियानि को सुखदानि ॥६४॥

दोहा

हृदै कमल की कर्निका, मधि ध्यावै हरि नित्त।
जिनके पद नख मनिनि की, रहीं किरन जिह थित्त ॥६५॥
बिहँसत, चितवत हित सने, बरदाइक भगवान।
मंगल मूरति बिघनहर, नर ध्यावइ बुधिवान ॥६६॥
तौ फिरि प्रभु के रूप तें, हटै नहीं मन रंच।
निर्बिकार सुख कों लहैं, छिप्र बिगत परपंच ॥६७॥

सोरठा

सुनि तू नृपति कुमार, गुह्य मंत्र मैं कहत हों।
जाहि जपै इकसार सात रैनि खेचर लखै ॥६८॥

द्वादसाच्छर बासुदेव मंत्र उपदेस कीनों ध्रुव कौं ॥

पावकुलक छंद

इही यंत्र सों आनँद भरिकें। द्रव्यमई हरि मूरति करिकें।
सलिल पवित्र फूल-फल-मूलनि। अरु तुलसी के दल अनुकूलनि॥६९॥
पूजा करै मौन ह्वै हित सों। गहि संतोस नित्त प्रति चित सों।
वन की वस्तु मिले जो आछें। भोग लगाइ भखै पुनि पाछें ॥७०॥
कै छिति जल पावक में पूजै। पीछै परम बड़ाई कूजै।
जो चाहेंगे करिहै सोई। जिनकी माया त्रिभुवन मोई ॥७१॥
जाको कोऊ पार न पावै। ऐसे जानि हिए में ध्यावै।
धर्म, अर्थ अरु काम अनेकनि। देहि ताहि हरि सज्जि बिबेकनि॥७२॥
अरु बिरक्त ह्वै भक्ति उदारे। बिषय छोड़ि के ढूंढिनिवारे।
मुक्ति निमित्त जु प्रभु के पाइन। सेवै मुक्ति सु लहै सुभाइन ॥७३॥

यह सुनि कै ध्रुव मुनि की बानी । मन में अति सुखदाइक जानी ।
करि परिक्रमा मुनि की आपै । चरननि सज्जि प्रनाम अतापै ॥७४॥
हरि चरननि चरचित मधुबन को । गयौ भूपसुत पालन पन को ।
बल्ली जँहँ वृक्षनि लपटानी । रटत बिहंग बानि मधुरानी ॥७५॥

दोहा

गयौ तपोबन को सु ध्रुव, तब नारद मुनि आप ।
नृप के अंतहपुर गए, दूरि करन संताप ॥७६॥
नृप नें आवत देखि के, मुनि की पूजा कीन ।
बैठि सुखासन भूप सों, पुनि बोले सुप्रवीन ॥७७॥

सवैया

दीरघ लेत उसास नरेस, भरचौ ढरकै अखियाँनि सों पानी ।
सूखत ओठ दुवौ फरकैं, लखियैं मुख जोति महा मुरझानी ।
धर्म, अरत्थ मनोरथ तेरौ, कहा बिनस्यौ तजि बुद्धि सयानी ।
भेद उचारि सो मौन बिसारि, जु ना सुरझैं मनसा उरझानी ॥७८॥
नारद के सुनि बैन महीप लग्यौ सगरचौ पुनि भेद उचारन ।
पांचि बरष्ष कौ बालक मैने, निकारि दियौ बन को बिन कारन ।
मै त्रिय के डर अंक लियौ न, जऊँ ललचाइ रह्यौ बहु बारन ।
हौं तब आपु नहीं समुझ्यौ, वह ताप लग्यौ जिय को अब जारन ॥७९॥

मुक्तादाम छंद

बढ्यौ मुनि जू यह सोच समुद्र । कहा करिहै वह बालक छुद्र ।
कहाँ लहिहै वह सीतल नीर । सही कबहूँ नहि भूख सरीर ॥८०॥
रतोपल के दल से मृदु पाइ । थके कितहूँ गिरिहै मुरझाइ ।
किधौं द्रुम छांह कि धूप मझार । अकंटक भूमि कि मंडित झार ॥८१॥
घनें बन अंतर जीव कराल । सहस्रनि बृक्षति डुल्लि सृगाल ।
जरख्ख बड़े भिड़िहा जनु काल । कठोर गरज्जत नाहर जाल ॥८२॥
भयप्रद है बन में सब ठौर । नहीं जिहि संग सहाइक और ।
करै जिन बा कहँ भक्षन कोइ । रह्यौ बिष सौं नख तें सिख भोइ ॥८३॥

इती सुनिके नृप की बतरानि । मुनीस्वर बुल्लिय फेरि सुबानि ।
करै मति यों अब सोच नरेस । निवारक हैं प्रभु कोटि कलेस ॥८४॥

सोरठा

तुव पुरषनि के मद्धि, ऐसो कोऊ नहिं भयो ।
हरि जू सों हित सद्धि, तुम बालक जिमि होइगो ॥८५॥
तीन्यों लोक मझार, जाकौ जस सरसाइगो ।
करिके कर्म उदार, आइ मिलैगो बेगि ही ॥८६॥
यों नृप को समुझाइ, नारद मुनि गुन आगरे ।
अपने लोक सुभाइ, जात रहे सुख पाइके ॥८७॥
राजश्री निदराइ, सो अवनीपति दीन मन ।
सुत की चिंता छाइ, रह्यौ हिएँ हहराइ के ॥८८॥

बड़ी चौपई

ध्रुव सो मधुवन के मद्धि पहुँचिकैं ता निसि में ब्रत राख्यौ ।
पुनि बड़े प्रात ही कुस आसन ते उठ्यौ हिएँ अभिलाख्यौ ।
अरु कालिंदी में न्हाइ, सुद्ध ह्वै प्राणायामैं साध्यो ।
निज कमल हृदय के मांझ, प्रेम सों नारायन आराध्यो ॥८९॥

दुपई

पुनि जिहीं मन्त्र सों नारायन की हित सों अरचा कीनी ।
अरु और ओर तें चित्त दृष्टि सब निहचै खैंचि सु लीनी ॥९०॥

पावकुलक छंद

प्रथम महीना में हरि ध्यायो । कैथ और बदरी फल खायो ।
तीजी,तीजी निसि में खाए । ध्रुव नें तीसौं दिवस बिताए ॥९१॥
ध्रुव नें दूजे मास अरंभहि । गिरे लाइ द्रुम पत्र अदंभहि ।
हरि की हित सों अरचा करिके । छठें-छठें दिन भखे ठहरि के ॥९२॥
बहुरि तीसरौ महिना लागे । अरच्यौ हरिहिं प्रेम सों पागे ।
नवम-नवम दिन अचयौ पानी । पौन प्यास नहिं तृषा सिरानी ॥९३॥
चौथें मास लगें हित भीनों । नारायन को अर्चन कीनों ।
बारह-बारह दिन के पाछें । पवन पान करि ठहरयो आछें ॥९४॥

लाग्यौ जबै पंचमौ मासा । तब तौ ध्रुव ने जीती स्वासा ।
हरि को अरच्यौ हित करि गाढ़े । रह्यौ एक पद अँगुठा ठाढ़े ॥९५॥

वड़ी चौपई

अरु ध्रुव के चरन अँगूठा सों दबि छिति नें यह छबि पाई ।
ज्यों सिंधुर के डग धरत लचकति नाव नीर में आई ।
रहि गयौ ठूँठ सौ ठाढ़ौ निहचल संका सकल बिसारें ।
नहि व्यापै जाहि पवन अरु बरषा अपनो बल बिसतारें ॥९६॥
जब दक्षिन बाम पाद को पलटै तब यह कौतिक होई ।
नग असल-पसल से होत अनगनें संका भूतनि होई ।
अरु छठे मांस में सब इंद्रिनि के स्वामी हरि हिय रोके ।
तब भईं उसास बंद अमरनि की चाहत प्राननि मोके ॥९७॥
ते लोकपाल कंपित आतुर गति नारायन पै आए ।
अरु लागे कहन अवस्था अपनी निपट खेद लपटाए ॥९८॥

सवैया

व्याकुलता उमड़ी बढ़िके, नहि जानिए काके हुतास तए ।
'ससिनाथ' निरंतर व्यापि रहे, तुम कैसे कटाछ बिलास ठए ।
सब जीवनि के निरधार अधार हौ, डीठि परौ मुख हास छए ।
हम बंद उसास भए तें अबै, सुर जीवन हूं ते निरास भए ॥९९॥

दोहा

हमकों अब या दुख्ख तें, लीजै बेगि बचाइ ।
सरनागत-बत्सल सदा, तुम हौ त्रिभुवनराइ ॥१००॥
इतनी सुनि के सुरनि की, बानी श्रीपति आप ।
बोले पुनि मुसिक्यात से हरत सकल संताप ॥१०१॥

सोरठा

तुम मति डरपो रंच, जाहु आपने धाम को ।
मैं अब बिगतप्रपंच, काज तुम्हारौ साधिहौं ॥१०२॥

छंद पद्धरी

उत्तानपात की सुत अमंद । तिनि करयौ कष्ट लहि तप विलंद ।
हौं ताके ढिग मधुवन मझार । वर देन जाऽहौं निर्विकार ॥१०३॥

मेरौ अरु वाकौं प्रान एक । उनि रोक्यौ निजु प्रानन सटेक ।
तातें सु भई है स्वास बंद । सब देवनि की जानौं अदंद ॥१०४॥

॥ इति श्री माथुर कवि सोमनाथ विरचिते ध्रुवविनोदे प्रथमोल्लासः ॥

द्वितीय उल्लास

दोहा

यह सुनि के ते देवता, हरि को सज्जि प्रनाम।
हर्षित ह्वै सुर नगर को, डगरे पूरन काम ॥१॥

छद पद्धरी

अरु चले गरुड़ चढ़िके गुबिद। मधुवन कों आतुर गति अनिंद।
अति भक्त आपनो ध्रुवहिं जानि। तिहिं देखन को सब सिद्धि दानि॥२॥
तहँ पहुँचि भए ध्रुव अग्र थित्त। सो लख्यौ आपु में मगन चित्त।
तब प्रभु नें लीनौं खैंचि ध्यान। जो वाके हिय हौं जोतिवान ॥३॥
निजु हिए कमल में लख्यौं नाहिं। ध्रुव ने स्वरूप सो बुद्धि गाँहि।
तब अरबराइ खुलि गए नैन। देखैं तौ वेई हरष दैन ॥४॥
हे आगे ठाढ़े सुख समुद्र। जगमगति जोति जिनकी अछुद्र।
दरसन करि ध्रुव के अंग अंग। तब कंपन लागे जुत उमंग ॥५॥
पुनि सहित अष्ट अँग प्रनति कीन। अरु रूप लख्यौं इहि बिधि प्रवीन।
अँखियानि पियतु सो छबि अनूप। अरु मुख सों चूछतु सौ सुरूप ॥६॥
पुनि भुजनि भरतु सौ हरषि अंक। थिर रह्यौ जहाँ के तहँ निसंक।
कछु कह्यौ चहै भाष्यौ न जाइ। यह जानि ईस ने सुख्ख पाइ ॥७॥
हे ध्रुव अरु औरनि के सुमद्धि। ब्यापक गुविद जू साँच सद्धि।
कर जोरे ध्रुव के मधि कपोल। तन ब्रह्म संख छायौ अमोल ॥८॥
जिहि बानी को है ब्रह्म ज्ञान। लहि ताको ध्रुव सो बुद्धिवान।
स्तुति करन लग्यौ अति सावधान। तजि के पुनि चंचलता अमान ॥९॥

॥ तोमर छंद ॥

मो हृदय में जो आइ, भगवान शुद्ध सुभाइ।
मो वानि सुप्त नदाँन, जिनि दिय जिवाइ निधान ॥१०॥
अरु हस्त श्रवन रु पाइ, त्वक आदि प्रान सुभाइ।
निज सक्ति के परभाइ, दीने जिवाइ अघाइ ॥११॥

ताको प्रनाम अपार, हों करत हों अविकार।
जो कहौं वानिय सार, करता विरंचि उदार ॥१२॥
तौ एक ही तुम आप, निज सक्ति करि अनताप।
महतत्व आदिक सव्व, तिनको रचत जव तव्व ॥१३॥
अरु बहु असत गुन मद्धि, निजु भोइ औसर लद्धि।
इहि विद्धि ही निरधार, जिमि अगिन काठ मझार ॥१४॥
जौ कहौं वान सहित्त, है उर विरंचिउ थित्त।
तौ तुमहि ते भगवाँन, हुव विमलताहि सयाँन ॥१५॥
तव लखी विधि ने सृष्टि, उर छाइ आनँद दृष्टि।
जो सुप्त जागइ कोइ, जागे रहै सुख मोइ ॥१६॥
तुव चरन भक्ति इलाज, है मुक्ति कौ महराज।
इनको चतुर नर कौन, बिसरावई गहि मौन ॥१७॥
तजि मुक्ति चाह अनूप, करि कामना बहु रूप।
जो तुमें पूजत धाइ, ते निपट मूढ सुभाइ ॥१८॥
है परस कौं सुख ठीक, मधि नरक हू न अलीक।
ताते जु भक्ति सकाम, सो निपट सठ कौं काम ॥१९॥
सुख है जु तुव पग ध्याँन, कै साधु कथित बखान।
सो भए ब्रह्महिं लीन, है नाहिं सुख परवीन ॥२०॥
है स्वर्ग सुख सविकार, हठि करै काल प्रहार।
चढ़ि कै विमाननि वीच, पुनि पाइवौ गति नीच ॥२१॥
तातें जु हैं तुव भक्त, गुन कथा मधि आसक्त।
अविकार चित्त असंक, जिनमें न रंच कलंक ॥२२॥
तिनकी सुसंगति पाइ, भव दुक्ख समुद मझाइ।
तजिही सहज्ज दुरंत, तुव प्रेम रस मदवंत ॥२३॥
जौ कहौ भक्ति मझार। हैं अमल कौन प्रकार।
तौ सुनौ तुम सिरमौर। विनती करत मैं और ॥२४॥
जे मनुज जग सुख माहिं। मढ़ि रहे निपट उछाँहि।
लहि वित्त पुत्र सुनारि। ते रहत सबहि बिसारि ॥२५॥

अरु चरण कमल अनिंद । तिन के जु मत्त अलिंद ।
रहि क्यों न तिनके पास । नर भत्त होइ प्रकास ॥२६॥
कहिए जु तुव अभिमान । अबहीं न कियउ पयान ।
तौ तुव स्वरूप बिराट । समझ्यो सबै सुनिराट ॥२७॥
यातें परे जु अनंत । तुव ब्रह्म रूप लसंत ।
हौं नाहिं जानतु ताहि । जो बचन सकत न गाहि ॥२८॥
जो पुरुष कलप सु अंत । या सकल जगहि तुरंत ।
निज उदर में धरि लेतु । निजु को निजुहि लखि लेतु ॥२९॥
जो सेष है हितवंत । तिहिं अंक में दुतिवंत ।
पुनि रहतु हैं निज सोइ । आनंद परम समोइ ॥३०॥
जिहिं नाभि जलधि बिसाल । तिहिं मद्धि कमल सनाल ।
कलधौत कौ मय लोक । तँहँ लसे बिधि अनसोक ॥३१॥
ताको दुहूँ कर जोरि । अति प्रनति करतु निहोरि ।
जो सोइबे को रीति । प्रानीनि होति सप्रीति ॥३२॥
तौ सुनो प्रभु यह बात । तुम नित्य मुक्त लसात ।
अरु जीव मुक्ति सु होतु । तुव दया कौ लहि सोतु ॥३३॥
तुम परम निर्मल गात । जिय मलिन दुति परसात ।
तुम आप प्रभु परवीन । हैं जीव मूरख दीन ॥३४॥
चैतन्य तुम सब काल । हैं जीव जड़ जिमि ढाल ।
तुम एक रस अबिकार । है जीव चपल बिहार ॥३५॥
तुम पुरुष आदि-अनादि । जिय आदिवंत बिबादि ।
तुम हौ बिदित भगवान । है जीव अभग निदान ॥३६॥
तुम सत्व रज तुम ईस । है जीय गुनमय सीस ।
निजु बुद्धि में निज थित्त । ह्वै लखत सबनि अभित्त ॥३७॥
अरु सबनि में इंहि भाँति । जिमि होतु गुन मनि पाँति ।
न्यारे सबनि तें फेरि । जल ते कमल जिमि हेरि ॥३८॥
तिहिं पुरुष कों सिर नाइ । मेरे प्रनाम अघाइ ।
अरु बिबिधि मत को मानि । जे गिरत भव में आनि ॥३९॥

नहिं लहत जाको भेद। इमि ब्रह्म जो अनखेद।
अबिकार और अनंत। हौं सरन तासु वसंत ॥४०॥

छंद पद्धरी

तुव चरन भजत जे प्रभु दयाल। तिनको न और आसिप विसाल।
यातें तुम हम से दीन जानि। यो रक्षा करिए नेह सानि ॥४१॥
जिहिँ बिद्धि प्रसूता प्रथम गाइ। निजु वच्छा कों पालति सुभाइ।
तुम बिरद दीनबत्सल सुजान। हम हैं अधीन अनसावधान ॥४२॥

दोहा

यों जब ध्रुव ने जोरि कर, प्रभु सों उचरे वैन।
धन्नि धन्नि कहि हरि तबै, वोले बरपत चैन ॥४३॥
हे नृपसुत तुव हृदै की, मैं जानतु हौं चाह।
है अलभ्य पै दैउँगो, तोकों सहित सलाह ॥४४॥

मुक्तादाम छंद

नहीं पुनि और गयौ जिहिं थान। बिराजुत है थिर तेजनिधान।
जहाँ यह तारक और नछित्र। लसै दुतिवंत जु और पवित्र ४५॥
सु ज्यों करि थंभहि मद्धि उदार। फिरै वृप कोल्हव के निरधार।
तिहीं ब्रिधि सो मुनि कस्यप धर्म। हुतासन सुक्र मुनीसुर पर्म ॥४६॥
प्रदक्षिन देत रहें नित जाहि। सु चाहतु है उर मद्धि उछाहि।
पिता जब तो बन को उठि जाइ। मही सब तो कहँ सोपि सुभाइ॥४७॥
तबै करिहै छिति कौ तुव राज। छतीस हजार वरष्ष सलाज।
अरे तुव भ्रात जु उत्तम नाम। सिकारहि में वसिहै जम धाम॥४८॥
तिही दुख में पुनि उत्तम मात। वहू मरिहै उर में अकुलात।
दवागिन में जरि के सबिकार। नहों इंहि मद्धि सु झूठ सचार॥४९॥
फिर्‌यो करिहै मम हित्त सु जज्ञ। सदक्षिन पूरन ह्वै सरवज्ञ।
भली विधि सों सुख भोगि प्रधान। अरे भजिहैं फिरि मोहि सुजांन॥५०॥

दोहा

फिरि तू मेरे थान को जैहै, सुत निरधार।
सबै लोक जाकों करत, प्रनति हजारन बार॥५१॥

ऊँचौ सातो रिषिन तें, तू लसिहै तहँ जाइ।
जँहाँ जाइ नहिँ आवही, फिरि मो कृपा प्रभाइ ॥५२॥

सोरठा

वहुरि बिदुर सो वात, मैतरेय जू उच्चरे।
मन में हरषत जात, मंद मंद मुसिक्याइ कें ॥५३॥

दोहा

यों ध्रुव को वरदान दे, ह्वै के गरुड सवार।
ता देखत निजु धाम कौ, गए गुविंद उदार ॥५४॥
हरि पग सेवन ते इतो, महा मनोरथ पाइ।
ध्रुव पुनि अपने नगर को, चल्यौ न सुख अधिकाइ ॥५५॥
मैतरेय सों बिदुर ने, उचरचौ यह पुनि बैन।
दुरलभ पाइ मनोरथै, क्यों न लह्यौ चित चैन ॥५६॥
यह सुनि के मैत्रेय ने, कही बिदुर सों फेरि।
सुनो भेद मैं कहत हौं, याकौ तत्व सँघेरि ॥५७॥
कह्यौ विमात जु सुरुचि ने, वचन वान तिहिँ बिद्ध।
उर में खरक बनी रही, औरो सुनो प्रसिद्ध ॥५८॥

सोरठा

मुक्तिनाथ सों मुक्ति, मैंने क्यों माँगी नहीं।
नहिं बनि आई जुक्ति, पछितायो यह मन रह्यौ ॥५९॥

पावकुलक छंद

पुनि ध्रुव हिएँ विचारन लाग्यौ। सोच तरंगनि में अति पाग्यौ।
सनकादिकनि समाधि जु कीनें। घने जनम लैके हित भीनें ॥६०॥
हरिजू कौ जु परम पद जान्यौ। भयौ वहुरि तिनिकौ मनमान्यो।
सु में छमाँ समद्धिहीं लहिकें। हरि जू के पद पंकज गहिकै ॥६१॥
रह्यौ जगत कौ जगत मझारे। दुबिधा दृष्टि चित्त में धारे।
मंद भाग्य नहि मोसौं कोई। जु में तपस्या करिके खोई ॥६२॥
पहुँचि विष्नु के चरननि पासैं। जाच्यों जगत सुख परकासें।
मेरौ थिर पद अमर गिराऊ। यह बिचार धरि हिए अगाऊ ॥६३॥

मेरी मति देवनि हरि लीनी । अमरसता अति परगट कीनी ।
सठता करी जु नारद बानी । मैंने नहिं पहले ही मानी ॥६४॥
दैवी माया सों मढि आछें । सोवत तूल अयानप काछें ।
दुबिधा बुद्धि हिए में लायौ । भैया सों अभिमाने छायौ ॥६५॥
मैं यह बृथा मनोरथ जाँच्यौ । मरनहार ज्यों औषधि राच्यौ ।
करि प्रसन्न सब जग के नाइक । माँग्यौ राज जु अति दुखदाइक ॥६६॥
निर्धन जैसे धनी निहारैं । अति ही उत्तम बस्तु बिसारैं ।
मागें भुसी धान की हीनों । सो मैं भागनि निपट मलीनों ॥६७॥

॥ दोहा ॥

मैतरेय पुनि उच्चरे, बचन बिदुर सों आप ।
तो से हरि के भक्त ते, चहत न बित्त मिलाप ॥६८॥
हरिपद अरबिंदनि बिषें, मगन रहें दिन राति ।
बिषयनि की जे सुख अवलि, तिनि को नहीं सुहाति ॥६९॥

॥ छंद पद्धरी ॥

पुनि सुनिय भूप उत्तानपात । सुत आवत अपनों अमल गात ।
फिर आवै जैसे मृतक कोइ । दुख अंग अंग के सकल खोइ ॥७०॥
नृप ने न सत्य यह गिनी बात । मो दुखित कों कित सुख सिहात ।
पुनि नारद कौ सुधि करि सुबैन । हित मद्धि भयौ नृप सहित चैन ॥७१॥
जिनि कही पुत्र की बात आनि । दिय हार ताहि बहु मोल जानि ।
पुनि कचनमय रथ को मँगाइ । उन्नत तुरंग तामें जुराइ ॥७२॥
निजु ह्वै सवार उत्तानपात । द्विज मंगल बचननि कहत जात ।
कुल बृद्ध और सँग में प्रधान । अरु बंधु बृंद मंडित सयान ॥७३॥
बहु संख दुंदुभी के निनद्द । अरु बैन बाँसुरी छत्रनि बिहद्द ।
अरु बिप्र बेद उच्चरत संग । उर मद्धि सनें आनँद तरंग ॥७४॥
निज पुर तें चल्ल्यौ नृप उताल । सुत निरखन उतकंठा बिसाल ।
अरु प्रिय सुनीति अरु सुरुचि बाम । चढ़ि चलीं रजत सिबिका ललाम ॥७५॥
उत्तम हू लीनों तहँ चढ़ाइ । पालकिय मद्धि सुत नेह छाइ ।
लखि आवत ध्रुव को पगनि तब्ब । नृप उतरि रत्थ तें बिन गरब्ब ॥७६॥

ढिग जाइ प्रेम विह्वल नरेस । सुत लियो अंक भरि तजि कलेस ।
लै वेर बेर अति उच्च स्वास । वहु वार सूँघि सिर को प्रकास ॥७७॥
जा सुत के अघ वंधन उदार । हरिचरन छुवें छुटि के अपार ।
दृग सीतल अँसुवनि को वहाइ । सो पुत्र लियौ नृप ने न्हवाइ ॥७८॥
पुनि परसे पितु के चरन तात । दिय पितु ने आसिप हरषि गात ।
पुनि मातनि के ध्रुव परचो पाइ । अकलंक सुद्ध भावहि बढ़ाइ ॥७९॥
तिहि समै लियौ ध्रुव कौ उठाइ । भुज भरि हरष्ष सो अश्रु नाइ ।
पुनि बचन उच्चरी सुरुचि एह । रहि जियतु पुत्र तू सुखित देह ॥८०॥

॥ दोहा ॥

जासों गुन मंत्रादिक, रिहे परस भगुबिंद ।
तासों सब प्रानी नवें, ऐसी भाँति अनिद ॥८१॥
जैसे भूमि निचान कौ, परगट पाएँ ढार ।
तितहीं को ढरकै सलिल, समझो सत्य विचार ॥८२॥

॥ पावकुलक छंद ॥

उत्तम अरु ध्रुव दोऊ भाई । मिले अंक भरि विथा सिराई ।
उत्तम के अँसुवनि ध्रुव न्हायौ । ध्रुव के अँसुवन उत्तम छायौ ॥८३॥

॥ सवैया ॥

जानि समीप सुनीति सपूतहिं, नैननि बेलि बिनोद की बोई ।
ए "ससिनाथ" उदार तिहीं छिनु, एकही वार बिथा सब धोई ।
आई उमंगि तरंगिनि तूल, हुती छतिया जु बिछोह बिलोई ।
नीके निहारि पसारि भुजा, ध्रुव अंक में धारि पुकारि के रोई ॥८४॥

॥ पावकुलक छंद ॥

बह्यौ छीर छतिया तें धारनि । अरु अँसुवनि की धार अपारनि ।
माइ सुनीति और ध्रुव छौनां । भीजि गए अँसुवनि गहि मौना ॥८५॥
क्यों हूँ थमे न हिचकी लागी । मन की बिथा दुहुनि की भागी ।
सब सुनीति की करें बड़ाई । जेहीं निरखति और लुगाई ॥८६॥
धन्नि भाग तेरी सुनि रानी । खोयौ सुत पायौ सुख दानी ।
ह्वैहै यही अवनि कौ पालक । अरु सत्रुनि के नगर उसालक ॥८८॥

भली भाँति पूजे हरि तैंने। जो भक्तनि के दुख हरि लेनें।
जिनको ध्यान करत ही तक्षन। जीति लेइ जन्म मृत्यु विलक्षन॥८९॥
ऐसे भ्रात सहित ध्रुव लीनें। हथिनी चढि नृप आँनद भीनें।
निजु पुर में पैठ्यौ अघ हीनें। करत बड़ाई नर परवीनें।।९०॥

॥ मुक्तादाम छंद ॥

जितै तित तोरण पाँति लसाति।
मरक्कत की अति सुंदर भाँति।
हजारनि रंभनि थंभ बनाइ।
विरक्ष सुपुंगनि के लघु लाइ॥९१॥
रसालनि के अरु पल्लव लाल।
दुकूल घने अरु मुत्तिय माल।
दई प्रति द्वारनि पै लटकाइ।
धरे जल पूरित कुंभ सुभाइ॥९२॥
दिये घृत के धरि दीपक पास।
बढ्यौ अति ही जगमग्ग विलास।
उतंग विराजतु कोट हु वार।
बनें कलसा मय हेम उदार॥९३॥
अकास विमान छए पुनि आनि।
विलोकन कौतिक आनंद सानि।
प्रकासित चौपथ कीन बजार।
गली सुथरी किय झारि अपार॥९४॥
छिरक्किय चंदन कौ जल डारि।
करी पुनि धूपित धूप सवारि।
फलौ अरु फूलरु अक्षत धान।
समेंति सुतंदुल सोभ निधान॥९५॥
अनेकनि भेंट लिये अनवाय।
ध्रुवै दरसावत हैं जब आय।
जितै तित श्री पुर की नर नारि।
बरष्षति फूलनि अक्षत डारि॥९६॥

दिखावति है दधि दूब हरित्त।
बरस्सति हैं सरसो अनभित्त।
असीस उचारति वारहि बार।
पतिव्रत धारिनि नारि अपार ॥९७॥

दोहा

गीत सुनत तिनि त्रियनि के, निपट मनोहर बानि।
पैठ्यौ पितु के भवन में, ध्रुव पुनि सुख में सानि ॥९८॥

मधुभार छंद

मनिमय उतंग। गृह अति सुढंग।
बँगला अनेक। संजुत विवेक ॥९९॥
तिहिं भवन मद्धि। नृप ने हुलद्धि।
ध्रुव बस्यौ आप। तजि सकल ताप ॥१००॥
सुरपुर मझार। ज्यों सुर उदार।
सज्जै बिहार। वर्जित बिकार ॥१०१॥
पय फेन तूल। सय्या सफूल।
मिलि दुरद दंत। अरु रजतवंत ॥१०॥
दीपक अनत। मनि के दिपंत।
कामिनि ललाम। बहु लसति धाम ॥१०३॥
मनि जटित गात। भूपन लसात।
जिनि के सुबैन। हरि चित्त लैन ॥१०४॥
मुख मनहुँ चंद। आनंद कंद।
भ्रू सम कमान। दृग मनहुँ बान ॥१०५॥
श्रुति करन फूल। लखि बढ़ै फूल।
मुकतनि समेति। नथ सोभ देति ॥१०६॥
अरु अधर लाल। मानहुँ प्रबाल।
लघु सुमिल दंत। राजत हसंत ॥१०७॥
अरु चिबुक गोल। ग्रीवा सुतोल।
बौने उरोज। अति भरे चोज ॥१०८॥

अति छीन लंक । डगरैं निसंक ।
तब लचकि जाहिं । जुनु लता आँहि ॥१०९॥
नूपुर नवीन । मनि कनक लीन ।
पाइन मझार । झनकैं सुढार ॥११०॥
अरु लसत बाग । सुभ चहूँ भाग ।
सुरतरु विलंद । जिनिमें अदंद ॥१११॥
वहु विधि विहग । रट्टत सुढंग ।
भननात भौंर । बढि छविनि झौंर ॥११२॥
बापी तड़ाग । जिनि मद्धि लाग ।
मनि नील पाँति । सीढी सुहाति ॥११३॥
जलरुह घमड । जल में अखंड ।
अरु कुल मराल । वहु चक्र लाल ॥११५॥
कारंड पोत । सारसनि गोत ।
कूजत फिरंत । जल में तिरंत ॥११६॥

॥ वड़ो चौपाई ॥

उत्तानपात राजर्षि पुत्र को सुनि प्रभाव अरु लखिकें ।
अति सन्यौं आचिरज अपने मन में कियौ विचार हरषिकें ॥
यह भयौ सयानो प्रजा याहि सब चाहति है प्रनभारी ।
यों जानि हिए में ध्रुव कों सौंपी धरनी नृपति सुखारी ॥११६॥

॥ दोहा ॥

बृद्ध भयौ लखि आपुको, भूपति परम सुजान ।
ह्वै बिरक्त बन को गयो, निज गति हित दुतिवान ॥११७॥

इति श्री माथुर कवि सोमनाथविरचिते ध्रुवविनोदे द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

तृतीय उल्लास

॥ दोहा ॥

मैतरेय पुनि उच्चरैं, नेह सगबगे बैन ।
कर जोरे बैठ्यो सुनतु, हुतौ विदुर लहि चैन ॥ १ ॥
प्रजापती सिसुमार की, बेटी भ्रमि इमि नाम ।
सो व्याही ध्रुव को निपट, सीलवती अभिराम ॥ २ ॥
कलप और बत्सर भए, ताते बेटा दोइ ।
इला पुत्रिका बायु की, दूजी ध्रुव तिय सोइ ॥ ३ ॥
उत्कल तातें सुत भयौ, अरु इक भई कुमारि ।
यह कुटुंब प्रतिपाल करि, ध्रुव बिहरै डर टारि ॥ ४ ॥
ध्रुव कौ भाई हुतौ जो, उत्तम नाम उदार ।
सो जक्षन मारचौ जहाँ, खेलन गए सिकार ॥ ५ ॥
ताको ढूँढन गई ही, पुनि उत्तम की मात ।
वहू गई जमलोक को, दव में जरि अकुलात ॥ ६ ॥

॥ छंद पद्धरी ॥

सुनि भ्रात मरन को ध्रुव प्रचंड । मधि सोच क्रुद्ध के अति घमंड ।
जयदाइक स्यंदन के मझार । चढ़ि गयौ दिसा उत्तर उदार ॥७॥

जहँ जक्ष बसत है सिव उपासि । हिमवंत मेरु में अति हुलासि ।
तिहिं पब्बय की कंदर अनूप । तँह पुरी लखी ध्रुव प्रबल भूप ॥८॥

तहँ जाइ कियौ अति संख नद्द । सो सद्द दिसनि मंड्यौ अहद्द ।
सुनि सद्द जक्ष नागरि अनंत । ते संक मानि कंपीं तुरंत ॥९॥

तब क्रुद्ध पूरि के कढ़े जक्ष । लिन्ने हथ्यार आए प्रतक्ष ।
लखि तिन्हें सनम्मुख ध्रुव नरेस । वर बिक्रमीक धनु लै सुबेस ॥१०॥

इक इक भाल में तीन तीन । सर मारे तिक्षन रन प्रवीन ।
ते जक्ष बान लग्गे कपाल । चित मद्धि आपुनों गुनि बिहाल ॥११॥

अरु लगे बड़ाई करन तब्ब । ध्रुव बिक्रमीक जाहर सगब्ब।
जिमि परें पाइ क्रुद्धै भुजंग । तिहि बिद्धि जक्ष ह्वै गहि उमंग ॥१२॥
तिनि चित्त बिचारयौ छच्छबान । हम याके हतिहै सावधान ।
पुनि यों करिके जक्षनि बिचार । छंडे हथ्यार बर वहु प्रकार ॥१३॥

॥ भुजंगप्रयात छंद ॥

परघ्घानि को जक्ष लै इक्क छड़े । घने खग्ग तिख्खे महाक्रुद्ध मंडे ।
फरस्सा बड़े सूल औ दंड चडे । किते भिंडिपालानि कों लै उमंडे ॥१४॥
भुसंडीनि के पुंज कित्तेक लिन्ने । किते बान कम्मान तिख्खे नविन्ने ।
बरखें ध्रुव भूप पै छोह छाए । उमडे रनभूमि में पास आए ॥१५॥
ध्रुवभूप कौ छाइ लिन्नों सुरत्थैं । न सुझ्झे तबै जक्ष बुल्ले कुगत्थें ।
हिये मद्धि चाहें कियो नास ताकौ । प्रकासै महा भानु सों तेज जाकौ॥१६॥
अयुत्ता त्रयोदस्स हैं जक्ष रारे । सवै सस्त्र के ख्याल मज्झें करारे ।
नही भूप कौ रत्थ यों डीठि आयौ । जलद्धार सो मेरु जैसें सुहायौं॥१७॥

॥ पावकुलक छंद ॥

हाहाकार भयौ लखि तब्बै । देव और सिद्धनि के सब्बै ।
अरु आपुस में उचरै बानी । निपट बिषादनि सों लपटानी ॥१८॥
जक्षनि के दल सिंधु मझारें । यह नर सूर मगन हुव हारें ।
अरु पुनि बैरी जक्ष पुकारें । मारि लियौ सत्रनि पटतारे ॥१९॥

॥ कंद छद ॥

इते मद्धि ही ध्रू महीपाल कौं रत्थ ।
चमक्क्यो इही बिद्धि सों जोति के सत्थ ॥
प्रकासै दिवानाथ जों बिच्च आकास ।
उदंडों महा टारि नीहार कौ बास ॥२०॥
धनुर्बान लै हत्थ में ध्रू महाबीर ।
प्रकास्यौ तबै चाप कौ नद्द गंभीर ।
सुने सद्द को जक्ष कंपे हिए मद्धि ।
रहे पै जहाँ के तहाँ साहसै सद्धि ॥२१॥

चलाए महाबीर नें तिख्खने बान ।
बिपक्षानि के अस्त्र खडे तिहीं थान ।
जिहीं बिद्धि सों घोर घट्टानि के बृंद ।
उड़ावै निजब्बेग सों ईरसानंद ॥२२॥
महीपाल के हत्थ के तिख्खने तीर ।
बिपक्षानि के अंग कों बेधि गंभीर ।
कबच्चानि को काटि के ते कढ़े पार ।
सु ज्यों बज्र पब्बैनि को ठार ही ठार ॥२३॥
घने जुद्ध की भुम्मि मझ्झें परे मुंड ।
बनै कान में कुंडलौ औ फटे तुंड ।
परे और ऊरु मनों हेम के ताल ।
कटे बाहु चूरा सजे रक्त सों लाल ॥२४॥
किरीटी घने हार केयूर औ पाग ।
परे साज औरो रँगे रक्त के राग ।
बिराजी रनभ्भुम्मि तब्बै इही बिद्धि ।
लखे बीर को होति आनंद की निद्धि ॥२५॥
हने ते बचे जे बिपक्षानि के जाल ।
गए भज्जि ते टारिके आपनों काल ।
जिहीं विद्धि सों सिंघ के ख्याल को हेरि ।
भजे मत्तदंती कलभ्भानि कों घेरि ॥२६॥
पुरी दिख्खिबे की भई भूप के चित्त ।
निरख्खी नहीं जाइ कैसो इँहो हित्त ।
नही जानिए जक्ष मायानि को भेद ।
खुटाई कछू सज्जई मंडि के खेद ॥२७॥
इती सारथी नें कही भूप सों बात ।
तबै लग्गि भौ इक्क भारी उतप्पात ।
परचौ कान में सिंधु कौ सौं महासद्द ।
चहूँघा लखो धूरि की धार बेहद्द ॥२८॥

घरी एक में व्योम सब्बैं गयौ छाइ ।
घटा घोर सों दामिनी जोति जगाइ ।
गरज्जे महा मेघ संका सरस्साइ ।
चहूँ ओर तें राधि लोहू वरस्साइ ॥२९॥
मलीनें मलै मेद औ मूत की धार ।
बरख्खावई व्योम तें वारई वार ।
कबंधा परे व्योम ते आनि के अग्र ।
तमासौ लखै ध्रू तहाँ ह्वै अनव्यग्र ॥३०॥
चहूँ ओर ते पुंज पब्बै परे आनि ।
निहारें तिन्हें भूप ध्रू वीरता सानि ।
परिघ्घा गदा मूसला खग्ग पापान ।
बरख्खें चहूँधा परे घोर निद्दान ॥३१॥
भुजगा प्रतिस्स्वास मंडे महाज्वाल ।
तजै अक्षतें क्रुद्ध ज्वालानि को लाल ।
सनम्मुख्ख ध्रू के मतंगा भरे मद्द ।
मृगिंदानि के बृंद धावैं करें नद्द ॥३२॥
उमंड्यौ पयोनिद्धि आवै चहूँ ओर ।
मनोभूमि को बोरिहै साजि कैं जोर ।
भयौ सद्द वेहद्द मानो प्रलै होति ।
लखै ताहि ध्रू मुख्खै पै मंडिकै जोति ॥३३॥

॥ दोहा ॥

यों माया जब आसुरी, जच्छनि करी कराल ।
सुनि के आए मुनि लगे, बानी कहन रसाल ॥३४॥
सो प्रभु तुव रक्षा करौ, नासो सबै विपच्छ ।
जाको नाम जपै अनुज, जीतै जमहिं प्रतच्छ ॥३५॥

॥ इति श्री माथुर कवि सोमनाथविरचिते ध्रुवविनोदे तृतीयोल्लासः ॥

चतुर्थ उल्लास

॥ दोहा ॥

मैतरेय पुनि बिदुर सों, बोले बचन सुनाइ।
भक्ति बढावन के लिये, हिय कौ हित दरसाइ ॥ १ ॥

॥ पावकुलक छंद ॥

सुनिके ध्रुव सु मुनिन की बानी। उर के मद्धि बुद्धि इमि ठानी।
करि आचमन चाप धरि बाने। नारायन को अस्त्र प्रमानें ॥ २ ॥
मंत्रित करि जक्षनि पै छंड्यौ। तिक्षन जगा जोति सों मंड्यौ।
हुती आसुरी माया छाई। तक्षन ही लखि ताहि बिलाई ॥ ३ ॥
जैसे ज्ञान उदय तें भारे। नास होत हैं दुख्ख अपारे।
सुबरन फोंक हंस पर वारे। पैठे जक्ष दलनि में रारे ॥ ४ ।
जैसें निपट सघन बन मांहीं। पैठि जातु बरही अचकाहीं !
छुट्टत बान इते उत सटके। पुनि ठाढ़े हुव रिस में अटके ॥ ५ ॥
फेरि सस्त्र हत्थनि में लिन्नें। धाए ध्रुव पै क्रुद्धहि किन्नें।
ज्यों गरुड्ड पै फननि उठाएँ। दौरे बडे भुजंग रिसाए ॥ ६ ॥
जिनके उरु सिर अरु भुज खंडे। उदर, अधर अरु सोभ उमंडे।
ते गुह्यक तिहिं लोक पठाये। जती सूर जहँ जात सुहाए ॥७॥
बेधि भानु को मंडल बंके। पापनि की गति छंडि निसंके।
जब ध्रुव ने रन रंग मझारे। नाराग्रन सर को पटतारें ॥ ८ ॥
बिन अपराध जक्ष बहु घत्ते। परे भुम्मि में श्रोनित रत्ते।
आइ स्वयंभू मनु ऋषि संगें। ध्रुव सों बोले दया उमंगें ॥ ९ ॥
हे बच्चा अब क्रुद्ध सिरैए। अधरम मूल निपट यह हैए।
जाते मारे जक्ष घनेरे। ऐसे नहिं अपराधी तेरे ॥ १० ॥
यह न हमारे कुल के लाइक। अरु बरजत साधुनि के नाइक।
एक भ्रात के बदले तैंने। मारे जक्ष अनेकनि पैनें ॥ ११ ॥
नहीं पंथ यह साधुनि वारौ। जे हरि ध्यावत सांझ सबारौ।
अपने सम औरनि को जानैं। हिंसा खोटी संत बखानैं ॥ १२ ॥

निपट कष्ट करि हरि आराध्यौ । तैंने निज परलोकहि साध्यो ।
महा परमपद पावौ वेटा । दूरि भए सव पाप चपेटा ॥ १३ ॥
प्रभु नें तू अपनो ठहरायौ । परम भक्त आनंदनि छायौ ।
साधुनि हू के मन में भायौ । क्यों अव कुकरम करत अठायौ ॥१४॥
दया राखि सव जीवनि माहीं । मुनि समान तजि के छल छांहीं ।
है व्यापक सुंदर नारायन । इहिं विधि होत प्रसन्न सुभायन ॥१५॥

हरि प्रसाद तें पुरुष अनेकनि । मुक्त होत हैं सहित विवेकनि ।
पंचभूत करिके नर नारी । जग में प्रगटत सुख दुख कारी ॥१६॥
पुनि दुहूनि कौ होत प्रसंगैं । नर नारी उपजै सउमंगैं ।
है जग की उतपत्ति सुऐसे । योंही थिति अरु नास अनैसे ॥१७॥
है यह प्रभु माया की करनी । जो मैं तो सौं परगट वरनी ।
नारायन हैं सवके कारन । पुरुषोत्तम निजु अनुचर तारन ॥१८॥
प्रगट गुप्त यह विस्व विसाला । सज्जति कर्म्मनि को प्रतिपाला ।
भ्रमति रहैं इहिं विद्धि प्रयानी । ज्यों चुंवक अरु लोह कहानी॥१९
है निहचै प्रभु सवकौ करता । अरु सवते न्यारौ जग भरता ।
हनें और नहि हनें प्रवीनो । तिहिं माया को लखैं अधीनो ॥२०॥
निजु अनंत जग अंत करैया । अरु अनादि जग आदि लखैया ।
पितु ह्वैकै पुत्रनि उपराजै । अरु ह्वै कहूँ काल विधि छाजै ॥२१॥
नहिं जाके अपनो न परायौ । है समान सवसो छवि छायौ ।
यों ताके वस प्रानी सगरे । ज्यों समीर वस रज तृन अगरे ॥२२॥

अरु जीवनि की आयु घटैया । पुनि है निहिचै आयु वढ़ैया ।
अरु है दुहूँ विधिनि तें न्यारौ । सदा स्वच्छ जग को उजियारौ॥२३॥
याको कोऊ कर्म वतावे । केते याहि काल ठहरावें ।
कोऊ देव कामना भाषें । कोऊ कहि सुभाव अभिलाषें ॥२४॥

॥ दोहा ॥

वहु विधि जाकी सक्ति है, अरु है अलख अनंत ।
ताकी करनी को लखै, ऐसो को वुधिवंत ॥ २५ ॥

भयौ आपुही तें प्रकट, जो अनादि अनषेद।
पुरुष लखै क्यों जासु कौ, भेद न जानै बेद॥ २६॥

काव्य छंद

नहिं कुबेर के भृत्य भ्रात तेरे के घाइक।
जीवन की उत्पत्ति नासकर प्रभु ही लाइक।
प्रभु ही जग को सृजै और पालै अरु नासै।
नहि यामे संदेह कहत हों बचन प्रकासैं॥ २७॥

अहंकार जो तजे प्रकृति गुन ताहि न परसै।
याँही तें सत्पुरुष जजें याकों बुधि सरसें।
सब जीवनि कौ ईस सक्ति अपनी जो माया।
तासौ सृजि पालंतु हनतु सो जोति सवाया॥ २८॥

तातें तासों पुत्र एक बुध कै मन लायौ।
जाहि देत बिधि भेट नथे पसु ज्यो ठहरायौ।
पाँच बरष कौ तू जु बिमाता के सुनि बैना।
तप कीनो बन जाइ परमपद लह्यौ सचैना॥ २९॥

तजिके ताते बैर ब्रह्म अक्षर जौ एकै।
अपनी मुक्ति निमित्त लाउ मन में सबिबेकै।
है जीवन के मध्य भेद की बुद्धि अयानी।
ताहि कहत है संत सदा सबको सुखदानी॥ ३०॥

तातें प्रभु को ध्याइ भलौ जौ अपनो चाहै।
ममता अरु हंकार तज्जिहै सहित सलाहै।
रोष तजे तें भलौ होइगौ निहचै तेरौ।
जैसें औषधि भषै रहै नहिं रोग करैरौ॥ ३१॥

जो दुखदाइक होतु जीव जातें भय पावत।
ताके ढिग सतपुरुष नही काहू बिधि आवत।
सिव कौ भ्रात कुबेर कियौ ताके अपमानहिं।
ने हते जु जक्ष भ्रात के दोषै ठाँनहिं॥ ३२॥

[illegible]ो करि सु प्रसन्न प्रनति सुभ बानी कहिके।
ै तोसों जो कहतु पुत्र तू सो लै गहिके।

दोहा

मुष्य बिमाननि मध्य यह, प्रभु नें पठयौ आप।
तामें बैठि प्रयान करि, ध्रुव छितिपाल अताप ॥ २६ ॥

सोरठा

मैतरेय जू फेरि, हरि चरननि कौ चित्त धरि।
हित की चितवनि हेरि, बचन उच्चरे बिदुर सो ॥ २७ ॥

पारसदनि के बैन सुनिके ध्रुव मन भावने।
न्हायौ जल सुख दैन, कर्यौ प्रनाम सुनीति को ॥ २८ ॥

लिय तिनि आसिस सिद्ध, पूज्यौ बहुरि बिमान को।
चाह्यौ चढ़न प्रसिद्ध, तव ध्रुव कंचन वरन हुव ॥ २९ ॥

पद्धरी छंद

तब लगे होन दुंदुभि निनद्द, ढोलक मृदंग तंत्री सुपद्द।
बहु झाँझि-झालरी और तार, गंधर्व लगे गावन उदार ॥३०॥

बहु फूलनिकी बरसा बिसाल, अरु लगी वरष्पन मंजुमाल।
जब चल्यौ स्वर्ग को चढ़ि बिमान, तब सुधि किय मैया सुद्ध प्रान ॥३१॥

है अति गरीबिनी मो सु माइ, मै परपद पायौ जिहिं प्रभाइ।
हो स्वर्ग जाइहों ता बिहीन, यह बात मोहि लागै भली न ॥३२॥

इमि कियौ चित्त में ध्रुव बिचार, तब दुवो पारषद निरविकार।
उच्चरे देवि तुव मातु जाति, बैठी बिमान मे दिब्य कांति ॥३३॥

सवैया

बैठि विमान चल्यौ सुरलोक को, कंचन सी तन जोति बिसेखी।
पंथ के मद्धि अचानक ही, खटकी पुनि अंबदसा अनलेखी ॥
सो 'ससिनाथ' सुनंद औ नंद नें, जानि दई दरसाइ सुभेखी।
आँनद मान्यों तवै ध्रुव नें, जब आगें सुमाइ बिमान मे देखी ॥३४॥

पद्धरी छंद

जहँ जहँ बिमान बैठौ बिसुद्ध,
ते धन्नि धन्नि भाषत प्रसुद्ध।
बरसावति फूलनि बार बार,
अति देखत क्रम सों ग्रहनिचार ॥ ३५

नषि तीनि लोक कों चल्यौ अग्ग,
बिमान सुध्रुव कौ अनव्यग्र।
हौ आगे हरि कौ पद अनूप,
तहँ पहुँच्यौ भूपति अमर रूप॥ ३६॥

जा पद की दुति तें सकल लोक,
जगमगें तज्जिके निकट सोक।
जहँ विष्नु अनुग्रह बिनु न जाइ,
अरु पहुँचै प्रभु के चरन गाइ॥ ३७॥

पुनि होइ सांति बुधि सुद्ध काइ,
समदरसी जीवनि में सुभाइ।
अरु हरि ही जाकें बंधु मित्र,
सो जाइ बिष्नुपद को पवित्र॥ ३८॥

उत्तानपाद कौ ध्रुव सुनंद,
हरिभक्त नित्त आनंदकंद।
तिहुँ लोकनि कौ हुव सीसमौर,
ताके समान नहि बियौ और॥ ३८॥

सिसुमार चक्र पुनि तिही ठार,
राख्यौ बिचारि के निरबिकार।
नित भ्रमै तास के ओर पास,
जुत ग्रह नछित्र तारा प्रकास॥ ३९॥

ज्यों दाँइ देत में बृषभ पाँति,
चहुँ ओर फिरति है चपल भाँति।
लषि ध्रुव की यह महिमा उदंड,
नारद मुनिंद गहि बीन चंड॥ ४०॥

गाए इमि आपुहि स्लोक तीनि,
कृतु प्रचेतानि के मद्धि बीनि।
निहिचै पतिब्ब्रता जो सुनीति,
ताकौ सुत ध्रुव हरि सों प्रतीति॥ ४१॥

करि तानें तप अति कष्ट धारि,
गति पाई उन्नत सो निहारि।
नहि वेद पढ़ैया लहें जाहि,
पुनि और महीपति कहा आहि ॥ ४२ ॥

जो पाँच वरस कौ बुद्धिवान,
लग्गें विमात कौं वचन वाँन।
बन गयौ फेरि सुनि मो सुवैन,
लीनों रिझाइ प्रभु मुक्ति दैन ॥ ४४ ॥

जा पद निमित्त छत्री अनेक,
तप सज्जत वहु वरसनि सटेक।
सो तानें वरपनि पंच वेस,
दिन थोरें पायौं ध्रुव सुभेस ॥ ४५ ॥

॥ सोरठा ॥

बहुरि विदुर सों बात, मैतरेय जू उच्चरे।
मंजुल मुख मुसिक्यात, हरि की लीला में निपुन ॥ ४६ ॥

॥ पावकुलक छंद ॥

पूछी विदुर जुतें सुख सानी,
ध्रुव की मोपै भक्ति कहानी।
सो मै तोसों प्रगट वपानी,
सगरे संतनि के मन माँनी ॥ ४७ ॥

धन अरु सुजस आरवल दानी,
मंगल और पुन्य सरसानी।
स्वर्ग और ध्रुवपद की दाइक,
अरु निर्मल मन करै सुभाइक ॥ ४७ ॥

पाप नास करनी दुख हरनी,
अरु हरि भक्ति देइ भव तरनी।
सुनें याहि जो श्रद्धा करिकें,
ताकें दुःख जाँइ सब जरि कें ॥ ४८ ॥

अरु जो मन में महिमा चाहैं,
ताहि महत्व मिलै सउछाहैं।
जाके सुनें सील गुन आवे,
तीरथ के सम सुद्ध बतावे ॥ ४९ ॥

चाहै तेज आपनों कोई,
जाहि सुनें तें पावै सोई।
नित प्रति याहि प्रीति सों बाचैं,
बिप्रनि में उर में भरि साँचैं ॥ ५० ॥

ध्रुवचरित्र कों साँझ सबारें।
अरु पून्यों कों हित कों धारें।
और अमावस द्वादसि हू कों।
सुनै पढ़ै बिचरै न कहूँ कों ॥ ५१ ॥

ब्यतीपात अरु अवम दिना में।
अर्क सक्रमन दिन अभिरामें।
श्रद्धा करिकें सुने सुनावै।
हरि समीप नहि चित्त डुलावै ॥ ५२ ॥

सो संतुष्ट बिहारै नत्तै।
हरि बिधि और न आवै चित्तै।
हरि अज्ञानहि ज्ञान सिखावै।
अमृत रूप सतपंथ दिखावै ॥ ५३ ॥

जो नर तापै सुरगुन रूरे।
करत अनुग्रह सिद्धि समूरे।
यह मै ध्रुव कौं चरित सुहायौ।
हित करि ताकों विदुर सुनायौ ॥ ५४ ॥

सोरठा

तजि लरिकनि कौं ख्याल, जाइ मात के भवन तें।
जानें त्रिभुवनपाल, लै रिझाइ पद उच्च लिय ॥ ५५ ॥

(पहले मुद्रित 'शृंगारविलास' के पृ० ३१२ के आगे का अंश;
जो बाद में प्राप्त हुआ।)

मध्यमा नायिका लक्षणम्

अरसाने गात अँगिरात उठि आए प्रात,
जोति मुख चंद की प्रगट पतरानी री।
बरि रही अंग अंग बिरह दवागिनि सौ,
अरबिंद बदनी निहारि कतरानी री।
अनमनी बानि पहिचानि पति सौमनाथ,
बिनती करत जब जीभ तुतरानी री।
अनखौहैं नैन सरसौहैं करि सौहैं तन,
मोहन सौ मन सौ बिहसि बतरानी री॥ ५॥

अथ अधमालच्छनम्

करै प्रीति पति अति तऊ तिय न करै हित रंच।
तासौ अधमा कहत है कबिताई के पंच॥ ६॥

यथा

नाहक अनमनी ह्वै ऐंठि हठि बैठि रही,
नीकै करि ही तै जनु प्रीति रीति रितई।
क्यौं हूँ करि काहू कौ कह्यौ न उर आन्यौ जिनि,
और ही तै अपनी कठोरताई जितई।
सौमनाथ याकी गति बरनी न जाति कहूँ,
ऐसी तरुनाई सो अधमता मै बितई।
खोई निसि नेह सरसावत सुजान तऊ,
मृगनैनी नैकु मुसिक्याइकै न चितई॥ ७॥

उत्तमा मध्यमा ए भेद सबै नाइकानि कै जानियै और इनकै दिव्य अदिव्य दिव्यादिव्य भेद करि के उदाहरन बढि जाइ ताते इनके लच्छन कहत हौ।

देवतानि की प्रकृति सब दिव्य तिन्हैं उर आनि।
हैं अदिव्य वे जिन विषैं प्रकृति मानवी मानि॥ ८॥

दिब्यादिब्य तिन्हैं समझि सुर नर प्रकृति समान।
लच्छन क्रम तें बरनिए उदाहरन उनमान ॥ ९ ॥

इंद्रानी दिव्या आदि दै जानियै और अदिव्या मालती को आदि दैकै जानियै और दिव्यादिव्य सीता कौ आदि कै जानियै।

अथ सखीकर्म कथनं

भूषन रचना सीप अरु उपालंभ उर आनि।
पुनि परिहास सु चारि ए कर्म सखी कै जानि ॥ १० ॥

अथ सिंगार करिबो

यथा

कैसरि सौ उवटि न्हवाई चित चाइन सौं
अंबर सँवारि कै सुगंधनि सौं सानी है।
जावक लगायौ रचि इंगुर की आड़ चारु
हार पहिराए को न हेरत हिरानी है।
बैठारी सु लेके प्यारी कंचन की सेज जाकी
बानी पर वारी सोमनाथ वरवानी है।
दूरि तें निहारत ही नैन नइ जात आजु
साँचहूँ सखी ने सु वनाई ठकुरानी है ॥११॥

अथ सिक्षा

हित सौं नित सासु की सासन तें, टरिऐ न सुसीलता को लहिऐ।
गरुवाई के लाइक चंदमुखी, गरुवाई कछू कहिऐ गहिऐ।
ससिनाथ सुजान हे जानति मै, उन सौ न रुखाई रती चहिऐ।
पिय भाँवती बात सदा कहिए, पन सौं मन हाथ लियें रहिऐ ॥ १२ ॥

अथ उपालंभ लच्छनम्

निंदा सहित वचन जो जानौं।
उपालंभ कहि ताहि वखानौं ॥ १३ ॥

उराहनो

यथा

कारी घटा निसि द्यौस रहे दसहूँ दिसि मेंघन की परछाँही।
वेलि मिली द्रुम पुंजनि सौ ससिनाथ मनौ विहरैं गलबाँही।

या समैं छौड़ि बिदेस चले हम जान। तुम्हें पिय चाहत नाहीं ।
मेरौ बुरौ जिनि मानिएं प्यारी बिचारिए हो अपने मन मॉहीं ॥१४॥

या मै यह व्यंग्य कि तुम मे चतुराई नाहिनैं ।
कहा कहिऐ तुम सौ यह उपालभ भयौ ॥

अन्यच्च उपालंभ । यथा

ससिनाथ सुजान सों झूंठी करी अपनी हू कही की तौ लाज करौ ।
समझाइ हजारक बार कही पति के हित के नित काज करौ ।
सु तुम्हैं इतनों चित चेत कहा जु समौ लखि तैसौ समाज करौ ।
बनवारी यहाँ अब रूठि रहे तुम बैठी अटारी में राज करौ ॥१५॥

अथ परिहास कहियै हँसी करिबौ
सखी कौ नाइका सौ परिहास ॥ यथा ॥

भोर भयौ जानि कै सुजान पति संगम तै
आनँद सौ बैठी गुरु मंदिर में आइकै ।
अरसाने अंग रति रंग रतनारे नैन
मरगजे अंबरु[1] रही री छबि छाइकै ।
सौमनाथ कहै त्यौही सबकी बचाइ डीठि
दरसाई आरसी हितू नैं ढिग जाइकै ।
देखि दसनावलि कपोलनि मैं लागी बाल
कुंदकली सखी कै लगाई मुसिक्याइ कै ॥ १६ ॥

अथ नाइक को परिहास नाइका सौं

कंचन को हौद भर्‌यौ कैसरि कै नीर तापै
बसन बिछाए सैत जोन्ह की तरंग मैं ।
सोमनाथ मोहन किनारे तै उसरि बैठे
ठानि परिहास उर हौरी की उमग मै ।
आई मनभाँवती अनंगअंगना सी बनि
ह्वई परयौ चरन सहैलिनि कै संग मैं ।
रंगी सब रंग मै निहारि अंग-अंग प्यारौ
मंद मुसिक्याइकै रँग्यौ री प्रेम रंग मैं ॥१७॥

---

१. वसन ।

अथ नाइका को परिहास नाइक सौं

होरी की रैनि हँसी करिबे कौं तिया पिय सौं हिय मैं ललच्यॉनी।
आइ गए इहिं औसर वे ससिनाथ जू केलि कलानि कै ग्यॉनी।
री कदली दल पॉन सँवारि धरे हरिकै ढिग सुंदरि स्यॉनी।
बीरी सुजान बनाई जबै तब हीं तरुनी मुरि कै मुसिक्यानी ॥१८॥

अथ दूती कर्म द्वै बिधि

कर्म कहतु दूतीन कै द्वै विधि सो पहिचानि।
प्रथम मिलैबौ दुहूँ पुनि बिरह निवेदन जानि ॥१६॥

अथ दोउन कौ मिलाप कराइ दैबौ

यथा

अबलौं न जाको मुख निरख्यौ निसाकर हूँ
को गिनैं दिवाकर की चरचा बिचार मैं।
घेरैं हीं रहति घरिहॉई घर हूँ मैं सखी
त्रासै सासु आँखि औट पलक अबार मैं।
सोमनाथ काहू कौं न नेंकु उर आने बाल
बूड़ि रही अति ही गुमाँन पारावार मैं।
लाई ताहि कान्हर कुमार सुकुमार प्यारे
करिऐ बिहार आजु पावस बहार मैं ॥२०॥

अथ बिरह निवेदन

लच्छन प्रगट ही है।

कौन जानैं कित ह्वै निहारी तुम ता दिना तैं
भूले सुधि बुधि कान्ह घूमि गिरि जात हैं।
औरौ आगि जागै अति सीर उपचारनि सौं
उनको न चैंन मेरे हाथ ठिरि जात हैं।
सोमनाथ धीर न धरत तरफत खरे
जो पै गुरु लोगनि मैं नेकु घिरि जात हैं।
रोवैं बार-बार हित बाढ्यौ बार-बार प्यारी
तेरे द्वार आवैं अनदेखैं फिरि जात हैं ॥२१॥

इति श्रीकविसोमनाथविरचिते सिंगारविलासे सजोगिसिंगारे उत्तमादिनाइका सखीकर्मं दूतीकर्म बर्ननंनाम ससमोल्लास: ॥

अष्टमोल्लास

अथ नाइक निरूपनम्

नाइक त्रिबिधि हिए मै जानौ।
पति उपपति बैसिक पहिचानौ।।२२।

अथ पति को लच्छनम्

बिधिजुत ब्याही नारि सों है जा नर की प्रीति।
पति कहि ताहि कबित्त मै बरनत यौं कबि रीति।।२३।।

यथा

काहे तैं कमल सौ बदन कुँभिलानौं यह,
आँखिन में अँसुवा निरखि अकुलायौ हौं।
सौमनाथ काहू ने कही है कछु बात जातें,
बोलति न बैन सुनिबे कौ ललचायौ हौं।
आवत ही जात की लगी है बेर प्रानप्यारी,
बिरह मरोर तैं घरी न ठहरायौ हौं।
तैरै गोरै अंगनि कै संग सरसैगौ कैसौ,
सुंदर सुरंग चूनरी कौ चीर लायौ हौं।। २४।।

अथ पति के भेद चारि, ते कहत हौं।।

पति कै भेद चारि उर आनौं।
अनुकूल दच्छ सठ धृष्ट सु मानौं।। २५ ।।

अथ अनुकूल लच्छनम्

निज पतिनी सौ प्रीति अति तन मन बचन बनाइ।
परतिय त्यौं न निहारिबौ यह अनुकूल सुभाइ।।२६।।

यथा

वारि वारि डारैं मन मैनका सी कोरि कोरि,
जाके आगै को छबि अनंग घरनी की है।

भूषन बसन दोऊ संग ही सजत वैठैं,
संग ही हरखि यह बानि अरु नीकी है ॥
भाँवती की मूरति अनूप अति सौमनाथ,
नैननि वसाई करि बारि बरुनी की है।
सोवत जगत हूँ मैं रैनि दिन आँनन तैं,
चरचा सुजान कै न आँन तरुनी की है ॥२७॥

अथ दच्छिन नाइक लच्छनम्

बहु नारी सौं नेह सम सो दक्षिन पहिचानि ॥ २८ ॥

यथा

होरी के समाजनि कौं साजि आजु राजत है,
लाल अंग अंगनि मैं आनँद बढ़ाइकैं।
एकै बार तियनि पसारै हाथ पाननि कौ,
आँनन सुजान कौ निहारि ललचाइकैं।
सौमनाथ साधि सुघराई उनि अंतर मै,
चारचौ चंदमुखिन कै माँझ सचु पाइकैं।
बीरनि सौं सुभर जटित लाल हीरनि सौ,
पी ने पानदान धरि दीनै मुसिक्याइकैं ॥ २९ ॥

अथ सठ नाइक लच्छनम्

मुख मीठी बतरानि अति हिऐं कपट की प्रीति।
सठ नाइक तासौं कहैं पंडित सहित प्रतीति ॥ ३० ॥

यथा

अंतरति मानि आए लाल अरसाने लखि,
भामिनी की छातीं छाई छौंह की अँध्यारी है।
डीठि पहिचानि कै सुजान सकुचानै कछु,
सौमनाथ ही मैं तब ठगई बिच्यारी है।
अंतर कपट मुख मीठैं बतराइ कह्यो,
जिय में न भेदु देह देखिबे कौं न्यारी है।
औरनि कौ सबनि तैं प्यारे प्रान चंदमुखी,
तेरी सौंह तू तौ मोहि प्राननि ते प्यारी है ॥ ३१ ॥

अथ धृष्ट नाइक लच्छनम्

बरजत हूँ ढीठ्यौ करे नाइक धृष्ट सु मानि ॥ ३२ ॥

यथा

प्रीति नई नित कीजति है सब सौं छल की बतरानि परी है।
सीखी ढिठाई कहाँ सासिनाथ हमें दिन द्वैक तें जानि परी है।
और कहा कहिए सजनी कठिनाई गरें अति आँनि परी है।
मानत हैं बरज्यौ न कछू अब लालहि कौन सी बानी परी है ॥३३॥

इति पतिभेदा: ॥

अथ उपपति लच्छनम्

पर तिय ही के प्रेम मैं पग्यौ रहै दिन रैंनि।
उपपति सो उर आनिऐं यौं बरनत कबि ऐंनि ॥ ३४ ॥

यथा

फूली बरबेलि सी विराजे तिय मंदिर में,
जाके मुख चंद,सों चप्यौ सौ हिमकर है।
ताहि भरि डीठि न निहारै निसि बासर हूँ,
बाँध्यौ उर अंत मडराइबै कौ कर है।
दुराँ दुरी हमहूँ न जानी ही कहानी यह,
सोमनाथ पाई अब एक अटकर है।
पति कौं न लेस मकरंद को परोसिनि के,
मुख अरविद को गुबिद मधुकर है ॥ ३५ ॥

गद्य—मकरंद शब्द करिके रस जानिए ॥

अथ बैसिक नाइक लच्छनम्

गनिका सों बिहरै जु नर वैसिक सो उर आनि ॥ ३६ ॥

यथा

राजति ही निज द्वार के ऊपर जा मुख की छबि की न रती रति।
यौ निरखी जब तें तब तें नित नैननि लीनी चकोरनि की गति।
ए ससिनाथ सुनों मन दे वित लाज समेति सिधारी सबै मति।
नेंकु न चैनु परे विछुरें चित बारबूध की चितौनि चुभी अति ॥३७॥

उत्तम मध्यम अधम अरु बैसिक त्रिबिधि सुजानि ॥ ३८ ॥

उत्तम मध्यम अधम बैसिक के लच्छनानि ॥

गनिका रुखाई हू करै जो अति पिय तोऊ
करे जो खुसामदि सु उत्तम बखानिए ॥
कोपवती जानि कै लखावै न सनेह रिस,
लहै मन भेदु को जु मध्यम सो जानिए ॥
लाजउ रही न केलि कला भली बुरी बात,
जानतु न नेंकु सो अधम उर आनिए ॥
सोमनाथ कहै सबै लच्छन ए बैसिक के,
कबिता की रीति सों प्रगट पहिचानिए ॥ ३९ ॥

उत्तम बैसिक यथा

बैठि रही रिस नैननि मै भरि बारबधू अति अंग सिंगारि कैं।
बैसिक आइ गयौ तब ही बतरानी न वासौ हँसी न निहारि कैं।
रोस की सूरति कौं पहिचानि कह्यौ न कछू ससिनाथ बिचारि कैं।
लाइची चूरि कपूर मिलाइकै बीरी खवावन लाग्यो सँवारि कैं ॥४०॥

अथ मध्यम बैसिक यथा

दोहा—बारबधू की लखनि गति अनख भरी लखि मित्र।
प्रगट करे नहि हरषि कछु नित के प्रेम चरित्र ॥४१॥

अथ अधम बैसिक यथा

परसि पाइ राखन लगी बारनारि निज नेह।
तऊ न रह्यौ कठोर मन मीत गयौ तजि गेह ॥४२॥

अथ रूपमानी नाइक लच्छनम्

सुंदरता कौ मान मन जा नर के अति होइ।
ताहि रूपमानी कहत सकल सयानें लोइ ॥४३।

यथा

आँवदनीं सुनि चंदमुखी बनि कै निजु को रति तैं जितवैं री।
बाँधि कतार दुहूँ दिसि कौं चढ़ि मंदिर लाज सबै रितवैं री।
औ ससिनाथ बिना निरखै निसिबासर बावरी ह्वै बितवैं री ॥
रूप को मान सुजान गहें उन त्यौं न तऊ हित कै चितवैं री ॥४४॥

यथ अनभिज्ञ नाइक लच्छनम्

सूरख कौं अनभिज्ञ सब कहत सुकबि पहिचानि ॥४५॥

यथा

चाइ सौं कंचन के परजंक पै आइकै बैठि गई सुख सानी ।
औ ससिनाथ सुनौ उर तैं अँचरा पट टारि हरैं अँगिरॉनी ।
मैं दुरि कै निरखी तरुनी मुसिक्याइ जऊ रति कौं ललचानी ।
पै न तऊ तिय कै मन की गति प्रीतम नैं सु कछू पहिचानी ॥४६॥

अथ सखा चतुर्बिध बर्ननं

पीठमर्द चेटक बहुरि बिट सु बिदूषक और ।
चौबिधि नाइक के सखा बरनत कबि सिरमौर ॥४७॥

अथ पीठमर्द लच्छनम्

रूठी तियहि मनावई पीठमर्द सौ जानि ॥४८॥

यथा

फूलीं बनबैलीं अलबेली ह्वै द्रुमनि लागीं,
भूमि भूमि धुरवा धरनि परसत हैं ।
घूमि घूमि बोलैं चहुँ ओर मुरवा ए मंजु,
सौमनाथ सुनत बिनोद सरसत हैं ।
ऐसै समैं मान को करति ब्रजमंडल मैं
तजिए अयान ह्वाँ सुजान तरसत हैं ।
चली चंदबदनी सखा के सुनि बैन जाकी
मंद मुसिक्याँनि मैं तैं फूल बरसत हैं ॥ ४९ ॥

अथ चेटक लच्छनम्

मिलै देइ दंपतिनि कौ सौ चेटक पहिचानि ॥ ५० ॥

यथा

स्याम के सखा की चतुराई मै निहारी आजु,
काहू पै वनै न ऐसौ वानिक बनाइबौ ।
सौमनाथ कहै कीनैं दोऊ बस बातनि मैं,
वेर-बेर समयौ बसंत कौ लखाइबौ ।

दंपति कौं कुंज में मिलाप करवाइ कह्यौ,
फेरि कर जोरि यो सनेह अधिकाइवौ।
बैठौ परजंक पै गुविंद प्रानप्यारी सँग,
मेरौ यही काजु जौ विलोकैं सुख पाइवौ ॥ ५१ ॥

अथ बिट सखा कौ लच्छनम्

काम कला में अति चतुर, विट ताकौं उर आनि ॥५२॥

यथा

काहे कौं गुलाव गारि केसरि लगाई अंग,
संग मलयागिरि के नेकु न सुहाइगी।
फूलनि की पाँखुरी बिछाए तें न ह्वै है कछु,
सुमति सखीन की विलोकैं अकुलाइगी।
सौमनाथ प्यारे सौं न कीजै अभिमान प्यारी,
ऐसे उपचार विथा औरौ अधिकाइगी।
वैद ब्रजचंद कौ सुरूप रस चाखि नैंकु,
अंतर के जुर की जरनि मिटि जाइगी ॥ ५३ ॥

अथ बिदूषक लच्छनम्

मसखरताई में निपुन ताहि विदूपक मानि ॥ ५४ ॥

यथा

केलि की कुंज में कुंजविहारी रमैं तिय संग हिऐं सचु पाइकैं।
ए ससिनाथ जू ताही समै उठि बोल्यो सखा छल वैन वनाइकैं।
आइऐ आइऐ नंद नरेस सुनी यह स्याम सुजान सुभाइकैं।
आइ गए हरि भीतर तैं सु हस्यौ तव पौरि के वाहिर जाइकैं ॥ ५५ ॥

अथ दरसन कथनम्

चौबिधि दरसन सकल कवि बरनत हैं सुख मानि।
श्रवण चित्र अरु सुपन पुनि साक्षात उर आनि ॥ ५६ ॥

अथ श्रवण दरसन यथा

बन की मृगी लौं न पत्याती तव दूरि हू तें,
वेर वेर अब तौ अली सौं इठलाति है।
औरनि की नजरि बचाइ चित चाइनि सौं,
मेरे ढिंग आइ ललकी सी बतराति है।

सोमनाथ रूप रस प्यासी अवरेखियति,
अँखियाँ अन्यारी छबि बरनी न जाति है।
सुंदर सुजान दिन द्वै तें चारु चंदमुखी,
रावरे की चरचा सुने तें मुसिक्याति है ॥ ५७ ॥

चित्र दरसनं यथा

फूल की माल बनावति ही सखियानि के मंडल में अनुरागी।
त्यौं ससिनाथ सुजान को चित्र अली दरसाई महासुख पागी।
औरै भई छिन माँझ भट्ट अँग अंग अंगन कला सुभ जागी।
नैननि नैह नयौ झलक्यो अरबिंदमुखी अति कंपन लागी ॥ ५८ ॥

अथ स्वप्न दरसनं यथा

पौढ़ि रही आजु मनमोहन कौ ध्यान धरि,
नींद बस रंचक निभूल अंग ह्वै गए।
सपने में आए री निहारे पिय सोमनाथ,
सुख सरसाए औ मनोज दुख नै गए।
पाइनि की धूरि में लगाई पलकनि पौंछि,
बैन सुनि श्रवन पियूष सौं अचै गए।
जौ लौं उर अंक भरि मिलनो बिचारयौ तौ लौं,
खुलि गए नैन बैन जानहु कितै गए ॥ ५९ ॥

अथ साक्षात दरसनं इनके लच्छन प्रगट ही है।

खेलति ही आजु सखियानि मै नवेली जाकी,
मंदिर में सहज सुगंध सरसाइ गई।
सोमनाथ चंद से बदन की जुन्हैया पेखि,
चकई ज्यौं सौतिन की पाँति मुरझाइ गई।
आए लाल ऐसे मैं बिलोकि अकुलानी बाल,
साहस भुलाइ संक सर भैं समाइ गई।
आँखि भरि आई गिरि गई सु ढिठाई छिपि,
गई अरुनाई पियराई मुख छाइ गई ॥ ६० ॥

अथ दृष्टानुराग यथा लच्छन प्रगट ही है।

आइ गयौ औसर हीं अचकाँ कन्हाई तहाँ,
सजैं फूलमाल मंजु मोर पखियानि मैं।

अव हों गई ही पनिघट वंसीवट आछे,
मेरे आगे वोलती हसति सखियानि मैं।
सोमनाथ वानिक विलोकि छवि छाक छकी
दीनी ऐंचि गाँसी पंचवान वखियानि मैं।
गागरि गिराई विसराई कुल कानि ग्वालि,
लाई भरि मोहन की नेह अँखियानि मैं॥ ६१॥

इति श्री कवि सोमनाथविरचिते सिंगारविलासे संजोग सिंगारे नाइक अरु सखा अरु दरसन अरु दृष्टानुराग वर्नंनं नाम अष्टमोल्लासः ॥

अथ नवम उल्लास

भाव को लच्छन उतपत्ति पहिलैं कहि आए हैं अव हाव को लच्छन कहत हैं।

हाव लच्छर्नं

होति सँजोग सिंगार मैं नारिनि के तन आइ।
चेष्टा जे वहु भाइ की तेई हाव वताइ॥ ६२॥

हेला, लीला, विहृत अरु विभ्रम ललित विलास।
मद मोट्टाइत, कुट्टमित पुनि विव्वोक प्रकास॥ ६३॥

वोधक अरु विच्छित्ति पुनि किलकिंचित पहिचानि।
मुग्ध वहुरि इक विरह मै तपन हाव कौं जानि॥ ६४॥

अथ हेला हाव लच्छनम्

जहाँ प्रेम सरसानि तै विसरै लाज अनूप।
वरनत कवि कोविद सवै यौं हेला को रूप॥ ६५॥

यथा

वैठी हुती आजु सखियानि की सभा में वाल,
छाइ रही जाकी छवि वसन सुरंग मैं।
वाँसुरी की भनक अचानक परी त्यौं काँन,
लीन भए प्रान अति आनँद उमंग मैं।
भूली गुरु लाज के समाज कहि सोमनाथ,
फैली पंचसर की दुहाई अंग अंग मैं।
प्यारी केलि कुंज मैं गुविंद के सनेह सनी,
पहुँची अकेली अलि पुंजनि के संग मैं॥ ६६॥

अथ लीला हाव लच्छनम्

पिय की क्रिया करै जु तिय भूषन बसन बनाइ।
ताकों लीला हाव कहि बरनत हैं कबिराइ ॥ ६७ ॥

यथा

बैठे हुतै रति मंदिर मै रति सी तिय काम से लाल कन्हाई।
आपुस में पलटै पट भूषन बाढ़ी तहाँ ससिनाथ निकाई।
बाम सुभाइ किए सब स्याम औ कीनी सुजान सौं बाल ढिठाई।
चाँपि कपोल दुहू कर सौं हरि कौ मुख चूमि चितै मुसिक्याई ॥ ६८ ॥

अन्यच्च

मोर के पखौवनि कौ माँथे पै मुकुट राख्यौ,
जाकी छबि कौन के हिए कौं न हरति है।
जरकसी काछनी कछी री चित चाइनि सौं,
तैसी गुंजमाल औरै औप उघरति है।
सोमनाथ चटकीलो पीत पट बाँध्यो कटि,
मुरली बजाइ मंद कौतिक करति है।
कान्ह के समान बनि प्यारी रति मंदिर में,
आपनौं ही चित्र चाहि अंक मे भरति है ॥ ६९ ॥

(टि०)—रसिक प्रिया के मत सो यहू ठीक है।

अथ विहृति हाव लच्छनं

जहाँ बोलिबे के समै लाज न बोलन देइ।
विहृति हाव सो जनिए सब ढिठई हरि लेइ ॥ ७० ॥

यथा

आए अरसात अँगिरात प्रात मोहन जू,
मोहनी के मंदिर मे मोद मद सों मढ़े।
सेद जल कन सोहैं आनन अमंद पर,
मकरंद बिंदु मनौ अरबिंद में बढ़े।
ऐसे स्याम सुंदर सुजान कौ सुरूप लखि,
सोमनाथ त्योर तरुनी के तबहीं चढ़े।
बात कहिवे को ओठ फरकै रिसाइ जऊ,
लाजनि ते पै न कछू बैन मुख तैं कढ़े ॥ ७१ ॥

अथ अन्यच्च

आजु अचानक भेंट भई भटू साँवरे सौ अभिलाष घनेरैं।
माथें किरीट हिऐं बनमाल लिए लकुटी ठठुक्यौ मगु घेरैं।
प्रान अमोल बिकाइ गए ससिनाथ अनूपम सो छबि हेरैं।
छाइ गई अँग अंगनि लाज कही न गई जु हुती मन मेरैं॥ ७२॥

अथ विभ्रम हाव लच्छनम्

नेह अधिकई तैं जहाँ उलटे करियत काज।
ताकौं बिभ्रभ हाव कहि बरनत हैं कविराज॥ ७३॥

यथा

लागी यह ज्यौं ही दिया बारन सु त्यौं ही आयो
अचकाँ कन्हाई लियैं हाथ में बँसुरिया।
रंचक विलोकि बिनु मोल ही बिकाइ गई,
मानो पढ़ि डारी मैन मंत्रनि की पुरिया।
सौमनाथ औरै जोति जागी टक लागी ठाढ़ी,
डुलै न डुलाएं गुरु लाज तैं बिछुरिया।
राती प्रेम रंग रूप रस न अघाती बाल,
बाती गई बिसरि बरावति अँगुरिया॥ ७४॥

अथ ललित हाव लच्छनम्

सुंदरता अँग अंग की बोलनि चलनि सुवेष।
ललित हाव सौ जानिए बरनत बुद्धि बिसेष॥ ७५॥

यथा

सजि कै सिंगार रति मंदिर सिधारी त्यौ ही,
अंगनि ते महँक्यौ सुगंध गति न्यारी कौ।
सटकारै बारनि के भार लंक लचकति,
औदकि परी है सुनि बोल धुनि भारी कौ।
खंजन तैं चपल छबीले दृग सौमनाथ,
तिरछैं निहारि मन मोहति बिहारी कौ।
मंद मंद चलनि गयंदनि कै रद्द करै,
मंद करै चंदहि अमंद मुख प्यारी कौ॥ ७६॥

अन्यच्च

साँचै भरि काढ़ी तिहूँ पुर की लुनाई लूटि,
औपी चारु चंद सौ गुराई गहराति है।
सहज सुबास आसपास मँडरात भौर,
पाउ दैत लकलकी लंक लहराति है।
सौमनाथ बानी बिनु बरनि सकै को छबि,
रतिपतिहू की मति हेरि हहराति है।
भावती कै अंगनि पै जितहीं परति डीठि,
तितहीं घरयाल की घरी लौं ठहराति है॥ ७७॥

अथ बिलास हाव लच्छनम्

बोलनि चलनि चितौनी में जहँ बिलास सुबिलास॥ ७८॥

यथा

बर चंपक बेलि सी चंदमुखी,
सब अंग सँवारि सिंगार कियौ।
पहुँची रति केलि के मंदिर मे,
ससिनाथ बिनोद सों छाइ हियौ।
सखियान कौं पान दिए मुरिकै,
इहि बानि सौं लाल लुभाइ लियौ।
ललचाइ सुजान की ओर चितै,
मुसिक्याइ के सेज पै पाइ दियौ॥ ७९॥

अन्यच्च

उमगी परति चारु चीर पचतौरिया मैं,
गुदकारे गोल अंग कुंदन गुराई की।
सुंदर कपोलनि लगनि अलकनि छोर,
चिलकनि दसन हसनि मधुराई की।
जरकसी कंचुकी में मौतिन की माल तैसी,
सोमनाथ बंदन की बिंदु अतुराई की।
अंजन समेति तेरै खंजन से नैननि की,
चुभि रही चित्त मै चितौनि चतुराई की॥८०॥

अथ मद हाव लच्छनम्

जहाँ प्रेम सरसानि तैं गर्ब बढ़े उर जाइ।
सो मद हाव बखानिऐं अति मन मैं सुख पाइ॥ ८१॥

यथा

अलबेली बानि के दूकूल पहिरे हे तामैं,
जोबन के रंग की तरंग तन न्यारी सी।
डगमगी डग दे चली पै ठठुकी है फेरि,
बेर बेर बिहसि प्रकासै उजियारी सी।
सोमनाथ भावै सो बखानति सखी सों बाल,
संक उर अंतर तैं बिवस बिसारी सी।
प्रीतम सुजान को निहारति गुमान भरी,
ठाढ़ो पान खाति भुकि जाति मतवारी सी॥ ८२॥

अथ मोट्टाइति हाव लच्छनम्

जहँ प्रीतम के दरस तैं उपजे सातुक भाव।
ताहि दुरावै जुक्ति सौं सो मोट्टाइत हाव॥ ८३॥

यथा

कंचन कौ थार मुकताहल कतार धरि,
रोचन सँवारि लियो कर में बनाइ के।
सखिन के संग भरी जोबन उमंग बाल,
गई गौरि पूजन हिए में सुखु पाइ के।
सोमनाथ डीठि परे अचकाँ सुजान तहीं,
भयौ तन तंभ यों सु लीनहु छिपाइ के।
हारि परी अति हीं न आगे कौं परतु पाइ,
यों कहि सखी सौं मुसिक्यानी सिरु नाइकै॥८४॥

अथ कुट्टमित हाव लच्छनम्

आलिंगन मरदन करत तिय पिय सौं भहराइ।
मन मैं सुखु पावै महा सौ कुट्टमित बताइ॥ ८५॥

यथा

लीनी जब अंक में लपकि परजंक पर
रंक जिमि पाई जानि सुख की बिसाति है।

भुकि भहरानी अकुलानी अति छूटिबे कौं,
भूठें मुरभानी पै हिए में ललचाति है।
सौमनाथ प्रीतम कियौ ज्यौ मन भायौ तब,
आली मोपै सो गति बखानी नहीं जाति है।
तिनहीं गुबिंदजू सौं आनंद उमंग भरी,
बैठी मुसिक्याति हित बातैं बतराति है॥ ८६॥

अथ बिब्बोक लच्छनम्

प्रीतम के हित सों महा तन मन राख्यौ सानि।
छूठें करै अनादरहि सो बिब्बोक बखानि॥ ८७॥

यथा

केलि की कुंज में कंजमुखी निसि ठाढ़ी हुती द्रुम की परछाहीं।
पीछे तें आइ कै स्याम सुजान गही बहियाँ हित सौं अचकाहीं।
हौ ससिनाथ सनेहु हियैं कहिकै यों रुखाई अलीक निबाहीं।
कौन हौ रावरे आए कहाँ इत मै तौ तुम्हें पहचानति नाहीं॥ ८८॥

अथ बोधक हाव लच्छनम्

चाँदनी रात्रि में

मन कें भावहि बुद्धि सौं जहाँ लेत पहिचानि।
बोधक हाव कहत सबै ताहि सुकबि सुख मानि॥ ८९॥

यथा

बैठी हुती गुरु लोगनि में अरबिंदमुखी अति हीं सुख छाई।
आइ तहाँ ससिनाथ सुजान चितै चतुराई नई चित ठाई।
दंतन में गहि बिब रसाल औ चंपकमाल गरें लपटाई।
डीठि बचाइकै औरनि की सु हरैं तिय-सी करिके मुसिक्याई॥९०॥

विंवा करि अधर को पान करिबौ और चंपक माल करि देह को आलिंगन वतायो सु नाइका नें जानि कै सी करि के तद्रूप करि दिखायौ।

अथ बिच्छित्ति हाव कौ लच्छनम्

थोरेऊ भूषन जहाँ अति सुंदरता देत।
ताहि हाव बिच्छित्त कहि बरनत सुकबि सुचेत॥ ९१॥

यथा

काहे कौं सजति जरतारी कौ रुचिर चीर,
जामैं चहूँ ओर मंजु मुकता सँवारे हैं।
काहे कौं जवाहिर के भूषन मँगाए पुंज,
अंजन बिना हूँ दृग कंज कजरारे हैं।
सहज सुबास ही रहत मडरानैं अलि,
सोमनाथ काहे कौ सुगंध ढिग धारे हैं।
तेरी आजु बंदन की बिंदु पर प्रानप्यारी,
औरन कै सिगरे सिँगार वारि डारे हैं ॥९२॥

॥ नाइक कौ बचन नाइका सों ॥

अथ किलकिंचित हाव लच्छनम्

हर्ष रोस भय हास अरु जहँ उपजें इक बार।
सो किलकिंचित जानिऐ बरनत बुद्धि उदार ॥ ९३ ॥

यथा

गई चंदबदनी अनंद भरी केलिभौन,
जाकी अंग जोति चाँदनी तें अधिकानी री।
फूलि उठे बालम के लोचन चकोर चाहि,
लीनी परजंक पे बुलाइ सुखदानी री।
कीनो मनभायौ भरि अंक पिय सोमनाथ,
करत अधर पान फेरि अकुलानी री।
चौंकी थहरानी भरि आँखि अनखानी बाल,
मंद मुसिक्यानी लाल कंठ लपटानी री ॥ ९४ ॥

अथ तपन हाव लच्छन

प्रीतम के बिछुरै जहाँ अंग तपनि जौ होइ।
तपन हाव तासौ कहैं कबि कोबिद सुख भोइ ॥ ९५ ॥

यथा

घोरत घुमड़ि घन सघन तड़ित संग,
त्रिबिध समीर बर तीर से सनसनात।
सोमनाथ तैसे बन बोलत बिहंग पुंज,
मत्त भए भँवर कदंबनि भनभनात।

कछु न सुहात अकुलात निसि दिन जात,
बूँद परें गात ताते तए से छनछनात।
कैसे ब्रजनाथ विनु पावस विते ऐ जहाँ जिल्ली
सों चहूँघां गन झिल्ली के झनझनात ॥ ९६ ॥

अथ मुग्ध हाव लच्छनम्

क्रिया वचन मै मुग्धता तिया करै सुख पाइ।
मुग्ध हाव तासों कहै कवि कोविद समझाइ ॥ ९७ ॥

केलि करी सुख सों निसि मे उठि बैठी सवारहीं वाल सभागी।
चारु कपोलनि मे झलकी दुति कान के मानिक की रँग रागी।
आरसी हेरत हीं ससिनाथ अयानकला उर अंतर जागी।
जानि के पीक की लीक लगी सु गुलाव के नीर सों धोवन लागी ॥१०९॥
॥ इति संयोग सिंगार रस ॥

अथ विप्रलंभ सिंगार रस लच्छनम्

प्रीतम के बिछुरन विषै जो रस उपजतु आइ।
विप्रलंभ सिंगार सो कहत सकल कविराइ ॥ ९९ ॥

यथा

वादर उतंग अंग डोलत उमंग भरे,
वगुल कतार दंत दीरघ सँवारे हैं।
चरखी तड़ित चमकनि औ गरज गुंज,
वरसत नीर मिस मद के पनारे हैं।
सोमनाथ प्यारे नंदनंद को विरह जानि,
व्रज पै अनंग नैं हजारक हकारे हैं।
ए न घन भारे मै निहारि उर धारे अरी,
कारे रंगवारे ए मतंग मतवारे हैं ॥ १०० ॥

अन्यच्च

कारे कारे देखि री डरावनें घुमड़ि ए तो,
भूमि भू[illegible] अंवर तें भूमि परसत हैं।
[illegible] दुखदाइनि इतै पै वीजु,
[illegible]नि हिएँ सूल सरसत हैं।

सोमनाथ प्यारे के बियोग तें बकति बाल,
जों जों जुगनून के समूह दरसत हैं।
जानि मनभावन बिना ए घन सावन के,
आए तन तावन अँगार बरसत हैं॥ १०१॥

विप्रलंभ के भेद

बिप्रलंभ को भेदु पुनि सुनि पूरबानुराग।
है ताही मे दस दसा बरनत सुकबि सभाग॥ १०२॥

अथ पूर्वानुराग लच्छनम्

प्रीतम निरखत सुख बढ़ै बिनु देखे दुखु होइ।
है पूरबानुराग सो भाषत पंडित लोइ॥ १०३॥

यथा

दूरि करि चंदन कपूर मृगमद चूरि,
फूले गुल चाँदनी के फूल बगराइ दै।
जारति सरीरहि समीर सीरी सीरी यह,
बेगि दै झरोखनि के जाल मुदवाइ दै।
कछु न सुहातु अकुलातु मन सोमनाथ,
निरदई मदन की तपनि बुझाइ दै।
और न उपाइ सुख पाइबे को आली मोहि,
सुंदर सुजान प्रानप्यारे सों मिलाइ दै॥ १०४॥

अथ दश दशा नाम कथनम्

अभिलाष, चिंता, गुनकथन उदबेग पुनि पहिचानि।
सुनि सुमृति ब्याधि प्रलाप अरु उनमाद जड़ता जानि॥ १०५॥

अथ अभिलाष लच्छनम्

मीत मिलन की चाह जो सो अभिलाष बखानि॥ १०६॥

यथा

बेर बेर पोंछि अँचरा सों चित चाइन के,
पाइन की धूरि पलकनि पै लगाऊँगी।
सोमनाथ लाइची कपूर धरि पाननि में,
आली इन हाथनि सौं हित कै खवाऊँगी।

देखि देखि मुख सुख नैननि भरौंगी और,
उनकी सुनौंगी पीर अपनी सुनाऊँगी।
बिरह बहाऊँगी हिए सौं हँसि लाऊँगी री,
जौ पै नेकु हरि कौ इकौसौ फेरि पाऊँगी ॥१०७॥

अन्यच्च

गाइहौं मंगलचार घनैं लखि आवत ही तन ताप बुझाइहौं।
झाँइहौं पाइ गुलाबनि सौं जरवाफ के पाँवड़े चारु बिछाइहौं।
छाइहौं मंदिर बादला सों ससिनाथ औ फूलनि के झर लाइहौं।
लाइहौं सौतिन के उर साल जबै हँसि लालहि कंठ लगाइहौं ॥१०८॥

अथ चिंता लच्छनम्

पिय मिलिबे के जतन को सोचु सु चिंता जानि ॥ १०६ ॥

यथा

सासु के त्रासन साँस भरौं मन ही मन माँझ मसोसनि मारिबौ।
घेरैं रहै निसि बासर नंद टरै छिनहूँ न कितौ पचि हारिबौ।
वै ससिनाथ हैं बेपरवाहि पहार हमैं निज पौरि पधारिबौ।
कैसे बने कहि मेरी सखी अब मोहन कौ मुख चंद निहारिबौ ॥११०॥

अथ गुनकथन लच्छनम्

पिय गुन बरनन गुनकथन बरनत सकल सुजान।
गुन कौ कहिबौ गुनकथन करि उस माँझ प्रमान ॥१११॥

यथा

नाइक है निसि कौ तौ कहा औ कहा भयौ जौ पै सुरूप निधान है।
औ सुखदाई चकोरनि कौ जौ कहा भयौ सीतलताई निदान है।
है ससिनाथ पियूष निवास कहा भयो जौ पै प्रकास अमान है।
तौ पै कहा यह चंद सखी ब्रजचंद जू के मुख चंद समान है ॥११२॥

अन्यच्च

तौ न कछु उनको सुहातौ छिन एक जौ न,
एकौ वेर मोहि भरि नैन दरसत है।
सोमनाथ चारु मुखचंद मे मिठास भरे,
छेउ पाए बचन पियूष बरसत है।

एकै गति मति आली एकै परजंक पर,
बैठे सब रैनिहूँ न नैंकु अरसत हैं।
जौं हौं अनखौंहीं नैंकु भौंहैं करती तौ आपु
आइ बिलखौंहैं प्यारे पाइ परसत हैं ॥११३॥

अथ उद्वेग लच्छनम्

होहिं सुखद हूँ दुखद जब पिय वियोग में आइ।
सो उद्वेग दसा समझि बरनत हैं कविराइ॥ ११४॥

यथा

सीतल बयारि तरवारि सी वहति तैसी,
लहकनि वेलिनि कीं सूल सरसन लागीं।
धरकति छाती घोर घन की गरज सुनि,
दामिनि की दमक दँवाँ सी दरसन लागीं।
सोमनाथ इते पै करतु कमनेती काम
कौन विधि जीवी री विपति परसन लागीं।
जेई पिय संग बरसति हीं पियूष धार,
तेई अब घटा विषधार बरसन लागीं ॥११५॥

अथ स्मृति लच्छनम्

प्रीतम सुमिरन सुमृति कहि बरनत सकल सुजान॥ ११६॥

यथा

सुंदर वदन सुघराई को सदन लखि,
वारिए मदन वाकी छाँह जितहीं रहै।
सोमनाथ मोहैं दरसोहैं सरसोहैं नैन
चैन बरसौहैं दुति दूनी तितहीं रहै।
मंजुल मुकुट कटि तट पीत पट भेख,
धारे बनसी बट निकट नितहीं रहै।
जा छिन तें हेरी हरि मूरति अनेरी आली,
ता छिन तें एरी मति मेरी वितहीं रहै ॥११७॥

अन्यच्च

सखिनि के संग मे अनंग रस भीनी जापै,
झूमरि सी परति अनंत उपमानि की।

चूनरी सुरंग दरदावन किनारी वारी,
जरतारी कंचुकी अमंद सुखदानि की।
सोमनाथ कही न बनति धुनि किंकनी की,
घुँघरू की घनक छनक बछियानि की।
चुभि रही चित में सु चंदवदनी की छवि,
आवनि गयंद गति मंद मुसिक्यानि की ॥११८॥

अथ व्याधि दसा लच्छनम्

जहँ वियोग तैं छीनता तन की सो कहि व्याधि ॥

यथा

सोइबे की सौंह सी लई है निसि द्यौस अब,
औरै उर अंतर मैं पीर सरसानी सी।
वेर-वेर वैठति उठति परजंक पर,
सौमनाथ कहे बोले बैन बिलखानी सी।
कही न बनति गति चंदवदनी की कान्ह,
रावरी कहानी नेकु होति सुखदानी सी।
भूख विसरानी मुख जोति पियरानी कछू,
देह दुबरानी सी रहति मुरझानी सी ॥ ११९ ॥

अथ प्रलाप लच्छनम्

बचन अनर्थ प्रलाप सौ सुनत हियौ अकुलाइ।
प्रीतम कै अति विरह तैं यह गति होति सुभाइ ॥ १२० ॥

यथा

कौंन उपजी है उर अंतर उपाधि नई,
संक गुरुजन की समेटि मेटि नँखियाँ।
भूली भूख प्यास सुख सोइबो सहित आली,
चढ़ी जाति दीरघ उसासनि सों वखियाँ।
हाइ क्यों निहारे मैं बिहारी कहि सौमनाथ,
एकौ मन आनी न सिखाइ हारीं सखियाँ।
वरि जाइ देह तौ निवरि जाउँ मेरी भटू,
जरि जाउ नेह री पजरि जाउ अँखियाँ ॥१२१॥

अथ उन्माद लच्छनम्

अति प्रीतम को विरह जव होइ महा दुखदानि।
वृथा करै करतूति सव सो उन्माद वखानि ॥ १२२ ॥

यथा

राधिका की दसा आजु वनति विलोकत हीं,
कही न वनति मोपै सुमति विसाल सौं।
कहूँ डारी मटुकी अनूप भुज टाड कहूँ,
कहूँ डारै तोरि तोरि मोती कंठमाल सौं।
सोमनाथ पूँछति तमाल तरु तालनि कौं,
हा हा कहूँ भई भेंट तुम्हैं नंदलाल सौं।
पट की अटक लोक घट की विसारि सुधि,
भटकी फिरति आँखें अटकीं गुपाल सौं ॥१२३॥

अथ जडता लच्छनम्

जहाँ चेष्टा रहित तनु जडता सो पहिचानि।
अति प्रीतम को विरह जव होइ महा दुखदानि ॥१२४॥

यथा

लूटि लुनाई तिहूँ पुर की विधि जा अँग अंगनि माझ भरी सी।
हास बिलासनि मे निसि द्यौस इती जिन वैस वितीत करी सी।
ए ससिनाथ सुजान विना लखि ता तिय की गति हौंव जरी सी।
वोलति है न चितौति परी परजंक में पाहन की पुतरी सी ॥१२५॥

इति विप्रलंभ सिंगार ॥

अथ हास्य रस वर्णनं

है बिभाव सुविरूपता अरु हँसिवौ अनुभाव।
आनँद संचारी समझि सुख उर में उपजाव ॥ १२६ ॥

हास्य रस लच्छनम्

लखि सुनि नृत्य कवित्त मे होतु व्यंगि जव हास।
इनतैं ताकौं हास रस कहियतु है सविलास ॥ १२७ ॥

यथा

जानि के आवंदनी बर की चित चाइनि सों तित हीं करिकै रुख।
ठाढ़ी भई मिलि कै तिय गाँउ की नाथ वरात को देखन कौं सुख ॥

वैल पै नांगे भुजंग के भूषन भच्छत भंग बिसारित हैं दुख।
ऐसैं निहारत हीं हर को हहराइ हँसी सबै अंचल दै मुख ॥१२८॥

हर और देखनवारी स्त्री आलंबन विभाव और महादेव को सब बनाउ उद्दीपन विभाव हँसिबो सो अनुभाव और हर्ष संचारी भाव इनते हास व्यंगि तातैं हास्य रस भयो इति हास्य रस।

अथ करुन रस बर्ननं

बिपति निरखिबौ हितू पै सो बिभाव उर आनि।
रुदन जानि अनुभाव पुनि दुख संचारी जानि ॥१२९॥

करुन रस लच्छनम्

इनतै कबितरु नृत्य मैं व्यंगि होइ जब सोक।
करुना रस तासौ कहैं सकल सु कवि रस ओक ॥१३०॥

यथा

काम की देह सरोस हियै हर लोचन ज्वाल विसाल सौ दागी।
त्यों रति की उत ही परी डीठि सु अंगनि दुक्ख दवागिनि जागी॥
हाइ कहा करों ए ससिनाथ रची बिधि मो सी न और अभागी।
मेटि सिँगारनि बार बिखेरि पुकारि वुरै अति रोवन लागी ॥१३१॥

काम औरु रति आलंबन बिभाव और काम को जरिबो उद्दीपन बिभाव और रति को रोइबो अनुभाव अरु दुख संचारी भाव इनते करुन रस। इति करुण रस॥

अथ रुद्र रस वर्णनं

क्रूर बचन सु बिभाव है अधर फरक अनुभाव।
चंचलता अभिमान है संचारी सु बताव ॥१३२॥

रुद्र रस को लच्छनम्

इनते कबितरु नृत्य मै क्रोध ब्यंगि ठहराइ।
ताहि रुद्र रस सकल कबि बरनत हैं सुख पाइ ॥१३३॥

यथा

ग्वालनि पै कुंजर तुरंग लुटवाँऊ और,
वंदि मैं तै बीर पितु मात कौ छुटाऊँ मैं।

फोरि डारौं ठाकुर सौ मंदिर अखंड वड़े,
ठौर ठौर गाइनि के खरिक वनाऊँ मैं।
सौमनाथ वेर-वेर भृकुटी चढ़ाए कान्ह
कहै वल जू सौ तुम्हें मन की सुनाऊँ मैं।
तौ न नंदनंद जु न आजु मथुरा मैं जाइ
कंस कौ निपट निरवंस करि आऊँ मैं ॥१३४॥

कान्ह और कंस आलंवन विभाव और माता पिता को वदि परिवौ और कंस ने पूतना सकटासुर आदि दैकै उतपात करे ते उद्दीपन विभाव और भृकुटी चढ़ाइवौ कान्ह को सो अनुभाव और गर्व सचारी भाव इनतें रुद्ररस।

अथ बीर रस बर्ननम्

चारि भाँति के वीरन के न्यारे न्यारे विभावादिक कहत है।
युद्धवीर को विभाव। शत्रु सेन को वताव ॥१३५॥

दोहा

अरुनाई मुख पै लसै उर में हरप अनूप।
सव वीरन के साथ मे ए अनुभाव सुरूप ॥१३६॥
अति अभिमानरु उग्रता ए संचारी जानि।
इनतें होइ जहाँ रस व्यंगि सु वीर वखानि ॥१३७॥

यथा

कहा रन मग्ग मे सोर मंच्यौ कथा वेरि कै दीन जन चहूँघा कौ।
डारि हथियार अव सूर सव संग लै वेगि दैत्य मुख फेरि हाँकौ।
वान अभिमन्यु को जगत जानै अज्यौ कहतु समझाइ कै सुनो राँकौ।
जाउ रे भाजि रे जाउ आयौ मु हौ पूत पारत्थ को वीर वाँकौ ॥१३८॥

अभिमन्यु और सेना के लोग आलवन विभाव और सोर उद्दीपन और वचन अनुभाव और गर्व सचारी भाव इनतै उत्साह व्यग तातैं वीर रस भयो। इति ॥

अथ युद्धवीर अरु रुद्र रस को भेद

जहँ समता की सुधि रहै युद्धवीर सौ जानि।
कहत बात समझै नही ताहि रुद्र रस मानि ॥१३९॥

अथ दानवीर बर्ननम्

गंगादिक तीरथ बहुरि पात्र सु जानि बिभाव।
अनुभावादिक प्रथम के नीकै समझि गनाव ॥१४०॥

अरुनाई मुख पै इत्यादि।

यथा

आयौ एक भारथ में बीर धनु बान लिए,
पूछी कान्ह कहौ को हौ नाम समझाइ के।
सोमनाथ बोल्यो सो रतन जच्छ हौ मैं आजु
हारैगो जु ताकौ तव देहुँगौ जिताइ कै।
करिकै परिच्छा तापै माँथो हसि माँग्यो आपु,
सुनि ताके मुख पै ललाई भई आइ कै।
फूले अंग अंग लखि जाचक पवित्र नर,
दीनों सीस खड्ग सौं उतारि मुसिक्याइ कै ॥१४१॥

हरि जाचक औौर रतन जक्ष आलंबन बिभाव और जाचक को पवित्र निहारिबौ वाकौ माँगिबौ उद्दीपन बिभाव मुख पै अरुनाई सीस देवौ अनुभाव और हर्ष संचारी भाव तातें उत्साह व्यंगि तातें बीर रस इति।

अथ दयाबीर बर्ननम्

दुखी देखिबौ दीन कौ, यह बिभाव पहिचानि।
इनते होइ उछाह जँह व्यंगि सु वीर बखानि।
समाधान कै बचन अरु दुख हरिवौ अनुभाव ॥१४२॥
धीरज सचारी उर आनो।
इनते होइ उछाह जहँ तहाँ सुनो रे मित्र।
दया वीर तासो कहत पंडित परम विचित्र ॥१४३॥

यथा

भली कीनी आयौ बीर तच्छक फनिद इहाँ,
आन है न रंच जनमेजै छितिकंत की।

वेर-वेर कंपतु गिरतु भहरातु काहे,
साहस सम्हारि रीति सुमिरि अनंत की।
सौमनाथ वरनैं निसंक रहि मेरे संग,
साँची हौं कहतु सुनि वात विरतंत की।
देहौ तजि राज तन और धन दैहौ पै न,
तोहि गहि दैहौ रे दुहाई भगवंत की ॥१४४॥

तच्छक रु इंद्र आलवन विभाव अरु तच्छक को काँपिवौ उद्दीपन विभाव और समाधान के वचन अनुभाव गर्व सचारी भाव, इनते उत्साह व्यंगि तातें दयावीर रस।

अथ धर्म बीर बर्ननम्

विभाव अनुभाव सचारी भाव प्रथम के जानिए जैसो वतकहाउ हो इतै सौं जानियो अरुनाई मुख पै इत्यादि।

यथा

कहा भयौ जौ पै सत जोजन वड़ी है और
चौकी दानवन की है तऊ न हिऐं डरौ।
वन फल खाइ तरु तोरि तिनुका ज्यौ फेरि,
त्रिजटा कुचील तोहि पाइ तल सौ दरौ।
सौमनाथ कहै कहा करौं न वसति कछु,
मै हौ हनुमंत दास धरम सवै करौ।
राजा रामचंदजू कौ मोकौ न हुकुम नाँ तौ,
सीतै लंक सहित पयोधि पार लै धरौ ॥१४५॥

त्रिजटा राक्षसी और हनुमान आलवन विभाव और उननै कछू वातें कही है कि देखै कैसे लै जाउगै व्यंगि तै जानियति है, तें वातें उद्दीपन विभाव। वचन अनुभाव और गर्व संचारी भाव उत्साह व्यंगि धर्मवीर रस।

॥ इति बीर रस ॥

अथ भयानक रस बर्ननम्

साँप सिंघ संग्राम बन जोरावर अपराधु।
भयरस के सु बिभाव ए बरनत हैं कबि साधु ॥१४६॥
स्वेद थरहरी रोम अरु जानि इन्हें अनुभाव।
अपस्मार अरु बिकलता संचारी सु बताव ॥१४७॥

भयानक बस्तु लच्छनम्

कबित नृत्त में व्यंगि भय इनते जब ही होइ।
ताहि भयानक रस बरनि कहैं सबै कबि लोइ ॥१४८॥

यथा

कहा कीनी अस में अनीति दसकंठ कंत,
हरि लायो सिया को तू जाको फल पावैगौ।
सेतु बाँधि सिंधु में अडिग्ग पथ कीनौं उनि,
कौंन अब ऐसो बीच परि जो बचावैगौ।
बूड़ि बूड़ि जातु मन मेरो भय सागर मे,
कहा जानौं कैसे त्रास आँखिन दिखावैगौ।
बंदि करि सबकी सवारें रघुनंद आइ,
हाइ हाइ हाथैं हाथ लंकहि लुटावैगौ ॥१४९॥

मंदोदरी और राम आलबन बिभाव और बचन कातरता के अनुभाव और अपस्मार और संका सचारी भाव इनते भयानक रस।

इति भय रस ॥

अथ बीभत्स रस बर्ननम्

लखिबौ बस्तु कदर्ज को कै सुमिरन उर जानि।
ए बिभाव वीभत्स के निज उर मे पहिचानि ।१५०॥
रोम कंप निदा वचन ए अनुभाव अनूप।
खेद असूया समझि ए संचारी के रूप ॥१५१॥

बीभत्स को लच्छनम्

जहँ कबित्त अरु नृत्य में इनतें प्रगटै ग्लानि।
ताहि कहै बीभत्स रस कबि कोविद पहिचानि ॥१५२॥

यथा

इतहि प्रचंड रघुनंदन उदंड भुज,
उतै दसकंठ बढ़ि आयौ डरु डारि कै।
सोमनाथ मंड्यौ रन भारी फरमंडल में,
नाच्यौ रुद्र श्रोनित सों अंगनि पखारि कै।
मेद गूद चरबी की कीच मची मेदिनी में,
बीच बीच डोलैं भूत भैंरों मुद धारि कै।
चाइ चढ़ी चंडिका चवाति चंड मुंडनि को,
दंतनि सों अंतनि चचोरे किलकारि कै ॥१५३॥

चंडिका और देखनवारो आलंबन विभाव है और अतनि को चचोरिवो उद्दीपन बिभाव है और देखनवारे के वचन अनुभाव है और ग्लानि असूया संचारी भाव है। इनते ग्लानि व्यंगि तातैं बीभत्स रस व्यंगि। इति॥

अथ अद्भुत रस बर्ननम्

रचना बचन निहारिए जहँ अनहोने मित्र।
अद्भुत रस के जानियौ इन्हें बिभाव विचित्र ॥१५४॥
कंप बचन रोमांच अँग ए अनुभाव सु जानि।
मोह मोद सका बहुरि संचारी पहिचानि ॥१५५॥

अद्भुत रस लच्छनम्

जहँ कब्रित्त अरु नृत्य मे अचिरज ब्यंगि जु होइ।
अदभुत रस सो जानिए कहत सयाने लोइ ॥१५६॥

यथा

हा हा तुहूँ चलि देखि अरी अजहूँ वह पालने लाल पर्यो है।
जाहि निहारि कहै ससिनाथ अंचभो महा ब्रज माँझ भर्यौ है।

ठौर ही ठौर यही चरचा गृहकाज समाज सबै बिसर्यौ है।
नेक से नंद के छोहरा ने पग सों सकटासुर चूरि कर्यौ है ॥१५७॥

यहाँ कृष्ण और सकटासुर आलंबन बिभाव है और गाड़ा कौ तोरिबौ उद्दीपन बिभाव है औरदे खनवारे के बचन अनुभाव और विस्मय संचारी ते अचिरज व्यंगि ताते अद्भुत रस ॥ इति ॥

अथ सांत रस बर्ननम्

रिषि समाज अरु तपोबन ग्यान कथा सु बिभाव।
जगत बृथा चित जानिबौ कहिबौ सो अनुभाव ॥१५८॥
हर्ष और धीरज महा संचारी उर आनि ॥१५९॥

सांत को लच्छनम्

प्रगट होइ निरबेदु जहँ ब्रह्म ग्यान तें आइ।
सुनि कबित्त तासों कहैं सांत सु रस सुख पाइ ॥१६०॥

यथा

धरनि को धरनि समाइ लैहै आपु ही मैं,
पौन में मिलेगौ पौन छांडि यह घेरौ है।
पावक अकास नीर त्यों ही मिलि जैहैं सबै,
आपने ठिकाने अजों समझि सबेरौ है।
सोमनाथ कहै काहे माया में भुलानो नर,
सांचौ सो लगतु तन झूठों उर झेरौ है।
गाइ हरि नाम सुधरें रे सब काम जातें,
काहू कों न तू है कोऊ जग में न तैरौ है ॥१६१॥

जगत और यह नर ग्यानी आलंबन बिभाव है और जगत को जन्म मरन उद्दीपन बिभाव है और बचन अनुभाव है। धीरज सचारी भाव तें शांत रस तातें निर्वेद व्यंगि तातैं सांत रस।

तत्व यही समझि समत्व सब जीवनि के,
धाम धाम मधि धामनिधि ही को धाम है ॥
जीवन मरन पंच तत्व रचना को सत्य,
वेद मुख वेद यों पठतु आठो जाम है ॥
सोमनाथ कहै सुनि जगत अयान मूल,
तातें ठीक हिय में बसायो प्रभु नाम है ॥
जतन सों काम है न रतन सों काम कछू,
अतन सों काम है, औ न तन सों काम है ॥१६२॥

इति रस

———

सुजान विलास
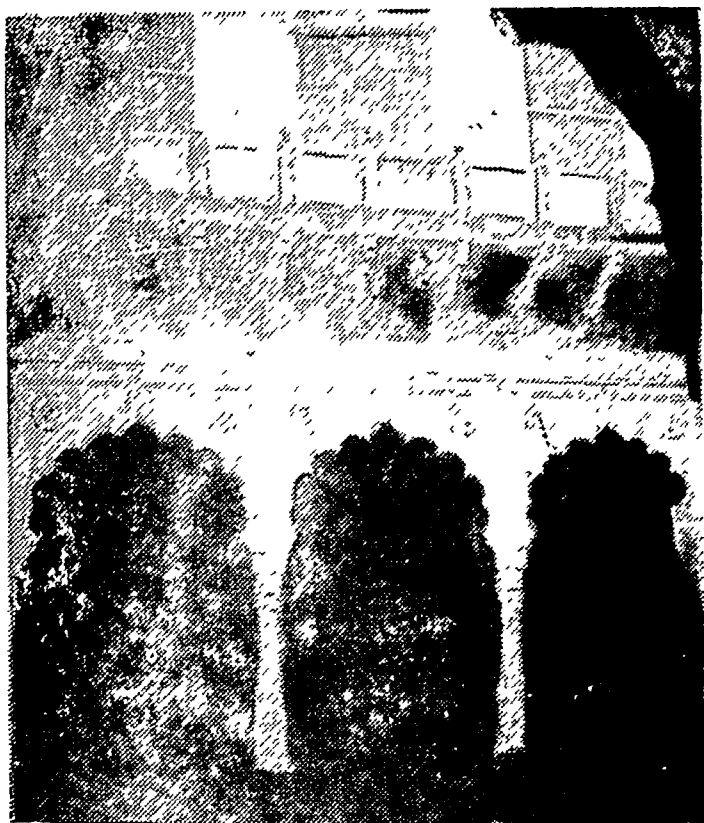
दानाध्यक्ष की हवेली का भीतरी दृश्य

❀ श्री गणेशाय नमः ❀

दोहा

सभा मद्धि इक दिन कही श्री सुजाँन मुसिक्याइ।
सौमनाथ या ग्रंथ की भाषा देहु बनाइ॥

हुकम पाइ ससिनाथ यह रचतु सुजान बिलास।
जामै बिक्रम गुन कथा है बत्तीस प्रकास॥

अथ कथा प्रारंभ लिष्यते

दोहा

गुर गनपति गोपाल के पग अरबिंदन ध्याइ।
रचतु सुजान बिलास कौ सौमनाथ सुख पाइ॥ १॥

बसति बसुमती मध्य है धारा नगरी नाम।
प्रगट मालवे देस मै सुख संपति कौ धाम॥ २॥

पद्धरी छंद

जहँ धर्म अर्थ अरु मिलत काम। नहिं कहुँ अनीति की बिधि उदाम।
सब चहत कित्ति आनंद सहित्त। नर नारी गाँवइ हरि चरित्त॥ ३॥

तिहि मद्धि भोज नामा नरेस। नित करै राज कौ ब्रिधि सुबेस।
जो सुमन हंस कौ बर निवास। अरु चंद तुल्लि जग मै प्रकास॥ ४॥

सुंदर मनोज के सम उदार। रबि सद्दस तेज कौ जग बिथार।
जाके न राज मै कपट रंच। नहिं कहूँ सु अर्थनि कौ प्रपंच॥ ५॥

उज्जैनि नगर तै तनक दूरि। इक ग्राम हुतौ अति धर्म मूरि।
नहिं जहाँ अधर्मनि कौ विलास। इक बिप्र हुतौ तहाँ करतु बास॥ ६॥

सो बित्त जोरिबे कौं प्रबीन। पै कृपन महा मन मै मलीन।
तिनि एक समै किय खेत ख्याल। तहँ भयौ अन्न बहु उग्यौ भाल॥ ७॥

तब खेत मद्धि लखि उच्च थान। इक कियौ मटीला द्विज सुजॉन।
जब चढ़ै मटीला पै द्विजेस। तबही उदार तहँ होइ वेस ॥ ८ ॥

अरु आवै वातें उतरि बिप्र। फिरि ज्यौं कौ त्यौ ह्वै जाय छिप्र।
इक दिनैं बिप्र करिकै बिचार। पहुँच्यौ सु भोज नगरी मझार ॥ ९ ॥

नृप भोजदेव दरसन निमित्त। आयौ हुतौ सु तहँ अति सुचित्त।
तब तासौ द्विज नै बात एह। आचर्ज भरी उचरी अतेह ॥ १० ॥

सुनि कै सु बिप्र के बैन भूप। करि इष्ट देव दरसन अनूप।
आयौ नरेस तहँ जुत उमंग। आदर समेत द्विज लिऐं संग ॥ ११ ॥

सब ठौर निहारो बिबिधि भाइ। पै कछु लख्यौ न तहँ अवनिराइ।
पुनि आपु नृपति चढ़ि तिहीं ठौर। समझी बिचारि कै चित्तादौर ॥१२॥

हुव अति उदारता हृदय मद्धि। जग सुखित करौं सव साँच सद्धि।
तब मन बिचार कीनौ नृपाल। है बस्तु गुन कि छिति गुन बिसाल ॥१३॥

दोहा

जल मै तेल रु दुष्ट मै गुह्य मंत्र अनयास।
दॉन पात्र सुभ बुद्धि मै बिद्या बढ़त प्रकास ॥१४॥

मुक्तादाम छंद

तबै नृपनैं दिय बिप्रहि बित्त। प्रसन्न कियौ अतिही जुतहित्त।
सबै वह खेत लियौ अपनाय। कह्यौ पुनि दासन तैं समझाय ॥१५॥

इहाँ थल खोदहु अब्ब उताल। करौ मति ढील सुबुद्धि बिसाल।
खन्यौ तबही सु कढ़्यौ तिहिं ठौर। सिंहासन चंद्रमनी छबि मौर ॥१६॥

बतीस हुतीं पुतरी तिहिं मद्धि। बिराजि रही निजु सिद्धिहि लद्धि।
सिंहासन दीरघ बत्तिस हत्थ। सु उन्नत हत्थनि आठ समत्थ ॥१७॥

अनेक लगे नर खैंचन ताहि। सबै अपनें बल कौ अवगाहि।
डिग्यौ न सिंहासन तज्जि सु टेक। तबै उचर्‍यौ पुनि मंत्रिय एक ॥१८॥

अजू सुनिए बिनती महाराज। सिंहासन है यह सिद्धि जहाज।
न जाँनि परै मन मै कछु बात। कि है किहिँ कौ अति ही अवदात ॥१९॥

इती कहि कै नृप सौं कर जोरि, कही पुनि मंत्रिय बुद्धि बटोरि।
इहाँ पहिलै करियै कछु दान, कछू बलि दिज्जइ रीति प्रमान ॥२०॥

इतौ सुनिकै बर मंत्रिय बैंन, कह्यौ नृप नै तब संजुत चैंन।
उचित्त जु जांनहु सो तुम अच्छ, करौ बलिदान सु ह्वै अनगच्छ ॥२१॥

महीपति कौ इमि सासन पाइ, कियो बिधि सौ बलिदान सुभाइ।
सिंहासन तब्ब चल्यौ तजि थाँन, गिनै सु मनुष्यनि सौ जुत ग्याँन ॥२२॥

पहुच्चव भोजपुरी मधि आँनि, लखै सु भयौ सबकौं सुखदाँनि।
सहस्रनि थंभ लगे जिहि ठार, कियौ थिर राजसभा सु मझार ॥२३॥

बिबिध्ध बिछौननि की जहँ जोति, जगंमग झुम्मय तोरन होति।
तनै चहुँ ओर अनूप बितांन, छहूँ रितु कौ अति सुख्ख निधान ॥२४॥

लगी मनि थभनि मै बहुरंग, दिपै तिन मै प्रतिबिंब सुढंग।
सिंहासन की दुती सौ मिलि तत्र, प्रकासि रह्यौ रबि सौ सरबत्र ॥२५॥

तहाँ नृप नैं तब बिप्र बुलाइ, कही कि मुहूरत देहु बताइ।
मुहूरत सोधि सबै द्विजराज, कह्यौ नृप सौ सुनिऐ महाराज ॥२६॥

मुहूरत को सुनि भोज नरेस, बिचार कियौ तब कौ बुधि बेस।
मुहूरत के दिन बिप्र अनेक, सुनि हाजिर आइ भए सबिबेक ॥२७॥

दोहा

साज राज अभिषेक के लेहु मगाइ उताल।
नृप नै मंत्री सौं कही चितवनि चितै दयाल ॥ २८ ॥

छप्पै

गंग कलिंदी आदि बिबिध सुंदर तीरथ जल।
अष्टोत्तर सत और औषधीं गुन करि निरमल॥
गोरोचन दधि दूब हरद सरसौ अरु चंदन।
औरौ मंगल द्रब्य घनी उर आनंद कंदन॥
पुनि सदा फली तिनके सुफल छीर वृक्ष फल आँनि कै।
अति छत्र चँवर अरु राज के चिन्ह सजे पहिचानिकै ॥२९॥

पतिब्रता सुतवंती आरती मंगल तिहि कर।
सद्य द्वीपवति भुंमि लिखि बाँधव ऊपर॥

निजु मंत्री सामंत चमूंपति सज्जै मंडल।
सोहैं तिनके मद्धि भोज अवनी आखंडल॥
बहु बंदीजन पढ़त बिरद बज्जत आवज साज घन।
तिहि समैं मुहूरत जानि कै लग्यौं सिंघासन पै चढ़न ॥३०॥

दोहा

सिंहासन पै पाइ जब दैंन चह्यौ नृप भोज।
नर बाँनी तब पुत्रिका बोली जया सम्रोज ॥३१॥

या सिंहासन जो चढ़ै जो इमि होइ उदार।
नाहिं और कौं कांम यह समझौ चित निरधार ॥३२॥

तोमर छंद

इमि पुत्तरी के बैन, सुनि कै नृपति जस ऐंन।
आचर्यमय ह्वै गात, बुल्यौ सु यौं हुलसात ॥३३॥

अपनै सु लायक दॉन, हौ देतु जुत सनमॉन।
बर सवा लक्ष प्रमान, कहि कोब मो सम आँन ॥३४॥

इमि कियौ भोज अलाप, उच्चरिय पुतरी आप।
तो सौ न अधम उदार, जो कहतु निज गुनसार॥ ३५ ॥

जाके कहत गुन और, निगुनी सुगुनियनि मौर।
निजु कहै जु गुन सुरेस, तउ तुच्छ होउ हमेस॥ ३६ ॥

इमि बचन सुनि नरपत्ति, हुउ सभ्रम लज्जित अत्ति।
पुतरीय सौं बच फेरि, बुल्यौ भरयौ भय हेरि॥ ३७ ॥

कल्यान करनि सुभाइ, कहि पुत्तरी समझाइ।
काकौ सिंहासन एह, को अति उदार अतेह॥ ३८ ॥

पुनि नृपति सौं सुख पाइ, पुतरी कही समुहाइ।
सुनि भूप दुरमति घत्ति, इहिं सिंघासन उतपत्ति॥ ३९ ॥

दोहा

कह्यौ पंचम स्कंद मै बर भागवत मझार।
पुत्र युगादि सुदेव कौ सुद्ध अवंति कुमार॥ ४० ॥

तानै यह थापी पुरी धरयौ अवंती नॉम।
जामै नित मंडित रहै धर्म अर्थ अरु कॉम॥ ४१ ॥

पद्धरी छंद

जहँ बसत बिप्र सद्धइ त्रिकाल, गावत प्रसन्नचित गुन गुपाल।
गहगहे जगमगत तिलक भाल, उपबीत कंठ मैं तुलसि माल ॥४२॥

नित ब्रह्मज्ञान चरचा करंत सुर सज्जि सज्जि बेदन पढ़ंत।
करि अग्निहोत्र हरषंत होत, सरबज्ञ जज्ञ बिधि सिद्धिसोत ॥४३॥

सगबगित सत्व गुन के प्रचार, नहिं कपट रंच उज्जल उदार।
अरु जात देव दरसन निमित्त, तब करत आनि भोजन सुचित्त ॥४४॥

द्विज सदा पुत्र दारनि सहित्त, तातै समृद्धि सरसाति नित्त।
निज नारि तज्जि पर सै न आॅन, षट कर्मनि के मधि सावधाँन ॥४५॥

अपनै उचित्त पुनि करहि दान, अरु लेत आपु संयुत सयाॅन।
पुनि पढ़ै पढ़ावैं भरै चाह, धन पाइ खवावै करि निबाह ॥४६॥

अरु बिप्र धेनु प्रतिपाल अर्थ, तज्जहि सरीर छत्रिय समर्थ।
पठ्ठत उमंग सौं धनुर्वेद, पुनि करत कर्म अनुसार वेद ॥४७॥

बर बनिकपट आचारवंत, ब्यौपार बिबिध सज्जत अनंत।
उच्चरति नाँहि रंचक असत्ति, द्विज देवन अर्चंति प्रेमरत्ति ॥४८॥

अरु सूद्र सजैं सेवाबिधान, चरचा प्रपंच की तजि निदान।
पुनि औरौ निजु निजु करत कर्म, कहुँनाहि नैकु बानी अधर्म ॥४९॥

जहँ बुद्ध कलाधर सौ न बैरु, परकन्या अनुरागी न घैरु।
अरु लहत् उच्चता लोक मांझ, यह बड़ौ अचंभौ भोर सांझ ॥५०॥

त्रिय जहँ समुद्र वेला समांन, बिलसंत रत्न कंकन प्रधांन।
मरजाद नाहिं नष्षति सपोत, इहिं बिध्धि नित्तउद्दोत होत ॥५१॥

अरु सुमन सेवत अतूल, नहिं तऊ असन कौ सुख समूल।
तातै अमर नगरीहि लोक, उर आँनत जिहि सम बिगत सोक ॥५२॥

अरु भोगवती नहिं गनत रंच, बासी उजैनि के अप्रपंच।
है जऊ परम भोगनि सुसंग, तउ है नरिद्र कौ भयप्रसंग ॥५३॥

है तजन जोग एकहुँ सु कूट, जग मद्धि प्रगट वह मय त्रिकूट।
तातै सु कलंकित लंक जानि पुरजन गनै न जिह सम बखानि ॥५४॥

जहँ दंड भर्जनि मैं देव धांम, दीपकनि नेह कौ छय उदांम।
बाहगिनि जुगल रसनां बिचार, दृढ मुष्टि एक खगनि मझार ॥५५॥

है बाद तर्क चरचा करंत, ब्यापार मद्धि पुनि माँन तंत।
अरु बंध त्रियन के केस पास, नहिँ लोकनि मैं लखिऐ प्रकास ।।५६।।

दोहा

तिहिँ अवंतिका पुरी मैं नृपति भर्तृहरि नाँम।
करतु राज आनंद सौ मंडित गुन अभिरॉम ।।५७।।
प्रथम घनै राजा भए सुख संपति अधिकाइ।
पै पति पाई बसुमती या नरपति कौ पाइ ।।५८।।

सवैया

दीननि ऊपर होत दयाल जे श्री कौ जिन्है मद नाँहि डिगावै।
औ पर काज निमित्त दुचित्त जे भिक्षुक देखि न आँखि चुरावै।
जोबन भानु उदोत समै जिनकौ नहि यौँ तनु तापनि तावै।
है तिनि थंभनि सौ थिर भूमि नही कलिकाल उपाधि सतावै ।।५९।।

दोहा

लघु भ्राता तिहिँ नृपति कौ बिक्रम नाँम सुबेस।
राज समै अपमाँन तै निकसि गयौ परदेस ।।६०।।

काव्यछंद

अनंगसेना नॉम भर्तृहरि की पटरानी।
प्रानन हूँ तै अधिक भावती सुख सरसानी।।
पूरन जोबन पूर्न चंद सम आनन झलकै।
को सुर मुनि नर सिद्ध जाहि निरखै नहिँ ललकै ।।६१।।

ता उजैनि के मद्धि बसत इक बिप्र दुखारी।
तिहिँ भुवनेस्वरि देबि हरषि आराधी भारी।।
उहिँ प्रसन्न ह्वै कही माँगि जो चहिऐ तोकौँ।
अजर, अमर मैं होउँ देहु तुम यह बर मोकौ ।।६२।।

तब देबी नै दियौ एक फल द्विज के कर मैं।
बहुरि कह्यौ यह बैंन भच्छि याकौ सजि घर मैं।।
अजर अमर अबिकार होइगौ निहचै द्विजबर।
सो लैकै फल अमल बिप्र आयौ अपने घर ।।६३।।

दुपहर संध्या साधि सुद्ध ह्वै कै फल रूरौ।
बैठ्यौ भच्छन काज भयौ तव सोच समूरौ॥
मैं दरिद्र मैं मंगन माँगि कै खातु भिखारी।
अजर अमर ह्वै मोहि कहा यह बात बिचारी॥६४॥

यौ उर अंतर सोचि हत्थ मै सौ फल लिन्नै।
जाय नृपति की भेंट कियौ अतुराई भिन्नैं॥
अरु सिगरौ बिरतंत कह्यौ जो पहिलैं बीत्यौ।
फल लैकै कर मद्धि भर्त्तृहरि नृप चित चीत्यौ॥६५॥

नृपति महल मैं गयौ नेह उर मैं अधिकायौ।
रॉनी कौ फल दियौ सबै विरतंत जतायौ॥
चिरबादारहि दियौ सुफल रानी नै लैकै।
उनि गनिका कौं दियौ अमल फल सो हित ह्वै कैं॥६६॥

गनिका लै फल हाथ विचारी अपनै मन मैं।
अजर अमरता मोहि कहा करनी यह तन मैं॥
कुकरम कीनै घनै निंद्य जग मद्धि कहाई।
तातै नृप की भेंट करौगी फल सुखदाई॥६७॥

गनिका हरषित चित्त सजैं अंबर बहु रंगनि।
जगमग जगमग होत कनक मनि भूषन अंगनि॥
कर मैं फल लै चली सगबगी अंतर रंगनि। ...... ।
चहुँ दिस चितवति चपल चतुर सखियन के संगनि॥ ६ बढ़ायौ ।

सो फल तानै जाइ भेट दीनों छितिपालै।
ताहि लखत ही भयौ नृपति कौ और हवालै॥ न ।
फल आँवन के क्रमहिं चित्त के मद्धि बिचार्‌यौ। ल ॥
तजिवौ सब धन धाँम हिऐं वैराग सम्हार्‌यौ॥ ६थ ॥
थ

हौं नित चाहतु जाहि सु तौ त्रिय औरै चाहति।
वहू पुरुष रत अंत बुद्धि थिरता नहिं गाहति॥
अरु हम सौ उपकार और नैं सज्यौ सुभाऐं। ग
चारिहुँ कौ धिक्कार कंदरप हत्थ बिकाऐं॥ ७० ॥

सवैया

हँसि कै उपराजति मोह महा पुनि छोभित ह्वै कलकॉन करैं ।
कबहूँ मनमत्थ कला दरसाइ भुलाय कै कंठनि कौ पकरैं ।
परकासि पतिव्रत की गति कौ तरुनी अभिमांन भरी अकरैं ।
छर छंदनि के गुन सौ अकरैं पिय कौं बस कै सु कहा न करैं ।। ७१ ।।

कुच ग्राम जुबानि कौ जाहर और जिते मुख आउ सुभाइ कहैं ।
कुच मास की गाँठि भर्‌यौ बिट पेट मलीन मनोद चकाइ कहैं ।
मल मूत्त निवारन द्वार दुवौ पुनि थंभ उरू तपधाइ कहै ।
इनि भाँतिनि की तरुनी सु कहा बर नाइक के हित लाइ कहै ।।७२।।

लखि संपति नारि बिहारन कौ निरधारि हिऐं न हुलास भरैं ।
अपनैं अरु और कहौ कहु क्यौं न नही जग के उपहास डरैं ।
ससिनाथ गोबिंद कौ ध्याइ सदा भवसागर कौ तजि त्रास तरैं ।
धनि ते नर बुद्धि बिलंद सु जे गिरिकंदर अंदर बास करैं ।।७३।।

उर अंतर यौ सुबिचारि महीप हजारनि भोग भुलावतु भौ ।
सजि कानन कुंडल कंथहि धारि असंकित सींगी बजावतु भौ ।
हित सौं नित आठहु अंगन सौ जग नाहर जोति जगावतु भौ ।
नँदनंदन के गुन गावतु भौ परमानँद कौ पद पावतु भौ ।।७४।।

दोहा

यौ बिरक्त हुव भर्तृहरि तजि कै सुख संसार ।
राज अवंती पुरी कौ सूनौ भयौ असार ।। ७५ ।।

सूनौ लखि कै राज कौं कहा अग्नि बेताल ।
प्रगट भयौ प्रभु कै करै मंडित रूप कराल ।। ७६ ।।

मंत्री जो जो नृप करैं हतै ताहि सों रैनि ।
क्यौ हू सीतल होइ नहि यह उपाधि दुखदैनि ।। ७७ ।।

राज बर्ग थकि सौ रह्यौ नित प्रति करत उपाइ ।
क्रूर अग्नि बेताल सौं काहू बिधि न बसाइ ।। ७८ ।।

तहँ परदेसनि ते सहज आयौ बिक्रमभाँन ।
अनजाँनै मंत्रीनि सौं पूछ्यौ सबै बखाँन ।। ७९ ।।

पावकुल छंद

क्यौ यह सूनौ राज उदारौ, तुम सब मोसौ प्रगट उचारौ।
यौं सुनिकै बिक्रम की बॉनी, मंत्रिनि ज्यौं की त्यौ सु बखाँनी ॥ ८० ॥

इहाँ अग्नि बेताल उदंडौ, निसि मैं नृप कौं हनतु प्रचंडौ।
सुनि कै यह पुनि बिक्रम बुल्ल्यौ, मंत्रिनि सौं अति उर मैं फुल्ल्यौ ॥ ८१ ॥

आजु राजस्वाँ मोकौं दीजे, कौतुक यह आपुन लखि लीजै।
बली जाँनि विक्रम कौ राजा, मंत्रिनि कियौ सहित सुखसाजा ॥ ८२ ॥

राज पाइ कै विक्रम रूरौ, भुगत्यौ भोग दिवस मै पूरौ।
संध्या समै सेज बिछवाई, तापर बैठ्यौ लहि दृढताई ॥ ८३ ॥

आसपास पलिका कैं धारे, बिबिध भाँति के भक्ष अपारे।
उरद मूँग के मोदक मंडे, और कुम्हेंडे पाग अखंडे ॥ ८४ ॥

पक्के तंदुल ढेर कराए, तिनमें पल के खंड मिलाए।
अनगन वटक दही मै बोरै, रासि तै अधिक गोल अरु गोरे ॥ ८५ ॥

पूरी करी मिलै कै हरदी, बारी लखि सुबरन की जरदी।
घनी कचौरी बैगन तत्ते, मौंहनभोग गुलगुला रत्ते ॥ ८६ ॥

मट्ठे और जलेबी पेरा, घेवरवा बरफैंनी कैंरा।
निकुंती छुंटी छबीली छोंटी, मैदा दूध मिलैं कै रोटी ॥ ८७ ॥

उज्जल गूझा और अँदरसे, सेब छुहारे घृत सौ सरसे।
अमल कंद के ओरे प्यारे, जनु छिति आँनि बिहारे तारे ॥ ८८ ॥

ए अरु औरौ साज हजारनि................. ....।
विक्रम ने कुल पलक लगायौ, हौनहार पै साँच बढ़ायौ ॥८९॥

दोहा

इतनै मै आयौ अधम उग्र अग्निवेताल।
वलि सामग्री देखि थिर रह्यौ उच्च नटसाल ॥९०॥

वहुरि खगालै हत्थ मै आयौ घत्तन अत्थ।
प्रलयकाल कौ क्रुद्धमय मानौ काल समत्थ ॥९१॥

त्रिभंगी छंद

बद्दल से कारे अंग उदारे नद्द नगारे लौ गरजै।
दंतनि कटकावै दृग फटकावै उमडतु आवै नहि लरजै ॥

नृप आगैं ठाढ़ौ भयौ सु गाढ़ौ फहरै डाढ़ौ जिमि काई।
स्वासनि ते ज्वाला कढति कराला वदन बिसाला भयदाई ॥९२॥

दोहा

बिक्रम नै वैताल सौं कही प्रथम वलि खाउ।
मो पै तुम पुनि आइकैं करियौ अपनौ घाउ ॥९३॥

बलि भोजन करिकै असुर वोल्यौ वचन सु एह।
तोहि दियौ मैं राज यह नित यौं सज्जि अतेह ॥९४॥

मुक्तादाम छंद

इती कहि बिक्रम सौं सु वेताल, प्रसन्न हियैं फिरि गौ ततकाल।
प्रभात भएँ सब मंत्रिनि आंनि, लख्यौ नृप जीवतु आनँद मांनि ॥९५॥

कह्यौ नृप सौ पुनि मंत्रिनि वैंन, सिरोमनि हौं सब के सुख दैंन।
अनंद भयौ सिगरे पुर मद्धि, अकंटक राज करौ जस लद्धि ॥९६॥

किते दिन बीति गए बलि खात, वितालहि कौं हिय मैं हुलसात।
कह्यौ इक औसर बिक्रम भूप, वितालई सों सजि चंदनधूप ॥९७॥

कितौ तुमकौ बल है बलवांन, कितौ उर अंतर मै पुनि ग्यॉन।
इती सुनि बिक्रम की बर वात, कही उनि यौं सु हरष्षित गात ॥९८॥

चहौं सु करौ बल मोहि इतेक, सवै कछु जानतु सज्जि बिवेक।
इती सुनि बुल्ल्यव बिक्रम राउ, बतावहु जू हित सौं मम आउ ॥९९॥

इती सुनिकैं उचर्‌यौ पुनि रच्छ, सतस्सम है तुव आयु प्रतक्ष।
कही नृप बिक्रम नै यह फेरि, दया सरसाव निहेरि निहेरि ॥१००॥

जु सुन्न परे मम आयु मझार, घटावहु एक बढ़े कि उदार।
कही तब राक्कस नै समझाइ, घटै न बढ़ै करि कोटि उपाइ ॥ १ ॥

इती कहिकै गहिकै बलिदांन, बिताल सु जात भयो बलवान।
द्वितीय दिना वलि बस्तु न कीन, महीपति नै दृढ़ता चित लीन ॥ २ ॥

इते मधि आइ बिताल उताल, कह्यौ नृप सौं करि क्रुद्ध कराल।
अरे कहि क्यौ न कियौ बलि आज, भर्‌यो उर मे अभिमान समाज ॥३॥

सुन्यौ यह वैंन कह्यौ पुनि राज, घटै न बढै मम आयु दराज।
करौं बलि तो कहँ तौ किहिं काज, लरौ अब मौसहुँ सज्जि समाज ॥ ४ ॥

इतौ कहिकै गहि षड्ग उदंड, उठ्यौ अवनीपति विक्रम चंड।
लखौ नृप कौ इम साहस जव्व, प्रसन्न विताल कह्यो यह तव्व ॥ ५ ॥

कछू बर मो सहुँ माँगि नरेस, बृथा नहि देव दरस्सन बेस।
नरेस कह्यौ सु हरष्षित आपु, करौ सुधि आवहुँ तव्व अताप ॥ ६ ॥

कहौ सु करौं मम काज अनंत, महीमन मद्धि रहौ बिरतंत।
भुवप्पति कौ सुनि बैन रसाल, बिताल गयौ निज थान दयाल ॥ ७ ॥

प्रभात भएं लखि मंत्रिनि भूप, कियौ अभिषेक बिधान अनूप।
करन्न लग्यौ इमि राज सुबुद्धि, लिऐं सबकी सब भाँतिनि सुद्धि ॥ ८ ॥

अथ बत्तीस लक्षणं

तोमर छंद

कर चरन नख अरु नैंन, रसना अधर सुख दैन।
तालू सहित अंग सात, ए हौइ लच्छ लसात ॥ ९ ॥

चख नासिका उर कंध, उरु काखि भाखि प्रबंध।
बरनै जु ए षट अंग, ते हौंइ उच्च सुढंग ॥ १० ॥

गल सिस्न पिंडुरि अनूप, ए तीनि अँग लघु रूप।
अरु बक्ष मुख अरु भाल, ए तीनि अंग बिसाल ॥ ११ ॥

स्वर नाभि सत्व सरीर, ए हौइ तीनि गँभीर।
नख रद त्वचा कच पर्व, ए पाँच सूछम सर्व ॥ १२ ॥

हनु बाहु लोचन दोइ, उर नासिका पुनि टोइ।
ए अंग दीरघ पाँच, लच्छन बतीस सु साँच ॥ १३ ॥

बिक्रम सरीर मझार, ए हैं सबै निरधार।
ए राज चिह्न बिदित्त, चित जानिऐं मम मित्त ॥ १४ ॥

अथ चौदह बिद्याकथन

पावकुलक छंद

चारि बेद अरु जोतिष जाँनौं, सिक्ष्या कल्प व्याकरन माँनौ।
छंद निरुक्ति पुराँन बषाँनौ, मीमांसा अरु न्याय गाँनौ ॥ १५ ॥

धर्मसास्त्र अरु चौदह ऐसैं, बिद्या कही भई मैं जैसैं।
चौदह बिद्या मद्धि प्रबीनौं, बिक्रम भूपति सत्य अधीनौ ॥ १६ ॥

अथ चौसठि कला वर्णनं

सवैया

गाइबौ और बजाइबौ नाँचिबौ चौथी कला नट की पहिचाँनौ ।
पंचम ग्रंथनि कौ लिखिवौ अरु काटिबौ वस्तु बड़ी उर आनौ ॥
तंदुल फूलनि कौ जु विकार क्रिया बलिदान की सप्तम माँनौं ।
फूल बिछाइबो अष्टम औ रद अंबर अंगनि राग बखानौं ॥ १७ ॥

है मन की रचना दसई अरु ग्यॉरही सेन बनाइवौ भाषो ।
नीर बजाइबौ काटि सु काइ औ बारहि यौ सुकला अभिलाषो ॥
चित्रनि कौ लिखिबौ यह तेरही चौदही हार बनाइवौ रापो ।
पंद्रहीं है सु किरीट बनाइवौ दै करि ग्रंथनि को मत साषो ॥ १८ ॥

छप्पै छंद

कला सोरही जाँनि ख्याल नेपथ्य बनावन ।
पत्र फारिकै ज्वाबु दीजियै अरु मनभावन ।
और सुगंध मिलाय अंग सिंगारन कहिबौ ।
बाजीगर कौ ख्याल और कंदुकनि विहरिबौ ॥
अरु अतुराई बाईसईं कला प्रगट जाँनौ सुघर ।
अरु बिविध साक अरु भात कौ रंधन तेईसईं बर ॥ १९ ॥

पीबे के रस मद्धि रंग अरु अमल मिलैवौ ।
दरजी कोरी कर्म कला पच्चीस बनैवौ ।
और सूत्र कौ खेल डमरु बीनादि वजैबौ ।
अरु प्रहेलिका ज्ञान उलटि गिनती कहि जैवौ ॥
पुनि ठगिबौ बड्डे ठगनि कौ अरु पढ़िबौ सब अक्षरनि ।
अरु बहु सुरूप दरसाइबौ वत्तीसईं कला वरनि ॥ २० ॥

प्लवंग छंद

समस्या सुद्ध सुपूरन कीजियै,
अरु पाटी पुनि बेतवाँन बुनि लीजियै ।
करनौ तर्क अखंड तर्क कौ खंडनौ,
अरु बनाइबौ धाँम बिनोदनि मंडनौं ॥ २१ ॥

सौंनौ रूपौ रत्न परीक्षा जाँनिबौ,
धातु मारिबौ और खाँनि पहिचानिबौ।
और मनिनि कौ रंग समझनौ चाइकै,
वृक्ष आयु कौ ज्ञान बुद्धि सरसाइकै ॥२२॥

कुक्कुट मैंढा लवा बटेरादिक जिते,
तिनके जुद्ध उपाय समझनैं हैं तिते।
अरु पढ़ाइबौ आप सुद्ध सुक सारिका,
उच्चाटिबौ समाज और कहि कारका ॥२३।

अरु ककही के करनि केस सुरझाइबौ,
मुष्टि अछर निज जानि प्रगट समझाइबौ।
अरु तुरकनि को तर्क खंडनौ रीति सौं,
देस बानि अरु भेष कुटुँब गुन नीति सौ ॥२४॥

अरु खेलिबौ सिकार कर्म रथवाँन कौ,
सकुन ज्ञान पुनि यंत्र मातृका ठान कौ।
मानस की कबि क्रिया नाम कौ राखिबौ,
अरु पिंगल कौ ज्ञान हिऐं अभिलाखिबौ ॥२५॥

इनतै और जु क्रिया जाँनिबौ पुनि सबै,
अरु छल वस्त्र दुराव जुवा अस लहिरबै।
अरु आकर्षन आदि कर्म की चातुरी,
बालक क्रीडा और भरी जे आतुरी ॥२६॥

कर्मठ बिद्या ज्ञांन और धुनि चारनी,
अरु पुरांन मैं बुद्धि कलेस निवारनी।
चौंसठि कला प्रकास कही ये नेह सौं,
इनमै बिक्रम भूप बिचित्र अतेह सौ ॥२७॥

दोहा

कंचन मनि मंडित महा तिहिँ सिंघासन मद्धि।
लसतु हुतौ बिक्रम नृपति नीति रीति कौ सद्धि ॥२८॥

कर जोडें ठाढ़े हुते आगे अवनीपाल।
सेवत निज अमरेस कौं हरषित अमर कृपाल ॥२९॥

तिही समैं आवत लखी नृप नैं जोगी एक।
क्यौं आयौ कहिहै कहा उपजो तर्क अनेक ॥३०॥

त्रिभंगी छंद

सिर जटनि जटायौ मुकट बनायौ अहि लपटायौ कंचन कौ।
तन भस्म लगाऐं नैन रचाऐं मत अपनाऐं वंचन कौ॥
ससिनाथहि गावै और न भावै प्रगटि प्रभावैं ललकाऐं।
बलकै बरदांननि तरुन उठांननि कुंडल काननि झलकाऐं ॥३१॥

झलकांऐं कुंडल बर मुखमंडल अरघ कमंडल कर लीनैं।
चक्र सु भुजदंडनि चमक अखंडनि तिमिर विहंडनि गति भीनैं॥
मृगछाला कांधे सैली बाँधे सींगी साधै नाद करैं।
उतसाहनि छायौ निरभय आयौ···राज घरैं ॥३२॥

बड़ो चौपई

तहँ इह विधि जोगी आइ नृपति सों परगट वैन सुनायौ।
अब तुम न करौ मम अज्ञा भंग तबै उचरौ मन भायौ॥
निजु कहिकै इतनी बात और हूँ वचन वखानन लाग्यौ।
अति चटक भरी रसनां सी घट मैं निपट कपट सौ पाग्यौ ॥३३॥

है अपनौ काज सुधारत चोषे जग मैं मनुज हजारनि।
अरु अपनौं और परायौ साधै इमि नहि विकत वजारनि॥
मनि मंजुल धरत भुजंग न सवही वन वन मद्धि न चंदन।
त्यौ होतु लक्षु लक्षनि मैं एकै विक्रम पर-दुख-कंदन ॥३४॥

नित उद्धत उदर भरन कौं बाडव-नीरधि नीर जरावै।
पुनि उही सलिल कौ पाँन मेघ करि ग्रीपम ताप सिरावै॥
अरु श्री सुभाव है चंचल तौऊ लसै अचल गति भोई।
तू क्यौ करे उपकार भूमिपति हौनी होय सु होई ॥३५॥

नृप सुनिकै इमि जोगी की बानी बोल्यौ वचन उदारौ।
मो तन धन सौ तुव काज होमतौ निजु अभिलाष उचारौ॥
तब धन्नि धन्नि कहि जोगी जालम लाग्यौ करन बड़ाई।
दृढ जीती लंक प्रबल राघव नैं लहिकै सबल सहाई ॥३६॥

अब कछुक मंत्र मै साध्यौ चाहतु उर मै सज्जि उछाहनि।
मो उत्तर साध कहौ अवनीपति अति बिक्रम तुव चाहनि॥
प्रभु जो तुम कहौ करौं मै सोई चित संसय मति आनी।
यह सुनिकै बैन भावतौ जोगी आनंदनि सरसानौ॥३७॥

पुनि निसि मै आइ सु जोगी नृप कौ मद्धि मसान पठायौ।
अरु कही बृक्ष सौ बंध्यौ मृतक तहँ ताकौ लाउ सुहायौ॥
यौ सुनिकै जोगी की बर बानी बिक्रम कछुक सम्हारैं।
पुनि निरख्यौ जाइ प्रचंड मसानै जिहिं ठाँ भूत विहारै॥३८॥

इमि तहँ पठाइ बिक्रम कौ जोगी सज्जि क्रिया पुनि आपै।
ईहि विध्धि अनूठी सिद्धि अरत्थनि लग्या करन पुनि जापै॥
सो जाइ मसान मद्धि नृप बिक्रम बैतालै गहि लैकै।
पुनि चल्यौ निकट जोगी के आतुर संका सकल बितैकै॥३९॥

तब कही कथा पच्चीस प्रेत नै पुनि पुनि छुटि छुटि आयौ।
जब जान्यौ कष्ट नृपति कौ अति ही धर्म हिऐं अपनायौ॥
नहिं डिगतु आपने प्रन तै रंचक साहस मद्धि अतोल्यौ।
तब भयौ प्रभात जाँनि बेताल सु प्रगटि भूप सौ बोल्यौ॥४०॥

तू जाँनतु नाँहि नृपति यह जोगी निपट कपट लपटानौ।
तुव उत्तम पुरुष ताहि बलि दैकै लहिहै सिद्धि सयानौ॥
यौ सुबरन पुरुष साधिकै जोगी करिहै भोग अनेकनि।
अब याकौ तू बिस्वास करै मति मन मै सज्जि बिबेकनि॥ ४१ ॥

अरि दुष्ट और सर्पनि कौ कबहूँ करिऐ नही पत्यारौ।
नित हित सौ क्षीर खाइयै तौहूँ रहै डसन कौं त्यारौ॥
यह सुनिकै भयौ अचंभित बिक्रम चित चितानि विकानौ।
पुनि साहस कौ गहिकै धरनीपति यौं चित्यौ मरदाँनौ॥ ४२ ॥

नर करत जु है अपराध अधरमी मूरख स्वारथ काजै।
ते तिनिकौ जन्म सहस्रनहू मैं पाप दुखनि कौ साजै॥
अरु जे करै धर्म नर तिनकौं धर्म सुनौ आइं आवै।
जन जैसौ करै सु तैसौ पावै ऐसे वेद बतावै॥ ४३ ॥

सोरठा

दुख्ख होइ तौ होहु जोगी निजु करिहै कहा।
यहै तमाँसौ जोउ जोगी हौ करिहौं उचित॥ ४४ ॥

हरिगीता छंद

वस होत सज्जन सुकृत मज्जन सुद्ध आदर पाइ है।
अरु मनुज चंडनि देत दंडनि तवहि परसत पाइ है॥
अरु मनुज चंडनि देत दंडनि छर ढंगनि छंडई विपजाल है।
करिऐ सुमंत्रनि जंत्र तंत्रनि होत तव सम ना लहै॥ ४५॥

यौं चित विचारि महीप विक्रम परम साहसवाँन हैं।
तिहिं अग्निकुंड मझार देकैं जोगियै वलिदाँन हैं॥
इहि बिध्धि कीनौ सिद्धि सुवरन पुरुष कौं डर टारिकैं।
हुव प्रगट तव नर हैम कौ सुर सर्व कपट निवारिकैं॥ ४६॥

नृप के प्रभावहि जाँनि सो करिकै वड़ाई अत्ति ही।
सो जातु भौ निजु धाम कौ सुर चित्त मै रहि ते तिही॥
पुनि भए प्रात सुवर्न पुरुपहि लिऐ विक्रम वीर है।
अपनी पुरी कै मध्धि आयौ करन राज गँभीर है॥ ४७॥

छप्पै

श्री बिद्याधर गच्छि लच्छि छव्वीस अनुज्जिय।
तिनकौ ईस मरुंड नृपति जाके पग पुज्जिय॥
कंदिल आचारज्ज सिष्य ताकौ बहु हुज्जिय।
बृद्ध बादि तिहिं सिष्य लियौ जिनि जित्ति मनुज्जिय॥
पुनि सिद्धसेन दिनकर भयौ ताकौ सिष्य उदारमति।
सर्वज्ञ पुत्र बिय नाँम द्विज सिद्धसेन कौ प्रगट अति॥ ४८॥

दोहा

सो देसंतर प्रति फिरतु आइ अवंती पास।
आश्रम रचि बन मैं बस्यौ सिद्ध बिप्र परगास॥ ४६॥

नराच छंद

कढ़्यौ नरेस बिक्रमेस इक्क द्यौस मौज मैं।
चव्यौ अहद्द सद्द यौ बिलास मध्धि फौज मैं॥
जलद्द से द्विरद्द मद्द नीरधार छंडई।
उदंड सुंडदंड सौं जंजीर ख्याल मंडई॥ ५०॥

तुरंग रंग के उतंग जंग मंग हित्त के।
ममोल से कलोल मैं भरे अतोल बित्त के॥
जराउ केस मौज के दराज साज थुम्भई।
इलाज कित्ति बेस के निहारि को न लुम्भई॥ ५१॥

निसान देवतानि के बिमान पास लग्गई।
सुनत्त दुद्दुंभी धुकार को सम्हार पग्गई॥
प्रचंड भाँति भाँति की सु भूरि भेरि बज्जई।
अपाँन की लपेट तज्जि भेट सत्रु सज्जई॥ ५२॥

दोहा

गई फौज आगैं निकरि भयौ प्रकास उदार।
विक्रम नैं निरख्यौ तहाँ बैठ्यौ द्विज अबिकार॥ ५३॥

त्रिभंगी छंद

सिर असित लटूरीं सुरभि समूरी झलकैं रूरी छवि छाऐं।
उपवीत बिसाला तुलसि की माला कटि मृगछाला अटकाँऐं॥
हरि सौ अनुरागैं जामिनि जागैं बिषै न पागैं तप ठाऐं।
सरबग्य उदासी द्विज बनबासी सिद्धि लता सी लपटाऐं॥ ५४॥

दोहा

मनही मै ताकौं कियौ बिक्रम नृपति प्रनाँम।
कह्यौ बिप्र कर उच्च करि बढ़ौ धर्म धन धाँम॥ ५५॥

सिद्धसेन द्विज सौ बहुरि बोल्यौ बिक्रमराज।
बिप्र भक्ति कैसै बढ़ै कैसै धर्म समाज॥ ५६॥

तब द्विज नैं नृप सौ कह्यौ मन करि ते नत कीन।
मै तोकौ परगट्टियौ आसिष शुद्ध प्रवीन॥ ५७॥

ह्वै प्रसन्न इभ तैं उतरि परसि बिप्र के पाइ।
आचारज के थाँन पुनि गिन्यौ ताहि सुख पाइ॥ ५८॥

सिद्धसेन द्विज नृपति सौं पुनि बोल्यो इम बैन।
जे संग्रहत कुलीन जन ते नरपाल घटैं न॥ ५९॥

और वहुश्रुत मंत्रि की कथा सुनौ मन लाइ।
हे भूपति हौं कहतु हौ तोसौ हित सरसाइ॥ ६०॥

तोमर छंद

इक पुर विसाल सुनाँम, सब भाँति गुन अभिराँम।
तहाँ नाँम नंदन भूप, मनमत्थ के अनुरूप॥ ६१॥

अतिही सु उन्नत भाल, जिमि अरध रजनीपाल।
जगमगत नैन विसाल, जनु कमल के दल लाल॥ ६२॥

मुख मनहुँ उदित दिनेस, मुसिक्याँनि मंद सुदेस।
कर तासु जांनु प्रमान, उर उच्च सोभ निधांन॥ ६३॥

जुगजंघ रन जयथंभ, को गनइ सम जड़ रंभ।
दीसत्त चरन अनिंद, नहिँ होत सम अरविंद॥ ६४॥

अरु निगम आगम मद्धि, समझै महा गुख लद्धि।
तिहिँ भूप के मृदुगात, हुव विजयपाल सुतात॥ ६५॥

चउँसठि कलानि प्रवीन, कंदर्प मूल अदीन।
अरु कुँवर के वर बैन, गरजै मनो घन ऐंन॥ ६६॥

मंत्री बहुश्रुत नाँम, तिहिँ भूप के सु ललांम।
अरु भानुमति सुकुमारि, ता नृपति की वर नारि॥ ६७॥

जनु रची साँचै ढारि, विधि नै सु आरस टारि।
दरसात है इमि अंग, मनु तड़ित सहित उमंग॥ ६८॥

पद्धरी छंद

पँचरंग चीर वर निपट झीन, जिहिँ मद्धि जरकसी तार दीन।
नव कनक किनारी चहूँ ओर, मुकता मनीनि की मिलित कोर॥६९॥

कच असित मनौ मखतूल तार, गुन ललित वलित मुंकतनि कतार।
वर त्रिबिधि रंग वैनी सुढार, सो करत त्रिवेनी सी विहार॥७०॥

सरसैं सुगंध पाटी अनूप, जनु मदन कसौटी असितरूप।
सिंदूर पूर पुनि पूत रंग, मनु तिमिर मद्धि रविकर सुरंग॥७१॥

जनु है सिंघौ आसन उदार, सिर छत्र लसै इमि दुति अपार।
अरु अर्द्ध चंद सम सुभ लिलार, तिहिँ मद्धि विंदु वंदन सिंगार॥७२॥

अनुराग मनौं विधि नैं अमोल, लिखि दियौ भाम मैं अति अलोल।
जगमगत वेंदियौ रतन झेलि, मुख सरस तोय जनु कनिक वेलि॥७३॥

कै सरस चंद पै हित बढ़ाइ, राखी मनोज तोरन तनाइ।
अरु लसै बंक भृकुटी सुरेष, मनहरन मंत्र की मनहु भेष ॥७४॥

कै धर्यौ धनुष मनमथ उतारि, जग जित्ति आपनी जय बिचारि।
कै द्दग अरबिंदनि पै सुभाँति, दरसंत अलिन की जुगल पाँति ॥७५॥

रतिस्रम निवार मैं सुख समोइ, बिजना कि हैम रँग पलक दोइ।
बटि रचे मनौ मखतूल तार, इहिं भाँति लसति बरुनी बहार ॥७६॥

यौ लसै द्दगनि अंजन नवीन, चित चोर स्यांम गुन जकरि लीन।
अरु लसै मनोहर द्दग बिसाल, डहडहे कमल दल से बिसाल ॥७७॥

अरु चपल प्रेम के से तुरंग, मुखससि के जनु चाहत कुरंग।
जोबन नरेस के निपट लोल, सरसैं कि नबारे जुत कलोल ॥७८॥

हैं पंचबाँन के मनहु बाँन, बिष सनै लखत बस्य करै प्राँन।
अति तिच्छ सोभियत जुगल छोर, जे करत ग्याँन बषतरनि तोर ॥७९॥

खंजन गरूर-गंजन प्रबीन, तकि रहे मीन पलकनि बिहीन।
करनी अकत्थ बरनी न जाइ, हति कै सु लेत है पुनि जिवाइ॥८०॥

सरसंत स्रवन सब स्याँनमूल, रबितूल रतनमय करनफूल।
मृदु अमल जुगल झलकैं कपोल, नव मनौ मैन के मुकर गोल ॥८१॥

तिल सुमन नासिका कनक रंग, मुख छबि समुद्र की जनु तरंग।
मनि जटित नाँकबेसरि लसाइ, मनु बस्यौ भानु ससि अंक आइ ॥८२॥

अरु अधर सधर पल्लव समान, जें मलत बिद्धमनि के जु माँन।
अति सुमिल दसन सोहें सु जोति, लच्छन बतीस छबि प्रगट होति ॥८३॥

जिनपै सु कुंद कलिका बिचार, अवलोकि वारिए बार बार।
को हैं अनार दानै कमीन, लखि रुचै काहि मुकता नवीन ॥८४॥

इमि मंद हसनि मैं लसति भाँति, जिमि साम तडित अति कौंधि जाति।
महकै सुगंध बर स्वास लेत, भाँवरिनि आँनिकै भँवर देत ॥८५॥

हिय कमल प्रफुल्लित रहतु नित्त, ताकी सुबासु है मनहु थित्त।
दुति और होति राचै तमोर, जनु बढ़ी रजोगुन की झकोर ॥८६॥

अरु नवबिधूप के दलनि जोरि, मनु धरी चुनी रचि चित्त-चोरि।
नव छहूँ रसनि की समझि बारि, बिधि रची देवि रसना सुधारि ॥८७॥

पिक ओर वीन तै मधुर वैन, जे सुनत होत अति चित्त चैन।
अरु नव मृनाल सी चिवुक भाँम, मधि स्याँम विंदु जनु अलि सकाँम ॥८८॥

अरु सुभर कंवु ग्रीवा लसंत, तिहि तीनि रेख सुभ जगमगंत।
नरनाग अमर वाँनी विभाग, मनु लिखे चतुरमुख ने सभाग ॥८९॥

दरसंत कंठ भूषन अनंत, मनि जटित हैंम के झलमलंत।
जगजगति रतन मंडित हमेल, जातैं छटाँनि की छुटत रेल ॥९०॥

अरु कुचनि वीच नव जलज हार, जनु जुग सुमेर मधि गंगधार।
अति सुभर ललित जुग भुज मृनाल, करो मनो जुगल अरविंद लाल ॥९१॥

भुजवंद भुजनि अति चमचमात, जरकसी फुंद नव जगजगात।
सुभ टाड छंन वलया बिलास, कंकन लसात कर जुत प्रकास ॥९२॥

नवरतन जटित पुहुँची विधान, जनु करत प्रदच्छिन ग्रहप्रधान।
श्रीभवन जानिकैं चित्त माँझ, नहि तजैं ताहि किन भोर साँझ ॥९३॥

अंगुलि सु चंपकलिका उठान, नख चंद तूल तमहर निदान।
बर वनीं मुद्रिका रंग अनेक, जिनिकों विलोकि विसरै विवेक ॥९४॥

यो ललित करनि मिहिंदी बनाय, राखी अनिंद बुंदनि रचाय।
मनु इंद्रवधू इंदरहि जानि, आई मिलाप की नेह मानि ॥९५॥

कंदुक अनंग के मनहुँ वेस, कुच वौने श्रीफल से हमेस।
अरु अरुन कंचुकी जगमगाय, लखि जाहि सखिनि की मति लुभाय ॥९६॥

अरु लसति रौमराजी सुनीक, जनु कनक भूमि रसराज लीक।
सरसाति उदर त्रिवली सुढंग, जनु रची सिढ़ी आवत अनंग ॥९७॥

यौं वनीं रुचिर नाभी गँभीर, ज्यौ परति भ्रमरिका सरित नीर।
लचि जात चलत कटि परम छीन, कछु जाइ और उपमाँ कही न ॥९८॥

कटि कनक किंकिनी झनझनाँति, गुंजरत मनौं अलि सहित काँति।
अरु मृदु नितंव राजत उतंग, जे परत दीठि व्रत करत भंग ॥९९॥

उरु सो सुढार मंजुल अलोम, जनु धरी हैंम रंभा विलोम।
घुमघुमैं घाँघरौ घेरदार, जिहि मद्धि वादला कौ बिथार ॥१००॥

विलसंति रतन जेहरि सुवाँनि, मुरवाँनि गूजरी सोभ साँनि।
अरु पाइजेव अति जेवदार, हिय हरति मंद सब्जत उचार ॥१०१॥

गुलफैं सु ऐनि आदरस तूल, मृदु गोल गहगहे हरषमूल।
पग पाँन मनिनिमय सहस पाँन, झनझनत हैंम नूपुर सुठाँन ॥१०२॥

पद कमल कली सम अति अनिंद, अंगुली सनख मनु मिलत इंद।
रँगमग्यौ लसत जावक समीप, जनु रची फागु मनमथ महीप ॥१०३॥

अरु अरुन बरन कौहर कथाँनि, नित जीति लेति एड़ी लसाँनि।
सिख तै अरु नख लौं नृपति बाँम, जनु हेमलता फुल्ली ललाम ॥१०४॥

दोहा

इहि बिधि की तिय भाँवती भाँनमतीहि नरेस।
छिनहूँ भरि बिसरै नहीं बिछुरत लहै कलेस ॥ १०५ ॥
नहीं राज चिंता कछू चित मैं करै भुवाल।
सभा मद्धिहूँ बैठि कैं लियै रहत सँग बाल ॥ १०६ ॥
कही वहुश्रुत सचिव नैं इक दिन औसर पाइ।
महाराज बिनती कछू सुनियौ चित्त लगाइ ॥ १०७ ॥
बैद्य गुरू मंत्री न जहँ उचरत प्यारे बैन।
ता नृप कौ तन धर्म धन रहै नहीं सुख दैन ॥ १०८ ॥
यातैं निपट कठोरहूँ कहिबे लायक वात।
महाराज हौ कहतु हौं सुख चाहत तुव गात ॥ १०९ ॥
राँनी कौ लै बैठिबौ उचित न सभा मझार।
समझि लेउ उर आपनें हौ प्रभु तुम रिझवार ॥ ११० ॥

पावकुल छंद

ए सुनिकै मंत्री के बैनाँ, बोल्यौ नंदन नृपति सचैनाँ।
तुमनैं आछी वात बखाँनी, निहचै मेरे यह मन माँनी ॥१११॥

पै हौं कहा करौ छिन एकौ, रहि न सकौ चित सज्जि बिवेकौ।
देखे बिनाँ न भोजन भावै, नैकौ तृषा न आनि सतावै ॥११२॥

नीद न नैननि सौं नियरावै, फूल सूल से हौत सुभावै।
नही दुकूल सुख्ख सरसावै, को पुनि अंग सुगंध लगावै ॥११३॥

चंदन चंद सरीर तचावै, भावै नहीं जु कोऊ गावै।
पंचबांन बांननि पटतारै, को समरत्थ जु तिन्हैं सम्हारै ॥११४॥

निस दिन रही दृगनि मै रांनी, तन मन ब्यापि रही सुखदांनी।
तुम जु कहौ अब सोई करियै, मेरौ कह्यौ ठीक उर धरियै ॥११५॥

ए सुनि कै नरपति की बांतैं, सोचन लग्यौ चित्त अकुलातैं।
निहचै जॉनि भयौ परतंत्री, पुनि भूपति तें बोल्यौ मंत्री ॥११६॥

तौ रानी कौ चित्र लिखैयै, सभा मद्धि हूँ निकट रखैयै।
तब नृप कही भला लिखवावौ, निपट बिचित्र चितेरौ लावौ ॥११७॥

ए नृप के सुनि बचन प्रबीनौ, आतुर नर पठाइ सुदीनौ।
तुरत चितेरे कौ लै आयौ, भानुमती कौ चित्र लिखायौ ॥११८॥

मंत्री नै लै नृपहि लखायौ, नृप नै लै तिहिं सम ठहरायौ।
नेंकौ कसरि न तामै देखी, मंत्री पै हित रीति बिसेषी ॥११९॥

ढिग है गुरू सारदानंदन, तिन सौं नृप बोल्यौ रिपुकंदन।
महाराज यह चित्र निहारौ, यामै वामै भेद बिचारौ ॥१२०॥

भानुमती के चित्रहि लैकै, निरख्यौ एक ठौर चित ह्वै कै।
निरखि सारदानंद उचारयौ, यामैं कहूँ न दोष निहारयौ ॥१२१॥

पै तिल बॉम उरू मै चहियै, क्यौ नहिं लिख्यौ सु वासौ कहियै।
यह सुनि गुरु कौ बचन रिसानौ, नंदन भूपति निपट अयानौ ॥१२२॥

कौन भॉति इनि तिल पहिचान्यौ, निहचै भेद सु चहियै जान्यौ।
यौ छिन सोचि क्रुद्ध अधिकायौ, मंत्री कौ निजु निकट बुलायौ॥१२३॥

तासौ कही छोड़ि छरछंदै, अबही हतौ सारदानंदै।
जौ तू मेरौ अति हित चाहै, तौ करि काज समेति उछाहै ॥१२४॥

सोरठा

सुनि ए नृप के बैन मंत्री अति चिंतनि छयौ।
सरस्यौ हिऐं अचैन फिरि फिरि सिर कंपित करै ॥१२५॥

मनी चमकती नाहि तारा सीतिहिं सीस पर।
तौ कालिंदी मॉहिं काली क्यौ हरि देखतौ ॥१२६॥

दोहा

जासौ जगत गुनीनि कौ बाटत सुख्ख अनेक।
ताही सौ दुख होत है भूतल सबै बिबेक ॥ १२७ ॥

यौं बिचारिकैं चित्त मैं मंत्री निपट ललाम।
तुरत सारदानंद कौ लायौ अपनै धाम॥ १२८॥
को जानै अब सत्य है किधौं झूठ सबिकार।
गुरु मारे कौ पाप यह ह्वै है नृपहि अपार॥ १२९॥
फेरि बिचारयौ सचिव नै तहखानै कै मद्धि।
बिप्र सारदानंद कौ राख्यौ सोभा सद्धि॥ १३०॥

मधुभार छंद

इक दिन उदार, नृप कौ कुमार।
सो बिजयपाल, गुन करि बिसाल॥ १३१॥
चल्ल्यौ सिकार, हुव हय सवार।
सजि हरित बास, मंडित सुबास॥ १३२॥
रंगित कमान, तरकस प्रधान।
कसि खरग चारु, कटि मे कतारु॥ १३३॥
बर बीर संग, मंडित उमंग।
चल्ले अनेक, उर भर बिबेक॥ १३४॥
हिंकरत जंग, चंचल तुरंग।
गज्जत मतंग, कद्दनि उतंग॥ १३५॥
फहरै निसान, निरखैं अमान।
कंपैं दिसानि, अति संक मानि॥ १३६॥
दुंदुभि धुकार, घन सम अपार।
भुव थरहरानि, डड्ढर बिथानि॥ १३७॥

सोरठा

असगुन भए अनेक तऊ चित्त आने नहीं।
तजि के धर्म बिबेक बिजैपाल गच्छौ कुँवर॥ १३८॥
खेलत फिरत सिकार दीठि परयौ सूकर तहाँ।
ताके सँग सबिकार दूरि निकसि बन में गयौ॥ १३९॥
कितहूँ कौ असवार कितहूँ आपुन जात भौ।
कितहूँ और कतार दिसा भूल मन मैं भयौ॥ १४०॥

कुंडलिका छंद

भूल्यौ घन बन बिकट में, बिजैपाल नृप नंद।
गर्मी तैं ब्याकुल भयौ लागी प्यास अमंद॥
लागी प्यास अमंद लखी तहँ एक तरंगिनि।
निर्मल सीतल नीर सुखद गंगा की संगिनि॥
ताकौ पानी पियत हिये में आनंद हूल्यौ।
सब सिकार कौ खेल ततक्षन ताकों भूल्यौ॥ १४१॥

दोहा

तिहिं तरंगिनी तीर इक सघन वृक्ष की छाँह।
बिजैपाल बैठ्यौ हुतौ टेकि दाहिनी बाँह॥ १४२॥

दीठि पर्‌यौ नाहर तहाँ आवत अपनी ओर।
चढ्यौ बृक्ष पै कुँवर सौ करि अतुराई जोर॥ १४३॥

त्रिभंगी छंद

बन तें तिहँ ठाहर जालम जाहर आयौ नाहर अतुरायौ।
कित्ते निहिं घत्तो नैन् रकत्तौ ऐनि कुपत्ते मत ठायौ॥
भरि भूंख भटक्के तजे अटक्के पुच्छ पटक्के करि कपटै।
चमकावै डड्ढे तरु तर ठड्ढे क्रुद्धल बढ्ढे झुकि झपटै॥१४४॥

झपटै नहि पावै तन थहरावै केस फुलावै नहि डगरै।
छिति नखन प्रहारै छार उछारै भागनि डारै गहि डगरै॥
कबहूँक उचक्कै चढ़िबौ तक्कै ललकि ललक्कै मुख फारै।
जनु प्रगट कुरंगौ उदभट अंगौ काल कुढंगौ बबकारै॥१४५॥

काव्य छंद

नाहर को भय भर्‌यौ चढ्यौ तरबर पै जब्बै।
पर्‌यौ कुँवर की डाठि उच्च इक बंदर तब्बै॥
कंपन लागे अंग पसीना मुख पै आयौ।
कपि ने ताहि बिलोकि डरै मति बचन सुनायौ॥ १४६॥

ऊपर कों चढ़ि जाउ कही यों नर की बानी।
बिजैपाल के हियें हुँती सो ताप सिरानी॥

ऊपर कौं चढ़ि गयौ निकट बंदर के जौलौं।
रबि कौ बिंब समस्त अस्त ह्वै गयौ सु तौलौ ॥१४७॥

बीती रंचक रैनि महा अँधियारी छाई।
झिल्लीगन झिंकरैं फिरी निसिचरन दुहाई ॥
घरघरात उल्लूक फनी फुंकरन चिकारत।
दूजौ नही मनुष्य गए थकि नैन निहारत ॥१४८॥

बिजैपाल के दृगन आँनि निद्रा नियरानी।
बेरि बेरि झुकि जात पलक झपकनि सरसानी ॥
यह गति कपि अवलोकि कहन लाग्यौ पुनि बातैं।
नीचै ठाढौ सिंह डिगौ मति गिरिहौ ह्वाँ तैं ॥१४९॥

जौ आरस तन बढ्यौ आउ तैं मेरे अंकै।
सोम कुँवर बिनु संक सिंह की तज्जि अंतकै ॥
सोयौ कपि की गोद कुँवर सो त्रास भुलाएँ।
बंदर जागतु रह्यौ निपट बिस्वास बढ़ाएँ ॥१५०॥

सोवत जानि कुमार सिंह बंदर सों बुल्यौ।
रे नर कौ बिस्वास करै मति भ्रम सों भुल्यौ ॥
छिप्र पटकि दै याहि कृपा जिनि उर मै आनै।
हम तुम दोऊ याहि भक्षिहै सुख अधिकानै ॥१५१॥

यौ नाहर के बचन सुने कपटन लपटाने।
पुनि तासों कपि कह्यौ सुनो जू सिंह सयाने ॥
हौ न करौ निरधार कबहुँ बिस्वासघात कौ।
सिंह मौन ह्वै गयौ सुनत यों धर्म बात कौ ॥१५२॥

जब कुमार के अंक छिनक मे बंदर सोयौ।
भूल्यौ सुधि बुधि सबै परम आनंद समोयौ ॥
तब तासों पुनि सिंह उच्चर्‌यौ भरि छरछंदन।
बंदर कौ बिस्वास कहा सुनि हे नृपनंदन ॥१५३॥

शृंगी बंदर नदी अरु जु सस्त्रहि कर धारै।
तिय अरु नृप कों नही बिससियै बिना बिचारै ॥
छिन में बैठे रूठि छिनक में प्रगटै हित्तै।
ताकी नहीं प्रतीति प्रीति हूँ संक सहित्तै ॥१५४॥

तातें याकौ डारि करौ मैं याको भोजन।
निर्भय ह्वै कै कुँवर साधियौ तुहू प्रयोजन॥
यों नाहर कौ बचन सत्य सौ श्रवननि जारयौ।
बिजैपाल नै कपिहि अंक में तें छिति डारयौ॥१५५॥

समझि गयौ मन मद्धि कुँवर नै भय सो पटक्यौ।
बंदर गिरयौ न भूमि गयौ रहि डारनि लटक्यौ॥
साखा पै लखि ताहि कुँवर भय पूरि लजानौं।
तब तासों कपि कही संक मति मेरी मानौं॥१५६॥

दोहा

भयौ इते में प्रात तब कपि नै दियौ सराप।
अपने कीने कर्म कौ फल पावैगो आप॥१५७॥
जगत जतावन के लियै कपि ने दिये पढ़ाय॥
बिसेमिरा तिहिं कुँवर कों पुनि मग दियौ बताय॥१५८॥

पावकुल छंद

बिसेमिरा ए अक्षर चारौ, पढतु फिरै बन मे मतवारौ।
तन की ताहि तनक सुधि नाही, भयौ निपट बौरा मन मॉहीं॥१५९॥
बिसैमिरा यह शब्द उचारै, बन में भ्रमतु रहै सविकारै।
नहि अप्नैं पर कों पहिचानैं, भूँख प्यास की को उर आनैं॥१६०॥
नाहर कौ डर मानि अथोरा, गयौ सुभाजि कुँवर कौ घोरा।
ताहि निहारि नृपति के मन में, चिंता बढ़ी बिकल हुव तन में॥१६१॥
अपनौ फौज संग सब लैके, बन मे चल्यौ सु आतुर ह्वै कै।
कही पुकारि नृपति नै तब्बै, बिजैपाल कौ ढूंढ़ौ सब्बै॥१६२॥
बिसेमिरा यह सब्द उचारत, दीठि परयौ सों अति ही आरत।
ताहि नृपति पुनि निजपुर लायौ, बहुत भाँति सों जतन करायौ॥१६३॥
मंत्र जंत्र औषधि बहु कीनी, घने नरनि कों मोहरैं दीनी।
तऊ सु नीकै भयौ न बेटा, लाग्यौ अति हीं पाप चपेटा॥१६४॥
बिजैपाल के दुख मे सान्यौ, तब यों नृप ने बचंन बखान्यौ।
गुरू सारदानंद हमारौ, होतौ अब जो साधु बिचारौ॥
तौ न मोहि सुत चिंता होती, निहचै नीकौ करतौ श्रोती॥१६५॥

पैव हमैं ही ने हतवायौ, ऐसैं कहि कहि सीस हलायौ।
दुखित नृप की सुनिकैं वातैं, पुनि मंत्री वोल्यौ पछितातैं ॥ १६६ ॥

गई बात की चिंता कीनैं, होतु कहा महाराज प्रवीनैं।
पै या सगरे नगर मझारैं, डौंडी फिरवैहौं डर डारैं ॥ १६७ ॥

यौं कहि मंत्री नृप कै आगैं, पुनि बाहर आयौ अनुरागैं।
निकट बुलायौ डौंडीवारौ, तासौं बचन कह्यौ यह भारौ ॥ १६८ ॥

अतिही सावधान तू रहियौ, डौंडी देकै ऐसैं कहियौ।
कुँवरहि नीकौ करै जु कोई, अर्द्ध राज पावै नर सोई ॥ १६९ ॥

डौंडी सगरे नगर दिवाई, अरु तापै सब वात कहाई।
पुनि मंत्री आयौ निजु घर मैं, साधें सुद्ध हियै मैं धरमैं ॥१७०॥

गुरू सारदानंदन विप्रै, सिगरी वात सुनाई छिप्रै।
सुनि कै वात सारदानंदन, मंत्री सौं वोल्यौ दुखकंदन ॥ १७१ ॥

कहि तू बात नृपति सौ ऐसैं, मै समुझाइ कहतु अव जैसैं।
मेरैं सात बरस की कन्या, सिद्धिनि सील रूप गुन धन्या ॥ १७२ ॥

सो निहारि कैं कछू इलाजै, करिहै नीकौ कुँवर सलाजै।
सुनि मंत्री उर मैं अभिलाष्यौ, इहीं भाँति भूपति सौ भाष्यौ ॥ १७३ ॥
मंत्री की सुनि वातैं नरपति, कुँवरहि संग लियैं आतुर गति।
आयौं मंत्री कै घर राजा, तजिकै सिगरौ राज समाजा ॥ १७४ ॥

परदा के वाहिर ही बैठ्यौ, पुत्रहि लियै नृपति दुख ऐंठ्यौ।
पद्मासन कौ बेधि सुहायौ, गुरु गनपति निजु इष्ट मनायौ ॥ १७५ ॥

परदा के भीतर तैं बुल्ल्यो, गुरू सारदानंद अमुल्ल्यौ।
बिस्वासहि जु करै रे भाई, ताकौं ठगैं कहा चतुराई ॥ १७६ ॥

अरु सोवै निजु अंक मझारैं, कहा बड़ाई ताकौ मारैं।
ए सव सुनी कुँवर नै बातैं, तज्यौ प्रथम उत्तर अतुरातैं ॥ १७७ ॥

अक्षर तीनि सेमिरा राई, कहन लगो सीखे हे जेई ॥
सेतुबंध कौ जाइ निहारै, गंगासागर अंग पखारै ॥ १७८ ॥

पाप ब्रह्म हत्या कौ नासै, निरमल काया होइ प्रकासै।
सुनि गुरु बचन कुँवर नै तज्यौ, ते अक्षर पुनि जुगल गरज्यौ ॥१७९॥

मिरा मिरा ए अक्षर दोई, कहन लग्यौ वुधि अर्द्ध समोई।
बोल्यो फेरि सारदानंदन, तृतिय श्लोक विप्र जगवंदन ॥ १८० ॥

नीकौ करी चहै नृपनंदै, काट्यौ चहै आपनैं फंदै।
मित्रद्रोही चोर चिकारौ, अरु बिस्वास घतैया भारौ ॥ १८१ ॥

और कृतघ्नी ससि रवि जौलौं, चार्‌यौ जाहिं नरक मैं तौलौं।
यह पुनि सुनी कुंवर नैं वानी, मी अक्षर सुत ज्यौं दुखदांनी ॥ १८२ ॥

रा रा रा रा अक्षर एकै, लाग्यौ रटन कुँवर गहि टेकै।
फिरि गुरु नैं निजु गुरु सम्हार्‌यौ, हरि अंतरजामी उर धार्‌यौ॥१८३॥

और आसरौ कछु न विचार्‌यौ, श्लोक चतुर्थो विप्र उचार्‌यौ।
राजा जौ तू चित मैं चाहैं, पुत्र होइ नीकौ स उछाहै ॥ १८४ ॥

तौ राजी करि द्विज के प्राननि, द्रोही सुद्ध होतु है दांननि।
यह सुनि बचन कुँवर हुलसांनौं,स्वस्थ भयौ भ्रम सकल विलांनौ॥१८५॥

कही कथा कपि नाहर वारी, सुन सब भए अचंभित भारी।
बहुरि उच्चर्‌यौ धरनी नाइक, है यह बात अचंभे लाइक ॥१८६॥

बेर बेर नृप सीस हलावै, पै न भेद कछु उर मैं आवै।
तू ग्राम मैं बसति कुमारी, वन चरित्र कैसे उर धारी ॥ १८७॥

जांन्यौ कपि नर नाहर वारौ, ज्यौं कौ त्यौं कहि करि उजियारौ।
परदा मैं ते बोल्यौ तव्वै, गुरू सारदानंद सगव्वै ॥ १८८ ॥

गुरु अरु देव प्रसादहि पाएं, सरसुति रसनां बसत सुहाएं।
तातैं मैं जानतु हौ ऐसैं, भांनुमती ऊरू तिल जैसैं ॥ १८९ ॥

यह सुनि बचन सोचु नृप तजिकै, अपनैं उर अंतरहि लजिकैं।
नृप नैं परदा अपनैं कर सौं, तच्छन दूरि कर्‌यौ हरबर सौं ॥१९०॥

हाथ जोरि परिहरि छर छंदहि, कियौ प्रनांम सारदानंदहि।
अरु मंत्री की करी बड़ाई, धनि तू द्विज हत्या जु बचाई ॥ १९१ ॥

मेरे सुत के प्रान रखाए, मैंने अब तेरे गुन पाए।

दोहा

सिद्धसेन सों यह कथा सुनि कै विक्रम भूप।
हित करि कैं ताकौं दई मुहरैं कोटि अनूप ॥ १९२ ॥

आपु बिक्रमादित्य पुनि खेलन गयौ सिकार।
गए संग संगी सबै हे मतंग असवार ॥ १९३ ॥

छप्पै

देखन आवैं दुखित ताहि हज्जार सु मुहरैं।
अरु जासौ बतराउं अयुत वाकौं हित गहरैं॥
ताकौं मुहरैं लक्ष देउ जो करै बड़ाई।
जासौं होउ प्रसन्न कोटि तासौं सुखदाई॥
इमि है भंडारी कौं हुकम विक्रम को पूछे बिनां।
सुनि भोज जु ऐसौ है व तौ चढ़ि सिंहासन इहि छिनां॥१६४॥

सोरठा

जबलौं कथा अनूप यह पहली पुतरी कही।
तबलौं ठाढ़ौ भूप रह्यौ मुहूरत टरि गयौ॥१६५॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुनन बिसाल है।
तिहि कुमर सिंघ सुजान सुंदर हिद भाल दयाल हैं॥
तिहि हेत कवि ससिनाथ नै रच्चिय सुजान विलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा किय प्रथम मध्य प्रकास है॥ १६६॥

द्वितीय कथा

दोहा

और मुहूरत सुद्ध मैं भोज वसुमतीपाल।
साज सकल अभिषेक को सज्जित बुद्धि विसाल ॥ १ ॥

लग्यौ सिंघासन पै चढ़न तौलों पुतरी और।
बोलि उठी दूजी अनख सुनि हे नृप सिरमौर ॥ २ ॥

नृपति विक्रमादित्य के जु तू उदार समान।
तौ या सिंघासन विषै सज्जौ बुद्धिनिधान ॥ ३ ॥

विक्रम की जु उदारता कैसी कहि सो आप।
यह सुनि विजया पूतरी बोली बैन अताप ॥ ४ ॥

प्लवंग छंद

पुरी अवंती नाम तहाँ नृप थित्त हो,
विक्रम विक्रमवंत हिए अनभित्त हो।
तानै छिति पै दूत पठाए चाइकैं,
अचरज देखौ कछू कहौ सो आइकै ॥ ५ ॥

तिनमैं तें इक दूत आइकै आतुरौ,
विक्रम सों यह बैन कह्यौ अति चातुरौ।
चित्रकूट इँहि नाम सुतुंग पहार है,
तहँ देवालय एक अनूप उदार है ॥ ६ ॥

सघन तपोवन अग्र नदी इक सोभई,
जाहि देखि नर नाग अमरगन लोभई।
तिहके मध्य जु न्हाइ सुधर्मी नेंह सौं,
तौ गो छीर समान लसै जल देह सों ॥ ७ ॥

और कलंकित पुरुष जु न्हाइ उमंग मैं,
कज्जल सम ह्वै जाइ नीर तिहिं अंग मैं।
विद्या साधत एक तहाँ जप सद्धई,
होमादिक बहु किए न सिद्धि प्रसिद्धई ॥ ८ ॥

दोहा

ता साधक कौ देवता अवलौं भयो न सिद्ध।
यह सुनिकै बिक्रम नृपति उद्धत भयौ प्रसिद्ध ॥ ९ ॥

तोमर छंद

कौतिक बिलोकन अत्थ, बल्लव नृपति समरत्थ।
सँग चले बीर अनंत, चंचल तुरंग नचंत ॥१०॥

गुंजरत समद मतंग, बद्दल समान उतंग।
कलधौत मंडित भूल, घंटा निँनाद अतूल ॥११॥

सिद्धर भरित भसुंड, झरि मद्धि पुरवत कुंड।
पुंजनि भ्रमर भननात, श्रवननि हलावत जात ॥१२॥

चल्ले घनेरे रत्थ, कलधौत साजन सत्थ।
गहि बिबिध सस्त्रन हत्थ, प्यादे चले जन पत्थ ॥१३॥

पहुँच्यो तहा सु नरिंद, जह चित्रकूट गिरिंद।
अति तुंग सिखरि अकास, परसै महा परकास ॥१४॥

रूपे समान सु शृंग, दरसैं घनी सुभ ढंग।
कितनी सिखर रँग लाल, अरु किती पीत बिसाल ॥१५॥

अरु घनी बरन बिचित्र, बहु मनिन तूल चरित्र।
कोकुक सदृश मक्षत्र, बहु केतकी सम पत्र ॥१६॥

इह बिध्धि कौ सु पहार, जहँ लसत सोभ अपार ॥१७॥

झिरना अनेक झिरंत, बहुरंग के दुतिवंत।
अरु खोह मनहु सु भौन, राखै जु गहि मन गौन ॥१८॥

लहलहत वृक्ष बिलंद, जंबू कदंब अमंद।
अंकोल तिंदु रसाल, बर बिल्व और प्रवाल ॥१९॥

अरु लोद कटहर वृंद, बरनां मधूक अनिंद।
अरु आंबरे वर बेरि, बहु वैत और गनगेरि ॥२०॥

अरु अरुन बरन असोक, वहु वंजुलनि की ओक।
कटहरी औ कचनार, अमिली कपित्थ बहार ॥२१॥

औरौ अनेकनि वृक्ष, अविलोकिए परतक्ष।
अरु विविधि भाँत कुरंग, जहँ वसत ऋक्ष कुढंग ।।२२।।

कपि पुंज सिंह कराल, चित्रक विचित्र शृगाल।
नहि हैं परस्पर क्रुद्ध, सब जीव प्रानिनि सुद्ध ।।२३।।

दोहा

पव्वय वन सीमा लखतु पहुँच्यौ सरित समीप।
ताहि देखि हरष्यौ हियँ, विक्रम नाम महीप ।।२४।।

पद्धरी छंद

मंदाकिनि तटिनी लखी जव्व, हरष्यौ महीप विक्रम्म तव्व।
पुलिनें उंदार सुंदर विचित्र, सरसंत चक्रवाकनि चरित्र।।२५।।

वर पहुप वृंद दरसंत तीर, अति चपल देखिए अमल नीर।
अरु दुहूँ कूल पर विविधि वृक्ष, वहु रंग फूल फल सों प्रतक्ष।।२६।।

जहँ मोर मोरिनी सँग नचंत, औरौ अनंत पक्षी रटंत।
सरिता मझार वहु फूल पत्र, गिर परत होति है शोभ तत्र।।२७।।

कहुं थान सोभियत मनि प्रकार, कहुँ सिद्ध वृंद सोहत अपार।
इच्छित समीर फहरत्ति आँनि, अति होति चित्त कों सुक्खदांनि ।। २८ ।।

जल दह अथाह और ठौर ठौर, विहरंत ग्राह करि चपल दौर।
वहु कच्छ मच्छ औरौ तिराँहि, कलहंस क्रौंच कूलनि फिराँहि ।। २६ ।।

उज्जल अनूप वगुलनि कतार, कौतिक करंत रेती मँझार।
तिय लिये संग सारस कुलंग, विहंरत तीर पै जुत उमंग ।। ३० ।।

लगि पवन झोक बढडे तरंग, उच्छरति मीन तिनमें उतंग।
जलसद्द सुहै हाँसी समान, सित फेन मंजु अंवर अमान ।। ३१ ।।

वैनी अकार जलधार होति, भँवरीहु नाभि सी लहति जोति।
कहँ वहत नीर अति मंद भाइ, कहु गति अमंद सों गति सुभाइ ।। ३२ ।।

जलजात प्रफुल्लित रँग अनेक, अरु कुमुद खंड मंडित विवेक।
मकरंद पान करि भ्रमत भौंर, मनु गंग सीस पर ढुरत चौंर ।। ३३ ।।

दोहा

बिक्रम निजु कर जोरि कैं गंगहि सज्जि प्रनाम।
भेट धारि न्हायौ बहुरि आयौ कूल ललाम ॥ ३४ ॥

देखै तौ निजु अंग पै जल भौ छीर समान।
अकलंकित जान्यौं हियै निजु कों नृपति सुजान ॥ ३५ ॥

करि सु देवता को प्रनति गयौ उपासक पास।
पूँछी बिक्रम नै बहुरि तासों बात प्रकास ॥ ३६ ॥

कितने दिन तोकों भयो कहि सो अपनी बात।
तब वाँने नृप सों कही गए सौ बरष तात ॥ ३७ ॥

छप्पै

निपट लटै अँग अंग जटा पाइन सों लटकति।
भस्म लपेटें भाल लाल लोचन गति भटकति ॥
सज्जत अब नित नैम चलत मै कर-कर चटकति।
जिद्यौ न सन कौं जाल रही कटि तासौ अटकति ॥
नितमूल फूल दल फलनि कौ भक्ष बितावत रैन दिन।
इहि बिध्धि तपस्वी कौं निरखि बिक्रम थम्यो न एक छिन ॥ ३८ ॥

दोहा

पूछि तपस्वी की कथा बिक्रम नृपति दयाल।
देवी के मंदिर निकट पहुँच्यौ जाय उताल ॥ ३९ ॥

लग्यौ बडाई करनि मुनि देवी मै कर जोर।
परदुख खंडन के लियें उर में प्रेम वटोर ॥४०॥

छंदभूजंगी

तुही ब्रहन की सिद्ध बिद्या सयानी,
तुही ज्ञान बिज्ञान की वृद्धि सानी।
तुही इंदरा सुंदरी बाक बानी,
तुही चंद्र मै चंद्रिका सुद्ध जानी ॥४१॥

प्रभा भानु मज्झे तुही है बखानी,
तुही बारुनी शक्ति है लोकमानी।

तुही भोगवै इंद्र की राजधानी,
तुही है स्वधा और स्वाहा सिहानी ॥४२॥

तुही जोरि ज्वाला मुखी जोगध्यानी,
तुही रिद्धि औ अष्टहू सिद्धि गानी।
तुही है रती और तुही मद्धमत्ती,
तूही सती औ तुही पारवत्ती ॥४३॥

तुही जोगनिद्रा अनंदी सुधा है,
तुही है तृषा और अमंदी क्षुधा है।
तुही चंड के मुंड की खंडनी है,
तुही चंचला व्योम की मंडनी है ॥४४॥

कलींदी तुही गोमती नर्मदा है,
तुही मंजु मंदाकिनी नर्वदा है।
तुही रुक्मिनी सत्यवंती त्रिया है,
तुही बेद की बिज्ञता की क्रिया है ॥४५॥
महिष्यासुरै मर्दिनी देवि चंडी,
तुही है जगै जोति जाकी अखंडी।
तुही है सती सूर पावक्कनैनी,
तुही सुंभ निस्सुंभ कौ दंड दैनी ॥४६॥

तुही नारसिंही वराही कला है,
तुही घोर धूमावती सीतला है।
मृगी सिंहिनी तू वनच्चारिनी है,
बहुभ्भाति तू तर्क उच्चारिनी है ॥४७॥
तुही काम की कामिनी कोमला है,
पयोनिद्धि की मैंड तू निर्मला है।
तुही आसुरी किन्नरी नागकन्या,
तुही जक्षनी रक्षनी रूप धन्या ॥४८॥

तुही द्रौपदी और कुंती अहल्या,
तुही आप मंदोदरी है अतुल्या।
सुभद्रा तुही रेनुका भद्ररूपा,
तुही उर्बसी मैनका है अनूपा ॥४९॥

तुही है इडा पिंगला तारिनी है,
सुषुम्ना तुही प्रान आधारिनी है।
तुही दुक्ख दारिद्र की हारिनी है,
तुही सुक्ख संपत्ति की कारिनी है ॥५०॥

तुही कालिका मुंडमाला धरंती,
तुही रक्कसौं के कुटंबौ दरंती।
तुही जुग्गिनी उग्ग संगे नचंती,
अरध्धंग मैं ईस के तू लसंती ॥५१॥
हरष्यौ हिये मैं कृपा अब्ब कीजे,
बरद्दान चाहौ मै जो ताहि दीजे।
इतौ भाषि कै बिक्रमाजीत गट्ठौ,
दुवौ हाथ जोरे रह्यौ अग्ग बट्ठौ ॥५२॥
नही उच्चरी आप तौहू भवानी,
तबै भूप नै और ही वात ठानी।
निजग्ग्रीव पै हत्थ लै खंग रख्यौ,
भर्‌यौ प्रेम औ धर्म सौ ठीक लख्यौ ॥५३॥
गह्यौ भूप के हत्थ कौ हास किन्नै,
बरद्दान कौ माँगि लै मोद भिन्नै।
तबै देवि सौं बिक्रमादित्य बुल्ल्यौ,
लिये प्रेम कौं चित्त के माँझ फुल्यौ ॥ ५४ ॥

दोहा

मोंसो बेगि प्रसन्न तू भई अंब किहि अर्थ।
नहि यासों राजी भई कहि सो बात समर्थ ॥ ५५ ॥
याके उर मै भाव नहि हुतौ जोगि बरदान।
तेरौ उर अकलंक है अरु दृढ़ प्रेमनिधान ॥ ५६ ॥

छंद प्लवंग

जौ अंगुली अग्र मेरु कौ नख्खई।
नही होय थिर चित्त उपाधि परख्खई ॥
कीजै जो इहि बिध्धि सुगम नहि काम कौ।
एक ठौर मन होइ जयसु आराम कौ ॥ ५७ ॥

मंत्र और गुरुदेव स्वप्न तीरत्थ में।
जाकौ जैसौ भाव सिद्ध तिहि सत्य में॥
देवी की यह वात सुनी भूपाल ने।
समझी मन मै सत्य सुवुद्धि विसाल ने॥ ५८॥
नहीं काठ मे देव नहीं पाषान मैं।
नहीं मृत्तका मध्धि न धात विधान मैं॥
जाकौ जैसौ भाव सिध्धि तिहि विध्धि है।
हेतु भाव निरधार सुबात प्रसिद्धि है॥ ५६॥
यौ उर मध्य विचारि भूप फिरि धाइकै।
कह्यौ देवि सौ वैन प्रेम सरसायकै॥
मो पै जु होय प्रसन्न आप वर दैन कौं।
तौ [याकौं वर देव हियैं लहि चैन कौ॥ ६०॥
या नर कौ तप करत गयो वहु काल है।
निपट दूबरे अंग न कछू हवाल है॥
इह विधि लै वरदान तापसी कौ दयौ।
तपसी भयो प्रसन्न सुजस जग मैं छयौ॥ ६१॥

कवित्त

ईस अरधंगिनी दिवौकस तरंगिनी तू,
नेम करनी के सुर किनरनि गानी है।
रिद्धि रुकमतो तू प्रसिद्ध कहि सौमनाथ,
आठौं सिद्धि तूही तूही विद्या वरदानी है।
बरनी न जात अकलंकित कला जो तेरी,
जोति थिर चर मै निरंतर समानी है।
बेदन बखानी है भवानी सुखदानी तुही,
रानी त्रिभुवन की हमारे मनमानी है॥ ६२॥

छप्पै

अस्तुति करि इह बिध्ध वहुरि बिक्रम छितनायक।
आयौ अपने नगर निरंतर सव सुखलायक॥
घरघर मंगलचार भए × × ×
× × × सोहै उदार चित।
तौ यह सिंघासन पै हरषि राज कौ करहु नित॥ ६३॥

दोहा

पुतरी नै यौ भोज कौं दीनी कथा सुनाइ।
तब लौ समौ सु टरि गयौ रह्यौ नृपति सिर नाइ॥ ६४॥

छंद हरिगीत

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहि कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है॥
तिहि हित्त कबि ससिनाथ नें रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा मधि दुतिय भइय प्रकास है॥ ६५॥

तृतीय कथा

दोहा

वहुरि महूरत साधि जव दियौ सिंहासन पाइ।
तव सो पुतरी तीसरी वोली वचन बनाइ ॥ १ ॥

हे नृप भोज जु तौ विषै है विक्रम सम दान।
तौ या सिंघासन चढौ साजि हिये अभिमान ॥ २ ॥

कैसौ ताकौ दान है कहि पुत्रका प्रवीन।
कहन लगी सो भूप सौं तीजी कथा नवीन ॥ ३ ॥

मुक्तादाम छंद

उजैन पुरी मधि विक्रम भूप, लसे सुख मै वहुविध्धि अनूप।
मनंमथ के सम रूप निधान, करे नहि भिक्षुक कौ अपमान ॥ ४ ॥

जु होय महीपति उद्यमवंत, हियै जिहके अरु साहस तंत।
जु धीरज बिक्रम औ वल ब्रुद्धि, वसें जिहि मध्य सजै सब सिद्धि ॥ ५ ॥

सु वा सहु देवहु मानहि संक, करे पुनि मद्दित देव निसंक।
करै निहचै उर मै नर जव्व, लहै फल कौ तब काज सरव्व ॥ ६ ॥

ज्यौ हरिचक्र गरुड्ड उदार, बचाय करै हिय जुद्ध मझार।
प्रसंग सु है इहि ऊपर एक, कहौ सुप्रकासित सज्जि विवेक ॥ ७ ॥

हुतौ बढई अरु कोरिय मित्र, नही जिन मध्य बिकार चरित्र।
गयौ इक द्यौस सु कोरिय काज, रह्यौ वढ़ई कछु सज्जित काज ॥८॥

तहा तिहि कोरिय नै डर डारि, लखी इक सुंदर राजकुँवारि।
बिहाल भयौ घर आय उताल, कही निज मित्रहि वात रसाल ॥९॥
जु मै अब वा कहुँ देखहु नाहि, कछू दिन मै मम प्रान पलाहि।
इती सुनिकै बढ़ई सिर नाय, रह्यौ चित चिंततु एक सुभाय ॥१०॥

कह्यौ पुनि कोरिय सों उनि वैन, उपाय कछू करिहों सुखदैन।
दियौ तिनि ताहि गरुड्ड बनाय, रची कल एक अनूप प्रभाय ॥११॥

चहै तितकों कल केवल जाय, दई पुनि चारि भुजा सु वनाय।
चढ़ाय दियौ वह कोरिय बक्र, सजै चहुँ आयुध संजुत चक्र ॥१२॥

गई रजनी जब एक सु जाम, गयौ चढ़ि बाहन पै बलधाम।
हुती वहु राजकुमारि इकंत, लखी तहँ कोरिय ने दुतिवंत ॥१३॥

कही अपनी सजनी सहुँ बात, कही उनि रानिय सों अकुलात।
लख्यौ उनि या कहँ संकत चित्त, इहीं विधि कोरिय जाय सु नित्त ॥१४॥

सुनाय दई नृप कों पुनि बाम, कह्यौ नृप नें सु भलों हुव काम।
जु आवति हैं हरि मूरतिवान, गरुड्ड चढे धरि चारि भुजान ॥१५॥

रही चुपु ह्वै सु कही पुनि प्रात, कुमारिय सों तिहिनें मुसिक्यात।
हुतौ कर्तव्य हमै यह ठीक, विरंचि करी सुभई विधि नीक ॥१६॥

लग्यौ निसि कों वहु आवन जान, न राजकुमारी लखै बिधि आन।
किते दिन बीति गए इहिं भाँति, गई परि कोरिय चित्त सिरांति ॥१७॥

उदंड सु एक महिपति और, विहडन अर्थ करी तिनि दौर।
लियौ पुर घेरि परी नहिं जानि, भई भय भूपति के हिय आनि ॥१८॥

कही अपनी तनयाँ सहँ भूप, बुलावहु सुंदर स्याम अनूप।
कही निसि मे उनि ताहि जताय, गयौ लरिबे कँह बैरिय धाय ॥१९॥

परयौ अति संकट हीन सहाय, महीपति की सु कछू न वसाय।
तवै उनि राजकुमारिय ध्यान, कियौ प्रभु कौ चित मंडि सयान ॥२०॥

गरुड्ड कही प्रभु सों कर जोरि, सहाय करे बिन आवति खोरि।
न है कछू राजकुमारिहि पाप, हियें तुमही कहँ जानति आप ॥२१॥

इती सुनि कें सु गरुड्ड सवार, लिऐं कर चक्र गुबिंद उदार।
कियौ रिपु कौ सब चक्र सँहार, भयो पुर मद्धि अनंद अपार ॥२२॥

भई तब ते सव के अति प्रीति, गुबिद मनोहर सों सप्रतीति।
सहाय करे इहि भाँति गुबिंद, जु सांच हियें मधि होय अनिद ॥२३॥

दोहा

इक दिन चित्यौ चित्त मैं विक्रम नाम नरेस।
है मेरे अब राज की संपति बडी सुबेस ॥२४॥

श्री के आवन जान की पै न जानियत बात।
कित ते आवत जात कित कौन खवावत खात ॥२५॥

है श्री के थिर करन कौ निहचै एक इलाज।
सोई उर मैं धारिहौं तजि कै और समाज ॥२६॥

छप्पै

विधि नें भिक्षुक भाल लिख्यौ जो दारिद पूरन।
ताकौ यह निरधार करै कमला चकचूरन॥
जे प्रावीन उदार तिन्है पुनि प्रगट लखावत।
अरु जो निपट कमीन ताहि उत्तम कहवावत॥
है श्री की चंचल प्रकृति अति शशि हूँ मै नहि थिर रहै।
जिन करी दान सों सिद्धि यह सो प्रवीन जस कौ लहै॥२७॥

दोहा

यौं विचारि कै चित्त मै विक्रम धरनीकंत।
दान पुन्य उत्सवनि कौ किय आरभ हसंत॥२८॥
दान पात्र अरु क्रिया के पात्र कला निधान।
और अनाथ गरीव कौ दिऐ यथोचित दाँन॥२९॥
प्रजा अठारह भाँति की तिनकौ जितौ घुमंड।
छोडि दियौ तिन पै जु हौ वँध्यौ राज कौ दंड॥३०॥
स्वर्ग और पाताल के नगर ग्राम के देव।
जल थल के पुनि देवता हुते जु लाइक सेव॥३१॥
क्षेत्रपाल दिगपाल अरु लोकपाल सुख दैन।
तिन कौ आवाहन कियौ उद्धत विक्रम सेन॥३२॥
किए विधानादिक सवै वलि पूजा के अर्थ।
और बुलावन के लियै पठए मनुज समर्थ॥३३॥
तिन मै ते इक विप्र कू पठये सागर पास।
आँनन कौ जल देवता उर मैं साज हुलास॥३४॥

कुंडलिया

नरवर को वचनाहि कै चल्यौ तहाँ ते विप्र।
पाग उपर्ना धोवती नवल साजि कै छिप्र॥
नवल साजि कै छिप्र तिलक तुलसी की माला।
लई पावरी पहरि प्रगट नित बुद्धि बिसाला॥
बुद्धि बिसाला प्रगट लिऐं चंदन अक्षित कर।
पढे वेद कौ मंत्र नैकु लायौ उर नरबर॥३५॥

बरस भयौ पहचानिकै चढ्यौ नृपति कौ काम।
दरस्यौ द्विज कू दूरि तैं अमर बरुन कौ धांम॥
अमर बरुन कौ धाम सदा सरनागत रक्षन।
लक्षन जाके उदर भरे जल जंतु बिलक्षन॥
लक्षन उत्तम जासु नाहि दूजौ जिहि सरबर।
गंधाक्षत तिह मद्धि डारि दोने तिहि दरबर॥३६॥

दोहा

गंधक्षत सों पूजि कै जोरि जुगल द्विज हत्थ।
देखन लाग्यौ सिंधु की अदभुत सोभ समत्थ॥३७॥

हरिगीत छंद

जल नक्र अड्डे फिरत बड्डे तरल तुंग तरंग हैं।
कहुँ मच्छ अक्षे तिरत लक्षे भरे उरनि उमंग हैं॥
कहुँ मनुज मुख्ये तन अरुष्ये मीन सज्जत जंग है।
कहुँ मुख तुरंगे नर न अंगे उच्छ छरे सुभ ढंग हैं॥ ३८॥

कहुँ सीप संखे जल असंखे दिख्खियैं अबिकार है।
कहुँ रतन रूरे मोल पूरे दिपत सोभ अपार हैं॥
कछु फैंन फैले अहि अमैले डुलत पवन झकोर तैं।
कहुँ तजि न हद्दनि करत सद्धनि निज भयद्दनि जोर तैं॥ ३९॥

सोरठा

यौं सागर छबि देखि बिनती द्विज लाग्यौ करन।
उर आनंद बिसेष कह्यौ पयोनिधि देव सों॥ ४०॥

सवैया

उपजी तुमतें कमला परतक्ष सुबित्त बड़ाई कहा करिऐ।
महिमा पुनि और कहा करियै धरनी सब द्वीप मई धरिऐ॥
अस क्रुद्ध तुमारौ करै परलै जु समौं निरजार महा डरिऐ।
बरजा के जाबक जलद् अहद् जलंनिधि जू जग यौ भरिऐ॥४१॥

पावकुलक छंद

द्विज नै जब यौं करी बड़ाई, तबहुव जलंनिधि सुखदाई।
कह्यौ पयोनिधि नै पुनि तब्बै, द्विज सौ ह्वै कै निकट अगब्बै॥४२॥

मैं विक्रम कौ कहिबौ मान्यौ, उर में अति आनंद सिरान्यौ।
रहत दूर हू अपनौ प्यारौ, तऊ न मन तें छिनु भर न्यारौ ॥४३॥

बिछुरे सज्जन कौ हित भाई, घटत नाहिनै एकौ राई।
रहत दूरि ससि मेघन छायौ, तऊ न कुमदि नेह विसरायौ ॥४४॥

चारि रतन ए लेहु उदारे, झलझलात हैं मानहु तारे।
रंग रंग के गुन करि भारे, दीजौ विक्रम नृपहि पियारे ॥४५॥

जे मै कहत प्रगट दिन देकै ... ... ।
मनबंछित द्रव्यन कौ दायक, इनमै रतन एक दुखघायक ॥४६॥

भोजन देत बियौ मन भावन, सो यह रतन लख्यौ द्विज पावन।
अरु पुनि तीजौ रत्न न झूठो, देत चमू चतुरंग अनूठौ ॥४७॥

चौथौ रतन आभरन रूरे, देत चाहते सोभ समूरे।
चार्‌यौ रतन बिप्र कर लीने, आयौ विक्रम ढिग अति भीने ॥४८॥
नृप कौ चार्‌यौ रतन दिखाए, तिनके वहुरि प्रभाव सुनाए।
सुनि बिक्रम यौं द्विज की बातें, बोल्यौ वहुरि मंद मुसक्यातैं ॥४९॥

इन मै एक रतन द्विज लीजै, नितप्रति निज मनभाए कीजै।
सुनि कै बिक्रम नृप के बैना, बोल्यौ बिप्र सु बिसरि अचैना ॥५०॥

महाराज मैं अपनै घर मै, देखौ पूछि सबै गहि धरमै।
संमत करिकै फिरि मै ऐहौं, ठहरैगौ सु मागि कै लैहौं ॥५१॥

सुनि द्विज की वानी छितिनायक, कही कि जाहु भवन सुखदायक।
पुनि द्विजबर अपने घर आयौ, उर में अति आनंदन छायौ ॥५२॥

घर में बैठ बुलाए सगरे, त्रिय अरु पुत्र वुध्धि करि अगरे।
और पुत्र की नारि सयानी, चौथौ भयौ आप द्विज ग्यानी ॥५३॥

तिनकौ सगरी बात जताई, बोल्यौ बिप्र सजैं चतुराई।
नृप नै मोकौ एक वतायौ, तुम जो कहौ सु लैहुँ सुहायौ ॥५४॥

पहलै सुत बोल्यौ गृह मंडन, लेहु रतन रिपु कौ दल खंडन।
बहुरि बिप्र बोल्यो अनखाएँ, लैहौं धन के रतन सुहाए ॥५५॥

बोलि उठी पुनि द्विज की नारी, भोजन रतन लेहु सुखकारी।
तौलौं पुत्रबधू नै भाख्यौ, भूषन रतन मोहि अभिलाख्यौ ॥५६॥

आपुस मद्धि कलह अधिकाई, तब द्विज नें यह बात उपाई।
लियैं हाथ मै चारयौ रतननि, आयौ बिक्रम नृप पै जतननि ।।५७।।

चारयौ रतन नृपति के आगें, धरि दीनै द्विज ने रस पागें।
अरु पुनि सिगरी बातैं बरनी, निज घर की दरसाई करनी ।।५८।।

सुनि कै नृपति मधुर मुसक्यानौ, आनंदनि उर मैं सरसानौ।
चारयौ रतन बिप्र के कर में, नृप नै दिये दया लखि परमें ।।५६।।

दोहा

चारयौ रतनन कौ लियै द्विज आयौ निज गेह।
भए मनोरथ सबन के बिसरि गए पुनि तेह ।। ६० ।।

है तो मैं जु उदारता ऐसी भोज नरेस।
तौ या सिंहासन चढ़ौ बिलसौ राज सुबेस ।। ६१ ।।

हरिगीत छंद

श्री बदन सिंघ भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहि कुँवर सिंघ सुजान सुंदर हिंदभाल दयाल है।
तिहिँ हित्त कबि ससिनाथ नै रच्चिय सुजान विलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा मधि तृतिय भइय प्रकास है ।।६२।।

चतुर्थ कथा

दोहा

फेरि महूरत देखि जब आइ सिंघासन पास।
चढ़न लग्यौ नृप भोज तब पुतरी कही प्रकास ॥ १ ॥

जो कृतज्ञता तो बिषै बिक्रम नृप के तूल।
तौ या सिंघासन चढ़ौ लहि उर अंतर फूल ॥ २ ॥

कैसी कहि सो कृतज्ञता बिक्रम की अनहूल।
यह सुनि कै अपराजिता बोली नृप सौं मूल ॥ ३ ॥

काव्य छंद

पुरी अवंती नाम तहाँ विक्रम छितनायक।
परदुख खंडन प्रकृति सुख्य मंडन अरिघायक ॥
मनु आखंडल प्रगट आप अवनी पै आयौ।
हाजर बिबुध अनेक बिबिध सुंदरता छायौ ॥ ४ ॥

तिही पुरी के मध्य बसत हौ द्विज इक रूरौ।
चौदह बिद्या ग्याँन कला चौसठन समूरौ ॥
ताकै पुत्र न होइ तबै ताकी बर नारी।
बोली द्विज सौं करौ कछू आराधन भारी ॥ ५ ॥

जा प्रभाव तैं होइ भावतौ पुत्र सु मेरे।
मानहु मेरे बैन पाइ लागत हूँ तेरे ॥
तिय के करुना बचन सुन्यौ यौ बिप्र उचार्यौ।
मैंने तेरौ कह्यौ सत्य उर अंतर धार्यौ ॥ ६ ॥

पै आराधन होइ कौन विधि बित्त विहीनें।
सकल जगत के काज भाँवती बित्त अधीनें ॥
बिद्या सुत अरु सुजस मिलै गुरु सेवा कीनैं।
है निहचै यह बात समझि भामिनि हित भीनें ॥ ७ ॥

पाँच कंत सौ मिली नाम कुंती हुलसानैं।
पुनि पाँचनि तिहिं बधू ताहि सब कोउ न जानैं ॥

यह लोकनि की रीति सती कहि ताहि वखान्यो ।
सुजस मिलै निरधारि पुन्य कौ फल सरसान्यौ ॥ ८ ॥
त्रिय के सिख ए बिप्र हिये में प्रन कौ साध्यौ ।
अपनों कुलदेवता भली विधि सों आराध्यौ ॥
उठि कै न्हाइ प्रभात बिप्र संध्या कौ करिकै ।
द्वादस तिलक लगाइ चित्त मै निहचौ धरिकै ॥ ९ ॥

पद्मासन कौं बंधि करै पुनि प्रानायामै ।
प्रति अंगन पुनि न्यास सज्जिकै जुत आरामैं ॥
हरि की मूरति मंजु ताहि धरि कै निज आगै ।
पूजै गंधादिक निमित्त उर मै अनुरागै ॥१०॥

बाल भोग धरि बिबिधि फेरि आचमन करावै ।
जुत सुगंध तंबूल भाँवना मद्धि खवावै ॥
अष्टोरार सत करै प्रदक्षिन प्रनति सु पाछै ।
बिप्र स्तुति कौ पढै वेद मंत्रन सौं आछै ॥११॥

मधुभार छंद

जय ब्रह्म आप । निर्गुन अताप ॥
अंगनि विहीन । सब बिद्धि लीन ॥ १२ ॥

तुम ही अनूप । हुव मच्छ रूप ॥
सब किय उमंष । सो असुर संष ॥ १३ ॥

लिय चारि वेद । हति अरि अखेद ॥
पुनि ह्वै प्रतच्छ । अवतार कच्छ ॥ १४ ॥

मत्थौ समुद्र । जनु हो अक्षुद्र ॥
सुख सुरन दीन । हत असुर कीन ॥ १५ ॥

अरु ह्वै बराह । संजुत उछाह ॥
उद्धरिय छित्त । परकास कित्त ॥ १६ ॥

हति हिरंनक्ष । कीनो बिपक्ष ।
ही जहि कुंम । अरु करिय धूम ॥ १७ ॥

नरहर अवतार । तुमही उदार ।
प्रहलाद अर्थ । प्रगटे समर्थ ॥ १८ ॥

रक्कस उदंड। किय खंड खंड।
कास्यप हिरन्य। नामा अधन्य॥ १९॥
तुमही विसेष। बावन सुवेष।
डग तीन भाखि। लिय लोक नाखि॥ २०॥
तुमही अदंद। दसरत्थ नंद।
श्रीराम नाम। वर तेज धाम॥ २१॥
बिभ्भीप हत्थ। गहि भरचौ वत्थ।
पुनि लियौ साथ। किय लंकनाथ॥ २२॥
दसकंठ रक्ष। किय वान लक्ष।
जाकौ गुमान। हो अप्रमान॥ २३॥
तुमही सुगात। जमदग्नि तात।
भुज सहस जोर। अरजुन कठोर॥ २४॥
घत्यौ कराल। करि वेहवाल॥
जग मैं विदित्त। यह वात तित्त॥ २५॥
तुमही गुपाल। हुव कंस काल।
खंडे अनेक। खल बाँधि टेक॥ २६॥
तुमही अक्रुद्ध। हौ रूप बुद्ध।
जगमग्ग जोति। प्रति नित्ति होति॥ २७॥
तुमही अदंड। कलकी प्रचंड।
ह्वै हौ गुबिंद। गुन करि अनिंद॥ २८॥
मै तुम्हैं ईस। लखि बिसे वीस।
तुमसौ अधूत। मै चहौ पूत॥ २९॥

दोहा

पूजा करि हरिदेव की ऐसै नित प्रति विप्र।
करै पुत्र की कामना दियौ ताहि प्रभु छिप्र॥३०॥

पुत्र भयौ तिहि विप्र नै वहुबिधि किए उछाह।
प्रेम भक्ति प्रभु की भई सियरानीं उर दाह॥ ३१॥

देवदत्त ता पुत्र कौ द्विज नै राख्यौ नाँउ।
ताहि वधाई दैंन कौ आयौ सिगरौ गाँउ॥३२॥

संस्कार करि सोरही विद्या सुतै पढ़ाय।
बिप्र गयौ परदेस कौ तीरथ दरसन चाय॥३३॥

तोमर छंद

द्विज देवदत्त सु नांम। घर के करै सब कांम।
इक द्यौस औसर पाइ। बन कौ गयौ अतुराइ॥ ३४॥
हित हौंम समिधनि लैन। उर आनियौ ना चैंन।
हौ बिकट बन तिहिं ठार। जिहिं मद्धि जीव अपार॥३५॥
मृग सिंह सूकर ब्याल। चित्रकरु रोझ शृगाल।
लघु जंतु और अनंत। दुरबुद्धि निठुर असंत॥ ३६॥
तिहिं सघन बिपिन मझार। बिक्रम नरेस उदार।
निकस्यौ अचानक आइ। हय नैं दियौ सु गिराइ॥ ३७॥
फटि गए बसन नवीन। रज बलित बदन मलीन।
नहि एकहू नर संग। ह्वै रही गति यति भंग॥ ३८॥
यौं बिक्रमहिं लखि तब्ब। द्विज आइ बिगत गरब्ब।
प्रति अंग तैं रज झारि। लायौ सुनीर सबारि॥ ३६॥
पुनि कियौ नृप की भेंट। बुझि गई प्यास चपेट।
पुनि दौरि कै द्विज जाइ। वन फल अनेकनि लाइ॥ ४०॥
तेऊ धरे नृप अग्र। सो भयउ भच्छि अब्यग्र।
पुनि दियौ पंथ बताइ। बहु दूरि लौ सँग जाइ॥ ४१॥
तहँ ते तनक पुनि दूरि। जब चल्यौ नृप सुख मूरि॥
तब लौ सु फौज बिसाल। आई समीप उताल॥ ४२।
चढि कै महीप तुरंग। सँग लै चमू चतुरंग।
पहुँच्यौ नगर निजु आंनि। दिय दान बहु सुख मांनि॥ ४३॥
नहि देवदत्तहि दींन। कछु बित्त नृपति प्रवीन।
इक दिन सभा मधि आप। यह कियौ नृपति अलाप॥ ४४॥
हमरौ निपट सनमांन। किय देवदत्त सुजांन।
वन मद्धि की सब वात। नृप नै कही मुसिक्यात॥ ४५॥
चरचा सुनी द्विजराज। तिहिं देवदत्त सलाज।
है झूठ कैधौ सत्ति। यह जानिबे कौं अत्ति॥ ४६॥

सुत भूप कौ सुखदाइ। द्विज नै लियौ सु चुराइ।
निरख्यौ न काहू और। राख्यौ सु ऐसी ठौर॥ ४७॥

नृप के परी यह काँन। सुत गयौ खोइ निदाँन।
पुनि कही बिक्रम वीर। उर सज्जिकैं अतिधीर॥ ४८॥

सब ग्रांम ढुंढहु अव्व। तजि मनुज काज सरव्व।
ढूंढ्यौ नगर तिनि धाइ। करिकैं अनेक उपाइ॥ ४९॥

सब भए व्याकुल लोग। नरपत्ति के तजि भोग।
दुचिते भए नरनारि। तिहिं नगर के दुख धारि॥ ५०॥

दोहा

देवदत्त नैं तिहिं समै अपनै जन कौं दीन।
राजपुत्र कौ आभरन लावौ वेंचि प्रवीन॥ ५१॥

अनजांनै सो लै गयो वेचन वीच वजार।
नाँम बाँचि कैं कुँवर कौ हरखित भयौ सुनार॥ ५२॥

करी पुकार सुनार नें आए नृप के लोग।
ताहि बाँधि लीनौ तुरत मारयौ अकरम जोग॥ ५३॥

पद्धरी छंद

तबहीं मनुष्य नै कहिय वात। तुम किहिं निमित्त मो हनत गात।
यह देवदत्त द्विज मोहि दीन। जानौं न कहा उनि कर्म कीन॥५४॥

तब गए नृपति के नर अनेक। जकरे हथ्यार तजि कैं विवेक।
गहि देवदत्त कौ क्रुद्ध पूरि। बिक्रम हजूर लाए सुचूरि॥५५॥

नृप कही अरे द्विज देवदत्त। तै कहा कर्म कीनौं व गत्त।
सुनि कै सु विप्र यौं नृपति वैन। उच्चरयौ आपु इमि दुक्खदैन॥५६॥

महराज भई दुरबुद्धि मोहि। तुव पुत्र हत्यौ मैनें ब छोहि।
भावै सु मोहि तुम देहु दंड। वांधौ कि करौ अव खंड खंड॥५७॥

जे सभा मद्धि हैं जन विसाल। तिनि ओर लख्यौ विक्रम दयाल।
तब सभा निवासिनि कह्यौ क्रुद्धि। दै दंड करो याकौं बिसुद्धि॥५८॥

कर करौ खंड दोऊ छुहाइ। याके उताल निजु कर्मभाइ।
कोउ कहैं धरि सूम देहु। पुनि कहैं घनै हति सीस लेहु॥५९॥

लटकाइ देउ याकौ बधाइ। वहु कहँ देउ पुरै तें कढ़ाइ।
सुनिकैं महीप इमि बिबिध भाष। उच्चरिउ भूप पुनि साभिलाष ॥६०॥
हौं डंड देहु याकौं जु रंच। तौ उरिन हौंउ नहिं सुनहुँ पंच।
यह कहि नरेस नै छोह तज्जि। आदरित कियौ द्विज कौ गरज्जि ॥६१॥

दोहा

सभा निवासी देखि यह बिक्रम नृप की रीति।
बोलि उठे चहुँ ओर तै संजुत निर्मल प्रीति ॥६२॥
उपकारी जो होतु अस जो कृत मानतु आप।
इति द्वै कौ धारति धरनि कै इनि बल अनताप ॥६३॥
नृप नै जब आदर कियौ सुत कौ सोक छिपाइ।
देवदत्त द्विज तब गयौ अपनैं घर हुलसाइ ॥६४॥
लायौ राजकुमार कौं कियौ नृपति की भेट।
बिप्र सुद्ध तक्षन भयौ बची कलंक चपेट ॥६५॥

पावकुलक छंद

द्विज नै निजु बिरतंत सुनायौ।
सुनि कै नृपति अचंभै छायौ।
चक्रत भए सब सभा निवासी।
कौन बुद्धि द्विज नैं परकासी ॥६६॥
जौ कृत्तज्ञता ऐसी तोमै।
तौ सिंहासन चढ़ौ सजोमैं।
जौलौं इतनी कही कहांनी।
तौलौं समौ गयौ सुखदांनी ॥६७॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिंह भुवाल जदुकुल-मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुंवर सिंह सुजाँन सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिहि हित्त कबि ससिनाथ नैं यह किय सुजान बिलास है।
पुतरी सिंहासन की चतुर्थी कथा भइय प्रकास है ॥४॥

●

पंचम कथा

संजुतका छंद

बहुरयौ मुहूरत देखि कै, नृप भोज सुबुधि बिसेखि कै।
चढ़िबौ सिंहासन पै चह्यौ, जयघोप पुतरी यौं कह्यौ ॥१॥

जु महीप विक्रम तूल है, गंभीरता लहि फूल है।
तौ इहिं सिंघासन पै चढ़ौ, अति ही विनोदनि सौं मढ़ौ ॥२॥

तब कही भोज सुभाइ सौं, गंभीरता गहि चाइ सौं।
इहिं भाँति सुनि नृप बैन कौं, पुतरी कही लहि चैन कौं ॥३॥

उज्जैनि नगर अनूप कौ, हौ भूप मनमथ रूप को।
ताकौ सु विक्रम नाम हौ, चौंसठि कलनि कौ धाम हौ ॥४॥

इक द्यौस करि दरवार है, बैठ्यौ हुतौ अविकार है।
ठाढ़े अनेक नरेस हैं, जे बनैं बहु विधि बेस हैं ॥५॥

तिहिं समें औसर पाइ कैं, प्रतिहार नै मधुराइ कै।
कर जोरि यौ विनती करी, इक द्वार आयउ जौहरी ॥६॥

अब है हुकम तौ आवई, नहिं आपनैं घर जावई।
विक्रम कही कि बुलाइ लै, प्रतिहार गयउ उताइलै ॥७॥

लायौ सु वाहि लिवाइ कै, राख्यौ खरौ समुहाइ कैं।
प्रतिहार बहुरि पुकारि कैं, इम उच्चर्यौ मनुहारि कै ॥८॥

यह जौहरी नति सज्जई, लखियै इतै पर कज्जई।
सुनि कै सु विक्रम राज नैं, किय डीठि उतहिं सलाज नै ॥९॥

लिय ताहि निकट बुलाइ कै, नृप नै कही मुसिक्याइ कैं।
जो हैं जवाहर रावरौ, दरसाइए लहि चावरौ ॥१०॥

उनि डबा कंचन खोलि कै, दरसाइयौ सु कलोलि कै।
तिनकौं बिलोकि नृपाल नै, सब लिये मोल दयाल नै ॥११॥

पुनि एक रतन नवीन कौं, दरसाइयौ परवीन कौं।
जिहिं रत्न के परकास तैं, नसिगौ तिमर चहुँपास तैं ॥१२॥

मनहूँ उग्यौ छितिनंद है, अति ही सुआनंद कंद है ॥
घन अटल पटल प्रहारि कै, अपनी कला सब धारि कै ॥१३॥

सोऊ लियौ अवनीस नैं, दै कोटि बित्त अरीस नै।
अरु कही तासहु यौं तबै, तो पास और किते सबै ॥१४॥

इहिँ भाँति सुनि नृप बात कौ, बोल्यौ सु लहि निजु घात कौ।
दस रत्न मो घर मद्धि है, ईहिं बिद्धि की दुति लद्धि है ॥१५॥

दस कोटि ताकहँ भूप नै, दिय बित्त बुद्धि अनूप नें।
सो अवधि कौ दिन चारि की, डगरचौ सुगति उनहारि की ॥१६॥

तिहिँ संग नृप नै आपनौं, पठयौ मनुज जस थापनौ।
दोऊ चले तिहिं ग्रॉम कौ, बतरात सज्जि अरॉमकौं ॥१७॥

तिहिँ ग्राँम मद्धि पहुँच्चियौ, उर कौं सु पुर अति रुच्चियौ।
जिहिँ बिबिध भाँति बजार है, सब बस्तु बिगत बिकार है ॥१८॥

अतिही बिलंद अवास है, जहँ चलत सुखद बतास है ॥१९॥

कहुँ फिरत तरल तुरंग हैं, कहुँ तुंग समद मतंग हैं।
कहुँ रत्थ सीमनिधांन हैं, छित फिरत मनहुँ बिमान हैं ॥२०॥

अरु फूल फल सब ढंग के, दरसै जहाँ बहुरंग के।
यौ छबि लखतु निजु गेह मैं, पहुँच्यौ सु मंडित नेह मैं ॥२१॥

दस रत्न ते तिहिँ चौप सौ, नृप के नरहि दिय ओप सौं।
अरु कही चौकस राखियौ, कहुं पंथ मैं मति भाषियौ ॥२२॥

दोहा

दसौ रतन लै कै चल्यौ नृप कौ नर अतुराइ।
देखै तौ सब गगन कौ लियौ सघन घन छाइ ॥२३॥

मधुभार छंद

नभ मै जलद्द, दरसौ अहद्द।
मनु असित कद्द, मनमथ द्विरद्द।
बग चमचमंत, जनु सेत दंत ॥२४॥

गज्जनि गराज, अतिभयद साज।
झिल्लिन ब हीर, सो धुनि जँजीर ॥२५॥

अति निराधार, मद के प्रकार।
बिखर्यौ अधार, नहि पथ सम्हार ॥२६॥

करि बहु उपाइ, धरि धरनि पाइ।
उज्जैंनि तीर, पहुँच्यौ सधीर ॥२७॥
हेरौ सरित्त, हुव नर सुचित्त।
दीरघ्घ पार, जल के विथार ॥२८॥

गहराति घोर, लहि नीर जोर।
टुट्टे विरच्छ, जल मैं प्रतच्छ ॥२९॥
ते बहे जात, रंच न थिरात।
सूकर शृगाल, चीते कराल ॥३०॥
मृग वेहवाल, नाहर बिसाल।
अरु रिच्छ जाल, पाठे उताल ॥३१॥
तेऊ अनंत, जल मैं बहंत।
अनगिनत व्याल, मुख जहर माल ॥३२॥

भयदानि भेष, नक्रन सु असेष।
बहुभाँति मच्छ, अरु कठिन कच्छ ॥३३॥
कट्टत किनार, तिच्छन प्रसार।
नर देखि ताहि, उठ्यौ कराहि ॥३४॥
नहिँ कछु बसाइ, मन कलमलाइ।
किहिँ बिद्धि याहि, तरियै उछाहि ॥३५॥

नृप कौ ललाम, बिगरै न कांम।
यौ मन मझार, सज्जतु बिचार ॥३६॥
तव लग्गि एक, नर जुत बिवेक।
उनि पास आइ, भाख्यौ सुभाइ ॥३७॥

दोहा

कित तैं आयौ कौन तू कित जैहै कहि बात।
यह सुनि भूपति कौ मनुज बौल्यौ पुनि अकुलात ॥३८॥

औंडी बहति तरंगिनी, कैसे पहुच्यौ पार।
ठाढ़ौ याके कूल पै संकतु करतु विचार ॥३९॥

काहू बिधि सौं पार तू किनि पहुँचावै मोहि।
मैं दोऊ कर जोरि कै निपट निहोरौं तोहि ॥४०॥

मुक्तादाम छंद

कहे जब यौं नृप के नर बैन, तबै उचर्‌यौ वह लोहित नैन।
जरूर कहा इति तो कहँ काज, कहै किनि तू लहि बुद्धि समाज ॥४१॥
अरे छिन एक इहाँ ठहराह, इतै उत डीठि परै किनु थाह।
नहीं जल कौ करिए इतिबार, कहैं इहि बातहि लोग उदार ॥४२॥
बिसाल तरंगिनि मै तरियै न, वड़े नर सौ कबहू लरियै न।
नहीं उनिसौ करिऐ सुबिरोध, कहैं सिगरे जिनि मध्य प्रबोध ॥४३॥
इती सुनिकै नृप कौ नर फेरि, उचारिउ ता सहुँ सनमुख हेरि।
कही तुमनै यह सत्य सुनाइ, समौ लखियै करियै तिहि भाइ ॥४४॥
बली इकतै इक औसर होत, विचारि तिहू लहि बुद्धि उदोत।
कही इति या विधि सौ समझाइ, तबै उचर्‌यौ वह चौंप बढ़ाइ ॥४५॥
कहा कहि तो कहँ काज उताल, बिचारहुँ मै मन में इहि काल।
इती सुनि कैं नृप कौ नर आप, फिर्‌यौ उचर्‌यौ चित मंडित ताप ॥४६॥

दोहा

बिक्रम धरनीकंत नै मोहि पठायौ कांम।
चारि दिना की अवधि दै मैं आयौ इहि ठाम ॥४७॥
रतननि कौ बिरतंत पुनि कह्यौ ताहि समझाइ।
ए नृप नर के बचन सुनि, वह वोल्यौ ललचाइ ॥४८॥

छप्पै

मोहि कछू जौ देहि बित्त यह बात चित्त धरि।
तौ तौकौ छिन माहि, पार धरि देहुँ चित्त करि।
सुनिकै वाकें बैन चैन उर आनि ततच्छिन।
पाँच रतन तिहिं हत्थ दिए नृप मनुज बिचक्षन।
उनि लै कै पाँचो रतन बर काठ लाइ नौका रचिय।
तिहिं बिच्चि ताहि वैठारि कै तरल तरंगनि तार दिय ॥४९॥

पहुँचि नदी के पार चल्यौ सो अति तररॉनौ।
इत उत हेरत नाहि हुकम के हत्थ विकानौं।
गयौ नगर कै निकट वहुरि तन बसन वनाए।
पैठ्यौ पुरी मझार किए अपनै मन भाए।
पुनि जाइ भूप के द्वार पर आपु रह्यौ ठहराइ नर।
लखि याहि नृपति सौ जाइकै अरज करी प्रतिहारवर ॥५०॥

दोहा

रतन लैंन पठयौ हुतौ जो मनुष्य महराज।
सो नर ड्यौढ़ी पै खड़ौ आइ पहुँच्च्यौ आज ॥५१॥
आवत देख्यौ द्रगन सौं नृप नैं कही सुभाइ।
आवन दियौ हजूर तब छरीदार नैं जाइ ॥५२॥

तोमर छंद

नृप के हजूर सु जाइ, पुनि मनुज सो अतुराइ।
धरि पांच रतनिनि आप, थित ह्वै रह्यौ अनताप ॥५३॥
लखि पंच रत्न भुवाल, तासौं कह्यौ तिहिं काल।
अरु और हैं कित पंच, कहि बात बिगत प्रपंच ॥५४॥
इमि सुनत नृप के बैन, उचर्‍यौ उचाइ सु नैन।
किय हुकम जो महाराज, सो सत्य करिबे काज ॥५५॥
तटिनी उतारन अर्थ, मै दिए ताहि समर्थ।
नृप कियौ काज सम्हारि, उर मद्धि यह सुबिचारि ॥५६॥
है राज को फल एह, नहि टरे हुकम अदेह।
अरु ब्रह्मचर्य उदार, तप कौ सुफल अबिकार ॥५७॥
बिद्यानि कौ फल दाॅन, पुनि भोगवै सुखवाॅन।
जो राज सासन हाॅनि, सो निपट ही दुखदाॅनि।
बहु नरनि के घर बित्त, पै हुकम दुर्लभ नित्त ॥५८॥
यौ सुनि सुबिक्रम भूप, पुनि ह्वै प्रसन्न सरूप।
बचि रहे रतन जु पाॅंच, ते दिये ता कहँ साॅंच ॥५९॥

दोहा

जौ इतनी गंभीरता तो मै भोज भुवाल।
तौ या सिहासन लसौ सोधि मुहूरत हाल ॥६०॥

हरिगीत छन्द

श्री बदन सिह भुवाल जदु-कुल-मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुंवर सिह सुजाॅन सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिँ हित्त कबि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिंहासन की कथा हुव पंचमी परकास है ॥६१॥

षष्ठ कथा

सवैया

फिरि औरही औसर भोज महीपति आयौ सिंहासन पास जबै ।
मन मैं यह चाह्यौ कि पाय धरौं छठँई पुतरी उठि बोली तबै ।
ससिनाथ कहै जु मनोरथ और के पूरे करैं इहि भाँति सबै ।
करि तौ वरराज समाजनि कौ सुबिराजहु जू महाराज अबै ।।१।।

अब तू कहि कौन के कौने मनोरथ पूरे करे चित चाइनि सौं ।
तब लागि कथा कौ उचारन पूतरी बांनी मनुष्य प्रमाननि सौं ।
इक बिक्रम भूप उजेंनि कें मद्धि भयौ पुरुहूत के दाइनि सौं ।
जम जाके दिगंतनि जागे रहै सुख पागे रहैं नित पाइनि सौं ।।२।।

दोहा

या सिंहासन थित्त हो सो बिक्रम अबिकार ।
मंत्री बकसी आदि सब ठाढ़े हे सिरदार ।। ३ ।।

तिहीं समैं प्रतिहार नै निज सिर धरि जुग हत्थ ।
अरज करी महराज सौं औसर जानि समत्थ ।। ४ ।।
महाराज बिनती करतु बनपालक ह्याँ आइ ।
बन बिहार कौ थांन सब फूलि फल्यौ छबि छाइ ।। ५ ।।

नाराच छंद

अनेक बीजपूर नारिकेल औ रसाल हैं ।
पुंनाग चंपका असोक रंभ औ तमाल हैं ।
कंकोल के समूह औ अकोल तुंग ताल हैं ।
लवंग और केतकी गुलाब कुंद जाल हैं ।। ६ ।।

प्रसून लाल सेत स्यामँ पीत हैंम रंग हैं ।
घने विचित्र बर्न के चरित्र चारु ढंग हैं ।
फले सहस्र के सहस्र और हू विरच्छ हैं ।
अलिंद बृंद ठौर ठौर गुंजईं प्रतच्छ हैं ।। ७ ।।

करंत कूक कोकिला मयूर मोद मंडिकै।
बिहंग औरहू घनै रटंत त्रास छंडिकै।
बिबिध्धि भाँति की जहाँ सुगंध की झकोर है।
बसंत की बहार मैं बिलास चारि ओर हैं॥ ८॥

इतीक चोबदार कौ उचारि कॉन धारि कै।
महीप नै प्रधान सौ बखानियौ निहारि कै।
बसंत के समाज के दराज साज सज्जिकै।
करौ अरज्ज आनि आज और काज तज्जिकै॥ ९॥

सच्चिब्ब नै उताल ही मनुष्य कौ बुलाइ कै।
कही कि जा गुलाब नीर तुंग लै भराइ कै॥
गुलाल कुंकुँमादि के सुढंग रंग चाइकै।
अबीर हैम पत्र चूरि चंद्रकै मिलाइकै॥ १०॥

घिसाइ चारु चंदनै रखा उहाँ बनाइकै।
त्रियाउ बार अंगनानि कौं इहाँ सजाइ कै॥
मृदंग ताल बीन डफ्फ ढोलकी सुहावनी।
रबाव और बाँसुरी नरेस कौ रिझावनी॥ ११॥

उतंग रंग रंग के दुरंग राज द्वार पै।
खरे करौ अनेक जौ नचंत नित्त थार पै॥
जराव के नवीन साज साजि अंग अंग मैं।
खरे करौ मतंग जे रहैं सदा उमंग मैं॥ १२॥

मँगाउ स्यंदना अनिद जे प्रभा अमंद के।
मलूक डोल पालकी इलाज काम दंद के॥
कसै हथ्यार पंति पंति रेनि द्योस जग्गनै।
टरै न राज बैन तै सनेम प्रेम पग्गनै॥ १३॥

दोहा

सकल तियारी करि सचिव नृप कै आगै आइ।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयौ बोल्यौ औसरि पाइ॥ १४॥
सब बसंत कौ साज अब है हाजर महराज।
चित मै रुचै सु कीजियै बली गरीब निवाज॥ १५॥

छप्पै

सुनि मंत्री के बैन बिक्रमादित्य सु नरवर।
चल्लव चढ़ि मतंग संग सेना लिय सव्बर॥
उत्तम रांनी और चली सत्यै अभिरामिनि।
पद्मिनि चित्रिनी और संखिनी हस्थिनि कामिनि॥
अरु नृत्यन वारी बिबिधि तिय जे कबित्त समझै निपट।
सजि भूषन कंचन मनि जटित चलीं अंग रंगीन पट॥१६॥

क्रीडाबन के निकट जाइ चहुं और फौज किय।
इक्क पुरुष नृप आप और त्रिय संगम बल्लिय॥
पैठ्यो बिपन मझार सहज उद्दार चित्तमति।
मनहुं मत्त मातंग सिंधुरिनि मद्धि मंद गति॥
अरु है नाटक अवतार जन अंग बसन भूषन बिबिधि।
लहि सार सकल संसार कौ हुव बिक्रम आनंदनिधि॥१७॥

संजुता छंद

कहुं भूप नारिनि संग मैं, निज लेत फूल उमंग मैं।
कहुं रमत नीर बिहार मैं, अति अमल ताल उदार मैं॥१८॥
कहुं लसत झूलन झूलि कै, तिय संग भूपति फूलि कै।
कदलीनि मंडल मै कहूँ, सरसैं न अरसैं नेकहूँ॥१९॥
कहुँ पुहुप गुच्छनि खेलिकै, बिहसै विनोदनि झेलिकै।
लघु वृक्ष उप्पर चढ़िकै, कहुं लसतु आनँद मद्धिकै॥२०॥
कहुं तरुनि मंडल बाँधिकै, नृप सौ मनंमथ नाँधि कै।
मुसिक्यावति मृदु बतराति हैं, लै चिबुक अति इतराति हैं॥२१॥
कोउ कहति बचननि बक्र कौ, सो नाहि नैं सुख सक्र कौं।
अरु घनी द्वै पुनि अर्थ के, उचरै बचन निजु अर्थके॥२२॥
अरु अन्य उक्तिनि कौ कहै, त्रिय घनी घातनि कौ लहै।
चहुँ ओर ते चित हर्षई, नृप पै सुफूलनि वर्षई॥२३॥
अरु घनी कामिनि जाइ कै, लिपटै लतनि ऋतुराइ कै।
तिनकौ नृपति गहि लाइकै, सज्जे मनोरथ चाइकै॥२४॥

कहुँ नचति आगै कामिनीं, जनु चपल चमकति दामिनीं।
दुरि खुलत बदन अमंद है, घन बसन मधि जनु चंद है ॥ २५ ॥

बहु बजैं ताल मृदंग हैं, मुहँचंग महुवरि संग हैं।
अरु बज्जई बर बीन है, प्रतिपलक तांन नवीन हैं ॥ २६ ॥

नृप रीझि सुवरन देतु है, मनि जल जहाँ रस हेतु है।
इहि भाँति विक्रम राज नैं, बिलस्यौ बसंत सलाज नैं ॥ २७ ॥

सोरठा

इहिं विधि नृपहि निहारि, इक तपसी तहँ छीन तन।
जप तप सकल बिसारि, मन मैं यों चिंतन लग्यौ ॥ २८ ॥

सवैया

आँनन चंद समान अमंद विलोचन पंकज से छविधारी।
कुंदन के रँग कौ निदरैं तन जोवन जोति महा सुखकारी।
निंदत केस अलिंदन कौ कुच श्रीफल तूल नितंब सुभारी।
बैंन पियूप से भूषन राइ त्रियानि के मद्धि सदाँ मनहारी ॥२९॥

यौं तप सज्जत बीति गए बहु वर्ष सकेलिक वा कहु लीनौ।
सो जग कौ मुख पाइ निरंतर मैंने अयानप सौं तजि दीनौं।
देह गई घटि भूषन तैं बसि रूंखन मद्धि घनौ दुख कीनौं।
और लखै अब ह्वै है कहा दरसै तिय हौंउँ वियोग बिहीनौ ॥३०॥

दोहा

जा तिय दरसन परस तैं सरसतु हियै अनंद।
इत उत चित विचरै नही भूलि जात छरछंद ॥३१॥

यातैं हौ नृप के निकट जैहौं निपट उताल।
यौ विचारि कै तापसी आयौ जहँ भूपाल ॥३२॥

ता तपसी सौं भूप नैं कह्यौ मंद मुसिक्याइ।
क्यौ आए सो आपनौं कहौ काज समझाइ ॥३३॥

जब यौं विक्रम नै कह्यौ तिहिं तपसी सौं बैंन।
साहस करि तब तापसी बोल्यौ आप सचैन ॥३४॥

पावकुल छंद

महाराज सुनियै मों बांनी। मो पै हर्षित भई भवांनी।
तानैं कही जाइ तू ह्यांतैं। विक्रम नृपति समीप सिहातैं ॥३५॥

जो आज्ञा दैं तो कौं राजा। इच्छाफल दै करिहैं लाजा।
सुनिकैं देव वचन हुलसायौ। महाराज तेरै ढिग आयौ ॥३६॥

तपसी बचन सुनत छितिनाइक। चित मैं यौ चित्यौ सुखदाइक।
यानैं तप करि सिद्धि न पाई। त्रियनि बिलोकि चपलता छाई ॥३७॥

सहज बिलोकनि चित्त चुरावै। मृगनैनिनि के प्रगट सुभावै।
अरु मुसुक्याइ कटाछनि मारैं। तब कैसै नर धीरज धारैं ॥३८॥

एहैं विषय अंत दुखदाई। इनतै होति न कछू भलाई।
तऊ ज्ञानवंतनि कै खटकै। उर मैं कछु न त्रियनि कौं लटकै ॥३९॥

भूपति यौं बिचारि कै मन मै। तपसी सौ बोल्यौ पगि पन मैं।
मो सौं कही देव नै ऐसै। चाहतु भोगनि बकहु अनैंसै ॥४०॥

नृप पुनि बात बिचारी रूरी। याकी इच्छा करिहूँ पूरी।
काहें तें कि बात चलि आई। है बड़ेन की यही वड़ाई ॥४१॥

प्लवंग छंद

रटतु पपीहा निपट तृषा सरसाइ कै।
करतु मनोरथ मेघ नीर बरसाइ कै।
यासौं वासौं कछू न नाँतौ नेह है।
है वड़ेन की रीति यही अनतेह है ॥४२॥

नृप नै यौं उर मद्धि विचार बिचारि कै।
दीनौ नगर वसाइ नवीन सँवारि कै।
विविधि बनाए धाम महा मनमौंहनै।
सकल राज के साज बनाऐ सौहनै ॥४३॥

ताहि राज अभिषेक कियौ नरपाल नै।
वारनारि सौ दई सुबुद्धि कृपाल नै ॥
तपसी भयौ प्रसन्न मनोरथ पाइकैं।
बिक्रम अपनैं धाम पधारौ चाइकैं ॥४४॥

दोहा

जौ तेरी सामर्थि है इहिं विधि भोज नरेस ॥
तौ या सिंहासन चढ़ौ सजिकै साज सुवेस ॥४५॥

सोरठा

जब लौं इतनी बात, पुतरी नैं नृप सौं कही ।
गई मुहूरत घात, अवनीपति चुप ह्वै रह्यौ ॥४६॥

हरिगीत छंद

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुलमुकुट गुननि बिसाल है ।
तिहिं कुंवर सिंह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है ।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ नैं रच्चिय सुजाँन विलास है ।
पुतरी सिंहासन की कथा छटई भई परकास है ॥४७॥

सप्तम कथा

दोहा

भोज मुहूरत साधि पुनि गयौ सिंहासन पास।
मंजुलघोषा पुत्तरी वोली मंडि बिलास॥ १॥

विक्रम सम साहस हियैं तौं सिहासन राजि।
यह सुनि पुतली को वचन बोल्यौ नृप छबि छाजि॥ २॥

कैसौ साहस कहि अवै यह सुनि पुतरी फेरि।
बोली भोज भुवाल सौं सन्मुख चितवनि हेरि॥ ३॥

पद्धरी छंद

उज्जैनि नाम नगरी उदार, बिलसंत वसुमती कौ सिंगार।
तिहि मद्धि बीर विक्रम नरेस, सरसंत हुतौ मानहु सुरेस॥ ४॥

जाके न राज मैं इती त्रास, सब बर्न आचरन निजु विलास।
अरु करत रहत ग्रंथनि बिचार, नित चाह धर्म की निरबिकार॥ ५॥

सब करत पाप को भय निदांन, इक चाह किर्त्ति की सुखनिधान।
उपकार पराए के निमित्त, जहँ लहत कष्ट नर हित सहित्त॥ ६॥

अरु सत्य बैन कौ लोभ चित्त, निंदा बखान मैं मौन वित्त।
परमातम की चिंता इकंत, अरु निज सरीर निंदा करंत॥ ७॥

संपति अनित्य जांनैं प्रवीन, हत्थनि उदारता कुमति हीन।
सुंदर मनुष्य जुत सत्व सील, नहिं करत कर्म उत्तमनि ढील॥ ८॥

तिहिँ नगर मद्धि हो धन्य नांम, व्यापारवंत इक गुन ललाम।
निजु संपति कौ नहिं ताहि ज्ञांन, रच्च्यौ विरंचि नैं इहि प्रमानु॥ ९॥

चहिए जु बस्तु कछु जाहि जब्ब, तिहिँ भवन मद्धि लखियै सु सब्ब।
इक दिन बिचार इमि करचौ धन्य, व्यापारवंत मोसौ न अन्य॥ १०॥

मैं किए चाहते सकल काज, पै सज्यौ नांहि परलोक साज।
ए सब बिलास मो मत बिरत्थ, परलोक सजे विनु सॉच गत्थ॥ ११॥

जौ भई लक्ष्मी कांमदांनि, पग सत्रुनि के सिर दिए जांनि।
अरु रह्यौ कल्प लौं थिर सरीर, तौ कहा जपे जू वल्लवीर॥१२॥

यौ चित बिचारि कैं धन्य आप, किय दाँन पुन्य विधि सौं अताप।
करि धर्म गयौ तीरथन फेरि, जंजाल जगत कौ निजु निवेरि ॥ १३ ॥

पहुँच्यौ समुद्र कें निकट जाइ, बैठ्य जहाज मैं दुख भुलाइ।
पुनि और द्वीप मे जाइ एक, तहँ लख्यौ देव जुत ग्रह विवेक ॥ १४ ॥

तिहिं देवधाँम कें अग्रभाग, निरख्यौ सु चंद्रमनि कौ तडाग।
जिहि मद्धि अमल जल कमल वृंद, खिलि रहे भ्रमर गुंजत अदंद ॥१५॥

बिलसंति चक्रवाकनि कतार, कलहंस राजहंसनि वहार।
टिट्टिभ कुलंग चात्रक रटंत, जल कुक्कुट सारस धुनि करंत ॥१६॥

फरहरति सुखद सीतल समीर, सरसाति सोभ सर तीर तीर।
जहँ प्रगट मोर नच्चत सुढंग, अनगनित मोरनी लिऐं संग ॥१७॥

हुव चक्रित अचंभौ यह निहारि, पुनि लग्यौ और देखन विचारि।
जौ लखै देव गृह बाम ओर, है सिला मद्धि कौतिक अछोर ॥१८॥

है एक पुरुष अरु एक नारि, धर जुदे और कटि परी नारि।
तिहिं देव रचे ते दिव्य रूप, सत्पुरुष परिच्छा हित अनूप ॥१९॥

अरु और सिला मैं लिखे अंक, बाँचे सु धन्य नैं ह्वै निसंक।
जौ सत्यवान बलि देइ सीस, तौ जिऐं जुगल ए बिसे वीस ॥२०॥

काव्य छंद

पुनि चित्यौ चित धन्य दैव की अति विचित्र गति।
अवनी देहि बनाइ बिगारै बनी सुद्ध मति।
सकल चराचर रचै बात यह जाहर जग मैं।
है बिरंचि निरधार बली बलवंतनि मग मैं ॥२१॥

यौं बिचारि कैं धन्य न्हाइकै तीरथ सगरे।
आयौ निज पुर मद्धि छाँडि पापनि के झगरे।
ब्रह्म भोज करवाइ बस्त्र आभरन अनेकनि।
दिए हिए मैं हर्षि सज्जिकै परम विवेकनि ॥२२॥

फिरि बिक्रम नृप पास गयौ सो धन्य प्रवीनौ।
विबिधि बस्तु लै भेट चित्त मैं निपट अधीनौ।
राज द्वार पै जाइ छरीदारनि सौं भाख्यौ।
महाराज सौं कहौ धन्नि दरसन अभिलाष्यौ ॥२३॥

छरीदार नै जाइ अरज कीनी हित भीनै।
धन्य साह महाराज द्वार ठाढ़ौ प्रन कीनै।
प्रतीहार के बैन सुनत नृप नै बुलवायौ।
पहुँच्यौ धन्य हजूर सबै बिरतंत सुनायौ ॥२४॥

हिऐं अचंभौं माँनि भूप पुनि बोल्यौ बानी।
आउ धन्य जी साह दैव की अकह कहांनी।
हम तुम दोऊ तहाँ चलैंगे लखन तमासौ।
टरि जैहै निरधार चित्त कौ सिगरौ साँसौ ॥२५॥

बहुरि धन्य कौ संग लिऐं विक्रम छितिनाइक।
पहुँच्यौ सागर तीर पराऐ दुख कौ घाइक।
लख्यौ अछुद्र समुद्र तरल जहँ तुंग तरंगैं।
उद्भट बिहरैं ग्राह कहूँ अहि सज्जत जंगैं ॥२६॥

तिहि पयोधि के मद्धि बैठि कै पोत मझारैं।
दोऊ पहुँचे तहाँ पंथ के त्रास बिसारैं।
बिक्रम नै निज पगनि फटिक कौ मंदिर ढुवान्यौ।
तिहिं मधि दुर्गा रूप देखि ढिग धन्यहि टेन्यौ ॥२७॥

त्रिय अरु पुरुष कबंध सिला के बिच्च निहारे।
और सिला मैं लिखे अंक ते उर मैं धारे।
अच्छर पढ़त प्रमाँन कृपा नृप कै सरसाई।
चित मैं कियौ बिचार धन्य कौ कछु न जताई ॥२८॥

हैं उपकार समर्थ जु नहिं उपकारहि सज्जैं।
तिनकौ जीवन वृथा जगत उपजे किहिं कज्जै।
यौं बिचारि कै भूप जाइ तिहिं सरवर न्हायौ।
दिए दान बहुबिद्धि चित्त संका नहिं लायौ ॥२९॥

सोरठा

चंदन अक्षत फूल विक्रम लै निजु हत्थ मैं।
ह्वै उर मै अनुकूल दुर्गा कौ पूजन कियौ ॥३०॥

पुनि दोऊ कर जोरि दुर्गा की सुस्तुति पढ़ी।
मन मै प्रेम बटोरि निपट कपट्ट बिसारि कै ॥३१॥

त्रिभंगी छंद

श्री जय जय चंडी हरष उमंडी । त्रिभुवन मंडी जोति रहै ।
तूही हिमकर मैं पावक झरमैं दुति दिनकर मैं होति रहै ।
तूही पुनि जल मै अमृत अमल मै तुही कमल मैं प्रगट लसै ।
तू सुंदर धरनी कंचन बरनी शंकर घरनी अंग बसैं ॥ ३२ ॥
बसि हरि के ही मै हरषति जी मै प्रगट सही मैं पहिचानी ।
तूही विधिरानी बेद बखानी सिद्धि निधानी वर बाँनी ॥
गॉनी सैंनाँनी तुही सयानी कथा कहॉनी परबाँनी ।
अब किरपा कीजे जग जस लीजे हँसि बर दीजे सरबानी ॥ ३३ ॥

बड़ी चौपाई

यौ करिकै नृपति बड़ाई जब ही खग्ग ग्रीव पै राख्यौ ।
कर लीनौं थामि देवि नै तब्वै कह्यौ माँगि अभिलाष्यौ ॥
अब जौ प्रसन्न तू भई भवाँनी मोहि यही बर दीजै ।
ये दोऊ जियै राज कौ पावै जग मै जस कौ लीजै ॥ ३४ ॥
पुनि कही देवि नै बाँनी परगटि मै ही ख्याल बनायौ ।
है किधौ नाहि सत्पुरुष अवनि पै सु तू लख्यौ छबि छायौ ॥
सो अंतरधान भई कहि देवी बिक्रम निजपुर आयौ ।
अति मंगलचार भयौ घर घर मे नृपति कनक बरसायौ ॥ ३५ ॥

दोहा

जौ तोमैं सामर्थि है ऐसी भोज नरेस ।
तौ या सिंहासन चढ़ौ तजि कै कपट क्लेस ॥ ३६ ॥

सोरठा

भोज ह्वै रह्यौ मौन पुतरी नै जब यौ कह्यौ ।
चढ़ै सिंहासन कौन रच्यौ मुहूरत टरि गयौ ॥ ३७ ॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि बिसाल है ।
तिहि कुँवरसिंह सुजाँन सुंदर हिदभाल दयाल है ॥
तिहि हित्त कबि ससिनाथ नै रच्चिय सुजाँन बिलास है ।
पुतरी सिंहासन को कथा यह सप्तमी सु प्रकास है ॥ ३८ ॥

अष्टम कथा

पावकुल छंद

भोज भूप हरि कौं आराधै। आयौ फेरि मुहूरत साधैं।
पाइ सिंहासन पै कौं धारयौ। लीलावति नै बचन उचारयौ ॥१॥
ऐसौ होइ जु पर उपकारी। सो सिंहासन चढ़ै सुखारी।
कहि मोसौं उपकार कहांनी। जो तेरे मन मैं हित सांनी ॥२॥

सोरठा

यह सुनि नृप की बात लीलावति पुतरी बहुरि।
कहन लगी लहि घात भोज बसुमतीपाल सौ ॥३॥

चौपाई

पुरी अवंती मद्धि बिराजै। बिक्रम नृपति सहित सुख साजै।
एक समैं तिनि दूत पठाए। ते सब देसन देखन धाए ॥४॥

दोहा

गाइ निहारति नॉक सौ, ग्रंथनि पंडित लोइ।
दूतनि सौं नृप देखई, नैंननि सौ सब कोइ ॥५॥

मुक्तादाम छंद

गयौ जिनमैं इक दूत प्रवीन। जहाँ कसमीर सुदेस नवीन।
तहाँ निरख्यौ तिनि एक तड़ाग। खुदाइ वहौ सु किहूँ बड़भाग ॥ ६ ॥
न नीर रहै तिहिं ताल मझार। धनिक्क किए निजु कोरि प्रकार।
भई इक द्यौस सु बाँनि अकास। परी तिहिं कै पुनि काँन प्रकास ॥ ७ ॥
जुवत्ति सलक्षन कौनौ होइ। करै बलिदान रकत्त बिलोइ।
तड़ाग रहै यह तब्ब सनीर। सिवारबिहीन सुमिष्टि गँभीर ॥ ८ ॥
रहै नित नीर न और उपाइ। तहैं इह बानिक झूठ सुभाइ।
तबै ब्यवहारिय नै अतुराइ। कह्यौ दस भार सुबर्न मगाइ ॥ ९ ॥
पुरुख्ख सु एक धरयौ तिहि थान। जहाँ क्रतु मंदिर हो दुतिवांन।
तहाँ नर आवइ भोजन काज। कहै वह तासहुँ ढीठ अलाज ॥१०॥
जुवत्ति सलक्षन कौ नर प्रान। तजै अपनै मन सौ लहि ग्यांन।
सुकंचन कौ यह लेइ पुरुष्ष। नही उर आनइ रंचक दुख्ख ॥११॥

सुनें सब पै नहिं कोउब लेलत। सरीरनि सौ अति ही करि हेत।
निहारि सु कौतिक कौ वह दूत। पुरी अपनी पहुँच्यौ मजबूत ॥१२॥
गयौ पुनि बिक्रम के दरबार। कह्यौ तिन कौतिक सुद्ध उचार।
महीपति नै तिहिं के सुनि बैन। कह्यौ हमहूँ चलिहै सुख दैन ॥१३॥
चल्यौ पुनि बिक्रम लै तिहिं संग। तहाँ पहुँच्यौ चित सज्जि उमंग।
सरोवर सुंदर चारिहु ओर। बनै बँगला तिहिं कूल कठोर ॥१४॥
बिबिध्ध घनें जहँ वृक्ष बिलंद। अनेकनि रंग पुहुप्प अमंद।
हजारनि बुल्लत बानि बिहंग। बसंत बहार समान सुढंग ॥१५॥
लखे सब बिक्रम नें सब ठाम। इते मधि साझ भई अभिराम।
भली बिधि सौ तब न्हाइ नृपाल। दियौ पुनि बिप्रनि दाँन दयाल ॥१६॥
तडाग बिषै धसि कें पुनि भूप। कह्यौ यह बैन पुकारि अनूप।
बतीस जु लक्षन कौ नर रक्ष। चहै सुर सो अब पावहु तत्त ॥१७॥
इती कहि बिक्रम नै अबिकार। धरयौ निजु कंठहि खग्ग सधार।
लग्यौ अपनौ सिर काटन जब्ब। उताल गह्यो सुर नैं कर तब्ब ॥१८॥
कह्यौ पुनि तू धनि है निरधार। हरष्षित हौं वर माँगि उदार।
उचारयव बिक्रम यौ सुनि बात। प्रसन्न जु मोपर हौ सुभ गात ॥१९॥
करौ अब तौ जग कौ यह काज। तड़ाग भरौ जल सौ जुत साज।
न काहुन सौ कहियो यह भेव। इती सुनि कै उचरयौ पुनि देव ॥२०॥
उदार गभीर महा मन मद्धि। पुरुष्ष वहै निहचै जस लद्धि।
न जासु हियै पुनि रंचक त्रास। रह्यौ मुख मंजुल मंडित हास ॥२१॥

दोहा

बिक्रम नृप इमिं काज करि आयौ अपनें ग्राँम।
दिए दांन सनमांन सौं द्विजनि बसन धन धाम ॥२२॥

प्रात भयै सबनै लख्यौ, भरयो नीर सौं ताल।
अरु कंचन कौ पुरुष वह निरखि भये खुस्याल ॥२३॥

कैसैं जल आयौ सु तौ बात न जानी जाइ।
भयो अचंभौ सबनि कै उर मैं ईस मनाइ ॥२४॥

सोरठा

जौ तुम ऐसे आप भोज सिंहासन तौ चढ़ौ।
नहीं तजौ उर ताप कौन बात मन मैं बसी ॥२५॥

मधुभार छंद

सुनि बात एह। गय भोज तेह।
इतनी जताइ। पुतरी सिहाइ॥ २६॥

सु रही थिराइ। लहि मौंन भाइ।
टरिगौ सुकाल। तब लौ रस्याल॥ २७॥

हरिगीत छंद

श्री बदन सिह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहिँ कुँवर सिह सुजाँन सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिहिँ हित्त कवि ससिनाथ नैं रच्चिय सुजाँन विलास है।
पुतरी सिँहासन की कथा हुव अष्टमी सु प्रकास है॥२८॥

नवम कथा

दोहा

भोज मुहूरत और मैं पाइ सिंहासन दीन।
बोली नवमी पुत्तरी कलावती परवीन ॥ १ ॥

प्रमांनिका छंद

चढ़ी सिंहासनै तबै, इती जु सक्ति है अवै।
कितीक सक्ति कौंन की, उचारि बुद्धि भौंन की ॥ २ ॥
इतीक भोजराज की, सुनत्त बात लाज की।
सुपुत्तली सुभाइ कै, लगी कहन्न चाइकै ॥ ३ ॥
पुरी अवंति नाँम है, बिसाल औ ललाम है।
तहाँ सु विक्रमेस हो, प्रवीन तासु वेस हो ॥ ४ ॥

पावकुलक छंद

पुष्कर नाम पुरोहित ताको, ज्ञाता ब्रह्मज्ञान कला कौ।
चारयौ बेद भली बिधि जांनै, विक्रम ताहि सदा सनमानै ॥ ५ ॥
हरि चरचा बिनु और न भावै, इहिं बिधि जाकौ सहज सुभावै।
मुख तैं कढ़ै वचन सो होई, देस मद्धि जानै सब कोई ॥ ६ ॥
सदाँ आस्तिक बुद्धि अनूठी, कबहूँ बात न बोलै झूठी।
कमलाकर ताको सुत ऐसौ, मूरख जग मैं और न तैसौ ॥ ७ ॥
अक्षर एकौ पढ़यौ सु नाँही, कहै जोइ उपजै मन माँही।
एकौ बात न मन मैं लावै, कोऊ क्यौं न किती समझावै ॥ ८ ॥
नित प्रति नाहक वित्त लुटावै, हठ करि अपनी बात पकावै।
तासौं कही पिता नै बाँनी, इक दिन निपट प्रेम लपटानी ॥ ९ ॥
हे सुत यह दुर्लभ नर देही, पाई जग मैं परम सनेही।
भलौ चलन एकौ नहिं साजै, काहे अपनै करतु अकाजै ॥१०॥
जाकै बिद्या तप नहि दानै, ताकौं जीवन व्यर्थ बखाँनैं।
तातैं भलौ आचरन करि तू, मेरौ कह्यौ चित्त मैं धरि तू ॥११॥

जब यौं पितु नैं निपट सिखायौ, तब पढिबे कौ मत ठहरायौ।
बिदा माँगि कसमीर पधार्‌यौ, कमलाकर नैं सहर निहार्‌यौ ॥१२॥

महल बिबिधि भाँतिन के जामैं, सोच हियैं सुपाइयै तामैं।
बाग प्रफुल्लित बहुरंग वारे, पिस्ते अरु बादॉम छुहारे ॥१३॥

त्रिभंगी छंद

बादांम छुहारे नौजे न्यारे सेब अपारे रसवारे।
बड़हर सफतालू कटहर आलू अरु जरदालू उजियारे ॥
बदरी फल पक्का मधुर मुनक्का जिनके पक्का दुक्ख हरै।
रँग सुबरन वारी विहीं सुढारी गुननि उदारी सुक्ख करैं ॥१४॥

सोरठा

औरों बस्तु अनेक देखि तिहीं कसमीर मैं।
पूछ्यौ सज्जि बिबेक को ह्याँ अति पंडित रहतु ॥ १५ ॥

तब उनि कहा कि एक चंद्रमौलि बिख्यात है।
जाकी टरी न टेक जो आयौ सौ पढ़ि गयौ ॥ १६ ॥

छप्पै

चंद्रमौलि कै धाम गयौ पूछतु कमलाकर।
सिंहासन पै लख्यौ बिप्र जनु उदै प्रभाकर ॥
करतु बेद कौ पाठ मनौ घन सघन गरज्जइ।
जज्ञ कुंडली भस्म भाल श्रुति कुंडल रज्जइ ॥
धारे सहस्र रुद्राक्ष तन, लोचन लाल बिसाल अति।
अरु ठाढ़े जोरैं करनि कौं सिष्य सुरनि से सुद्धमति ॥१७॥

दोहा

चंद्रमौलि द्विजराज कौं कमलाकर नैं जाइ।
प्रनति करी कर जोरि कैं, सीस भूमि सौं छ्वाइ ॥१८॥

उनि आसिष दैकै कही कहौ कौंन हौ आप।
कित तैं आए अर्थ निजु बरनौ द्विज अनताप ॥१९॥

कमलाकर नैं आपनौ कह्यौ सबै बिरतंत।
चंद्रमौलि नैं सुनि कह्यौ बैठौ वदन हसंत ॥२०॥

पावकुल छंद

ताकौ नित प्रति सेवतु रहै। मन मै अति आनंदहि लहै।
चंद्रमौलि द्विज लेइ पत्यारौ। लाइक सिष्य है कि नहि प्यारौ ॥२१॥

गुरु सेवा तै बिद्या आवै। कै धन दैकै बहुत रिझावै।
कै बिद्या तै बिद्या पावै। चौथौ कछू न और उपावै ॥२२॥

गुरु मैं कमलाकर के माँही। कछू दोष जब देख्यौ नाही।
चद्रमौलि ने तब हित कीनौं। सिद्ध सरस्वति मंत्र सु दीनौं ॥२३॥

मत्र साधिकै गुरु के आगें। पंडित भयौ प्रेम सौ पागें।
विदा माँगि घर कौ अतुरायौ। तँह सै चल्यौ सुरस सरसायौ ॥२४॥

पुरी जु काती मग मै देखी। सवै भाँति सौ जोति विसेखी।
तहँ इक बारनारि की कन्या। लखी सखिन मै जोवन धन्या ॥२५॥

ससि सौ मुख निस द्यौस बिराजै। भृकुटी कुटिल धनुप छवि छाजै।
लोचन लालत महा अनियारे। उपकारी पलकन कजरारे ॥२६॥

मनौ मदन के बान सवारे। विष सौं वलित सुढारे भारे।
अलकै मनौ रूप ठग फाँसी। लूटि लेति मन कौ मृदु हाँसी ॥२७॥

ऐसे गोल जुगल भुज दरसैं। मनहुँ नाल कर पंकज सरसैं।
अति लौने बौने कुच दोऊ। लखि ब्रत राखि सकै नहि कोऊ ॥२८॥

निपट लटी कटि लचकै वाकी। समता कौन कहि सकै ताकी।
ऊरू गोल कमल से पाइनि। बिहरति हुती सहर चित चाइनि॥२९॥

अंग अंग मनि भूषन झलकै। रंग रंग अंबर दुति छलकैं।
नर मोहिनी नाम कहि टेरैं। मोहि जाइ मन जाकै हेरैं ॥३०॥

दसौ अवस्था मनमथ वारी। भुगतै सो जिहिं नेक निहारी।
रैंनि बसै जो वाके घर मै। रक्षस ताहि हनैं गहि कर मैं ॥३१॥

कमलाकर यह चरचा सुनि कै। हो आसक्त चल्यौ सिर धुनि कै।
पहुँच्यौ अपनै नगर मझारै। पै मनु रह्यौ तही प्रनु धारै ॥३२॥

पाइनि पर्‌यौ पिता कै आछैं। औरनि सौं भेट्यौ पुनि पाछैं।
अपनी बहुरि परिक्ष्या दीनी। पितु नैं अधिक बधाई कीनी ॥३३॥

आसिष दैंन गयौ पुनि राजहिं। कमलाकर सजि द्विज के साजहिं।
छरीदार सौं अरज कराई। आवन दै नृप सैन जताई ॥३४॥

आइ विक्रमहिं आसिष दैकें। वैठ्यो अपनी ठौर चितैकें।
पूछी कुसल नृपति नै हित कैं। कमलाकर नैं कही सुचित कैं ॥३५॥
पुनि सिगरौ बिरतंत उठायौ। अरु सब अपनौ भेद सुनायौ।
लगी उचाटी कछू न भावै। नीद भूख की कौन चलावै ॥३६॥

सवैया

न रुचै तन कौं पट भूषन हूँ, उर लाज समेटि सबैं नखियां।
सटकी पुनि भूख तृषा निसिकै, सुलटै कटि आंई लखौ बखिया।
ससिनाथ न रंचक नीदँ पत्याति, सु यौं बिरहानल सौं धखियाँ।
तब तौ रस कै चसके लखिया कसकैं अखियाँन जु वे अखियाँ ॥३७॥

पावकुलक छंद

ए सुनि कमलाकर की बातैं।
बिक्रम भूपति चल्यौ तहाँ तैं ॥३८॥

सवैया

चित मानतु है न कहा करियै हित सोच घनै सरसात रहैं।
ससिनाथ कहै नव नागरि की चरचा सुनि श्रौन सिहात रहैं।
रसनां न दई बिधि नैननि कौं जु कथा रस की बतरात रहैं।
अवलोके बिना अकुलात रहैं मुख देखै तऊ ललचात रहैं ॥३९॥

पावकुलक छंद

निकट बिकट बन पव्वय अँग में। चले जात मे निरखे मग मै ॥४०॥
पहुंच्यौ तहँ विक्रम छिति नाइक। कमलाकरहिं लिए सुखदाइक।
डीठि परी नर मोहिनि नारी। कमलाकर नैं पलक बिसारी ॥४१॥
नर मोहिनि के मित्र बिचारे। जे रक्षस नैं निसि मैं मारे।
तेऊ देखि आपनैं नैननि। तकि गृह मैं निसि वस्यौ सचैननि ॥४२॥

काव्य छंद

लख्यौ भौन मै बिक्रमादित्य कौ जब्ब। फँस्यौ क्रुद्ध के जाल मै रक्कुसा तब्ब।
चलाई महा बज्र से हत्थ की थाप। बचाई महीपाल नै छंद सौ आप॥४३॥
फिर्यौ लत्त घत्ती प्रचंडी बली रक्ष। चुकाई वहू विक्रमादित्य प्रत्यक्ष।
दियौ दौरि कै रक्ष कै वक्ष मै खग्ग। गिर्यौ भूम्मि मद्धै उदारौ मनै नग्ग।४४।

तमाँसौं लख्यौं मोहिनी नै जवै एम। तवै भूप सों उच्चरी यों सजें प्रेम।
बचाई हमै रक्ष यै पै महावीर। न तौ सौ दुनी मद्धि है दूसरो वीर ॥४५॥

घनैं रक्कुस नै हनैं मानवा चंड। निवार्यौ वहू पाप तेरे भुजदंड।
इहाँ तै जु मो पै दया आइ कै कीन। सु मै रीझि कै तोंहि जन्मो अवै दीन॥४६॥

नही और की ओर हेरीं भरी नेंम। रहीं आसरें एक तेरे सजे क्षेम।
यही आजु तै साधि हौ एक सी रीति।
जियौ मैं तवैं लौ नहीं टारिहौ प्रीति ॥४७॥

दोहा

नर मोहिनि के वैन यौ सुनि कें अति अविकार।
बोल्यौ तासौ हरषि कै विक्रम भूमिभतार ॥४८॥

जो तू निपट प्रसन्न है, तौ मेरौ वच मानि।
कमलाकर मों प्रिय महा तासौं त्रिय विधि गांनि ॥४९॥

भली वात इहि भाँति ही निति करिहौ निरवाह।
कमलाकर सौ तिहीं छिन तानें करी सलाह ॥५०॥

कमलाकर कौ सौपि कै नर मोहिनी ललाम।
बिक्रम आयौ निजु नगर, कियौ विविधि आराम ॥५१॥

सोरठा

जौ तू ऐसे भूप, वैठि सिंहासन तौ अवै।
सुनि यह कथा अनूप, भोज हर्यो टरिगौ समय ॥५२॥

हरिगीत छंद

श्री वदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि विसाल है।
तिहीं कुँवर सिंह सुजाँन सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त यह ससिनाथ नें रच्चिय सुजान विलास है।
पुतरी सिंहासन को कथा नवमी भई परकास है ॥५३॥

दशम कथा

सोरठा

फेरि मुहूरत साधि, आयौ सिंहासन निकट।
भोज इष्ट आराधि, लग्यौ चरन जब ही धरन ।। १ ।।

तब जयसेना नाम, पुतरी बोली भूप सौं।
जौ इमि गुन अभिराम, तौ राजौ सुख पाइ कै ।। २ ।।

नृप नै कही कि बोलि पुतरी जो तै गुन लख्यौ।
कहन लगी हिय खोलि, ज्यौं की त्यौं समझाइ कैं ।। ३ ।।

पद्धरि छंद

उज्जैनि मद्धि बिक्रम नरिंद। हो करत राज अति ही अनिंद।
इह सिंहासन पर तेजवंत। सु लसत्त हुतौ गुन बल अनंत ।। ४ ।।

तिहिँ समै एक नै कहे बैन। महराज सुनी इक बात ऐंन।
जोगी उदार इहि बन मझार। नित रहतु चित्त के बिचार ।। ५ ।।

बिक्रम नरिंद नै सुनि उताल। निज नर इक पठयौ बुधि बिसाल।
ताकी सु परिक्षा लैन काज। मनमद्धि आपु चित्यौ सलाज ।। ६ ।।

सवैया

द्वै जग मै सब ठौर घनै नर पाप की बुद्धि पढ़ावन हारे।
आपहू पाप के पुंजनि सौ तन औ मनहूँ कौ मढ़ावन वारे।
दूरि भजै जिनके सँग तै तम मोक्ष की नाव चढ़ावन वारे।
ते अब डीढि परें कित सज्जन जे सुख सोत बढ़ावन वारे ।। ७ ।।

दोहा

नृप के नर नैं जाइ तहँ, तासु परिक्षा लीन।
समझ्यौ मन मै ठीक है जोगी जोग प्रवीन ।। ८ ।।

प्लवंग छंद

जोगी सौं कर जोरि कही मधुराइ कै।
बिक्रम नृप के निकट चलौ हित छाइ कै।
सुनिकै ताके बैन सिद्ध नै यौं कही।
मेरौ कछू न काम भूप सौं है सही॥ ९ ॥

भिक्षा भोजन करौं रहौं छिति लोटिकै।
बसौ खोरि के चीर सरीर लपेटिकै।
जौ अपनै उर मद्धि साति सरसाति है।
तो पुनि करिहै कहा खलनि की पाँति है॥ १० ॥

अरु जौ अपनै हियै भर्‍यौ अति ताप है।
जग सु तेखी सौ कहाँ सु कौन मिलाप है।
दुख सुख दाता बचन न काहू सो कहै।
जोगी सदा उदास ठीक सुचि तौ रहै॥११॥

जोगी कौ इमि रूप कह्यौ पुनि आइ कै।
बिक्रम नै सब सुन्यौ श्रवन सियराइ कै।
अरु निज चितन लग्यौ महीप सुभाइ कैं।
है निहचै यह बात जु कहतु बनाइकै॥१२॥

सवैया

जे नित वेपरवाह रहैं अरु रंग भरे सब संग बिसारे।
कान्ह सुजांन कौ मानत हैं मन चूरि कै दूरि गरूर बिडारे।
सुद्ध सँतोष मै पूरि रहै न कहूँ उपजै अभिलाष अपारे।
रंजत हैं अपनै चित कौ नर धन्नि है ते प्रन के मतवारे॥१३॥

अंतर पागे बिषै बिष सौं अरु बाहिर घूरत बेष बनाएँ।
लोगनि कौ मन मोहत हैं मधुरै बतराइ महा अपनाएँ।
है न बिचार जिन्हैं परलोक कौ पापनि कौ छतना सिर छाऐ।
फूलियै नांहिं बिलोकि सरूपहि भूलियै नां तिनके बहकाऐ॥१४॥

दोहा

ता जोगी के पास पुनि गयौ आपु ही भूप।
करि प्रनाम कर जोरि कैं बोल्यौ बचन अनूप॥१५॥

छप्पै छंद

यम अरु नियम निबाह औरु पुनि जांनहुं आसन।
प्रानायाम पुनीत चित्त की सुद्धि प्रकासन।
प्रत्याहार रु ध्यांन धारनां सप्तम साधन।
अष्टम कही समाधि ताहि लहि हरिहि अराधन।
ए आठ अंग हैं जोग के इनहीं की चरचा करिय।
पुनि औरौ चित्यौ भूप जो जोगी कौं सुख सौं भरिय ॥१६॥

अथ जौग के आठौं अंगनि कौ अर्थ कथनं

पद्धरी छंद

अथ यम

बच सत्य और हिसा न कीन। अरु ब्रह्मचर्यं संग्रह बिहीन।
अरु चोर कर्म तजिबौ निदांन। इनि पाँचनि कहिए यम प्रमांन ॥१७॥

अथ नियम

तप और सौच संतोष जांनि। अरु बेद पाठ प्रभु डरहि आंनि।
यह नियम कहावे जोग रीति। इनि पांचन मैं करिए प्रतीति ॥१८॥

अथ आसन

कर चरननि सौं मत ग्रंथ टोइ। पद्मासन आदि जु क्रिया होइ।
सो आसन कहियै सुनहुं मित्र। ते चौरासी बिधि हैं बिचित्र ॥१९॥

अथ प्राणायाम

पूरक अरु कुंभक पवन ख्याल। अरु रेचक कहिए गुन बिसाल।
पूरक जू खैंचियै उच्च स्वास। कुंभक जु थंभिह्य लहि हुलास ॥२०॥

रेचक जो स्वासहि देत छंडि। गुनि प्राणायाम सु मोद मंडि।
निजु प्राँन रोकिबौ निर्बिकार। निरधार जांनि यह जोगसार ॥२१॥

अथ प्रत्याहार

अरु निजु निजु विषयनि तै हटाय। लैबै जु इंद्रियनि कौ सुभाइ।
भाषंत सबै जोगी उदाँम। तासौं पुनि प्रत्याहार नाँम ॥२२॥

अथ ध्यान

इंद्री बिषैनि कौ खंडि-खंडि । अरु चंचलता कौ दंडि-दंडि ।
प्रभु मद्धि लगैबौ सजि सयांन । सब पंडित तासौं कहत ध्यान ॥२३॥

अथ धारना

अरु अंतर इंद्रिनि कौं बटोरि । जो देत ब्रह्म के मद्धि जोरि ।
बिछुरै न एक छिन हटि अनंत । तिहिं कहत धारना सकल संत ॥२४॥

मन बुद्धि चित्त अरु अहंकार । ए अंतर इंद्री हैं उदार ।
जब लग्गि होइ इनकी न मुक्ति । तव लों छुटै न जग भोग जुक्ति ॥२५॥

अथ समाधि

जहँ जीव ब्रह्म कौ होतु जोग । तासौं समाधि कहियै अरोग ।
सुधि बुद्धि तबै नहिं रहै रंच । मिटि जात सबै जग के प्रपंच ॥२६॥

छप्पै

भरि सुख में बिंदु संक अवनि परजंक मझारें ।
धरि गिंदुक भुज रूप चँदोवा गगन बिचारें ।
दीपक चंद अमंद बुद्धि अपनी सो भामिनि ।
चँवर बीजना करै पवन दिसि कन्या नामिनि ॥
हैं उर मे बेपरवाहि अति जिन कै नैननि की न गम ।
इमि जोगी सोवत है सदाँ सब लाइक नरपत्ति सम ॥२७॥

नित्यानित्य बिचार तर्क सो सहचरि प्यारी ।
मित्र एक बैराग यमादिक संग बिहारी ।
प्रबल मुक्ति की चाह फौज सो सज्जित मन मे ।
मोहादिक रिपु बृंद तिन्हें खंडत बसि बन मैं ॥
कहि सोमनाथ इहिं बिद्धि जो जोगी करतु निबाह नित ।
है ताकौ जीवनु धन्नि जग जाकें कलि चिंता न चित्त ॥२८॥

सोरठा

ए नृप के सुनि बैन जोगी भयौ प्रसन्न मन ।
कह्यौ धन्नि सुख दैन, तो सौ होंनें कठिन जग ॥२९॥

छप्पै

जोगी नें गुरु मंत्र साधि निजु निपट कष्ट करि।
लीनो इष्ट रिझाय दरस दीनों तिंन हित करि।
तानें फल इक दियौ ताहि दुचिताई दरिकै।
ताकौ कह्यौ प्रभाव रोग सब लेय जु हरिकै॥
बर सो फल बिक्रम कों दियौ जोगी ने समझाय कै।
नृप ता फल कों लहि हाथ मैं करी प्रनति सिरु नाय कै॥ ३० ॥

दोहा

लै फल कौ बिक्रम चल्यौ सहित चमूँ बलवान।
बज्जन लगे निसान घन, भज्जन लगे बिमान॥ ३१ ॥

मुक्तादाम छंद

चल्यौ अपने पुर कों नरपत्ति। लख्यौ मग मै इक रोगिय अत्ति।
कही तिनि बिक्रम सों ललचाय। अजू यह मो कहुँ देहु बुलाय॥३२॥
महीपति बिक्रम नें यह बात। सुनी तिहिँ रोगिय की अकुलात।
कही मुख तें कबहूँ नहि नाँहि। अछुद्र समुद्र दया उर मांहि॥३३॥
बुलाय लियौ वह रोगिय पास। दियौ फल सो चित मंडि हुलास।
प्रभाव दियौ पुनि ताहि बताय। भयौ तबहीं वह सुंदर काय॥३४॥
दयाल जु हौ तुम या बिधि भोज। सिँहासन तौ चढ़ियै लहि आज।
कही पुतरी जब लौ यह बात। मुहूरत हो सु रह्यो पुनि जात॥३५॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिंह भुवाल जदुकुल मुकुट भाल बिसाल है।
तिहि कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिहि हित्त कबि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिँहासन की कथा दसमी भई सु प्रकास है॥३६॥

एकादश कथा

चौपई छंद

फिरि भोज मुहूरत साधि आइ जब पाइ सिंहासन दीनौ।
तब मन्मथसेना नाम पुत्रिका बोली बचन प्रवीनौं॥
है तो मैं जौ उदारता ऐसी तौ सरसौ सुख सानै।
यह सुनिकैं जौ कही नृपति नै अब हमहूँ तौ उर आनै॥ १॥

उपेंद्रबज्रा छंद

कही जु यौ भूपति भोज बाँनी। तबै सु यौं पुत्तलिका बखाँनी।
पुरी अवंती मधि बिक्रमेसा। भयौ हुतौ दाँन सुभाव बेसा॥२॥

गयौ सु हो एक दिनै अकेलौं। बिलौकिबे काज मही सुहेलौ।
भ्रमै घनै ठांमनि ख्याल भीनौं। बडौ तहाँ पब्बय दृष्टि कीनौ॥३॥

जिटे जहाँ बेलि बिरिच्छ ठड्ढे। न पंथ जामैं फल फूल मड्ढे।
झिरैं घनी ठौरनि नीरधारा। उतंग स्रृंगानि सजै अपारा॥४॥

तहाँ गयौ बिक्रम देखिबै कौ। दुखी सुखी ताहि बिसेखिबे कों।
हुतौ जहाँ एक बिरिच्छ भारौ। टिक्यौ तहाँ भूपति सो उदारौ॥५॥

महा बड़ी डारनि पत्र छाए। फलें घनें मिष्ट फलौं सुहाए।
बिहंग जामैं बिहरैं अनंते। अनेक रंगे उर मद्धि संते॥६॥

बिहंग तापै चिरजीव नाँमा। बस्यौ रहै मुख्ख सुबुद्धि धाँमा।
पक्षी घनै तास कुटुंब वारे। रहे तही अंत चुगैं सुचारै॥७॥

इतेक मै अस्त दिनेस पायौ। निसा भई जोर अँध्यार छायौ।
रह्यौ तिहीं छाँह नरेस पूरौ। पराक्रमी बिक्रम पैज रूरौ॥८॥

इतेक मैं एक बिहंग बुल्यौ। लख्यौ कछू कौतिक जो अमुल्यौ।
कहौ सुनै ताहि बिहंग सब्बै। बिभावरी ज्यौ सुबिहाइ अब्बै॥९॥

तबै तहाँ एक बिहंग आयौ। उसास लै यौं उचर्यौ सतायो।
कहा कहौं मो सम और नाँही। दुखी महा पच्छि समूह माँही॥१०॥

जबे कह्यौ बैन पुकारि ऐसें। तबै सुवोलै खग और वैसें।
कहा परयौ तौ पर दुक्ख पक्षी। कहौ सु क्यौ नाँहि अवै प्रतक्षी ॥११॥

सोरठा

जब वासौ इहि बिध्धि और खगनि हित सौं कही।
तब बोल्यौ दुखनिद्धि सो पच्छी मुरझाइकै ॥ १२ ॥
अपनै मन कौ दुक्ख काके आगैं भाखियै।
ऐसौ कौन पुरुष्ष, पीर पराई जो हरै ॥ १३ ॥

सवैया

चारि समुद्रनि मद्धि सबै अपनी अपनी असियाँनि निहारी।
पै न लख्यौ जन कोऊ अनूप सुरूप सतोगुन अंतरधारी।
जासौं सुनाइ कैं चाइनि सौं कहियै हिय कौ दुख औ सुख भारी।
जौ छिन एकहू भूलै बिथा मन फूलै कछूक कथा सुनि प्यारी ॥१४॥

दोहा

दुक्खित पक्षी नै कहे जब या बिधि सौ बैन।
तब तानै बहुरयौ कही कहु तौ कहि लहि चैन ॥ १५ ॥
जतन बनैं तौ कीजियै, जौ सुनिये कछु बात।
यह सुनि पुनि बोल्यौ सु खग अंतर मैं अकुलात ॥ १६ ॥
यातैं और समुद्र मै है इक द्वीप उदार।
तहाँ करक्कस रक्कसा राजा सहित बिकार ॥ १७ ॥

छप्पै

इक मनुष्य प्रति नित्त ताहि सबनै करि दिन्नौं।
तहाँ पुरानौ मित्र बसतु मेरौ अघहिन्नौं।
ताकै एकै पुत्र आजु है ताकी बारी।
तातैं मो उर मद्धि दुक्ख सरस्यौ है भारी॥
मैं तुम सौं अपनै चित्त की कथा कही समझाइ कैं।
अब सुनौं औरहू कहतु हौं बात सुऔसर पाइ कैं ॥ १८ ॥
जे बिपत्ति कैं समैं आइकैं होइ सहाइक।
चित्त बृत्ति बिगरैं न मित्र सो है सुखदाइक।

अरु अंतर की बात लखै सो जग मैं पंडित।
देइ तनक में तनक सु है दाता अनखंडित॥
बिनु काज करै उपकार जो सो उपकारी जांनियै।
जग और बात सब ब्यर्थ है यौ समर्थ पहिचानियै॥ १९॥

तोमर छंद

तिहिं बृक्ष तर नृप बीर। सब सुनी बात सधीर।
तिहिं दुक्ख तैं दुख पाइ। बिक्रम पराक्रम छाइ॥ २०॥

चढ़ि जोग पांवरि यानि। तिहिं द्वीप चल्यव सुबानि।
निरखे घनै बन बाग। पथ मद्धि सरित तड़ाग॥ २१॥

बहु ग्रॉम पट्टन और। निरख्यौ नदी नद मौर।
उछरै तरंग उतंग। बहु कच्छ मच्छनि संग॥ २२॥

पहिलौ जलद्धिय छेलि। आगै चल्यौ पग पेलि।
हो रक्ष द्वीप उदार। पहुँच्यौ तहीं अबिकार॥ २३॥

बलि कौ जु नर खग मित्र। सो साँझ समय पवित्र।
घरकें निकौ समझाय। मन मै महा मुरझाय॥२४॥

तिहि रक्ष के घर अग्ग। बैठ्यौ सिला अनभग्ग।
हौ मरन कौ परताप। ताके हियै अनमाप॥२५॥

सो लख्यौ ब्रिक्रमराय। करुना चितौनि बनाय।
पुनि कह्यौ या बिधि बैन। अब जाहु जू निज ऐन॥२६॥

रहिहों सु मैं तुव थान। तिहि रक्ष कौ बलिदान।
इहिं बिधि बिक्रम बात। सुनि कै सु नर अवदात॥२७॥

उचरयौ नृपति सों ताकि। सो मनुज अचिरज छाकि।
कहि कौन तू किहि अर्थ। निजु तजै प्रान समर्थ॥२८॥

इमि तासु बचन सलाज। सुनिकै सु बिक्रम राज।
उचर्‌यौ समेत सयान। हे असुर बलि गुनवान॥२९॥

मम रूप सौं तुव काम। है कहि कहा बलिधाम।
ए बचन सुनि कै कॉन। निजु भवन कियउ पयाँन॥३०॥

पुनि रह्यौ बिक्रम एक। तिहि सिला बैठि सटेक।
निसि मे सुआयउ रक्ष। तिहि लख्यौ नृप परतक्ष॥३१॥

नहिं रंच बदन मलीन। सरसै महा सुख लीन।
परस्यौ न नैसुक त्रास। मढ़ि रह्यौ दृगनि बिलास ॥३२॥

है मनुज तू कहि कौंन। जाकौ मरन कौ भौन।
नरपाल कों इहिं भाँति। उचर्यौ सु लखि अधपाँति ॥३३॥

सिरदार मनुजनि मद्धि। टिकि रह्यौ साहस लद्धि।
इमि रक्ष की बतरानि। सुनिकै नृपति जस खाँनि ॥३४॥

इमि कह्यौ रक्षहिं टेरि। डर तैं कलेस निबेरि।
मम रूप कौ तुहि ज्ञान। करनौ कहा छलवान ॥३५॥

निजु काज कर अनदंद। तजिकै निपट छरछंद।
नहिं भक्ष भोजन तंत। करिए अपार असंत ॥३६॥

दोहा

अकृत कृत्य जो होतु जन होति मरन भय ताहि।
मृत्युहि चाहतु मित्र ज्यौं, नर कृत कृत्य उछाहि ॥३७॥

सोरठा

यों ब्रिक्रम ने बैन, जब ता रक्षस सों कहे।
सु ह्वै प्रगट सुख दैन, रक्कस बोल्यौं बिहँसि कै ॥३८॥
मैं तो पै परसन्न चाहै सो बर माँगिलै।
अंबर कंचन अन्न मन में मति चिंता करै ॥३९॥

छप्पै

जब बिक्रम सों प्रगट कही यों बानी रक्कस।
तब बोल्यौ छितिकंत धर्म के तंत सरक्कस।
जौ तू भयौ प्रसन्न कह्यौ तौ मेरौ यह करि।
अबतै प्रानी घात करैं मति महा भूँख भरि॥
इमि सुनि कै बातैं भूप की तानें अपनें उर धरिय॥
चढ़ि जोग पादुका निजनगर आप करिय कंचनभरिय ॥४०॥

दोहा

तब तैं रक्षस द्वीप कौ सुख सरसानों लोग।
घर घर मंगलचार हुव निबरि गियौ सब रोग ॥४१॥

संखनारी छंद

जु ऐसौ नरेसा। बली तू सुवेसा।
दया दान वारौ। लसै तौ सवारौ ॥४२॥

कहीं बात जौंलौं। समौ गौ सु तौलौं।
रह्यौ भोज ठाढ़ौ। किऐं मौंन गाढ़ौ ॥४३॥

हरि गीत छंद

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुँवर सिंह सुजाँन सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिहँ हित्त कवि ससिनाथ नें रच्चिय सुजांन बिलास है।
पुतरीसिँहासन की कथा हुव ग्यारहीं सुप्रकास है ॥४४॥

द्वादशी कथा

चौपाई

फिरि जब साधि मुहूरत आयौ। भोज महीपति छवि सरसायौ।
सिंहासन पर चरन चलायौ। मदन मंजरी वचन सुनायौ ॥१॥
तो मैं जो ऐसी है करनी। तौ बैठों लहि कित्ति सुधरनी।
कैसी करनी कहि तू अव्वै। नृप सों पुनि बोली सुन गव्वै ॥२॥

मुक्तादाम छंद

उजैनि पुरी मधि विक्रम भूप। बिराजतु हौ बहु विद्धि अनूप।
सदा रहती चरचा सुं धरंम। नहीं जिहिं राज विषै अकरंम ॥३॥
तहीं बसतौ बनियाँ धनवंत। करै व्यवहार सदा बिलसंत।
हुतौ भद्रसैन सुवाहक नाम। उदास करैं जमके सब काम ॥४॥
रचैं सुत के हित कोटि उपाय। भयौ तिहिं कै तव पुत्र सुभाय।
करें बहुँ भाँतिनि मंगलचार। दियौ पुनि बिप्रन दान उदार ॥५॥
पुरंदर ताकहु नाम रसाल। कह्यौ द्विजराजनि बुद्धि विशाल।
पुरंदर सो सम्हरचौ जब आप। निहारि बड़ी लँछिमी अनताप ॥६॥
नहीं पितु कौं कछु पूछहिं बात। चहैं सु करैं भरिकैं सुख गात।
कही अपनैनि कि श्री जिनि खोय। विना लछिमी कछु काज न होय ॥७॥
नहीं जग मैं कछु श्री परमान। न श्री बिनु रंच मिलै सनमान।
सबै नर जानत हैं यह भेद। विना लछिमी उपजै अति खेद ॥८॥
इही विधि बंधु सबै समझाय। लगे पुनि बरनन श्रीहिं सुभाय।
पयोधिय ही श्रीय तौ उपजाय। लह्यौ रत्नाकर नाम सुभाय ॥९॥
अजू श्रिय के पति कौ पद पाय। मुरारि भए तिहुँ लोकनि राय।
छटा तुव पाय रतीक अनंग। लग्यौ जग मोहन सज्जि उमंग ॥१०॥

दया हम तेरिय चाहत चित्त । वसौ हमरे घर मद्धि सु नित्त ।
प्रभाव सदाँ इमि तो परकास । सु औगुन हू गुन होत बिलास ॥११॥

छप्पै छंद

थिर आसन तिहिं कहैं होय जो आसन पग्गव ।
कहै उद्यमी ताहिं जु है चंचलता जग्गव ।
अरु जु मूँक श्रीवंत कहै तासों मिति भाखी ।
कहत मूँढ सों सुद्ध सकल संगी ह्वै साखी ।
अरु जाकें नाँहि विवेक हिय तासों कहत उदार नर ।
तेरे प्रसाद तें इंदिरा औगुनहूँ गुन होत नर ॥१२॥

दोहा

ए बंधुनि के बचन सुनि वनिक पुरंदर फेरि ।
बोल्यौ तिन सों बैन यों, तिरछे नैननि हेरि ॥१३॥

नाराच छंद

गयी जु वस्तु सोक तासु नेंकु नाँहि किज्जियै ।
बिचार हौंनहार कौ न चित्त मांझ लिज्जियै ।
जु वर्तमान होय सो समौं प्रवीन पाय कै ।
करै विलास भावते बिषाद कों वहाय कै ॥१४॥

जु हौनहार वस्तु होति है सु ह्वै रहत्ति है ।
मझार नारिकेल नीर ज्यों वखानि सत्ति है ।
जु जावहार होति है सु वस्तु ठीक जाति है ।
द्विरद भुक्त कैथ ज्यों गरी सवै विलाति है ॥१५॥

सोरठा

तानें पितु कौ वित्त दीनौ अरु भोजन कियौ ।
ताकौ निरखि चरित्त, सकल कुटुंबिनु तजि दियौ ॥१६॥

सवैया

मत्त मतंग उतंग जुटैं जहँ गुंजत घोर मृगिंद्र उदारे।
उत्तम ता बन कौं बसिबौ भखि पत्र फलोदक रोचक भारे।
सोइबौ दूब की सेज बनाय फटे कपरानि सौं बासर टारे।
बित्तबिहीन सु बंधुनि में रहिबौ न भलौ इमि ज्यौंत बिचारे ॥१७॥

सोरठा

यौं सु पुरंदर सोचि देसंतर कौं कढ़ि गयौ।
सब कुटुंब सुख मोचि ठौर ठौर बिरहन लग्यौ ॥१८॥
भ्रमत भ्रमत छिति मद्धि मलयाचल निरख्यौ दृगनि।
उर में आँनद सद्धि लग्यो तमाँसौ लखन तहँ ॥१९॥
परसत श्रृंग अकास मनहुँ टेवकी गगन की।
चंदन वृच्छ बिलास फरहराति सौरभ पवन ॥२०॥
तातैं निपट नजीक डीठि परयौ इक पुर प्रगट।
तहाँ गयौ लहि लीक वस्यौ पुरंदर जाय कै ॥२१॥

काव्यछंद

तहाँ रैनि में सुनी बुरैं इक रोवत नारी।
करुना भरि कै महा बारहीं बार पुकारी।
सुनि कैं ताकौं रुदन पुरंदर ने पुर लोगनि।
पूँछ्यौ को ही नारि राति रोई लहि सोगनि ॥२२॥
यह सुनि पुर के नरन कही हम जानत नाहीं।
निसि मैं रोवति नित्त निकट पुर के वन माँहीं।
या अरिष्ट तें रहहु भरयौ भय नगर हमारौ।
बनें न कछू उपाय बचावै को वल भारौ ॥२३॥
सुनि कैं यह वतरानि पुरंदर निज पुर आयौ।
गयौ नृपति कौं मिलन ताहि सब भेद सुनायौ।

कही पुरदर बात ताहि सुनि विक्रम नरवर।
गयौ तिंही पुर मद्धि तमाँसौ निरखन हरबर ॥२४॥

दोहा

निसि में विक्रम खग्ग लै गयौ सघन बन पास।
रोई तौलौं करुन सुर कामिनि तजैं हुलास ॥२५॥
सुनि रोदन के नद्द कों सजि साहस अनहद्द।
गयौ तहाँ देख्यौ प्रबल रच्छस एक समद्द ॥२६॥

छप्पै

ठाढे केस उदंड शृंग जुग तिच्छन भारे।
प्रगट तमोगुन भयौ मनौं धरि अंगनि कारे।
लोहित नैंन कराल बड़ी भौंहनि सौं छाए।
चमकैं दीरघ दंत अधर तें बाहर आए॥
अरु लिये वज्र से हत्थ में कर्रा क्रुद्ध उपाइ कै।
इक तिय कों ताडतु संक बिनु रच्छस औसर पाइकै ॥२७॥

प्रमानिका छंद

महीप नैं निहारि कै। दयाहि चित्त धारि कै।
सुधर्म कों सम्हारि कै। कही तबै पुकारि कै ॥२८॥
अरे कमीन रक्कसा। तमोगुनी करक्कसा।
तियाहि क्यों प्रहारई। न धर्म को विचारई ॥२९॥
जु तू महा कठोर है। भुजानि मद्धि जोर है।
तियाहि छिप्र छंडिकै। इताउ क्रुद्ध मंडिकै ॥३०॥
प्रचंड जुद्ध जुट्टई। दुवौ नहीं अहुट्टई।
इती सुन्त्त बात कों। सु रच्छ तौलि गात कों ॥३१॥
बिलोकि विक्रमेस पै। चल्यौ मँड्यौ कलेस पै।
दुहूँनि जुद्ध जोर भौ। अरन्य मद्धि सोर भौ ॥३२॥

करैं प्रहार तक्कि कै। दुवौ हटैं न थक्कि कै।
महाकराल ख्याल भौ। सुरत्त बेहवाल भौ ॥३३॥
दई खरग्ग की जवै। गिरयौ सु रत्त भू तवै।
मरयौ विलोकि रत्त कों। सु कामिनि विपत्त कों ॥३४॥
नरेस कों सुनाय कै। करी सुतुत्ति चाय कै।
महाबली सरीर है। सु तू गँभीर बीर है ॥३५॥
प्रचंड जंग जीत है। निपट्ट ही अभीत है।
सु तो प्रसाद भाउ तैं। सुखी भईव आउ तैं ॥३६॥

सोरठा

सु यों वडाई कीन, विक्रम की तिहिं भामिनें।
तव वोल्यौ परवीन, को तू कहि अपनी कथा ॥३७॥
विक्रम के सुनि बैन, कहन लगी निजु भेद कों।
सुनि दयाल सुख दैन, सबै वात अपनी कहत ॥३८॥

तौमर छंद

अब हौं सु द्विज की नारि। ही लसति जोवन धारि।
मुख चंद सौ छबिवान। दृग कमलदल अनुमान ॥३९॥
आसक्त मो पर अत्ति। मम कंत हौ हित रत्ति।
रहितौ सु बिनु निरखैं न। अनलखैं अधिक अचैन ॥४०॥
पै कछुक सज्जि अकर्म। मैं रही पग्गि अधर्म।
रुचतौ न रंचक मोहि। हौं कहति साँच सु तोंहिं ॥४१॥
इहिं दुक्ख ही तैं प्रान। तज दिये इनि सु निदान।
सो भयौ रक्तस क्रूर। तिहिं बैर सों भरपूर ॥४२॥
निसि मद्धि नितप्रति आय। ताड़ै सु क्रुद्ध बढ़ाय।
सो आजु तुव परसाद। लहि भई विगत विषाद ॥४३॥
यह मो उपद्रव आज। नसि गयौ निपट दराज।
तेरौ कहा उपकार। अव मैं करौं अविकार ॥४४॥

पै एक बातहिं आप। सुनिए जु करति अलाप।
मेरें न संतति कोय। जिहिं काज राखहुं गोय ॥४५॥
नव कलस कनक निधान। मो भुवन में दुतिवान।
जौ देहुं तोकहुं बीर। तौ हौय तोष सरीर ॥४६॥
ते कलस नृप कों दीन। तिहिं नारि परम प्रवीन।
ते कलस लै छितिपाल। दीने द्विजहिं ततकाल ॥४७॥
लै कै पुरंदर बित्त। सो भयौ निपट सुचित्त।
पुनि बिक्रमेस दयाल। आयौ नगर निजु हाल ॥ ४८ ॥

दोहा

जों उदार इमि भोज तौ लसौ सिंहासन जाय।
पुत्तलि ने यों बात कहि दीनौ समौं चुकाय ॥ ४९ ॥

हरिगीत छंद

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिँहि हित्त कवि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिंहासन की कथा हुव बारही सु प्रकास है ॥१२॥

त्रयोदशी कथा

दोहा

फेरि मुहूरत साधिकै राज साज सों भोज।
लग्यौ सिंहासन पै चढ़न सूरज सौ लहि ओज ॥ १ ॥

बड़ी चौपाई

पुनि शृंगारिका तेरही पुतली बोलि उठि नर बानी।
इहिं सिंहासन पै चढ़यौ आपु तौ जौ तुम ऐसे दानी।
कहि कैसो दान कौंन ने कीनौं सब समझाय सुनैयै।
ए नृप के बैन सुनत ही नृप सों बोली श्रवन लगैयै ॥ २ ॥

लक्ष्मीधर छंद

एक राजा अवंती पुरी मै भयौ। विक्रमादित्य सो नित्य सोभा छयौ।
भुंमि के देखिवे काज इधे गयौ। देश बिद्देश नों संग कोऊ लयौ ॥३॥
दिक्खिये पथ में ग्राम कित्ते घनें। ताल नद्दी नदौ जंतु क्रीडा सनें।
जाय कढ्ढ्यौ कहूँ और ही ग्राम में। ही नदी तासु के पास आराम में ॥४॥
ता किनारैं बड़ो देव कौ धाम हौ। सब्ब ही जानते जासु कौ नाम हौ।
बिप्र के वृंद दिक्खे बइट्ठे जहाँ। सास्त्र की बात उच्चारईं तें तहाँ ॥५॥
भूप सो बिक्रमादित्य गौ तित्त ही। सत्य की बात जाकों रुचै नित्त ही।
और की और ही बिप्र मिथ्या पढैं। आपनें बैन निर्वाहहीं कों पढें ॥६॥
विक्रमादित्य ने सो सुन्यौं कान दै। फेरि बुल्यौ तिन्है अत्ति सन्मान दै।
विप्र हौ भुमि के देव बड्डे सबै। बैन मैं जो कहौं सो सुनो जू अबै ॥७॥
सास्त्र की जुक्ति सों होतु जो अर्थ है। कै निरी जुक्ति सों नाहिं असमर्थ है।
जानि कै सुद्धता कों लहे हैम सों। पक्षपातै करें छुट्टई नैम सों ॥८॥

सवैया

कान किए सुनिवे के निमित्त रची बुधि वानी विचार के लीनैं।
जो सुनिकै न विचार करै सँवरे वहु कैसें कहो हित भीनैं।
नेननि सों लखि कंटक तज्जि चलें पथ ते सुख लेत प्रवीनें।
जे नर लोहि कहूँ रु सुनैं न चलें मग तेई विनोद विहीनें ॥६॥

दोहा

विप कंटक अरु कीट अहि चलै पंथ में देखि।
है ताकी निंदा कहा समझौ बुद्धि विसेखि ॥१०॥

सोरठा

मन में सज्जि विचार करौ अर्थ निर्धारि कै।
कछू अर्थ अविकार वर्पत नहिं आकास तें ॥११॥
यों नृप की वतरानि सुनें अचंभित भए सव।
द्विजनि कही पुनि वानि है नर यह पंडित वड़ौ ॥१२॥

छप्पै

इहि औसर इक पुरुप आप लोनें संग भामिनि।
टिक्यौ नदी के कूल तरंगें लखि अभिरामिनि।
पैठ्यौ न्हान निमित्त हुतौ तहँ अति गँभीर जल।
लाग्यौ गोता खान भूलि कै सुद्धि बुद्धि वल॥
कीनी पुकार उनि ताहि सुनि रहे सवै द्विज मौन लहि।
अवलोकि विक्रमादित्य नें किय विचार उर ज्ञान गहि ॥१३॥
विरले नर जग मद्धि समझि गुन कों सुख पावत।
अरु विरले विनु काज निवन सों नेह रचावत।
रन में धीरजवंत मनुज विरलेई सरसत।
पर दुख दुखित चित्त होत ते विरले दरसत॥
ऐसें विचारि करुना भरयौ उठ्यौ आपु अतुराय कै।
पुनि पैठि नदी में बाँह गहि लायौ ताहि सुभाय कै ॥१४॥

दोहा

बैठि नदी के कूल पै भयौ नाहि जब चैंन।
सो नर बिक्रम भूप सों तब यों बोल्यौ बैंन ॥१५॥
औसर जानतु है तुही निहचै हे नर वीर।
तेरे सम अब और को कैसें कहों गंभीर ॥१६॥

सोरठा

तैं मोकों गहि बाँह जैसें काढ़्यौ नदी तें।
हौं न उऋन जग माँह तोसों कबहूँ होंउगो ॥१७॥
पै मो पै इक मून सर्व काम की दानि है।
तू करि ताहि कबूल यों कहि नृप के कर दई ॥१८॥

पावकुल छंद

इतने मद्धि एक अतुरायौ। बिक्रम निकट दरिद्री आयौ।
तानैं कही मोहि यह दीजै। जग के माँझ परम जस लीजै ॥१९॥
बिक्रम नें सुनि ताकी बानी। बूटी ताहि दई सुखदानी।
तासु मनोरथ पूरौ करिकै। निजु पुर आयौ आनंद भरिकै ॥२०॥
जो तू भोज नृपति है ऐसौ। तौ या सिंहासन पर बैसौ।
जौलों पुतरी कही कहानी। तौलों टर्‌यौ समौ सुखदानी ॥२१॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि विसाल है।
तिहिं कुँवरसिंह सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिँहासन को कथा हुव तेरहीं सु प्रकास है ॥१३॥

चतुर्दशी कथा

वड़ी चौपाई

फिरि साधि मुहूरत राज साज कै निकट सिंहासन आयौ।
तब रत्निप्रिया पुत्रिका चौदहीं भोजहि वचन सुनायौ।
है तौ मैं जो उदारता ऐसी तौ सरसौ अतुरानैं।
कहि कैसी यह सुनि नृप की वानी सो उचरी हित मानैं ॥१॥

पद्धरी छंद

उज्जैनि नाम नगरी अमंद। विक्रम नरिंद्र तहँ बुधि विलंद।
जाकें अनीति की नाँहि रीति। नित धर्म पंथ सों निपट प्रीति ॥२॥
इक समै भूप सो निजु छिपाय। कौतिक निमित्त लहि चित्त चाय।
परदेसनि कों डगरयौ प्रचंड। नहिं लियौ संग छल कौ घमंड ॥३॥
पथ मद्धि लख्यौ इक पुर उदार। वन ओर पास ताके अपार।
तहँ हुतौ एक अति उच्च धाम। मानौं सुमेर दूजौ उदाम ॥४॥
तिहिं धाम थित्त इक पुरुष सिद्ध। विक्रम नै अवलोक्यौ प्रसिद्ध।
ताकों प्रनाम कीनौ नरेस। वोल्यौ सु सिद्ध यह वचन वेस ॥५॥
हे विक्रम तू कितनें उताल। ह्याँ आयो ऐसैं गुन विसाल।
सो सुनि महीप अचिरज्जवान। चित्त माद्धि भयौ सज्जित सयान ॥६॥
पुनि वैन सिद्ध सों कह्यौ भूप। किहिं विद्धि लख्यौ तैं मम स्वरूप।
सुनि नृप की वाँनी यौं दयाल। उच्चरयौ सिद्ध पुनि तिहीं काल ॥७॥
मैं प्रथम अंवतीपुरी मद्धि। है लख्यौ भूप तू साँच सद्धि।
पै राज छोड़िकैं कौन अर्थ। तू फिरतु दिसंतर कों समर्थ ॥८॥
नहिं जानि परै है कहा वीर। तिहिं ठौर समाझ देख्यौ गँभीर।
यातैं सु कहतु में तोहि वैन। चित मद्धि मानियो सुक्ख दैन ॥९॥

यह राज सु है चिंता समुद्र। अरु सत्रुन कौ बंधन अछुद्र।
अरु अविस्वास करनौ निदांन। तातैं सु राज है दुख निधाँन ॥१०॥
ए सिद्ध बैंन सुनिकै महीप। उच्चरयौ सत्यमय विसैवीस।
हे सिद्धजोग मंडित अखंड। तुव दृष्टि मद्धि है ब्रह्मअंड ॥११॥
मैं कहतु बैंन तुम सुन्यें ताहि। महराज कृपा कीजो उछाहि।
भावी जु टरै कौंनहु प्रकार। तौ दुख न सतावै बार बार ॥१२॥
नल राज जुधिष्ठिर नें कलेस। पायौ सु ठीक भावी प्रवेस।
प्रभु हौंनहार नातैं टरै न। चित मद्धि मानियें क्यौं अचैन॥१३॥
या तें ब राज चिंता न रच। मे ँ कहतु सत्य है अप्रपंच।
हौ नस्यौ एक कौ प्रथम राज। सो दियौ पंच जच्छनि दराज ॥१४॥

दोहा

प्रथम पद्मिनी खंड पुर, हुतौ एक गुन वाढ़ि।
जयसेखर ताकौ नृपति दियौ सरीखनि काढ़ि ॥१५॥

पावकुल छंद

नृप सु पट्टरानी सँग लीनैं। देसंतर कढ़ि गयौ मलीनैं।
कवहूँ चल्यौ नही निजु पाइनि। डग डग भूमि होति दुखदाइनि ॥१६॥
कंटक श्टकि वेस फटि गए। साधै भूख प्यास लटि गए।
मनहूँ अति दुख तैं घटि गए। अँग अंग रजसौं अटि गए ॥१७॥
भ्रमत भ्रमत इक नगर निहारयौ। पंथ मध्धि सतोष सुधारयौ।
ग्राम निकट वट वृच्छ उदारौ। हुतौ सघन दल साखनिवारौ ॥१८॥
पंथ चलत जे फल कछु पाए। ते दोउन मिलि के तहँ खाए।
रहे रैनि मैं तिहिं वट छाँहीं। राजा अरु रानी गलबाँही ॥१९॥
पंच जच्छ तेहि वट पै रूरे। रहत हुते अतिही गुन पूरे।
ते सब आपुस मैं वतरांनै। तिनमै इक बोल्यो हितसानै ॥२०॥
वडे प्रात या पुर कौ नाइक। जैहे जम के धाम सुभाइक।
कौन होइगौ भूपति याकौ। सुख अनेक लहिवौ फल ताकौ॥२१॥

तब तिन में इक जच्छ उचार्यौ । सुनौं सबै मैंनैं निरधार्यौ ।
सोवत याहि वृच्छ के नीचैं । नारी संग लियै दृग मीचैं ॥२२॥
ह्वां कौ राज ताहि हम दैहैं । कौतिक निरखि विनोदनि लैहैं ।
तिनके वचन भूप नै जांनैं । साँचेकरि उर मैं पहिचानैं ॥२३॥
ज्यौं त्यौं करिके रैनि विहांनी । जोति जुन्हैया की पतरांनी ।
नभ मैं निवरन लगी तरैयाँ । फरकत बोलन लगीं चिरैयाँ ॥२४॥
पूरव दिसि प्रगटी अरुनाई । चकई चकवनि कूक सु भाई ।
जयसेखर त्रिय सँग हुलसानौं । उठ्यौ प्रगट रति मनमथ मानौं॥२५॥
भऐं प्रात तिहिं नगर मझारैं । गयौ नारि सँग लै डर टारैं ।
हो वा पुर कौ नृप सुतहोनौं । सूनौ लखि मंत्रिनि मत कीनौं॥२६॥
क्रिया भूप की विधि सौं कीनी । विप्रनि वहुत दच्छिना दीनीं ।
लागे करन सोच कौं जौलौं । डीठि पर्यौ जयसेखर तौलौं ॥२७॥
सब मंत्रिनि मिलि कैं ठहरायौ । याकौ राज देहु छाव छायौ ।
पंचदिना अधिवासन करिकै दियौं राज ताकौं हित भरिकैं॥२८॥
पुर मैं वाजन लगी वधाई । सबकै भई सुख्ख अधिकाई ।
पायौ राज अकंटक तानैं । संकट एकै वार विलानैं ॥२९॥
एक समैं सो भूप सुहायौ । घेर्‍यौ और नृपति मत ठायौ ।
कहा जानियैं को यह आयौ । ऐसैं कहिकैं दुंद मचायौ ॥३०॥
जयसेखर पटरानी संगै । चौपरि खेलत हो सउमंगै ।
कछू राज की चिंता मन मैं । करै नही पूरो दृढ़ पन मैं ॥३१॥
तव रांनी नैं नृप सौं वाँनी । कही सनेह नीति लपटानी ।
परसेंना आई दुख देहै । महाराज यौं राज सजैहै ॥३२॥
कछू जतन अब याकौ कीजे । मेरो वचन चित्त धरि लीजे ।
यों रांनी की वाँनी सुनि कैं । जयसेखर नृप वोल्यौ पुनिकैं ॥३३॥
नैकौ भय मति मानैं प्यारी । कर ते पासे डारि सुखारी ।
पंच जच्छ है राज दिवैया । वेई निहचै राज हरैया ॥३४॥

हौनहार सो टरै न टारैं। मैं यह साँची कहतु पुकारैं।
मोहि राज दीनौ है जच्छनि। हतिहैं वेई प्रवल विपच्छनि ॥३५॥
ए सुनि बैन जच्छ पुनि पंचनि। कही गुप्तवांनी अप्रपंचनि।
नृप नैं सुनी न रानी जांनी। चिता की ज्वाला सियरानी ॥३६॥
तब जयसेखर नृप नै वंकी। रची चित्रमय फौज निसंकी।
नर तुरंग अरु तुंग मतंगा। जिनके कद्द जलद्दनि रंगा ॥३७॥
तिनसौं जच्छम के वल अच्छैं। सत्रुनि के दल हनै प्रतच्छैं।
जच्छराज पुनि फिर करि ताकौ। अपनै थांन गए करि साकौ ॥३८॥
रानी सो पुनि कौतिक लखिकैं। नृप सों बोली चकृत हरषिकैं।
कैसें चित्र लिखी इनि फौजनि। कीनौ तुम संग्राम सुमौजनि॥३९॥

दोहा

जब रानी नैं भूप सौं पूछ्यौ या विधि भेद।
पंच जच्छ ते प्रगट ह्वै बोले फेरि अखेद ॥४०॥

छप्पै छंद

ग्रीषम रितु कै मद्धि सरोवर हो जलहीनैं।
ताके कौनें मच्छ पाँच हे निपट मलीनैं।
तहँ ते तिनकौ काढ़ि कुंभकारक इक नायौ।
जहाँ नीर गंभीर वहाँ तच्छन पहुँचायौ।
पुनि तेई पाँचौ जच्छ हम समौ पाइकैं भए अब।
हे सुंदरि तो सौं भेद यह कह्यौ सत्य समझाय सब॥४१॥

दोहा

हो कुंभार जो वा जनम सो यह जांनि नरेस।
पलटें ता उपकार कैं दीनौं राज सुवेस ॥४२॥
अरु अवहूँ रच्छा करी याके हते विपच्छ।
यौं कहि रांनी सौं वचन गए सु पाँचौं जच्छ ॥ ४३ ॥

तोमरछंद

यह सिद्ध सौं सुख पाइ। बिक्रम कही समझाइ।
सुनि कैं सु सिद्ध दयाल। मन मद्धि भयउ खुस्याल ॥४४॥
चिंतामनी पुनि एक। नृप कौं दई सबिवेक।
सो रत्न बिक्रम पाइ। डगरयौ सु सहज सुभाइ ॥ ४५ ॥
प्रथमैं दरिद्रिय आँनि। माँगी सु मनि सुखदाँनि।
दीनी सु बिक्रम ताहि। अति चित्त मद्धि उछाहि ॥ ४६ ॥

सोरठा

ऐसौ है जु दयाल तौ सिंहासन पाइ दै।
नाँही भोज भुवाल ओछो काम न कीजिए ॥ ४७ ॥

पावकुल छंद

बात कहीं पुतरी ने जौलौं। गयौ मुहूरत टरिकैं तौलौं।
घरी और दिन की ठहराई। पुतरी मौन भई छबि छाई ॥ ४८ ॥

हरिगीत छंद

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहि कुँवर सिंह सुजान सुदर हिंद भाल दयाल है।
तिँहिं हित्त कबि ससिनाथ नैं रच्चिय सुजाँन बिलास है
पुतरी सिँहासन की कथा हुव चौदही परकास है ॥ १४ ॥

———

पंचदशी कथा

भुजंगी छंद

मुहूरत्त कौं साधि कै फेरि आयौ । महीपाल सो भोज सोभा सवायौ ।
तबै पंद्रही पुत्रिका बैंन बुल्ली । नरंमोहिनी नाँम आभा अतुल्ली ॥१॥
जु उद्दारता बिक्रमादित्य वारी । सु तौ मद्धि तौ चढ्ढियै सुख्खकारी ।
जबै पुत्रिका नै कही यै सुबाँनी । तबै भोज बुल्यौ गहैं बुद्धि स्यांनी ॥२॥
कहैं क्यौं न उद्दारता सौं सभागी । महा मो हियैं मद्धि तौ बात लागी ।
तबै पुत्रिका नैं कही यौ पुकारैं । सुनौ भोज भूपाल चिंता बिसारैं ॥३॥
अवंती पुरी इक्क है सोभवारी । तहाँ बिक्रमादित्य हो भूप भारी ।
चरच्चा रहैं धर्म की नित्त जाकैं । नहीं पाप कौं रंच आलाप ताकैं ॥४॥
समैं एक सौ बिक्रमादित्य रूरौ । चहूँ बाद्ध सेना सजैं बुद्धि पूरौ ।
दिसा चारिहू जीति कैं भूप सब्बै । अधीनें करे जार सौं चूरि गब्बै ॥५॥
मही मद्धि जे सार ते बस्तु लिन्नैं । करैं भेंट कौं नित्त ही माद भिन्नैं ।
नहीं बिक्रमादित्य सौं और ऐड़ैं । अनीत्यै तजैं औ पगै धर्म पैंडैं ॥६॥
समैं एक सौ भूप सोभै सभा मैं । खरे और आगैं घनैं ठाम ठामैं ।
मनौं देव नैं इंद्र दूजौ रच्यौ है । सबै भाँति की साहिबी सौं सच्यौ है ॥८

सोरठा

तिहिं बिक्रम कौ मित्र, हौ बिचित्र सब कलनि मैं ।
ताकौ नाम सुमित्र, सुंदर अति मॉनहु मदन ॥ ८ ॥
सो सुमित्र दिन एक, सभा मद्धि नरपाल सौं ।
बोल्यौ सजैं बिबेक, हाथ जोरि हित छाइ कै ॥ ९ ॥

छप्पै छंद

श्री बिक्रम महराज मोहि जौ आइसु दिज्जइ ।
तौ पवित्र तनु अर्थ जाइ कैं तीरथ किज्जइ ।

यह सुमित्र कौं बैन सुनत भूपति नैं भाख्यौ।
भली बात जो ज्ञाँन ताहि यौं उर अभिलाख्यौ।
इमि सासन लहि छितिकत सौं आयौ हरषित निजु भवन।
दै दान द्विजनि सनमान करि तीरथ-हित कीनौं गवन ॥ १० ॥
कीनौं गवन हरख्ख नहीं सँग कोऊ लिन्नौं।
निरखे देस अनेक नेंक अबिबेक न किन्नौं।
क्रम सौं भूमै भ्रमत सक्र अवतार जु तीरथ।
पहुँच्यौ तहाँ सुमित्र उधारे पाइन समरथ।
पहुँच्यौ जहँ बिरम्यौ निकट न्हायौ बसन उतारिकै।
तन मन पवित्र छिन मैं भयौ गए पाप प्रन हारिकै ॥ ११ ॥

दोहा

ता तीरथ कौ बिप्र पुनि लीनौं निकट बुलाइ।
तासौ कही सुमित्र नै माहिमा मोहि सुनाइ ॥१२॥
सुनि सुमित्र के बचन कौं द्विज सो निजु पर जाइ।
पोथी लायौ प्रेम सौं चतुराई सरसाइ ॥१३॥

काव्यछंद

गुरु सौ झगरै निदरि धेनु अरु पग सौं परसै।
मित्र द्रोह करि मिष्ट अकेलैं भखि सुख सरसैं।
कहे अकेलैं बैंन सुखद पुनि करै जु नाँही।
अरु उपकार करै न कछू मानै मन माँही ॥१४॥
द्विज पै जज्ञ कराइ दच्छिना कौं बहकावै।
रन मैं छत्री जाइ संकि पुनि पीठि दिखावै।
राज नारि अरु वृद्ध बाल अरु भिक्षुक मारै।
अरि कौं भज्जत हनै दया उर कैं न बिचारै ॥१५॥
त्रिय अरु क्रोध अधीन होइ मदिरा के बस मैं।
बृथा लगावै अग्नि अनथैं सब्जैं रस मैं।

गुरु नारिन सौं रमै ठगै पुनि ठगई करिकैं ।
नाहक चुगली करै कपट उर अंतर भरि कैं ॥१६॥
पतिव्रता निजु नारि रितुवती सौं नहिं भेटै ।
अरु पर भाँमहिं रमैं अयानप निपट समेटै ।
मातपिता का टहल करैं नाँही हित भीनैं ।
आश्रित कौं नहि देह पीठि दै रहै मलीनै ॥१७॥
द्विज की पूजा हनैं, नीर कौं दोष लगावै ।
बाल बच्छ की धेनु दुहै कै आपु दुहावै ।
अरु अति ही अनखाइ तृषित कौ पानी प्यावै ।
अरु झूठे की ओर आपु ह्वै कै झगरावै ॥१८॥
इतनैं कुकरम करै पाप जे होत प्रचंडे ।
यह तीरथ तिनि सबनि हरै करि मोद घमंडे ।
द्विज के सुनि ए बैंन कांन मन करि इक ठारहि ।
यथासक्ति दिया दान बिप्र कौं सज्जि बिचारहिं ॥१९॥

दोहा

तीरथ की महिँमा सु यौं सुनि सुमित्र सुख दैंन ।
हुतौ देव मंदिर तहां पहुँच्यौ चंचल गैंन ॥२०॥
ईस जुगादि सुदेव की मूरत लखी सुभाइ ।
सिद्ध सुरासुर आदि सब तिनके परसत पाइ ॥२१॥

संजुता छंद

मनि चंद्र कांत सरीर है । मुख पंच जोति जगी रहै ।
अरु चिन्ह सुरसरि धार कौ । अतिहीं प्रकास बिहार कौ ॥२२॥
सुथरौ जटनि कौ जूट है । ससि कोर भाल अछूट है ।
पुनि तीनि लोचन-माल हैं । जगमगत मनहुं मसाल हैं ॥२३॥
गहनें भुजंग कराल हैं । भुज चारि मनहुं मृनाल है ।
फरसा कमल कर दच्छ है । कर बांम मृग परतच्छ है ॥२४॥

वरदांन पुनि कर दाहनैं। कर बाँम अभय उछाहनैं।
कमलासनैं मधि सोभई। तिहुँ लोक कौ मन लोभई ॥२५॥
तिनकौं निहारि सुमित्र नैं। करि प्रनति पूजि विचित्र नैं।
कर जोरि सनमुख थित्त ह्वै। उचरयौ स्तुत्ति सुचित्त ह्वै ॥२६॥

त्रिभंगी छंद

जय कित्ति उजागर सिव गंगाधर बाल छपाकर भाल लसैं।
रंगित जनु रोचन जगैं त्रिलोचन संकटमोचन सुख बकसैं।
जय अंधक खंडन त्रिपुर विहंडन पन्नग मंडन तन हरे।
तुमही जग रच्चत पालन सञ्चतु तंडव नच्चतु बल पूरे ॥२७॥
पूरे बल जग मैं तुम हर अगमैं रूपे नग मैं छवि छहरौ।
अरु तुमहीं दिनकर सुंदर सुरवर बज्र विकट धर रन ठहरौ।
तुमही सु हुतासन तेज प्रकासन तिमिर विनासन अघहारी।
तुम पुरुष पुरानैं वेद बखानैं त्रिभुवन मानैं गुन भारी ॥२८॥
गुन भारी गावैं तुम्हैं रिझावैं ते अपनावैं धर्म हियैं।
हित सौं परचैं अरु तुमकौं चरचै औरहि न रचैं जर्मलियैं।
तिनके सम को है सुर मुनि जोहै श्री न विछोहै एक घरी।
संग लागी डोलै मुक्ति अमोलै भक्ति कलोलै टेक भरी ॥२९॥
भरि टेक निरंजन तुम अघ भंजन जडता गंजन परवीनैं।
बांनी तैं आगैं तुम सुख पागे किहिं विधि रागैं स्तुति कीनैं।
कैसें तुव ध्यांनै उर मैं आंनै रंग न जांनै वनि आवैं ॥३०॥

दोहा

जे तुम कौं सब मैं लखत एक - रूप ससिनाँथ।
हैं तेई सरवज्ञ अरु मेरे जांन सनाँथ ॥३१॥

तोटक छंद

इहिं विधि सुतु तिहिकौं करिकैं। डगरयौ तह तैं हित सौं भरिकैं।
निरखै बन पंथ मझार घनैं। मृग औ मृगराज दराज सनै ॥३२॥

पुर एक परयौ पुनि डीठि जबै । पहुँच्यौ तहँ जाइ सुमित्र तबै ।
असिकैं पुर मद्धि प्रसन्न भयौ । बहुभाँतिन कांतिन सौं जु हयौ ॥३३॥
तहँ एक सुरालय डीठि परयौ । अति उन्नत संपति साज भरयौ ।
नर कौतिक देखन जात चलै । बरजै नहीं कोइ बिनोद रलै ॥३४॥
निरसंक सुमित्रहु आपु गयौ । निरख्यौ तहँ कौतिक एक नयौ ।
सुरमंदिर अंगन मैं सरसै । इक बाग पुहप्प सदां बरसै ॥३५॥
बहु रग विहंगम डोलत हैं । अपनी अपनी धुनि बोलत है ।
अरु मत्त मधुव्रत गुंज करैं । फहराति सुगंध समीर हरैं ॥३६॥
इक वेदिय है तिहिं मद्धि बनी । सित पाहन की अति सोभसनी ।
तिहिं वेदिय ऊपर एक धरयौ । जु कराह सपूरन तेल करयौ ॥३७॥
तिहीं के तर आगि कराल बरै । जरि तेल सुउप्पर कौ उछरै ।
ढिग तासु न कोउ ब जाइ सकै । नर देखइ सो मन माँझ थकै ॥४८॥
लखि ताहि सुमित्र बिचारि हियैं । इक सौं पुनि पुच्छिय नेह छियैं ।
यह बात कहा सब मोहि कहौ । परदेसिय जांनि सु सत्य लहौ ॥३९॥
बतराँनि सुमित्रहि की सुनिकैं । नर सौ हित सौं उचरयौ गुनिकैं ।
इक राज करै सुर कामिनि है । मनमत्थ सजीवनि नांमिनि है ॥४०॥
दमकै दुति मानहुँ दाँमिनी है । बतरांनि महा अभिरामिनि है ।
सुथरे छुटि केस छवानि लगैं । भृकुटी जुग चाप विलास पगैं ॥४१॥
दग मीनन के जुग भंजन हैं । बिनु अंजन खंजन गंजन है ।
नव पंकज के दल कौं निदरैं । मृगछौननि कौ मन कौंन धरैं ॥४२॥
मुख चंद समान अमंद लसै । वस होत मुनिंद जु मंद लसै ।
कुच कंदुक से दुख दंद हरैं । लचकै कटि हूँ डग द्वैक धरैं ॥४३॥
मनि कंचन भूषन अंगनि हैं । बर अंबर हू बहुरंगनि हैं ।
छिन अंतर भेष पलट्टति है । अवलोकि कटाछनि कट्टति है ॥४४॥
इहिं ठाँ तिहिं तेल कटाह रच्यौ । प्रन या विधि कौ मन माद्ध सँच्यौ ।
जु कटाह बिषैं अपनें तन कौं । नर हौंमइ पूरन कैं प्रन कौं ॥४५॥

निहचैं अपनौं पति ताहि करौं। कबहूँ नहिं या पन तें उसरौं।
यह वात सुमित्र सुनी सगरी। मनमत्थ बिथा उर मैं बगरी ॥४६॥
रुचि सौं नहिं भोजन भावतु है। उनमत्त समान सु गावतु है।
परसैं पुनि नीद न नैंननि कौं। विसरयौ सिगरे निजु चैननि कौं॥४७॥
मनमत्थ संजीवनि रूप रयौ। लखि कौतिक मौं मन चित्त ठयौ।
यह वात सु आनि बनी भलियै। निहचैं अपनैं पुर कौं चलियै ॥४८॥

सोरठा

कौतिक यह सु निहारि तंहत्तें चल्यौ सुमित्र पुनि।
चपल डगनि पटतारि आयौ पुरि उज्जैनि में ॥४९॥
पुनि बिक्रम के पास मुरझानै मुख सौं गयौ।
नृप नें कही प्रकास क्यौं ऐसे मुख देखियत ॥५०॥

सवैया

सुनि कैं यह बिक्रम की वतरानि बिचित्र सुमित्र बिचार कियौ।
जग मैं अव या नृप के सम को जु हरै परपीरहि छोह छियौ।
ससिनाथ कहै सु कही जब बात लग्यौ तवही हहरान हियौ।
मनमत्थ सँजीवनि नाम के संग अनंग सनैं सु उसास लियौ ॥५१॥
लिय दीह उसास सुमित्र जबै अरु आंनन पै पियरांनि छई।
तबही नृप बिक्रम नैं अतुराइ सनेह कथा दरसाइ दई।
चलिहैं हम तौ वहँ संग लियैं तहँ कौतिक देखन बुद्धि भई।
सुखदांनि अलाप सुनै सु कछूक मनम्मथ ताप सिराइ गई ॥५२॥

दोहा

चल्यौ भूप विक्रम तहाँ लियै सुमित्रहि संग।
जाइ सकल कौतिक लख्यौ मंडित हियै उमंग ॥५३॥

छप्पै छंद

गुनि सुमित्र को चित्त महा अनुराग अरुल्लव।
कूद्यौ मद्धि कराह कछू काहू नहिं बुल्लव।

तच्छन ।
उद्धत हाहाकार मच्यौ लोगनि में तच्छन ।
कहा कियौ इनि ख्याल हुतौ यह कौन बिचच्छन ।
तिहिं समैं मदन संजीवनी आई बिहसति चाइकैं ।
लखि मांस पिंड सौ भूप कौं सींच्यौं अमृतहि लाइकैं ॥५४॥
लाइ अमृत की धार नृपति पै जब सु बरस्सिय ।
तच्छन औरै आंनि तरुनई अंग सरस्सिय ।
प्रफुलित पंकज पत्र सोभ जुग दृगनि परस्सिय ।

× × × ×

लखि विक्रम कौं इहि बुद्धि पुनि ह्वै प्रसन्न सुरभामिनी ।
उच्चरिय बैन हरि बैन मन छरछंदन अभिरामिनी ॥५५॥

दोहा

सत्ववंत नर ज्ञान को मैं सब कियौ उपाय ।
सु मैं निपट हर्षित भई तेरौ दरसन पाय ॥५६॥
तोसे उत्तम पुरुष के रहै जगत आधार ।
तेरे से गुन तो विषैं तो सौं तुहीं उदार ॥५७॥

पावकुल छंद

है जिनकी जग मद्धि बडाई । तेई उत्तम पुरुष सदाई ।
अरु निहचैं जे दोष बिहीनैं । ते नर अति उत्साहनि भीनैं ॥५८॥
उपजैं साधु न खेत मझारैं । अरु पुनि होत नही सब ठारैं ।
जो जो नर गुन उत्तम धारैं । सो सो अमर समांन बिहारैं ॥५९॥
छूट्यौ प्रथम जन्म के थल तें । दूरि कियौ पुनि नीरधि जल तें ।
लाग्यौ आंनि तीर के बन मैं । काढ़ि लियौ बनचारिनु छिन मैं ॥६०॥
खंड खंड करि तौलौ बाटनि । बेच्यौ फेरि जाइ के हाटनि ।
बहुरि शिला पै बल सौ रगरयौ । परगट जऊ कटुकता अगरयौ ॥६१॥
अति आपत्ति मद्धि हू चंदन । है सुगंध गुन सौं जगवंदन ।
गुन करि को न बड़ाई पावै । निगुनी कौं मन मैं को लावै ॥६२॥

जो जग उपकारी सौं घरनी। पुरुष रत्नवति भई सु वरनी।
करि प्रसाद मो पै नसाई। लै यह राज सकल सुखदाई ॥६३॥
विक्रम नैं सुनि ताकी वाँनी। अपनैं मन मैं नैंकु न आँनी।
वेपरवाह जानि कैं भूपै। पुनि वोली सो वचन अनूपै ॥६४॥
धन्नि धन्नि हैं तू नरनाइक। ... ... ।
यौं कहि सो पुनि वचन उचारी। सत्य वात नृप की उर धारी ॥६५॥

सवैया

तरुनींनि के तिच्छ कटाच्छनि सौं कटि कैं जु हियै हहरात नहीं।
अरु क्रुद्ध की ज्वालनि सौं जरि कैं उर अंतर जे झहरात नही।
ससिनाथ कहै जु विषै रस लोभ के फंदनि मैं ठहरात नही।
निहचै नर ते जग धीरजवंत गरूरनि जे गहरात नही ॥६६॥

पावकुल छंद

मदन संजीवनि की सुनि वातैं। विक्रम नृपति मधुर मुसिक्यातैं।
परमन वो पहचाँनन हारौ। गुन गंभीरता करि कैं भारौ ॥६७॥
लै सो राज सुमित्रहि दीनौं। उनि अपनौं मन भायौ कीनौं।
विक्रम अपनी पुरी पधारचौ। द्विजनि दाँन दै रोर विडारचौ ॥६८॥

दोहा

यातैं भोज महीप सुनि ऐसौ तू जु उदार।
तौ या सिंहासन चढौ करौ राज व्यवहार ॥६९॥

सोरठा

कथा वखांनी एह पुतरी नैं जौलौं सवै।
समौ गयौ तजि नेह मौंन गहै भूपति रह्यौ ॥७०॥

हरिगीत छंद

श्री ददन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि विसाल है।
तिहिं कुंवर सिंह सुजांन सुंदर हिंदभाल दयाल है।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ नैं रचिय सुजांन विलास है।
पुतरी सिंहासन की कथा हुव पंद्रही परकास है ॥१५॥

षोडशी कथा

दोहा

भोज मुहूरत साधि पुनि आयौ सहित हुलास।
पाइ सिंहासन पै धरन चाह्यो जबै प्रकास ॥१॥
तब सु भोगनिधि सोरहीं पुतरी बोली साजि।
जौ उदार बिक्रम सदृश तौ सिंहासन राजि ॥२॥

सोरठा

पुतरी की बतरांनि सुनि कै भोज महीप नैं।
कही कि वोग बखानि है उदारता कौन विध ॥३॥
कहे वचन यौ भोज ते सुनि के सो पुत्तरी।
लागी कहन सओज गुन विक्रम नरपाल के ॥४॥

मालती छंद

अवंतिय ग्रांम, महा अभिराम। हुतौ तिहिं ठौर, महीपति मौर ॥५॥
सु विक्रम नाम, पराक्रम धाम। सबै छिति जीति, लई करि नीति॥६॥
मही मधि जोर, जु बस्तु अछोर। सु आवति भेट, अनेकनि हेट ॥७॥
सिंहासन मद्धि, सु तेजहि लद्धि। सभा मधि आप, विहीन सु ताप॥८॥
हुतौ दिन एक, लस्यौ सु विवेक। खरी नृप पाँति, अनुप्पम भाँति ॥९॥
इकै प्रतिहार, हियैं अविकार। ततच्छन आइ, कही मधुराइ ॥१०॥
अजू महाराज, सुनौं सिरताज। इहाँ वनपाल, सुआयव हाल ॥११॥
कहै कि वसंत, महाछविवंत। रहै दिन रैनि, प्रफुल्लित ऐनि ॥१२॥
विहंग रटंत, सुतांनि अनंत। बहुव्विधि पत्र, दिपैं सरवत्र ॥१३॥
इती सुनि बात, हियैं हुलसात। सुविक्रम वीर उठ्यौ रनधीर ॥१४॥
मगाइ, मतग, कही सउमंग। सुनैं यह बैंन, सचिव्व सचैंन ॥१५॥
दुरद्द लिवाइ, सु आयव धाइ। सुमेर समाँन, सुकद्दि निदाँन। १६॥

झलक्कति झूल, घनै बिच फूल । कनक्क मिलाइ, जवाहर छाइ ॥१७॥
दुश्रौं श्रुति मूल, सु चौंर अतूल । सिंदूर सुभाल, बन्यौ अति लाल॥१८॥
जलब्ज कतार, सुकुंभनि ठार । अँवारिय जोति, जगंमग होति ॥१९॥
सु विक्रम अग्र, सचिव्व अव्यग्र । सु दोउ सवार, इतौ कहि मौंन
भयौ गहि कौन ॥२०॥
सचिव्वहि हेरि, दयाहि सँघेरि । चढ़्यौ सु दुरद्द, वली अनहद्द ॥२१॥
लियौ नृप टेर, सचिव्वहि हेरि । लस्यौ वह पास, वचाश्तु स्वास ॥२२॥
लियौ कर चौंर, वडी छवि झौंर । चल्यौ उव पील सुखद्द सुसील ॥२३॥
चल्यौ दल सत्थ, महासमरत्थ । चढो सुखपाल, चलीं वहु बाल ॥२४॥
दुवन्ननि कुंभ, तजी सुनि धुंम । लगे घहरांन, निसांन अमांन ॥२५॥
दिसा बिदिसांनि, भई बिललांनि । गये असमांन, बिबुध्य विमांन ॥२६॥
गयौ रज दव्वि, दिनेस अगव्वि । सुकुद्दिय पीठि, वची पुनि नीठि॥२८॥
तहाँ इमि विद्धि, समेति समृद्धि । पहुँच्यव जाय, सुविक्रम राय ॥२९॥

दोहा

प्रति वन मैं क्रीडा करी वहुविधि सौं जँह जाइ ।
कदली के बन सघन मैं दुपहर पैठ्यौ आइ ॥३०॥

छप्पैछंद

सुंदर मंडफ तहाँ विश्वकर्म्मा जनु रच्चिय ।
चहुं दिस तनैं वितांन जौर झालर रुचि सच्चिय ।
नवल बिछौना बिछे मंजु छवि अनत न वच्चिय ।
सिंहासन तिहिँ मद्धि कनक मनि पुंजन खच्चय ।
नृप बिक्रम तापर जाइ कै राज्यौ सुख सरसाइ मन :
छत्तीस राजपुत्रनि तही, लिय बुलाइ दरसाइ पन ॥३१॥

पद्धरीछंद

ते कुँवर सबै निजु निजु सुथान । वैठे विनीत ह्वै सावधान ।
अंबर अनूंप नव विविध रंग । मनि कंचन भूषन लसत अंग ॥३२॥

तिन मद्धि लसै बिक्रम दयाल। जिमि अमर वृंद में अमरपाल।
जाकौ प्रताप जनु मारतंड। जगमग्ग होतु है नऊ खंड ॥३३॥
तिहिँ समैं विक्रमादित्य आय। उच्चरयौ सवनि सौं विधि मिलाय।
विद्या विलास कीजै प्रकास। है समय आज अति सावकास ॥३४॥
चारिन कही कि इक इक्क वेद। हम कौं सु कंठ है सहित भेद।
पद क्रम जटारु बल्ली बिभाग। भूलैं न रंचहूँ महाभाग ॥३५॥
षट कुँवर उच्चरै पुनि कुलीन। इक इक्क शास्त्र मैं हम प्रवीन।
पुनि और अगारह किय अलाप। इक इक पुरान मैं हम अताप ॥३६॥
पुनि कही एक नैं बांधि टेक। दैवज्ञ सु मैं मंडित विवेक।
जो कहौं वचन सो पुनि टरै न। यह सत्य जांनियैं प्रभु सचैन ॥३७॥
पुनि कह्यौ और नैं जुतघमंड। मैं धनुर्वेद जांनौ अखंड।
उच्चरयौ एक पुनि बुद्धिवंत। मैं सकुन भेद जांनौ अनंत ॥३८॥
पुनि और कुँवर बोल्यौ विनीत। मोकौ सु वैद्य विद्या अधीत।
इक कही मोहि संगीत ज्ञान। पुनि कही इक्क मैं मंत्रवान ॥३९॥
पुनि कही और नैं हाथ जोरि। करनौं कवित्त मैं लिय बटोरि।
उच्चरयौ फेरि इक नृप कुँवार। मैं लिखतु चित्र प्रभु निर्विकार ॥४०॥

दोहा

क्रीडा विधि अरु पैरिवौ जांनतु कुँवर छतीस।
और विक्रमादित्य मैं सब गुन बीसेबीस ॥४१॥
आपस मैं चरचा करतु मगन भयौ छितिकंत।
अधिकारी जो धर्म कौ सो आयौ तिहिँ तंत ॥४२॥
अति असार संसार के सुख मैं पग्यौ सुजाँनि।
नृपति विक्रमादित्य सौं बोल्यौ सो मृदु बाँनि ॥४३॥

सवैया

उत्तम जाति भई तौ कहा अरु वित्त कुबेर समाँन सचारयौ।
औ बल बुद्धि भई तौ कहा नृप ह्वै कैं प्रताप जग्यौ दिसि चारयौ।

बिक्रम श्री महाराज सुनौं ससिनांथ सुजांन जु मैं निरधार्यौ।
भूषन सौ तन ओपै कहा भयौ जौपै नहो परलोक सुधारचौ ॥४४॥

हरिगीत छंद

धर्माधिकारी जब कहे सब बैंन ए समझाय कैं।
सुनिकैं सु बिक्रम नें कही कछु और हू कहि चाइ कैं।
इमि भूप की बतरांनि सुनि कर जोरि डीठि लचाइ कैं।
पुनि उच्चरचौ सो नीति मडित बचन कौं मधुराइ कैं ॥४५॥
जग पंथ दुग्गम उग्ग है नहि आयु कौ कछु ठीक है।
अस व्याधि कौं नहिं टारि सकइ गात नांहि अलीक है।
अरु कर्म भुम्मिहु महा दुर्लभ डिगत कोइ मन कर गहै।
यौं समझि निसि दिन धर्म सद्धतु जीव मोच्छ सुख लहै ॥४६॥
यौं बात सुनिकैं भूप नैं निजु करचौ और बखानियौं।
उनि उच्चरचौ सो महापडित सबन मद्धि जु मांनियौं।
महाराज ए बहु वर्ष हू रहि विषय ठीक बिलात है।
नर नांहि तज्जतु तऊ रागहि जात करि उतपात है ॥४७॥
फिरि देत हैं अति दुख्ख मन कौ प्रीति नैंकु न लाइयै।
तजिकैं इन्हैं अब आपु ही तैं मुप्पहि पाइयै।
इहिं बिद्धि सुनि गुननिद्धि बिक्रम चितमद्धि बिचारियौ।
इनि ह्वै निसंक कलंक बज्जित सत्य बैन बिचारियौ ॥४८॥

सवैया

जीवन तुच्छ तरंग सौ भंग सुजांनिकैं काजु कहा सुख कीनौं।
हैं सपने सब श्री के बिलास अयान यहै पन मैं पग दीनौं।
जोवन बादर ढंगनि है जु रहे तरुनीन के प्रेम अधीनैं।
छूटत है जिनही के छुटैं जग छूटि बधैं तिनसौं अघभीनैं ॥४९॥
पैयत हैं अति दुख्खन सौं जु विपैरस सो निहचैं तजि दीजे।
जातैं कलेस के रेस रहैं न बिचारि वही उपचार सु कीजे।

आपनी चंचल बुद्धि कलोल बिसारि न जो फिरि प्रांन पतीजै।
है निरधार यही जग मैं हरि कौं भजिकैं सजिकैं सुख लीजै ॥५०॥

दोहा

यौं बिचारि कैं चित्त मैं विक्रम नृपति प्रवीन।
आठ कोटि सुबरन हरषि ताकौ तच्छन दीन ॥५१॥
अरु षोडस बरदांन पुनि दीनैं सज्जि हुलास।
ताकी यह सु उदारता तोसौं कही प्रकास ॥५२॥

सोरठा

जौ तू ऐसौ बीर तौब सिंघासन पै चढ़ौ।
यह सुनि भोज गँभीर जहँ कौ तहँ थित ह्वै रह्यौ ॥५३॥

हरिगीतका छंद

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहिँ कुँवरसिंह सुजांन सुदर हिंद भाल दयाल है।
तिहिँ हित्त कबि सषिनाथ नैं रचिय सुजांन विलास है।
पुतरी सिँहासन की कथा हुव सोरहीं परकास है ॥१६॥

———

सप्तदशी कथा

मल्लिका छंद

भोज फेरि आइकैं, श्री समौ सुघाइ कैं।
पाइ दैंन कौ चह्यौ, पुत्तली तबै कह्यौ ॥ १ ॥
विक्रमेश तूल है, दान जौ सफूल है।
तौ सिंहासनै चढौ, नित्त मोद कौं मढौ ॥ २ ॥
बैन ए सु कांन मैं, धारि भोज स्यांन मैं।
उच्चरयौ प्रमांन कौं, रूप भाषि दांन कौं ॥ ३ ॥
ए सु बैन भोज के, धारि चित्त ओज के।
पुत्तली सुनावती, सत्रहीं प्रभावती ॥ ४ ॥

प्लवंग छंद

पुरी अवंती नाम सु भूमि सिंगार है।
तहँ विक्रम नरपाल हुतौ अविकार है।
जाचक कैं होती जु कामना चित्त मैं।
देतौ तातैं अधिक विलास चरित्त मैं ॥ ५ ॥
कलपद्रुम ते रीति अधिक सरसावतौ।
तातैं सबकैं चित्त निपटहीं भावतौ।
तिहिं नगरी के मद्धि वसतु इक भट्ट हो।
विद्या बुद्धि विचार महा उदभट्ट हो ॥ ६ ॥
सो देसंतर भ्रमत गयौ इक ग्राम मैं।
देख्यौ विविध विलास परम आराम मैं।
सुंदर मदिर जहाँ अनेक बजार हैं।
व्यौपारी नर घनैं जु बित्त अपार है ॥ ७ ॥

बिकति ठौरहीं ठौर सु बस्तु बिचित्र हैं।
कोऊ नाहि मलीन मनुष्य पवित्र हैं।
तहाँ एक सौं कही भट्ट नैं जाइ कैं।
ह्वां के नृप कौ नाम कहौ समझाइ कैं ॥ ८ ॥
सुनि सु भट्ट के बैन कह्यौ उनि प्रेम सौं।
ससिसेखर है नांम रहै नित नेंम सौं।
सो पुनि भूपति पास पहुँच्च्यौ चाइकैं।
बित्त निमित्त अभित्त चित्त ललचाइ कैं ॥ ९ ॥
नृप के सनमुख जाइ आसिषा सज्जिकैं।
बैठ्यौ थाँन बिलोकि अयानप तज्जिकैं।
नृप नैं बूझी वात बुद्धि के चेत सौं।
कित तें आए आप कहै द्विज हेत सौं ॥१०॥
ए नृप के सुनि बैन भट्ट सुख पाइ कैं।
बोल्यौ आसिष उचरि महा मधुराइ कैं।
छायौ अति अभिलाष आपके दरस कौ।
सौ मैंनैं ह्यां लह्यौब कचन बरस कौ ॥११॥
इतनौं कहिकै भट्ट सभा मै फेरि कैं।
बोल्यौ लै सु उसास इतै उत हेरि कैं।
आवत भिक्षुक वान परख्या दिष्यकैं।
बिरले नर थिर होव हरव्य बिसिष्य कैं ॥१२॥
ससिसेखर हौ सनु विक्रमाजीत कौ।
सो पुनि वोल्यौ बैन बिचारि विनीत कौ।
ऐसौ या जग मद्धि सो कोऊ है अबै।
कहौ भट्ट जू आप सांच भरि कै सबै ॥१३॥

दोहा

ससिसेखर नृप कौ बचन सुनि कैं भट्ट प्रवीन।
जोरि जुगल कर उच्चरयौ पै उर मद्धि अदीन ॥१४॥

छप्पै

चक्र चंडकर रत्थ जहाँ लौं जग मैं डुल्लइ।
तहँ लौं बसुमति मद्धि नाहि दारिद्र कलुल्लइ।
निजु भुज दंडनि जोर तुंड दुर्ज्जन कौ दडइ।
मनौं कर्न अवतार रैनि दिन सुजस उमंडइ।
है प्रगट बिक्रमादित्य नृप ऐसौ बुद्धि बिवेकमय।
सुनि बैन भट्ट के मलिन अति सासिसेखर कौ चित्त भय ॥१५॥

नहीं निर्गुनी मनुज गुनी कौ मन मैं आँनइ।
गुनी गुनी जौ मिलैं वृथा तौ बरकस ठानइ।
गुपुत होइ गुनवंत गुनी अरु गुन कौ बुझ्झइ।
ऐसे बिरले पुरुप सरल जिनकौं सुख सुज्झइ।
उन बिक्रम सौं करि कै अकस ध्याइ देवता कियउ बस।
तिनि सासिसेखर कौ प्रगट ह्वै दीनी फिर संपति सरस ॥१६॥

दोहा

पै संपति दै देवता कह्यौ वचन यह आप।
अग्नि कुंड में देह जो नित हौमिहै अताप ॥१७॥
नित प्रति नवल सरीर सौ लहिहै वित्त अनत।
तन हौमैं बिनु ना मिलैं समझि सत्य बिरतंत ॥१८॥

पावकुलक छंद

गयौ देवता यौं कहि बांनी। निहचैं बुद्धि भूप नैं ठांनी।
लगी रही पुनि चिंता चित्तहि। भयौ प्रभात उठ्यौ तिहिं हित्तहि ॥१९॥
सुद्ध सरीर न्हाइ ह्वै लाइक। ससिसेखर अवंती कौ नाइक।
दुर्गा के दरसन रस भीनौं। मंदर मांझ गयौ परवीनौं ॥२०॥
गंध पुहप अच्छिन अनखंडित तिनसौं पूजी हित सौं मंडित।
धूप आरती सची नवीनी। बालभोग धरि बिनती कीनी ॥२१॥

नराच छंद

तुही अनादि शक्ति शुद्ध चडिका प्रचंड है।
तुही त्रिलोक मद्धि आपु इंदिरा घमंड है।
तुही बिरंचि भानु काम कामिनी सुभेस की।
तुही मसानवासिनी विलासनी महेस की ॥२२॥
तुही अनिद नंद गोप नंदिनी प्रकास है।
तुही कराल कालिका उदंड जासु हास है।
तुही दिगंत कामिनी कला प्रभा दिनेस की।
तुही मसानबासिनी विलासिनी महेस की ॥२३॥
तुही अखंड मुंड माल कंठमद्धि मंडिनी।
तुही प्रसिद्ध सिद्ध रूप बुद्धि है प्रचंडिनी।
तुही महेस सेस हैं गनेस की (?)।
तुही मसानवासिनी बिलासिनी महेस की ॥२४॥
तुही अरुंधती सती पतिव्रता प्रवीन है।
× × ×
तुही वसुंधरा सुगंध गंजनी कलेस की।
तुही मसांनवासिनी विलासिनी महेस की ॥२५॥
तुही अयान भंजिनी सु अंजनी अनूप है।
तुही कलिंदजा अमंद चंद्रिका सुरूप है।
तुही तरंग गंग पापकंदनी हमेस की।
तुही मसाँनबासिनी बिलासिनी महेस की ॥२६॥

मुक्तादाम छद

विनैं करिकैं पुनि वाहिर आइ। लख्यौ पुनि पावक कुंड सुभाइ।
दए तिहिं मद्धि सुचिदन डारि। भली बिधि सौं घृतधार पखारि॥२७॥
प्रगट्ट करी उदभट्ट सुज्वाल। परयौ तिहिं मद्धि सु भूप उताल।
जरे ससिसेखर के प्रति अंग। भई उर मैं न कलेस तरग ॥२८॥
नवीन सरीर भयौ अकलंक। कढ़यौ तहँ तैं तव भूप निसंक।
मिली बहु संपति सुक्ख निधाँन। दियौ पुनि विप्रनि कौं हँसि दाँन ॥२९॥

प्रतीति भई उर मैं अबिकार। करै प्रतिनित्त यही सु बिचार।
बिलोकि सुनैननि कौतिक एह। चल्यौ तहँ तैं पुनि भट्ट अतेह ॥३०॥
पहुँच्यव आंनि अवंतिय भट्ट। भर्यौ अचिरज्ज हियें उदभट्ट।
गयौ पुनि बिक्रम भूपति पास। कह्यौ कर जोरि सबै सु प्रकास॥३१॥
कहे जब भट्ट सु या बिधि बैन। बिचारिय बिक्रम पंकज नैन।
पराक्रम सौ अति है इह धृष्ट। सहै नित औरनि के हित कष्ट ॥३२॥

सवैया

रतनाकर रत्न अमोलनि कौं उर मद्धि भरेव कहा सु करै।
अरु बिंध्य परब्बतहू गज पुंजनि लैकैं कहा लगि सीस धरै।
मलयाचल चंदन बृंदनि कौं लहिकैं कहा आपु अनंद भरै।
नित संपति साधुनि की निहचै बिनु वाद अनेक बिषाद हरै ॥३३॥

दोहा

पै ससिसेखर नृपति कौं है नित दुख्ख उदार।
यातैं ताकौं जाइकैं करिहौं हौं उपकार ॥३४॥
यौं विचारि ब्रिक्रम नृपति जोगपांवरी चढ्ढि।
ससिसेखर के नगर मै पहुँच्यौ आनँद मढ्ढि ॥३५॥

निसिपालिका छंद

बिक्रम सु भूमिपति ठौर तिहिं जाइकैं।
अग्निवर कुंड मद्धि पैठि चतुराइ कैं।
हौंम करिबौ सु निजु अंग चित्त धारियौ।
ह्वै प्रगट अंबइमि बैंननि उचारियौ ॥३६॥
हे मनुज सत्व युत हुव निजु देह कौं।
होम किहिं अर्थ प्रगटै बरजि नेह कौं।
जाचि मन चाह भरि तज्जि अभिमान कौं।
मैं हरषि तोहि हँसि देत बरदांन कौं ॥३७॥

देवि वचनैं सुनि सुभूप पुनि बुझियौ ।
जो मुदित देवि यह देहु अनमुझियौ ।
चंद्रसेखर नितहिं परतु जो कुंड मैं ।
बास निरखौ निपट अग्नि के कुंड मैं ॥३७॥
ताहि अब कीजियै छिमां चित छाइकैं ।
देहु जो चहै नित रहै सुख पाइ कैं ।
मांनि लिय बचन उनि बिक्रमांजीत कौ ।
धर्म बिधि जानि उर अंतर अभीत कौ ॥३८॥
बिक्रमादित्य पुनि ग्रांम निज आइयौ ।
लोक मद्धि तासु जस रीझि करि गाइयौ ।
मेह कलधौंतमय आपु बरसाइयौ ।
बिप्र बर बृंद मधि सुख्ख सरसाइयौ ॥३९॥

दोहा

यह मेरौ वह ओर कौ, यह तुच्छन की बात ।
यह न बिचार उदार कैं, सब अपनैं ही भ्रात ॥४०॥
अदभुत यह सु कठोरता है साधुनि के चित्त ।
करी सहाइ चहै न फिरि पलटौ संकसहित्त ॥४१॥

सोरठा

धँसिकैं अग्निमझार देवी सौं बरदान लिय ।
ससिसेखर अनयार ताहि दियौ को बिक्रमसम ।
भोज सुनौ दै कान जौ उदार इमि तुम जगत ।
तौ अब सहित सयांन सिंहासन पर सोहित ॥४३॥
कथा कहत हुव वेर तबलौं समयौ हटि गयौ ।
चित चिंता कौ ढेर भोज महीपति कैं भयौ ॥४४॥

हरिगीत छंद

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि बिसाल है।
तिहिँ कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कबि ससिनाथ नैं रच्चिय सुजांन विलास है।
पुतरी सिंहासन की कथा हुव सत्रही परकास है ॥४५॥

———

उनि आइ कै अभिराम, किय विक्रमहि प्रभु नाम।
ताकौ बुलाइ सु पास, पुनि कह्यौ बचन प्रकास ॥१२॥
निरख्यौ कहा अचिरज्ज, तुम कहौ सो सु गरज्ज।
सुनि कै नृपति की बात, सा लग्यौ कहन सिहात ॥१३॥

छप्पै छंद

उदयाचल नाम एक कंचन कौ पव्वय।
तामै वृच्छ विहंग घनें छवि छज्जै सव्वय।
ताके निकट नजीक देवता मंदिर सरसत।
निसि दिन जागी जोति जगमगै आनँद वरसत।
मनि चंद्रकांति कौ अग्र तिहि है तडाग गंभीर अति।
जल उज्जल जामै कूल की सिढ़ी सिला झलकति रहति ॥१४॥

हरिगीत छंद

तहँ चंद्रमनि के छवि छटनि के सुघर तट चहुँ ओर हैं।
अरु अात गंभीरी नीर सीरौ खिलै कमल अछोर हैं।
मृदु पवन फहरै उठति लहरैं वहु सुगंध झकोर हैं।
जहँ भंवर पुजन करत गुंजनि होत चित के चोर हैं ॥१५॥
कलहंस सारस तजैं आरस फिरैं कूलन जोर हैं।
कुररी कुलंगै भरि उमंगै मंजु सज्जत सोर हैं।
लहि काम झोकन तजै सोकन करत कोक विहार है।
अरु चपल सफरी तरति अफरी और विविधि वहार है ॥१६॥
तह मद्धि तालै इक विसालै थभ कंचन कढ्ढई।
तापै सिंहासन दुति प्रकासन हैम कौ छवि मढ्ढई।
जुग जाम लौं सुरधाम लौं दिन मंद मंद सुवड्ढई।
ह्वै भान हट्टइ क्रमहि घट्टइ जलहि वुड्डई वड्डई ॥१७॥
लखि ता चरितै नित्त नित्तै मैं व इत्तै आइयौ।
लहि सोच मन मैं मनुज गन मैं भूप तुमहि जताइयौ।

तिर तिहि थानहि चित्त मानहि पापनासक नाम कै।
सब बिना रोगनि लहै भोगनि पूरि काम अराम है ॥१८॥
यह बात सुनिकै सत्य गुनिकै नृपति साहस सज्जिकै।
चढ़ि जोग पावरि मानि भावार चल्यौ आलस तज्जिकै।
तहँ निपट अगमैं उदय नग मैं जाइ बिक्रम दच्छ नै।
परतच्छ लच्छन आप अच्छन लख्यौ कौतिक तच्छनै ॥१६॥

सवैया

कौतिक देखि बस्यौ निसि बिक्रम प्रात भयौ सर मैं तब न्हाइकै।
पूजा करी तिहि देवता की पुनि चंदन अच्छित फूलनि चाइकै।
कै विनती बहु विद्धिन सों निज बैठि रह्यौ तट पै अतुराइकै।
त्योंही कढ्यौ जल ते वह थंभ सिंहासन संजुत जौति जगाइकै ॥२०॥
बिक्रम दौर सिंहासन पै चढ़ि संक दई उर तैं बिसराइकै।
मंदहि मंद बढ्यौ पुनि सो परस्यौ जुग जाम दिनेसहि जाइकै।
तेज लगे तन भूपति कौ अनसुद्ध भयौ सु गयौ मुरझाइकै।
साहस देखि प्रसन्न दिवाकर सींचि पियूष सों लीयौ जगाइकै ॥२१॥

दोहा

जब चैतन्य भयौ नृपति बिक्रम हरष बढ़ाइ।
अंबरमनि की बीनती करी तबै इह भाइ ॥२२॥

सारवती छंद

जा दुति तै सब जानि परै। ज्ञान हिये मधि आनि भरै।
जो किहु बस्तुन नाहि छक्यौ। तत्व स्वरूप जु सत्य तक्यौ ॥२३॥
जीव दिनेस प्रकास मनी। सज्जत ताहि प्रनाम घनी।
जो त्वक आखिन काननि मैं। जीभरु नाक सुठाननि मैं ॥२४॥
हत्थरु पाइ बिलासनि मैं। बानि पियूष प्रकासनि मैं।
जो मन बुद्धि अहंकृत है। मूरति जौ तम कौ जित है ॥२५॥

भीतर औ जग बाहर है। द्वादस रूप जु जाहर है।
जो अतिही करुनाकर है। ताहि प्रनाम करौ वर है ॥२६॥
जा कहँ आदि न अंत लसै। अंग विहीन सदा सरसै।
है लघु तें लघु भाँति भली। दीरघ दीरघ तें अछली ॥२७॥
विश्वस्वरूप सगुन्न धरैं। जो अथवा इमि पाठ करैं।
जो वहु धिद्धि प्रकृत्तिन मैं। डीठि परै छिनही छिन मैं ॥२८॥
ता रवि कौं जुग हत्थन सों। सज्जत नत्ति सु गत्थन सों।
स्तुत्ति करी इह विद्धि जवै। भान प्रसन्न भयौ सु तवै ॥२९॥

दोहा

रवि नैं विक्रम सों कही चहै सु लै वरदान।
यौं सुनिकै पुनि उच्चर्‌यौ भूपति बुद्धिनिधान ॥३०॥

अमृतगति छंद

दिनकर ईस जगत के, गति नित सत्य भगत के।
कछु नहि तूल दरस के, सह्यउ सुगुन कहि जस के ॥३१॥
अधिक कहा पुनि वर है, इहि सम आनँद घर है।
यह सुनि सूरज हित कैं, दिय जुग कुंडल चित कै ॥३२॥
सुवरन भार जु चारहि, वरसहि नित्त विचारिहि।
लहि इमि कुंडल कर मैं, तिहि क्रम उत्तर घर मैं ॥३३॥

पावकुल छंद

दिनकर अस्त समै अतुरायौ। अपनें पुर प्रति विक्रम ध्यायौ।
जोग पावरी पाइनि पहरैं। भू मैं लेत पवन की लहरैं ॥३४॥
मग मैं आवत नृप पै देखे। एक रंक नै जोति विसेपे।
हाथ पसारि सु कुंडल जांचे। दीने ताहि कनक मनि राचे ॥३५॥

सोरठा

सुवरन चारि सुभार जे कुंडल जुग देहि नित।
विक्रम सौ न उदार रवि के दीनै दैचुक्यौ॥ ॥३६

दोहा

यातें तू जु उदार है ऐसौ भोज नरेस।
तौ सिंघासन पै लसौ अबही तज्जि कलेस ॥३७॥

हरिगीत छंद

श्री वदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकुट गुननि विसाल है।
तिहिं कुँवर सिंह सुजाँन सुंदर हिंद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ नैं रच्चिय सुजान विलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा ठारही मैं सु प्रकास है ॥१८॥

ऊनविंश कथा

पावकुलक छंद

फिरि जब साधि महूरत आयौ। भोज महीपति अति अतुरायौ।
सिंघासन पग धरन उँचायौ। चंद्रमुखी तब वचन सुनायौ ॥ १ ॥
विक्रम सौं जो तू है दाता। तौ सिंघासन बैठ सुजाता।
कहि उदारता ताकी कैसी। उनईसई कहति है जैसी ॥ २ ॥

चउरस छंद

पुरिय अवंती, अतिगुनवंती। तहँहुव राजा, परम सलाजा ॥ ३ ॥

संजुता छंद

पुनि तासु विक्रम नाम हो। बल तेज करि अभिराम हो।
तिहि राजमद्धि विचित्र है। नर बसत निपट पवित्र है ॥ ४ ॥
निज आचरन नहि तज्जते। कछु औट पाउ न सज्जते।
तरुनी पतिव्रत धारनी। नहि वृद्धता दुखकारिनी ॥ ५ ॥
बहुं भांति के जहं वृक्ष है। सब समै फलत प्रतक्ष है।
मनभावते घन वर्षते। लखि कै तिन्है सब हर्षते ॥ ६ ॥
नहि मेदिनी कहु ऊपेलै। जनु पूरि ईसु पियूष लै।
जिहि ठाम भट्टक पाप की। निहचैं सुधर्म अताप की ॥ ७ ॥
हिंत सों भिक्षुक पूजिई। गुरु सेव करि सुभ कूजई।
परमातमैं पहिचानिकै। विहरें सदा सुख ठांनिकै ॥ ८ ॥
अरु पात्र मनुजै दान कौ। नित देत है लहि ग्यान कौ।
अरु राजनीत विचारिकै। सब ठयौं परैं प्रन पारिकै ॥ ९ ॥

दोहा

एक द्यौस विक्रम नृपत बैठ्यौ सभा मझार।
मनिकंचन सिंघासनैं मनौं अमर भरतार ॥१०॥

छत्तीसौं जे राजकुल सेवत ऐसें ताहि।
जैसें सूरज चंद्र कौ ग्रह नछत्र चित चाहि ॥११॥

छप्पै

अरज करी तिहि समै आइ प्रतिहार विचच्छन।
प्रभु क्रीडा वनपाल कहन आयौ सुभ लच्छन।
मानहुँ काल कराल कोल कितहू ते आयव।
सो वन कौ अवगाहि थित्त है तुमहि सुनायव॥
यह बैन सुनत बिक्रम नृपति चढ़िकै तरल तुरंग वर।
पुनि गयौ बिपन कौतिक लखन, अति उदार चित डारि डर॥१२॥

तहाँ भूप नै जाइ दिख्यौ यौ कोल कुढंगन।
उत्कट ठढ्ढे केस अंग कारै अति रंगनि।
डड्ढे जुगल कराल पलक दंता जिमि हत्थिय।
नृप कौ आवत लख्यौ संकि भज्यौ लथपत्थिय॥
तिहि पिठ्ठ लग्यौ अवनीस हू चल्ला उर आखेटधर।
कढ़ि गयौ दूरि किहुँ मेरु तट निकट जानि रहिगो ठहर॥१३॥

पब्बय निपट उतंग श्रृंग आकासहि लग्गइँ।
बिबिध वृंदनि वृक्ष सदाफल फूलनि खग्गइँ।
झिरना झिरत अनंत सद्द अनहद्द न छंडइ।
औरै भाति विहंग संग सजि वानी मंडइ।
लखि ताहि और कौतिक लख्यौ गिरि तट लगे कपाट द्वै।
उतरि तुरँत सौ भूप सो तहाँ पहुँच्चिय घाट ह्वै॥ १४॥

कर सों खोलि कपाट बहुरि अग्गै पग दिन्नै।
दिख्यौ उग्र अंध्यार भयौ नहि दिप्ट अधिन्नै।
काट कटोर चल्यौ दूरि पहुच्यौ छित वालम।
निरख्यौ अपनै द्रगन तहाँ पुनि औरै आलम॥
अति ही उतंग है कोटई कंचन कौ जगमग्ग रुचि।
अचिरज्ज चित्त मैं ठानि कै चल्यौ अग्ग्र फिरि भूप सुचि॥१५॥

दोहा

आगें चलि छवि नगर की लखी नरेस उदाम।
अति विलास मंडित जहाँ तासु धर्म पथ नाम ॥१६॥

मधुभार छंद

कंचन अवास, जहँ अति उजास। परसैं अकास, अस सावकास ॥१७॥
चौरे वजार, उज्जल उदार। अरु जल अपार, मंडित विहार ॥१८॥
अंबर अनूप, सोहैं सरूप। निरदोप चित्त, यौं रहत नित्त ॥१९॥
अरु फिरत नारि, अंगनि सिँगारि। रंगित दुकूल, उर भरैं फूल ॥२०॥
अरु जगमगात, भूपनन गात। धुनि विविध भाइ, मंडित सुभाइ ॥२१॥
मुख सर सिवार, जिमि लसत वार। दल कमल नैंन, जिमि सम एँन ॥२२॥
मुसक्यानि मंद, संजुत अनंद। वौने उरोज, अति भरे चोज ॥२३॥
पुनि छीन लंक, डगरे निसंक। जिनि मंद चाल, निदरे मराल॥२४॥

सव निरविकार, धर्महि अवार ॥२५॥
नहि पाप रीति, सव सहित प्रीति ॥२६॥
पुरि सोभ देखि, वुद्धिहि विसेपि ॥२७॥
आगे नरेस, चल्ला सुवेस ॥२८॥

दिख्यौ चरित्र, अति ही विचित्र। थित राज द्वार, कान्हर खिलार॥२९॥

दोहा

विस्वनाथ वलि पै गयौ, लहन तुच्छ छित दान।
सलज मंद विहस्यौ सु तव समझि हियै भगवान ॥३०॥
चमत्कार तिहुँ लोक मे है जाको अविकार।
सोई निहचै देव यह नहि संसय संचार ॥३१॥

सोरठा

वड़ो आचिरज एह, दान भार ते कृष्नहूँ।
हुव प्रतिहार अतेह अजहूँ टरत न द्वारतें ॥३२॥
यह वल नृप कौ ग्राम, निश्चय आयौ मोहियै।
आगें चल्यौ उदाम, विक्रम विक्रम करि सरस ॥३३॥

सैनिका छंद

जाइ कैं कही सु चोबदार सों। भाषि जाइ तूव भ्रम तार सों।
भूप विक्रमा सु द्वार आइयौ। दर्स कौ हुलास चित्त छाइयौ ॥३४॥
चोबदार ने कही सुजाइ कै। पाइ कैं सुबैन गौ लिवाइ कै।
देखि कै बल्यै सु सीस नाइयौ। विक्रमें सुबैन वॉ सुनाइयौ ॥३५॥

पद्धरी छंद

हे बिक्रम नृप कल्मषबिहीन। दातानि इंद्र सुंदर प्रवीन।
तुव आगम तें मैंने अपार। सुख पायौ मैंनें निरविकार ॥३६॥
प्रिय काज तुम्हारौ कहा अब्ब। जो कहौ करो मैं सो सरब्ब।
अरु चाहै सो सो बस्तु लेहु। यह निहचै जानों आप गेहु ॥३७॥
बलिराजा के इमि सुनत बैन। बिक्रम पुनि बोल्यौ सहित चैन।
महाराज तुम्हारौ दरस नीक। सो मोको यह सरबस्व ठीक ॥३८॥
है यातैं उत्तम बस्तु कौन। मैं कहत सत्य वच तज्जि मौन।
ए बिक्रम के सुनि वैन फेरि। बलि भूप उच्चरचौ सहित हेरि ॥३९॥
निज मित्रहि उत्तम वस्तु देहि। अरु चाहै तौ पुनि आय लेहि।
पुनि कहै आपनी गुह्य बात। अरु सुनै प्रेम सो निज सिहात ॥४०॥
बर वस्तु खवावै सजि समान। अरु खाइ आपहू तजि गुमान।
षट विध्धि कही यह प्रीति रीति। बिक्रम महीप सुनि सजि प्रतीति ॥४१॥
तू यातें लैयै बस्तु दोइ। रस और रसाइन सुख्ख भोइ।
सो बिक्रम लै द्वै वस्तु आप। पुनि चल्यौ तहाँतें करि मिलाप ॥४२॥
पथ मध्य लख्यौ इक वृद्ध बिप्र। जुत पुत्र सु आयौ निकट छिप्र।
उन कही कछू दै मोहि वित्त। पढ्यौ न भूप अदभुत चरित्त ॥४३॥
सुनि कै सु विप्र के बैन भूप। पुनि आप उच्चरचौ गुन अनूप।
ए वस्तु दोइ सुनि छिन दयाल। गुन इनके तोसौं कहत हाल ॥४४॥
राखै अरोग तन बस्तु एक। अरु करै स्वर्न दूजी सटेक।

पितु और पुत्र कौं लरत देखि । विक्रम नरेस अति दया लेखि ।
उच्चरयौ वेंन यों हित बढ़ाय । मति करौ वाद तुम क्रुध्व छाय ।।४८।।
ए वस्तु लेहु दोऊ ललाम । तुम जाहु आपनें तुरतु धाँम ।
रस और रसायन कौ नृपाल । दै चुक्यौ दुहुनि कों करि निहाल।।४९।।

दोहा

यातें सुनि तू भोज नृप जो इहि विध्वि उदार ।
तौ या सिघासन चढौ मंडि विनोद अपार ।।५०।।

हरिगीत छंद

श्रीवदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि विसाल है ।
तिहिँ कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है ।
तिहिँ हित्त कवि ससिनाथ नें रच्चिय सुजान विलास है ।
पुतरी सिँघासन की कथा उनईसईं सु प्रकास है ।।१९।।

———

विंश कथा

छप्पै

फेरि महूरत साधि भोजभूपति जब आयौ।
कामधुजा पुत्रिका बीसई वचन सुनायौ।
बिक्रम सौ जु उदार राजि तौ इह सिंहासन।
इमि ताकौ सुनि बैन कह्यौ नृप बुद्धि प्रकासन ।।
कहि बिक्रम की उद्दारता जो तू जानत चित्तही।
पुनि पुतरी बोली भोज सों नरवानी सों थित्तही ।।१।।

तोमर छंद

नगरी अवंतिय नांम। सब विद्ध परम ललाम।
तहँ हुतौ बिक्रम भूप। मनु मदन परगट रूप ।।२।।
अवनीस छिति के आनि। जिहिँ सेवते सुख मानि।
जिहि विधि कुबेरहि स्वच्छ। सेवै गंधर्वरु जच्छ ।।३।।
सो भूप बिक्रम आप। उर मद्धि ह्वै अनताप।
कौतिक बिलोकन अर्थ। परदेस गयेउ समर्थ ।।४।।
छिति भमति औसर पाइ। पद्मालया पुर जाइ।
पहुँच्यौ सु बिक्रम बीर। परदुक्ख हरत गँभीर ।।५।।
तिहिँ नगर बाहर थान। सिव कौ लख्यौ दुतिवान।
बैठे हुते तिहिँ द्वार। नर चारि कॉवरि हार ।।६।।
नृपहू गयौ ता ठाम। लीनौ कछू बिसराम।
लागे सु यौ बतरान। वे चारि सहित सयान ।।७।।
हमनै सु तीरथ वृंद। निरखे समेत अनंद।
पै कनक कूट पहार। तहँ कियौ नहिँ संचार ।।८।।
जोगी अकाल सुनाथ। तिहिँ मद्धि वसत सनाथ।
ताकौ दरस नहि कीन। वह रही ठौर नवीन ।।९।।
तिहिँ निकट के नर और। यों कहत हे कर भौर।
है कनक कूट उतंग। इहि मद्धि पंथ कुढंग ।।१०।।

नहि जाइ सक्कइ कोइ। याते गए नहि टोइ।
बतराइ कै इहि बिद्धि। पुनि उच्चरे गुननिद्धि ॥११॥

प्लवंग छंद

दुक्खनिवारन हित्त बित्त को रक्खियै।
धन दै रक्षि सु नार अनंत हरप्पियै।
धन अरु कामिनि तज्जि रक्षियै आपकौं।
राजनीति में कही लोपिकै ताप कौं ॥१२॥
पुत्रि कामिनी पुत्र मित्र पुनि होति है।
अरु पुनि होत अवास समेति उदोत है॥
फिरि फिरि मंगल कर्म होत बहु भाइ कैं।
बेरि बेरि पै होत सरीर न आइकैं ॥१३॥
जाकौ फल सुदुरंत प्रगट नहि जानियैं।
अरु जु ह्वै सकैं नाहि बुद्धि अनुमानियै॥
ऐसे काजहि नाहि प्रवीन अरंभहीं।
है प्रकास यह बात कही अनदंभ ही ॥१४॥

दोहा

कावरि मन की बात ए सुनि कै बिक्रमराज।
निज चितंन लाग्यौ हियै या बिधि बुद्धि जिहाज ॥१५॥

मुक्तादाम छंद

सुहै इमि बोझ कहा अनकत्थ। जु नाहि उठाइ सकैं समरत्थ ॥१६॥
तिन्हैं पुनि दूरि कहा छिति मद्धि। निज उद्यमवंत महा जस लद्धि।
बिदेस कहा तिनको दुखदानि। मनुष्य जु है बर बिक्रम खानि।
जु बोलत है सबसो प्रिय बैंन। दुरज्जन कौ तिनकौ दैंन ॥१७॥
तबै लगि तुंग सुमेरु गिरिंद। जबै लगि दूरि महेस अनिंद।
बिषम्म सु कारज है तब लग्गि। न जौलगि वीर करें हित पग्गि॥१८॥
विचारि हियें इहि बिध्धि नृपाल। चढयौ पुनि जोग खराउ बहाल।
गयौ तिहि पब्बय पै ततकाल। .... ॥१९॥
जटा लटकैं कटि के परमान। भभूत लगी सब अंग अमान।
रतोपल से पुनि लोचन लाल। प्रकासत है जनु द्वै छितबाल ॥२०॥

सु नैन लगाइ कै नासिका अग्र। किये पदमासन चित्त अव्यग्र।
बिहारि कियौ इह बिद्धि बिचार। महिपति बिक्रम नें निरधार ॥२१॥

सवैया

पब्बय कंदर कैं पुर अंदर है सुर मंदिर कै घर मद्धहि।
चेतन रूप अनूप पियूष समुद्र बिषे जु रमैं हित सद्धिहि।
ते भव सिंधु गँभीर तरे नर जीवन मोक्ष सिंघासन लद्धिहि।
है निहचै हमरौ मत यौं सठ ते जु लरै वृथ वाद अरत्थिहि ॥२२॥

छप्पै

पद्मासन कौ बंधि चित्त छर छंद बरज्जित।
देव पंथ संकोचि दीघ करि कै बल सज्जित।
प्रान सक्ति सों रोकि सुषुम्ना नाडी रज्जित।
करि समीर कौ इक्क ब्रह्म रंध्रहि प्रति मज्जित।
आकास कोस में राखि पुनि पवन समॉन महेस के।
जे रमें जगत में धन्य ते कंदन फंद कलेस के ॥२३॥

दोहा

बिक्रम धरनीकंत नै यौ चित मद्धि बिचारि।
ता जोगीसुर कौ कियौ पुनि प्रनाम हित धरि ॥२४॥
करि प्रनाम ठाढ़ौ भयौ आगै हत्थनि जोर।
तब सो जोगी नृपति सों बोल्यौ दया बटोरि ॥२५॥

पावकुलक छंद

हे कलिकाल दान के नायक। बिक्रम विक्रमवंत सुभायक।
किहिं निमित्त अब तू ह्यॉ आयौ। कहि बिचारि जो मन ठहरायौ ॥२६॥
जोगी नें जब या बिधि बानी। कही नृपति सो हित लपटानी।
तव बिक्रम जोगी सो बोल्यौ। सुद्ध विनयता सज्जि अतोल्यौ ॥२७॥
तुव दरसन अभिलाषहि भीनें। आयौ मैं अतुराई कीनें।
छिति फिरिबे कौ उद्यम मेरौ। सफल भयौ करि दरसन तेरौ ॥२८॥
बिबिधि ठौर अवलोकत मग में। कोउक मिलतु सयानौ जग मे।
जाकी संगत तै सुख पैयै। चित की चिंता दूरि बहैयै ॥२९॥
इमि बिक्रम नृप की सुनि बातैं। ह्वै प्रसन्न जोगी मुसक्यातै।
कंथा खटिका दंड नबीनौ। दै कैं पुनि प्रभाव कहि दीनौ ॥३०॥

भोजन वस्त्र वित्त अरु भूषन। चहै सु कंथा देत अदूषन।
अरु पटका सों लिखै जु फांजे। दक्षन करि गहि दंडसमौजे ॥३१॥
चिंत्रित दल को जबही परसैं। सव चैतन्य होइ गुन सरसैं।
और मृतक हू जीवैं योंही। दक्षन कर गहि छुवैं जु त्योंही ॥३२॥
अरु जो वाम हत्थ गहि दंडैं। चहैं देइ सो सहित घमंडैं।
तीन वस्तु जोगी सों लैकै। बहुत भांति विनती को कैकै ॥३३॥
अज्ञा लै निज पुर को धायो। निपटहि विकट सुपंथ सुभायो।
इक नर चिंता गलित निहार्यो। मग मै तासों बचन उचार्यो ॥३४॥
कहा करत को है तू भाई। कहि मो सों करिकैं अतुराई।
विक्रम के ए बैनन सुनि कै। बोल्यो सो दुखित सिर धुनिकै ॥३५॥
जापै दुख पर्यो नहि होई। सो दुख हरन समर्थ न जोई।
अरु पर दुख सों दुख जु न पावै। तासों कहैं दुख सुनावै ॥३६॥
दुखित यों जबही बतरानो। विक्रम सुनि बोल्यो मरदानो।
राहे दुख मिलैं अति भारे। अरु हों दुख भंजन सुनि प्यारे ॥३७॥
हों दुख लहौ पराए दुख सों। तू मोसों कहि निज दुख मुख सों।
जब यों विक्रम नृप ने भाख्यो। तब सो पुनि बोल्यो अभिलाख्यो॥३८॥
हे पर दुख निकंदन भारे। परदुख सों दुख पावन हारे।
लै मो राज सत्रनिकन अब्वैं। काढि दियो पुर ते गहि गर्व्वैं ॥३९॥
तिनकी मारु सकत मैं नाही। निपट हारि कौ दुख मन माही।
मैं यह अपनी सर्व कहानी। तेरे आगें प्रकट बखानी ॥४०॥

सोरठा

ए तार्को सुनि बैन विक्रम ने ताको दई।
तीनों वस्तु सचैन अरु पुनि ताको राज दिय ॥४१॥
पुनि विक्रम नरपाल आयौ अपने नगर मैं।
कीने विप्र निहाल सुवरन को भरि लाइकैं ॥४२॥

दोहा

जो तू ऐसौ भोज तू बैठ सिंघासन मद्धि।
सत्य कथा तोसों कही अपनो औसर लद्धि ॥४३॥

हरिगीत छंद

श्री बदन सिह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहिँ कुँवर सिह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिँ हित्त कबि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिँघासन की कथा हुव बीसई सु प्रकास है ॥२०॥

एकविंश कथा

सोरठा

और महूरति साधि, आयौ सिंघासन निकट।
भोज इष्ट आराधि, पाइ दैन जब मन कियौ ॥१॥
कुरंग नैना नाम, पुतरी तब इक्कीसई।
बोली बचन ललाम, भोज बसुमतीपाल सों ॥२॥

दोहा

जो उदार है भोज तू बिक्रम नृपति समान।
तौ या सिंघासन अबै चरन धरो बुधिवान ॥३॥
बिक्रम कीब उदारता कहि पुत्तली प्रवीन।
यह सुनिकै लागी कहन पुतरी कथा नवीन ॥४॥

तोमर छंद

नगरी अवंतिय नाम। सब बिध्धि गुन अभिराम।
तहँ भयो बिक्रम राज। सुरपत्ति सौ जुत साज ॥५॥
ताकौ सुमंत्रिय एक। हुव बुद्धिसार सटेक।
ताके भयौ पुनि पूत। सठ बुद्धि सेखर धूत ॥६॥
इक द्यौस मंत्रिय आप। उर मद्धि मंडित ताप।
सुत को लग्यौ सिख दैन। करि कै सु लोहित नैन ॥७॥
तू भयौ पुत्र उतार। हमारे सु बंस मझार।
विद्या पढ़ै कछु नाहिँ। दिन रैन नाहक जाहिँ ॥८॥
बिद्या मनुज कौ रूप। अरु दुरघौ बित्त अनूप।
विद्या सु भोगइ देई। दुख औ अजस हरि लेइ ॥९॥
है गुरुन कौ गुरु ठीक। बिद्या न जाँनि अलीक।
परदेस मद्धि निदाँन। विद्या सुबंधु प्रमान ॥१०॥
अरु देवता अविकार। विद्या सु है निरधार।
विद्याहि नवत नरेस। नहि धनहि मानत बेस ॥११॥

है नर जु विद्या हीन। सो पसु समान मलीन।
पितुहु बैन सो धरि कान। परदेस कियउ पयान ॥१२॥
किहुँ नगर के मधि जाइ। बिद्या पढ़्यौ मन लाइ।
पढ़ि कैं सु पंडित होइ। सब ग्रंथ मतन बिलोइ ॥१३॥
अपनें नगरि कौ फेरि। डगर्‌यौ कलेस निबेरि।
पथ मै लख्यौ इक ग्राम। तहाँ कियौ जाइ मुकाम ॥१४॥
पुनि एकही छिन माँझ। रबि आथयौ हुव साँझ।
तिहि ठाँ सिवालय मद्धि। रहि गयौ औसर सद्धि ॥१५॥
तिहिँ देव भवन अगार। हो एक ताल उदार।
अरु मनुज कौ संचार। देख्यौ नही तिहिँ बार ॥१६॥
हुव अर्धरैन बितीति। पै भयौ नहि भयभीति।
तहँ भयौ कौतक फेरि। सो लियौ नैंननि हेरि ॥१७॥

दोहा

तब तिहिँ सर ते आठ बढ़ि, सुर अंगना अनूप।
आई हर मंदिर बिषें, आँनन चंद सरूप ॥१८॥

प्रमानिका छंद

घनी सुगंध लाइके। सनेह कौ बढ़ाइकैं।
महेस कौ चरच्चिकैं। हियैं बिनोद मच्चिकैं ॥१९॥
अनेक बिध्धि नच्चिकैं। भयौ प्रभात जच्चिकैं।
चली तबै पुकारि कै। कही सु यौं निहारि कै ॥२०॥
तुहूँ इतावु संग मै। बिनोद की तरंग मै।
सुमंत्रिपुत्र तक्षनै। गयौ तहाँ बिलक्षनै ॥२१॥
तबै सु देव कामिनि। भई तड़ाग गामिनी।
तड़ाग जग्गमग्गई। कराल ज्वाल जग्गई ॥२२॥
किनार बुद्धिसेखरो। रह्यौ डरप्पि कै खरो।
सु कौतिकैं निरक्खिकैं। चल्यौ महा हरक्खिकैं ॥२३॥
पुरी उजैन आइ कै। महीप कूल जाइकै।
असीस कू जताइ कै। कही सबै सुनाइ कै ॥२४॥
सुनी कथा नृपाल नै। पराक्रमी बिसाल नें।
सु विक्रमेस तबई। चल्यौ बरज्जि सब्बई ॥२५॥

गयौ तहीं सु आतुरौ। महीप बुद्धि चातुरौ।
महेस थाँन दिख्खियौ। हुलास सों बिसिष्पियौ ॥२६॥
कियौ प्रनाम रुद्र कौ। महा कृपा समुद्र कौ।
चढ़ाइ गंध फूल कों। सजै अनंत फूल कौ ॥२७॥
फिर्यौ महेस थान तें। सु आइ सुद्ध ज्ञान त।
लख्यौ वही तडाग है। कराल ज्वाल जाग है ॥२८॥

दोहा

तिहिं महेस के थान मे कियौ रैनि मैं बास।
सुन्यौ सु कौतिक दृगन सौं विक्रम लख्यौ प्रकास ॥२९॥

उपेंद्रवज्रा छंद

बिभावरी अर्द्ध जबै विहानी। भयौ उजेरौ तव सुखदानी।
तड़ाग तें मानहु हेम वेली। बरंगना आठ कढ़ीं सहेली ॥३०॥
सुहावनै आनन चंद सोहैं। मनोज के चाप समान भौंहैं।
लसैं बड़े लोचन लाल तिख्खे। सरावली रीति कटाच्छ सिख्खे॥३१॥
हियौ हरै सुंदर मंद हाँसी। अनंग की मानहु मोह फाँसी।
पूरे महा चोज उरोज बौनैं। मनोज के मानहु द्वै खिलौने ॥३२॥
सबै बनी बैस समान वारी। नितंबिनी दिव्य भलें सिंगारी।
जड़ाव के भूषन अंग अंगै। झलक्कई अँवर भीन संगै ॥३३॥
महेस के मंदिर मद्धि आई। सुगंध अरविंदन हत्थ लाई।
चरच्चि कैं ईसहि थित्त आगैं। बिनै करैं चित्तहि हित्त पागैं ॥३४॥
अनादि सिभू जय गंगधारी। सज्जैं जटा जूट अनंदकारी।
लिलार मै चंदकला बिराजै। बिलोकि जाकौ तमतोम भाजै ॥३५॥
दिनेस के मद्धि प्रकास तेरौ। सुरेस ध्यावैं वनि चित्त चेरौ।
त्रिलोक मै व्यापक तू सु एकै। बिहार कौ रूप धरै अनेकैं ॥३६॥
विविध्धि औरो करि बीनती कौ। लगीं सबै नृत्तन लै गती कौ।
मृदंग वीनादिक सद्द पूरे। उमंग सों गान करत्त रूरे ॥३७॥
सबै सु यौं रैनि बितीति कीनी। भयौ सवारौ गुनि कै प्रवीनी।
चली तबै बिक्रम कौ बुलायौ। गयौ तहीं भूप बिनोद छायौ ॥३८॥
परीं सबै कूदि तडाग मंझै। गिर्यौ तहीं भूपहि यौं उरंझैं।
लख्यौ सु आगैं पुर एक अच्छौ। गयौ तहाँ बिक्रम चित्त स्वच्छौ॥३९॥

सुरंगना सनमुख आठ तेई। आई चली बैन कहै सु एही।
चली महा सोभ समूह छायौ। इहाँ हमारौं सुनि मित्त लायौ ॥४०॥
निहारि कै तोहि अनंद मान्यौ। विचारि तोसो मन कौ बखान्यौ।
सु लैव तू राज यहै हमारौ। विलासियै दिव्य सुभोग भारौ ॥४१॥

सोरठा

सुनिकैं तिनके बैन, बिक्रम भूपति उच्चरचौ।
मेरहु राज सचैन, है पहिलै यातै न घटि ॥४२॥
पै यह सिगरी बात, मोहि कहौ समझाइ कै।
तुमको है मृदुगात, कहौ कौन कौ थान है ॥४३॥

सवैया

उचरी सुरभामिन फेरि सु यौं नृप बिक्रम के सुनि बैननि कौ।
पुर है हमरौ हम आठहु सिद्धि इहाँ बिहरै लहि चैननि कौ।
इह ठौर न आइ सकै नर और पताल विषे सजि गैनन कौ।
तुव आनन देखि भई कृतकृत्य महा सरस्यौ सुख नैननि कौ ॥४४॥

दोहा

यौ कहि बिक्रम कौ दिए आठ रतन सुख पाइ।
तिनकौ लै पुनि पूछिकै निज पुर चल्यौ सुभाइ ॥४५॥
पथ मै बिक्रम भूप पै काहू नै ललचाइ।
माग्यौ राज समाज कौ अपनी दसा सुनाइ ॥४६॥

काव्यछंद

जन्म दरिद्री जानि मोहि त्रिय नै दुख दीनौ।
मोकौ चिंता भई बन्यौ नहि धर्म नवीनौ।
अरु कामिनि कौ भोग नहीं जग भोगन पायौ।
श्रीवंतनि कौ मिलै चहै सो सो मन भायौ ॥४७॥
और युक्ति पर कहाँ जु इनते दुरलभ जन कौ।
कहा कियौ मै आइ जगत मै लहिकै तन कौ।
सो मैने यह हेत भली विधि सों पहिचान्यौ।
जीवत मृतक समान अपुन ये कौ मनमान्यौ ॥४८॥
सिद्धि अर्थ के हेत बचन भाख्यौ ललचाएँ।
यातें यौ घर तज्जि इहाँ आयौ दुख छाएँ।

सो तेरौई दरस प्रथम अव पायौ मैंनें।
अष्ट सिद्धि मम यही भयौ संकट हरि लैंनें ॥४६॥
सो अचित्य फल लाभ होयगौ निस्चय मोकौं।
मैंने अपनी बिथा सुनाई सिगरी तोकौं।
सुनि कै ताके बैंन नृपति नें चित्त विचारचौ।
है यह दुखित महा अधन तरुनी सौ हारचौ ॥५०॥

यथा—पति बोलौ चलि दूरि कछू नहिं काम सुधारै।
क्रोध मुखी धिक तोहि बुरी विधि सौ मुख फारै।
सुनि कै बोली भामकंत क्रोधी ठहरायौ।
हे पापिन क्यौ वचन उलटि कैं मोहि सुनायौ ॥५१॥
पापी तेरौ बाप त्रिया मै ऐसें भाख्यो।
सुनि कैं पति नें चित्त मरन अपनौ अभिलाख्यौ।
दंपति मैं व्यौहार जहाँ यह नित प्रति होई।
कौन भाँति गृह मद्धि तहाँ सुख पावै कोई ॥५२॥

सवैया

कर्मन की गति है सुबिचित्र कहा कहियै न कछू कहि आवै।
कोऊ सहस्रन पोषत है पुनि लक्षनि कोउ विनोद बढ़ावै।
है एक ऐसो मनुष्य दुनी मधि आपुनहू कौन जो सुख छावै।
सो निहचै फल पुन्य रु पाप कौ कैंन कौ कौन कलेस बढ़ावै ॥५३॥

सोरठा

यह गुनि विक्रम भूप ताके मन की जानिकें।
आठौ रतन अनूप दिये ताहि सुख पाइकै ॥५४॥
यातें भोज महीप ऐसौ जु तू उदार है।
तौ इह आव समीप नाहीं तौ गहि मौन रहि ॥५५॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि विसाल है।
तिहिं कुँवर सिघ सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कबि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान विलास है।
पुतरीन की इक्कीसईं यह कथा भइय प्रकास है ॥२१॥

द्वाविंश कथा

बड़ी चौपाई

फेरि महूरत साधि भोज नृप सिंघासन पग दीनौ।
तव बाईसई सलौनी पुतरी बोली बचन प्रवीनौ।
नृप विक्रम सौ जु उदार भूप तौ सिंघासन पर राजौ।
यह सुनिकै भोज कही पुतरी सो ताके जस कौ गाजौ ॥१॥
इमि भोज महीपति की सुनि वानी बोली फेरि सलौनी।
अब सावधान हो सुनि धरनीपति बहुत रही हौं मौनी।
इक हौ उज्जैन पुरी कौ वालम बिक्रम नाम जसीलौ।
नित जाकें राजनीति की चरचा सुधरमपंथ सुसीलौ ॥२॥
सो एक समै कौतिक अवलोकन परदेसनि मै डगरचौ।
बहु निरखे बन घन नगर पंथ मै मोद सुमन मै बगर्‌यौ।
कहुँ इक प्रासाद मद्धि हरि मूरति बिक्रम नृपति निहारी।
जहँ जगमगति सोभ बहु औरन फैली परम उज्यारी ॥३॥
तहँ गंध पुष्प तुलसी सों हरि कौ हित सो पूजन करिकै।
पुनि बिनती करन लग्यौ नृपविक्रम आरस वृद निदरि कै।
मैं जानी जगन्नाथ तुव संस्तुति ध्याइ मौन हीर रहिऐ।
जो जानत नाहि तुम्है सो जानत यामे झूठ न लहिऐ ॥४॥
नहिं तिनकौ रूप रंग अंगनि की वेद निरंजन गावै।
अति व्यापि रह्यौ है चौदह भुवन जाहर जोति जगावै।
हौ तातें नाहि और के नामहि लैहु न सुमिरो औरै।
अरु नहीं आसरौ लहौ और कौ सुनौ नगन की भौरै ॥५॥
पुनि नहि चितवप करौ जपो नहि औरै यह मत ठायौ।
तुव चरन कमल के पाइ प्रसादै मैंनें अति सुख पायौ।
तुम तातें रहौ रैन दिन मेरे मन में कुंजविहारी ॥६॥

त्रिभंगी छंद

सिर मुकट जवाहर जगमग जाहर अंसनि ठाहर कांवरिया।
छबि मन पथ वारी दृगनि विहारी लखि निरधारी झांवरिया।

बिय ऐसो लोगुन जैसौ तो गुन बरनत मो गुन ताँवरिया ।
जय जग रखवारे जस उजियारे नंददुलारे साँवरिया ॥७॥

दोहा

अस्तुति करि हरिदेव की बैठ्यौ विक्रम भूप ।
तौलो परदेसी तहाँ आयौ एक अनूप ॥८॥

छप्पै

तासौ विक्रम भूप अकेले बातन लग्गिय ।
तानें नृप सों बैन कह्यौ पुनि प्रेम सु पग्गिय ।
हे नर बीर सबीर राज लक्षन तुव दिक्खित ।
सो तू यौ क्यौ फिरत राज तजि धरनी पिक्खित ॥
गत आयु फेरि नहि पाइयै है यह प्रानी की सुगति ।
मो बचन सत्य ए जानियै जो उर अंतर सुद्ध मति ॥६॥
फिरि फिरि अंबर मद्धि चंद उद्दोत होत नित ।
अरु अनहद्द जलद्द बेर वहु मंडै जित तित ।
पै जोबन जो जात सु तौ नाहीं पुनि आवत ।
मृतक न जीवै फेरि प्रगट यो वेद बतावत ॥
तू यातें राजश्री सुखै भोगि जु पाई सहज अब ।
इमि सुनि कै ताके बैन पुनि बोल्यौ विक्रम भेद सब ॥१०॥

सोरठा

कंचन महल मझार सुलभ मतंग विहारिबौ ।
श्री हू सुलभ उदार जोबन हू पुनि सुलभ है ॥११॥
पै दुरलभ संसार धर्म साधिबौ नेम सौ ।
औरौ सुनि अविकार हित करि तोसो कहत हों ॥१२॥
श्री कौ चपल विहार जल तरंग उनिहार है ।
जोबन हू अनसार तीनि चारि डग देखियै ॥१३॥
सरद जलद्दनि तूल चंचल आयु सुन रनि कौ ।
धन नाही सुख मूल तातें साधौ धर्म कौ ॥१४॥

दोहा

यह कहि तासों फेरिहूँ बोल्यौ विक्रमराज ।
तुहू चित्त चाहत कछू उद्धत अर्थ समाज ॥१५॥

मुक्तादाम छंद

कह्यौ जब बिक्रम नें यह वैंन। तबै उचरयौ वह भेद कुचैन।
भलौ तुमको अति इंगित ज्ञान। करयौ तुमनें अब सव्व बखॉन ॥१६॥
दरद्द जु है अब सो मन मद्धि। कहौ सु सुनौ सब सॉचहि सद्धि।
परव्बत है इक नीक उतंग। अकासहि जासु परस्सति शृंग ॥१७॥
तहॉ इक कामद चंडिय थान। अगम्म सहस्रन जीव भयान।
पताल सुरंध्र छिप्पौ तिहि ठाम। खुलै वह तासु जपै नित नाम ॥१८॥
तिही मधि है रस कुंड अखंड। भरी जिहि मद्धि सु सुद्धि उदंड।
तहॉ पुनि द्वादस वर्ष प्रमान। जप्यौ तिहि मंत्र समेत बिधान ॥१९॥
खुल्यौ नहि पै तिहि द्वार उदार। सखेद रह्यौ इहि अर्थ अपार।
इती सुनि बिक्रम भूमिभतार। कियौ उर मै इहि बिद्धि बिचार ॥२०॥
कछू पुनि हेत सु है निरधार। खुल्यौ जिहि तै पाताल दुवार।
जु अक्षर है सु सबै सुनि मंत्र। अनौषधि मूलन है बृथ जंत्र ॥२१॥
नहीं धरनी कहु वित्तबिहीन। सुदुर्लभ है बिधि मंत्र नवीन।
बिचारि हिये इहि भॉति नृपाल। गयौ तहँ ता सॅग ही ततकाल ॥२२॥
तिहीं सुर मंदिर मै बसि रैंन। रह्यौ अवनीपति बिक्रम सैंन।
कही सपनें मधि देवत आन। सु तू नृप आइउ क्यौं इहि थान॥२३॥
बतीस जु लच्छन कौ नर कोइ। करै सिर भेंट इहॉ सुख भोइ।
तबै यह द्वार खुलै अवनीस। नही विधि और बिसेपुनि बीस ॥२४॥
भवानि कही यह बात कराल। सुनी सपनै मधि भूप दयाल।
प्रभात भएँ उठि कै सुख पाइ। लियौ पुनि विक्रम भूपति न्हाइ ॥२५॥
दुवार समीप पहुच्चउ फेरि। उमा गुन गाइय कित्ति बिखेर।
लियौ जबही कर मद्धि खरग्ग। गरौ निज खंडन कौ अनभग्ग ॥२६॥
गह्यौ तब देविय ने नृप हत्थ। कह्यौ पुनि हॅसिप्रसन्न समत्थ।
यहै अब सो बर जॉचि नरेस। हिये मधि रंच रहै न कलेस ॥२७॥
कह्यौ तब बिक्रम नै कर जोर। जु हौ परसन्न दयाहि बटोर।
सु तौ रस सिद्धिहि याकहुँ देहु। यही हम पै तुव पूरन नेहु ॥२८॥

दोहा

कामाख्या बरदान तें खुल्यौ बिबर कौ द्वार।
बिक्रम नै रस सिद्धि लै दई ताहि अबिकार ॥२९॥

पुनि आयौ अपनी पुरी प्रगट अवंती मद्धि।
बिप्रन कौ बहुदान दिय जग में कीरति लद्धि ।।३०।।

सोरठा

जु तू भोज इमि होइ, तौ सिंघासन च्ढ़ि अबै।
नही समौ जिन खोइ, और काज करि आपनौ ।।३१।।

हरिगीत छंद

श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिं हित कबि ससिनाथ नै रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरीन की बाईसई यह कथा भइय प्रकास है ।।२२।।

त्रयोविंश कथा

हरिगीत छंद

फिरि समौ सद्धिहि मोद लद्धिहि भोज भूपति आइकैं।
सिहासनै मधि चरन चाह्यौ धरन अति अतुराइकै।
सौ मंजरी तब पूतली तेईसई पुनि भाखियौ।
जु उदार बिक्रम सौब तौ चढि न तौ मति अभिलाखियौ ॥१॥

दोहा

यह सुनि बोल्यौ भोज पुनि कहि उदारता बिद्धि।
पुतरी सुनि नृप के बचन कहन लगि पुनि निद्धि ॥२॥

तोटक छंद

नगरी अवंतीय मद्धि भयौ। नृप बिक्रम कित्त अनंत छयौ।
सिगरी अवनी बसि आप करी। तन जीत दिसा कितहू उबरी ॥३॥
सिगरे नृप सेवत जाहि रहै। अमरेसहि ज्यो सुरलोक चहै।
इक द्यौस समै अरुनोदय के। सु महीपति लेस तजैं भय के ॥४॥
निस जागन तें सुख सोवत हो। उर मद्धि बिनोदनि मोवत हो।
तबही बहुमंगल फेरि बजी। धुनि संखन की तिन संग सजी ॥५॥
बर गावन बंदिय बृंद लगे। तजिकैं छरछंद अनंद पगे ॥६॥
नृप जागत भौ तिहि संख सुनै। तजिकै परजंकहि प्रीति गुनें।
उठिकै सुभ आसन आप लस्यौ। तन मे सब आरस हू बिनस्यौ ॥७॥
गुरु औ परमेस्वर ध्याय लियौ। पुनि या बिधि चित्त बिचारि कियौ।
हमरे कुल कौ नित धर्म कहा। अरु है निहचै व्रत कौन महा ॥८॥
नित दान सुवर्न कितेक दियौ। अरु अन्न अटंबर डीठ छियौ।
छित ऊपर पाय दियौ सु तबै। नृप बिक्रम नै गहि स्यान सबै ॥९॥

दोहा

पुनि आयुध छत्तीस कौ बिक्रम करि अभ्यास।
मर्दन साला मै बहुरि आयौ सहित हुलास ॥१०॥

मर्दन करि उवटाइ तन आयौ न्हान नरेस।
कंचन चौकी पै लस्यौ मानौ उदै दिनेस ॥११॥

छप्पै

बिक्रम बिक्रमवंत न्हाय कै सुद्ध गंगजल।
अंगन वहुरि अँगौंछ सज्जि पीतंबर उज्वल।
आदि पुरुष भगवान पूजि बिनती पुनि पढ्ढिय।
चर्नामृत करि पान प्रनत करि आनँद मढ्ढिय॥
अंबर अनूप भूखन विविधि पहिरे वहुरि मँगाइकैं।
पुनि सिघासन मनिजटित पै वैठ्यौ सुद्ध सुभाइ कैं ॥१२॥

पद्धरी छंद

हीरानि जगमगै छत्र सेत। मुकतनि की झालरि दुतिनिकेत।
अरु चँवर चंद की किरन तूल। दुहुँ ओर ढुरन लागे सफूल ॥१३॥
मंत्री प्रधान अति सावधान। उद्धत्त चमू विक्रम निधान।
अरु और सभा लायक अनेक। बैठे विलोकि कैं थल विवेक ॥१४॥
पुनि लग्यौ प्रजा कौ करन काज। अमरेस तुल्लि छित महाराज।
दुंदुभी भेरि बज्जय अपार। दिन गयौ द्वै पहर इहि विचार॥१५॥
पुनि उठ्यौ सिँघासन तें नरेस। मध्यान करी पूजा सुवेस।
दुख्खनिन और दीननि बुलाइ। दिय दान तिन्है चिता भुलाइ ॥१६॥
पुनि ज्ञात मित्र वंधुन समेत। किय भोजन षटरस चित्त चेति।
कपूर चूर संजुत सुपान। तिनकौ चबाइ विक्रम सुजान॥१७॥
पुनि अंगनि केसर मद कुरंग। अरु चंदन लायौ सजि उमंग।
पुनि कनक सेज पै लस्यौ आइ। जिहि मद्धि विछौना मृदु प्रभाइ॥१८॥
भरि हंस रोम राखे फुलाइ। इमि धरे गेंडुवा सहित चाइ।
बाईं करौट सौं यौं नृपाल। चहुँओर राखि चौकी विसाल ॥१९॥

दोहा

भोजन करि बैठौ जु नर सो तुंदिल अति होइ।
अरु जो लेटै सुद्धवल तो पावै दुख पोइ ॥२०॥
सो लै बाम करौट जो ताकौ सुख सरसाइ।
भोजन करि दौरै सु तौ जम के घर को जाइ ॥२१॥

पुनि जाग्यौ बिक्रम नृपति आलस गयौ निराइ।
छिन भरि सुक सारिकनि की बानी सुनी मँगाइ ॥२२॥

पावकुलक छंद

बहुरि नृत्य देख्यौ रँग भीनौ। संध्या भई अस्त रवि कीनौ।
पूजा करि हरि की हित भरिकै। कीनौ पुनि दरबारि ठहरिकै ॥२३॥
कोऊ दुख्यत न राख्यौ तक्षन। अंतःपुर पुनि गयौ विचक्षन।
ह्वै पवित्र गुरु देव मनाए। अंग अंग आनंदनि छाए ॥२४॥
सोयौ सेज बहुरि छितनायक। ऐसै दिन वितवै सुखदायक।
एक समें नृप बुद्धि विसेष्यौ। निस मैं खोटौ सपनौ देख्यौ ॥२५॥
प्रात भयें मंत्री के आगे। विक्रम कह्यौ सुपन हित पागें।
सुनि मंत्री के बचन सुनायौ। यह अरिष्ट करि मो मन आयौ ॥२६॥
यह सुनि कै मंत्री की बानी। चिता नृप उर अंतर आनी।
है अनित्य तन संपति जग मै। मृत्यु रहत संगी डग डग मै ॥२७॥
तातें मुख्य धर्म कौ करनौ। या प्रन ते कबहूँ नहिं टरनो।
यह बिचारि मंत्री सों राजा। बोल्यौ विक्रम सीलदराजा ॥२८॥
तीन दिवस लों कोस हमारौ। राख्यौ खुल्यौ न और बिचारौ।
डौडी देहु नगर में कहिकैं। आवौ मनुज इहाँ सुख लहिकै ॥२९॥
एक बेर जो जाकौ भावै। सो लै जाउ न कोउ सतावै।
तीन दिना लो कोस लुटायौ। खोटौ सपनौ दूरि बहायौ ॥३०॥

सोरठा

ऐसौ जु तू उदार भोज बसुमतीपाल सुनि।
तजि कै कपट विचार तौ या सिघासन चढ़ौ ॥३१॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुँवर सिह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कबि ससिनाथ नें रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा तेईसईं सु प्रकास है ॥२३॥

———

चतुर्विंश कथा

मथान छंद

श्रीभोज भूपेस, साधें समौ वेस।
फेर्‌यौ सु उत्ताल, आयौ बन्यौ लाल ॥१॥
सिघासनें जाइ, तब्बै धरचौ पाइ।
यौं चंद्रकाम, बोली सुखब्धाम ॥२॥
जो बिक्रमादित्य, के तूल है नित्य।
दाता महीपाल, तौ बैठियै हाल ॥३॥
सो बिक्रमादित्य, कैंसौ निरब्भीत।
कैसौ सु उद्दार, सज्जौ मु उच्चार ॥४॥
यो भोज के बैंन, सुंन भरी चैंन।
बुल्ली सु यौ बात, लैं पुत्तली घात ॥५॥

पावकुलक छंद

सुंदर एक अवंती नगरी। सबै भाति संपति की अगरी।
तामे विक्रम अवनी नायक। प्रगट भयौ आगें सुखदायक ॥६॥
जीति लई आठों दिस जाने। सेवैं यो नृप सबै अमानें।
जैसे सक्रहि सुरगन सब्बै। सेवत रहत बिसार गरब्बै ॥७॥
नहि अनीति जिहि राज मझारै। सबही बसत धर्म कौ धारैं।
ताके राज मद्धि इक पुर हौ। नाम पुरंदर सोभाधुर हो ॥८॥
धनपति नाम सेठ इक तामें। बसत हुतौ लहि अति आरामें।
कोऊ द्विज सु बिदित हो जग मै। ऊरध रेखा दक्षिन पग मैं ॥९॥
ताके बेटा चारि सयानें। आप आपकें मत को ठानें।
करै बिलास जु जाकौ भावै। ऐसें निसदिन बित्त लुटावै ॥१०॥
अंत्य समें तिन पुत्रन आगें। धनपति बचन कह्यौ हित पागें।
चारचौ भ्रात इकठ्ठे रहियौ। आपस माझ बिरौध न गहियौ॥११॥
अरु जो तुम सों आपस मॉही। रह्यौ इकठ्ठौ जाय सु नाही।
तौ ए चारि कलस धरि राखे। नाम तुम्हारे लिखि अभिलाखे॥१२॥

अपनें अपनें नामनि वारौ। लीजौ करियौ निज निरवारौ।
खोटी बात न मन में धरियौ। मैने कह्यौ सु निहचै करियौ ॥१३॥
यो कहि सो परलोक पधारयौ। तब वे लरन लगे सुत चारयो।
बहु बिधि तिन्है सबन समझायौ। पै उनकैं नहि चित्त थिरायौ ॥१४॥
चारिनि मिलिकै भूमि खुदाई। चारयौ कलस कढ़े धनदाई।
निज निज नाम बाँचि तिन लीनौ। अतिहि चित्त आनंदन भीनौ ॥१५॥
माटी एक कलस मैं कारी। दूजे मधि अंगार सु भारी।
तीजे मद्धि हाड की ढेरी। चौथे में तुष निपट बखेरी ॥१६॥
तिनकौ देखन पायौ अरथै। पूछ्यौ बहुत न जानि समरथै।
काहू नें नहि अर्थ बताए। तब तिनिके चित चितन छाए ॥१७॥
एक दिना मिलि चारयौ भाई। निहचै बुद्धि यही ठहराई।
महाराज बिक्रम दरबारहि। चलियै आज बिहीन बिकारहि ॥१८॥
यौ बिचारि करि कें अतुराएँ। डगरे चारयौ कलस लिवाएँ।
चोबदार सो अरज कराई। धनपति सुत आए छितराई ॥१९॥
कही जाइ प्रतिहार प्रबीनें। कही सु आवत समझ करीनें।
सँग प्रतिहार गए भयसानें। ते चारयौ तिहि अर्थ लुभानें ॥२०॥
कियौ प्रनाम नृपति कौ आछै। दोऊ हाथ जोरि हित काछै।
बड़ी सभा लखि कंपति गातनि। करी अरज पुनि चारयौ भ्रातनि॥२१॥
महाराज यह बाद हमारौ। क्यो हू उबरत नाहि उदारौ।
यह कहि सिगरौ भेद जतायौ। कलसनहू कौ रूप लखायौ ॥२२॥
निर्नय ताहू ठौर भयौ ना। चार्यौ भ्रात रहे गहि मौना।
ते तहँ तें आये पुर अपनें। उर तें घटं न चिता तपनें ॥२३॥

दोहा

फेरि पुरंदर नगर तें चले चारिहूँ भ्रात।
प्रतिष्ठान पुर मे प्रगट पहुँचे हरषित गात ॥२४॥
काहू नै कीनौ नहीं निर्णय ताहू ठौर।
देखे पूछि प्रवीन अरु हुते जु पंडित मौर ॥२५॥

छप्पै

प्रतिष्ठान पुर मद्धि हुते द्वै बिदित बिप्रवर।
बिधवा तिनकी भगिनि एक ही अति ही सुंदर।

तासों नाग कुमार रीझि कै नर सरूप धरि।
रमें नित्त प्रति आँनि चित्त मैं संक दूरि करि॥
पुनि भई गर्भनी ताहि लखि, त्रास हियें सरसाइ कैं।
ते देसंतर कौं कढि गए रंचक औसर पाइकैं॥२६॥

तोमर छंद

ताके भयौ अभिराम। सुत सालबाहन नाम।
सो कुंभकार क धाम। जुत मात बसइ उदाम॥२७॥
तानें सुन्यौ यह बाद। आयौ सु तहाऊ बिपाद।
निरखी सभा सब झारि। अरु लिये घट सु निहारि॥२८॥
पुनि सालबाहन बीर। उचर्‌यौ सु बचन गँभीर।
करिहैं जु हम वह न्याउ। घट चारिहू इति ल्याउ॥२९॥
यह सालवाहन बैन। सबनें सुन्यौ सुखदैन।
लखि ताहि बाहन वित्त। सरस्यौ अचंभय चित्त॥३०॥
सबनें कह्यौ पुनि टेरि। किनि देहु न्याउ निबेरि।
सुनि यौं सबन की बात। उचर्‌यौ सु मृदु मुसिक्यात॥३१॥
माटी दई पितु जाहि। धरनी दई सब ताहि।
अरु जाय दिय तुष बाप। ताका सु अन्न मिलाप॥३२॥
अरु हाड़ जाकहँ दीन। चौपे सु लेहु प्रवीन।
अरु दिये जाहि अँगार। ताको सु धात अपार॥३३॥
सुनि चारिहू यह भेद। निज गए भवन अखेद।
सिगरे रहे अवलोकि। नहि सक्यौ कोऊ टोकि॥३४॥
सो सालवाहन तब्ब। आयौ भवन अनगब्ब।
पुनि लग्यौ खेलन ख्याल। तन तुच्छ बुद्धि बिसाल॥३५॥
मृन्मय तुरंग मतंग। रच्चे अनंत सुढंग।
प्यादे अनेक बनाइ। राखे सुधरि लहि ध्याइ॥३६॥
जो सालवाहन आप। किय न्याय तजिकै ताप।
सो सुन्यौ बिक्रम भूप। अचरज्ज लह्यो अनूप॥३७॥
पुनि एक अपनो दूत। पठयौ महा मजबूत।
तासो कही वह बाल। ह्याँ लाउ बोलि सुहाल॥३८॥

उनि कही तासों जाइ। तू चह्यौ विक्रम गाइ।
वह दूत के सुनि बैन। बोल्यौ वचन दुख दैन ॥३९॥
कछु नाहि मो कहँ काज। जो चलौं ढिग महाराज।
अरु नृपहि ह्वैहै काम। तौ आइहै अभिराम ॥४०॥
फिरि गयौ दूत लजाइ। तिहिं नगर तें अतुराइ।
पहुँच्यौ सु विक्रम पास। सब कही बात प्रकास ॥४१॥

दोहा

सो सुनि कैं विक्रम नृपति उर में भयौ सक्रुद्ध।
कही सचिव सूँ बोलि कै करौ तयारी जुद्ध ॥४२॥
जैसें बीछी डंक तें, सरसें तन में ज्वाल।
तैसें विक्रम नृपति को हुकम टरैं हुव हाल ॥४३॥
भई तयारी जानिकैं, कहीं सचिव नें आइ।
तबही विक्रम नृपति नें कही मतंग मँगाइ ॥४४॥
चढि मतंग पै उच्चरयौ प्रतिष्ठानपुर ओर।
चलैं द्विरद्द निसान कौं जालम जग कठोर ॥४५॥

भुजंगी छंद

पयादे चले मग्ग आनंद मड्डे।
बहुव्विद्धि के सस्त्र सज्जैं जु गड्डे ॥
तुरंगा कुरंगान के छंद वारे।
चले सीलवंते महा मोद भारे ॥४६॥
इरक्की अरब्बी तुरक्की तरेरे।
बलक्खीन की पत्ति कच्छी करेरे ॥
घनें रंग के को कहा लौं बखानें।
जड़ाऊ बने साज सोभा निसानें ॥४७॥
द्विरद्दा चले जे जलद्दा प्रमानें।
जु पब्बैंन कौ चित्त मज्झै न आनें ॥
कलद्धौत की झूल झौंरे झुलाए।
भुसुंडान सिंदूर के झुंड छाए ॥४८॥

चले फौज की धूरि धारा उमंडी।
सु आकास लौ जाइ कै जोर मंडी।
करालौ महा भानु कौ तेज दब्बौ।
दिगप्पाल कोऊ नही चित्त गब्वौ ॥४६॥
भए वृक्ष के बृंद जो खंड खंडे।
प्रचंडेन को प्रान आतंक दंडे॥
मनों मेघ गज्जे गरज्जे नगारे।
कँपै भूमि पब्वैनि पूरे दरारे ॥५०॥
करत्ताल के वृंद के नद्द नद्दे।
जितौ तित्त बिम्मान भज्जे अहद्दे॥
चहूघाँ महा धूल भू मद्धि मच्ची।
पहुँच्ची प्रतिठ्ठान मे घात सच्ची ॥५१॥
कह्यौ वालकें जाइ कै तब्ब त्यौंही।
अरे तू अजो चाह लै सद्धि गोही॥
कितेको कही पै नही वाल आयौ।
नही नेंकहू चित्त मैं त्रास पायौ ॥५२॥
इते मद्धि सो विक्रमादित्य बंकौ।
पहुँच्यौ प्रतिष्ठान को लै निसंकौ॥
परी घेरि कै ग्राम को फौज ताकी।
चहूँ ओर तें हौन लागी कजाकी ॥५३॥

दोहा

तवै सालवाहन निकट गए नगर के लोग।
कह्यौ जाइ के तें कहा बृथा लगायौ रोग ॥५४॥

पुरवासिन जब यों कहे बचन क्रुध्य यो छाइ।
तवै सालवाहन कह्यौ, मति डरपौ अकुलाइ ॥५५॥

वैठो निज घर जाइ कैं, कौतिक लखियौ फेरि।
यों कहिकैं तिन सवन की बिदा करी हँसि हेरि ॥५६॥

नागकुमार प्रभाव तें हय गज प्यादे रत्थ।
जीव सहित ततछन भये सज्जे सस्त्र सगत्थ ॥५७॥

सोरठा

दल चैतन्य निहारि उर में अति हरषित भयौ।
करनौ जुद्ध बिचारि चल्यौ सालबाहन तुरत ॥५८॥

त्रिभंगी छंद

उद्धत नीसाने बर फहराने ढिग दरसाने रँग साँनै।
नद्दे नगारे जलद अकारे निकपट डारे रँन गानैं।
कटि बंधी बागें मसकी पागें क्रुद्धनि रागें वलचंगे।
दुहुँ ओरन बंके बीर निसंके बाजी हंके रँग रंगे ॥५९॥
रँगि फरकी बाँहैं भरी उछाहैं रँग अवगाहै यो चाहैं।
पहिलें सर बरखे जात न धरखे चित्त अमरखे दुहुधा हैं।
पुनि सेलम सेला हुव बगमेला रेलम रेला तजि ढालैं।
हुव जुद्ध अकत्था लत्थंपत्था चले दुहत्था करवालैं ॥६०॥
करवालें टुट्टे नहीं अहुट्टे जमधर जुट्टे उर फारें।
रन में बिनु मुंडनि कूदै झुंडनि कित्ते टुंडनि पटतारें।
गहि खंडे डंडनि महा उदंडनि रिपु के तुंडनि पर डारें।
बहुदंतौ कट्टे नैनौ डट्टे मद्धे रट्टे प्रन धारें ॥६१॥
प्रनधारी अद्दै दीरघ कद्दे रूप जलद्दै गज खंडे।
अरु घोरे तत्ते कित्ते घत्ते परे रकत्ते रँग मंडे।
बहु पत्त सुपत्ते छतभ भकत्ते उठि ललकत्ते क्रुद्ध भरें।
अरु कित्तो कट्टे परे चपट्टे धूरि लपट्टे प्रान टरें ॥६२॥

मधुभारछंद

इमि जुद्ध ख्याल। हुव जब कराल।
तब हर प्रचंड। नच्च्यौ उडंड ॥६३॥
नंदी निदान। नद्यौ भयान।
लहि मुंडमाल। सज्जी बिसाल ॥६४॥
जुग्गिनिय लाल। लहि रुधिर माल।
नच्ची अनंत। लखि जुद्ध तंत ॥६५॥
भैरव सभूत। करि अंत सूत।
रुमँडित्त हार। नच्चे अपार ॥६६॥

कर गहत मुंड। निज देत तुंड।
चरबी उचाटि। पुनि लेत चाटि ॥६७॥
मँडरात गिद्ध। उद्भट प्रसिद्ध।
रनभुंमि माँझ। यो भई साँझ ॥६८॥

दोहा

घोर जुद्ध मंड्यौ दुहुन भज्यौ न विक्रम भूप।
निसि में नागकुमार नें धरि पुनि उद्भट रूप ॥६९॥
विक्रम नृप की फौज सब वधेमि क्रुद्ध सरसाइ।
परी रही सैना सबै, तन मन सुद्ध भुलाइ ॥७०॥

छप्पै

पर्‌यौ भुम्मि में प्रात विसुध विक्रम दल दिख्खिय।
वासिक अहि कौ मंत्र जापि उर प्रेम विसिख्खिय।
ह्वै प्रसन्न तिन दियौ अमृत सब रोग प्रहारी।
लै आवैं जब लग्गि फौज के ढिंग सुखकारी।
तब लग्गि पुरुष द्वै आइ कैं कह्यौ सुधा यह दीजियै।
पुनि पुच्छिय नृप नें कौन तुम प्रगट अपुनपौ कीजियै ॥७१॥
तब वे दोऊ पुरुष उच्चरं साचे वैननि।
सालीवाहन नाम पठाये तानें चैननि।
यो सुनि तिनकी बात नृपति चित मद्धि बिचारिय।
रिपु नैं पठए राजदूत व्रत हीन उचारिय।
दै चुवयौ सुधा सुखदायनी ताकौं सत्व निहारि पुनि।
वासुकि प्रसन्न ह्वै फौज सब दई जिवाइ उदार गुनि ॥७२॥

सोरठा

यातें भोज नरेस ऐसौ जु तैं उदार है।
इहि सिंघासन बैसि तौ लसि विलसौ राज को ॥७३॥,

हरिगीत छंद

श्री बदनसिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि विसाल है।
तिहिं कुँवरसिंह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ नें रच्चिय सुजान विलास है।
पुतरीन की चौबीसईं यह कथा भइय प्रकास है ॥२४॥

पंचविंश कथा

हारी छंद

औरे दिना में। आयौ उदामें।
श्री भोजराजा। सज्जैं समाजा ॥१॥
जब द्वै चरन्नै। चाह्यौ धरन्नै।
सिंघासनै कौ। सोभा सनै कौ ॥२॥
तब्बे सलोनी। सो हंसगौंनी।
बोली नृपालै। लै बुद्धि ख्यालै ॥३॥
जो बिक्रमेसा। सो है सुबेसा।
दाता महाई। तौ बैठ आई ॥४॥

दोहा

हंसगवनि पुत्तलिय नें जब यों भाखे बैन।
तब यो बोल्यौ भोज नृप कहि विक्रम गुन ऐन ॥५॥
वचन भोज भूपाल के सुनि पुत्तलिय प्रवीन।
साँची विक्रम गुन कथा लागी कहन नवीन ॥६॥

हरिगीत छंद

उज्जैन नगर अनूप तिहिं मधि भूप बिक्रम नाम हौ।
नित धर्म ही सों नेह जाकौ नहि अधर्म उदाम हौ।
छत्तीस नृप कुल रहै हाजर तहुँ लहन भेवई।
अरु तितेई सविनोद मानुप जासु चरनन सेवई ॥७॥

पदनील छंद

एक दिना इहि विध्धि सु विक्रम राजतु हौ।
हेम सिंहासन मद्धि महाछबि छाजतु हौ।
त्यों प्रतिहार सु आइ दुवौ कर जोर कही।
चौलष जोतिप ज्ञानय आयउ बिप्र सही ॥८॥

सो सुनि सेननि भूप कही तिहि आवन दै।
आयउ सो द्विजराज हरे छिति पावन दै।
भूपहि आसिष बैन कह्यौ चित चाइनि सो।
भोगहु पूरन आयु भरी उतसाहनि सो ॥९॥

लाइक ठौर निहारि बिराजिय बिप्र जबै।
बुल्लव बिक्रम राज सु बुद्धि जिहाज तबै।
ज्ञान कितेक कलाँनि विखेतुम कौ अति है।
सो सब भाखहु सत्य द्विजातिन की गति है ॥१०॥

भूपति के इमि बैन सु काननि मे धरिकै।
उच्चरियौ पुनि बिप्र सयानप सो भरिकै।
सूरज चंद ग्रहन्न भली बिधि जानत हौं।
तार नक्षत्र बिचारि सबै पहचानत हौं ॥११॥

अस्तु उदै जु विचारु बेध बिहारन कौ।
जानत हौ गृह बक्रन और आचरन कौ।
मित्र मित्र बिबेक जु है सब खेटनि मे।
है तिनकौ पुनि ज्ञान सुबुद्धि लपेटनि में ॥१२॥

भाव झलाझल बृप्टि लखौ उतपात जिते।
दिब्य रु अंतर भूमि कहौ समझाइ तिते।
औ स्वर लक्षन ज्ञान प्रगट्ट जु अंगनि में।
जानहुँ तीनहु काल विचारि उमंगनि में ॥१३॥

सोरठा

यह द्विज की बतरानि, सुनि बोल्यौ बिक्रम नृपति।
होनहार उर आनि, कहौ कछू जान्यौं चहत ॥१४॥
यो सुनि नृप के बैन, पुनि द्विज बोल्यो चाइकै।
महाराज सुख दैन, सुनियें हौ बिनती करत ॥१५॥

काव्य छंद

बारह वर्ष अकाल तुम्हारे देस परैगौ।
वर्षा ह्वै है नाहिं न कोऊ धीर धरैगौ।

यह सुनि द्विज कौ बैन उच्चरयौ पुनि छितनायक।
मेरे नाहि अनीति नीति की रीत सुभायक ॥१६॥

नही प्रजा को दुक्ख नही पुनि दान बरज्जित।
नहिँ अनाथ सो कलह और द्विज दोष न सज्जित।
वृथा उपद्रव नाहिँ बचन नहि मर्म प्रहारी।
नहि मिथ्या उपचार नही जन अधरमकारी ॥१७॥

दंड लेत पुनि नाहि देव मूरत नहि खंडित।
नहि न हर्ष संताप नही पर कर्महि मंडित।
काहे ते दुरभिक्ष होयगौ सो अब कहियै।
ताकौ कछू उपाय होय सो उर मैँ गहियै ॥१८॥

जब यो नृप नें कह्यौ तबै पुनि विप्र उचारयौ।
है अकाल के हेतु सुनौ सो जु मै बिचारयौ।
रोहिन ते रविपुत्र बक्र ह्वै कुज के घर मैँ।
आवै तो दुरभिक्ष होइ नहिँ राखै धरमैँ ॥१९॥

सो या वर्ष मझार जोग है अति दुखदाई।
बर्षैगो नहि मेघ सत्य मै बात जताई।
विक्रम नै यह भेद सुनत नहि चिंता कीनी।
दान पुन्य आरंभ कियौ सजि बुद्धि प्रवीनी ॥२०॥

मानक्रीड छंद

भूप बिप्र टेरि लिए। अन्न वित्त ढेरि दिए।
होम अब्ब जाय करौ। सत्य बैन चित्त धरौ ॥२१॥

जग्य सुद्ध हौन लगे। वेद मंत्र नद्द खगे।
धेन भूमि चाइ भरें। देत भूप खेद हरे ॥२२॥

आइ भिक्ष डीठ परै। ताहि सो निहाल करै।
द्वारपाल टोक बिना। बिक्रमेस वृंद दिना ॥२३॥

आप थित्त बित्त रह्यौ। दीन कौ दरिद्र दह्यौ।
पै न एक वुंद परी। भूप बुद्धि सोच भरी ॥२४॥

दोहा

देखि प्रजा कौ दुक्ख अति, चित्यौ विक्रम भूप।
धर्मसास्त्र के ग्रंथ मे है यो वचन अनूप ॥२५॥

मुक्तादामछंद

पुरुक्ख जु है घर को सिरदार। विलोक कुटुंविनि दुक्ख उदार।
उपाइ करै तिनकौ नहि आप। लगै निहचै पुनि ताकहँ पाप ॥२६॥
इहीं बिधि दुखित देखि प्रजाहि। न रक्षहि भूप जु चित्त उछाहि।
लहै उनपै कर मंडित ताप। लगै निहचै पुनि ताकहँ पाप ॥२७॥
कहा करियै अव यों उर मद्धि। लग्यौ सुविचारन सोचहि लद्धि।
अकास विषै सुर वानिय येह। भई पुनि तक्षन मंडित मेह ॥२८॥
वतीस जु लक्षन कौ नर कोइ। सरीर करै वलि आनँद भोइ।
अरच्चइ मेघहि प्रेम बढ़ाइ। वरख्खइ मेघ तहाँ सुखदाइ ॥२९॥
परै तिहिँ देस विपै न अकाल। न जानि असत्य हियैं नरपाल।
सुनी नृप बिक्रम नै यह वात। अकास बिषै जु भई अवदात ॥३०॥

सवैया

उर आनि प्रजा पर दुख्ख महा सु उपाइ सच्यौ तिहिँ रक्षन हीं।
उठि न्हाइ कै दान दियै वहुभाँतिनि विक्रम सैन विचक्षन ही।
निहचौ अपनौ सिर खंडनौ है जव खग्ग लियौ कर दक्षन ही।
सुरमेघकुमार सुलक्षन नें नृप हत्थ गह्यौ हँस तक्षनही ॥३१॥
उच्चरयौ अरु यों सुर सो परमन्न सु लै वर भूपति जो चहियै।
सुनि कै पुनि विक्रमसेन कही तुमनें हमपै जु दया लहियै।
प्रभु तौ अव ते मम देम मझार अकाल न होइ यही कहियै।
पुनि देव कही इहि विधि सदा रहियै नृप सत्य हियें गहियै ॥३२॥

दोहा

अजौं मालवे देस मे होत न अधिक अकाल।
समौ जानि कैं आनिकै वरसै मेघ बिसाल ॥३३॥
सो काहू जान्यो नही, अन्न दान कौ ख्याल।
जो एकंत कियौ हरिष श्री बिक्रम छितपाल ॥३४॥

आभीर छंद

ऐसे जो तुम भोज। सरसौ तौ लहि ओज।
सिंहासन इहि मद्धि। सकल जथारथ सद्धि॥३५॥

हरिगीत छंद

श्री वदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ नै रच्चिय सुजान बिलास है।
यह पंचबिसति पुत्तली की कथा भइय प्रकास है॥२५॥

षड्विंश कथा

दोहा

फेरि महूरत साधि जव आयौ भोज नरेस।
विज्जुप्रभा तव पुत्तली वोली वचन सुदेस॥ १ ॥
विक्रम सम जु उदार तौ या सिघासन वैठि।
यह सुनि वोल्यौ भोज पुनि कहि तौ तू गुन ऐठि॥ २ ॥

सोरठा

भोज कही यह वात विज्जुप्रभा सुनि पुत्तली।
ह्वै हरषित सव गात कहन लगी समझाइ कैं॥ ३ ॥
पुरी अवंती मद्धि विक्रम वसुमतिपाल हौ।
जग में करित लद्धि अजहूँ ता सम नहि भयौ॥ ४ ॥

पद्धरी छंद

जगमगत कनक मंदिर विलंद। जिह सम न स्वर्ग में विद्मंद।
वहु विध्धि रतन मंडित उदार। जो करै तिमिर पुंजन प्रहार॥५॥
तिहि मद्धि सिंघासन अतिविसाल। मनि जटित हेम कौ सोभजाल।
तिहि ऊपर इक दिन अमर कंत। ह्वौ लसत हरषमंडित अनंत॥६॥
चामीकर मनिमय मुकुट सीस। जिहि जोति जगमगै विसेवीस।
अरु कुंडल कानन झलमलात। वहु रंग अंग अंबर लसात॥७॥
अरु कंठ अमोलक मुकतमाल। मकरंद मिले पुनि पुहपहार।
जिनकी सुगंध वर वेसुमार। ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ॥८॥
हीरान जडित उर छत्र सेत। मुकतनि की झालरि दुतिनिकेत।
ससि किरन रूप अरु वर चँदोइ। सुर ढोरत दुहुँ दिस हरष भोइ॥६॥
अरु और सुरन के हुते वृंद। तिहिँ सभा मद्धि संजुत अनंद।
रिषि पुंज और गंधर्व जक्ष। गिनती प्रमान वत्तीस लक्ष॥१०॥
सवकैं विविध्धिय सोहत दकल। मनि कंचन भूषन माल फूल।

बहुरंग अंग अंबर बनाइ। ही नचत अपछरी सुद्ध भाइ।
मुँहचंग बीन महुवरि मृदंग। धुनि होत एक तिनकी सुढंग ॥१२॥
तिहिँ समै अमरनाइक प्रवीन। यह बचन उच्चरयौ धर्मलीन।
हे देव सुनौ तुम सावधान। मै कहत वचन ताकौ सुजान ॥१३॥
इहि बिद्धि इंद्र जब कह्यौ बैन। ... . ।
तत जान सबनि कौ पुनि सुनाइ। पुरहूत उच्चरयौ गहगहाइ ॥१४॥
अब भुम्मि मद्धि बिक्रम समान। पर प्राननि रक्षक बिय न आँन।
यह सुनि सुरेस कौ वचन फेरि। बोले बिबुद्ध कर जोरि हेरि ॥१५॥
महाराज धन्नि बिक्रम नरिंद। तुम जाहि कहत हौ इमि अनिद।
जब कह्यौ बिबुद्धनि इहि प्रकार। उर अंतर ह्वै कै निरबिकार ॥१६॥
तब और देव द्वै आप मद्धि। बतरान लगे तहँ समय लद्धि।
निज प्रान तज्जिबो कठिन रीति। परमान आनहित सहित प्रीति॥१७॥
अरु महा सुरख संपति मझार। को तजै प्रान अवनीभतार।
है कहिबे ही की बात एह। पै तजी जाइ क्यौंहू न देह ॥१८॥
पुनि कही दूसरे देव आय। तौ चलिहैं हम तुम हित मिलाय।
यह बात लेहि निज दृगनि देखि। पुनि डगरे दोऊ वुधि विसेखि ॥१९॥

दोहा

बिक्रम धरनीपाल की प्रगट परिक्ष्या लैन।
आए आतुर भूमि पै देव दुवौ सुभ दैन ॥२०॥
आय गयौ ताही समैं बिक्रम हय असवार।
महासघन बन मेँ भ्रमतु सज्जै तिष्प हथ्यार ॥२१॥
और मनुज दरसै नही दूजौ जाके संग।
अति निसंक उर में तहाँ मंडित हर्ष तरंग ॥२२॥

छप्पैछंद

गो सरूप इक देव रह्यौ इमि कपट चित्त धरि।
वक्र शृंग जुग हलत दृगन तेँ परत नीर ढरि।
तुच्छ ताल के मद्धि पंक मै कटि प्रमान धसि।
निपट खिन्न तन छीन जहाँ की तहीँ रही फँसि।
तिहिँ विक्रम कौ अविलोकि कै हंभा सद्द उचार किय।
इह बिध्धि धेन कौ कष्टि लखि दया उपज्जिय भूप जिय ॥२३॥

मधुर छंद

तव लग्गि आय। सुर द्वितिय धाइ।
सित पीत स्याम। रंगनि उदाम ॥२४॥
धरि सिघ रूप। दरस्यौ अनूप।
ठढ्ढे उदार। फरहरै वार ॥२५॥
चित्रति बिसाल। लोचन कराल।
तन जरत ज्वाल। मनौ कुध्ध काल ॥२६॥
अति दीह दंत। बहुभय करंत।
नख बक्र तिष्य। सरसै सबिष्य ॥२७॥
पूछै सटक्कि। छित मै पटक्कि।
नद्यौ निनद्द। मानहु जलद्द ॥२८॥
भुव थरहरानि। चित संक मानि।
भज्जे बराह। तज्जै उछाह ॥२९॥
इमि सिघ देखि। नृप बुधि बिसेखि।
यह किय बिचार। मंडित बिकार ॥३०॥
चीते प्रचंड। जिन किये खंड।
घत्तै उतंग। मद के मतंग ॥३१॥
अरु महिष बृंद। भच्छे अदंद।
गेंडा सरब्ब। किय बिन गरब्ब ॥३२॥
प्रानी अपार। जिनि किये ख्वार।
नर पुंज खाइ। डारे पचाइ ॥३३॥
तिहिं सिघ अग्र। ह्वोइक अव्यग्र।
करिहौ कहासु। बिक्रम प्रकासु ॥३४॥
जोवें न छंड। कीरति बिहंड।
ह्वौ चल्यौ जानु। निज खोइ नानु ॥३५॥
तौ छिनु मझार। यापै प्रहार।
करिहै छुहाइ। सो समय पाइ ॥३६॥
यातें उदार। लिन्नै हथ्यार।
निसि इही ठार। रहिहौं सटार ॥३७॥
रक्ष्या निमित्त। ह्वै एक चित्त।
टरिहो न रंच। बर्ज्जित प्रपंच ॥३८॥

सवैया

जग में निज लायक ह्वै जन जो प्रभु के पुनि काजहि नाहि करै।
अरु मित्र के संकट काटन कौं जु उपाइ नही उर मद्धि धरै।
प्रतिपाल करै अपनौ बच न रु अनाथनि पै न दया बितरै।
उपकार करै न जु भिक्षुहि देहि न ता सम और जघन्य नरै ॥३९॥

कंद छंद

सु यो जानि कैं चित्त मै बिक्रमाजीत।
लियौ हत्थ मै खग्ग तिष्यौ निरभ्भीत॥
जग्यौ रैन में धेन रक्ष्याहि संजुत्त।
खरक्कौ जितैं होइ तित्तै गरज्जत्तु॥४०॥
भयदानि बानी रटें जंगली जंतु।
अँध्यारचौ नहीं हाथ सो हाथ संजत्तु॥
लगायो महाधेन रक्ष्या हिए मॉन।
नरव्वीर नें यों कियौ एकठॉ प्रान॥४१॥
भएँ प्रात ते वे प्रगट्टे दुवौ देव।
सवै सक्कवारौ कह्यौ आपु तें भेव॥
कह्यौ आपन आइबे कौ विरत्तंत।
हरप्ये कह्यौ लै बरद्दान कौ संत॥४२॥
दुवो देव नें यों बरद्दान की बात।
कही बिक्रमादित्य सों फूलि कै गात॥
तवै उच्चरचौ बिक्रमाजीत भूपाल।
तुम्हारी कृपा तें सबै बस्तु है हाल॥४३॥
महीपाल ने जब्ब ऐसे कहे वैन।
तवै उच्चरे देव दोऊ सुखदैन॥
नही देव कौ देखिबौ सौ वृथा होइ।
समज्झौ हियै सत्य यों बुद्धि कौ टोइ॥४४॥
इतौ बिक्रमादित्य सों भाखि कै फेरि।
उचारे दुवौ ते दया दृष्टि सो हेरि॥
जु है कामना दैनवारी बड़ी धेन।
सु लौ चैन सों जासु पूरै सदा ऐन॥४५॥

सवैया

सितरंग सुढंग बनी सब अंगनि जो मृगराजन सों न डरै।
विहरे जिह ठौर जहाँ चहुँ ओरनि तेजनि सो तम तोम दरै।
ससिनाथ कहै इमि देवनि धेन दई जो लखैं अघ ओघ हरै।
अरु लाखनि के अभिलाखन कैं सुख भूरि भरै दुख दूरि करै॥४६॥

दोहा

कामधेन दै ते गए स्वर्ग इंद्र के धाम।
विक्रम ताकौ ग्रहन करि चल्यौ आपनें ग्राम॥४७॥
पथ मैं आवत नृपति को काहू जाँच्यौ आइ।
अति उदारता मनुज कौ विहसि दै चुक्यौ गाइ॥४८॥

सोरठा

जु तू भोज अवनीस ऐसौ नित्य उदार मन।
तौ अब विस्वेवीस या सिंघासन पै विलसि॥४६॥

हरिगीत छंद

श्री वदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि विसाल है।
तिहिँ कुँवरसिंह सुजान सुंदर हिंदभाल दयाल है।
तिहिँ हेत कवि ससिनाथ नें रच्चिय सुजाँन विलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा छब्बीसईं सु प्रकास है॥२६॥

सप्तविंश कथा

प्लवंग छंद

फेरि महूरति मद्धि भोज जब आइयौ।
चह्यौ सिंघासन आपु सु चर्न चलाइयौ ॥
पुत्तलि आनँदप्रभा सात अरु बीसई।
उचरी तब यो बैन सज्जि कैं रीसई ॥१॥
विक्रम नृप के तुल्य जु भोज उदार है।
तौ सिंघासन पाउ देहु अबिकार है।
यह सुनि नृप नें कही भाखि विधि दॉन की ॥
पुतरी लागी कहन सुबॉनि सयान की ॥२॥

छप्पै छंद

पुरी अवंतिय मद्धि भयौ विक्रम अवनीवर।
जाके राज मझार धर्म की चरचा घर घर ॥
नहिं अनीति संचार नहीं दुखित नर कोई।
सिगरी प्रजा निसंक सदा आनंद समोई ॥
सो एक दिवस छिति कौतुकनि लखन गयौ लहि चाइ मति।
तहँ डीठ परचौ सुंदर नगर कोऊ कहूँ बिसाल अति ॥३॥

संयुता छंद

तिहिँठॉ सु विक्रम जाइकैं। पहुँच्यौ महा अतुराइकैं।
इक देवधाम निहारियौ। श्रम पंथ कौ निरवारियौ ॥४॥
तबही तहॉ इक आतुरौ। नर आइयौ छबि चातुरौ।
सिर लोह कौ बर टोप है। कलॅगी समेत सु ओप है ॥५॥
द्दग लाल भंग तरंग मै। अरु उग्र बखतर अंग मै।
कटि खग्ग और कटार है। ढलकंत ढाल सुढार है ॥६॥
कर मैं बरख्खिय तिख्ख है। चमकै तडित्त सरिख्ख है।
लखि ताहि बिक्रम भूप नैं। सब बिद्धि बुद्धि अनूप नैं ॥७॥

इम कौन चित्त विचार है। यह धूत नर निरधार है।
जहँ वस्तु उत्तम होति है। तहँ ना आडंबर जोति है ॥८॥
यह बात परगट दिखियै। उनमानहूँ गहि लिखियै।
धुनि होत काँसिय से जिती। नहिं स्वर्न मैं धुनि है तिती ॥९॥
नर धूत सो छिन एक मैं। टरिगौ गयौ अविवेक मैं।
फिर दूसरे दिन सो तहीं। आयौ दिनेस उदोत हीं ॥१०॥
तन कौ न अंबर ओट है। कटि मैं फट्यौ सु लगोट है।
नहिं अन्न पूरित पेट है। अंग अंग धूरि लपेट है ॥११॥
अति ही वदन मुरझाइयौ। सब रूप निपट बिलाइयौ।
लखि ताहि विक्रमराज नें। इमि बैन कहेउ समाज नें ॥१२॥
तब रूप ही वह बावरौ। अब दयौ कुटिल उतावरौ।
सुनि भूप के इमि बैन कौ। पुनि धूत सो तजि चैन कौ ॥१३॥
सब बात अपनी आपही। उच्चरयौ सत्यौ गति तापही ॥
सुनि सत्त्ववंत सु तू महा। मम बात पूछत हौ कहा ॥१४॥
चित मोहिं ज्वारिय जानियै। नहिं मनुज उत्तम मानियै।
सब वित्त धूत बिहार कै। इहिं ठौर आउ उधार कै ॥१५॥
बढ़िगौव ऋण तिहिं ग्राम तें। दुरि कै भज्यौ सु अवास तें।
तुम सो कह्यौ विरतंत है। लखियै न दुख कौ अंत है ॥१६॥
सुत पंडु के घर छंडि कै। कलिगे जुवा रस मंडि कै।
अरु मित्रहू सु अमित्र भे। सब सुत्त सो कुचरित्र भे ॥१७॥
जग मद्धि अजस अपार भौ। अरु बंगहू अब ख्वार भौ।
यह द्यूत है इहि भाँति कौ। हरि लेत बिरा स्वकांति कौ ॥१८॥
यह मैं निपट अपनाइयौ। सिगरी सुबुद्धि भुलाइयौ।
कहि भूप सो समझाइ कै। रहिगौ सु सीस नवाइ कै ॥१९॥

दोहा

ए सुनि ज्वारी के वचन बिक्रम धरनीपाल।
पुनि तासों इमि उच्चरयौ ह्वै दयाल तिहि काल ॥२०॥
धन को चाहत जुवा सों अरु सेवा करि मान।
भिक्षुक ह्वै भोगहि चहै, ते नर निपट अजान ॥२१॥

सोरठा

यह सुनि नृप के बैन, ज्वारी बोल्यौ फेरि कै।
तू न जुवा कौ चैन, जानत है नर जगत मैं ॥२२॥

सवैया

नामही कौ हैं सुधारस कौ सुखभोजन सुख्ख विकार करयौ है।
भूषन सुख्ख गुमान अरत्थ त्रिया सुख तें प्रन दूरि धरयौ है।
नृत्य कौ सुख्ख नहीं दस में, परमानँद कौन के हाथ परयौ है।
चंचल या जग मद्धि जुवा सम और न सुख्ख बिरंच करयौ है॥२३॥

दोहा

जोगी साहू चहत हिय जाकैं मीलय नित्त।
और काज सब तज्जिकैं रहत एकठाँ चित्त ॥२४॥

सवैया

जिमि ज्वारिय कौ चित दाँउ विषै निज प्रीति प्रतीतनि पाग्यो रहै।
अरु कामिन अर्थ वियोगिय ध्यान निरंतर ज्यौं अनुराग्यौ रहै।
कमनैत कौ प्रान निसासन के जिमि और बिहारन भाग्यौ रहै।
सुख निद्धि गुबिंद अजू तुम सों तिहिं विद्धि समोसन लाग्यौ रहै॥२५॥

दोहा

इहि विधि जोगीसुर महा चाहै है दिन रैन।
तातें जग मै जुवा सौ और न रस सुख दैन ॥२६॥

पावकुल छंद

यह सुनिकै ज्वारी की वानी। राजा नै इहि विध्धि बखानी।
हे अग्यान महा दुखदाई। क्रोधादिक अघ की अधिकाई॥२७॥
जाके अंत दुख्ख अति सरसै। जातं ताहि न उर मै दरसै।
लोक न जातें आदर ठानै। नित प्रति रहै चित्त अकुलानै॥२८॥
तातं खोटौ कर्म न कीजै। उत्तिम पंथ मद्धि पग दीजै।
यौं राजा नें सीख सिखाई। सो सुनि यह पुनि बात सुनाई॥२९॥
जो तू पर उपगार करैया। है निहचै नर दरद हरैया।
तौ इक तूं करि काज सु मेरौ। मै अति भलौ मॉनिहौं तेरो॥३०॥

ए ज्वारी की बातें सुनि कैं। बोल्यौ विक्रम भूपति पुनिकैं।
जो तू जुवा खेलवौ तज्जै। तौ तुव काज करौं सुख सज्जै ॥३१॥
ऐसैं कह्यौ नृपति नैं जव्वै। सो ज्वारी बोल्यौ पुनि तव्वै।
मैंने जुवा खेल बिसरायौ। अव तू करि मेरौ मन भायौ ॥३२॥
यों सुनि कै ज्वारी की वातनि। पुनि विक्रम बोल्यौ निज घातनि।
जो तैं खेल जुवा कौ छंड्यौ। तौ तू कहि निज काज उमंड्यौ ॥३३॥
ऐसे जब विक्रम नें भाखी। तब ज्वारी बोल्यौ अभिलाखी।
रत्नसानु पव्वय पै पूरौ। मन सिधि देवीथान सु पूरौ ॥३४॥
ता देवी के मंदिर आगैं। कूप एक है सिध्धिन पागें।
एक द्वार तिहि कूप मझारैं। छिन मैं खुलैं मुदै वहु वारैं ॥३५॥
जो तामें तिन कर अतुराई। पैठ नीर लै आवै भाई।
ता जल सो देवीहि न्हवावै। पूजा करि वलि सीस चढावै ॥३६॥
ताहि देवता इच्छा सिद्धिहि। देइ तुष्ट ह्वै औरैं वृद्धहि।
सो न वात मोपै वनि आई। मैंनें तोसों प्रगट जताई ॥३७॥

दोहा

ज्वारी की वतरान यह, सुनि विक्रम नरपाल।
जोग पांउरी पहरि कें, गयौ तहाँ ततकाल ॥३८॥

आभीर छंद

तह नग लख्यौ उतंग। कंचन कौ सुभ ढंग।
अंवर परसत शृंग। सरसत प्रभा तरंग ॥३९॥
उज्जल नीर झिरंत। घेरचौ नाहि घिरंत।
इहि विधि अनगन ठौर। लप्य छवन सिरमौर ॥४०॥
कंचन के वहु वृक्ष। फूले फले प्रतक्ष।
अरु अनगनति विहंग। सुंदर कुंदन रंग ॥४१॥
मधुरी वानि रटंत। अपने अपने तंत।
रतनसानु तिहिँ नाम। पव्वय कौ अभिराम ॥४२॥
तहाँ पहुचि नरपाल। विक्रम परम कृपाल।
दुर्गा कौ लखि थान। करी प्रनति हित वान ॥४३॥
तहँ ते कढ़ि नृप वीर। विक्रम गुनन गँभीर।
देविय मंदिर द्वार। निरख्यौ कूप उदार ॥४४॥

छिन में तासु दुवार। खुलत मुंदत बहु बार।
धस्यौ नृपति तिहि मद्धि। आतुरता अति सद्धि ॥४५॥
लायौ बाहिर नीर। व्यापी नैक न पीर।
दुरगा मंदिर फेरि। गयौ सु दुक्ख निबेरि ॥४६॥
जल सों देवि न्हवाइ। चंदन सीस लगाइ।
आछे मंजुल फूल। दिए चढ़ाइ समूल ॥४७॥
दई अगरमय धूप। आरति करत अनूप।
भेट सुवन फल राखि। करी विनय अभिलाखि ॥४८॥
जय जय आदि भवाँनि। जगत मूल सुखदाँनि।
संकट हरनि अमंद। लसत लिलारहि चंद ॥४९॥
सुर मुनि अरु गंधर्व। सेवत जा कहँ सर्व।
त्रिभुवन मानत जाहि। पावत सिद्धि उछाहि ॥५०॥
जग कौ तुव सु अधार। धरनि रूप अविकार।
तही सलिल निरधार। पावक तुही अपार ॥५१॥
तुही समीर अकास। ब्याप रहिय परकास।
तेही मंडित हास। महिषासुर किय नास ॥५२॥
श्रोनित बीज रकत्त। तेही पियउ सुतत्त।
सुंभ निसुंभ कराल। तेही खंडे सुरसाल ॥५३॥
है तुव आठहु सिद्धि। अरु निहचै नव निद्धि।
तोहि जु ध्यावइ कोइ। सिद्धि लहै सब सोइ ॥५४॥
यों कहि विक्रम राज। करिकै प्रनति सलाज।
जोरि जुगल निज हत्थ। थित ह्वै रह्यौ समत्थ ॥५५॥

दोहा

इहि विधि बिक्रम ने करी बिनती प्रेम बढ़ाइ।
देवी नें दरसन तऊ दीनौ नही सुभाय ॥५६॥

भुजंगी छंद

तबै बिक्रमादित्य नै चाह भिन्ने।
लयौ हत्थ मै खग्गधारा अछिन्नै।
धर्यौ आपने कंठ पै खंडिबे कौ।
पराए हिये मोद के मंडिवे कौ ॥५७॥

प्रगट्टी तबै देवि यो बैन भाख्यौ।
सु लै भूप जो तो हिये मै भिलाख्यौ।
वरद्दॉन लै विक्रमादित्य रूरौ।
दियौ ज्वारियै सो सबै सिद्धि पूरौ ॥५८॥
महिप्पाल सो आपने ग्राम आयौ।
भली भाँति सौ स्वर्न कै मेह लायौ।
पुरी मै बहुव्बिधि मंडी बधाई।
सबै राज मै जोति जग्गी सवाई ॥५९॥

सोरठा

जु तू भोज नरपाल है उदार इमि जगत मै।
तौ चढ़ि बुद्धि बिसाल या सिंघासन पै अबै ॥६०॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहिं कुवर सिंह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिं हित्त कवि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है।
हुव सत्तबिसतिमी कथा पुत्तरिन की सु प्रकास है ॥२७॥

अष्टात्रिंश कथा

कलहंस छंद

फिरिक महूरत साधि भोज सु आइयौ।
तब पुतलीससिकात बैन सुनाइयौ।
तुव विक्रमेस समान जोव उदार है।
इहि तौ सिंघासन वैठि सुद्ध प्रकार है ॥१॥
सुनि यौ सु भोज नृपाल के फेरि उचारियौ।
कहि दॉन की बिधि पुत्तली जु विचारियौ।
इमि भोज के सुनि वैन आठरु बीसई।
उचरी कथा बिस्तार तजिकैं रीसई ॥२॥

सुमुखी छंद

पुरीय अवंतिय मद्धि भयौ। नरपति विक्रम रूप रयौ।
जिहि दिस चारहु जीत लई। जगमधि उत्तम कित्त छई ॥३॥

पद्धरी छंद

सो एक समै कौतिक निमित्त। छित लखन कह्यौ अति हो सुचित्त।
नद नदी ताल पव्वय अनेक। पथ मद्धि लखे संजुत बिबेक ॥४॥
इक नगर दूरि दरस्यौ उदार। मंदिर विलंद जिहि मधि अपार।
धामनि पताक फहरति उतंग। दुति लसै व्योम में विविध रंग ॥५॥
तिहि निकट हुतौ उपवन रसाल। बहु द्रुम विबिध्ध औरौ विसाल।
सित पीतस्याम अरु पुहप लाल। इमि लसत मनौ वन सजिय माल ॥६॥
सुख सनें घनें कुहकंत मोर। औरौ विहंगगन करत सोर।
गुंजरत भौर मधु पान मत्ति। मनमत्थ चित्त उमगत्त अत्ति ॥७॥
तहा जाइ विक्रमादित्य भूप। वैठ्यौ इकंत लखि थल अनूप।
तहँ चारि विदेसिय नर नवीन। पहुँचे सु आनि कैं तन मलीन ॥८॥
तिन सौं महीप विक्रम सचैन। उच्चर्यौ आप इह बिद्धि बैन।
कित्तें तुम आए हौ सु कौन। निजभेद कह सबौ तज्जि मौन ॥९॥
बहु कौतिक निरख्यो नयौ आप। बहु थान लखे ह्वै है अताप।
जब विक्रम ने यह कहिय बात। परदेसिय बोले तब सिहात ॥१०॥

सोरठा

कहा अवस्था भेद, हम कौ तू पूछत अबै।
जीवत बचन सखेद, दैव दया तै हम सबै ॥११॥
पुनि बोल्यो नरपाल, सुनि के तिनकी बात यह।
कहौ आपनो हाल, काहे ते दुख्खित भए ॥१२॥

छप्पै छंद

सुनि बिक्रम के बैन ते सु बोले परदेसिय।
पूरब दिस के मद्धि नगर वैताल कुबेसिय।
रक्तप्रिया इहि नाम, देवता उद्धत है तहँ॥
नर कौ लोहू मास रुचै है अति ही जा कहँ।
सब मानत जाकौ चोप सो परगट सिद्धि निकेत है।
जो ताकौ भक्तिहि करत सो नर पल की बल देत है ॥१३॥

मुक्तादाम छंद

मनुष्य जहाँ नर लेत सु मोल। विदेसिय कौं गहि लेत अमोल।
करै पुनि ताकहँ ते बलिदान। तहाँ हम जाय कढे अनजान ॥१४॥
लियौ हमकौ पुनि लोगन घेरि। बिनास निमित्त बुरी विधि हेरि।
बचे तिन पै सु महा सुख पाइ। पलाइ इहाँ सु पहुँच्चिय आइ ॥१५॥
बिदेसिन की यह बात नरेस। सुनी मन देकर बिक्रम वेस।
बिलोकनि कौतिक कौ तिह ठौर। गयौ इक संग लियौ नहि और ॥१६॥
सुजोग खराउन के परभाइ। उताल तहाँ सु पहुँच्चिय जाइ।
जबै लागि चंडिय मंदिर पास। चल्यौ नृप बिक्रम मडि हुलास ॥१७॥
इते मधि एक बिदेसिय कोइ। गह्यौ तहँ के पुनि लोगन टोइ।
गरीब महातन कंपत जासु। न्हवाइ लियौ जल सो तजि त्रास ॥१८॥
पुहप्पन की पहराइय माल। लिलार लपेटिय चंदन लाल।
उछाह सनै तिहि चंडिय अग्र। चलै पुनि ता कहँ लै अनव्यग्र ॥१९॥
प्रहारन कौ बलिदान अरत्थ। लख्यौ वह बिक्रम भूप समत्थ।
भई करुना अति चित्त मभार। कियौ तब यौ नरपत्ति बिचार ॥२०॥
महा धिक है इन पापिन सब्ब। जु घत्तत हैं नर कौ गहि गब्ब।
भलौ अपनौ उर मद्धि बिचारि। दियौ सब बेदन कौ मति टारि ॥२१॥

सु है धिक देवत हू कह फेरि। जहाँ पुनि जीवन मारत घेरि।
जऊ नर होत कलेस सहित्त। तऊ मरिबौ नहि चाहत चित्त ॥२२॥
जु सो अब देखत यह कहँ प्रान। नसै मम तौ न कृपा बलवान।
महापुनि नेरिय सक्ति प्रचंड। कहा अस ह्वै मन सत्य अखंड ॥२३॥
बचै यह ज्यौ करिहौं सु उपाइ। लई नृप नै इमि बुद्धि थिराइ।
कह्यौ तिन लोगन सों समझाइ। तजौ तुम या कहँ दुर्बल काइ ॥२४॥
गहौ अब मोहि सुपुष्ट सरीर। अबेर करौ जिन सज्जहु धीर।
प्रचंड सुचंडिय कौ बलि देहु। उताल महा सब सिद्धिह लेहु ॥२५॥
इती सुनि बिक्रम की बतरानि। छके सबही अचरज्ज जु मान।
बिचारि कियौ पुनि यों तिहिं बार। महा सबको मरिबौ भरभार ॥२६॥

सवैया

एक तजै कुल रक्षन अर्थ औ ग्राम निमित्त तजै कुल भारौ।
ग्राम तजै पुनि देस के काजहि नीति की रीतनि मै निरधारौ।
आपनै हित्त तजै सब बित्तनि छोड़िकै चित्त के लोभ अपारौ।
सो यह साहस बात महा जु करै निज प्राननि कौ निरवारौ ॥२७॥

दोहा

जब बिक्रम निज कंठ पर धरयौ तिक्ष करवाल।
ह्वै प्रतक्ष तब देवि नै गह्यौ हत्थ ततकाल ॥२८॥
धन्नि धन्नि कहि देवि नै, कह्यौ माँगि बरदान।
तब चंडी सों उच्चरयौ बिक्रम भूप सुजान ॥२९॥

सोरठा

जु तू देवि अविकार, है प्रसन्न मो पै महा।
तौ तजि हिंसा चार यह बिनती उर धारियै ॥३०॥
सुनि बिक्रम की बात, चंडी नें हिंसा तजी।
सब लोगन मुसक्यात, करी बड़ाई चकृत ह्वै ॥३१॥
नृप आयौ निज ग्राम, भई बधाई नगर मै।
इमि जो तू अभिराम, भोज सिंघासन राजि तौ ॥३२॥

हरिगीत छंद

श्री वदन सिंघ भुवाल जदुकुल मुकट गुननि विमाल है।
तिहिँ कुँवर सिंह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिँ हित्त कबि ससिनाथ नै रच्चिय सुजान विलास है।
हुव अष्टविंसतिमी कथा पुतरीन की सुप्रकास है॥२८॥

———

एकोनत्रिंश कथा

मल्लिका छंद

फेरि कै समौ सुधाइ। आइयौ सु भोज राइ।
सिंह आसनै मझार। पाय धारियौ उदार ॥१॥
पुत्तली सुरप्रिया सु। उच्चरी सजें हुलासु।
है जू बिक्रमेस तूल। बैठि तौ समेति फूल ॥२॥
कान धारिये सुबैन। भोज भूप कंजनैन।
उच्चरयौ हियें अतेह। भाखि तू सनीं सनेह ॥३॥
भोज की सुने सु बात। पुत्तली हरष्षि गात।
बिक्रमेस के बखान। उच्चरी समेति स्यान ॥४॥

दुपई छंद

पुरी अवंतिय मद्धि विक्रमादित्य भयौ है राजा।
जो सक्र समाँन नित्त भुगततु हौ सुख संपत्ति समाजा ॥५॥

त्रिभंगी छंद

सुख संपति साजै भुगति दराजै धर्म इलाजै नित्त करै।
रिपु चंडनि खंडै सहित घमंडै कीरति मंडै चित्त हरै।
अमरनि सो चाकर निपट गुनाकर सभा प्रभाकर तमहारी।
कौतिक निरखावै नृप हरखावै श्री बरखावै प्रनधारी ॥६॥

पावकुल छंद

एक समै सामुद्रिक वारौ। कोऊ पुरुष सुबुद्धि उदारौ।
पुरी अवंती वाहर आयौ। उत्तम ठौर देखि ठहरायौ ॥७॥
नर नारिन के लक्षन जानें। सुभ अरु असुभ समों पहिचानें।
तानें चरन चिन्ह इक देख्यौ। राजलच्छननि सहित विसेख्यौ ॥८॥
वेर वेर छिति ऊपर उघरे। देखि चिन्ह राज के सिगरे।
तव उर अंतर चिंता छाई। है काहू नृप कौ सुखदाई ॥९॥
पै नृप कैसें फिरै अकेलौ। निजु पाइनि सब भाँति सुहेलौ।
तहँतें पुनि चलिकै कछु आगें। देख्यौ एक पुरुष दुख पागें ॥१०॥

सिर के ऊपर काढी धारै। महा दरिद्री लाज बिसारैं।
ताहि देखि दुखिया यौ मन में। किय बिचार पुनि यौं तिहिं छिन में ॥११॥
निपट अचंभौ उर में आवै। को मेरौ संदेह मिटावै।
यह नर राजा लक्षन मंडित। बेचै काठ छुधा सों दंडित ॥१२॥
सामुद्रिक बिद्या कौ पढिबौ। है निहचै निर्फल दुख मढिबौ।
तौब अवंती नगरी माँहीं। जाय कहा करिहौं तिहिं ठाँहीं ॥१३॥
यों छिन एक विचारयौ ताने। पुनि यहु बुद्धि करी हितसौनें।
जु में इतेक भूमि अवगाही। तातें चलिहों जगत सराही ॥१४॥
चल नगरी में बिक्रम राजै। निरखौं कैसौ है जुत साजै।
यों बिचारि नगरी मे सोई। चल्यौ लखी सो संपति भोई ॥१५॥
बड़े बजार बिलंद हवेली। फुहुरति धुजा बद्दलनि मेली।
हाटनि मेवा बिबिधि मिठाई। वहु फल फूल मूल सुखदाई ॥१६॥
ठौर ठौर मुहरनि की ढेरी। नरनारिनि की भीर घनेरी।
निरखत चल्यौ बिहद्द दुरद्दनि। कद्दनि जे निदरत्त जलद्दनि ॥१७॥
फेरि भूप के तरल तुरंगा। मद्धि बजार समेति उमंगा।
बागनि साँचे अनगन रंगे। कंचन मनि के साज सुढंगे ॥१८॥
आगें चलि नृप मंदिर रूरौ। देख्यौ तानें संपति पूरौ।
द्वार थित्त प्रतिहारहि भाख्यौ। मैं नृप दर्सन कों अभिलाख्यौ ॥१९॥
छरीदार नें सुनि यों बाँनी। नृप के आगें जाय बखाँनी।
महाराज सुनियें परवीनें। पंडित इक दरसन कों लीनें ॥२०॥
आयौ है सो थित्त दुवारें। हुकुम होय सों उर में धारें।
सुनि यह छरीदार की बातें। सैननि कही लाउ हितरातैं ॥२१॥
तब प्रतिहारनि आवन दीनों। बिक्रम नृप को दरसन कीनौं।
कंचन मनि सिघासन झलकै। तिहिं मधि इंद्र मनौ छवि झलकैं ॥२२॥
बहुरँग अँवर कुंडल काँनन। उदित प्रभाकर सौ सुभ आनन।
कनक रतनमय औरौ भूपन। जगर मगर अति होत अदूपन ॥२३॥
हीरन जटित छत्र सित सोहै। मुक्तनि की झालरि मन मोहै।
ढुरत चौंर सुंदर दुहुँ ओरनि। महकति सभा सुगंध झकोरनि ॥२४॥
ठाढ़े और मनुज कर जोरें। नीति रीति सों प्रेम बटोरें।
तहाँ जाय पुनि आसिष दैकै। रह्यौ नृपति की ओर चितैकै ॥२५॥

अति विपाद उर में सरमानों। सूखे ओठनि मुख मुरझानौ।
बेर बेर नृप ओर निहारै। सामुद्रिक बिद्यै पटतारै ॥२६॥
सहित बिषाद जानि कै ताकों। बोल्यौ विक्रम प्रगटि कला कौं।
हे परदेसी तूं कहि काहे। भयौ सखेद मनोरथ ढाहे ॥२७॥
सुनिकै पुनि जोरैं जुग हत्थनि। बोल्यौ सो मधुरें इमि गत्थनि।
महाराज श्री पहुमि पुरंदर। मैं इक पुरुष लप्यौ पथ अंदर। २८॥
राज चिन्ह सब ताके अंगनि। जगमगात जाहर सब ढंगनि।
बेचै काठ धरैं सिर ऊपर। कुँभिलानों सौ बिहरै भूपर ॥२९॥
अरु बिक्रम महाराज बिचक्षन। तुव सब अंगनि मद्धि कुलक्षन।
सोहू आसमुद्र छिति नाइक दरसतु है परतक्ष सुभाइक ॥३०॥

दोहा

सामुद्रिक बिद्या विषै लह्यौ प्रतीप विचार।
यातें मेरे चित्त में सरस्यौ खेद अपार ॥३१॥
सास्त्रज्ञ मम बात सुनि होतु बलाबल भेद।
ताहि निहारौ डीठि दै, दूरि होयगौ खेद ॥३२॥

सोरठा

जब यों भाष्यौ भूप तब पंडित सामुद्रकी।
चिंत्यौ बुद्धि अनूप बिक्रम की बतरानि तें ॥३३॥
यह नित निपट सुजान मधुर बानि सुखदानि है।
बिद्या सक्ति प्रधान ऐसे बिरले होत जग ॥३४॥

छप्पै

पुनि सामुद्रिक सार सोधि सो पंडित सरकस।
बिक्रम सो कर जोरि उच्चरयौ बाँधै बरकस।
जाके तलवा मद्धि काक पद होय कुलक्षन।
ता नर के सुभ चिन्ह होंय सब वृथा बिलक्षन॥
अरु जाकी बाँई कूखि में अत्रजाल कबरौ लसय।
सो निपट कुलक्षन हूँ पुरुष चक्रवर्ति ह्वै जग बसय ॥३५॥

तोमर छंद

यह है बिसेप विचार। नृप समझियै अबिकार।
इमि बिज्ञ कौ सुनि वैन। विक्रम महीप सु चेन ॥३६॥

मंत्रिय नजीक बुलाय। तासों कही समझाय।
नर काठ बेचन काज। पुर मद्धि आयउ आज ॥३७॥
अब तुम ढुँढौ वहु ताहि। सब नगर को अवगाहि।
नरपाल की यह बात। सुनिकैं सचिव अवदात ॥३८॥
निजु जन पठाइय फेरि। लाए सु वाकहुँ फेरि।
आयौ सु नृपति हजूर। अतिरोर में चकचूर ॥३९॥
नहि और अंबर ओट। कटि मद्धि एक लँगोट।
सो नृपति विक्रम वीर। निरख्यौ निहंग सरीर ॥४०॥
तिहिं सुज्ञ सो सुनि भूप। इमि कह्यौ वचन अनूप।
याकी परीक्षा लेहु तुमचिन्ह की अब तेहु ॥४१॥
जब यों कह्यौ नरपाल। सुनि सुज्ञ बुद्धि बिसाल।
पुनि उच्चरचौ कि पिसान। आवै सन्यौं इहँ थान ॥४२॥
यह सचिव नैं घरि कान। निज जन पठाइ प्रवान।
लीनौ मगाइ सु चून दिय सुज्ञ कौ छब दून ॥४३॥
उठि सुज्ञ नें तिहि बार। गुरुदेव ध्याइ उदार।
तिहि ताल मद्धि लगाइ। लिय चून पिंड उठाइ ॥४४॥
लख काक पद तिहिं मद्धि। उचर्‌यौ नृपति हित लद्धि।
मम कुक्खिहू मधि ठीक। ह्वै है सुलक्षन नीक ॥४५॥
यह भाखि विक्रम हत्थ। छुरिका लई समरत्थ।
निज कूखि फारन हेत। निरमक बुद्धि निकेत ॥४६॥
तब गह्यो कर अतुराइ। तिहि सुज्ञ नें हित छाइ।
अउ कह्यौ बैन प्रकास। जो भर्‌यौ निपट मिठास ॥४७॥
जिन करैं साहस अत्ति। वर विक्रमी नरपत्ति।
तुव वाम कूखि मझार। है आत कर्बुरजार ॥४८॥
इहि बात मैं न सँदेह। मैं कहउँ सत्य सनेह।
यह सुज्ञ की बतरानि। सुनि कैं नृपति गुन खानि ॥४९॥
छुरिका दई पुनि डारि तिहि ओर विहँसि निहारि।
ताकौ दियौ वहु वित्त। पुनि गयौ सो हरपित्त ॥५०॥

दोहा

जो तो मद्धि इतेक है साहस भोजु भुवाल।
तौ या सिंघासन विषैं राजौ तुम इह काल ॥५१॥

हरिगीत छंद

श्री बदन सिघ भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहिँ कुँवर सिह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहि हित्त कबि ससिनाथ मे रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिँघासन की कथा उनतीसई सु प्रकास है।२९॥

त्रिंश कथा

सधा छंद

साधि महूरत और दिना फिर भोज महीपती हित्त सों आयौ।
चाह्यौ धरन्नि चरन्न सिंहासन सुरनंदा इमि बैंन सुनायौ ॥१॥
बिक्रम सौ जु उदार धरनिवरं तौ इह सिघासन पर राजौ।
यह सुनि भोज कही पुतली सो ताकौ गुन मो आगै गाजौ ॥२॥

सोरठा

भोज भूप कौ बैन, सुनि सु तीसई पुत्तली।
नर बानी सुख दैन, सज्जि कथा लागी कहन ॥३॥
पुरी उजैन उदार, बिक्रम तहाँ नरेस हौ।
रविसम तेज अपार, सक्रतुल्लि जिहि साहवी ॥४॥

उद्धत छंद

सो बिक्रमादित्य चहुदिसिनी को जित्त मधि
सभा लहि कित्त सरसंतु हौ बीर।
तिहि समै प्रतिहार कर जोरि अबिकार इम कियौ
उच्चार उर सज्जि कैं धीर।
सरबज्ञ नरपाल धरमज्ञ रिपुसाल तुव द्वार पर हाल इक खरौ वैताल।
कछु हुकम जो होइ पुनि कीजियै सोइ
यह भाखि सुख भोइ लियै मौन कौ ख्याल ॥५॥

दोहा

नृप नै सैनन सौ कही, ताकौ लाउ लिवाइ।
छरीदार ने जाइ कैं, साथ लिये समझाइ ॥६॥
नृप की आइ हजूर तिहि, इमि किय बचन उचार।
ब्रह्मा सम जग मै जियौ, बिक्रम भूमि भतार ॥७॥

नारा छद

सुनाइ कैं महीप कौ सु बैन यौं उचारियौ।
लखाइहौं नई कला कछूक दृष्टि धारियौ।

इती सु नत्त बात सब्ब तासु और दिक्खियौ।
समेत आचरज्ज हास मंद ही बिसिक्खियौ ॥८॥
खरौ भयौ बिताल सों नजीक जब्ब आइकै।
ततक्खनै पुरुष्ष औरु एकचित्त चाइकै।
लियै खरग्ग दच्छ हत्थ बाम हत्थ कामिनि।
सु रंगना समान जो मनौ दिपत्ति दामिनी ॥९॥
सभा मझार आइकै नृपै प्रनाम सज्जिकै।
कह्यौ सु बैन फेर यों महीप सों गराज्जिकै।
असार या जगत मै ब सार वस्तु है गनौ।
त्रिया कि श्री अमंद और तीसरी न मै मनौ ॥१०॥
सरस्वती विलास सो न मोर चित्त आवई।
बखान जो करौ सुनौ सुमोद कौ बढावई।
त्रिया दुहून लोक सुक्ख दैन के निमित्त ही।
धनै गुनी परे रहै दुवार बित्त हित्त ही ॥११॥
परै जु हत्थ दुष्ट कैं त्रिया रु श्री सुहावनी।
नरेस जानि सत्य ते दुलभ्भ फेरि आवनी।
इही अरत्थ स्त्री न श्री न और हत्थ दिज्जियै।
अयान है निपट्ट जो प्रतीत चित्त किज्जियै ॥१२॥
परंत जे पुरुक्ख सत्यवंत सुद्ध प्रॉन है।
निसंक सोपियै तिन्हैं सदा सु सावधान है।
परि स्त्रियाभिमुख्य यौ जगत्त में बिदित्त है।
कहत्त या लियै महीप तू अडिग्ग चित्त है ॥१३॥

दोहा

मै हौ सेवक इंद्र कौ, बसत इहा सुख पाइ।
कछू काम जो होइ जब, स्वर्ग जानु अतुराइ ॥१४॥
सो अब देव रु दानवन मंडी उदभट जंग।
हौं हू जैहौ आजु तहँ सज्जित हियै उमंग ॥१५॥

सोरठा

यह मेरी बरनारि ताकी रक्ष्या करि नृपति।
पर उपगार बिचारि जबलो मैं आऊँ इहाँ ॥१६॥

यह कहि सबके अग्र, गयौ गगन कौ पुरुप वह।
सु वैताल अनव्यग्र, रह्या जहाँ कौ तहीं थित ॥१७॥

मधुभार छंद

छिनमै अखंड, हुव नद वमंड।
जिमि जुटत जग, प्रगटैं अभंग ॥१८॥
मुख रटत मार, भट बेसुमार।
दुंदुभि धुकार, सुनियै अपार ॥१९॥
कौतिक सुनीठ, नहि परै दीठ।
इतनैं मझार, तिहँ कर उगार ॥२०॥
लग्ग प्रहार, लोहू लुहार।
कटि तिही ठार, परियौ असार ॥२१॥
पुनि द्वितिय हत्थ, ताकौ अकत्थ।
श्रोनित रँगीन, छिति गिर्‌यौ छीन ॥२२॥
छिन मैं उदंड, पुनि गुंड चंड।
छित पर्‌यौ आनि, अति दुरख दानि ॥२३॥
पुनि सिर अपंग, रँगि रुहिर रंग।
छित मैं डराक, परियो अडाक ॥२४॥
तिहिं पुरुप नारि, मृत पति निहारि।
विक्रम हजूर, भरिसोक पूर ॥२५॥
आई उताल, निज कह्यौ हाल।
हे नृपति खूब, मम भृता सूब ॥२६॥
मै अगनि मद्धि, पति प्रेम लद्धि।
धसिहौं निसंक, धरि याहि अंक ॥२७॥
सुनि तासु बैन, बिक्रम अचैन।
तिहि ढिग बुलाइ, बोल्यौ सुभाइ ॥२८॥
जो चहै चित्त, तू लै सु वित्त।
वहु वसन वेस, पुर और देस ॥२९॥
यह नृपति बात, सुनि विकल गात।
नटनी सुफेरि, उच्चरिय हेरि ॥३०॥
कछु चहत नाहि, मै हृदय माहि।
यो कहि छुहाइ, पति अंग लाइ ॥३१॥

जग्गति कराल, मधि ज्वाल झाल।
पैठी सुभाम, तजि और काम ॥३२॥
लग्गिय न बार, जरि भइय छार।
निज द्दगन देखि, नृप बुधि विसेष ॥३३॥
निज सभा आप, आयौ सताप।
तब लौं अरीन, सो नट प्रवीन ॥३४॥
नृप निकट आइ, उचर्‌यौ सुनाइ।
हे महाराज, कीरति दराज ॥३५॥
लहि तुव प्रसाद, मै तजि बिषाद।
किय स्वामिकाज, ढिग देवराज ॥३६॥
मो पै दयाल, हुव अमरपाल।
पुनि ह्वै मोहि, पठयौ अछोहि ॥३७॥

सोरठा

हे नृप बिक्रम तोहि, कही अवस्था स्वर्ग की।
सो अब मेरी मोहि, दै मगाइ कै भामिनी ॥३८॥

दोहा

यह कौतिक अवलोकिकैं, बिक्रम अरु सब लोक।
भए चक्रित से चित्त मैं पुनि सरसानौ सोक ॥३९॥

पावकुलक छंद

जब यों नृप कै चिंता जानी। तब सो नट बोल्यौ मृदुवानी।
हे नृप तुव घर मैं सुकुमारी। नारी है मेरी अति प्यारी ॥४०॥
तहूँ ताहि लखि कै ललचानौ। हुकम होइ तौ अवही आनौ।
नट की बानी सुनि छितनायक। बोल्यौ लाउ वेगि दुखघायक ॥४१॥
जब यौ बिक्रम नृप नैं भाष्यौ। अंतःपुर सु गयौ अभिलाष्यौ।
नटनी कौं लायौ नृप आगें। बिक्रम छयौ लाज सों पागें ॥४२॥
पुनि सो नट भूपति सों आछैं बोल्यौ परम सयानप काछैं।
महाराज मन खेद न मानौ। मेरौ इंद्रजाल इह जानौ ॥४३॥
सत्यवंत जिन जानौ याकौ। मैनें कीनौ प्रगटि कला कौ।
नट की बात सुनी यौ जबही। रीझ भूप कौ बोल्यौ तबही ॥४४॥

पांड्य देस कौ हासिल सगरौ। याकौ देहु वित्त सौ अगरौ।
यह सुनि मंत्री नृप ढिग लायौ। नृप नै ततक्षन नटै दिवायौ ॥४५॥

सोरठा

तिहि जगात परिमान, सो सुनियै अब कान दै।
हौ सब करत बखान, यामै रंचक झूठ नहि ॥४६॥

छप्पै छंद

समद मतंग पचास तुरंगम अयुत अदुत्तिय।
सुबरन अष्ट करोर आनमै भार सु मुत्तिय।
बारनारि सत एक निपट परपंच प्रबिन्निय।
पाड्या देस जगाति इती ता नट कौ दिन्निय।
जो इमि उदार तू भोज नृप सौ सिघासन पाइ धरि।
नहि जाइ प्रजा प्रतिपाल करि कहा लेइगौ जोम भरि ॥४७॥

हरिगोत छंद

श्री बदन सिह भुवाल जदुकुल मुकट गुनति बिसाल है।
तिहिं कुँवर सिह सुजान सुंदर हिदभाल दयाल है।
तिहि हित्त कबि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है।
पुतरी सिंघासन की कथा हुव तीसई सु प्रकास है ॥३०॥

एकत्रिंश कथा

हरिगीत छंद

फिर और बासर मद्धि औसर सद्धि भोज सु आइ कैं।
पग दिय सिंघासन दुति प्रकासन चित्त चोंप बढ़ाइकैं।
तब पुत्तली इकतीसई इमि उच्चरी पदमावती।
जो नृपत्ति बिक्रम तुल्लि तौ जसि भोगि संपति भावती॥ १॥

सोरठा

सुनि पुतरी के बैन, कही भोज नै फेरि कैं।
कहि बिक्रम गुन ऐन, सुन सु कथा लागी कहन॥ २॥

काव्य छंद

पुरी अवंती मद्धि राज राजत हौ बिक्रम।
जाकी रक्षा नित्त करत हे आप त्रिबिक्रम।
सदा धर्म संचार पाप नहि सज्जै कोई।
जाके राज मझार रहै श्री सदा समोई॥ ३॥
ताकैं दंतिल नाम सेठ जाको सब जानें।
सो जानत हौ नाहिं आप संपति परमानें।
सोमदत्त इमि नाम पुत्र ताकैं परवीनौं।
तिहि नृप सों इक द्यौस कही ह्वै निपट अधीनौ॥ ४॥
महाराज हौं महल बनायौ चहौं नवीनौ।
सोमदत्त कौ बचन सुनत नृप हुकम सु कीनौ।
सो हरषित घर आइ पिता कौ बात जनाई।
पितु नै कही बनाइ बित्त लै तजि दुचिताई॥ ५॥
यह दंतिल को बैन सुनत द्विजराज बुलाए।
सोमदत्त नै कही महूरत लखौ सुहाए।
कही जोतिसिन होइ जोग पुष्यारक जब्बै।
तब अवास आरंभ करौ तुम निहचै तब्बै॥ ६॥

दैवज्ञन कौ वचन चित्त मैं उत्तिम धरिकैं।
दई दक्षना तिन्हैं गए ते आनँद भरिकैं।
पुष्यारक सिधि जोग हुतौ जा दिन सुखदानी।
ता दिन किय आरंभ द्विजन कौ लै अगवानी ॥ ७ ॥

पुष्यारक जब होइ जबै ई ईंट गढावै।
अरु पापान रु काठ चारु चूनौ बनवावै।
कैतिक बर्षन मद्धि मूल तैं महल उदारौ।
बनि आयौ इहि बिद्धि कहा मैं उर धारौ ॥ ८ ॥

मुक्तादाम छंद

रच्यौ गृह पूरब न्हान निमित्त। रसोइय कौ दिसि अग्नि उचित्त।
दिसा पुनि दक्षिन सोवन काज। निऋत्त बिषै गृह अत्र दराज ॥९॥
कियौ गृह पश्चिम भोजन अर्थ। समीर दिसा हित अंन समर्थ।
दिसा पुनि उत्तर गेह भँडार। सुरालय ईस दिसा अविकार ॥१०॥
दिसा पुनि पूरब अग्नि मझार। बिलोवन को किय धाम उदार।
हुतास दिसा अरु दक्षिन मद्धि। करचौ घृत कौ गृह आनँद लद्धि॥११॥
दिसा पुनि दक्षिन नैऋति बीच। जरूरम कौन कियौ अनकीच।
निऋत्ति दिसा अरु पच्छिम माँझ। कियौ पढिबे कहँ भोररु साँझ ॥१२॥
बरुन्न दिसा अरु मद्धि समीर। रच्यौ गृह रोदन कौ अतिधीर।
पवन्नरु उत्तर मद्धि बिलंद। रचौ रति कौ गृहदान अनंद ॥१३॥
कुबेर रु ईस दिसा मधि ऐंन। रच्यौ गृह औषधि कौ सुख दैन।
महेस रु इंद्र दिसा मद्धि सुद्ध। कियौ सब बस्तुन धाम अक्रुद्ध ॥१४॥
अटा बगला बहु गौख सुढंग। धरे कलसा तिन पै सउमंग।
किये झँझरीनि झरोखन जाल। अनूपम चित्र बिचित्र बिसाल ॥१५॥
उतंग सुतोरन चारु दुवार। किये अति उत्तिम तासु किवार।
हयंदन स्यदन गो गृह और। किये लखिकैं पुनि सुंदर ठौर ॥१६॥
बनाइ चुक्यौ गृह यो सब बिद्धि। सु दंतिल सेठ महागुन निद्धि।
महूरत बिप्रनि पूछि सुभाइ। करचौ सु भली बिधि साति उपाइ॥१७॥
अनेकनि आवज की धुनि होति। पढ़ै द्विज बेदनि कौ लहि जोति।
त्रिया पुनि गावति मंगल गीत। पुहप्पन की सज्जि माल अभीत ॥१८॥

बरष्पत आनँद सो वहु बित्त। चल्यौ तिहि धाम प्रवेस निमित्त।
प्रवेस भयौ गृह मै पुनि जाइ। रह्यौ दिन मै सुख सो हित छाइ॥१९॥
लग्यौ निसि मै जब सोवन सेज। लिये धन कौ मन मद्धि मजेज।
तबै पुनि ईटन कौ सुर कोइ। उचारिउ बैन सु यों हित भोइ॥२०॥
गिरत्तु गिरत्तु सु हौ इहि बार। सुनी यह सेठि उठ्यौ अकरार।
ततक्षन ता परंजकहि तज्जि। हिये मद्धि कातरता अति सज्जि॥२१॥
इतं उति देखि लख्यौ सु कछू न। गई उतै टरिकैं भय दून।
दियौ परंजक बिषै पुनि पाइ। गयौ निज लेंट सु सेठि थिराइ॥२२॥
फिरयौ उचरयौ वह देव उदंड। गिरत्त सु हौ अब सातहु खंड।
उठ्यौ धुनि को सुनि सेठि मलीन। इतें उत देखन कौ दृग दीन॥२३॥
कछू तिहिं ठौर परयौ नहि डीठ। बितीत करी निसि जागत नीठ।
इही बिधि सौ दिन तीन बिताइ। भरयौ भय सो अति कातर राइ॥२४॥
गयौ पुनि बिक्रम भूपति पास। कही यह बात सबै परकास।
सुनी यह दंतिल की बतरानि। बिचारि कियौ नृप नै बुधि ठानि॥२५॥
जु या गृह कौ सुर कोइ अनूप। सु बोलत है करि गुप्त सरूप।
कछू बलिदान चहै कि प्रचंड। उपाइ सुजज्जउँगो सघमंड॥२६॥
बिचारि हिये मधि बात सु एह। महीपति भाषिय यौ जुत नेह।
सुनौ तुम सेठि जु मानत त्रास। लग्यौ धन जो गृह कौ सु हुल स॥२७॥
सु लेहु सबै तुम सेठ प्रवीन। कहा गृह कौ इमि संसय कीन।
इतौ कहि कैं धन सेठहि दीन। गयौ अपनें गृह सो सुख लीन॥२८॥

दोहा

साँझ समै बिक्रम नृपति करिकैं वहु बिधि दान।
तिहि अवास में आपु इक गयौ पराक्रमवान॥२९॥
जबलों सौवै सेज नृप चौसठि कलानिधान।
तबलो बोल्यौ देव सो करिकैं सद्द भयान॥३०॥

सोरठा

हे विक्रम नरपाल, मै अव गिरिहौं संक तजि।
यह सुनि धुनि बरभाल, भूपति बोल्यौ बिहसि पुनि॥३१॥
ढील करै मति रंच, गिरि परि अब पूछत कहा।
देव सु बिगतिप्रपंच, गिरयौ हेम कौ पुरुष ह्वै॥३२॥

मालती छंद

भयौ परतक्ष । सुदैवत दक्ष ।
वरक्खिय फूल । हियै अनुकूल ।।३३।।
फिरयौ सु सुभाइ । कह्यौं समझाइ ।
जु या कहँ तोरि । सयान वटोरि ।।३४।।
खरच्चइ नित्त । हियै अनभित्त ।
तिनौ इहि अंग । वढै सु उमंग ।।३५।।
बिसे पुनि वीस । न खंडइ सीस ।
इतौ कहि आप । सुदेव अताप ।।३६।।
महीपहि हेरि । प्रसंसिय फेरि ।
गयौ निज थान । सुवुद्धि निधान ।।३७।।
भऐं परभात । महीप सिहात ।
लिये नर हेम । चल्यौ जुत च्छेम ।।३८।।
इते मधि आइ । किहूँ ललचाइ ।
कह्यौ कछु देह । महीप अतेह ।।३४।।
इती सुनि वाँनि । दरिद्रिय जानि ।
सुहेम पुरुप्प । दियौ लहि सुक्ख ।।४०।।

दोहा

यातें भोज महीप सुनि ऐसौ जु तू उदार ।
तौ या सिंघासन विपै विलसि राज व्यौहार ।।४१।।

हरिगीत छंद

श्री वदन सिह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि विसाल है ।
तिहिँ कुँवर सिह सुजान सुंदर हिंद भाल दयाल है ।
तिहिँ हित्त कबि ससिनाथ ने रच्चिय सुजान बिलास है ।
यह एकत्रिसति पुत्तली की कथा भइय प्रकास है ।।३१।।

द्वात्रिंश कथा

आभीर छंद

फेरि महूरत साधि। भोज इष्ट आराधि।
सिंहासन पग दैन। लगगउ संजुत चैन ॥१॥
पद्मिनि पुतली तब्ब। बोली बिना गरब्ब।
जो बिक्रम सम साच। तो मैं है अन आँच ॥२॥
तौ सिंघासन राज। आछी छबि कहँ छाज।
पद्मिनि की इमि बात। सुनि सु भोज मृदुगात ॥३।
उचर्‌यौ तासहुँ फेर। कहि तू कपट निबेर।
यह सुनि पुत्तलि आप। कह्न लगी तजि ताप ॥४॥
पुरी उजैन ललाम। तहँ नृप बिक्रम नाम।
मानहु छित अमरेस। सुंदर गुननि सुवेस ॥५॥
जाकै नाहि अनीति। सदा धर्म सहु प्रीति।
बिबिधि राज सहित्त। बिलसत हुतौ अभित्त ॥६॥

दोहा

इक दिन काहू ग्राम त पुरी अवंतिय मद्धि।
बनिक पुत्र ब्यौपार कू आयौ आनँद लद्धि ।७॥
नगरी कौ सब रूप तिहिँ, कह्यौ पिता सों जाइ।
बेचन आवै बस्तु सो, तिहिँ ठाँ सबै बिकाइ ॥८॥

सोरठा

जु कछु वस्तु रहि जाइ संध्या लो अनविक तहाँ।
नृपति हुकम तैं आइ, नृप सेवक लै जाहिँ सो ॥९॥
पुरहि न लगै कलंक, यह बिक्रम उर आनिकै।
सब कछु लेत निसंक, मोल देत मनभावतौ ॥१०॥

छप्पै छंद

ता बनिया कौ बाप हुतौ सो अति ही धूरत।
तिहि लोहे कौ रच्यौ पूतरा कपटै पूरत।

ताकौ नाम दरिद्र राखि कैं अति अतुरायौ।
निपट लोभ लपटाइ अवंती नगरी आयौ।
थित राजपंथ मैं ह्वै रह्यौ काहू नैं पूछयौ सु तव।
इमि कह्यौ वेंन दारिद्र है पूछि पूछि टरिगे सु सव ॥११॥

दोहा

ताकौ मोल कहै प्रगट सो दीनारि हजार।
लेहि दरिद्रैं कौन नर सुनत हौहि वेजार ॥१२॥

पावकुल छंद

साझ समै नृप के जन आए। दै दीनार सहस्र अठाए।
लै दरिद्र पुत्रक कौ सव्वैं। राख्यौं नृपति कोस मैं तव्वैं ॥१३॥
नृप के धाम दरिद्र सु आयौ। लखि कैं श्री मे चित्त चलायौ।
राजश्री जुत सातौ अंगनि। निसि नैं आई सहित उमंगनि ॥१४॥
सरद चंद सौ बदन विराजै। तिमर पटल जा दरसै भाजै।
भृकुटी कुटिल धनुप छविवारी। सरसे नैंन जुगल दुखहारी ॥१५॥
कजरारे अरु अति अनियारे। खजन मीन कुरंग विसारे।
वरुनी वक्र निपट झपकारी। विधि सो विधि निज हाथ सुधारी ॥१६॥
स्त्रवननि रतन तर्यौना सोहैं। जिनके आगें रवि छवि को है।
नीकी निपट नाक छवि ऐसी। मनमथ नट कुंडलिका जैसी ॥१७॥
फहरति परसि कपोलन अलकैं। दरसावति जेहर हिय ललकैं।
मृदु मुस्वयानि दसन छबि छाए। अरुन अधर अरु सधर सुहाए ॥१॥
मुक्ति माल उज्जल दुति सरसैं। औरो मनिगन भूपन सरसैं।
तन छवि मनौ दामिनी दमकति। छीन वसन मैं वाहिर झलकति ॥१९
किंकिन नूपुर झनकत रूरे। जिनि हसनि के सुर चकचूरे।
प्रगट भई यो नृप के आगैं। उठ्यौ भूप आतुर हित पागैं ॥२०॥
लखि सुगंध सो पूजा कीनी। उर मै अधिक विनयता लीनी।
हाथ जोरि पुनि लहि थिरताई। बिक्रम लाग्यौ करन वड़ाई ॥२१॥

प्रमानिका छंद

तुही त्रिलोक्य माइ है। समुद्रजा सुभाइ है।
गुविंद वक्ष वासिनी। सरस्वती सुहासिनी ॥२२॥

तुही स्वधा प्रसिद्ध है। तुही सु वुद्धि वृद्धि है।
तुही स्वधा विलास है। विभावरी प्रकास है ॥२३॥
अनंत सत्रु खंडिनी। तुही जगत्त मंडिनी।
तुही सु अष्ट सिद्धि है। तुई नव्व सुनिद्धि है ॥२४॥
तुही सु जोती चंद मैं। महा अनंद कंद मैं।
हुतास मद्धि ज्वाल है। तुही विसाल भाल है ॥२५॥
तुही प्रभा दिनेस की। विहंडिनी कलेस की।
तुही सु राजनीति है। अनूप भक्ति रीति है ॥२६॥
तुही सिवा सुहावनी। तुही त्रिलोक पावनी।
तुही तरंग गंग मैं। भरी महा उमंग मैं ॥२७॥
तुही कलिदनंदिनी। अनेक पाप कंदिनी।
तुही धरत्ति रूप है। सती सिया अनूप है ॥२८॥
जु तो कृपा विहीन है। मनुष्य सो मलीन है।
जु तोहि नित्त गावई। सु सब्ब सुख्ख पावई ॥२९॥

दोहा

विक्रम नै विनती करी हाथ जोरि इहि भाइ।
तब श्री बोली भूप सो मै अब चली पलाइ ॥३०॥
यह सुनि बोल्यौ भूप पुनि क्यौ मोकौ तजि जात।
तब पुनि बोली लक्षमी बिक्रम सों अनखात ॥३१॥

सोरठा

आयौ तेरे कोम दुख्खद महा दरिद्र अब।
मोहि देहि जिन दोस, विक्रम चित्त विचार लै ॥३२॥
यह सुनि विक्रम फेरि, वोल्यौ श्री सों जोरि कर।
तू जिन जा हित हेरि, तो सो सब सुख जगत के ॥३३॥

संजुता छंद

पुनि भूप के सुनि बैन कौ। उचरी श्रिया तजि चैन कौ।
जिहिठ दरिद्र विकार है। मम नाहि तत्र विहार है ॥३४॥
यह बात कानिनि धारि कै। नरपत्त चित्त विचारि कै।
उचर्‌यौ श्रिया सहु फेरि कै। कररं द्रगन सों हेरि कै ॥३५॥

जु दरिद्र पुत्रक लै धर्‌यौ। तजि हौ त सो प्रन यौं कर्‌यौ।
हठि जाइ तौ अब जा चली। श्रिय तो सुभाइ सु हे छली ॥३६॥

सवैया

कूरम नै निज पीठ पै भूमि धरी सो धरी न घरीक उठावै।
औ जलनिद्धि' बनै बडवागिन नित्त जु उज्जल जंतु जरावै।
चंद मृगै न तजै गहि अंक तहू जग जाहि कलंक लगावै।
आपनो जानि तजै कबहूँ न सु है सुकृतीन कौ सिद्ध सुभावै ॥३७॥

दोहा

यह बिक्रम कौ बैन सुनि गई लक्षमी आप।
पुनि बिबेक छिन एक मै, आयो सन्यौ सँताप ॥३८॥

मालती छंद

सुनौ महाराज, सुबुद्धि जहाज।
जहाँ सु दरिद्र, रहै अति निद्र ॥३९॥
तहाँ पुनि मै न, बसो लहि चैन।
गई श्रिय भज्जि, हिये मधि लज्जि ॥४०॥
सु हौ तिहि ठार, चल्यौ निरधार।
तबै बहुबार, नरेस उदार ॥४१॥
कही गहि टेक। न जाइ विवेक।
तुहूं सतराइ। गयौ सु पलाइ ॥४२॥
फिरयौ छिन मद्धि। समौ निज लद्धि।
सुसत्व अनूप। बिलोकिय भूप ॥४३॥

त्रिभंगी छंद

तन फटिक छटा धर तिमिर घटा हर बरन सुधाधर सुख बरसै।
सित अंबर गहनें चित के चहनें जौति उमहनें जुत सरसै।
द्वादस पुनि थानें तिलकनि ठानें वेद बखानें सुर लीनें।
इहि बिधि सो आयौ सब्ब सुहायौ नृप लखि पायौ प्रन कीनें ॥४४॥

सोरठा

इहि बिधि सत्व सु आइ बोल्यौ बिक्रम नृपति सो।
जहँ दरिद्र कौ पाइ तहाँ न मै क्यौहू रहौ ॥४५॥

लछमी और विवेक प्रथमहि दोऊ हटि गए।
अब हों रह्यौ सु एक यातें निहचै जाइहौं ॥४६॥

पद्धरी छंद

इमि सत्व वैन सुनि बिक्रमेस। चित्यौ सु चित्त मैं लहि कलेस।
जग जा मनुष्य कौ सत्व जाइ। तिहि मद्धि कहा उत्तम प्रभाइ॥४७॥
श्री जाहु होति चंचल सुभाउ। गुनहू विवेक संजुत व जाउ।
अरु प्रान जाउ तौ जाउ भज्जि। पै सत्व जाहु जिनि नरहि तज्जि॥४८॥
चित्त में विचारयौ नृप प्रवीन। उच्चरयौ सत्व सो ह्वै अधीन।
जो जात सत्व तू तज्जि मोहि। तौ देत आपने सीस तोहि॥४९॥
यों बचन भाखि सो सत्व अग्ग। धर लियौ कंठ पै बर खरग्ग।
जब लग्गि सीस काटै छुहाइ। तब लग्गि गह्यौ कर सत्व धाइ॥५०॥
पुनि धंनि धंनि करि कै उचार। थिर रह्यौ सत्व है निरविकार।
तब श्री विवेक दोऊ दयाल। विक्रम समीप आये उताल॥५१॥

मुक्तादाम छंद

महीपति भोज सुनौ बुधिवान। जु हौ तुमही इमि सत्वनिधान।
लसौ तुम तौब सिँघासन मद्धि। करौ नित राज सु आनँद लद्धि॥५२॥

हरिगीत छंद

श्री बदनसिह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि विसाल है।
तिहिँ कुँवरसिह सुजान सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहिँ हित्त कवि ससिनाथ नें रच्चिय सुजान विलास है।
यह द्वात्रिंशति पुत्तली की कथा भइय सुप्रकास है॥३२॥

उपसंहार

दोहा

सुनि पुतली के वैन जब रह्यौ मौन गहि भोज।
बत्तीसो तब देवत्रिय प्रगट भईं लहि चोज॥ १॥

पावकुलक छंद

तन दुति मानो दमकत दामिनि। मुखससि जोति महा अभिरामिनि।
भृकुटी कुटिल नैन अनियारे। पंकज के दल जिन पर वारे॥२॥
श्रवन नासिका अति ही रूरे। ललित ओठ रस मधुर समूरे।
ग्रीवाँ गोल उरोज सु वौनें। त्रिवली नाभि उदर अति लौनें॥३॥
निपट लटी कटि लचकति ठाढै। ऊरू रंभनि निदरत गाढै।
उमगति छवि पल्लव से पाइन। अंगुरी कंज कली के दाइनि॥४॥
सिख तें नख लों भूपन राजै। कंचन मनि मंडित सुख छाजै।
रंग रंग के अंबर अंगनि। महकी सभा सुगंध तरंगनि॥५॥
यौं सु भोज सों बोली विहसति। धंनि धंनि है तू धरनीपति।
तुव प्रसाद तें आज हमारौ। छूट्यौ श्राप भयौ निरवारौ॥६॥
यो सुनि सुरनारिन की बानी। बोल्यौ नृप लै बुद्धि सयानी।
को तुम हो कहि प्रगट जतावौ। कौनैं दीनौ श्राप अठावौ॥७॥
तुम पै भयौ अनुग्रह कैसे। कहौ सत्य जैसें है तैसें।
जब यौं कही भोज नै बातैं। तब ते बोली वचन सिहातें॥८॥
हम हैं बत्तीसो सुरनारी। इंद्रहि सुख्य बढ़ावन हारी।
जया और बिजया इमि नामिनि। तृतिय जयंती है सुरभामिनी॥९॥
अपराजिता और जयघोपा। और पुंजघोपा अनरोपा।
मंजु मंजुघोषा पुनि जानों। लीलावती बहुरि उर आनों॥१०॥
कलावती बहुर्यौ जयमेना। और मदनसना बरनैना।
मदनमंजरी अरु शृंगारनि। रतिप्रिया अति ही सुखकारिनी॥११॥
नरमोहनी भोगनिधि अच्छी। प्रभावती सुपमा जनु अच्छी।
चंद्रमुखी ससि सो मुख जाकौ। और अनंगधुजा कै ताकौ॥१२॥

अरु कुरंगनैना दुति धारै। अरु लावन्यवती अनपारैं।
सौ मंजरी चंद्रिका रूरी। और हंसगमना गति पूरी॥१३॥
विज्जु प्रभा बिजली सी झलकैं। अरु आनंद प्रभा लखि ललकैं।
चंद्रकाति सुरप्रिया सुहाई। और देवनंदा छबि छाई॥१४॥
पद्मावति पद्मिन सुरघरनी। वत्तीसो हैं कुंदनवरनी।
करि संगीत रीझावति सक्रै। मोहत चित्त विलोकत वक्रै॥१५॥

छप्पै

नंदनबन के मद्धि एक दिन हुतौ पुरंदर।
निरखतु नृत्य समाज सुख्य सज्जैं उर अंदर।
इक महर्षि हौ तहाँ लख्यौ अति अंग मलीनौ।
ताकी ओर निहारि अजानें हम हँसि दीनौ।
सो जॉनि इंद्र नैं श्राप यह दियौ ततक्षन रोसकैं।
तुम होउ सबै पापान की, दुख पाओ निज दोष कैं॥१६॥

सोरठा

लगें सक्र कौ श्राप, हम पत्थर की ह्वै गईं।
तब तानै लखि आप निज सिंघासन थित्त किय॥१७॥
सिहासन सु उदार बिक्रम कौ जब इंद्र दिय।
तब यह कियौ उचार, उर मैं दया विचारिकै॥१८॥

प्लवंग छंद

जब नरलोक मझार बिषाद भुलाइकै।
भोज सभा के मद्धि अनंद वढ़ाइकैं।
श्री विक्रम गुन सत्य कहौगी चाइकैं।
तब आवौगी स्वर्ग दिव्य तनु पाइकै॥१९॥
यातें भोज महीप तुम्हारे नेह तं।
छूटि गयौ सो श्राप पाहनी देह तं।
हम सब भईं प्रसन्न कछू वर लीजियै।
यह सुनि बोल्यौ भूप कृपा ही कीजियै॥२०॥
माँगत हौ मैं नाहि कछु न अव चाह है।
तुम्है लखत ही भयौ महा उतसाह है।

यह सुनि नृप कौ बैन बहुरि सुरकामिनी।
उचरीं हित की बात परम अभिरामिनी ।।२१।।

हरिगीत छंद

जो इहि चरित्रहि अति बिचित्रहि पढ़ैगौ मन लाइकैं।
कै सुनैगौ उर गुनैगौ सब सत्य ही ठहराइकैं।
श्री किर्ति हिमति बहुल किमति ताहि मिलिहै आनिकैं।
पुनि और रूरे सुख्य पूरे भोगिहै हित मानिकैं ।।२२।।
सनमान दै बरदान दै इमि आनँदै अति पाइकै।
सुरनागरी गुन आगरी सब गईं स्वर्ग लुभाइकैं।
राज्यौ सिघासन दुति प्रकासन भोज तब अनुराइकैं।
पुनि बहुत बरषनि सहित हरषनि कियौ राज बनाइकैं ।।२३।।

अथ कवि वंस बर्नन दोहा

मिश्र नरोतम नरोतम भए छिरौरा बंस।
राम सिघ के मंत्रगुरु, माथुर कुल अवतंस ।।२४।।

पावकुलक छंद

तिनके पुत्र प्रसिद्धि देवकीनंदन भाए।
बिद्याबुद्धि समुद्र जगत उत्तम जस लाए।
तिनके अनुज अनूप एक श्रीकंठ सुहाए।
ताके जागे भाग जिननि वे दरसन पाए ।।२५।।

दोहा

उपजे नंदन मिश्र के चारि पुत्र सुखदाँनि।
नीलकंठ मौहन बहुरि मिश्र महामनि जाँनि ।।२६।।
चौथे राजाराम पुनि निज मन मैं पहिचानि।
सबै भाँति लाइक सबै निपट रसिक उर आनि ।।२७।।

कवित्त घनाक्षरी

काम अवतार से अनूप अति रूप करि
सील कहि सुंदर सरद सुधाधर से।
कबिता मैं ब्यास के प्रमान कहि सौमनाथ
जुद्धरीति जानिबे कौ पारथ से दरसे।

बुद्धि करि सिंधुरबदन के समान अरु
उद्धत उदारता में भूमि सुरतर से।
सिद्धता मैं बिमल बसिष्ट मुनिवर से औ
जौतिष में नीलकंठ मिश्र दिनकर से ॥२८॥

दोहा

तिनके पुत्र अनंदनिधि बड़े उजागर जॉनि।
जिनकौ सुजस दिगंत लौ महा उजागर मान ॥२९॥
गंगाधर तिनकौ अनुज गंगाधर परवॉन।
सोमनाथ तिनकौ अनुज सबते निपट अजान ॥३०॥
तातें सूरजमल्ल कौ हुकम पाइ परकास।
रच्यौ कथा बत्तीस मय ग्रंथ सुजान बिलास ॥३१॥
सहस गुनी ससिनाथ की बिनती उर मै धार।
चूक भई कछु होइ तौ लीजौ सुकबि सुधार ॥३२॥
संबत् बिक्रम भूप कौ अठ्ठारह सै सात।
जेठ सुद्ध तृतिया रबौ भयौ ग्रंथ अवदात ॥३३॥

हरिगीत छंद

जब लगि रब्बै राखि अग्गबै चंद पंकज मित्त है।
छित सेस अरु अलकेस सुंदर सोमनाथ अभित्त है।
तब लग्ग पितु अरु पुत्र नॉती आदि बित्त सहित्त ही।
ब्रजराज यह जुबराज सूरजमल्ल राजहु नित्तही ॥३४॥
श्री बदन सिंह भुवाल जदुकुल मुकट गुननि बिसाल है।
तिहिँ कुँवर स्यंघ सुजॉन सुंदर हिद भाल दयाल है।
तिहि हित्त कबि ससिनाथ नें रच्चिय सुजानबिलास है।
बत्तीस पुत्तालि कथा पूरन भयौ ग्रंथ प्रकास है ॥३२॥

दीर्घनगर वर्णन

दीर्घ नगर वर्णन

[सुजान बिलास के ग्रंथांत में सोमनाथ ने दीर्घपुर नगर (वर्तमान) दीघ का वर्णन किया है। यह भरतपुर से लगभग २२ मील दूर पश्चिमोत्तर स्थित है। दिल्ली की लूट से भरतपुर के जाट राजाओं ने यहाँ भव्य भवनों का निर्माण कराया था जो आज भी हैं।]

प्रेम सहित सिरनाय कै बानी सुमिरौ तोहि ।।
त्रिभुवन की रानी मधुर बानी दीजे मोहि ।।१।।

सवैया

ग्रामनि मैं द्रुम पुंजन गुंज प्रफुल्लित सौरभ की भरनी है।
चारु प्रभाकर की तनया अरु चारि पदारथ की फरनी है।
नित्त जपै ससिनाथ हिये जह की रज पापन की दरनी है।
लोकनि मौ बरनी करनी दुख की हरनी बृज की धरनी है ।।२।।

दोहा

तिहि बृजमंडल मद्धि है दीरघ नगर प्रकास।
अब ताकौ वर्नन करौं मंडित हियै हुलास ।।३।।

मधुभार छंद

दीरघ सुग्राम, अतिही ललाम।
जहँ गढ़ बिलंद, छलके अमंद ।।४।।
बुर्जनि अनेक, मंडित विवेक।
सहसनि बिसाल, जुत जंत्र जाल ।।५।।
तिनपै पताक, सरसंक धाक।
कलधौत रंग, जितवार जंग ।।६।।
गढ मै प्रकास, नृप के अवास।
राजनि सुधारि, रच्चे बिचारि ।।७।।
बगला उतंग, कलसनि सुढंग।
छबि की छटान, वैठक विधान ।। ८ ।।

तिनके मझार, गद्दी उदार।
कंचन लसाइ, जिनमै सुभाइ ॥ ९ ॥
अरु चहूँ ओर, आभा अछोर ॥ १० ॥
प्रति द्वार द्वार। तोरन बिहार।
आगै बितान। अति जोतिवान् ॥ ११ ॥
झालरि अनूप। रबि किरन रूप।
इमि ठाम ठाम। बृजराज धाम ॥ १२ ॥
अरु गढ दुवार। सोहहि प्रकार।
बड्डे कपाट। जुत लोह ठाट ॥ १३ ॥
कीला कराल। रिपु कौ जु काल।
तिनमै अनंत। ते जगमगंत ॥ १४ ॥
अरु गढ परिष्य। सरिता सरिष्य।
आगै सुढार। चौपथ बजार ॥ १५ ॥
अनगनि दुकान। राजति सुठान।
अरु गृह दराज। जुत श्री समाज ॥ १६ ॥
बहुद्विज बसंत। निजु धर्म संत।
छत्री सरौंड। पुनि गहै मैंड ॥ १७ ॥
अरु बनिक जाति। निस द्यौस राति।
जुत धर्मख्याल। उर मै दयाल ॥ १८ ॥
अरु धर्मसील। कायस्थ डील।
बहु जाति और। लहि बसी ठौर ॥ १९ ॥
आश्रम जु चारि। निजधर्म धारि।
बिहरै अभीत। अति ही बिनीत ॥ २० ॥

अथ बाग बर्नन

तोमर छंद

अरु नगर कूल सुबाग। फूलै फलै चहु भाग।
केतकि गुलाब चमेलि। अरु केतिकी बर बेलि ॥ २२ ॥
करना जुही करबीर। सौगंधरा इव हीर।
गुलखैरु अरु गुललाल। रबि मुख्य गुड़हर नाल ॥२३॥

सत वर्गना करमान। गुल बास मोभ निवान।
गुल चंद्रिका जनु चंद। अवदात आनद कंद॥ २४॥
फूलै सवै ऋति पाइ। अरु औरहू बहु भाइ।
मेवा भरी सु मिठासु। पिस्ते बदाम प्रकास॥ २५॥
अरु विही सेव सुदाख। पुजवैं सु उर अभिलाख।
नौंजे छुहारे बेरि। कमरख्य दुख्य निबेरि॥ २६॥
आलू मधुर खूबानि। नारँगी अरु सुखदानि।
कटहरी कटहर जाल। अरु आँवरे सु विसाल॥२७॥
श्रीफल करौदा नूत। मिठ्ठा चिरौजिय नूत।
अरु फालसे अंजीर। खिरनी वकुल जंभीर॥ २८॥
अरु वीजपूर अनार। गोँदी कपित्थ उदार।
अंकोल औ कचनार। तिंदू तमाल बहार॥ २९॥
अरु और वहु विधि वृक्ष। ते सोभियै परतक्ष।
चहु ओर भित्ति उत्तंग। तिहि मध्य धाम सुढंग॥ ३०॥

अथ ताल वर्णन

बडी चौपई छंद

अरु पक्कौ निकट सरोवर तामै निरमल नीर बिराजै।
बहु जाकी तरल तरंगैं दरसैं सुख सरसै बृजराजै।
पुनि दिन अरबिंद रैनि इंदीवर फूले रहत सुहाए।
नित हित मकरंद वुंद के सौरभ भ्रमत अलिंद सुहाए॥ ३१॥
अति हर्षित करै कलोलैं सफरी रवि ससि कर लगि झलकैं।
जे करि अभिलाखनि सजी वलाखनि ते लाखनि छवि छलकैं।
उर कपट तजे जल कुक्कुट विहरैं चक्रवाक रस भीनें।
अरु चात्रिग पुंज कुलंग करकरा द्वै विधि हंस नवीनें॥ ३२॥

अथ राजकुल वर्नन

छप्पै छंद

सुंदर त्रिभुवन कंत सत्व जो तत्व निरंजन।
गंजन विकट कलेस निपट संतन मन रंजन।

देव कोटि तेतीस वेद कौ मत सों गावत।
तऊ न पावत पार नेम सो प्रेम वढावत।
बृजमद्धि मधुपुरी मैं सु प्रभु पुत्र भयौ बसुदेव घर।
नंदहि अनंद दीनौ वहुर उदित कियौ जदुवंस वर ॥३३॥

दोहा

कंसादिक रिपु खंडि कै संतन दियौ अनंद।
गोपिन सँग विहरै अजौं बृज मैं गोकुलचंद ॥३४॥
भाव सिघ तिहि बंस मै प्रगट्यौ सिनिसिनिवार।
जाके पग परसत रहे अनगन भूमिभतार ॥३५॥

छप्पै

परगट जाकौ रूप निपट कंदर्प्प दर्प्पदर।
अरु पुनि जाकौ तेज जगमगै मनहु चंडकर।
सरद चंद सम सील, धर्म करि धर्म धुरंधर।
कुद्ध रुद्र परमान साहिबी सहस पुरंदर॥
इमि भाव सिघ भूपाल हुव अति उदार चित ज्यो करन।
अरु भीषम सौ जो विक्रमी सत्रु संवरन संघरन ॥३६॥

दोहा

ता भाऊ के प्रगट हुव बदन सिन वड़भाल।
बृजमंडल कौ राज सब दीनौ जाहि गुपाल ॥३७॥
राज करत सो अवनि पै इहि विधि अव सुख पाइ।
अमरपुरी पै अमरपति जैसै दुति सरसाइ ॥३८॥

कवित्त

जगमगै जाकौ चंडकर सौ प्रचंड तेज,
दुवन उदंड जाके लुक्कत रहत है।
नीति निरबाह सों निरंतर प्रतीति जाकें,
रंचक न बैन परपंचहि लहत है।
ऐसौ बृजमंडन बदन सिंह महाराज,
जाकौ जस उज्जल दिगंतनि कहत है।

देस परदेस के नरेस पग लग्गे आनि,
जपौ निसि बासर नख मान गहत है ।।३८।।
बिक्रम अपार भूप बदन ...[१] दार जब,
चलत सिकार ले स बिस.........कौ ।
गरजे नगारे परै दरजे पहा.. .....[१]
उढारे अंग सिमटै फनेस कौ ।
सौमनाथ कहै हय कुंजर कलर हैं,
............वढै तेज दवकै दिनेस कौ ।
.................हरप्यौ महेस वेस,
धरकै धनेस हियौ दरकै सुरेस कौ ।।२।।

दोहा

वदन सिह महाराज कै सुंदर पुत्र अनेक ।
जेठौ सूरज मल्ल है मंडित चारु विवेक ।।३।।

दोहा

सोदर सूरज मल्ल कौ श्री परताप प्रचंड ।
महि मंडल मै जगमगै जाकौ सुजस अखंड ।।४।।

सोरठा

बुधि के आठौ अंग अरु चौदह गुन राज के ।
तामै जानि सुढंग सुत सूरज युवराज किय ।।४।।

अथ बुद्धि के आठौ अंग बर्नन

काव्य छंद

सुश्रूषा अरु श्रवन ग्रहन अरु धारन जानौ ।
करनौ तर्क अखंड तर्क निरवारन मानौ ।
और अर्थ कौ ज्ञान सातऔ समझौ रूरौ ।
और तत्व बिज्ञान आठयौ कहियै पूरौ ।।५।।

अथ इनकौ अर्थ

सुश्रूषा सो जानि बडे की सेवा करिबौ ।
सुनियै चित लगाइ श्रवन सो श्रवनान धरिबौ ।

१...रेखाकित अंश फट गया है ।

समझै तीनी भाँति ग्रहन कहि ताहि वखानै।
मनमै राखै सुद्धताहि धारन पहिचानै ॥६॥
अर्थ जानिवौ ताहि............ ज्ञान वतावै।
सार लेइ पहिचान तत्व विज्ञान सुगावै।
वुधि के आठौ अंग नीति की रीति प्रमानै।
प्रथम पंडितन कहे लिखे ते ह्याँ हितु ठानै ॥७॥
अरु चौदह गुन कहत राज के ते चित लाग्रो।
है भूपति कौ उचित सुरुचि सों तिन्है सुनाग्रो।
देस समय कौ ज्ञान और दृढ़ता निरधारौ।
सहि सकिवौ सव कष्ट और विज्ञता विचारौ ॥८॥
चतुराई अरु तेज मंत्र तत्वहि ठहरावन।
उचित वोलिवौ वचन और विक्रम सरसावन।
अरु गुनिबौ सामर्थ और कौ कृत न विसरिवौ।
रक्षै सरनागतै ने सत्रु कौ तेजन दरवौ ॥९॥
अति चंचलता और चतुर्दस गुन ये कहियै।
है राजन कौ उचित भली बिधि उर मै गहियै।
इनके सूधे अर्थ लिखे ताते फिर नाँही।
ए सव निहचै कहे नीति के ग्रंथन माँही ॥१०॥

कवित्त

डहडहे भरि नैन लाल रँगवारे लखि,
कौन कै न आस उर उपजै उदारे हैं।
दाहक अरत्थ सदा सम रस सथ तेरे,
हत्थ पत्थ सत्थी के से विधि नै सवारे हैं।
सोमनाथ कहै सिह सूरज सुजान तैं ही,
भली भाँति छत्री के अखंड प्रन पारे हैं।
सुहृद उमंडे तिन्है आनद घमंडे करि,
चंडे खल खंडे औ अडंडे डंडि डारे हैं ॥१॥

१व २. रेखांकित अंश फट गए हैं।

प्रबल प्रताप दावानल सौ विराजै जोर,
अरिन के पारे रौर धमक निसानै की।
ठट्ठ मरह्ट्ठा के निखट्ट डारे बाननि सों,
पेसकस लेता है प्रचंड तिलंगानै की।
सोमनाथ कहै सिंह सूरज कुँवर जाकौ,
क्रुद्ध त्रिपुरार कौ सौ लाज बर बानै की।
चढ़िकै तुरंग जंग रंग करि सेलन सो,
तोरि डारी तीखी तरवार तुरकानै की ॥१२॥

राँडें बैंडें खलन की ऐंड मीड़ि डारी और,
प्रगटायौ जगत मै धरम अपार है।
मैघन समॉन तुरकान दल आयौ ताकौ,
गरब गरायौ गति साहस पहार है।
प्रन प्रतिपालक दयाल कहि सोमनाथ,
भूमिभावती कौ मन भायौ भरतार है।
सूरज सुजॉन सिह बिक्रम निधॉन मनौ,
फेरि भयौ ब्रज मै कन्हैया अवतार है ॥१३॥

उद्दित रहत जाकौ उद्धत अखंड तेज,
सदा महिमंडल कौ तम खंड कर है।
खलभल होत ही रहत खल गोतिन कै,
मित्र कमलनि कै घनौ घमंड कर है।
+ + +
+ + + (?)
सुंदर सुघर दख्यिनीन कौ धगर सिघ,
सूरज कुँवर है अनूठौ चंडकर है ॥१४॥

रसिक रिझैया सत्य वचन कहैया दल,
उद्धत रखैया पहरैया बासवेस के।
जंगनि के जेता अंग हरखनिकेता अरु,
नित्त प्रति लेता बित्त रिपुन के देस के।
सौमनाथ बरनै उदार कलपद्रुम सौ,
जाकौ उग्र ओज तेज दवटै दिनेस के।

संपति समाजै श्री सुजान छबि छाजै नृप,
मंडल मैं गाजै जो समान अमरेस के ।।१५।।

त्रिभंगी छंद

को रुद्रे डाटे अजे काटे खग्गै चाटे को नर है।
को जालम जहरै करता कहरै गटकिन भहरै प्रान चहै।
को परम समत्थै रन मै पत्थै लत्थक पत्थै हौन कहै।
सूरजमल बंके तुव अनसंके सेल धमंके कौन सहै ।।१६।।
नाहर कौ भेटै सागर लेटै ज्वाल चपेटै कौन लहै।
को सैल उखारै गगन उछारै फिर कर धारै लै निबहै।
को थिरवै इंदै जम कौं निदै क्रुद्ध फनिदै दंत गहै।
सूरजमल बंके तुव अनसंके सेल धमंके कौन सहै ।।१७।।

अथ सभा बर्ननं

कबित्त

सुख सरसानें लसै बिबिध पुरानें गूढ,
बात पहिचानैं ढिंग ठानें चतुराई कौ।
गहि कर बीनें नर नृतक प्रबीनें गावें,
अति हित भीनें राग रागिनि सुहाई कौ।
ढारैं चारु चौंर अवनी के सिरमौर करि,
नैननि की दौर हरै दारिद दुहाई कौ।
ऐसे सभा अंदर सुजान सिह सुंदर पै,
वारियै पुरंदर की संपति निकाई कौ ।। १८ ।।

अथ दान के हय बर्नन

बहु रंग दीखे सुर तुरग सरीखे कुल
खरे तन तीखे तरुनापन के जोरे हैं।
मनि गनि वारे साज बनें छबि भारे केस
कंचन के डोरे सुभ्र सौरभ झकोरे हैं।
सौमनाथ कहै मन गौंन के सहाइक से
भौंन के जलूस कौंन के न चित चोरे हैं।

हित के बटोरे इक डार के से तोरे दिन
दिन दान गोरे सिघ सूरज के घोरे हैं।

अथ दान के गज वर्नन

उत कटकारे रंग अंग मतवारे चलें
डगन डरारे सेष सीस बिकसत है।
पब्बय उखारै सुंड दंतन उछारै चंड
कुंभन के झारै ब्रह्मंडनु कसत है।
सौमनाथ जिनकी सुनें करतूति मजबूत
पुरहूत कौ न कौन पील अकसतु है।
दिन मै उदार सिघ सूरज कुँवार ऐसे
मौज आऐं कुंजर अपार बकसतु है॥ २०॥

त्रिभंगी छंद

बद्दल से कारे अंग करारे अरु मतवारे नीर भरें।
अरबीले गज्जै जनु सम रज्जै दिग्गज लज्जै संक धरैं।
बक से रद झमकैं दामिनि दमकैं बरखी चमकैं तिहि न डरैं।
सूरज मल प्यारे तुव गज रारे नीरद भारे कौ निदरैं॥ २१॥
बंदन सौं रंगे कुंभ उतंगे जे नग ढंगे छलवारे।
जुत कंचन फूलन झंपे झूलन अरु श्रुति कूलन मद धारे।
जंजीर झनंकैं घंट घनंकैं भौंर भनंकैं कौ टारै।
जे सूरज प्यारे जंग जितारे दुरद दतारै दै डारै॥ २२॥

नवाबोल्लास

नवाबोल्लास

ईद वर्णन

कंत अवनी कौ गुनवंत गाजी आजम खाँ,
ईद मान इंद्र कौ बिलास परसत है।
बाजत मृदंग बीन मधुर मधुर मंजु,
तान की तरंगन सों रंग दरसत है।
कुंदन लता सी खासी काम कंदला सी बाल,
नृत्यत अनंत अंग रूप सरसत है।
नजर बिलंद सौ गयंद बकसत रीझि,
करन सौ कंचन कौ मेह बरसत है॥ १॥

बकरीद वर्णन

पंडित परम गुन मंडित बिबुध जिमि,
उच्चरत बिमल कबित्त गुनबेस के।
नृत्यत अनेक नृत्य कारक अनंत गति,
गावत सुघर सम किन्नर सुभेस के॥
सोमनाथ कहत मुबारकी चहूँघा चारु,
चायन सो चतुर नरेस देस देस के।
आजम खाँ गाजी की बिलोक बकरीद आज,
फीके होत सुघर समाज अमरेस के॥ २॥

दशहरा वर्णन

(इस छंद के प्रथम तीन चरण ही मिले हैं, चौथे की पूर्ति सोमनाथ की न होकर छंदपूर्ति मात्र है।)

सोहै आज सरस सभा में दसहरा मान,
आजम खाँ आप पुरहूत सो प्रबीनौ है।
दान दे कबिदन गयंदन हयंदन के,
जाने सुख सुजस गुलाम कर लीनौ है।

सो छबि अखंड महि मंडल के जीतिबे को,
मानहु बिरंच अवतंस यह दीनौ है।
सोमनाथ बरनत दसहरा सुप्रसन्न ह्वै कें,
ठाट बाट देखि के अतीव मन चीनौ है॥ ३॥

दिवाली वर्णन

सरस दरस की दिवाली मान आजम खाँ,
राजत मनोज की निकाई निदरत हैं।
जगर मगर दिसा दीपन सो कर राखी,
तिनैं पेखि दुजन पतंग पजरत हैं।
छूटत छबीलौ हथ-फूलन कों बृंद तामें,
ताकी दुति देखि हिये आनँद भरत हैं।
सो छबि अनंद मानों पावक प्रताप तरु,
फूल्यो ताकैं चहुँघा तै फूल ये झरत हैं॥ ४॥

भरतपुर कवि कुसुमाञ्जलि प्रकरण १

सोमनाथ-काल स्वर्ण जयंती ग्रन्थ 'प्रथम तथा द्वितीय खंड' लेखक-डा० कुंजविहारी लाल गुप्त।

प्रकाशक—मदन लाल बजाज, प्रधान मंत्री हिंदी साहित्य समिति, भरतपुर संवत् २०१७ दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा प्रथम संस्करण।

संग्राम दर्पण

श्री गणेशाय नमः ॥

गुरु गणपति गौरी चरण कमल ध्याइके चित्त।
स्वर बिचारि भाषा रचतु जुद्ध कर्म के हित्त ॥१॥

संवतु

प्रभव १ विभव २ पुनि शुक्ल ३ सुनि ओरु प्रमोद ४ सुजानि।
प्रजाधीस ५ अंगिर ६ बहुरि ७ श्री मुख भव ८ युव ९ जानि ॥२॥
धाता १० ईश्वर ११ वर्ष बहु धान्य १२ प्रमाथी १३ ओर।
बिक्रम १४ वृष १५ चेत्रभानु १६ पुनि सुनि भानु १७ सिरमोर ॥३॥
तारन १८ पार्थिव १९ व्यय २० बहुरि सर्बजोत उर आनि २१
सर्वधारनहि २२ जानि पुनि वर्ष बिरोध २३ बखानि ॥४॥
बिकृत २४ खर २५ नंदन २६ विजय २७ जय २८ मन्मथ २९
पहिचानि।
दुर्मुख ३० हेमलंब ३१ अरु पीछे वर्ष विलंब ३२ सुजानि ॥५॥
विकार ३३ सर्वदि ३४ बहुरि प्लव ३५ शुभ कृत ३६ शोभन ३७ मानि।
क्रोधी ३८ बिस्वावसु ३९ बरष ओरु पराभव ४० जानि ॥६॥
प्लवंग ४१ कीलक ४२ सौम्थ ४३ पुनि साधारण ४४ रु विरोधु।
४५ परिधावी ४६ रु प्रमाद ४७ पुनि आनंदसु ४८ मनसोधु ॥७॥
राछेस ४९ नल ५० पिंगल ५१ बहुरि कालयुक्त ५२ उर आनि।
सिद्धारथ ५३ अरु रौद्र ५४ पुनि दुर्मति ५५ दुंदुभि ५६ जानि ॥८॥
रुधिरोद्गारी ५७ बहुरि सुनि, रक्ताक्षि ५८ उर पानि।
क्रोधनु ५९ क्षय ६० पुनि साठि ए संवत्सर पहिचानि ॥९॥
ब्रह्मा बिष्नु रु रुद्र के बीस बीस २० ए जानि।
बर्ष सुभासुभ फलनि कौ सबतै उत्तम मानि ॥१०॥

इति संवत्सर

इनको प्रयोजन द्वादश वार्षिकेश्वर के निमित्त।

अथ गोल ॥

मेषादिक षट् ॥६॥ शशि रवि उत्तर गोल सुजानि।
आदि तुला दे मीन लौ दछिन गोलहि मानि ॥११॥

अथ अयन कथनं ॥

मकरादिक पट ६ राशि लौ उतरायन रवि मानि।
कर्कादिक पट ६ राशि लौं दछिनायन पहिचानि ॥१२॥

अथ ऋति कथनं ॥

मकर कुंभ गुनि सिसिर ऋतु, मीन मेप सु वसंत।
ग्रीपम जानौ बृप मिथुन कर्क सिह जलवंत ॥१३॥
कन्या तुल गुनि सरद पुनि वृश्चिक धन हेमंत।
मकरादिक के भानु तै पटऋतु जानौ संत ॥१४॥

नंदादिक थित कथनं

नंदा भद्रा जया पुनि रिक्ता पूरण मानि।
परिवा तिथि कौ आदि दै गनती निसु दिन जानि ॥१५॥

अथ वार कथनं।

भानु १ निशाकर २ भौम ३ पुनि वुध ४ गुरु ५ शुक्रहि ६ मानि।
शनि ७ पुनि सातो वार हे अशुभ रु शुभ पहिचानि ॥१६॥
चंद्र जानि शुभ पूरनहि, वुव गुरु शुक्रहि मानि।
ओरु रहे ते अशुभ है तिन युत वुवहू जानि ॥१७॥

अथ तिथिवार सौ तिथि योग ॥ कथनं ॥

शुक्रवार तिथि नंदा होइ। वुध भद्रा तिथि जानौ लोइ।
मंगलवार होइ जौ जया। सनि रिक्ता गुरु पूरण भया ॥१८॥
सिद्धि योग ऐ जानौ सवै। सुफल कर्म सुभ इनमैं फवै ॥१९॥

अथ तिथिवार सौं मृत्यु योग कथनं ॥

नंदा भानु भौम के दिना। भद्रा चंद्र शुक्र मन गिना।
वुधवार तिथि जया जु होइ। गुरु रिक्ता सनिपूरण जोइ।
मृत्यु योग ए कहे वपानि। इनत रक्षा करौ सुमानि।
वपन पुरातम लोगनि कह्यौ। याही तै मै यामै लह्यौ।
इनमै भलौ करमु नहिं कीजै। यही वात मन मै धरि लीजै ॥२०॥

अथ नक्षत्र कथनं ॥

अश्वनि १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणि ४ मृगशिर ५ जानि।
ओरु आद्रा ६ पुनर्वसु ७ पुष्प ८ श्लेपा ९ मानि ॥२१॥

माघ १० पूर्वाफालगुणि ११ उतरा फालगुणि १२ हेरि।
हस्तरु १३ चित्रा १४ स्वाति १५ पुनि विस्साषा १६ हे केरि ॥२२॥

अनुराधा १७ अरु ज्येष्ठा १७ मूल १९ पूरबाषाढ़ २०।
उत्तर आषाढहि २१ गुनौ तातै अभिजित बाढ़ २२ ॥२३॥

श्रवण २३ धनिष्ठा २४ जानिये वहुरि सतभिषा २५ जानि।
पूरवा भाद्रपद २६ समझि उत्तर भाद्र बखानि ॥२४॥

रेवती २८ पुनि समझि कै जानौ चंद्र बिचार।
जैसै आगै कहतु हौ सब ज्योतिष कौ सार ॥२५॥

अश्वनी भरणी कृत्तिका पादं मेष। कृत्तिकाना त्रय पादा रोहिणी मृगशिरोर्द्ध वृष। मृगशिरोर्द्ध आर्द्रा पुनर्वसु। पादत्रयं मिथुन। पुनर्वसु पादमेकं पुष्य श्लेषातं कर्क। मघा पूर्वाफाल्गुणी उत्तराफाल्गुनी पाद सिंघ। उत्तरा फाल्गुनी त्रय. पादा हस्त चित्रार्द्ध कन्या। चित्रर्द्ध स्वाति विशाषा पादत्रयं तुला। विशाषा पादमेकं अनुराधा ज्येष्ठातं वृश्चिक। मूलं च पूर्वाषाढ उत्तराषाढ पादं धन। उत्तराषाढ पादत्रयं श्रवण धनिष्ठार्धं मकर। धनिष्ठार्द्ध शतभिषा पूर्वाभाद्रवद पादत्रयं कुंभ। पूर्वाभाद्रपद पादमेकं उत्तरा-भाद्र रेवत्यंतं मीन।

अश्वनी भरनी कृत्तिका एक घरन लौ मित्र।
जानि चंद्रमा मेष कौ योही. और पवित्र ॥ २६ ॥

द्वै नछत्र अरु चरन इक जानि चंद्रपरिमान।
भाषा करि परगट कह्यौ समझो सबै सुजान ॥ २७ ॥

अथ नछत्र वार सौं शुभ योग

हस्त मूल रवि उत्तरा पुष्य अश्वनी जानि।
चंद्रपुष्य राधा श्रवण रोहिनि मृगसिर मानि ॥ २८ ॥

भौम श्लेषा अश्वधी उत्तराभाद्ररु कृत्ति।
बुधकौ रोहिनि हस्त पुनि मृग अनुराधा कृत्ति ॥ २९ ॥

गुरु अश्वनि राधा पुनर्वसु रेवति पुषि ओर।
शुक्र रेवती पुनर्वसु अनुराधा श्रुति जोर ॥ ३० ॥

सहित अश्वनी कहत है जे जोतिष सिरमौर।
शनि कौ श्रुति पुनि रोहिनी स्वाति जानि सुभ ठोर॥ ३१ ॥
सरब अर्थ के सिद्धि कों सरवारथ सिद्धि योग।
कहे सत्य ए जानि अहु मनमै पंडित लोग॥ ३२ ॥

अथ नछत्रवार सौ अयोग

रविवारहि कौ भरनी होइ।
चित्रा चंद्रवार को जोइ॥
उत्तराषाढ भौम को जानहु।
बुध कौ फेरि धनिष्ठा मानहु॥
गुरुवारहि को उत्तरा फाल्गुनि।
शुक्रवार ज्येष्ठा तजी मुनि॥
शनि के दिना रेवती कही।
दग्ध योग घरी अशुभ सु कही॥
कारज नास करन कौ जोर।
यातै तजौ याहि सब ठोर॥३३॥

अथ विष्कुंभादि योग कथनं

विष्कुंभ १ प्रीति २ आयुष्मान ३ सौभाग्य ४ शोभन ५ अतिमंड ६ सुकर्मा ७ धृति ८ शूल ९ गंड १० वृद्धि ११ ध्रुव १२ व्याघात १३ हर्षन १४ वज्र १५ सिद्धि १६ व्यतापात १७ वरीयान १८ परिघ १९ शिव २० सिद्धि २१ साध्य २२ शुभ सुशक्ल २३ ब्रह्म २४ ऐंद्र २५ बैवृति २६।

अथ कर्नविचार

वव १ बालव २ कौलव ३ बहुरि तैलिक ४ करन सुजानि।
गरु अरु वनिज सुजानि पुदि भद्रा ए चर मानि॥ ३४ ॥
शकुनि चतुप्पद नाग पुनि किस्तुघ्नहि उर आनि।
चारि करन ए थिर महा निज मन मै पहिचानि॥ ३५ ॥
कृष्ण पक्ष चौदसि सकुनि उत्तर दल मै जानि।
तातै आगें चदुप्पद नाग पुनि किस्तुघ्न सु मानि॥ ३६ ॥

तातै लागें बव बहुरि तातें कौलव जानि।
भद्रा लौ गिनियै समझि पुनि बव तै उर आनि ॥ ३७ ॥

अथ मेषादि राशि के स्वामी

मेष बृश्चिक को मंगल स्वामी। तुला वृषभ कौ शुक्र सुनामी।
कन्या मिथुन वुद्ध की जानौ। कर्क चंद्रमा की पहिचानौ।
सिंघ भानु की कहत मुनीसु। धन अरु मीन बृहस्पति की सु।
मकर कुंभ सनि की पहिचानौ। राशिनि के स्वामी ए मानौ ॥३८॥

अथ चंद्रवासो कथनं

मेष सिह धन पूरव रहै। बृष कन्या मृग दच्छन गहै।
पच्छिम कुंभ तुला अरु मिथुन। कर्क मीन बृश्चिक उत्तर गुन॥३९॥

अथ घात चंद्र कथनं

पहिले १ पंचम ५ नवम ९ पुनि दूजौ २ छठऔं ६ जानि।
दसमें १० तीसरौ ३ सातऔ ७ चौथो ४ अष्टम ८ मानि ॥ ४० ॥
एकादस ११ औ बारहौ १२ चंद्रहि घात सु जानि।
मेषादिक क्रम तै समझि तजि रन कौ पहिचानि ॥ ४१ ॥

अथ जय पराजय ज्ञान चक्र चिखन क्रम विचार सहित कथ्यते ॥

तिरछी रेखा षट ६ करौ ऊरध बारह १२ रेख।
पचपन ५५ कोठे होइगे अतिहीं उत्तम वेख ॥४२॥
द्वै कोठे मै पाँच ५ धरि तीनि कोठ मै तीनि ३।
द्वै कोठे मै षट २ धरौ तीनि आठ ८ नव ९ बीनि ॥४३॥
तातै सोरह १६ स्वर लिखौ ऋ ॠ ऌ ॡ हीन।
अः छोड़ौ पुनि पाँचऔ ग्यारह धरौ प्रवीन ॥४४॥
तातै कादिक पाति धरि तीनि दूज सों हीन।
अंत्य बरन द्वै छोड़िकै हारि जीत गुन लीन ॥४५॥
द्वै जोधनि के नाम के अंक करौ निरधारि।
भाग लेउ द्वे २ को बहुरि घटि जौ ताकी हारि ॥४६॥
उनही अंकनि में बहुरि लेहु आठ ८ कौ भाग।
विदु चारि ४ षट ६ ५ पंच नग ७ तीनि ३ एक १ द्वि २ सभाग॥४७॥

बिंदी तैं चौथौ ४ सवल तातैं षट ६ उर धारि।
तातैं पंचम सत्त ७ पुनि तातैं तीनि ३ विचारि ॥४८॥
तीनि ३ अंक तैं इक १ सवल याही क्रम तैं जानि।
सुद्ध समय गुरु ध्यान करि नृप सौं भलैं बखानि ॥४९॥

जय पराजय ज्ञान चक्रं ॥

५	५	३	३	३	६	६	८	८	८	९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०

घात चंद्र चक्र लिख्यते

पुनि तीनि ३ द्वै २ चारि ४। अठ ८ षट ६ नो ९ विचारि॥५०॥
राखि तीनि ३ पुनि बिंदु धरि एक १ समुझि उर धारि।
ओरु कहे पहिले सु वे राखहु बरन बिचारि ॥५१॥
उहीं तरह करि अंक पुनि बारह १२ देहु घटाइ।
लेहु भाग फिरि आठ ८ कौ, बहुत सुजीति बताइ ॥५२॥

द्वितीय चक्रं ॥ जय पराजय ज्ञान कौ ॥

६	३	२	४	८	६	९	४	३	०	१
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ए	आ	आ	अ
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	व	भ
म	य	र	ल	व	श	प	स	ह	०	०

अन्यच्च ॥

नव ए रेखा ऊरध करौ तिरछी सात ७ सुधारि।
तिनमें राखौ अंक पुनि जे हौं कहतु बिचारि ॥५३॥

आठ ८ पंच पट चारि ४ पुनि सत ७ एक १ तिनि ३ दोइ २ ।
क्रम तैं आठो वर्ग लिखि समझन अति सुख होइ ॥५४॥

उँही भाँति अंकनि करौ लेहु सात ७ को भाग ।
अधिक अंक की जीति लखि नृप सौं कहौ सभाग ॥५५॥

तृतीय जय पराजय ग्यान चक्रं । प्रथम चक्र विचार कौ उदाहरण लिख्यते ।

४	८	५	६	७	१	३	२
ट	अ आ	क	च	त	प	य	श
ट	इ ई उ ऊ ऋ	ख	छ	थ	फ	र	ष
ड	ॠ ऌ ॡ ए ऐ	ग	ज	द	ब	ल	स
ढ	ओ औ	घ	झ	ध	भ	व	ह
ण	अं अः	ङ	ञ	न	म	०	०

राम रावण दोऊ जोद्धा । इनके अंक लाइवौ ॥ र के तीनि ३ आ के पाँच ५ म के पाँच ५ मकार मैं अकार स्वरता

मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी	रा	शि
१	५	९	२	६	१०	३	७	४	८	११	१२	घा	तचंद्र

अथ युद्ध जात्रा को मुहूर्त्त कथनं ॥

अभिजित मूल आर्द्रा शतभिष इन नछत्रहि जानहु ।
८ अष्टमी दशमी १० षष्ठी ६ ओरु द्वितीया २ तिथि बुधवार बषाँनहु ।
इनमै चढ़े युद्ध कों राजा तुरत मिलापहि पावे ।
नाम कुलाकुल जानि इहीं को सुख लहि मतौ बतावे ।
आगें कहतु बिकार कुल गणहि सो मन नीको लावे ।
या मैं स्थाई जीति लहे चढ़ि जाइ सु हारिहि पावे ॥५६॥

दोहा—तीनि पूरवा मघा पुनि चित्रा बिसाषा जानि ।
अश्वनि मृगशिर कृत्तिका पुष्य ज्येष्ठा मानि ॥५७॥

श्रवण चतुर्थी अष्टमी द्वादशि भौम भार्गववार ।
यह कुल संज्ञा जानिये जाकौं कह्यौ विचार ॥५८॥

अकुल विचार सुनों अब आगें जाको अकुल सुनाम ।।
यामें चढै भूप लरिबे कों जीति करै विश्राम ।।५६।।

त्रयोदशी १३ पंचदशी १५ अमावस्या । वार रवि । सोमवार । शनिश्चर । बृहस्पतिवार ।

इति कुलगण वर्ण स्वर चक्रं ।

अन्यच्च ।।

पहिले से कोठे करौ तिनमैं अंकनि बारि ।। छ ६ ।।
तीनि उत्तरा रोहिणी स्वातिरु अश्लेपा पुनि जानौ ।
भरनी हस्त पुनर्वसु राधा रेवति अरु पहिचानौ ।।६०।।
धनिष्ठा तिथि विपम जानियें परिवा तें प्रभु प्यारे ।
सहित अमावस ओर वार रवि चंद्र मंद गुरु धारे ।।६१।।
जानों चाहि अकुल संज्ञा जाको फल प्रथम कह्यो है ।
या विचार के काजें आगें सुर मुनि कष्ट सह्यो है ।।६२।।

इति कुलाकुल अकुल विचारः ।।

अथ वर्णस्वर ज्ञानार्थ पंच स्वर चक्र कथनं ।।

अथ कुलाकुल गण चक्रं ।।

अभिजित्	मूल	आर्द्रा	शतभिखा	नछत्र
दशमी	षष्टी	द्वितीया	बुधवार	तिथिवार

षट ६ रेषा ऊरध करे तिरछी आठ बनाइ ।
कोठे पैंतिस होइगे तोसों कहतु सुभाइ ।।६३।।

अथ कुलगण चक्रं

पूर्वाफाल्गुनी		पूर्वाषाढ	
पूर्वाभाद्रपद		मघा	चित्रा
विसाषा	अश्वनी		मृगशिरा
कृत्तिका	पुष्य	ज्येष्टा	श्रवन

अ ई उ ए ओ स्वर धरो पहिली तिरछी पाँति ।
कादिक तातें लिखो पुनि, अच्छर उत्तम भाँति ।।६४।।

तिथि	चतुर्थी	अष्टमी	द्वादशी
वार मंगल शुक्रवार			

ङ ञ ण बिना लछ पुनि त्योंही आपर छोडो मित्त ।
चक्ररीति परगट में भाखी जानौ अपनै चित्त ।।६५।।

अकुलगण चक्रं ॥

उत्तरा फाल्गुनी ॥ उत्तराषाढ ॥ उत्तराभाद्रपद ॥ रोहिनी ॥ स्वाति श्लेषा भरनी ॥ हस्त ॥ पुनर्वसु ॥ अनुराधा ॥ रेवती ॥ धनिष्ठा ॥ तिथि परिवा १ तीज ३ पंचमी ५ सप्तमी ७ नोमी ९ एकादशी ११ कौ अंक पाँच ५ सब को योग अठारह १८ राम को अंक १८ अठारह मै द्वै कौ २ भाग शेष बिंदु रह्यौ ॥ अथ रावण कौ अंक लाइबो ॥ र के तीनि ३ आ के पाँच ५ व के तीनि ३ वकार मै अकार ताके पाँच ण के पाँच णकार मैं अकार ताके पाँच ५ सब योग छब्बीस २६ छब्बीस २६ मै द्वै कौ २ भाग सौं विंदु ० रह्यौ ॥

प्रथम विचार में समान रहे ॥ और चक्र मै रामजू की जीति है विस्तार के लियै नाही कहतु । एसै ई औरौ चक्र विचारियें ॥

अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
न १ ६ ११	भ २ ७ १२	ज ३ ८ १३	रि ४ ९ १४	पू ५ १० १५
घरी ५ २७ १६	घरी ५ २७ १६	घरी ५ २७ १६	घरी ५ २७ १६	घरी ५ २७ १६
अतर सुक्ति घ चादि				

नंदादिक तिथि तिनके नीचै क्रम तै लिषो बिचारि । भाग लेहु ग्यारह ११ तिथि मै अंतर भोग सुधारि॥६६॥ तिथि को अंतर भोमघटी ५ पल २७ विपल १६ तिथि संख्या ते ६ साठि लखि घटी कहत सुनि चित्त ।

पंचस्वर के नाम पुनि सुनि राखो निज चित्त ॥ ६७ ॥

बालकु वार जुवा अरु वृद्ध सुमृत्यु नाम ए जानि । जाके नीचे वर्ण नाम सो वर्ण-स्वर पहिचानि ॥ ६८ ॥

जा स्वर नीचें वर्ण नाम सो वर्णस्वर जानि । आगे पुनि कुमार अज्वान सुवृद्ध मृत्यु पहिचानि ॥ ६९ ॥

वालकुमार जुद्ध कों थोथे जुवा बली अति जानों ।
वृद्ध मृत्यु द्वै छौडि जुद्ध कों करौ सु बहु सुख मानों ॥ ७० ॥

होइ सत्रु को मृत्यु स्वर अपनौं जुदा जु होइ ।
तामें करे जुद्ध कों भूपति जय पावे दुख खोइ ॥ ७१ ॥

भानु उदे तें होतु है वर्णस्वर को भाग ।
पाँच घरी ५ पल सवा सताइस २७ । १६ जानो महा सभाग ॥७२॥

इति वर्णस्वर विचार

अथ गुरुस्वर कथनं

भौम भानु का रासिनिहूँ को स्वामी जानि अकार।
वुद्ध चंद्र की रासिनिहूँ को त्यौंही लहि इकार ॥ ७३ ॥
गुरु रासिनि कों स्वामी जानों उत्तम स्वर सु उकार।
वालक भृगु रासिनि कों त्योंही जानहु स्वर ए कार ॥ ७४ ॥
सनि रासिनि को स्वामी है अति नामी स्वर ओकार।
चंद्रसहित मसि सों कीजे सबही को सुविचार ॥ ७५ ॥
बाल कुमारादिक की गिनती नाम रासि तें जानो।
जाको होइ चंद्र पत्रा में तातें स्वर पहिचानों ॥ ७६ ॥

इति ग्रह स्वर चक्रं।

अथ राशिश्चर विचार कथनम्।

अ	इ	उ	ए	ओ
५ १ ८ राशि	३ ६ ४ रा	९ १२ रा शि	२ ७ रा शि	१० ११ रा शि·

राशिस्वरचक्र

अ	इ	उ	ए	ओ
२४ मेषा	२१ दि	२१ नवा	२१ शा	२१ ः

मेप राशि तें जानि ले नवम अंस चोवीस २४
तातें क्रमते समझि पुनि अंस इकीस २१
इकीस ॥ ७७ ॥
स्वामी जानि अकारादिक तिनहूँ के मेरे प्यारे।
बाल कुमार जुवा बुद्ध सुमृति स्वर विचारिके
धारे ॥ ७८ ॥
अपनें जन्म नवाश तें गिनि लीजे सुनि वड-
भाग। याही सों सब कहत हें राशिस्वर
जुत भाग ॥ ७९ ॥

इति रासिस्वर ॥

अथ नछत्र स्वर कथनं।

सात ७ नछत्र रेवती तें पुनि पाँच पाँच ५ पहिचानों।
नाथ अकारादिक स्वर इनके क्रम तें निज मन जानों ॥ ८० ॥
जन्म नाम नछत्र तें वालादिक मन आनों।
जुद्ध काज कों अति उत्तम है यातें तुम पहिचानों ॥ ८१ ॥

इति नछत्र स्वर।

अथ द्वादश वार्षिक स्वर विचार कथनम्।

प्रभवादिक वारह संवत् को पति जानि प्रकारहिं कों चितके।
पुनि तातें जु बारह हे इनको पति जानो इकार महाहित के।

फिरि ताहू तें आगें जु बारह हे तिनको सु उकार लहो नित कें।
पुनि बारह को सु एकार ओकार हे ताते जो बारह हें १२ थित को।
जन्म होइ जा वर्ष मै तातें लेइ बिचारि।
गिनती वालादिकनि की नीके लेहु निहारि॥ ८२॥

अथ अंतर भुक्ति कथनं।

अ० नछत्र स्वर चक्रं

अ	इ	उ	ए	ओ
रे	पु	उ	अ	श्र
अ	पु	ह	ज्ये	ध
भ	श्ले	चि	मू	श
कृ	म	स्वा	पू	पू
रो	पू	वि	उ	उ
मृ				
आ				

द्वादश वार्षिक स्वर चक्रम्

अकार	इकार	उकार	एकार	ओकार
प्रभव	प्रमाथी	स्वर	सोभन	राक्षस
विभव	विक्रम	नंदन	क्रोधी	नल
शुक्ल	वृष चि	विजय	विश्वावसु	पिगल
प्रमोद	त्रभानु	जयाम	पराभव	कालयुक्त
पजाप	सुभानु	न्मथ	प्लवग	सिद्धार्थ
अगिरा	तारगा	दुर्मुष	कीलक	रौद्र
श्रीमुष	पार्थिव	हेमलंव	सौम्य	दुर्मति
भवयुव	व्यय	विलव	साधारन	दुंदुभि
धाता	सर्वजि	विकार	विरोधकृत	रुधि-
ईश्वर	सर्वधारन	सर्वरि	परिधान	रोद्गारि
वहुधान्य	विरोध	प्लव	प्रमादि	रक्ताक्षि
	विकृत	शुभकृत	आनद	क्रोधन
				क्षयह·

भागवर्ष बारह में लीजे ग्यारह ११ को सुखपाइ।
लाभ होइ सो जानियें अंतर भुक्ति बनाइ॥ ८३॥

बारह बर्ष मे १२ ग्यारह के ११ भाग सों बर्षादिक पाए हें सो लिखे हें। वर्ष १ मनो एक १ दिन द्वै २ घटी ४३ पल ३८ विपल ११ गिनती जानि अकार के क्रम अकार के क्रम तें मेरे मित्र।

बालादिक कों समझि के भाखहु समर बिचार॥ ८४॥

इति बारह वार्षिक स्वर॥

अथ वार्षिक स्वर कथनं।

वर्ष प्रभव को जानि तू स्वामी स्वर सु अकार।
विभवादिक के समझिए इ उ ए ओकार॥ ८५॥
जन्म वर्ष तें जानियें सबस्वर को सुबिचार।
बार बार के कहे तें बाढ़े ग्रंथ अपार॥ ८६॥

अंतरभुक्ति कथनम् ।

लेइ मास बारह १२ मे भाग सु ग्यारह ११ को सुख पाइ ।
लाभ होइ सो जानियें अंतरभुक्ति बनाइ ॥ ८७ ॥

अंतर भुक्ति वष स्वर में मास एक १ दिन १ घट ४३ पल ३८ विपल ६१ ।

गिनती जानि अकार तें त्यौंही हिये विचारि ।
बालदिक त्यौंही समझि राखो बुधि विस्तारि ॥ ८८ ॥

इति वर्ष स्वर ॥

अथ ऋतु स्वर कथनं ।

ऋतु षट ६ मेंले भाग पाँच ५ को जो पावे सो आनि ।
उदेय अकारादिक को नीकें सो पीछे पहिचानि ॥ ८९ ॥
ऋतु षट ६ के सुमास बारह हें १२ ता लेपे दिन लाउ ।
द्वै ऊपर सत्तरि दिन ७२ जानो इक इक स्वर को ठाँउ ॥ ९० ॥

अंतर भोग कथनम् ।

द्वै ऊपर सत्तरि ७२ में तू ग्यारह ११ को ले भाग ।
अ इ ऊ ए ओ स्वरनि को जानो भोग सभाग ॥ ९१ ॥

ऋतु बसंतादि तें अंतर भोग दिन षट ६ घटी ३१ पल तेतालीस ४३ विपट अठतीस ३८ ।

इति ऋतुस्वर ॥

अथ अयन स्वर विचार कथनम् ।

दछिनायन में भलें तू जानि उदय अकार को ।
उत्तरायन में समझि त्यो सत्य उदय इकार को ॥ ९२ ॥

अंतर भोग कथनम् ।

एकादश ११ को भाग अयन में जानो भोग पवित्र ॥ ९३ ॥
ओरु अवस्था बालादिक की सो पीछे हम भाषी ।
तातें कोन कहे अब पुनि पुनि याकों पोथी साखी ॥ ९४ ॥

अंतर भोग दि० १६ घटी २१ पल उनंचास ४९ विपल पाँच ५ लेइ जु पावो मित्र ।

अपने अपने उदय क्रम तें ४ त्रुटि सो जानिएँ जीवस्वर बड़ भाग ।

अथ उदाहरण

राम को जीवस्वर को लाइबो ॥ 'राम इति' ॥ र ॥ के २ रकार में आकार ताके २ म के पाँच ५ मकार में अकार ताको एकु १ सब को योग दश १० यामे पाँच ५ को भाग लेइ शेष रहे सो जीवस्वर यामें शेष पांच रहे राम को जीवस्वर ओकार।

अथ प्रयोजन कथन।

शुभ कारज कों महा महा शुभ यह जीवस्वर जानि।
गौरी शंकर को कथन सब साँचो पहिचानि॥

इति जीवस्वर ॥

अथ पिडस्वर कथनं।

मात्रा वर्ण स्वरहि जोरि के लेउ पाँच ५ को भाग।
शेष रहे सो जानिये पिंडस्वर बडभाग॥ ६५ ॥

उदाहरनं 'राम को पिंड स्वर को लाइवो। राम को वर्ण स्वर रकार ताको अंक ४ चारि पायो ॥ मात्रास्वर अकार ताको अंक एक १ पायो। ताको योग पाँच ५ या में पाँच ५ को भाग सें शेष सून्य रह्यो ॥ शून्य को पाँच जानियें राम को पिड स्वर ओकार भयो।

अथ प्रयोजन।

सेना के सब काज कों अति उत्तम यह जानि।
स्वामी ही के नाम पे नर विचार उर आनि॥

इति पिडस्वर ॥

अथ योगश्वर कथनं ।

राशि पिड ग्रह जीव स्वर मात्रा वर्ण नछित्र।
जोरि भाग ले पाँच को ५ बचे सुयोग पवित्र॥

उदाहरण

रामको योगस्वर लाइवो
राम को राशिस्वर उकार ताको अं॥

इति अयन स्वर।

अथ पक्ष स्वर कथनं।

जानि अकार उदय कों नीकें।
कृष्ण पक्ष में अतिहीं जीकें॥
शुक्ल पक्ष में जानि इकार।
यह मानो जोतिप को सार॥

अथ अंतर भोग कथनं।

पंद्रह १५ दिना पच्छ के जानो। भाग सु एकादश को ११ आनों।
उदय स्वर तें लेउ बिचारि। तब राखो अपने उर धारि॥ ६६॥
अंतर भोगदिन १ एक घटी २१ पल ४९।

अथ मास स्वर कथनं।

पालक अकार वैशाख भादो मारग को श्रावन अषाढ अरु क्वार को इकार हे।
चेत अरु पौष को ९ उकार पति जानिजहु जेठ अरु कातिक को स्वामी सु एकार हे॥
ग्रंथ के प्रमान सब जानत सुजान लोग माघ फालगुन फेर इनको ओकार हे।
जन्म महीना तें सुबालादिक जानि लेहु याहि न बिचारे तो समर अंधकार हे॥

इति मासस्वर॥

अथ यात्रा स्वर कथनं।

प्रथम नाम के वर्ण में जो स्वर होइ प्रकास।
ताहि मात्रा स्वर कहे पंडित सब सविलास॥ ६७॥

उदाहरण 'राम को मात्रा स्वर अकार'

अथ मात्रास्वर को प्रयोजन।

मंत्रादिक के सिद्धि कों मात्रा स्वर सु प्रधान।
तातें मात्रा स्वर कह्यो जानों सकल सुजान॥

इति मात्रा स्वर।

अथ जीव स्वर प्रकार कथनं।

सोरह १६ लों गनि स्वरनि कों क्रम तें मेरे मित्र।

पाँच पाँच ५ आदिक धरो यश को चारि ४ पवित्र ॥ ९९ ॥

अक्षर स्वर को योग करि लेउ पाँच ५ को भाग शेष रहे। तीनि ३ राम को पिंड स्वर ओकार ताको अंक पाँच ५ राम को ग्रह स्वर एकार ताको अंक चारि ४ राम को जीवस्वर ओकार ताको अंक पाँच ५ राम को मात्रा स्वर अकार ताको अंक एक १ राम को वर्ण स्वर एकार ताको अंक चारि ४ राम को नक्षत्र स्वर उकार ताको अंक तीनि ३ सब को योग पचीस २५ या में पाँच को भाग लेइ शेष शून्य रह्यो सो पाँच जानिये राम को योग स्वर ओकार।

प्रयोजन कथनं

योग स्वर यह योग को अति उत्तम उर आनि।

वर्णस्वर सब काज यों मुख्य जुद्ध कों जानि॥

इति योगस्वर

अथ जय पराजय ज्ञानार्थ पुनः पंचस्वर चक्र लिख्यते।

षट् ६ रेखा ऊरध करे तिरछी नव ९ पुनि लेषि।

जय पराजय चक्र। घर चालीस ४० सुहोइगे यह उर में अवरेषि ॥ ६ ॥

३	१	४	२	१
अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह

प्रथम पाँच कोठेनि में लिखो सुअंक बिचारि।

तीनि ३ एक १ पुनि चारि ४ फिरि द्वै २ पुनि एक १ सवारि ॥ ७ ॥

अ इ उ ए ओ पाँच सर ता नीचे की पाँति।

लिखो वहुरि कादिक सवे ङ ञ ण लक्ष विनाँति ॥ ८ ॥

इति चक्र कर्त्तव्यता।

अथ चक्र विचार लिख्यते

पहिले चक्र विचार में जितने आवे अंक।
यायी स्थायी नाम के द्वै थल लिखो निसंक ॥ ९ ॥
जाको होइ अकार स्वर तिनमें जोरो तीनि ३।
इ स्वर वारे अंक में जोरो एक १ प्रवीन ॥ १० ॥
उ स्वर के सब अंक में जोरो चारि सवारि।
ए स्वर वारे अंक में द्वै २ जोरो सुविचारि ॥ ११ ॥
ओ स्वर वारे अंक में एक १ जोरि बड भाग।
याही क्रम अछरिनि में जोरो युत अनुराग ॥ १२ ॥
अ स्वर के नीचे के अछर उनमें होइ जु नाम।
तामें जोरो तीनि ३ तुम तासों सुधरे काम ॥ १३ ॥
तिनमे लेहु भाग नीके तुम पाँचनि ५ को हो मित्र।
अधिक होइ सो जीते सम सों तुल्य सुजुद्ध चरित्र ॥ १४ ॥

अथवा मिलाप होइ

अथ उदाहरण

जीवस्वरचक्रं							
अ १	क १	च १	ट १	त १	प १	य १	श १
आ २	ख २	छ २	ठ २	थ २	फ २	र २	ष २
इ ३	ग ३	ज ३	ड ३	द ३	ब ३	ल ३	स ३
ई ४	घ ४	झ ४	ढ ४	ध ४	भ ४	व ४	ह ४
उ ५ ऊ ६	ङ ५	ञ ५	ण ५	न ५	म ५	०	०
ऋ ७	ॠ ८ लृ ९	लॄ १०	ए ११ ऐ १२	ओ १३	औ १४	अं १५	अः १६

गद्य—राम को अंक प्रथम चक्र में अठारह १८ आयो। राम को एकार स्वर ताको अंक द्वै २ पायो र को औरु रकार में आकार ताको अंक तीनि ३ पायो। औरु म को अंक १ पायो। मकार में अकार स्वर ताको अंक तीनि ३ पायो। इनको जोगु सताईस २७। या में पाँच ५ को भाग लेइ सेष रहे सो राखिये। शेष द्वै रहे २।

अथ रावण

प्रथम चक्र में रावण को अंक छबीस २६ आयो। और रावण को

एकार ताको अंक द्वे २ पायो । ओरु रा में आकार ताको अंक तीनि ३ पायो । ओरु व अंक तीनि ३ ओरु वकार में अकार स्वर ताको तीनि ३ पायो । ओरु नकार को अंक एक १ पायो । ओरु नकार में अकार ताको अंक तीनि ३ पायो । सब को योग सों शेष एक १ रह्यो या चक्र में राम की जय जानी ।

इति स्वर जय पराजय चक्रं ॥

अथ स्वर भूबल कथनं

पूरब दछिन पछिम अरु उत्तर मध्य सुलेषि ।
अ इ उ ए ओ स्वरनि कों पीछें बल अवरेषि ॥ १५ ॥
वर्ण स्वर अपनो तरुन जाही दिशि में होइ ।
ताही दिशि तें जुद्ध कों चले जीति तब जोइ ॥ १६ ॥
बालकुमार स्वरनि की दिशि तें क्षत जुत पावे जीति ।
वृद्ध मृत्यु स्वर दिशि तजे मन में करि परतीति ॥ १७ ॥
अपनो होइ जु वा स्वर जा दिशि शत्रु मृत्यु स्वर होइ ।
एसें जुद्ध करे जो भूपति जय पावे नर सोइ ॥ १८ ॥
अपनो वरु शत्रु कों निर्बल जब जानें भूपाल ।
जुद्ध करे अपने घर आवे जीति बेठि सुखपाल ॥ १९ ॥

इति स्वर भूबलं ॥

या को उदाहरण

जेसें राम को एकार वर्ण स्वर हे ओरु अकार जुवा स्वर हे तो पूरब दिशा तें जुद्ध करे ।

इति उदाहरण ॥

अथ दिग्बलार्थ राशिचक्रं कथनं

पू स्वर
अ भूबल
म
ओ
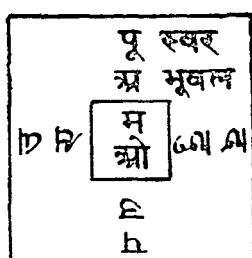
राशि शुक्र की ईशि दिशि कुज की पूरब लेषि ।
अग्नि कोण धरि १०।११ दछिन रवि की ५ पेषि ॥ २० ॥
चंद्रराशि ४ पछिम लिखो गुरु की ९।१२ उत्तर रक्ष ।

की १।८
शनि की ।

ई २ ७	पू १ ८	अ १० ११
उ ९	राशि चक्रं	५ द
वा ६ ७	४ प	१२ नै

वायु कोण में बुध की राखि ३।६ जोतिसी दक्ष ॥ २१ ॥

वृष अरु तुला राशि वारे कों ईश ईस-दिशि जानि ।

त्यों ही वृश्चिक मेष राशि कों ईश सु पूरब मानि ॥ २२ ॥

यों ही ओरो समझियो गुरुमुख पढि के मित्र ।
नाथ इष्ट को ध्यान करि मंडे समर चरित्र ॥ २३ ॥
ईश दिशा को स्वामी करि के सनमुख कों करि राषि ।
जुद्ध करो हारो नही याको शंकर सापि ॥ २४ ॥

अथ प्रहार निवारनार्थ सूर्य हत दिशा कथनं

प्रथम जाम के द्वितीय अर्द्ध ते पच्छिम जाम हनतु हे ।
तातें एक जाम उत्तर कों नासतु भानु तनतु हे ॥ २५ ॥
तातें एक जाम पूरब मे ऊधम अधिक करतु हे ।
आधो जाम प्रात को दछिन आवो साँझ रहतु हे ॥ २६ ॥
यह सूरज की चालि कही हम सो अपने उर धारो ।
सनमुष बाम त्यागि के या को रन कों जाइ विदारो ॥ २७ ॥
नित्यभानु को उदय तें एसें लेइ विचारि ।
जुद्धादिक हारे नही यह निश्चे उर धारि ॥ २८ ॥

अथ चंद्र हत दिशा चक्रं

	पू तृ प्र द्वि १	अ
		प्र १ प्र द चं द्वि २
		नै

सूर उदे तें प्रहर लों हनतु ईस दिसि चंद ।
वृषभ कुंभ को होतु जब जानो करि आनंद ॥२९॥

अग्नि कोण दूजे पहर तीजें नैऋति लेषि।
चौथे वायवि कों न हते यों क्रम तें अवरेखि ॥३०॥
मकर कुंभ कों चंद्र त्यों हनतु अग्नि दिशि जानि।
सूर उदे तें जाम इक यों उर में पहिचानि ॥३१॥
जाम दूसरें नैऋती नाशतु क्रोधु बढाइ।
बायबि को तीजे पहर चौथें ईश गनाइ ॥३२॥
धनु को शशि पहिले पहर दहतु नैऋती लागि।
बायु दूसरे तीसरे ईश चतुरथे आगि ॥३३॥
ब्वुध राशिनि को चंद्रमा हनतु वायबी कोंन।
प्रथम जाम पुनि दूसरें ईश दिशा गहि गोंन ॥३४॥
अग्नि कोंण तीजे पहर चौथे नैऋति मानि।
हनतु छोडि यह जुद्ध कों सनमुख दछ पिछानि ॥३५॥
जेसें ए दिन में कहे त्यों ही निशि में जानि।
जुद्ध नीति के काज कों यह वरन्यों सुख मानि ॥३६॥

इति चंद्र हत विदिशा चक्रं ॥

अथ प्रहार निवारनार्थ गूढ जोग कथनं ॥

ई २ ११	पूर्व	अ १०/५
उत्तर	चक्रं	दछिन
३ वा ६	पछिम	९ नै

सूर उदे आधे पहर रहतु अग्नि दिशि गूढ।
तातें फिरि छठई ६ दिशा यों लषि वुधि आरूढ ॥ ३७ ॥
पुनि तातें छठई ६ समझि फिरि छठई ६ फिरि जानि।
भ्रमतु रहतु दिन रेनि यो निज उर में पहिचानि ॥३८॥

याको उदाहरन।

अग्नि कोण तें गमतु करि उत्तर में ठहराइ॥
तातें चलि नैऋति बसे तातें पूरव जाइ ॥३९॥
छठी छठी यो जानिये भ्रम मति आनो चित्त।
सनमुख आछी गमन को रन को छोडो मित्त ॥४०॥

इति गूढ योग ॥

अथ सूर्य दछिन बाम फल कथनं ॥

ई ७	पू ४	प्रथम अर्द्धजा १ म
उ २	गूढयोग चक्रं	६ द
५ वा	८ प	३ नै

देइ दिवाकर दाहिने के पीछे हे मित्र।
दछिन स्वरहू साधि चढि जीते समर चरित्र ॥४१॥
सनमुख बाएँ दे चढे रवि कों जो नर-पाल।
वाम स्वर की चालि में हारे ह्वै वेहाल ॥४२॥

यों ही स्थायी साधि बल जुद्ध करे जो जाइ।
मारि शत्रु कों द्रव्य ले आवें वंब वजाइ ॥४३॥

इति सूर्य दछिन वाम विचार ॥

अथ चंद्र वाम दछिन फल कथनं ॥

सनमुख बाएँ चद्र करि वाम स्वास कों साधि।
निशि में यायी जुद्ध कों चढे इष्ट आराधि ॥४४॥
मारि शत्रु कों बस करे लछमी लेइ छिड़ाइ।
शंकर गोरी सें कहत यों हित सों समझाइ ॥४५॥
स्थाइ छीन सुधाकरहि बाएँ राखे जानि।
दक्ष स्वर मे शत्रु कों नासे यह मन मानि ॥४६॥

अन्यच्च ॥

निशि में सनमुख बाम जो होइ आप तें चंद।
स्थायी जुद्धहि करे तो पावे अति आनंद ॥४७॥
दछिन पछिम राखि जो यायी मंडे जुद्ध।
शत्रु जीति घर आवई जसु पावे अति शुद्ध ॥४८॥
कह्यो जु यह वल चंद को मति राशिनि तें जानि।
सनमुख दृग तें दाहिने बाएँ पीछें मानि ॥ ४९ ॥

इति चंद्र भूबलं ।

अथ वायु बल साधनं

दछिन पीछें वायु करि जो रन मंडे जाइ ।
शत्रु जीति घर आवई मन में हरष बढ़ाइ ॥ ५० ॥
सनमुख बाएँ देइ जो पवन भूलिहू कोइ ।
तुरत पराजय पावई आवे सरबस खोइ ॥ ५१ ॥

इति वायु भूबलं ।

अथ अर्द्ध पहर राहु चक्रं कथनं

भानु उदे तें पूरब रु वायु दछ दिशि ईस ।
पछिम अग्नि सु उत्तरो रक्ष बहुरि गुनि गीस ॥ ५२ ॥
आधे आधे पहर नित रहतु राहु दिन मानि ।

अथ उदाहरनं

दिशि में पच्छिम ते सदा छठी छठी दिशि जानि ॥ ५३ ॥
अर्द्ध पहर पहिले रहे निशि में पच्छिम नित्त ।
तातें आवतु अग्नि दिशि अर्द्ध पहर यह मित्त ॥ ५४ ॥
छठें छठ यो जानिये मन के भ्रम कों टारि ।
जुद्धादिक के करन कों पृछ दछ शुभ धारि ॥ ५५ ॥

इति अर्द्ध जाम राहु विचार ।

अथ द्विघटिका राहु चक्र कथनं

द्वे घटिका परिमान सो भानु उदे ते जानि ।
रहतु राहु चोंथी दिशा ईश दिशा ते मानि ॥ ५६ ॥

उदाहरनं

भानु उदे तें द्वे घरी रहे ईश दिशि राहु ॥
तातें दछिन द्वे घरी तातें वायु गनाहु ॥ ५७ ॥
चोथी चोथी दिशा यों भ्रमतु रहतु दिन रेनि ।
दछिन पीछे कह्यो हे जुद्धादिक कों ऐन ॥ ५८ ॥

इति द्विघटिका राहु बलं ।

अथ तिथि योगिनी चक्र कथनं

परिवा नोमी कों रहे १।९ योगिनि पूरब मित्त ।
उत्तर दशमी द्वेज कों १० । २ बिहरे सुख लहि चित्त ॥५९ ॥

ई ८	पू. ५	आ २
उ	रात्री अर्ध जामरात्र प्र अर्ध जाम	७ द
वा ६	१ प	४ नै

ई ढ्वैघटी भानु उदेते निशि दिन	पू. ८	आ १४
उ १२	द्विघटि का राहु चक्रं	४ द
वा ६	१६ प	१० नै

तिथि तृतिया एकादशी ३।११ योगिनि अग्नि बसाइ।
चोथि द्वादशी कों ४।१२ हरषि नैऋति में ठहराइ ॥ ६० ॥
दछिन में शंकर प्रिया तेरसि पाँच ५।१३ होइ।
छठि अरु चोदसि कों ६।१४ रहे पछिम जानो लोइ ॥ ६१ ॥
पून्यों साते कों शिवा रहे लुभाइ।
बसे अमावस अष्टमी ३०।८ ईश दिशा सुख पाइ ॥ ६२ ॥
जुद्ध जुवा अरु जात्रा पीछे दहिनी देइ।
जीति शत्रु कों द्रव्य ले आवे जग जसु लेइ ॥ ६३ ॥
सनमुख पाँई देति हे हारि जोगिनी मित्र।
तातें याकों समझि के लेहु विचारि विचित्र ॥ ६४ ॥

अथ योगिनी के नाम

ब्राह्मी। कौमारी। वाराही। वैष्णवी। ऐंद्री। चंद्रिका। महेश्वरी। महालक्ष्मी।

इति योगिनी बल चक्रं

अथ अर्ध प्रहर योगिनी चक्र कथनं

ई तिथि ३०।८	पू. १।९ तिथि	आ ३।११ तिथि
उ तिथि १०।२	तिथि योगिनी चक्र	तिथि १३।५ द
तिथि १५।२७ वा	तिथि ६।१४ प	तिथि ४ १२ नै

तिथि के क्रम तें जानियें योगिनि आधे जाम।
देउ दाहिनी पृष्ठि के जीतो दृढ संग्राम ॥ ६५ ॥
जा छिन ते तिथि लगति हे तब तें लेइ बिचारि।
तब पीछे रन कों चढै भूपति सगुन निहारि ॥ ६६ ॥

अथ उदाहरनं ॥

जेसें घटिका साठि जो परिवा होइ नरेस।
आठ जाम ताके करो जो अति बुद्धि हे वेस ॥६७॥
आठ जाम के होहिगे सोरह आधे जाम।
तिनमें निशि दिन भ्रमति नित तिथि पर शंकर बाम ॥६८॥
अर्द्ध पहर पहिले रहे पूरव शंकर नारि।
तातें आधे पहर पुनि उत्तर बसे बिचारि ॥६९॥
तातें आधे पहर पुनि रहति अग्नि दिशि जाइ।
अर्द्ध जाम तातें वहुरि नैऋति माँझ लसाइ ॥७०॥
तातें आधे जाम पुनि दच्छिन दरसति आइ।
पच्छिम मे आधे पहर ताते सरसति जाइ ॥७१॥
तातें पुनि हरबल्लभा बायवि आधे जाम।
तातें आधे जाम पुनि बसति ईस के धाम ॥७२॥
तातें पुनि आधे पहर पूरव रहे लुभाइ।
तातें आधे जाम लो उत्तर शिवा लसाइ ॥७३॥
आधे आधे पहर यो भ्रमति रहे हर नारि।
जो लो परिवा तिथि रहे तो लो याहि बिचारि ॥७४॥
आगें जब द्वितिया लगे उत्तर प्रथम निहारि।
अर्ध पहर लों शंकरी तातें ओर बिचारि ॥७५॥
तातें आधे पहर लों रहति अग्नि दिसि जाइ।
तातें आधे जाम पुनि नैऋति शिवा लसाइ ॥७६॥
जोलो द्वितीया रहति हे तोलों भ्रमति बनाइ।
रेनि दिना यह नेम नहि तोसों कहतु सुनाइ ॥७७॥
तिथि जोगिनि के भ्रमन तें जानो जोगिनि फेरु।

ओरु तिथिनि हूँ में भ्रमति यो ही रन कों हेरु ।।७८।।
न्यारी न्यारी तिथिनि कौ नाही कही सुनाइ ।
ग्रंथ बहुत बढि जाइगो यातें रची सुभाइ ।।७९।।
इति अर्द्ध जाम जोगिनी विचार ।

अथ राहु योगिनी सयुक्त फल कथनं ।।

ई ८	पू १ प्रथम अर्धजा	आ ३
उ २	अर्धजाम योगिना चक्रं	५ द
७ वा	६ प	४ नै

राहु युक्त जो जोगिनी पीछे दाहिनि होइ ।
लक्ष शत्रु कों जीति के एक जसीलो होइ ।।८०।।
उत्तम हे सब बलनि में यह मानों सुख पाइ ।
सब को सार विचारि के शंकर कह्यो बनाइ ।।८१।।

अथ उदाहरणं ।।

परिवा नोमी को १।९ रहत पहिले आधे जाम ।
राहु जोगिनी साथ ह्वे पूरब में करि धाम ।।८२।।
द्वितिया दशमी २।१० को निरखि पछिम बेठे आइ ।
पंचम आधे जाम में राहु जोगिनी भाइ ।।८३।।
तीजे आधे जाम में दछिन करें निवास ।
एकादशि अरु तीज में ११।३ तम योगिनि सहुलास ।।८४।।

राहु युक्त योगिनी च

ई	पू प्र अ· १।९ जा	आ	ई	पू	आ	ई	पू	आ
उ		द	उ	तिथि २।१० योगिनी	द	उ	तिथि ११।३	तृतीय अर्ध द जाम ग यो
वा	प	नै	वा	राहु क्त ५ अर्ध जाम प	नै	वा	प	नै

चोथे द्वादशि के दिना तम जोगिनि हुलसाइ ।।
सप्तम आधे जाम मे उत्तर में ठहराइ ।।८५।।

अष्टम आधे जाम में राहु जोगिनी योग।
नैऋति में सरसे निरखि तेरसि पाँचे भोग ॥८६॥
दूजे आधे जाम मे छठि चौदसि को ६।१४ आइ।
राहु योगिनी जोग सों बायबि में सरसाइ ॥८७॥
सातें ७ पून्यों १५ अष्टमी ८ ओरु अमावस जानि।
राहु जोगिनि योग नहि इन तिथि में यह मानि ॥८८॥

अथ प्रहार निवारनार्थ सूर्यादिक वार में निषिद्ध अर्ध जाम कथनं ॥

ई	पू	आ	ई	पू	आ	ई	पू	आ
सप्तम अर्ध जाम मे राहु योगिनी योग उ	४।१२ तिथि में	द	उ	१३।५ तिथि में	द	उ	६।१४ तिथि में	द
वा	प	नै	वा	प	अष्टम अर्ध जाम में राहु योगिनी योग नै	दूजे अर्ध जाम मे राहु योगिनी योग वा	प	नै

छोडो अदितवार को अष्टम आवो जाम।
चंद्रवार को तीसरो ३ छठवो ६ मंगल नाम ॥८९॥
पहिलो छोडो शुद्ध को आधो जाम बिचारि।
चोथो तजि गुरुवार को ४ सप्तम ७ शुक्र बिसारि ॥९०॥
दूजो आधो जाम पुनि छोडो शनि को मित्र।
जो मन में यह जोग हे जीतो समर चरित्र ॥९१॥

अन्यच्च

चोथो आदितवार को छोडो आधो जाम।
सप्तम ७ ससि के वार को विसरो करि विश्राम ॥९२॥
दूजो २ मंगलवार को अर्द्ध पहर तू छाड़ि।
बुध कों पंचम त्यागि के पीछे जुद्धहि माड़ि ॥९३॥
अष्टम ८ तजि गुरुवार कों अर्द्ध जाम गुनवंत।
शुक्रवार को तीसरो ४ अर्द्ध पहर विषवंत ॥९४॥

शनि को अष्टम ६ छोडि दे आधो जाम बिचारि ॥
चढो सेनि सिगारि को आओ शत्रुहि मारि ॥९५॥
इति निषिद्ध अर्द्ध जाम वर्जनीय कथनं ॥
सूर्यादि वार मे निषिद्ध अर्ध जाम चक्र दोऊ

र	च	म	वु	वृ	शु	श
८ अर्ध जाम	३ अर्ध जाम	६ अर्ध जाम	१ अर्ध जाम	४ अर्ध जाम	७ अर्ध जाम	२ अर्ध जाम

र	च	म	वु	वृ	शु	श
४ अर्ध जाम	७ अर्ध जाम	२ अर्ध जाम	५ अर्ध जाम	८ अर्ध जाम	३ अर्ध जाम	६ अर्ध जाम

पहिले आधे पहर में पूरब धरि वारेस ।
तातें पुनि क्रम दाहिने गिनती गिनो नरेस ॥९६॥
अर्द्ध जाम जो शनि सहित जाही दिशि में होइ ।
सो दिशि छाँडो जुद्ध को परम सयाने लोइ ॥९७॥
अथ उदाहरणं ॥
जेसें आदितवार को पूरब धरो बिचारि ।
ताको दछिन क्रम गिनो शनि लो निज उर धारि ॥९८॥
पूरब अग्नि रु दछ पुनि यो ही गिनो सुमानि ।
उत्तर सप्तम ७ होतु हे आधो जाम सु जानि ॥९९॥
आदित तें गिनती गिनों शनि लो सप्तम होतु ।
सप्तम आधे जाम मे तजि उत्तर जुद्ध गोतु ॥१००॥
गिनती आदितवार की यह मैं कही सुनाइ ।
ओर वार मे जानियो अपनी बुद्धि के भाइ ।
इति शनि युक्त अर्द्ध जाम विचार ।
अथ काल होरा कथनं ।
घरी गई जो वार के आरंभहि तें होंहि ।
द्विगुनी करि तिनको बहुरि साधो अपनी गोंहि ॥२॥

लेहु भाग पुनि पाँच ५ को शेष रहे जो आइ।
ताकों जानों काल की होरा अति सुखु पाइ ॥३॥

अथ उदाहरणं

सात ७ घरी रवि की गई द्विगुनी २ तिन्हे कराइ।
ह्वं हें चौदह १४ बहुरि शर ५ भाग लेहु सुखु पाइ ॥४॥
शेष चारि घटिका रही तिनको सुनो बिचार।
तीजी होरा जानिये बुधि बल के व्योहार ॥५॥
छठई ६ होरा होति हे बाराधिपते नित्त।
याही क्रम गिनिये सदाँ तोसोँ भाखतु मित्त ॥ ६ ॥
सूर्य शुक्र बुध चंद्र पुनि शनि गुरु भौम विचारि।
बाराधिप तें जानियें गुरु चरणनि शिर धारि ॥ ७ ॥
यह रवि की गिनती कही सुनो चद की ओर।
पहिली होरा चंद की दूजी शनि की जोर ॥ ८ ॥
औरनि हूँ की जानियें होरा याही भाइ।
भाषा करि परगट कही लघुमति को सुखदाइ ॥ ९ ॥
होरा को संकेत अब तोसों कहतु सुनाइ।
रहति अढाई घरी २।३० यह हिय में राखि सुभाइ ॥ १० ॥

इति काल होरा विचार।

याको प्रयोजन कथनं

अपने रिपु की रासि के पति की होरा छांडि।
इष्ट देव को ध्याँन करि पीछें जुद्धहि माँडि ॥ ११ ॥

इति प्रयोजन।

अथ प्रहार स्थान कथनं

बर्जित आधे जाम में चढे जुद्ध कों कोइ।
खड्गादिक को घाइ तो बाम कंध में होइ ॥ १२ ॥
गूढ जोग में चढे ते सनमुख आवे घाउ।
राहु विचार बिना लगें कुच के नीके ठाउ ॥ १३ ॥
लगतु दिवाकर दोष तें श्रवन हाथ अरु सीस।
घाउ होइ मुख भुजनि में शशि ते बिस्वेबीस ॥ १४ ॥

होरा रिपु की राशि के पति की लावति घाइ।
मुख अरु हिरदे में समझि तोसों कहतु बनाइ॥ १५॥
खड्गादिक के जुद्ध में निहचें लागे घाउ।
तातें इन्हें बचाइ के मंडे समर बनाउ॥ १६॥

इति प्रहार स्थलविचार।

अथ प्रहार स्थल विशेष कथन

जन्म लग्न अरु राशि में भानु जु बेठ्यौ होइ।
करे जुद्ध जो या समे बैठे सीसहि खोइ॥ १७॥
होइ बारहे चंद्र जो लग्न राशि तें मित्र।
मुख पे बैठे घाउ पुनि बाढे समर चरित्र॥ १८॥
छत मुख हिरदे में करे एकावे ११ भौम।
दशवे १० बुध उर में करे घाउ मिटावे जोम॥ १९॥
नवमें होइ जु चंद्र गुरु ऊरूँ बैठे घाउ।
गुदा मध्य क्षत कों करे अष्टम शुक्र सुभाउ॥ २०॥
चौथ ४ जो शनि होइ तो गाठिनि लागे चोट।
पंचम तम भुज में करे घाउ न बाँचे ओट॥ २१॥
छठे ६ केतु छतु करतु हे अति कपोल में आइ।
जन्म यात्रा लगनि तें राशिहु तें सु बताइ॥ २२॥
पहिले जे बल में कहे उनहूं को बल जाइ।
जोग परें ए आनि तो क्षत युत जीति सुहाइ॥ २३॥
जन्म लग्न अरु राशि तें यात्राहूँ तें आइ।
परे दूसरे घर लगनि श्रवण लगावे घाइ॥ २४॥

घर लगनि कहिये घर के बनाइवे की लगनि प्रवेस लगनि।

जन्म लग्न जो पुत्र की तीजे थल ठहराइ।
जन्म यात्रा लगनि ते राशिहु तें सु गनाइ॥ २५॥
करें कंठ में घाउ को यह निहचे तू जानि।
याकों लेउ बिचारि तव जुद्ध करो सुख मानि॥ २६॥
शत्रु जन्म की लग्न जो सप्तम बेठे आइ।
करे घाउ कों कंठ में तोसो कही बनाइ॥ २७॥

जन्म लग्न अरु राशि तें पान लग्न तंतेसु ।
नीके लेइ बिचारि तब रन में करे प्रवेसु ॥ २८ ॥

इति प्रहार स्थल विचार ।

अथ वर्जित नछत्र कथनं

नाडी तीनि बनाइ के सर्प रूप लिखि एक ।
आर्द्रादिक नछत्र पुनि तिन में धरि करि टेक ॥ २९ ॥
जन्म चंद रबि को नखत एक नाडी में होइ ।
निहचे छोडो सो दिना जुद्ध करन कों लोइ ॥ ३० ॥

त्रिनाडी सर्प चक्रं

अथ दिकसूल कथनं

सोम शनीचरबार जिनि पूरब करो पयान ।
दछिन को गुरु के दिना चलिये नाहि सुजान ॥३१॥
भानुवार अरु शुक्र कों मति पश्चिम को जाउ ।
मंगल अरु बुधवार को उत्तर यान बचाउ ॥३२॥
पूरब में गिनि अग्नि दिशि नैऋति दछिनि जानि ।
बायवि पछिम में समझि ईश उतर पहिचानि ॥३३॥

इति दिग्शूल विचार ।

अथ काल बिचार

शनि कों पूरब काल हे शुक्र अग्नि कों जानि ।
दछिन कों गुरुवार त्यों नैऋति को बुध मानि ॥३४॥
पछिम दिशि को काल कुज बायवि को शशिवार ।
उत्तर को दिन भानु को जानो काल विचार ॥३५॥

इति काल विचार ।

अथ फाँसी विचार कथनं

काल दिशा तें रहति हे फाँसी सनमुख जाइ ।
निशि में उलटी होति तजि यान जुद्ध को भाइ ॥३६॥

अथ उदाहरणं

जेसे पूरब दिशा में शनि दिन कों हे काल ।
पछिम में फाँसी समझि जो हे बुद्धि बिसाल ॥३७॥
निशि में पछिम काल पुनि बेठे अति गरबाइ ।
फाँसी आवे पूरबहि यों हीं ओर गनाइ ॥३८॥

इति फाँसी बिचार कथनं

अथ राहु का राहु कालाँनल चक्रं ।
विचार कथनं ।

भोगे जे तेरह नखत राहु वक्रगति आनि ।
जीव पछ सो जानिये तोसो कहतु सु मानि ॥ ३९ ॥
भोग्य जोन नछत्र है तेरह १३ सो मृत मानि ।
कहत कत्तारी राहु युत ग्रस्त पंद्रहो जानि ॥ ४० ॥
स्थायी जानि दिवाकरहि यायी उडपति मानि ।
जुद्ध यान को सर्वदा इनको बल पहिचानि ॥ ४१ ॥
जीव पक्ष में चंद रवि जा दिन आवे मित्र ।
ता दिन भूपति सो कहो मंडे समर चरित्र ॥ ४२ ॥
मृतक पक्ष नछत्र तें ग्रस्त कछू शुभ जानि ।
ग्रस्त नखत तें कर्त्तरी थोरो सो शुभ मानि ॥ ४३ ॥
यायी को है चंद्रबल स्थायी को बल भानु ।
दोऊ को दोऊन को बल सो उत्तम जानि ॥ ४४ ॥

इति राहु कालानल चक्र विचार ।

अथ नाम नछत्र ज्ञानार्थ अवकहड चक्र कथनं

पट रेखा ६ ऊरध करे पट ६ ही तिरछी लेखि ।
पचीस कोठे होहिगे पुनि विचार अवरेखि ॥ ४५ ॥

अ	व	क	ह	ड
अि	वि	कि	हि	डि
अु	वु	कु	हु	डु
अे	वे	के	हे	डे
ओ	वो	को	हो	डो

अवकहड तिरछी पँगति पहली तामे राखि ।
तात नीची में लिखो इविकिहिडि अभिलाखि ॥ ४६ ॥
तीजी पंगति मे लिखो अ वु कु हु डु तुम मित्र ।
अे वे के हे डे लिखि चतुरथीँ पंडित परम पवित्र ॥ ४७ ॥
ओ वो को हो डो पँचई पँगति नीके लिखो विचारि ।
मध्य कोठ में घ ङ छ बढ़ती धरो सवाँरि ॥ ४८ ॥
कृतिका तें अश्लेप लो नपत वरन ए जानि ।
अछर मानो चरन प्रति निज मन में पहिचानि ॥ ४९ ॥

गिनती ऊरध अध गिनों वारहिवार सुजान।
समर सार में कही पुनि नरपतिहू में जानि ॥५०॥

तेसेंई कोठे करो पच्चिस वहुरि सवारि।
मटपरत पहिली पँगति नीके लिषो विचारि ॥५१॥

इ उ ए ओ जोरिये इनमें ताही रीति।
मध्य कोठ में प ण ठ लिखि वढ़ती करि जो प्रीति ॥५२॥

मघा आदि दे जानियें विस्साखा लो मित्र।
चरन चरन के कहे ए तोसो बरन पवित्र ॥५३॥

म	ट	प	र	त
मि	टि	पि	रि	ति
मु	टु	पु ष ण ठ	रु	तु
मे	टे	पे	रे	ते
मो	टो	पो	रो	तो

न	य	भ	ज	ख	ग	स	द	च	ल
नि	यि	भि	जि	खि	गि	सि	दि	चि	लि
नु	यु	भु ध फ ढ	जु	खु	गु	सु	दु थ झ ज	चु	लु
ने	ये	भे	जे	खे	गे	से	दे	चे	ले
नो	यो	भो	जो	खो	गो	सो	दो	चो	लो

पच्चिस २५ कोठे फिरि करो नय भज ख तँहँ लेखि।
पहिली भाँति सु जोरिये इ उ ए ओ पुनि देखि ॥५४॥

धरो मध्य के कोठ में ध फ ढ वढती मित्र।
अनुराधा ते जानियें जह लों श्रवण पवित्र ॥५५॥

पुनि पचीस २५ कोठे करो नीकें पहिली रीति।
ग स द च ल पहिली पँगति लिखो हियें करि प्रीति ॥५६॥
इ उ ए ओ पुनि जोरियें इनहू में अनुरागि।
मध्य कोठ मे लेखिये थ झ ज बढती रागि ॥५७॥
गिनो धनिष्ठा आदि दे भरणी लो अभिलाखि।
बरन चरन नक्षत्र के परगट कीने भाखि ॥५८॥
जा नछत्र के चरन मे जनम होइ नर नारि।
वही नाम अक्षर समझि तोसो कही विचारि ॥५९॥
चारि चरन नछेत्र के जानों पंडित लोग।
तातें अच्छर चरन प्रति एक एक करि जोग ॥६०॥

इति अबकहड चक्र विचार।

अथ हृदय कमल चक्र विचार कथनं।

आठ दलनि को कमल हे सब के उर में मित्र।
जोग रीति सो जानियें ताको भेद पवित्र ॥६१॥
चारि दिशा कोँ चारि दल चारि जानि विदिसानि।
तिनको बिचारि अब तू अपने उर आनि ॥६२॥
तीस स्वास ३० आकास की तात साठि ६० समीर।
ताते नब्बे ९० अग्नि की बीसा सो १२० जल धीर ॥६३॥
ताते स्वासा भूमि की डेढ़ सतक सुभवेख।
यह क्रम दल के अग्र तें कह्यो सु तू अवरेखि ॥६४॥
धरनी तं स्वासानि की उलटी गति हिय जानि।
उदाहरण तोसो कहतु सो अपन उर आनि ॥६५॥
जेसें आदि अकास करि स्वासा चलति अनूप।
तेसे इतते आदि करि धरनी को लहि रूप ॥६६॥
धरनी तं जल अग्नि फिरि वायु बहुरि आकास।
तीस तीस अधिकी कही सबकी महा प्रकास ॥६७॥
एक एक दल में चलति स्वासा नोसे ९०० मित्र।
हिय में दरसत है सदा एसें आठ पवित्र ॥६८॥

सात सहस द्वे सत सहित ७२०० भमति एक हीं फेर।
एसें निसि दिन में भ्रमति तीनि वेर उर हेर ॥६९॥
एकविंस हज्जार पुनि छसे सहित २१६०० सुभ स्वास।
सूर उदे तें उदे लो चलति सु कही प्रकास ॥७०॥
पूरब दल के अग्र तं आकासादिक जानि।
बहुरि मूल तें अग्र लों भूमादिक पहिचानि ॥७१॥
फेरि अग्नि दल अग्र तं आकासादिक लेखि।
मही आदि दे मूल तें त्योंही उर अवरेखि ॥७२॥
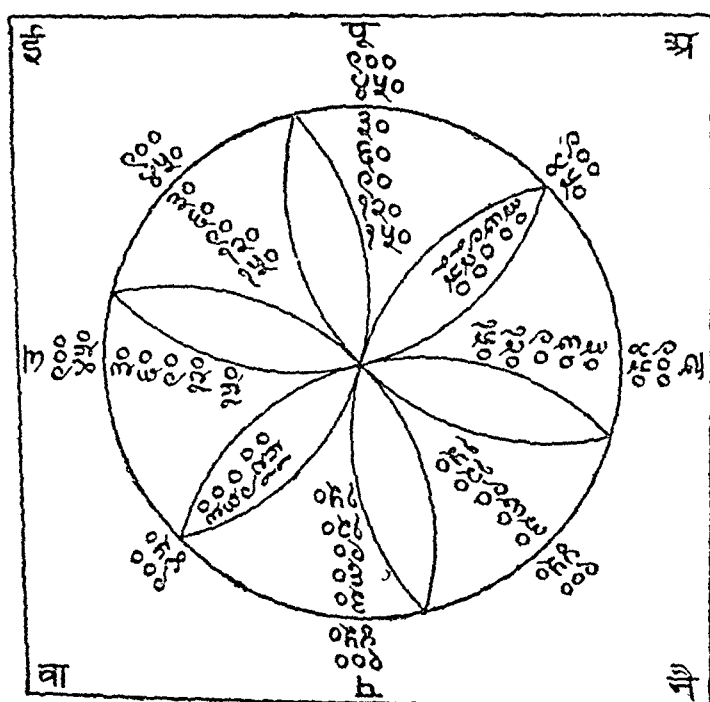
यों ही जानों और दल वुधि बल के अनुसार।
भाषा करि परगट कही सब जोतिप को सार ॥ ७३ ॥

अथ पूर्वादि दिसा के दलनि में चित्तवृत्ति न्यारी न्यारी होति है सु कहियति है।

पूरब दल में रहतु है जो लो स्वास विलास।
रन करिवे कों होति है चित्त वृत्ति अनयास ॥ ७४ ॥

अग्नि कोए के पत्र में भोजन कों मन होतु।
दछिन दिशि के पत्र में सरसतु क्रोध उदोतु ॥ ७५ ॥
निऋति कोए में विजय को चाहतु चित्त अनूप।
पच्छिम दल में होतु हे हिय में आनँद रूप ॥ ७६ ॥
वायु कोए में गमन को चित्त वृत्ति ललचाइ।
उत्तार के दल में दया उर में उपजति आइ ॥ ७७ ॥
ईस कोए दल में चहति चित्तु राज कों भाइ।
द्वे पत्रनि के मध्य में परसुख को उमगाइ ॥ ७८ ॥

अथ कमल चक्र में पंचभूत वहन फल कथनं

धरनी जल अति सुख करत अग्नि मिल्यो फल देइ।
बायु ओर आकास गुन सब आँनद हरि लेइ ॥ ७९ ॥

अथ पंचभूत वहन सुरूप कथनं

मही तत्व मधि मे वहुत नीचें जल की स्वास।
ऊरध स्वासा अग्नि की तिरछी वायु प्रकास ॥ ८० ॥
मिली वहति आकास की स्वासा संधि प्रमान।
यह विचार गुरु मुख समझि प्रगटहु वहुरि सुजान ॥ ८१ ॥

अथ कमल चक्र में सूर्य चंद्र स्वर वहन फल कथनं

दछिन स्वर रवि को समझि वाम चंद्र को जानि।
भले बुरे फल कहन को अपने उर में आनि ॥ ८२ ॥
घरी अढाई २।३० चलतु हे सूर उदे तें भानु।
पूरव दिशि के पत्र में निज उर में पहिचानु ॥ ८३ ॥
तातें पुनि ढाई २।३० घरी अग्नि पत्र मे चंद।
तातें पुनि ढाई २।३ घरी दच्छिन भानु अमंद ॥ ८४ ॥
तातें नैऋति कोए में सरसतु कला विधानु।
घरी अढाई २।३० भानु फिरि पछिम दल में जानु ॥ ८५ ॥
बायु कोए ढाई घरी ताते रजनीपाल।
उत्तर में ढाई २।३० घरी ताते ग्रह भूपाल ॥ ८६ ॥
ईस कोए ढाई घरी २।३० वहति कलानिधि स्वास।
एक भ्रमन मे होति हे वीस २० घरी परकास ॥ ८७ ॥

तीनि भ्रमन दिन राति में होत जानि मो मित्र ।
साठि घरी ६० को द्योस निसि समझो परम पवित्र ॥८८॥
सूर उदे तें जानियें यह सिगरो व्योहार ।
करि भाषा तोसो कह्यो जोगेसुर को सार ॥८९॥

अथ घरी प्रमान कथनं ।

पढत साठि गुरु अछरनि जितनी लागे वार ।
तासो पल संख्या कहत जोतिस को करतार ॥९०॥
साठि बेर याकों पढे होइ घटी परिमानु ।
साठि ६० घरी को होतु हे निसि दिन यों उर आनु॥९१॥

अथ चंद्र सूर्य स्वर निरंतर वहन फल कथनं ।

शुक्ल पक्ष परिवादि दिन तीनि चले जो चंद ।
प्रात समें तो पछ भरि उर में रहे अनंद ॥ ९२ ॥
द्वेई दिन जो चले तो दस दिन उत्तम जानि ।
परिवाही को चले तो पाँच दिना सुभ मानि ॥ ९३ ॥
कृष्ण पछ की जानिये परिवा तें तिहि रीति ।
भानुनाडिका को सुफल लहिये करि परतीति ॥ ९४ ॥

अग्नितत्व फल कथनं

पाँच दिना लों चले तो अग्नि नाडिका नित्त ।
एक नाडिका माझ तो जानो मरन सुचित्त ॥ ९५ ॥

अथ सूर्य नाडी में सूर्य तत्व वहन फल कथनं ।

दछिन स्वर में चले जो अग्नि तत्व अनयास ।
ता छिन मंडो जुद्ध को खंडो सत्रु प्रकास ॥ ९६ ॥

अथ ओर विचार

सुद्ध स्वर की ओर करि निज प्रीतम को मित्र ।
बद्ध स्वर को सत्रु करि जीतो समर चरित्र ॥ ९७ ॥

इति हृदय कमल चक्र विचार ।

अथ जय पराजय ज्ञानार्थं स्वर प्रश्न कथनं ।

वाम स्वर की चालि में वाएँ पृछक आइ ।
पूछे तो संग्राम को जीते आपु वनाइ ॥ ९८ ॥

योही दछिन स्वर चलत ओर दाहिनी आइ।
पूछे तो अति कष्ट करि पावे मन को भाइ॥ ९९॥
बद्धस्वर की ओर ह्वै पूँछे अपनो काज।
नास होइ तत्काल ही संपति सुख को साज॥ १००॥

अथ प्रकारांतर कथनं

बिषम कहे अच्छर सु नर दच्छ भाग ह्वै आइ।
बाम भाग ह्वै सम कहे अच्छेर सरस बनाइ॥ १॥
दच्छिन वाए स्वर चलत क्रम तें मेरे मित्र।
पूछत ही मन में हरषि जीते समर चरित्र॥ २॥
सनमुख पृछक वाम गुनि दछिन पिछिलो जाइ।
लीजे समझि बिचारु यह प्रश्न समे सुख मानि॥ ३॥
ऊँचे तें पूछे तो वाग स्वर बिचारे।
नीचे तें पूँछे तो दछिन स्वर बिचारे।

अथ सूक्षम स्वर प्रश्न

स्वासा अंतर को धसत पूछे पृछक आइ।
जीति होइ संग्राम मे संकर कह्यो वनाइ॥ ४॥
निकसत स्वासा के समे पूछे जो अकुलाइ।
भंग होइ रनभूमि में सब सो कहतु सुनाइ॥ ५॥
चलती नाडी ओर ह्वे पूछे अपनो काम।
पुत्रादिक को सुख लहे औरो वहु विश्राम॥ ६॥
बद्ध स्वर की ओर ह्वे पूछत कारज नास।
संकर के ए बचन हे त्रिभुवन में परकास॥ ७॥

अथ चंद्र सूर्य स्वर में कार्य विशेष कथनं

चंद्र स्वर में काज सुभ करत होहि सुखदाइ।
ग्रह प्रवेस नृप को मिलनु दीबो राज बनाइ॥ ८॥
भानु स्वर में वधू रति भोजन अरु संग्राम।
असुभ कर्म अरु जानिये सुखद सु आठो जाम॥ ९॥

इति स्वर बलं।

बाम स्वर में नारि के चलतु तत्व जल होइ।
त्योही नर को दाहिनो अग्नि तत्व युत होइ॥ १०॥

केलि करे नर नारि सों एसे में जो मित्र ।
स्रवे नारि घृत कलस ज्यों लागें दहन पवित्र ॥ ११ ॥

अथ स्वर वसीकरणं

चलत वाम स्वर नारि को सोवत मे रिझवार ।
पुरुष दाहिनी स्वाम मो दियें वारही वार ॥ १२ ॥
लिया जन्म भरि वस रहे निहचे यह तू जानि ।
गौरी संकर के वचन सव साँचे पहिचानि ॥ १३ ॥
योही वाम स्वर चलतु जानि आपनो नारि ।
दछिन स्वर पिय को पिये राखे वस रिझवारि ॥ १४ ॥

अथ मदन जुद्ध विचार कथनं

मदन जुद्ध हू कों सवे मावे सुवल विचारि ।
पीछें रमनी सो रमे जीते रति रिझवार ॥ १५ ॥

अथ जुवा जीतिवे को विचार कथनं

स्वर वल कौ करि आदि जो कहे वहुत वल भेद ।
ते विचारि खेले जुवा धन जीते तजि खेद ॥ १६ ॥

अथ क्षत निवारनार्थ जय औपधी कथनं

ताल वृक्ष को मूल ले के केतक को पत्रु ।
राखि सीस में मोद सो खंडो रन में सत्रु ॥ १७ ॥
के जर लाइ खजूर की द्वै राखे निज अंक ।
वान लगे नहि अंग में जुद्धहि करे निसंक ॥ १८ ॥
जे ओपधि पीछें कहीं खाइ कि घृत में सान ।
जोलो ए न पचें सुनो तोलों लगे न वान ॥ १९ ॥
द्वै जर लावे हीसि की उत्तर दिसि जिहि ओर ।
राखि सीस में सुद्ध मन रन जीते सिरमोर ॥ २० ॥
घृत जुत इनको भखे के तंदुल जल सों खाइ ।
योंही पाठामूल ले भखि जुद्ध कों जाइ ॥ २१ ॥
पचें न जोलों उदर मे तोलों लगे न वान ।
सार स्वरोदय को कह्यो समझो सत्य सुजान ॥ २२ ॥
पुष्पार्क सिद्धि योग में विन भोजन नहि जाइ ।
लावे तव यह गुन करे संकर कह्यो वनाइ ॥ २३ ॥

अन्यच्च ।

अंकोल सु पुनि लक्षमना सरफोका उर आनि ।
मछेछी कोइल बहुरि मोर सिखा पहिचानि ॥ २४ ॥
मसी बहुरि नीली गनो सहदेवी पुनि जानि ।
ओर पाटला सहित ए दस १० औपधि पहिचानि ॥२५॥
पुष्पारक सिधि जोग में लावे निरने जाइ ।
राखे भुज मे सीस में के मुख मे सुख पाइ ॥ २६ ॥
के इन को भक्षन करे अति निहचे मन लाइ ।
जो लो ए न पचें लगे तोलो सस्त्र न आइ ॥ २७ ॥

अन्यच्च ।

रसु ले बेगनपत्र को याही की जर लाउ ।
पारे को घिसि के बहुरि कोडी बीच बसाउ ॥ २८ ॥
मूंदो पीछे मोम सो मुख मे राखो मित्र ।
चढो महा संग्राम को जीतो परम पवित्र ॥ २९ ॥

अथ कोडी स्वरूप कथनं

सोने की सी रेख द्वे जा कोडी पे होइ ।
सो लाओ अति दूढि के साधो अपनी गोइ ॥ ३० ॥

अथ वाद जयार्थ औषधी कथनं

गोभी मोरसिखा बहुरि जानो ओर पवार ।
पुष्पारक सिधि जोग में निरने लाओ यार ॥ ३१ ॥
भुज में राखो सीस में के आनन में मित्र ।
गुरु प्रभु हिय मे ध्याइ के जीतो बाद चरित्र ॥ ३२ ॥

इति जय औषधी बिचार ।

अथ कोट चक्र बिचार कथनं

तीनि करो चतुरस्र सुभ अध मधि ऊरध मित्र ।
ईस कोए तें राखिये कृतिकादिक नछेत्र ॥ ३३ ॥
राखो तीनि नछत्र पुनि कृतिका तें मन लाइ ।
बाहिर बाहिर रेख के निरखत हिय सरसाइ ॥३४॥

धरे आर्द्रा मध्य में ताते लिखे सुचारि।
अश्लेषा पूरब सजो पंडित लोग सँवारि ॥३५॥
अग्नि कोण में मघा ते लिखो तीनि पुनि मित्र।
मध्य हस्त को राखि के धरो सुधारि नछत्र ॥३६॥
दछिन दिसि में अति अमल लिखो बिसाखा फेरि।
नैऋत मे नछत्र तिनि अनुराधा तें हेरि ॥३७॥
मध्य पूरबाषाढ ते धरो बहुरि तुम चारि।
पछिम में सोभो महा श्रवण छटा सुखकारि ॥३८॥
बायु कोण मे धनिष्ठा ताते लिखि पुनि तीनि।
मधि में उत्तर भाद्रपद तातें चारि प्रवीण ॥३९॥
उत्तर भरनी जानिये हिय में निहचे लाइ॥
नछत्रनि के लिखन की पद्धति कही बनाइ ॥४०॥
बारह १२ बाहिर के नखत आठ मध्य के मानि।
आठ बहुरि अंतर समझि अष्टाबिसति जानि ॥४१॥

इति कोटचक्र लिखन।

कोटचक्र स्वरूपं

अथ प्रवेश के निकास के नछत्र कथनं ॥
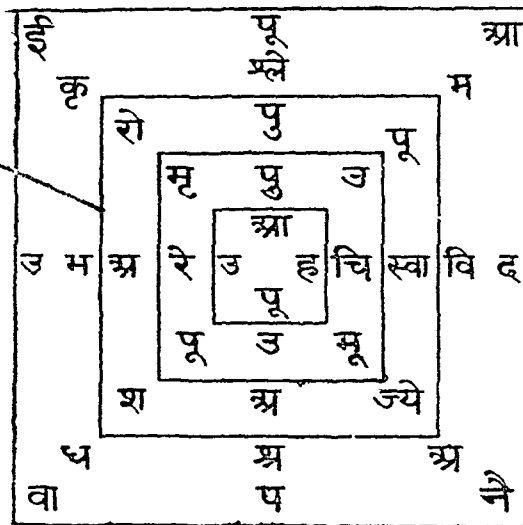
विदिसानि के नछत्र हैं ते प्रवेस के मानि।
बारह १२ ओरु दिसानि के ते निकास के जानि ॥४२॥

चारि मध्य में लसत हे जे नछत्र सुभ रूप।
संज्ञा तिनकी जानियें हिय में थंभ अनूप ॥४३॥

साधारन कृतिका कही समझावन के काज।
धरे सत्रु नछत्र को के गढ़ को द्विजराज ॥४४॥
जा नछत्र को होइ ग्रह लिखिये ताहि सवाँरि।
हित करि तोसो कहतु हो पीछे ओर बिचारि ॥४५॥

अथ दुर्गभंग विचार कथनं ॥

कृतिका श्लेषा मघा पुनि बिस्साखा अरु जानि।
अनुराधा अति धनिष्ठा भरनी पुनि पहिचानि ॥४६॥
गढ बिचार में जानिए बाहिर के नछित्र।
अश्विनि रोहिनि पुष्य पुनि प्रथम फाल्गुनी मित्र ॥४७॥
स्वाति ज्येष्ठा भिजित पुनि सतभिखा उर आनि।
मन में राखो मध्य के आठ नछत पहिचानि ॥४८॥
रेवति मृगसिर पुनर्वसु उत्तर फाल्गुनि चित्र।
मूल उत्तराषाढ पुनि उत्तरभाद्र सुमित्र ॥४९॥
अंतर के नच्छत्र ए आठ हिये में जानि।
हस्त आद्रा उत्तराषाढरु पूभा मानि ॥५०॥
थंम जानिये ए नछत चारि आपनें चित्त।
गढ बिचार के लिये ए परगट कहे सुमित्र ॥५१॥
मध्य कोट को कहत हे बप्र बरन सुनि मित्र।
नीके सबनु बिचारि के भाखहु कोट चरित्र ॥५२॥
अंतर होहि जु क्रूर ग्रह बाहिर सुभ ग्रह थानु।
दुर्ग भंग तिहि काल ही होइ हियें पहिचानु ॥५३॥
अंतर सुभ पुनि पाप ग्रह बाहिर होइ जु मित्र।
दुर्ग वेष्टक नास को पावे ह्वै अपवित्र ॥५४॥
अंतर पापरु वप्र में सुभ ग्रह को विश्राम।
होइ भेद सो भंग गढ़ करे विना संग्राम ॥५५॥
होइ वप्र मे पाप ग्रह सुभ ग्रह अंतर ठाम।
दुर्ग भंग करि वेष्टक जाइ काल के धाम ॥५६॥
वप्ररु अंतर कोट में सरसत होइ जु कूर।
सुभ बाहिर तो कष्ट सो टूटे गढ़ को सूर ॥५७॥

बाहिर बप्र जु क्रूर ग्रह सुभ ग्रह अंतर जानि ।
जित तित ह्वेहे खंड पुनि नहीं भंग उर आनि।।५८।।
सुभ ग्रह होइं जु वप्र में बाहिर अंतर क्रूर ।
दुई दलनि के सुभट मरि भेदे मंडल सूर ।।५९।।
क्रूर वप्र म सुभ ग्रह अंतर वाहिर जानि ।
होइ बराबरि जुद्ध तो दिन प्रति खंड सु मानि ।।६०।।
अंतर वाहिर बप्र मे पापरु सौम्य समान ।
होइ घोर संग्राम पुनि दोऊ भंग बखान ।।६१।।
वाहिर अंतर तुल्य जो पाप सुभग्रह होंइ ।
स्थायी यायी मिलि बहुरि साध अपनी गोइ ।।६२।।
थंभ नछत में भोम बुध के प्रवेस मे जानि ।
जीवत पक्ष प्रवेस मे चंद्र बहुरि त्यो मानि ।।६३।।
कोट चक्र में होइ जो ऐसे ग्रह सुनि मित्र ।
दोऊ करे मिलाप अति छाँडे समर चरित्र ।।६४।।

निरवल गुरु पूरब में वैठे ।
त्यौं मंगल दछिन दिसि ऐठे ।
पश्चिम वक्री सुक्र विराजै ।
उत्तर मद्धि चंद्र तिमि राजे ।।६५।।
ताही दिसि में भंग बताओ ।
इष्ट ध्यान निज उर मे लाओ ।

दोहा

कोट चक्र के नखत कौ सब यह कह्यौ विचारु ।
पूरब दछि न बारुनी ऊत्तर यह निरधार ।।६६।।
हिमकर पापग्रह सहित जाही दिसि में होइ ।
ताही दिसि में खड्ढि कहि तित प्रवेस कों टोइ ।।६७।।
थंम नखत मे क्रूर ग्रह जा दिन वैठे आइ ।
ता दिन गढ को छोडिके भाजे गढ़ को राइ ।।६८।।
वाहिर के निर्गमन छत वक्री क्रूर जु होइ ।
ताही थल खंडनु करो परम सयाने लोइ ।।६९।।

होइ प्रवेस में क्रूर ग्रह वक्री जो सुनि मित्र।
कोट मध्य की चमू हति बरसावे सु रकित्र ॥७०॥
जो प्रवेस नछत्र मे वक्री क्रूर सु होइ।
यायी को खंडे उमडि स्थायी के सब लोइ ॥७१॥

अथ यायी स्थाई को विशेषबल कथनं ॥

गढ के नाम नछत्र ते के स्वामी तें मित्र।
दोष जानि के भूमिपति तितही लगे पवित्र ॥७२॥
सेनापति नछत्र तं जो उपजे अति दोपु।
गढपति ताहि छुटाइ के औरै करै सु पोषु ॥७३॥

इति कोट चक्रं।

अथ सर्वतोभद्र चक्र कथनं

दस १० रेखा ऊरध करे दस १० ही तिरछी रेख।
इक्यासी ८१ की हे सुनहु कोठे सुंदर देख ॥७४॥
सोरह स्वर कोएनि लिखो ईस दिशा तें जानि।
कृतिका ते नछत्र पुनि अष्टाबिसति मानि ॥७५॥
पूरब दिसि में सात लिखि कृतिका तें नछित्र।
दछिन में पुनि मघा तें तितने राखहु मित्र ॥७६॥
पछिम दिसि में लिखो पुनि अनुराधा तें सात।
तितने उत्तर कों धरो धनिष्ठा तें तात ॥७७॥
अवकहड पूरब लिखो तातें नीची पाँति।
मटपरत दछिन धरो अति ही उत्तम भाँति ॥७८॥
न य भ ज ख पछिम लिखो गुरु मुख समझि सँवारि।
ग स द च ल उत्तर धरो भलें सयान विसारि ॥७९॥
तातें नीची पाँति पुनि लिखो बृषादिक रासि।
दछिन में सिहादि धरि अति निज मनहि हुलासि ॥८०॥
वृश्चिकादि पश्चिम लिखो पुनि मन में अभिलाखि।
कुंभादिक पुनि तीनि ३ लिखि उत्तर को दुखु नाखि ॥८१॥
नंदा तिथि पूरब लिखि सुभद्रा दछिन राखि।
लिखौ जया तिथि पछिमहि उत्तर रिक्ता भाखि ॥८२॥

लिखो पूरना मध्य में अति हीं उत्तम वेष।
भाषा करि परगट कही अपने उर अवरेषि ॥८३॥

इति सर्वतोभद्र चक्र लिखन क्रम।

पू
घ ङ छ

ई (ईशान) · आ (आग्नेय) · द (दक्षिण): पु ष न ठ · नै (नैऋत्य) · प (पश्चिम): च फ ढ · वा (वायव्य) · उ (उत्तर): थ म भ

अ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	श्ले	आ
भ	उ	अ	व	क	ह	ड	म	म
अ	ल	लृ	२	३	४	लॄ	स	पू
रे	च	१	ओ	र. मं नंदा	औ	५	ट	ङ
उ	द	१२	रिक्ता शु	पू श	भद्रा बु चं	६	प	ह
पू	स	११	अः	जया बृ	अं	७	र	चि
श	ग	ऐ	१०	९	८	ए	त	स्वा
ध	ॠ	ख	ज	भ	य	न	ऋ	वि
ई	श्र	अ	ङ	पू	म	ज्ये	अ	इ

वा · च फ ढ प · नै

नंदातिथि में १/६/११ भौम रवि शशि बुध भद्रा २/७/१२ ठाम।
जया ३/८/१३ संग गुरु राखिये रिक्ता तिथि ४।९।१४ भृगु नाम ॥८४॥
संग पूर्ना तिथिनि के ५।१०।१५ सनि कों राखो मित्र।
लिखन सर्वतोभद्र को यो जानो सुपवित्र ॥८५॥

अथ वेध विचार

आर्द्रा को ग्रह घ ङ छ अछर वेधे जाइ।
खेचर त्योहीं हस्त को प ण ठ कों उर लाइ ॥८६॥
ध फ ढ वरन कों पूरवापाढ खचर वेधै सु।
ख ग म न उत्तरा भाद्र कों थ झ ज वेधे हेसु ॥८७॥

भरनी को चोथो बरन प्रथम कृत्तिका जानि।
इनको ग्रह तिथि पूरबा ५।१०।१५ अस्वर बेधे आनि ॥८८॥
अश्लेषा को अंत पद मघा आदि पद मानि।
बेधतु त्योही पूरणा ५।१०।१५ आ स्वर को ग्रह जानि ॥८९॥
बिस्सापा को अंत पद अनुराधा कौ आदि।
इनको ग्रह तिथि पूरणा ५।१०।१५ इ स्वर वेधे नॉदि ॥९०॥
अंत बरन पुनि श्रवण को आदि धनिष्ठा जानि।
ई स्वर को तिथि पूरणे ५।१०।१५ ग्रह वेवे सुख भानि॥९१॥
रेवति अश्वनि भरनी कृत्तिका रोहिनि मृगशिर जानि।
इनकौ ग्रह अकार को वेधे अरु पूर्ना तिथि मानि ॥९२॥
अदिति पुष्प अहि मघा पुनि पूरब उत्तर फालगुनि।
आ स्वर कों इनकों ग्रह वेधैं तिथि पूरन उर मे गुनि ॥९३॥
चित्रा स्वाति बिस्साखा अरु अनुराधा ज्येष्ठा मूल।
इनकौ ग्रह इकार पूरन तिथि वेजि दिखावे सूल ॥९४॥
उत्तरषाड रु अभिजित श्रुति वसु सतभिप पूभा जानो।
इनकौ ग्रह ई स्वर तिथि पूरण वेधे यह उर आनौ ॥९५॥

अथ शुभग्रह पाप ग्रहन को वेध फल कथनं

सुभग्रहन को बेध सो अति उत्तम पहिचानि।
क्रूरग्रह के बेध कों असुभ महा उर आनि ॥९६॥

अथ वेध दृष्टि भेद कथनं ॥

वक्री ग्रह की दाहिनी दृष्टि जानियें मित्र।
बाम दृष्टि गुनि सीघ्र की मन में परम पवित्र ॥ ९७ ॥
कुटिल ग्रह की दक्ष पुनि जानो दृष्टि अनूप।
मंद ओरु समगतित्तु की सनमुख दृष्टि सुरूप ॥ ९८ ॥

अथ वेध उदाहरणं

रोहिनि बक्री बेठि के बेधे अश्वि नछित्र।
सीघ्र रोहिनी बेठि के बेधे स्वाति पवित्र ॥ ९९ ॥
बेठि रोहिनी मंद सम बेधे अभिजित जाइ।
तीनि भाँति की दृष्टि यह तोसो कही बनाइ ॥ ४०० ॥

अथ सूर्य कालानल चक्र लिखन क्रम लिख्यते

तीनि रेख तिरछी करे ऊरध तीनि सुरेख।
द्वै द्वै कोएनि में लिखै ऊपर शृंग सुवेख ॥ १ ॥
ऊरध तीन्यों रेख में करै त्रिसूल बनाइ।
मध्य सूल अधरेख में रबि नछत्र धरि भाइ ॥ २ ॥
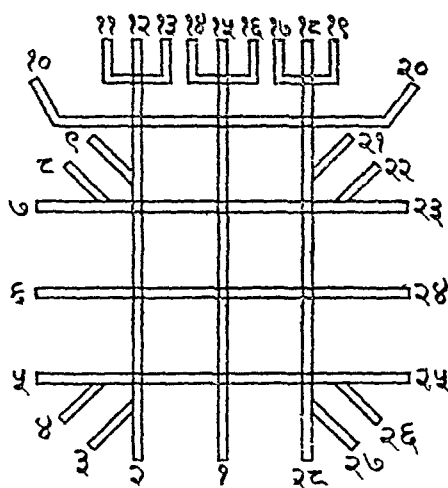
दच्छिन क्रम गिनिये जहाँ जन्म नछत्र जु होइ।
ताकौ फल अब कहतु हो ग्रंथ अनेकनि टोइ ॥ ३ ॥
अध के तीनि नछत्र में बध बंधन उदवेग।
कोने के आठनि बिषे बिजै लाभ कौ नेग ॥ ४ ॥
शृंग रोग दाइक समझि सूल मृत्यु के दाइ।
विवाह विग्रह जुद्ध रुग यान बिचारो भाइ ॥ ५ ॥
कुज नछत्र तें रोग में रन को दिन नछित्र।
कृत्ति यात्रा को लिखै और ठौर रवि मित्र ॥ ६ ॥

इति सूर्य कालानल चक्रम् ।

अथ वक्र ग्रह को शीघ्र को कुटिल को सम को मंद ग्रह को सुरूप कथनं

सदा सीव्र ग्रह चंद रबि राहु केत नित बक्र।
अपने मन में जानिकें तब साधो यह चक्र ॥ ७ ॥
भानु संग ते छुटे जो उदे जानि तिहि मित्र।
भौमादिक ग्रह पंच कों पंडित कहत पवित्र ॥ ८ ॥

दूजें २ रबि एकादसी ११ पुनि द्वादसे १२ बिसेखि।
भौमादिक तें होंइ तो सीघ्र नवमि ९ अवरेखि॥ ९॥
भौमादिक ते तीसरे ३ जो रबि बेधौ होइ।
सम गति जानो पंच ए परम सयाने लोइ॥ १०॥
इनते चोथे होइ रबि तो ए मंद बखानि।
पाँचें ५ छठएँ ६ होइ तो वक्र गति सु पहिचानि॥ ११॥
सातें ७ आठें ८ भानु जो भौमादिक तें होइ।
अति बक्री ए जानियो मन में पंडित लोइ॥ १२॥
नवमें ९ दशमें १० भानु जो भौमादिक तें होइ।
इन्हे जानि यों कुटिल गति है अति पंडित सोइ॥ १३॥

अथ अक्षर नछत्र स्वर तिथि राशि वेध फल कथनं

अक्षर बेध हानि को करे। नछेत बेध भ्रम उर में भरे।
रोग करे स्वर बेध निदानु। तिथि के बेध महाभय जानु॥ १४॥
रासि वेध कछु विघ्न नहि करे।
पाँचो वेध जीव कों हरे।
पाप वेध को यह फल कहौ।
शुभ ग्रह को अति उत्तम लहौ॥१५॥
पाप ग्रह ह्वै बक्रगति महा क्रूर ह्वै जाइ।
शुभ ग्रह वक्री होइ तो शुभ अति ही दरसाइ॥१६॥

अन्यच्च

बक्र सर्वतोभद्र में जा दिशि बैठे भानु।
नछत आदि ता दिशा के सिगरे अस्त सु जानु॥१७॥
पूरब में ईशान दिशि बायवि उत्तर जानि।
पच्छिम में नैऋति गिनो दच्छिन अग्नि सु मानि॥१८॥
क्रूर ग्रह के वेध को जो फल कह्यो बनाइ।
अस्त दिशा को जानियो सों फल मेरे भाइ॥१९॥
उदे दिशा के फल सबे शुभ ग्रह बेध सुजानि।
सत्य बात कैलासपति बरनी अनुभव मानि॥२०॥

अथ प्रकारांतर नछत्र वेध फल कथनं ।

हानि कलह पीडा करे वैठ्यौ जन्म नछित्र ।
तातें दशमों विध्य तो नाशे काज चरित्र ॥ २० ॥
जन्म नछत तें सोरहों १६ वेध्यों होइ नछित्र ।
मित्रनि में अंतर करे दरसावे सुरकित्र ॥ २१ ॥
नौ ते दूनो १८ नछत जो वेध्यो होइ सुजान ।
करे द्रव्य को नाश अति यह याको फल मान ॥ २२ ॥
देह देह में रोग कों औरु बढावे पित्त ।
× × × ॥ २३ ॥
नाश करे सब सुखनि कों पच्चीसो नछित्र ।
जन्म नछित तें जानिये यह सब गिनती मित्र ॥ २४ ॥
राजा को अभिषेक कों जाति देस नच्छित्र ।
जा छिन लागे वेध ए विकल करे सब मित्र ॥ २५ ॥
पाप ग्रह के वेध को सब फल साँचो जानि ।
वेध शुभ ग्रह को करे फल कछु घटि मन मानि ॥ २६ ॥

इति सर्वतो भद्र विचार

सूर्य कालानल चक्र चंद्र कालानल चक्र शनि चक्र ह्यां चहियैं सर्वतो भद्र के आगैं ।

चंद्र कालानल चक्रम्
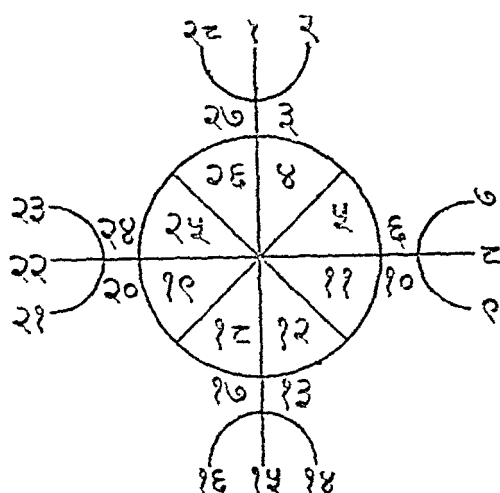
अथ सर्व कार्य को वर्जित अदर्दत्ताम कथनम् ।

तजो भौम को दिवस निशि दूजो आधो जाम ।
त्योही तीज्यो ३ शुक्र को छाँडि साधिये काम ॥ २७ ॥
छाँडो सूरज वार सो चोथो ४ निशि दिन मित्र ।
पंचम तजि बुधवार को त्योही परम पवित्र ॥२८॥
षष्टम आधो जाम तजि शनि को निशि दिन जानि ।
चंद्रवार को सातओ ७ त्योही तजि पहिचानि ॥ २९ ॥
गुरु के दिन निशि दिन तजो अष्टम आधो जाम ।
या विचार को समझि के साधो सिगरे काम ॥ ३० ॥

अथ मंत्र लेवे के अर्थ स्वामी सेवक विचार के लिये ऋण धन चक्र विचार कथनं ।

चक्र स्वरूप

६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	४	०	०	२	१	०	४	४	३

सात रेख तिरछी करे द्वादश १२ ऊरध रेख ।
छासठि ६६ कोठे होइँगे अति ही उत्तम वेख ॥३१॥
तीनि कोठ में षट ६ लिखो चौथे में धरि विंदु ।
जाके आगे तीनि ३ पुनि द्वे मे चारि ४ अनिंदु ॥३२॥
तातें कोठे तीनि में राखे विंदु सवारि ।
अंत कोठ में तीनि पुनि मध्य अंक उर धारि ॥३३॥
या तें नीची पाँति में लिखिए स्वर चित लाइ ।
ऋ ॠ लृ ॡ स्वर बिना परगट कही सुभाइ ॥३४॥

तीन्यो ३ नीची पाँति में लिखिये स्वर चित लाइ ।
× × × ×॥३५॥
× × × ×कति हेत लो मित्र ।
अक्षर लिखियें समझि के पंडित परम पवित्र ॥३६॥
सब तें नीची पाँति में लिखिए ए अंक ।
जे में आगे कहतु हों सो जानो निरसंक ॥३७॥
द्वे कोठे द्वे २ द्वे २ लिखे तीजे कोठे पाँच ।
तातें कोठे द्वेनि में विंदु धरे लहि साँच ॥३८॥
तातें आगें द्वे २ लिखो तातें एक सुधारि ।
ताके आगे बिंदु पुनि तातें द्वे २ लिखि चारि ॥३९॥
अंत कोठ में तीनि ए साधक अंक सु जानि ।
भाषा करि परगट कही मन पें अनुभव आनि ॥४०॥

इति चक्र लिखन क्रम ।

अथ विचार कथनं

साध्य नाम के अंक पुनि जितने होहि सु जोरि ।
त्योंहि साध के नाम के सिगरे अंक बटोरि ॥४१॥
न्यारे न्यारे राखि के लेउ आठ ८ को भाग ।
घटि आवे सो ऋण समझि बढ़ि तो धन बड़ भाग॥४२॥
ऋण वारो ऋणियाँ समझि धनवारो धनवंत ।
धनवारे को देतु हे ऋणिया धन गुनवंत ॥४३॥

अथ याको उदाहरणं

राम साध्य ॥ सीता साधक ॥ साध्य राम को अंक लाइबो ॥ रकार के तीनि ३ आ स्वर के षट ६ मकार के षट ६ अस्वर के षट ६ सबको योग इकीस ३१ या में आठ ८ को भाग ॥ सो शेष पॉच रहे ५ ॥ अथ सीता साधक के अंक लाइबो ॥ सकार के चारि ४ ॥ इकार स्वर को विंदु ॥ तकार को बिंदु अस्वर के द्वे २ सब को योग षट ६ या मे आठ ८ के भाग सो शेष षट ६ हीं रहे ॥ या विचार में सीता की धन संज्ञा भई ॥ राम की ऋण संज्ञा भई ॥ राम सीता को धनदाता भए । ऐसे ही औरहू को विचारिये ॥

इति ऋण धन चक्र विचार।

अथ मख ग्यान चक्र कथनं

पट ६ रेखा तिरछी करे ऊरध द्वादश १२ रेख।
पचपन ५५ कोठे होहिंगे अपने उर अवरेख ॥४४॥

पहिली पंगति मे लिखो अंक जु कहतु विचारि।
प्रथम कोठ मे पट ६ लिखो दूजे तीनि ३ सुधारि ॥४५॥

तीजे कोठे द्वै २ धरो चोथे में पुनि चारि ४।
पाचे कोठे सात ७ लिखि छठएं पट ६ पुनि धारि ॥४६॥

सातें कोठे चारि लिखि ४ आठें कोठे तीनि ३।
नवमे कोठे एक १ पुनि दसमे विंदु नवीन ॥४७॥

अंत कोठ मे एक १ धरि अति ही समझि सवारि।
यातें नीची पांति में स्वर एकादश ११ धारि ॥४८॥

तातें नीची पाँति जो शेष रहे है मित्र।
तिनमें कादिक अंत लो अच्छर राखि पवित्र ॥४९॥

इति चक्र लिपन क्रम।

अथ विचार कथनं

ऐसें चक्र बनाइ के पीछे करे विचार।
मरन जानिवे के लियें यह है याको सार ॥५०॥

रोगी जीवेगा कि नहिं कोऊ पूछे आइ।
पृच्छक रोगी नाम के अंक करो सु बनाइ ॥५१॥

न्यारे न्यारे राखिके लेउ आठ ८ को भाग।
शेष अंक को कहतु हों अब सुनो विचार सुभाग ॥५२॥

रोगी को वहु अंक तो शेष जानि धन आयु।
सम अरु घटिती होइ तो मानो ताहि अनायु ॥ ५३ ॥

अथ याको उदाहरण ।

६	३	२	४	७	६	४	३	१	०	१
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
व	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

रोगी मंगू । पृच्छक सोना । रोगी मंगू को अंक लाइवो । मकार के द्वै २ मकार के अं स्वर ताको एकु १, गकार के द्वै २ गकार के ऊकार स्वर ताके षट ६ सबकों योग एकादश ११ या में आठ ८ को भाग लिये शेष तीनि रहे ३ ॥ अथ पृछक सोना को अंक लाइवो । सकार के द्वै २। सकार में ओकार स्वर ताको एक १ । नकार को एक १ । नकार में आकार स्वर ताके तीनि ३ । सवको योग सात ७ । या में आठ को ८ भाग लेइ शेष सात ७ रहे । रोगी अंक पृच्छक के अंक ते अधिक होइँ तो रोगी को जीवतु जानिये । औरु वरावरि होइ कै घटि तौ मृत्यु जानिये । ह्यॉ घटि है ।

इति मरण जीवन ग्यान चक्र बिचार ।

अथ प्रकारातर मरन ज्ञान प्रश्न कथनं

होंइ जु अछर प्रश्न के ते सब न्यारे धारि ।
मिले होइँ उनमे जु स्वर तिनको अंक विचारि ॥ ५३ ॥
सबको जोरो समझि के एक मिलाओ और ।
द्वि २ गुने करि के राखिये फेरि सु उत्ताम ठौर ॥ ५४ ॥
लेउ भाग पुनि तीनि ३ को शेष रहे जो मित्र ।
तिनको सुनो बिचार अब कहतु जु परम पवित्र ॥ ५५ ॥
एक १ रहे जो शेष तो रोग को सुभ जानि ।
रहे शेष जो द्वै २ सुनो रोगी महा बढ़ि जानि ॥ ५६ ॥
बिंदु रहे तो नेम सो वाको मरन सु जानि ।
बालादिक तिथि में जु हे मरण तिथी दुखदानि ॥ ५७ ॥

था को उदाहरण

प्रश्नाछर बेल। द्वै २ अछर। वकार में एकार ताके एकादश ११। लकार मे अकार स्वर ताको एक १। सवको योग चतुर्दश १४। यामें तीनि को ३ भाग लेइ शेष रहे २। ताको बिचार। एक १ शेष रहे शुभ। द्वै २ शेष रहे तो रोग की वृद्धि होइ। श्रोरु अन्य वचे तो० मृत्यु जानिये। बाल कुमारदिक की गिनती में जु मृत्यु होइ तामें।

अथ मरन ज्ञानार्थ छाया पुरुष दर्शन प्रकार कथनं

अति पवित्र ह्वै प्रातही पीछे दिनमनि राखि।
छाया नर को लखहु पुनि निज मन में अभिलाषि ॥ ५८ ॥
एक टक छाया जल निरखि निमिष लगे नहि मित्र।
पुनि ऊँचे को दृष्टि करि लखो जु पुरुष पवित्र ॥ ५९ ॥
वाही छाया पुरुष के जो नहि दरसें कर्ण।
बारह मही बिते के होइ सु पीछे मर्ण ॥ ६० ॥
कंधा जो नहि देखिये सात मास ७ तो आउ।
हाथ बिना निरखे मरनु दशए १० मास बताउ ॥ ६१ ॥
मुख नहि जो पुनि देखिये एक मास में काल।
विना पाँसुरी के लखे तीनि मास जगु ख्यालु ॥ ६२ ॥
हृदय बिना जो देखिये द्वैई मास बताउ।
बिना सीस निरखे कहो षट ६ महिना सब आउ ॥६३॥
छाया नर के हृदय मे लखिये छिद्र बनाइ।
सात महीना बितै कै काल झकोरे आइ ॥६४॥
दृष्टि न आवे कछू तो तबहीं मृत्यु सु जानि।
संपूरण के लखे तं वर्ष महाशुभ दानि ॥६५॥

अथ प्रकारातर मरण चिह्न कथनं

आइ चुके ते प्रथमही करनादिक जु सुखाइ।
पहिली ही सी मृत्यु की अवधि लहो मनमाँहि ॥६६॥

अन्यच्च

सबतं पहिले हृदय जो सूखे सुनि तो मित्र।
षट ६ महिना के वीच मे होइ सु मरन पवित्र ॥६७॥

अन्यच्च

दछिन कर धरि सीस पे देखे अपनी पांइ।
टूटी सी निरखत मरे पट ६ महिना के मॉह ॥६८॥

अन्यच्च

संपुटि करि दुहुँ करनि को राखे अपने भाल।
आभा कदली फूल की वायें देखे लाल ॥६९॥
मरण दुख्ख भय होइ नहि पट महिना के मॉह।
जो आभा लखिये नहीं तो जीवन किहिं वॉह ॥७०॥
अंतर सगुन विचारिए चढे जुद्ध को भूप।
जीति शत्रु को आवई ह्वे महु मंगल रूप ॥७१॥

अथ गढ़ सोवत जाग्रत विचार कथनं।

ग्राम नाम की राशि को चंद्र राशि को अंक।
शुक्लादिक तिथि जोरिले द्वे २ को भाग निशंक।७२॥
एक १ शेष सो जगतु गढ द्वे सो सोवत जानि।
सोवत गढ सों जुद्ध करि जीतोगे सुख मानि ॥७३॥

उदाहरणं

गढ को नाम गोलकुंडा॥ कुंभ राशि ताके एकादश ११ सिह को चंद्रमा ताके पॉच ५ शुक्लादिक तिथि पॉच ५ सब को जोग इकीस २१ इनमें द्वे के भाग सो एक १ रह्यो जागतु गढ भयो।

इति सुप्त जाग्रत विचार।

अथ नारद विचार

शुक्लादिक तिथि जोरि के पुनि भानुवार तं वार।
नव ९ युत करिके तिनि को ३ भाग लेउ मो यार ॥७४॥

भाग १

एक शेष १ सों स्वर्ग में द्वे २ सों महि में मानि।
तीनि शेष पाताल जहँ नारद तहँ रन जानि ॥७५॥

अथ उदाहरणं

शुक्ल पच्छ की पंचमी ५ गुरुवार को विचार पाँच तिथि ५ पाँच वार ५ रविवार आदि दे के ॥ नव ९ और सब को योग उनीस १९ या में तीनि के ३ भाग सों शेष एक रह्यो १ स्वर्ग में नारद ॥ जहाँ नारद तहँ जुद्ध ॥ इति नारद ॥

अथ कवि कुल वर्णनं

मिश्र नरोत्तम महाकवि भए छिरोरा बंस।
रामसिंह नृप के गुरू माथुर कुल अवतंस॥
तिनके पुत्र प्रसिद्ध देवकीनंदन लाइक।
बेटा तिनके चारि सदा सबको सुखदाइक॥
नीलकंठ अरु मोहन मनि प्रभु के गुन गाइक।
मिश्र महामनि ओरु राजराम सु रिपुघाइक॥
चारयो भाषा कवि बहुरि जोतिष विद्या मे निपुन।
अरु नीलकंठ महि मध्धि यह प्रगट्यौ अंब प्रसाद गुन॥
नीलकंठ जू के तनय तीनि सकल बड़ भाग।
तिनके कहतु सु नाम अब सुनत बढे अनुराग॥
बडे उजागर गंगधर सुख संपति के धाम।
सबतें छोटो सु लघुमति सोमनाथ इहि नाम॥

र. वैरष्टक वर्ग रेखा ४८

र	चं	मं	बु	बृ	शु	श	ल
१ ११ ४ ८ २ १० ९ ७	१० ३ ११ ६ ० ०	१ ११ ४ ८ २ १० ९ ७	१० ३ ११ ६ १२ ९ ५	९ ५ ११ ६ ० ० ०	७ १२ ६ ० ० ०	१ ११ ४ ८ २ १० ९ ७	१० ३ ११ ६ ४ १२

३९ भौमाष्टक वर्ग रेखा

मं	बु	बृ	शु	श	ल	सू	चं
१ ४ ७ १० ८ ११ २	६ ३ ५ ११	१० १२ ११ ६	६ १२ ११ ८	९ ११ ८ १ ४ ७ १०	३ ६ १० ११ १	३ ६ १० ११ ५	३ ६ ११

गुरोरष्टक वर्ग रेखा ५३

बृ	शु	श	ल	सू	चं	म	बु
३ १० २ १ ८ ७ ११ ४	५ २ ९ १० ११ ६	३ ६ ५ १२	७ १० ५ ६ २ ४ ११ १ ९	३ ९ १० २ १ ८ ७ ११ ४	७ ११ २ ९ ५	१० २ १ ८ ७ ११ ४	१० ५ ६ २ ४ ११ १ ९

शनैरष्टक वर्ग रेखा ३९

श	ल	सू	चं	म	बु	बृ	शु
३ ५ ११ ६	१० ११ ३ ४ १ ६	१ ४ ७ १० ११ ८ २	३ ६ ११	१० १२ ३ ५ ११ ६	९ ११ ६ १० १२ ८	११ १२ ६ ५	३ ११ १२

चंद्राष्टक वर्ग रेखा ४९

चं	मं	बु	बृ	शु	श	ल	सू
६ ३ १० ११ १ ७	६ ३ १० ११ २ ५ ९	५ ३ ११ ८ १ ४ ७ १०	१२ ११ ८ १ ४ ७ १०	९ ४ ५ ३ ११ १० ७	६ ३ ११ ५	६ ३ १० ११ ० ०	८ ७ ६ ३ १० ११

बुधाष्टक वर्ग रेखा ५१

बु	बृ	शु	श	ल	सू	च	मं
१ १० ९ ११ ६ ५ १२ ३	१२ ६ ११ ८	२ १ ११ ८ ९ ४ ३ ५	१० ७ २ १ ११ ८ ९ ४	६ २ ११ ८ ४ १०	९ ११ ६ ५ १२	१ ६ २ ११ ८ ४ १०	१० ७ २ १ ११ ८ ९ ४

भृगोरष्टक वर्ग रेखा ५२

शु	श	ल	सू	च	मं	बु	बृ
१० १ २ ३ ४ ५ ११ ८ ९	४ ३ ५ ९ १० ८ ११	१ २ ३ ४ ५ ११ ८ ९	८ ११ १२	१२ १ २ ३ ४ ५ ११ ८ ९	३ ९ ६ ५ ११ १२	५ ३ ११ ९ ६	९ १० ११ ८ ५

ल. ष्टक वर्ग रेखा

अष्टाध्यया ४८ नव युगानि ४९ नवग्रहा ३९ श्च, वेदेषवो ५४ रस-शरा ५६ करसायक ५२ श्च। नंदाग्र यो ३९ दिन कराक्रम शोत्र रेखा होरेश्वराश्रित ग्रहा क्रमजास्तनोस्तः ॥ १ ॥

अ फलं–क्लेशोऽर्थ हानि २ र्व्यसनं ३ समत्वं ४, शश्वत् सुखं ५ नित्य धनागमश्च। संवत्प्रवृद्धि ७ विपुलाऽमलश्रीः ८ प्रत्येक रेखा फल मामनंति ॥१॥ राश्यादि गौ रवि कुजौ फलदौ सिते ज्यौ मध्ये सदा शशि-सुतश्चरमेप्वमंदौ।

मुहूर्त्तचितामनौ ॥

इति गोचर ज्ञानार्थ अष्टक वर्गा सुलिखिता सुधियावि

तिन यह कीनो सुगम अति अगम स्वरोदय भेद।
जाकों बाँचतु सुनत हूँ मन मे रहे न खेद॥
मिश्र महामनि के तनय माधोराम विचित्र।
× × × × ॥
× × × × ।
पुत्र उजागर मिश्र के उदेचंद तराचंद॥
सगुनी माधोराम अरु उदेचंद सुविचित्र।
सोमनाथ पुनि तीनि हूँ जानो ए अति मित्र॥
सत्रह से छासी १७८६। समभि संबत् मेरे यार।
भादो सुदि की पंचमी अरु रजनीपति वार॥
ताही दिन परगट भयो यह दर्पन संग्राम।
जाको सरस विचार सुनि हिये होइ आराम॥
समर सार नरपति निरखि कीनो ग्रंथ विचारि।
जो कछु भूल्यो होउ तो लीजो सुकवि सुधारि॥

इति श्री मिश्र नीलकंठस्यात्मज मिश्र सोमनाथ कृत संग्रामदर्पन संपूर्ण।

———

प्रेमपच्चीसी

॥ श्रीरामचंद्राय नमः ॥

॥ अथ सौमनाथ लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥ मंगल मूरति विघनहर सुंदर त्रिभुवनपाल ।
खेवट प्रेम समुद्र के जै जै श्री नँदलाल ॥१॥

॥ छंद माझै पंजाबी ॥

क्या कीती तकसीर तुसाडी नहि मुखरा दिखलावै है ।
राति द्यौस विन तैंडी चरचा मुजनूं और न भावै है ॥
बेदरदी महबूब गिरंदे क्यौ गिरंदगी करदा है ।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है ॥२॥

वे तुझसैं महवूब गुविदे नैन असाड़े उरझे हैं ।
कौन सकैं सुरझाइ इनौनैं यै औरौ सै सुरझे हैं ॥
वेदरदी पहिचाँनि दरदनू भला दिया तैं अरदा है ।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अंदर विच परदा है ॥३॥

खान पियन दी गल्लां भुल्ला साहस नहीं ठहरदा है ।
विधि की साठि बरोवरि गुजरै निसदिन आठ पहरदा है ॥
विन तैंडा मुख देखै ज्यानी काम कहर अति करदा है ।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है ॥४॥

दरदवंद बेदरद कनैया जे पन कौ प्रतिपालै हैं ।
पाक नजरि पहिचानि गहगही गरुबेदरद उसालै है ॥
प्रेमपंथ मै डग दै जानी अब क्यों हियै अहरदा है ।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है ॥५॥

अति अमंद मुखचन्द तुसाडा तिमिर विरहनू दरदा है ।
मो चकोर नैनौ दी चटकी अम्रत वरिस कहरदा है ॥
प्रेम समुद्र अथाह पैरना निहचै काम निडरंदा है ।
सौमनाथ नेही से कैसा दिल अन्दर विच परदा है ॥६॥

मस्त रहै तू अपने ख्यालौ मैंडा दरद न आवै है।
वंक विलोकनि अनी भारिकै अब क्यौ चोट चुकावै है ॥
आठ पहर तन नैन प्रान सों निति वंदिगी करदा है।
सौमनाथ नेही सै कैंसा दिल अन्दर विच परदा है ॥७॥

क्या लीती इह वानि गुविदे मैंडे पंथ न आवै है।
जिद कित्ती खुरवानि तुसाड़ी आतस इस्क सतावै है ॥
ना जानूं क्या चाह चाहदा नहीं टेक सौ टरदा है।
सौमनाथ नेही सं कैंसा दिल अन्दर विच परदा है ॥८॥

रंच रहम करि कान्ह गुमानी क्यौ पहलै अपनाया हौ।
अब क्या करूं कहूं मै किस्सै खूवी लखि ललचाया हौ ॥
तैंडा गुन दिन रैनि गावदा ख्यालन और जिकरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैंसा दिल अन्दर विच परदा है ॥९॥

वे गोविंद गुमानी तुभपै सौमनाथ गुरवानी है।
तैंडा नूर निरखतै मैंडी आखै निपट लुभानी है ॥
नही किसीदी आन मानदा तू भी तौ अट करदा है।
सौमनाथ नेही से कैंसा दिल अन्दर विच परदा है ॥१०॥

जो कछु कोई कहै कुवैनसु निहचै कानन धरना है।
इस्क ख्याल मै खता न आवै सोई मता विहरना है ॥
नन्दकिसोर रैनि दिन मैनूं छिन वी तू न विसरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैंसा दिल अन्दर विच परदा है ॥११॥

नन्दकिसोर चंद मुख तैंडा मैंडे नैन चकोरा है।
मंद मंद हांसी मिस वरसै मधुरे अम्रत भकोरा हैं ॥
जवरदस्त जीतै इन ख्यालौ काइर नही ठहरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैंसा दिल अन्दर विच परदा है ॥१२॥

यारी दे निरवाह करननूं वेपरवाह न हौना है।
खूबी क्या वरनूं मै तैंडी तीखे नैनन (की) टौना है ॥
करि प्रानौ आधीन पहल हुन क्यो तू कान्ह अकरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैंसा दिल अन्दर विच परदा है ॥१३॥

अवे यार यह मै न जानदा तू किहि ख्यालौ राजी है।
खूवी खूव तुसाडी मैडी अख्यौ बीच्च विराजी है॥
हुन सच्ची पहिचानि वंदिगी क्यौ हित ठाह न डरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है॥१४॥

औरौ सै हित परचा नांही चरचा तुसी सुहादी है।
रटदा नाम दमैदम ज्यानी जागत रेनि विहादी है॥
विन देखै मुख चन्द तुसाड़ा पलक कलप सा टरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है॥१५॥

कसकति अवै हमेमा तैडी वंक विलोकनि तिख्खी है।
नां जानौ ए आंखै कित्थै जालिम जादू सिख्खी है॥
मै तुज हत्थ विकाया मौहन हुन क्यो कान्ह अकरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है॥१६॥

पचरग पाग लटपटी तिसपै कलगी मनिगन वारी है।
कुंडिल श्रवन कमल से लोचन चन्द वदन उजियारी है।
यौं वनिकै व्रजचन्द क्यौ नही मंडे डगर निकरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है॥१७॥

न मैं जांनदा जालिम तै यह क्या चित वांनि विसाई है।
नैनौ नाल चिपटदा ज्यानी करदा कभी रुखाई है॥
तुजनू विनां निरख्खै मौहन मुजनूं चैन न परदा है।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है॥१८॥

यारी दैकर नैनूं तुजसै नित प्रति जतन उपांवा है।
नही भाखदे दरद किसीसै मन ही मै गुन गा I है॥
तैडा दरस देखतै मैडा नाही चित्त अफरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है॥१९॥

मुजै था न मालूम कि जालम तू नंदलाल अमाना है।
भौह कमान कटाछ वान से चुकदा नही निसाना है॥
मैडी जुग आंखौ सै तैड़ा नाही इस्क निवरदा है।
सौमनाथ नेही सै कैसा दिल अन्दर विच परदा है॥२०॥

जित्थै पैर धरै तू ज्यानी तित्थै पलक विछावा मैं।
तैंडी कहै कहानी तीनूं हसि हसि कंठ लगावा मैं॥
तैंडा रूप गुविदे मैंडे नैंनौं नाल निहरदा है।
सौमनाथ नेही सैं कैंसा दिल अन्दर विच परदा है॥२१॥

खूब नहीं यह वेपरवाही कर वे रहम सिखावा मैं।
उठदी लहर कहर मनमथ दी किन्नूं दरद सुनावा मैं॥
तैंडा मुख विनु देखै मैंडा चित न करार पकरदा है।
सौमनाथ नेही सैं कैंसा दिल अन्दर विच परदा है॥२२॥

फूल दुकूल रग रंगौं मैं तुही नजरि मैं आवैं है।
भावैं तुसी कहानी जौं भी सुपने मे मिलि जावैं है॥
तौ भी तैंडा विरह गुमानी उर सैं नहीं उसरदा है।
सौमनाथ नेही सैं कैंसा दिल अन्दर विच परदा है॥२३॥

तुज विन श्री व्रजचन्द चंद्रिका चंदन तनहिं तचावै है।
रुच दे नहीं दुकूल रंग सँग फूल सूल सरसावै है॥
तंडे लियै नजरदा जौं भी नाहक लोग झगरदा है।
सौमनाथ नेही सैं कैंसा दिल अन्दर विच परदा है॥२४॥

औरौं सौं वतरादा हसि हसि जो चाहे सु वकसदा है।
निःकलंक निरसंक सावलौ नित प्रति सैल निकरदा है॥
मुज गरीब दी तरफ देषतैं क्यों वे तुसी विगरदा है।
सौमनाथ नेही सैं कैंसा दिल अन्दर विच परदा है॥२५॥

तीसैं तिख्खे नैंन मैंन नू क्या यह ख्याल सिखाया है।
नहिं सानद आनन्द हठीले मैंडा चित्त चुराया है॥
तुसी दरस के फन्दा मैंनू नाही अमल उसरदा है।
सौमनाथ नेही सैं कैंसा दिल अन्दर विच परदा है॥२६॥

दोहा—पच्चीसा यह प्रेम कौ सुनि सुख होवैं मित्त।
सौमनाथ कवि नैं रच्यौ नन्दकिसोर निमित्त॥२७॥
॥ इति श्री सौमनाथकृत प्रेमपच्चीसा सम्पूर्णम्॥

अनुक्रमणिका

(यहाँ शब्दों के आगे पृष्ठसंख्या दी गई है।)

अ

इ

ख

त्र

थ

द

ध

न

भ

म

ल

व

ह